विषय-सूची

अर्द्ध' भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

माघ सं० २००७	वर्ष ३२, संख्या १०,	जनवरी १९५१

सबसे ऊँची प्रेम सगाई ।

दुर्योधनको मेवा त्यागो साग विदुर घर पाई ॥

जूठे फल सेवरीके खाये बहुविधि प्रेम लगाई ।

प्रेमके बस नृप-सेवा किन्हों आप बने हरि नाई ॥

राजसुयज्ञ युधिष्ठिर किनो तामें जूठ उठाई ।

प्रेमके बस अर्जुन-रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई ॥

ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दावन गोपिन नाच नचाई ।

'सूर' क्रूर इस लायक नाहीं कहँ लगि करौं बड़ाई ॥

आत्म-निवेदन

अपूरणीयक्षति !

जिसको सुननेके लिये हृदय प्रस्तुत नहीं था, क्रूर कालने उसे कर ही डाला ! अप्रत्याशित अकस्मात् हमें सुनना ही पड़ा कि भारतमाताके लाड़ले सपूत सरदार बल्लभभाई पटेल अब हमारे बीच नहीं रहे ! इस समयकी विषम परिस्थितिमें जब कि देशको उनकी बड़ी आवश्यकता थी, उनका वियोग भारतका अत्यन्त दुर्भाग्य है। वे अपने दृढ़निश्चयके कारण 'लौहपुरुष' कहे जाते थे। वे कुशल शासक, स्पष्ट-वक्ता एवं निर्भीक नेता थे। यद्यपि उनका पाञ्च-भौतिक शरीर अब इस संसारमें नहीं रहा किन्तु उनकी कीर्ति अमिट रहेगी। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि लोकप्रिय मनुष्य भी अधिकारारूढ़ होने पर लोगोंका अप्रिय एवं अश्रद्धा-भाजन बन जाता है; परन्तु सरदार पटेलमें यह विशेषता देखी गयी कि वे शासनारूढ़ होनेपर जनताके पहलेसे अधिक प्रिय श्रद्धाभाजन बन गये थे। हैदराबादका "पुलिस एक्सन" उनकी सामयिक सूझ एवं कुशल शासक होनेका उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित करता है। सोमनाथके मन्दिरका जीर्णोद्धार उनकी न्यायशीलता, आस्तिकता एवं भावुकताका दर्शन कराता है और देशी रजवाड़ोंका अनायास केन्द्रीकरण उनकी दूरदर्शिता, संगठन-शक्ति एवं सूक्ष्मबुद्धिका ज्वलन्त प्रमाण है। ऐसे सुयोग्य शासक एवं नेताके उठ-जानेसे देशकी ऐसी क्षति हुई जिसकी पूर्ति निकट भविष्यमें होनेकी आशा नहीं प्रतीत होती। हम उनके शोक-संतप्त परिवारवर्गके साथ हार्दिक सम-वेदना प्रकट करते हुए दिवंगत महान् आत्माकी नियमित ऊर्ध्वगतिके लिये भगवान्के चरणोंमें प्रार्थना करते हैं।

हिन्दू कोडबिल पुनः स्थगित।

जैसा कि विधानमन्त्री डा० अम्बेदकरने मद्रास में कहा था कि संसदके इसी अधिवेशनमें हिन्दू कोड-बिल पास हो जायगा, वैसा नहीं हो सका और वह पुनः अनिश्चित समयकेलिये स्थगित हो गया। ता० १४ दिसम्बरको संसदमें इस बिलपर प्रायः चालीस मिनटतक वाद-विवाद चला, उस समय डाक्टर अम्बेदकरने कहा कि "उन्होंने जो हिन्दूकोड-सम्मेलन बुलाया था, उसका कार्य-विवरण नहीं लिखा जा सका; क्योंकि वहाँ वाद-विवाद कभी हिन्दीमें, कभी अंग्रेजीमें, कभी मराठीमें और कभी तामिलमें चल रहा था। ऐसा कोई स्टेनोग्राफर मिलना असम्भव था, जो इन सब भाषाओंको जानता हो, तथापि उन्होंने अपने स्मृतिके आधारपर भाषणोंका सार दे दिया है एवं सम्मेलनके बहुमत सुझाव ले लिये हैं।" विधानमन्त्रीका यह वक्तव्य पढ़कर हमें बड़ा आश्चर्य एवं दुःख यह जानकर हुआ कि, यह सर्वथा निर्मूल है। क्योंकि श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की ओरसे इसकी प्रधान-मन्त्रिणी एवं सञ्चालिका श्रीमती विद्यादेवीजी उक्त सम्मेलनमें उपस्थित थीं, उनसे उक्त हिन्दूकोड सम्मे-लनका जो विवरण प्राप्त हुआ, उससे विदित होता है कि उसमें सभी भाषण या वाद-विवाद हिन्दी और अंग्रेजीमें ही हुए थे, मराठी और तामिलमें कोई भाषण नहीं हुआ, केवल एक सज्जनका संक्षिप्त-

भाषण संस्कृतमें हुआ था। स्टेनोग्राफरभी उक्त सम्मेलनमें उपस्थित थे। श्रीमती देवीजीने अपने भाषणमें किसी श्लोकका उद्धरण किया था, जो स्टेनोग्राफर नहीं लिख सकनेके कारण उनके पास गया एवं श्रीदेवीजीने वह श्लोक उसे लिखकर दिया था। इस तरह सरकारके ऐसे उच्च अधिकारी होकर विधानमन्त्री महोदय सत्यका अपलाप कर जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेकी चेष्टा करें, इससे अधिक खेदकी बात और क्या हो सकती है? सच्ची बात तो यह है कि उक्त सम्मेलनमें ऐसे ही लोगोंको बुलाया गया था जो विधानमन्त्रीका समर्थनकरनेवाले थे। विरोधियोंमें केवल दो तीन प्रतिनिधि बुलाये गये थे। परन्तु उनकी सम्मति भी संसदके सामने नहीं रक्खी गयी। जिससे उनके विचार संसदके सदस्योंको विदित हो सके।

उसी दिन अपने भाषणमें प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूजीने यह कहा कि "सरकार इसे बड़ा महत्वपूर्ण समझती है और चाहती है कि इस पर विचार आरम्भ किया जाय।" प्रधानमन्त्रीकी यह उक्ति पढ़कर भी हमें कम दुःख नहीं हुआ। क्योंकि अन्नके लिये जनता तड़प रही है, भूखमरी मुह बाये खड़ी है, इसका कोई महत्व हमारी सरकारके सामने नहीं हैं, शरीर ढाकनेके लिये वस्त्र नहीं है इसका भी कोई महत्व सरकारके सामने नहीं है, इन्हीं नेताओंने अखण्डभारतको खण्ड-खण्ड कराकर लाखों मनुष्योंको आश्रयहीन बना डाला, सुखपूर्वक महलोंमें रहनेवाले आज झोपड़ियोंमें दुःखके दिन काट रहे हैं। ये हमारे भाई-बहिन पशुओंसे भी हीन अपने अपने जीवनके दिन जैसे-तैसे बिता रहे हैं। शिशिरका भयंकर शीत, ग्रीष्मका प्रचण्ड धूप और वर्षाका बौछार सहते हुए किस असहनीय वेदनासे समय व्यतीत कर रहे हैं, यह लिखना लेखनीकी शक्तिसे अतीत विषय है; तब भी इनका अबतक कोई संतोषजनक समाधान करनेमें सरकार असमर्थ रही, परन्तु नेहरू-सरकारके सामने इस विषयका भी कोई महत्व नहीं है। नेहरू-सरकारके सामने सारा महत्व केवल हिन्दू-कोडबिलको पास करनेका ही है, जिसकी हिन्दू जनताने कभी माँग नहीं की, किन्तु देशके प्रायः सभी विशिष्ट विद्वान् धर्माचार्य, बड़े-बड़े जज, बैरिस्टर, वकील, बड़ी-बड़ी संस्थाएँ विरोध कर चुकी हैं और स्वयं राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादभी इसके विरुद्ध अपनी सम्मति लिख चुके हैं और वर्तमान विधानसभाको इस प्रकारके विधानबनानेका अधिकार नहीं है, यह भी घोषित कर चुके हैं। अतः इस समय इस बिलके स्थगित हो जानेसे हिन्दूजनताको निश्चिन्त नहीं होना चाहिये इस विरोधको और भी उग्र बनाना चाहिये जिससे सरकारको इसे वापस लेनेको विवश होना पड़े।

निर्वाचन एवं महिलाएँ।

वयस्कमताधिकारके अनुसार निर्वाचन अभी यहाँके लिये नयी वस्तु है। दूसरी ओर यहाँकी जनता अधिकांश निरक्षर है, उसमें भी स्त्रियाँ तो और भी पिछड़ी हुई हैं। नये विधानसे उनको जो यह मतदाताका अधिकार प्राप्त हुआ है, यह समझनेमें भी उनको यथेष्ट समय लगेगा। इतने पर भी सरकारने जो मतदाताओंकी सूचियाँ तैयार करायी है, वे इतनी असम्पूर्ण और अशुद्धियोंसे भरी हुई हैं कि, यदि स्थिति ऐसी ही रही तो करोड़ों महिलाएँ मतदानके अधिकारके उपयोग करनेसे वञ्चित रह जायँगी। नामके सम्बन्धमें आपत्तिका समय यद्यपि सरकारने

२३ दिसम्बरसे बढ़ाकर १५ जनवरी तक कर दिया है, तथापि कार्यकी कठिनाइओंको देखते हुए इतना समय बहुत कम है। निर्वाचनका समय अब एकवर्ष आगे बढ़ा दिया गया है, अतः यह अत्यावश्यक है कि आपत्तियोंकेलिये भी अन्ततः तीन मास समय बढ़ा दिया जाय और यह समय ३१ मार्च १९५१ तक कर दिया जाय। इस सम्बन्धमें दूसरा विचारणीय विषय यह है कि मतदाताओंकी सूचियाँ कचहरी या पुलिसस्टेशनोंपर रखी गयी हैं। ऐसे स्थानोंपर जाकर अपना नाम देखना महिलाओंके लिये बहुत असुविधा तथा अपमानजनक भी है। इसलिये उचित यह है कि, ऐसी सूचियाँ बालिका-विद्यालयोंमें भी रखी जायँ तो महिलाओंको वहाँ जाकर अपना नाम देखने तथा इस विषयमें आवश्यक कार्यवाही करनेमें बड़ी अनुकूलता होगी। ऐसे स्थानोंमें जानेमें किसी महिलाको संकोच या अपमानका अनुभव भी नहीं होगा, और जो स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी नहीं हैं, उनको उक्त संस्थाओंकी छात्राओं एवं शिक्षिकाओंसे सहयोग एवं सहायता भी मिल सकती है। अतः सरकारसे हमारी प्रार्थना है कि आपत्तिका समय १५ जनवरीसे बढ़ाकर ३१ मार्च कर दिया जाय और मतदाताओंकी सूचियाँ सभी स्थानोंपर कन्यापाठ-शालाओंमें भी रखी जाय। सरकारकी इस उदारताके लिये महिला-जगत् ऋणी रहेगा।

सदाचार।

[गताङ्कसे आगे]

पाश्चात्य विद्वानोंकी वहाँ तक पहुँच नहीं हुई है। खाद्याखाद्यमें उन्होंने यही निर्णय किया है कि, जिस वस्तुमें जीवनतत्त्व (विटामिन) अधिक हो, वह खाद्य है, अन्य अखाद्य हैं। उन देशोंमें शीत अधिक होनेसे वे बारहों मास एक प्रकारका ही आहार करते हैं। परन्तु हमारे देशमें छहों ऋतु समानरूपसे बलवान् होनेके कारण ऋतुभेदसे वात, पित्त और कफकी न्यूनाधिकता हो जाती है। इससे शारीरिक और मानसिक अवस्थाओंमें कितना परिवर्तन हो जाता है, इस ओर उन्होंने दृष्टिपात ही नहीं किया है। कौनसी वस्तु, किस ऋतुमें, किस प्रकारके शरीरके लिये किस प्रकार सेवन-योग्य है, जिससे शरीर और मनका स्वास्थ्य परिवर्धित होता रहे, इसकी विधि पश्चिमी चिकित्साशास्त्रकी पोथियोंमें नहीं मिलती। तिथिपालन, वारपालन, पर्वपालनका तो उन्होंने कभी नाम ही नहीं सुना है। अतः हमारे देशके उनके शिष्य नवशिक्षित ऐसी बातोंको देखकर उपहास करते हैं; परन्तु तथ्यको समझनेकी चेष्टा नहीं करते। आश्चर्य यह है कि शासकोंके अधर्माचरण और अयोग्यताके कारण देशमें जब अन्नाभाव हो गया, तब उपवास और शाकपातपर निर्वाहकरनेकी उनको सूझ हुई; परन्तु हमारे प्राचीन महर्षियोंने पाकयन्त्रोंको विश्राम देकर मनको उन्नत करनेके विचारसे पखवाड़ेमें कमसे कम एकादशी जैसा व्रत करनेकी व्यवस्था दी है। एकादशी व्रत करनेके अनेक कारणोंमें से यह भी एक कारण है। उनके समयमें कभी अन्नाभाव नहीं रहा।

सात्विक आहारसे सत्वगुणकी वृद्धि होकर आध्यात्मिक उन्नति होती है, राजसिक आहारसे दुःख, शोक और रोग उत्पन्न होते हैं और तामसिक आहार जड़ता, अज्ञान और पशुभावको बढ़ाता है। अतः सर्वदा सात्विक आहार करना ही लाभदायक है।

मिताहारकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। मिताहारमें छः गुण हैं। उससे रोग नहीं होता, आयु बढ़ती है, बलवृद्धि होकर सुखलाभ होता है, उसकी सन्तान आलसी नहीं होती और उसको कोई पेटू कहकर निन्दा भी नहीं करता। इससे विपरीत अमिताहार करने अर्थात् अधिक भकोसनेसे रोग होते हैं, पेटकी सदा व्यथा रहती है, आयु घटती है, स्वर्गसुखसे वञ्चित रह जाना पड़ता है, पुण्य नष्ट होता है और लोगोंमें उपहास होता है। अतः सोना-जागना, आहार-विहार और क्रियाकर्म जिसका यथोचित (परिमित) होता है, वह ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके सुखोंको प्राप्त करता है। साधारणतः अन्नाशयका आधाभाग अन्नसे और चौथाई भाग जलसे पूर्णकर शेष चौथाई भाग वायुसञ्चरणके लिये खाली रखनेसे कभी स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता। भोजनके अनन्तर हाथ मुँह धोकर सूर्यावलोकन कर आँखोंमें दो दो बूँदें पानी देनेसे दृष्टिशक्ति ठीक रहती है और पेशाबकरनेसे मशानेका रोग नहीं होता। भोजनके बाद बैठ रहनेसे तोंद बढ़ती है, थोड़ा लेट लेनेसे (बाइं कोख) अन्नपाचनमें सहायता मिलती है और शरीर ठीक रहता है, शतपदी (थोड़ा चल-फिर लेने) से आयु बढ़ती है और दौड़ पड़नेसे मृत्युका आक्रमण होता है। अतः भोजनके उपरान्त थोड़ा वामकुक्षि करलेनेपर तब कामकाजमें लग जाना चाहिये।

अन्नकी तरह जलपान करनेके सम्बन्धमें आर्यशास्त्रकारोंने उपयुक्त विचार किया है। उनके मतसे पानीय जलमें सात गुण होने चाहिये। वह स्वच्छ, लघु, शीतल, सुगन्धित, स्वयं स्वादहीन, हृद्य और तृष्णानिवारक होना चाहिये। महर्षि-यमके मतसे जिसपर दिनमें सूर्यकी, रात्रिमें चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंकी और दोनों संध्याओंमें सूर्य-चन्द्र दोनोंकी किरणें पड़ती हों, वह वायुप्रवाहमय जल पवित्र है। जिसपर सूर्य-किरणें नहीं पड़तीं और जिसे वायु नहीं सोखती, वह जल स्वच्छ होने पर भी वायु उत्पन्न करता है। उसको गरमकर ठण्ढा होने पर पिये, तो कास, श्वास, अजीर्ण आदिका विकार नहीं होता। नारियलका जल मधुर, पाचक और पित्तशामक है। सोडा वाटर, लेमनेड, आदि पेय इस देशके आहार-विहार और जलवायुके प्रतिकूल होनेसे उनका व्यवहार नहीं करना चाहिये। भावप्रकाशकार कहते हैं कि, बहुत जल पीने या बिलकुल न पीनेसे अन्नका परिपाक नहीं होता। अतः जठराग्निकी शक्ति बढ़ानेके लिये बार बार थोड़ा थोड़ा जल पीना उत्तम है। भोजनके समयमें आरम्भमें जल पीनेसे पित्तशमन, बीचमें पीनेसे कफका नाश और अन्तमें पीनेसे अन्नका उत्तम परिपाक होता है। यों सभी जल अमृत हैं और इसीसे जलको 'जीवन' भी कहते हैं। अन्न-जल ग्रहणकरनेपर मुखशुद्धिके लिये ब्रह्मचारियोंके लिये निषिद्ध होने परभी गृहस्थलोग पान खा सकते हैं। परन्तु पान पके और ताजे होने चाहिये। क्योंकि पानके डण्ठे रोग उत्पन्न करते हैं, शिरायें बुद्धि-नाश करती हैं, सूखा-सड़ा पान आयुका क्षय करता है और उसका अग्रभाग पापजनक होता है। ताम्बूल रक्तवृद्धिकर होनेपर भी कामोत्तेजक होनेसेही

ब्रह्मचारियोंके लिये निषिद्ध कहा गया है। भोजनोत्तर अतिपरिश्रमके काम नहीं करने चाहिये।

त्रिगुणोंके अनुसार शरीरकी प्रकृति भी तीन प्रकारकी होती है। सत्वगुणसे पित्तप्रकृति, (bilious), रजोगुणसे वातप्रकृति (nervous) और तमोगुणसे कफप्रकृति (lymphatic) गठित होती है। तीनों प्रकृतिके मनुष्योंके लक्षण आयुर्वेदमें बताये गये हैं। पित्त, कफ, वात जबतक शरीरमें यथापरिमाण होते हैं, तब तक शरीर स्वस्थ और नीरोग रहता है; परन्तु इनमें व्यतिक्रम होतेही उसे व्याधियाँ धर दबाती हैं। प्रकृतिके प्रभावसे षट् ऋतुओंका विकास होता है। ऋतुविपर्ययसे भी तीनोंमें न्यूनाधिकता हो जाती है। अतः ऋतुके अनुसार और त्रिगुणोंके तारतम्यानुसार ही खाद्याखाद्यका निर्णय करना आरोग्यताकी दृष्टिसे लाभदायक है और इसका विवेचन आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्रमें विस्तारपूर्वक किया गया है। ऋतुपालन, तिथिपालन, वारपालन आदि उसीके अन्तर्गत हैं। किस ऋतु, तिथि और वारमें क्या खाना चाहिये और किससे बराव करना चाहिये, शास्त्रकारोंने यह विशद कर दिया है। इसमें त्रिगुण और त्रिदोषोंको ही प्रधानता दी गई है, केवल जीवनतत्व (विटामिन) को ही सब कुछ नहीं मान लिया गया है।

समस्त ब्रह्माण्डमें सूर्यदेव ही प्राणस्वरूप और शक्तिके निधान हैं। अतः ब्राह्ममुहूर्तसे सन्ध्यापर्यन्त, जबतक सूर्यकी शक्ति पृथ्वीपर फैली रहती है, जाग्रतभावसे सूर्यके साथ सम्पर्क रखते हुए नाना पुरुषार्थ करने चाहिये। इससे जीवके क्षुद्रप्राणमें सूर्यका महाप्राण सञ्चारित होकर जीव पुष्टप्राण और दीर्घायु होता है और उसके सब पुरुषार्थ सफल होते हैं। शरीरकेलिये श्रमके साथही विश्रामभी आवश्यक है। साधारणयन्त्रोंकेलिये भी यह नियम लागू है। निश्चित समयतक उनसे काम लेकर यदि विशिष्ट अवधितक विश्राम न दिया जाय, तो वे निरुपयोगी हो जाते हैं। इसी तरह दिनभर कार्यकर जब शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और स्नायु थक जाते हैं, तब उनकी थकावट मिटानेके लिए ही श्रीभगवान्ने निद्राकी व्यवस्था की है। सभी प्राणी सोते हैं और अच्छी नींद हो जानेपर वे फिर ताजे हो जाते, नव-जीवन प्राप्त करते हैं। निद्रा तमोगुणका कार्य है, अतः वह रात्रिके अन्धकारमें ही प्रशस्त माना गया है। दिनमें पर्याप्त परिश्रम करनेसे रात्रिमें निद्रा अच्छी आती है। बच्चे दिनभर दौड़-धूप करते हैं, इस कारण उन्हें अधिक निद्रा आती है। विद्यार्थी और प्रौढ़लोग परिश्रमके अनुसार निद्रासुखका अनुभव करते हैं। बुड्ढे परिश्रम करनेमें असमर्थ होते हैं, इस कारण उन्हें निद्रा कम आती है। साधारण मनुष्यके लिये छः घण्टे निद्रा पर्याप्त होती है। अधिक सोनेसे आयु क्षीण होती है और अधिक जागते रहनेसे प्राणशक्ति दुर्बल हो जाती है। नींद न आनेका जैसा रोग है, वैसा अतिनिद्राभी रोगही है। ग्रीष्मऋतुके भलेही दिनमें थोड़ा विश्राम कर लिया जाय, किन्तु अन्य-ऋतुओंमें दिनमें सोनेसे शरीरमें जड़ता आ जाती है। निद्रा श्रीजगदम्बाका ही एक रूप है। अतः सोते समय रात्रिसूक्तका पाठ और श्रीइष्टदेवका चिन्तन अवश्य करना चाहिये। इससे नींद नहीं टूटती और गाढ़ी निद्रासे सुख होता है। पुनः प्रातःकालमें नव-जीवन प्राप्त हो जाता है।

पृथ्वीमें जो विद्युत्धारा प्रवाहित होती है, उसकी

गति दक्षिणकी ओरसे उत्तरकी ओर होती है। इस कारण उत्तरकी ओर सिरकरके नहीं सोना चाहिये। इससे पैरकी ओरसे विद्युत्प्रवाह सिरकी ओर जाकर शिरोव्यथादिरोग उत्पन्न करता है। सूर्यदेवकी प्राणमयी विद्युत्शक्ति पूर्वसे पश्चिमकी ओर प्रवाहित होती है, अतः पश्चिमकी ओर सिर करके भी नहीं सोना चाहिये। पूर्व और उत्तरकी ओर मुँह करके सन्ध्या-पूजा आदि धर्मानुष्ठान करना श्रेयस्कर है। इससे शरीरमें विद्युत्संग्रह होता है। सोनेका स्थान स्वच्छ, वायुप्रवाहयुक्त, जहाँ मच्छर आदि न हों और स्वास्थ्यकर होना चाहिये। बिछौना भी गन्दा और खटमलसे भरा न हो। बहुत कोमल शय्या ब्रह्मचर्यमें बाधा करती है। पलंग, खटिया या चौकीपर सोना त्रिदोषनाशक है। परदारासेवनका शास्त्रकारोंने बड़ा निषेध किया है। मनुभगवान् आज्ञा करते हैं:—परदारासेवनसे आयु क्षीण होती है। अतः बुद्धिमान्, विचारवान्, स्वास्थ्य और दीर्घायु चाहनेवालोंको परदाराकी चिन्ताभी नहीं करनी चाहिये। विष्णुपुराणमें लिखा है कि, आसन, वस्त्र, शय्या, स्त्री, सन्तान और जलपात्र अपने ही अच्छे होते हैं, दूसरोंके ग्रहण करनेयोग्य नहीं होते। सदाचारसम्बन्धी अनेक नियम अपने धर्मशास्त्र और आयुर्वेदशास्त्रने बताये हैं, उनमेंसे अत्यन्त आवश्यक नियमोंका ही यहाँ दिग्दर्शन किया गया है।

व्यष्टिप्रकृतिके साथ समष्टिप्रकृतिका मेल कराना ही सदाचारका प्रधान उद्देश्य है। यह तभी हो सकता है, जब शरीर स्वस्थ और टिकाऊ हो। इसके लिये सदाचार जैसा दूसरा साधन नहीं है। आनन्दमयी महाप्रकृति सबकी जननीरूपसे सर्वत्र विराजमान हो रही है। उसका हास्य पुष्पोंके हास्यमें विकसित होता है, उसकी प्रेमधारा गंगाकी धारामें प्रवाहित होती है। उसकी करुणा चन्द्रकलाओंमें प्रकाशित होती है। हम अपना जीवन उसीको अर्पण कर दें, तो दुःख हमारे पासभी नहीं फड़क सकेगा। वनैले पशु-पक्षी उसीकी गोदमें पलते हैं, छहों ऋतुओंका द्वन्द्व सहते हैं, इस कारण कभी रुग्ण नहीं होते। हमें भी बाल्यावस्थासेही सब ऋतुओंके वेगको सहन करनेका अभ्यास करना चाहिये। थोड़ी सर्दी पड़ते ही कपड़ोंसे शरीर जकड़ लेना या गर्मी में शीतोपचारके लिये लालायित होना माताकी गोदसे दूर हट जाना है। उसे शान्ति कहाँसे प्राप्त हो? माताकी गोदही तो उसकी सन्तानका पुण्यमय विश्रामस्थान है, जहाँ कभी मृत्युका भय हो ही नहीं सकता। इसीसे हमारे पूर्वजोंने ब्रह्मचारियोंको छाता-जूता पहनना निषिद्ध बताया है। अग्निकार्य, सूर्योपस्थान, तपःसाधन, पुष्पसमिधा आदिका चयन, गुरुसेवा आदि कार्य उनकेलिये इस कारण बताये हैं कि, महाप्रकृतिके साथ मिलनेका आरम्भसे ही उनको अभ्यास हो और वे अपना भावी जीवन सुखपूर्वक बिता सकें। महाप्रकृतिकी स्वाभाविक गति ब्रह्मकी ओर होती है। जीव अपने अहङ्कारसे व्यष्टिप्रकृतिको महाप्रकृतिसे पृथक् करके बन्धनको प्राप्त करता और रोगग्रस्त हो जाता है। सदाचार जीवकी व्यष्टिप्रकृतिको धीरे धीरे समष्टि प्रकृतिके साथ मिला देता है। सदाचारसे स्थूलशरीरको तो स्वास्थ्यलाभ होता ही है; किन्तु सूक्ष्मशरीरभी आध्यात्मिक उन्नति करनेमें समर्थ हो सकते हैं। इसका अन्तिम परिणाम व्यष्टिप्रकृतिका महाप्रकृतिमें मिलकर ब्रह्मसमुद्रमें विलीन होना ही है।

सदाचारोंके साथ महाप्रकृतिके मधुर मिलनका

सम्बन्ध होनेसे वे विज्ञानशास्त्रानुमोदित भी हैं। जो महाप्रकृतिके नैसर्गिक नियमोंको बताता है, उसको विज्ञानशास्त्र कहते हैं। दृष्टान्तरूपसे समझा जा सकता है कि, हमारा वर्णाश्रमधर्म सम्पूर्णरूपसे विज्ञानशास्त्रके अनुरूप है। सदाचारोंमें रोटी-बेटी व्यवहारका विचार सर्वप्रधान है। लोगोंका यह जो आक्षेप है कि, वर्णधर्ममें उच्चवर्णके लोग निम्न-वर्णके लोगोंके साथ घृणाभावके कारण रोटी-बेटी व्यवहार नहीं करते, परन्तु यह भ्रान्त धारणा है। जिस आर्यशास्त्रमें भोजनसे पहले घर आये हुए चाण्डालको भी बिना उसकी जाति पूछे, नारायण समझकर भोजन करानेके बाद स्वयं भोजन करना नृयज्ञरूपसे गृहस्थके लिये परमपवित्र अवश्य अनुष्ठेय-धर्म बताया गया है, वह शास्त्र घृणा या द्वेषपर आधारित हो नहीं सकता। इसके मूलमें गूढ़विज्ञान है। प्रत्येक नर-नारीमें अपने अपने वर्णानुसार पृथक् पृथक् शक्ति होती है और वह स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरोंमें व्याप्त रहती है। उसको पृथक् बनाये रखनेसे ही प्रत्येक वर्णका मनुष्य अपने-जातिगत संस्कारोंके अनुसार पूर्ण उन्नति लाभ कर सकता है। एकशक्तिका अन्यशक्तिके साथ संकर कर देनेसे दोनों शक्तियाँ दुर्बल होकर कोई अपनी उन्नति करनेमें समर्थ नहीं हो सकेगी। ब्राह्मणवर्ण-में जो नैसर्गिकशक्ति है, वह ज्ञानप्रधान तपोमूलक है। ब्राह्मणके लिये धनसंग्रह धर्म नहीं है। तपोधन होना ही उनकेलिये धर्म है। अपमानका बदला न चुकाकर क्षमाशील तथा सहनशील होना धर्म है। वैश्योंके लिये वाणिज्यादि द्वारा प्रचुरधन संग्रहकरना धर्म है। क्षत्रियोंके लिये अपमान सहन न करके शत्रुके प्रतिहिंसा करना धर्म है और शूद्रोंके लिये कलाकौशलकी उन्नतिकर देश तथा जातिको स्थूल सुख पहुँचाना धर्म है। ब्राह्मण यदि अपनी जातिमें रोटी-बेटीका सम्बन्ध न कर वैश्यके साथ करेगा, तो ब्राह्मणत्वसे गिरकर उसकी धन-लालसा बढ़ जायगी! वह तपोधन, ज्ञानधन न रहकर जगत्को आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेमें असमर्थ हो जायगा। वह यदि क्षत्रियके साथ मिल जायगा, तो क्षमा, दया आदि वृत्तियोंको खोकर जिघांसा जैसी क्षात्रवृत्तियोंमें फँस जायगा। वैश्यभी ब्राह्मणके साथ एकाकार होनेपर वाणिज्य कुशलतासे हाथ धो बैठेगा और देश भिखारियोंसे भर जायगा। क्षत्रिय क्षमाशील ब्राह्मणोंसे मिलकर देशरक्षाके लिये शत्रुओं से लड़ना भूल जायगा, जिससे देश पराधीन हो जायगा। शूद्रभी ब्राह्मणोंमें सम्बन्धकर कला-कौशलमें पारदर्शी नहीं हो सकेगा। इसप्रकार शक्ति-संघर्षसे मनुष्योंके स्वाभाविक कर्मोंका रूपान्तर होकर कोई भी जाति अपनी जातिगत पूर्ण उन्नति नहीं कर सकेगी। आर्यजातिमें कोई पूर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं रह जायगा। सभी जातियाँ कर्त्तव्यभ्रष्ट होकर दीन-हीन हो जायँगी। यही कारण है कि, प्राचीन महर्षियोंने दैनिक सदाचारोंमें रोटी-बेटी सम्बन्ध वर्णभेदानुसार पृथक् रखनेकी व्यवस्था दी है, जिससे प्रत्येकवर्ण अपने नैसर्गिक जातिगत-संस्कार और मौलिक शक्तिको पुष्ट और पूर्ण बनाकर अपने वर्णमें आदर्श पुरुषोंको निर्माण कर सके। इससे स्पष्ट है कि, चारों वर्णोंमें रोटी-बेटी व्यवहार पृथक् रखना विज्ञानानुकूल है। इसमें घृणा या द्वेषके लिये कोई स्थान नहीं है। आर्योंके अन्यान्य आचारोंमें भी इसी तरह विज्ञानका आधार सन्निहित है। दृष्टान्तकेलिये यहाँ

कुछ आचारोंका उल्लेख करदेना उचित जान पड़ता है।

शास्त्रकी आज्ञा है कि, हाथ, पाँव और मुहँ धोकर उत्तरीय-(दुपट्टे)से शरीरको आवृत करके भोजन करे। इसका तात्पर्य यह है कि, भोजनके समय पाकयन्त्रमे क्रिया उत्पन्न होकर जो शक्ति उद्भूत होती है, वह शरीरमें ही बनी रहनेसे परिपाक-क्रिया उत्तम होती है। हाथ, पाँव, मुँह, शक्तिके निकलनेके स्थान हैं। उनके आर्द्र रहने और वस्त्र ओढ़े रहनेसे वह शक्ति शरीरमें ही बनी रहेगी और पाकक्रिया अच्छी होनेसे स्वास्थ्यरक्षा और आयुकी वृद्धि होगी। हाथ, सिर और केश वैद्युतिक शक्तिके प्रवेश तथा निर्गमके स्थान हैं। इनको एक साथ मिलाकर घर्षण करनेसे शक्तिक्षयकी आशङ्का रहती है। इसीसे मनु भगवान् आज्ञा देते हैं कि, दोनों हाथोंसे सिर न खुजलावे। दूसरोंके वस्त्र तथा जूते न पहनने-की आज्ञामें यह विज्ञान है कि एककी व्याधि दूसरेमें संक्रमित न हो। अंगुलियोंके अग्रोंके द्वारा विद्युतशक्तिका प्रवेश तथा निर्गम होता है। इसलिये वृक्षके फल-फूलों और नक्षत्रोंको अंगुलियोंसे दिखाने-का निषेध किया है। इससे अपने शरीरसे निर्गत-विद्युतशक्तिके तेजसे फल-फूल सूख जायँगे और नक्षत्रोंमें वैद्युतिकशक्तिके अधिक होनेसे वे हमारी शक्तिको आकृष्ट कर लेंगे, जिससे शरीरमें दुर्बलता आ जायगी। गुरुजनकी चरणवन्दनाका भी यही रहस्य है कि, इससे गुरुजनकी अमोघशक्तिका अंश प्रणाम करनेवाले को मिल जाता है और वह आयु, विद्या, यश और बल प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। इसीतरह महर्षियोंके आज्ञापित प्रत्येक आचारके मूलमें वैज्ञानिक तथ्य भरा हुआ है। बुद्धिमान् पुरुषोंको सूक्ष्मबुद्धिसे इसका अनुभव कर सदाचार-पालनमें तत्पर हो जाना चाहिये। यह प्रथम तथा परमधर्म है और इस एकही धर्मके पालनसे मनुष्यके दोनों लोक बन सकते हैं। जो सदाचारोंमें आस्था नहीं रखता, उसमें और पशुमें भेदही क्या रह जाता है? सदाचारकी उपेक्षा करनेसे आजकलके नेताओंका कैसा पतन हो रहा है, यह तो प्रत्यक्ष ही है। उनको उचित है कि, सदाचारकी उपेक्षा न करें और जिन शास्त्रोंमें सदाचारोंका वर्णन है, उनको पढ़नेका कष्ट उठावें। इसीसे उनके शासनकी असफलता, सफलता-में परिणत हो सकती है। उन्हें साहित्यद्वारा यह संस्था सहायता करनेको सदा प्रस्तुत है।

दैवीचमत्कार।

लेखक :—हनूमान शर्मा

उदयसिंह! क्या तू जाता है? लक्षण तो ऐसेही प्रतीत होते हैं। आँखें बैठ गईं, मुखाकृति बिगड़ गई, नाड़ीका कुछ पताही नहीं, हाथ-पाँव ठंडे हो गये, जानेमें अब शेषही क्या रहा? डाक्टरको आते आज पाँच दिन हो गये, कुछभी लाभ नहीं हुआ। वैद्य कहते हैं कि चन्द्रोदय दिया जाय तोअच्छा हो, परन्तु डाक्टर मना कर गया है कि 'दवा दी जायगी तो यह मर जायगा'। अब क्या किया जाय? भग-वत्कृपाके सिवा अब कोई उपाय ही नहीं। इस प्रकार भय, चिंता, उद्वेग और धैर्यके चौराहेमें भटकते

हुए मुकुन्दसिंह एक तख्तेपर लेट गये और थोड़ी देरके लिए उनकी आँखें लग गईं।

चौमूँसे पश्चिममें तीन मील पर टाँकरड़ा एक क्षुद्र गाँव है। उसके अधिपति ठाकुर मुकुन्दसिंह साधारण श्रेणीके जागीरदार हैं। परंपरागत परिस्थिति अच्छी है। आपकी धर्मपत्नी बी० ए० एम० ए० नहीं—भगवद्गीता और मानसरामायण आदि पढ़ीं हैं। प्रातः बड़े सबेरे शौचस्नानादिसे निवृत होकर पूजा करती और भगवन्नामके जप करती हैं। आपके उदरसे चार पुत्र उत्पन्न हुए; उनमें बड़ा उदयसिंह मरणोन्मुख (बीमार) है। ठाकुरोंके हितैषी चिंताग्रस्त हो रहे हैं। किसीने भोजन भी नहीं किया है।

अर्धरात्रि व्यतीत हो गयी है, सवेरेके तीन बज गये हैं, ठाकुर अर्धसुप्त अवस्थाके स्वप्नमें देख रहे हैं कि, भगवान् रघुनाथजीके मन्दिरमें दो संन्यासी खड़े हैं, अवस्था उनकी युवा है, और मुखमण्डल प्रकाशमान है। दोनों भव्यमूर्ति हैं, मानो अश्विनी-कुमार हों, उनके समीपमें उदयसिंह भी मौजूद है। उसके अस्त हुए चेहरेको देखकर संन्यासियोंने औषध देनेका निश्चय किया, किन्तु सोये हुए मुकुन्दने स्वप्नमें साधुओंसे कहा कि महाराज! उदयसिंहको औषध देनेके लिए डाक्टर मनाकर गया है और कह गया है कि दवा दे दी जायगी तो यह मर जायगा, अतः आप क्षमा करें।

ठाकुरके कथनको सुनकर संन्यासियोंने कहा, कि, हमभी—यही देखना चाहते हैं कि, इसकी मृत्यु कैसे आती है—यह कहकर औषध पिला दी। ठाकुर घबड़ा गए, उनकी निद्रा उड़ गई, साथही संन्यासी भी अदृश्य हो गये, ठाकुरने सोचा कि बच्चेको देखना चाहिये मर गया या जीवित है। यह सोचते हुये मुकुन्द उदयके समीपउ पस्थित हुए, क्या देखते हैं कि मरणोन्मुख उदयका चेहरा प्रकाशित हो रहा है। आँखें खुल गयी हैं, करवटभी बदल रहा है और कुछ कहनाभी चाहता है। इस आशाजनक दृश्यको देखकर मुकुन्दके हितैषी हर्षित हो गये और ठाकुरोंके स्वप्नकी सब बातें प्रत्यक्ष देखनेमें आ गयी।

टाँकरड़ामें रघुनाथजीका एक मन्दिर है, भगवान्की मूर्ति सुन्दर और चमत्कारी है। वह अकेले हैं, वामांग खाली है, उसमें जानकी नहीं हैं, भक्तोंने एक दोबार प्रतिष्ठित भी की तो रही नहीं, अलक्षित हो गयी। मानों अयोध्या आये पीछेके त्यागका स्मरण हो। अस्तु, विजयादशमीकी रात्रिमें वहाँ रामलीला होती है, दूर दूरके सैकड़ों दर्शक आते हैं और दूसरे दिन महाप्रसाद करके चले जाते हैं। नित्यकी सेवा, पूजा, भोगराग और व्रतोत्सवादिके खर्चका कोई स्थायी या नियत प्रबन्ध नहीं है। रघुनाथजीकी कृपासे ही सब काम यथोचित सम्पन्न होते हैं और उसीसे भक्तोंकी इच्छा पूर्ण होती है। यह घटना संवत् १९९६ के श्रावणकी है और अक्षरशः सत्य है।

नारीकी महत्ता।

(ले० श्रीमहेश्वरप्रसाद)

यह वसुन्धरा, जिसपर हम निवास करते हैं, एक चतुर चित्रकार की बनायी हुई है। पर्वतोंके ऊँचे-ऊँचे शिखर, बड़ी-बड़ी गुफायें, लम्बी-लम्बी नदियाँ, वेगपूर्ण जल-प्रपात, अगाध समुद्र, विशाल द्रुम आदि कितनी ही वस्तुएँ, जिन्हें देख हमारी आँखें चौंधिया जाती हैं, एकमात्र उसीकी रची हैं। सुन्दर एवं सुगन्धित मुकुलित सुमन, मनोहर लतिकाएँ, शीतल एवं स्निग्ध जल, सुखद समीर तथा अनन्त नीलम आकाशका प्रादुर्भाव उसीने किया है। पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, अनेक वारिचर आदि चौरासी लाख योनियोंका आविर्भाव उसीके द्वारा हुआ है और सबसे विशेष बात तो यह है कि एक इसी वसुन्धराकी कौन चलावे, उसने तो ऐसी-ऐसी असंख्य वसुन्धराएँ बनायी हैं। सात नीचे, सात ऊपर ये चौदह भुवन उसीके बनाये हैं और बनाए हैं उसीने चन्द्र-लोक, सूर्य-लोक, गो-लोक, साकेत-लोक, इन्द्र-लोक, ब्रह्म-लोक, शिवलोक तथा वैकुण्ठ। चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, नक्षत्रगण तथा सूर्य और पृथ्वीसे भी कई लाख गुने बड़े अपरिमित तारे और उनके मण्डल, जिनका हमें पता नहीं है, उसीके बनाये हैं। इस प्रकार अणु-परमाणुसे लेकर विस्तृत अन्तरिक्ष तक सर्वत्र उसी चतुर चित्रकारका जलवा दीख रहा है। जब दर्शनभी उसे समझनेमें असमर्थ होता है तो मनही मन कराह उठता है—

"केशव कहि न जाय का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति
समुझि मनहिं मन रहिये"॥

उस चतुर चित्रकारकी तूलिका भी विश्वके विस्तृत-क्षेत्रमें सर्वत्र खुशी-खुशी चलती रही है। एक रचना कर लेने पर उसकी दूसरी रचना स्वभावतः सुन्दर और श्रेष्ठ हो गई है। श्रेणियोंकी विभिन्नता उसकी कारीगरी की विशेषता है। सुन्दरसे सुन्दर और कुरूपसे कुरूप, कोमलसे कोमल और कठिनसे कठिन, छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा, सभी चित्रोंमें उसकी एक विलगकी छाप है और उसकी एक विलगकी विशेषता मालूम पड़ती है। एक 'ब्लाक'से एकही चित्र तैयार किया गया हो। तब तनिक ख्याल कीजिये उस अपूर्व कुबेरके भण्डारको और उस अद्वितीय कलाकार चित्रकारको। तरह-तरहके पदार्थ और तरह तरहके रूप-रंग मानो जो एकबार बन चुका वैसा न कभी बना है न कभी बन ही सकता है। ऐसा लगता है कि उसके घरमें साँचेकी कमी ही नहीं है। जब जो भाता है वही वह चट बना देता है, उरेह देता है। हमें समझते या कहते देर लग सकती है पर उसे फोटो खींचते देर नहीं होती। उसकी यह कला कुछ संकल्पके ही अनुरूप हो गयी है। चित्रकारके मनमें संकल्पका उठना है कि चित्रका बनाना है। लेकिन इन नानाप्रकारकी रंग-विरंगी तस्वीरोंका निर्माण करते करते ऐसे महान् चित्रकार-की भी कलम आकर मानवपर रुक गयी है। मानवकी रचना कर लेने पर मानो उस चित्रकारको अपनी धरोहर मिल गयी है। मानव-रचनाके पश्चात् उसे उतनी ही खुशी हुई है जितनी भागवत-रचनाके पश्चात् व्यासको हुई थी। अतः मानवकी तस्वीर बनाकर एक प्रकारसे वह परम सन्तुष्ट हो गया है। मानव उस चित्रकारकी आखिरी कारीगरी है

और सृष्टिका एकही बानगी है। उसमें जो गुण, जो विद्या, जो बुद्धि, जो सौन्दर्य, जो कला, जो शक्ति, जो प्रतिभा एवं जो विभूति उसने भरी है, वह अन्यत्र कहीं नहीं। इसीसे बार-बार आवाज उठी है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत तेही॥

× × × ×

सब मम प्रिय सब मम उपजाये।
सबते अधिक मनुज मोहि भाये॥

× × × ×

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सद्ग्रंथनि गावा॥

× × × ×

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत हेतु बिनु ईस सनेही॥

समस्त विश्वका प्रतिनिधि मानव दो बड़े टुकड़ोंमें विभक्त है। उसका एक टुकड़ा है नारी तथा दूसरा पुरुष। सृष्टिके उक्त दोनों टुकड़े प्रधान तथा अनिवार्य हैं। एकके बिना एक नहीं चल सकता। फिरभी नारीसे पुरुषका कोई मिलान नहीं, कोई तुलना नहीं। नारी दूसरी चीज है और पुरुष दूसरा। पुरुषकी अपेक्षा नारी अत्यधिक बड़ी है। नारी विश्वकी विराट् शक्ति है। कहते हैं पुरुषसे पहले सृष्टिमें उसीका आगमन हुआ था। कारणतः समाजका ही नहीं, इस निखिलब्रह्माण्ड, इस अखिलभुवन और समस्त ब्रह्माण्डकटाहका महत्वपूर्ण अंग है नारी। उसीके बलपर सारा संसार चल रहा है। पुरुषने आजतक जो कुछ किया है, उन सबका श्रेय नारीको है। नारीने समय-समयपर पुरुषमें वह शक्ति तथा प्रेरणा भरी है जिसके प्रतापसे पुरुषने अपना नाम सार्थक किया है। ध्रुवने यदि भक्तोंमें अग्रगण्य होकर उच्चासन प्राप्त किया है तो उसका श्रेय सीधे माता सुनीतिको है। दशरथ यदि देवासुर-संग्राममें विजयी हुए हैं तो उस विजयका मूल कारण रथकी धुरीमें हाथ लगानेवाली वीर क्षत्राणी कैकेयी ही है। कालिदासके अगाध पाण्डित्यकी देन—विद्योत्तमाको कदापि हम भूल ही नहीं सकते। कृष्णका महाभारत और रामका संग्राम, द्रौपदी और सीताको लेकर क्रमशः प्रज्वलित है। और तो और, तुलसी अलौकिक भक्त तथा अनुपम कवि कैसे हुए, किसे ज्ञात नहीं। रत्नावलीके निम्न व्यंग्यमें भी तुलसीके हितकी कितनी बड़ी बात निहित थी।

हाड़ माँसकी देह मम, तामें इतनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम प्रति, अवस मिटति भवभीति॥

आश्चर्य तो यह है कि ऐसी प्रबला नारी अबलाके रहस्यमय नामसे चिरकालसे हमारे बीच प्रतिष्ठित है। कहनेको नारी अबला है तो सही, किन्तु उसके उसी सुदृढ़ नाममें बड़ी भारी तेजस्विता है। जहाँ वह अपना जरा-सा दृष्टिकोण बदलती है और अपनी 'बहनका' आवाहन करती है कि उसका स्वरूप साक्षात् चण्डी-सा हो जाता है। उस समय तो, बस एक साधारण सी अबलाभी ऐसा प्रबल पुरुषार्थकर दिखाती है, जिसे देख पुरुष प्रबल दाँतोंतले उँगली दबा लेता है। दूर न जाइये। अभीहालकी बात है कि रानी संयुक्ता, रानी पद्मिनी, पन्नाबाई, रानी दुर्गावती, चाँद बीबी सुलताना, ताराबाई, तथा अहल्याबाईने उन-उन कार्योंको कर दिखाया है जिसे स्मरणकर हमारे पैरोंतले पृथ्वी खिसक जाती है।

इन सबसे प्रधान वीरांगना महारानीजी लक्ष्मीबाई को तो कदाचित् हम भूल ही नहीं सकते, जिनके प्रतापसे कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहानकी भी लेखनी धन्य हो गयी है। अबलाकी वह मरदानगी स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है !!

"खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी"।

अबलाकी मरदानगीके अनन्तर उसका निर्बलताका भी थोड़ा निरीक्षण कीजिये। अबलाकी निर्बलता है उसकी 'हाय'। यह हाय जब अबलाके निःश्वासोंसे प्रस्फुटित होती है तो उसके स्पर्शमात्रसे प्रबलसे प्रबल पुरुषके अत्याचार, पाप तथा पुरुषार्थ भस्म हो जाते हैं। 'अशोकोंमें सशोका मैथिली'की आहोंसे स्वर्णमयी नगरी लंका जलकर राख बन गयी थी। पाण्डवकी प्रिया सती द्रौपदीके करुण-क्रन्दनसे महाभारतमें अठारह अक्षौहिणी सेनाका संहार हो गया था। सावित्री अपने पति सत्यवान्के वियोगमें जब विलाप करनेको तुल बैठी थी तो रामराजका भी हृदय हिल गया था। रोहिताश्वकी मृत्युके पश्चात् शैव्या विलखती हुई आँचलका टुकड़ा फाड़ रही थी। क्या उस समय श्रीहरिको नहीं आना पड़ा था ? इस प्रकार जब जब अबलाओंने अपनी निर्बल आहें छोड़ी हैं तब तब उससे समस्त चराचर, समस्त ब्रह्माण्डकटाह काँप उठा है। निष्कर्ष यह निकलता है कि अबलाकी निर्बलतामें भी वह शक्ति भरी है जो रावणादि जैसे बली पुरुषोंको कौन कहे, विश्वके सूत्रधार उस परमपुरुषको भी प्रकम्पित करनेकी क्षमता रखती है। आप कहेंगे अबलामें वस्तुतः है क्या ? उत्तरमें निवेदन है कि अबलामें उसका निजधन नारीत्व ही जो पुरुषमें नहीं है और जिसके लिये पुरुष सदासे प्रयत्नशील है। इसी लक्ष्यकर ंिवगने लिखा है :—

The ultimate destiny of man is to become a woman.

अर्थात् पुरुषका चरम विकास नारी होना है। नारीका नारीत्व बड़ा व्यापक शब्द है। उसमें साधारणतः दीनता, हीनता, सेवा, त्याग, प्रेम, नेम, लज्जा, भय, दया, करुणा, सहृदयता, भावप्रवणता, कोमलता, मधुरता प्रभृति उच्च तथा आदर्शगुणोंका पर्यवसान हुआ है। उन्हीं आदर्श-विभूतियोंको अपनाकर नारी नारी होती है और पुरुषसे आगे बढ़ती है। कहा भी जाता है कि नारीके गुण यदि पुरुष प्राप्त कर लें तो सोनेमें सुगन्ध आ जाय। उसके विपरीत यदि पुरुषोंके गुण नारी धारण कर ले तो वह अपने नारीत्वसे च्युत हो जाय। विश्लेषण स्पष्ट है कि नारी पुरुषकी अपेक्षा अधिक जिम्मेदारी रखती है। फिर यह मानी हुई बात है कि अधिक जिम्मेदारी रखनेवाला व्यक्ति अधिक बड़ा होता है। 'रामते अधिक रामका दासा' और 'हरि'से बढ़कर 'हरिजन' जो माने गये उसका प्रधान कारण यही न है कि 'हरिजन हरि ही देत' और—

राम सिन्धु, घन सज्जन धीरा।
चन्दन तरु हरि, संत समीरा॥

पुरुष-जीवन तो उद्दण्डताका जीवन है, जिसके सम्बन्धमें नारदने स्पष्टशब्दोंमें कहा था—'परम स्वतन्त्र न सिर पर कोई।' नारी-जीवन या अबलाका जीवन ठीक उसके उलटा अनुदण्डताका जीवन है, परतन्त्रताका जीवन है, पुरुषत्वकी आतन्त्रता और स्वयंकी नारीत्वकी आतन्त्रता। पुरुषकी अधीनता न हो तो न सही; मगर नारीको निजकी अधीनता जो उसका नारीत्व है, स्वीकार करनी ही पड़ेगी। नारी स्वयंके घेरेमें घिरी पिञ्जरबद्ध पक्षी है जिसके लालन-पालनमें गणिका जैसी पापात्मा भी परम

शान्तिको प्राप्त करती है। यही कारण था कि जनकनन्दिनीके नारीत्वका घेरा जङ्गलमें भी न छूटा। जहाँ तनिक 'रेख लाँघि सिय बाहर आई' कि चट रावण उन्हें लेकर चम्पत होता बना। आगे चलकर अपनी भूलको उन्हीं सीताने 'तृन धरि ओट' आदिके द्वारा सुधारनेकी चेष्टा की है। बहुत पहलेसे त्रिकालदर्शी ऋषियोंने घोषणा की है—

"भर्तृभ्रातृपितृज्ञातिगुरु स्वसुरदेवरैः।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः"॥

इतना ही तक नहीं—(All women were endowed for all times) बात यह है कि नारीको फूँक फूँककर कदम रखनेकी जरूरत पड़ती है। उसे इतनी सावधानीसे चलनेकी जरूरत होती है कि कहीं उसके पैर न फिसल जाँय। वैसी स्थितिमें दुनियाँ उसे क्या कहेगी, इसकी चिन्ता बराबर नारीको रखनी होती है। क्या कारण है कि कवियोंने नारीकी चाल पर ही 'गजगामिनी' 'हंसगामिनी' आदिका विशेषण वार दिया है। निकटसे ही हाथी निकल जाता है, हमें उसकी तनिक आहट भी नहीं मिलती और दूरसे ही घोड़ेके टापकी आवाज हमारा कान फाड़ देती है। कारण स्पष्ट है। हाथीकी विशालताके साथ उसकी बड़ाई सिर्फ उसकी चालमें है और लगभग सभीकी महानता अपनी अपनी चालमें है। जिसकी चाल जितनी ही सुन्दर है, जिसका आचरण जितना ही पुनीत है, वह उतनाही बड़ा है, महान् है। उस परम चित्रकारकी लीलाभी बड़ी विचित्र है। ताड़के पेड़में, जिसकी छायामें जानेकी सम्भावना किसीको नहीं है—बड़े-बड़े फल लगाये हैं। बट तथा पीपलके पेड़में जहाँ मनुष्य प्रायः विश्राम लिया करते हैं, छोटे-छोटे फल लगा दिये हैं। यही है बड़ोंकी बड़ी बात, जो बड़ी मुश्किलसे समझमें आती है। कदाचित् हम समझ नहीं पाते तो झट भूल मान लेते हैं। पर तारीफ यह कि उसेभी कहनेकी क्षमता हममें नहीं। लाचारी है कि—

को कहि सके बड़न सों, लखै बड़ी ही भूल।
दीने दई गुलाबको, इन डारन ये फूल॥

खैर, भारतीय नारी-जीवन—विशेषतः हिन्दू अबला जीवनका मतलब है—तपस्याका जीवन, व्रतका जीवन. वह पुनीत और पावन जीवन जिसका अन्यदेशवाले विजातीय स्वप्न देखा करते हैं। भारतीय हिन्दूरमणीका अबला-जीवन कर्त्तव्यके कठोर पाबन्दियोंमें जकड़ा हुआ है। दुःख, चिन्ता और अवसादका गट्ठर तो उसके सिरसे एकक्षणके लिये भी पृथक् नहीं हो पाता। आये दिन नानाप्रकारके विषाद और तरह तरहकी आपत्तियाँ यहाँ अबलाकी परीक्षा लेनेके लिये आती हैं और उसका हृदय सहलाकर चली जाती हैं। इस अपार पीड़ा तथा व्यथाको अबला सबलाकी तरह नित्यप्रति झेलती है और जीवन-संग्रामके विस्तृत आँगनमें डटकर अग्रसर होती है। उसका अबलापन उन आपत्तियोंको आसानी पूर्वक पचा लेता है। अबलाकी अध्यवसाय-शक्ति सर्वथा उसकेलिए उपयुक्त होती है। पुरुष उस महाप्रलयको भी नहीं पाता, पचाना तो दूर रहा। जहाँ पुरुषने पीड़ाका घूँट मुहँसे लगाया कि हृदयमें आग लग जाती है, उसका सारा शरीर ही खौखला उठता है। जबतक पुरुष अपने उस खौखलाहटका परित्याग नहीं कर देता तब तक अबला-नारी उससे बहुत आगे है। इतना आगे कि वह उसे स्पर्श नहीं कर सकता। जबतक शंकर भगवान् विषको कंठमें ही भयके मारे रखते हैं तबतक भक्तिमती मीरा उसे—

करि चरणामृत पी गयी लेकर हरिका नाम।

श्रीभगवद्गीता

हिन्दी पद्यानुवाद

श्रीमोहन वैरागी

[गताङ्कसे आगे]

(२५)

और कहा हे पार्थ लखो ये खड़े समरमें कौरववीर ।
लड़नेको उत्सुक हैं सारे मरनेको हो रहे अधीर ॥

(२६)

केशवके ऐसा कहने पर लखा पार्थने दोनों सैन्य ।
सभी ओर आत्मीय-स्वजन थे सुहृद् सखा सन्मित्र अनन्य ॥

(२७)

चाचा ताऊ और पितामह पूजनीय आचार्य अवध्य ।
मामा भ्रातृ-पुत्र पौत्रादिक सम्बन्धी सब थे रणमध्य ॥

(२८)

यों सब स्वजन सामने लखकर हुआ धनञ्जयको अवसाद ।
शोकाकुल होकर केशवसे कहने लगे पार्थ सविषाद ॥

अर्जुनने कहा—

(२९)

लखकर इन आत्मीय स्वजनको शिथिल हो रहा मेरा गात ।
काँप रहा तनु सूख रहा मुख भ्रान्ति हो रही मुझको तात ॥

(३०)

फिसल रहा गाण्डीव हाथसे हाय ! जल रही त्वचा अपार ।
शक्ति न मुझमें स्थिर रहनेकी अहो ! विकृत हो रहे विचार ॥

(३१)

लक्षण सब विपरीत देखता—रणमें इन स्वजनोंके प्राण ।
लेकर हे गोविन्द मुझे तो नहीं देख पड़ता कल्याण ॥

(३२)

नहीं चाहिये केशव मुझको विजय तथा पृथ्वीका राज्य ।
क्या होगा ऐसे जीवनसे क्या होगा यह सुख साम्राज्य ॥

(क्रमशः)

कर्ममीमांसादर्शन ।

[गतांकसे आगे]

पञ्चकोषसे पूर्ण मनुष्यकी और भी विशेषता कह रहे हैं—

वह पिण्डेश्वर है ॥ १७६ ॥

उद्भिज्जादि सहज-पिण्डके जीव कदापि पिण्डेश्वर नहीं हो सकते, क्योंकि वे असम्पूर्ण रहते हैं। उनमें यथाक्रम एक-एक कोषका अधिक विकास होता रहता है, जैसा कि पहले कहा गया है। वस्तुतः उनमें पाँचों कोष बने तो रहते हैं, क्योंकि सब जीवों-में सब कोषोंके तथा सब इन्द्रियोंके लक्षण विद्यमान रहते हैं। परन्तु उनमें जैसे पहले कहा गया है, यथाक्रम कोषोंकी असम्पूर्णता अवश्य रहती है। इस कारण वे असम्पूर्ण पिण्डके अधिकारी होनेसे अपने अपने पिण्डके अधीश्वर नहीं हो सकते। मानव-पिण्ड सब प्रकारसे पूर्ण होनेके कारण मानव-पिण्डका जीव अवश्य ही पिण्डेश्वर कहा जा सकता है। विशेषतः मनुष्यसे ही देवता आदि बनते हैं, मनुष्य ही मुक्तिका अधिकारी होता है, इस कारण मनुष्यके पिण्डेश्वर होनेमें सन्देह ही क्या है ॥१७६॥

और भी महिमा कही जाती है :—

इस कारण इसमें ऐशी शक्तियोंका विकास होता है ॥ १७७ ॥

मानवपिण्डकी पहले विशेषता कहकर उसके अनन्तर आधिभौतिक विशेषतारूप पिण्डेश्वरत्व वर्णन करके अब आधिदैविक विशेषताका वर्णन किया जाता है। मनुष्य-शरीरमें तप और योगबल द्वारा नाना दैवी तथा ऐशी शक्तियोंका विकास हो सकता है। परकायाप्रवेश, दूरश्रवण, दूरदर्शन आदि दैवी-शक्तियों तथा अणिमा, लघिमा आदि ऐशी विभूतियोंका उसमें विकास होता है। वस्तुतः मनुष्यशरीर अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत और सहज इन चारों श्रेणियोंकी सिद्धियोंका विकासस्थल है, इसमें सन्देह नहीं। यह उसका विशेषत्व है। भगवान् पतञ्जलिने भी कहा है—

"जन्मसंस्कारमन्त्रौषधिसमाधिसिद्धयः"

जन्मसिद्धि, संस्कारसिद्धि, मन्त्रसिद्धि, औषधि-सिद्धि और समाधिसिद्धि इसप्रकार अनेक सिद्धियाँ हैं ॥ १७७ ॥

और भी कहा जा रहा है—

इसकारण मनुष्यशरीरमें निःश्रेयसाधिगम होता है ॥ १७८ ॥

अब आध्यात्मिक विशेषता कही जारही है कि, मानवपिण्डमें ही निःश्रेयसकी प्राप्ति होती है। मृत्यु-लोक कर्मभूमि है। मृत्युलोक चतुर्दशभुवनोंका केन्द्र है। मृत्युलोकमें ही मनुष्यत्वप्राप्तिके अनन्तर जीव देवता बनकर ऐशकर्मकी सहायतासे क्रमशः त्रिमूर्तिपद प्राप्त करके ब्रह्मीभूत हो जाता है, अथवा जैवकर्मकी सहायतासे शुक्लगतिद्वारा सूर्य्यमण्डल-भेदन करता हुआ मुक्त हो जाता है। सहजगति द्वारा तो मनुष्यशरीरमें ही जीव मुक्त हो सकता है, यह मानवपिण्डकी विशेष महिमा है ॥ १७८ ॥

पिण्डेश्वरोऽसौ ॥ १७६ ॥

अत ऐशीविकाशार्हत्वमस्य ॥ १७७ ॥

निःश्रेयसाधिगमश्च ॥ १७८ ॥

अन्य प्रकारका महत्त्व कहा जाता है :—

मनुष्यमें लौकिक और अलौकिक द्विविध शक्ति है ॥ १७९ ॥

मानवपिण्डकी यह एक और विलक्षणता है कि, इसमें लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकारकी शक्तियोंका विकास होता है। देवताओंका अधिकार मनुष्यसे बढ़कर होनेपर भी देवतागण यदि इस लोकके लौकिक कर्म करना चाहें, तो उनको यहाँके लौकिक केन्द्रके अवलम्बनसे करना पड़ेगा। उदाहरण-रूपसे समझ सकते हैं कि, वे यदि किसीको मारना चाहें, तो मेघस्थित वज्र द्वारा अथवा सर्पादिमें प्रेरणा करके उसके द्वारा मारना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि किसीका कल्याण करना चाहें, तो दूसरेके अथवा उसीके अन्तःकरणमें प्रेरणा करके करना होगा। देवतागण प्रकारान्तरसे मनुष्यके दर्शनेन्द्रियगोचर स्थूलशरीरके धारण कर लेनेपर भी वे स्थूलशरीरका सब यथावत् लौकिक कार्य्य नहीं कर सकते। परन्तु दूसरी ओर मनुष्यमें दोनों तरहकी योग्यता है। मनुष्य योगशक्तिद्वारा मारण, वशीकरण उच्चाटनादि कार्य्य भी कर सकता है और लौकिक रूपसे भी इन कार्यों-को कर सकता है। संयमद्वारा दैवकार्य्य भी कर सकता है और लौकिक पुरुषार्थद्वारा लौकिक कार्य्य भी कर सकता है ॥ १७६ ॥

और भी कहा जाता है :—

लौकिक अलौकिक प्रत्यक्ष भी है ॥ १८० ॥

एक यह और महत्त्व कहा जाता है। मनुष्यके नीचेकी योनियोंमें लौकिक प्रत्यक्षके उपयोगी दर्शनेन्द्रिय हैं। दूसरी ओर मनुष्यसे ऊपरकी जो देवता आदि योनियाँ हैं, उनमें अलौकिक दिव्य प्रत्यक्षके साधन हैं। परन्तु मनुष्यपिण्ड सब पिण्डोंका मध्यवर्त्ती होनेके कारण और मनुष्यका अधिकार स्वाधीनताके विचारसे सबसे बढ़कर होनेके कारण मनुष्यमें लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकारके प्रत्यक्ष करनेकी शक्ति विद्यमान है। मनुष्य साधारणतः अपने नेत्रगोलककी सहायतासे अथवा अणुवीक्षण दूरवीक्षण आदि यन्त्रोंकी सहायतासे बहुत कुछ स्थूल पदार्थोंको प्रत्यक्ष करता है। दूसरी ओर अपनी योगशक्ति द्वारा अपने तृतीय ज्ञाननेत्रको खोलकर अलौकिक प्रत्यक्षको यहाँ तक बढ़ा सकता है कि, सर्वातीत भगवान्‌का भी दर्शन कर सकता है। अलौकिक प्रत्यक्ष करनेकी युक्ति योगदर्शनमें और अलौकिक प्रत्यक्ष करनेका रहस्य और प्रमाण सांख्य-दर्शनमें भली प्रकारसे पूर्वाचार्योंने सिद्ध किया है ॥ १८० ॥

प्रसङ्गसे योनियों में आश्रयस्थल निर्णय किया जाता है :—

उद्भिज्जयोनि तथा मनुष्ययोनि जीवका आश्रयस्थल है ॥ १८१ ॥

सबप्रकारकी योनियोंमें यदि आश्रयका सम्बन्ध विचार किया जाय, तो यही कहा जायगा कि, उद्भिज्जयोनि और मनुष्ययोनि सब प्रकारकी योनियोंका आश्रयस्थल है। उद्भिज्जयोनिके आश्रयसे मृत्युलोककी अन्य सब योनियाँ जीवन धारण करती हैं। मृग उद्भिज्जके ही आत्मसमर्पणसे जीवित रहता

लौकिकयलौकिकी च शक्तिः ॥ १७९ ॥

लौकिकमलौकिकञ्च प्रत्यक्षम् ॥ १८० ॥

उद्भिन्मनुष्यौ जीवाश्रयौ ॥ १८१ ॥

है और उसी मृगके नाशसे व्याघ्र जीवित रहता है। मनुष्यपर्य्यन्त यावत् प्राणी मृत्युलोकमें स्थायी रहते हैं। मृत्युलोक उद्भिज्जकी सहायतासे स्थायी है। दूसरी ओर मनुष्यकी सहायतासे चतुर्दशभुवन सुरक्षित हैं। मनुष्ययोनि न हो तो मृत्युलोककी सुव्य-वस्था न हो। मनुष्ययोनि न हो तो प्रेतलोक, नरकलोक आदिकी आवश्यकता न हो और मनुष्यलोक न हो, तो उच्चदेवलोकोंका न सम्वर्द्धन हो; क्योंकि यज्ञद्वारा ही वे सम्वर्द्धित होते हैं और न उनकी अस्तित्व-रक्षा ही हो। क्योंकि मनुष्यसे ही वे देवता बनते हैं॥ १८१॥

इसका कारण कहा जाता है:—

अवधिके द्विविध होनेसे ॥ १८२ ॥

जीवभूत-प्रवाहकी दो परिधियाँ हैं। एक उद्भिज्ज और दूसरी मनुष्य। उद्भिज्जसे यह प्रवाह प्रारम्भ होता है और जीवन्मुक्तमें यह विलीन होता है। मुक्तावस्थाकी जितनी अवस्थाएँ हैं, वे मनुष्ययोनि-सापेक्ष हैं। दूसरी ओर जीवावस्थाका आरम्भ, जो चिज्जड़ग्रन्थिकी प्रथम सम्भावना है, उद्भिज्जयोनिसे सम्बन्ध रखता है। अतः ये दोनों योनियाँ जीवप्रवाहकी दो परिधियाँ हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ १८२॥

शंका-समाधान किया जाता है:—

जीवत्वका विकास उद्भिज्जमें होता है ॥१८३॥

यदि जिज्ञासुको यह शंका हो कि, जीवत्वकी प्रारम्भिक परिधि क्या उद्भिज्जके सिवाय और कुछ नहीं हो सकती? घटने-बढ़नेवाले और भी अनेक पदार्थ हैं, उनको क्यों नहीं परिधि मानी जाय? इत्यादि शंकाओंमें पूज्यपाद महर्षि-सूत्रकारने इस सूत्रका आविर्भाव किया है और यह निश्चय दिलाया है कि, उद्भिज्जसे ही जीवत्वका प्रारम्भ होता है। इसका कारण यह है कि, पञ्चकोष तथा ज्ञानेन्द्रियोंके विकासका लक्षण उद्भिज्जपिण्डमें ही प्रकाशित होता है। स्मृतिशास्त्रमें ही कहा है:—

"उष्णतो म्लायते वर्णं त्वक् फलं पुष्पमेव च।
म्लायते शीर्यते चाऽपि स्पर्शस्तेनाऽत्र विद्यते॥
वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते।
श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः॥
वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति।
न ह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति तस्मात्पश्यन्ति पादपाः॥
पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि।
अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः॥
पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनाञ्चापि दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियात्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे॥
वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्द्ध्वं जलमाददेत्।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः॥
सुखदुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात्।
जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते॥"

गर्मीके दिनोंमें गर्मी लगनेसे वृक्षोंके वर्ण, त्वचा, फल, पुष्प आदि मलिन तथा शीर्ण हो जाते हैं, अतः उद्भिज्जोंमें स्पर्शेन्द्रिय विद्यमान है। प्रबल वायु, अग्नि तथा वज्रके शब्दसे वृक्षोंसे फल पुष्प शीर्ण हो जाते हैं, कानके द्वारा शब्द सुननेसे ही ऐसा होता है, अतः उद्भिज्जोंमें श्रवणेन्द्रिय भी विद्यमान है। लता वृक्षोंको वेष्टन करती हुई सर्वत्र जाती है, आँखोंसे देखे बिना मार्गका निर्णय नहीं हो सकता, अतः

अवधेर्द्वैविध्यात् ॥ १८२ ॥

जीवत्वजनिरुद्भिदः ॥ १८३ ॥

उद्भिज्जोंमें दर्शनेन्द्रिय भी विद्यमान है। अच्छी बुरी गन्ध तथा नाना प्रकारके धूपोंकी गन्धसे वृक्ष नीरोग और पुष्पित होने लगते हैं, अतः उद्भिज्जोंमें घ्राणेन्द्रिय भी विद्यमान है। पाँवके द्वारा जलपान करना, रोग होना, तथा रोगका नाश होना भी उनमें देखा जाता है, अतः उद्भिज्जोंमें रसनेन्द्रियभी विद्यमान है। डण्ठीके मुखद्वारा जिसप्रकारसे कमल ऊपरकी ओर जल ग्रहण करता है, उसी प्रकार वायुसे संयुक्त होकर पाँवके द्वारा वृक्ष जलपान करता है, यही सब उद्भिज्जोंमें रसनेन्द्रियका अस्तित्व सिद्ध करता है। उद्भिज्जोंमें जो सुखदुःखके अनुभव करनेकी शक्ति देखनेमें आती है, टूट जानेपर पुनः नवीन शाखा-पत्रादिकी उत्पत्ति देखी जाती है, इससे उद्भिज्जोंमें जीवत्व है, अचैतन्य नहीं है, यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है ॥ १८३ ॥

विज्ञानको और भी पुष्ट कर रहे हैं :—

प्रस्तरादि धातुओंके परिणामो होनेपर भा उनमें जोवत्व नहीं है ॥ १८४ ॥

यदि यह शंका हो कि, प्रस्तरादि पदार्थोंको जब बढ़ते हुए देखा जाता है, तो क्यों नहीं उनमें जीवत्व होना मान सकते हैं? इस प्रकारकी शंकाओं-का समाधान यह है—कहीं बालूसे पत्थर बनता है, कहीं मिट्टीसे पत्थर बनता है, कहीं आग्नेय-पर्वतके प्रस्रवणसे गले हुये पदार्थ जो निकलते हैं, उनसे पत्थर बनता है और ये सब पत्थर क्रमशः बढ़ते हुये भी दिखाई पड़ते हैं। सोना, चाँदी आदि धातु, हीरा, माणिक आदि रत्न और हरिताल आदि उपधातु सब बढ़ते हुये दिखायी पड़ते हैं। परन्तु इस प्रकारका पदार्थोंका बनना और उनका बढ़ना जीवपिण्डके बढ़नेके सदृश नहीं होता है। इनमें परिणाम होकर ऐसा बढ़ना होता है। तड़ित्-शक्ति अथवा ऐसे ही प्रकृतिके स्थूलशक्तिविशेषकी तरंगोंके प्रभावसे इन पदार्थोंके निकटके परमाणु पंचतत्त्वोंकी सहायतासे उन पदार्थोंमें परमाणु बढ़ा देते हैं; इससे वे पदार्थ क्रमशः बढ़ते रहते हैं। मानवपिण्ड तथा सहजपिण्डादिमें जैसे प्राणमयकोष-की सहायतासे और अन्नकी सहायतासे अन्नमयकोष बढ़ता है, वैसा इन पदार्थोंमें नहीं होता है। विशेषतः जैसा ज्ञानेन्द्रियोंका लक्षण उद्भिज्जमें पाया जाता है, जैसा कि पहले कहा गया है, वैसा लक्षण प्रस्तरादि पदार्थोंमें कदापि नहीं पाया जाता। इस कारण प्रस्तरादिमें जीवत्वकी शंका युक्ति और विज्ञानविरुद्ध है। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि, उन पदार्थोंके समष्टिरूपसे अधिदैव अवश्य हैं। जिस प्रकार नदी-के, समुद्रके अधिदैव देवताविशेष होते हैं; ऐसे ही पर्वतविशेष, प्रस्तरविशेष, रत्नविशेष तथा धातुविशेषके अधिदैव देवता अलग अलग होते हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्डमें उनके सामञ्जस्यकी रक्षा करते हैं ॥ १८४ ॥

और भी कहा जाता है :—

अधिदैवके सम्बन्धसे उनका शक्तिमत्त्व है ॥ १८५ ॥

अब यदि प्रश्न हो कि, उनमें जीवत्व नहीं है, तो असाधारण शक्तियोंका विकास कैसे होता है? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान यह है कि जीवों-में तो असाधारण-शक्तियोंका विकास है, जैसा कि, पहले बहुत कुछ कहा गया है, परन्तु धातुसमूह,

परिणामित्वेऽपि न प्रस्तरादिषु ॥ १८४ ॥ तच्छक्तिमत्त्वमधिदैवसम्पर्कात् ॥ १८५ ॥

रत्नसमूह तथा नाना जड़भूतसमूहमें जो असाधारण शक्तियोंका विकास होता है, वह उन पदार्थोंके रक्षक अधिदैवोंकी सहायतासे हुआ करता है। उदाहरण-रूपसे समझ सकते हैं कि, जल, अग्नि, पर्वत आदि-के जो स्वाभाविक गुण हैं, वे तो स्वभावसे उत्पन्न हैं, परन्तु उनके द्वारा जो समय समयपर असाधारण शक्तियोंका विकास होता है, जैसे कि, वायुके द्वारा आँधी आदिकी उत्पत्ति, जलके द्वारा घोर जलस्राव-नादि कार्य्य, वे सब उन पदार्थोंसे सम्बन्धयुक्त अधि-दैवोंकी इच्छाशक्तिसे सम्बन्ध रखते हैं ॥ १८५ ॥

प्रसंगसे कहा जाता है :—

चराचरमें सप्तधातु स्थितिके कारण हैं ॥ १८६ ॥

सहजकर्मसे सम्बन्धयुक्त सप्तधातु, जो प्रकृतिके सहज सप्तविभागसम्भूत हैं, वे स्थूलसर्गकी स्थितिके कारण होते हैं। स्थावरमें सप्तधातु, यथा—सुवर्ण, लौह, आदि और जंगममें सप्तधातु, यथा—मांस, रक्तादि हैं। स्थावरमें सुवर्णादि सप्तधातु सर्वव्यापक हैं और उन्हींके परस्पर सम्मेलनसे अनेक उपधातु भी बनते हैं। सूक्ष्मदृष्टिसे यह अच्छी तरह देखनेमें आता है कि, पृथिवीके सब विभागोंमें और यहाँतक कि, पृथिवीके अन्तर्गत जलमें भी सुवर्णादि सप्त-धातुओंका सम्मेलन रहता है और ये ही सप्तधातु स्थावरपदार्थोंकी स्थितिके कारण प्रकारान्तरसे बनते हैं। जबतक प्रस्तरादिमें इन धातुओंका सम्बन्ध बना रहता है, तबतक प्रस्तरादिका अस्तित्व बना रहता है। चाहे पदार्थविद्याद्वारा उनकी प्रत्यक्ष-सिद्धि न भी हो, परन्तु सब स्थावरपदार्थोंमें सप्तधातु विद्यमान है, यह विज्ञानसिद्ध है। इन धातुओंके क्षयके साथही साथ प्रस्तरादिमें क्षय उत्पन्न होता है और उसके परमाणु बिखरकर नष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार मानवपिण्ड आदिमें रक्त, मांस, अस्थि आदि सप्तधातु उस पिण्डकी स्थितिके कारण होते हैं। यह तो आयुर्वेदशास्त्रसे सर्वथा सिद्ध है और यह भी सिद्ध है कि, जब सप्तधातुओंमें क्षय उत्पन्न होता है, तभी मनुष्यका शरीर क्षीण होने लगता है ; यहाँतक कि, सप्तधातुओंमेंसे एकका भी क्षय हो, तो शरीर नहीं रहता। जंगमके सप्त-धातुओंमेंसे और सब धातु स्त्री और पुरुषमें एकसे रहते हैं, केवल वीर्य्यके स्त्रियोंमें दो विभाग हो जाते हैं। इसी कारण आयुर्वेदाचार्योंका मत है कि, स्त्रियोंमें आठ धातु हैं। यथा—सृष्टि-उत्पादक रज तथा कान्ति और शक्तिवर्द्धक वीर्य, वस्तुत सप्तम धातुके ही ये दो भेद स्त्रीशरीरमें होते हैं ॥ १८६ ॥

दूसरा फल कहते हैं :—

उससे उभयत्र परिणाम होता है ॥१८७॥

सप्तधातुओंसे दूसरा फल क्या होता है, सो सहजकर्मके गतिनिदर्शनार्थ कहा जाता है। स्थावरमें और जंगममें उभयत्र परिणाम होना भी सप्तधातुओं-का ही कार्य्य है ॥१८७॥

इसका उदाहरण देते हैं :—

प्रस्तरादि स्थावरमें और जरादि जङ्गममें ॥ १८८ ॥

जब बालूसे अथवा मिट्टीसे पत्थर बनता है अथवा

चराचरे सप्तधातुस्थितिनिमित्तम् ॥ १८६ ॥

तेनोभयत्र परिणतिः ॥१८७॥

स्थावरे प्रस्तरादिकं जङ्गमे जरादिकम् ॥१८८॥

जब मिट्टीसे कङ्कर अथवा अन्य खनिज पदार्थ आदि बनते हैं, तो वे सब परिणाम पूर्वकथित सप्तधातुओंके ही हेरफेरसे हुआ करते हैं। दूसरी ओर जङ्गमपिण्डमें जो वृद्धत्व, स्थूलत्व, कृशत्व आदि परिणाम होता है, वह भी पूर्वकथित सप्तधातुओंके ही हेरफेरसे हुआ करता है ॥१८८॥

उसका प्रधानहेतु कहा जाता है :—

त्रिगुणके कारण ॥१८९॥

स्थावर और जंगममें इस प्रकार सप्तधातुओंके द्वारा जो परिणाम होता है, इस विषयमें यदि कोई शंका करे कि, इसका मौलिक कारण क्या है? सप्तधातु जब स्थितिके कारण हैं, तो उनके द्वारा परिणाम स्वतः क्यों होने लगता है? इस श्रेणीकी शंकाओंमें पूज्यपाद महर्षिसूत्रकारने इस सूत्रका आविर्भाव किया है। वस्तुतः सप्तधातुओंके द्वारा स्थावर और जंगममें जो जो परिणाम होता है, उसका मौलिक कारण प्रकृतिका त्रिगुण है। प्रकृतिके त्रिगुणमेसे जब एकके बाद दूसरा उदित होता है और ऐसा उदित होना स्वभावसिद्ध है, तो इसी गुणपरिणामके अनुसार धातुओंमें परिणाम होता है और धातुओंमें परिणाम होनेसे स्थावर-जङ्गमात्मक परिणाम होता रहता है ॥१८६॥

अब स्थूल कारण कहा जाता है :—

रयि और प्राणसे भी ॥१९०॥

त्रिगुणके द्वारा परिणामकी गति संसाधित अवश्य होती है। एक परमाणुसे लेकर एक ब्रह्माण्ड-पर्य्यन्त सबमें ही जो सृष्टि, स्थिति और लयकी क्रिया होती है, सबमें ही जो परिणामका क्रम देखनेमें आता है, उसका मौलिक कारण त्रिगुण है। परन्तु पदार्थकी स्थूलदशामें परिणामकी दो गतियाँ हो जाती हैं। एक ठीक अवस्थामें रखनेवाली और दूसरी रूपान्तर करके रक्षा करनेवाली। इस विज्ञानको और भी स्पष्ट करनेके लिये समझना उचित है कि, मनुष्यका शरीर उत्पन्न हुआ, यह रजोगुणका कार्य्य है। वह बना रहा, यह सत्त्वगुणका कार्य्य है और वह क्रमशः नाश हो गया, यह तमोगुणका कार्य्य है। पिण्डसृष्टिकी यावत् क्रियाओंपर विचार करनेसे अवश्य ही ये परिणाम पाये जायँगे। परन्तु पिण्डत्वकी अस्तित्वदशामें केवल दो शक्तियोंका प्राधान्य रहेगा, यह मानना ही पड़ेगा। वे ही दो शक्तियाँ रयि और प्राण हैं। यथा—श्रुतिमें कहा है :—

"तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते रयिं च प्राणं चेत्येतो मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति। आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तं चामूर्त्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः। मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन्। अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः। प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्त ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते"।

पूछनेपर उसने कहा,—प्रजाकी इच्छा करके प्रजापतिने तप किया, जिससे द्वन्द्वसृष्टि उत्पन्न हुई—एक रयि, दूसरा प्राण। इन दोनोंके सम्मेलनसे समस्त प्रजा उत्पन्न हुई। अतः यह बात सिद्ध हुई कि, रयि अर्थात् जड़वस्तु (Matter) और प्राण

त्रैगुण्यात् ॥१८९॥

रयिप्राणतश्च ॥१९०॥

अर्थात् सूक्ष्मशक्ति (Force) दोनोंकी ही उत्पत्ति प्राणसे होती है। श्रुतिमें अधिष्ठातृत्वभेदसे रयि और प्राणके साथ चन्द्रमा और सूर्यका सम्बन्ध बताया है। सूर्य शक्तिके अधिष्ठाता होनेसे प्राणरूप हैं और चन्द्र अन्नके पोषक होनेसे रयिरूप हैं। संसारमें मूर्त्त अमूर्त्त समस्त वस्तुएँ ही रयि हैं, अर्थात् जड़पदार्थके अन्तर्गत हैं। प्रजापति महीनाके स्वरूप हैं। उनके कृष्णपक्ष रयि और शुक्लपक्ष प्राणके स्वरूप हैं। इसलिये ऋषिगण दोनों पक्षोंमें ही यज्ञ करते हैं। प्रजापति दिवा और रात्रिके स्वरूप हैं। उनमें दिवा प्राणका स्वरूप और रात्रि रयिका स्वरूप है। इसलिये जो दिनमें स्त्रीसंसर्ग करता है, वह विनष्ट होता है और रात्रिमें ऋतुकालीन स्त्रीसंसर्ग करनेसे ब्रह्मचर्य पालन होता है।

कार्य्यब्रह्मके प्रत्येक अङ्गमे जा तीन गुणोंकी स्वतन्त्र साधारणक्रियाएँ होती हैं, वे ऐसी ही होती हैं, जैसा कि, पहले कहा गया है। यथा—एक ब्रह्माण्डकी अथवा पिण्डकी उत्पत्ति होना, उसकी पूर्णावस्थामें स्थिति रहना और पुनः उसका नाश हो जाना, ये तीनों क्रियाएँ तीनों गुणोंके अनुसार साधारणरूपसे होंगी। परन्तु एक पिण्ड अथवा ब्रह्माण्डकी आरम्भ-अवस्था और नाश-अवस्था सृष्टिवैभवप्रकाशके लिये अनुपयोगी है। उसके लिये केवल उस पिण्ड अथवा ब्रह्माण्डकी मध्यावस्था, जो पूर्ण अवस्था है, वही उपयोगी है। इसी पूर्णावस्थामें उसके अस्तित्वसंरक्षणके लिये प्रतिक्षण व्यापी जो स्थितिमूलक परिणामका कार्य्य है, उसमें रयि और प्राण ये ही दोनों उपयोगी हैं। प्रकारान्तर-से रयि स्वभावसे परिणामी भूतोंमें यथायोग्य परिणाम उत्पन्न करके उसकी रक्षा करता है और प्राण उनमें जीवनिका-शक्तिको उत्पन्न करके उसकी रक्षा करता है। इन्हीं दोनों क्रियाओंका अवलम्बन करके भक्तिमार्गके आचार्य्यगण कहते हैं कि, सृष्टि उत्पन्न होनेपर भगवान् ब्रह्माका कार्य्य समाप्त हो जाता है, परन्तु भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णुका कार्य्य चिरस्थायी रहता है। इसी वैज्ञानिक भित्तिपर पुराणोंने भगवान् ब्रह्माकी पूजाका वर्णन अधिक नहीं किया है। केवल उनकी शक्तिरूपिणी वेदमाताकी पूजा अधिक वर्णन की है। दूसरी ओर "एको देवः केशवो वा शिवो वा।" कहकर शिव और विष्णुकी पूजा प्रचारित की है। अतः रयि और प्राणका रहस्य सृष्टिके अस्तित्वके साथ मौलिकरूपसे विजड़ित है, इसमें सन्देह नहीं। रयिके समझानेके लिये अन्नका उदाहरण लेना उचित है। मनुष्यका अन्न वे ही पदार्थ हैं, जिनके खानेसे मनुष्य जीवित रह सकता है। वृक्षका अन्न वही है, जिसके आहारसे वृक्ष जीवित रहता है। अन्नका उदरस्थ होना, उसका पचन होना, उससे सब धातुओंका पोषण होना, ये सब परिणामजनक होनेपर भी रक्षामूलक हैं। प्राण उस शक्तिको कहते हैं, जिससे ब्रह्माण्ड और पिण्डका अस्तित्व यथावत् बना रहे। वस्तुतः जीवनिका-शक्ति ही प्राण है। प्राणसे रयि और रयिसे प्राणकी क्रियामें सहायता होती है। यह सहायता परिणामजनक है, परन्तु रक्षामूलक है ॥ १९० ॥

प्रसङ्गसे द्वन्द्व-विज्ञानकी विवृत्ति करते हैं :—

उद्भिदादि जीवनाशक भी और पोषक भी हैं ॥१९१॥

उद्भिदादयो नाशकाः पोषकाश्च ॥१९१॥

द्वन्द्व-क्रिया जिस प्रकार स्वाभाविक है, सो पहले भलीभाँति प्रकाशित हो चुका है। उसी मौलिक नियमके अनुसार सर्वत्र द्वन्द्वशक्ति विद्यमान होनेसे उद्भिज्जादिमें भी अमृतक्रिया और विषक्रिया दोनों देखनेमें आती है। यथा—विषवृक्ष और आम्रादि उद्भिज्जोंमें, रोगघ्न और रोगोत्पादक स्वेदजोंमें, मयूर और सर्प आदि अण्डजोंमें तथा गो और व्याघ्र आदि जरायुजोंमें। इन उदाहरणोंसे चतुर्विधभूतसङ्घोंमें इस प्रकारकी द्विविध शक्तिके रहनेका स्थायी प्रमाण मिलता है। यह सृष्टिका स्वाभाविक नियम है ॥१६१॥

अब प्रकृतविषय कहा जा रहा है :—

द्विविध शक्तिमत्त्वके कारण मर्मभी द्वन्द्वधर्म-विशिष्ट है ॥१९२॥

प्रकृतिस्पन्दनसे उत्पन्न शक्तिविशेषको कर्म कहते हैं, यह पहले ही कहा गया है। जब कर्म शक्तिविशेष है, तो वह दोनों ओर प्रवाहित हो सकता है। प्रत्येक शक्तिका यह स्वभाव है कि, वह उत्तर-प्रवाहिणी हो सकती है, दक्षिणप्रवाहिणी हो सकती है, ऊर्द्ध्व हो सकती है और अधः भी हो सकती है। जब कर्म सत्त्वगुणको आश्रय करके पुण्य-स्रोतको धारण करता है, तब वह ऊर्द्ध्वगामी होता है, जब वह कर्म तमोगुणका आश्रय लेकर पापस्रोतको प्रवाहित करता है, तब अधोगामी बनता है। कर्मका यह द्वन्द्व स्वभावसिद्ध है ॥१६२॥

दोनोंमें सेवनीय कौन है, सो कहा जाता है :—

अभ्युदयका कारण होनेसे पुण्यकर्म सेवनीय है ॥ १९३ ॥

अब यह स्वतः ही शंका हो सकती है कि, जब कर्म स्वाभाविक द्वन्द्वताके कारण धर्म और अधर्मरूपमें दो प्रकारका होता है, तो दोनों ही क्यों न सेवनीय हों? इस श्रेणीकी शंकाके समाधानमें सिद्धान्तको स्पष्ट कर देनेके अर्थ इस सूत्रका आविर्भाव हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि, प्राकृतिक द्वन्द्वताके कारण जीवके यावत् कर्म दो श्रेणीमें विभक्त किये जा सकते हैं, यथा—ऊर्द्ध्वगामी धर्म और अधोगामी अधर्म। शक्तिके विचारसे दोनों ही समान हैं। क्योंकि धर्म प्रथम अवस्थामें ऐहलौकिक अभ्युदय, दूसरी अवस्थामें पारलौकिक अभ्युदय और तीसरी अवस्थामें अभ्युदय प्राप्त कराता हुआ उन्नतिके परपार या ब्रह्मपदमें ले जाकर पहुँचा देता है। यह धर्मशक्तिकी प्रबलताका संक्षेप दृष्टान्त है। दूसरी ओर यदि देखा जाय, तो अधर्म भी धर्मसे कम शक्ति-विशिष्ट नहीं है। अधर्म जीवको प्रेतत्व, नरकत्व, यहाँतक कि, स्थावरत्व भी प्राप्त करा सकता है। अधर्म अधोगामिनी प्रवृत्ति बढ़ाता हुआ जीवको नीचेसे अतिनीचे तक पहुँचा देता है। मनुष्यकी तो बात ही क्या है, देवताओंतकको यमलार्जुनकी तरह स्थावरत्व प्राप्त करा देता है। इस कारण शक्तिरूपसे दोनोंका अधिकार समान होनेपर भी अधर्म सेवनीय नहीं है, धर्म सेवनीय है। जब अधर्म उन्नतिका विरोधी है और धर्म नियमित रूपसे उन्नति कराता है और नीचे नहीं गिरने देता, तो धर्म ही सेवनीय है ॥ १६३ ॥

मनुष्यमें उसका अधिकारनिर्णय किया जाता है :—

कर्मापि द्वन्द्वधर्म द्विविधशक्तिमत्त्वात् ॥ १९२ ॥

सेव्यं सुकृतमभ्युदयनिमित्तत्वात् ॥ १९३ ॥

स्वतन्त्रताके कारण मनुष्यमें दोनोंका दायित्व है ॥ १९४ ॥

मनुष्यसे नीचेकी श्रेणीके जितने जीव हैं, वे कैसे प्रकृतिसम्बन्धसे पराधीन हैं, सो पहले ही भलीभाँति कहा गया है। सुतरां वे पराधीन होनेके कारण उनमें धर्म और अधर्मका अधिकार नहीं रह सकता। क्योंकि जो पराधीन है, उसका दायित्व हो ही नहीं सकता। जो जिसको पराधीन रखता है, उसका दायित्व उस व्यक्तिपर चला जाता है, यह स्वत' सिद्ध है। अतः स्वतन्त्रतारहित अन्य जीवोंके लिये धर्माधर्मकी शृंखला हो ही नहीं सकती। फलतः मनुष्य जब पंचकोषोंकी पूर्णतासे पूर्णावयव है और अन्तः-करणकी पूर्णता होने तथा संस्कार-संग्रहमें समर्थ होनेसे स्वाधीन है, तो, मनुष्य ही धर्माधर्मकी शृङ्खला रखनेमें समर्थ है। इस कारण उसकी अधर्म करनेसे अवनति और धर्म करनेसे उन्नति हुआ करती है ॥ १९४ ॥

मनुष्यकी सुरक्षा कैसे होती है, सो कहा जाता है :—

अनुशासनत्रयसे रक्षा होती है ॥ १९५ ॥

मनुष्ययोनिमें जब जीव पहुँचता है और धर्म तथा अधर्मकी शृंखलाका दायित्व उसको प्राप्त होता है, तब अधर्मसे बचने और धर्मको प्राप्त करनेके लिये उसको त्रिविध अनुशासनकी आवश्यकता होती है। वे ही त्रिविध अनुशासन राजानुशासन, शब्दानुशासन और योगानुशासन कहाते हैं। मनुष्य त्रिगुणभेदसे त्रिविध होते हैं। तामसिक अधिकारीके लिये राजानुशासन कल्याणकारी है। राजानुशासन दो भागोंमें विभक्त है। यथा—समाजदण्ड और राजदण्ड। राजसिक अधिकारीके लिये शब्दानुशासन कल्याणकारी है। शब्दानुशासनके भी दो भेद हैं। यथा—शास्त्रोपदेश और गुरूपदेश। सात्त्विक अधिकारी महापुरुषोंके लिये योगानुशासन वेदसम्मत है। उसके भी दो भेद हैं। यथा—अपरोक्षानुभूति और परोक्षानुभूति। विपरीत-ज्ञानवाले मनुष्यको जबतक राजदण्ड और समाजदण्डका भय नहीं रहेगा, तब तक वह धर्मपथपर चल नहीं सकता। उसी प्रकार सन्देहात्मक-बुद्धिसम्पन्न राजसिक व्यक्तिको जबतक गुरु और शास्त्रकी सहायता नहीं मिलेगी, तबतक वह धर्माधर्मनिर्णय करके अभ्युदयकी ओर अग्रसर नहीं हो सकता और सात्त्विकबुद्धिसम्पन्न महापुरुष चाहे वानप्रस्थाश्रमधारी हो, चाहे संन्यासाश्रमधारी ही क्यों न हो, उसको योगानुशासनकी सहायता लेकर सत्-असत् और आत्मा-अनात्माका विचार करना होता है। इस कारण अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये किसी न किसी अनुशासनकी आवश्यकता रहती है। बिना अनुशासनका आश्रय लिये मनुष्य धर्ममार्गको निष्कण्टक नहीं रख सकता ॥ १९५ ॥

इसका कारण बताया जाता है :—

बुद्धिके त्रिविध होनेसे ॥ १९६ ॥

मनुष्यकी बुद्धि त्रिगुणके अनुसार त्रिविध होती है। सत्याश्रययुक्त निश्चयात्मिका बुद्धिको सात्त्विक, सन्देहात्मिका बुद्धिको राजसिक और विपरीतज्ञान करनेवाली बुद्धिको तामसिक कहते हैं। इसी त्रिविध

[क्रमशः]

स्वातन्त्र्यादुभयप्रातिभाव्यं मानवस्य ॥ १९४ ॥
अनुशासनत्रयादवनम् ॥ १९५ ॥
बुद्धित्रैविध्यात् ॥ १९६ ॥

महापरिषद्-सम्वाद

गत ता० २८ नवम्बरको आर्यमहिला महाविद्यालयमें पश्चिमी बंगालके राज्यपाल महामहिम डा० कैलासनाथ काटजू महोदयका शुभागमन हुआ। श्रीमान्ने प्रत्येक कक्षाका निरीक्षण किया। अनन्तर शिक्षिकाओं एवं छात्राओंने विद्यालयके विशाल हालमें एकत्रित होकर आपका स्वागत किया। राज्यपाल महोदयने विद्यालयकी प्रगति एवं कन्याओंके स्वास्थ्य आदिपर अपने भाषणमें संतोष प्रगट किया और कन्याओं तथा अध्यापिकाओं से नर्स डाक्टरके रूपमें अपनेको प्रस्तुत कर देश-सेवा करनेका अनुरोध किया।

× × ×

श्री आर्यमहिला-हितकारिणीमहापरिषद्की प्रबन्धसमितिकी बैठक ता० ६-१२-५० को विद्यालयभवनमें ठा० लौटूसिंह गौतमकी अध्यक्षतामें हुई थी। इसमें महापरिषद्का स्थापनादिवस एवं विद्यालयका वार्षिकोत्सव मनानेके विषयमें निम्नलिखित मन्तव्य स्वीकृत हुआ :—

"विद्यालयका वार्षिकोत्सव एवं महापरिषद्का स्थापना-दिवसके सम्बन्धमें निश्चय हुआ कि मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी एवं पञ्चमीको मनाया जाय। यह जानकर समितिको सन्तोष हुआ कि कानपुरके सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री सर हरगोविन्द मिश्रने प्रथम दिनका सभापति होना स्वीकार किया है। दूसरे दिन महिलासम्मेलनकी सभानेतृत्व श्रीमती कृष्णामाथुरने एवं चौथे दिनका सभापतित्व नगरपालिकाके अध्यक्ष श्रीमान् राय गोविन्दचन्द्र महाशयने करना स्वीकार कर लिया है। उत्सवके लिये सात सौ रुपयेकी स्वीकृति दी जाती है। यह भी निश्चय हुआ कि यह रकम चन्देसे संग्रह की जाय।"

× × ×

महापरिषद्की प्रबन्धसमितिकी दूसरी बैठक ३०-१२-५० को धर्मरत्न सेठ बाबूलाल ढनढनियाकी अध्यक्षतामें हुई जिसमें निम्नलिखित मन्तव्य स्वीकृत हुआ।

"श्रीआर्यमहिला-हितकारिणीमहापरिषद्की यह प्रबन्धसमिति भारतके उप-प्रधानमंत्री सरदार बल्लभभाई पटेलके आकस्मिक निधनपर आन्तरिक शोक प्रकट करती है। उनकी मृत्युसे भारतने सुयोग्य शासक, दूरदर्शीनेता और कुशल राजनीतिज्ञ खो दिया। उनके लोकान्तरित होनेसे देशकी अपूरणीय क्षति हुई है। यह समिति सर्वशक्तिमान् भगवान्के चरणोंमें उनकी आध्यात्मिक उन्नति एवं चिरशान्तिके लिये प्रार्थना करती है और उनके सन्तप्त परिवार वर्गके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।"

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण-सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें बिलम्ब होगा. तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
" " तीसरा पृष्ठ	२५)	"
" " चौथा पृष्ठ	३०)	"
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	"
" १/२ पृष्ठ	१२)	"
" १/४ पृष्ठ	८)	"

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला-कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।
मुद्रक :—श्री दालाचाँद चटर्जी, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की सचित्र मासिक मुखपत्रिका

फाल्गुन-चैत्र सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ११, १२ | फरवरी, मार्च १९५१

श्रद्धाञ्जलि

भगवान् महर्षि ज्ञानानन्दजी महाराजके ब्रह्मनिर्वाणप्राप्तिपर

आविर्भाव सम्वत् १९०२ जन्माष्टमी अर्धरात्रि। तिरोभाव सम्वत् २००७ माघ कृष्णपञ्चमी ब्राह्ममुहूर्त।

भगवान् महर्षि ज्ञानानन्दजी महाराज श्रद्धाञ्जलि अङ्क

विषय-सूची

प्रधान सम्पादिका—श्रीमती सुन्दरीदेवी एम. ए. बी. टी.

श्रीजी सन् १९१९ ई०

अर्द्ध' भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

फाल्गुन-चैत्र सं० २००७-२००८ | वर्ष ३२, संख्या ११, १२ | फरवरी, मार्च १९५१

भगवतो ज्ञानानन्दगुरोः स्तोत्रम्।

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे, गौरं भानुसमप्रभम्।
शान्तं प्रसन्नवदनं जटाजूटसुशोभितम् ॥१॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे, शुभ्रं हेमसमद्युतिम्।
दयार्णवं क्षमारूपं, कृपालुं करुणेक्षणम् ॥२॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे सौम्यं कमललोचनम्।
निर्गुणं च गुणातीतं, सर्वलोकमहेश्वरम् ॥३॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे भवपाश-विमोचकम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ध्याये सर्वगुरुं परम् ॥४॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे संसृतेर्भयभञ्जनम् ।
आशुतोषं दयासिन्धुं, प्रणतोऽस्मि जगद्गुरुम् ॥५॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे निर्मलं निष्कलं विभुम् ।
विशुद्धं व्यापकं नित्यं कलिकल्मषनाशकम् ॥६॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे पाप-तापविमोचकम् ।
भवसिन्धुमहापोतं शरण्यं भक्तवत्सलम् ॥७॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे भवरोगहरं प्रभुम् ।
देसिकेन्द्रं सदाऽऽनन्दं महामोहविनाशकम् ॥८॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे योगीन्द्रं समदर्शिनम् ।
भवार्णवमहापोतं चिदानन्दं सनातनम् ॥९॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे स्वामिनं शुभदर्शनम् ।
सर्वशास्त्रविदं देवं प्रणतोऽस्मि जगद्गुरुम् ॥१०॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे ज्ञान-योग-तपोनिधिम् ।
प्रसस्तभालं गौराङ्गं तप्तहेमसमप्रभम् ॥११॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे, साकारशिवरूपिणम् ।
वराभयप्रदं देवं सर्वतो व्यापिनं विभुम् ॥१२॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे मङ्गलायतनं हरिम् ।
भवरोगमहावैद्यमज्ञानकुलभास्करम् ॥१३॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे निर्विकल्पं निरामयम् ।
सर्वतन्त्रस्वतन्त्रञ्च सर्वरक्षाकरं प्रभुम् ॥१४॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे सुभालं सुमनोहरम् ।
शान्तं शिवं जगद्वन्द्यं करुणारसवर्षकम् ॥१५॥
ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे सदा शंकररूपिणम् ।
मुक्तिभुक्तिप्रदं देवं तत्त्वज्ञानप्रकाशकम् ॥१६॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे तापत्रयनिवारकम् ।
साक्षान्मोक्षप्रदं देवं सदा कल्याणरूपिणम् ॥१७॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे परमानन्ददं प्रभुम् ।
स्वयमेव परब्रह्म सर्वसिद्धिप्रदं विभुम् ॥१८॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे संसारभयनाशकम् ।
भक्तकामप्रदं देवं सदाशिवस्वरूपिणम् ॥१९॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे सर्वदुःखप्रणाशनम् ।
भक्तकल्पतरुं देवं नित्यं ब्रह्मस्वरूपिणम् ॥२०॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे चिदानन्दस्वरूपिणम् ।
परानन्दमयं साक्षात् सर्वलोकेषु पूजितम् ॥२१॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे सर्वदेवस्वरूपिणम् ।
दीनबन्धुं दयासिन्धुं सर्वतश्च प्रतिष्ठितम् ॥२२॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे सर्वज्ञं सर्वकामदम् ।
सर्वास्मिसर्वगं देवं परब्रह्ममयं प्रभुम् ॥२३॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे परे ब्रह्मणि संस्थितम् ।
अव्ययं शाश्वतं नित्यं शुद्धं ब्रह्मसनातनम् ॥२४॥

ज्ञानानन्दं गुरुं वन्दे यतीन्द्रं पुण्यदर्शनम् ।
यस्य ज्ञानप्रकाशेन भाति सर्वमिदं जगत् ॥२५॥

नमस्ते गुरवे नित्यमात्मज्ञानप्रदायिने ।
मुमुक्षोः शरणं देवं भक्तकारुण्यवारिधिम् ॥२६॥

नमस्ते गुरवे नित्यं ज्ञानानन्दस्वरूपिणे ।
सच्चिदानन्ददेवाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥२७॥

नमस्ते गुरवे नित्यं आत्मबोधप्रदायिने ।
ज्ञानानन्दाय देवाय, देवदेवाय ते नमः ॥२८॥

नमस्ते गुरवे तुभ्यं वेदसारस्वरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय शङ्कराय नमो नमः ॥२६॥

नमस्ते गुरवे नित्यं प्रज्ञानघनरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय भूयो भूयो नमोस्तु ते ॥३०॥

नमस्ते गुरवे नित्यं निर्गुणब्रह्मरूपिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय ज्ञानानन्दाय ते नमः ॥३१॥

नमस्ते गुरवे नित्यं कर्मयोगस्वरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय भक्तानामभयाय च ॥३२॥

नमस्ते गुरवे नित्यं सदाशिवस्वरूपिणे ।
अज्ञानघननाशाय भास्कराय नमो नमः ॥३३॥

नमस्ते गुरवे नित्यं अक्षरब्रह्मरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥३४॥

नमस्ते गुरवे नित्यं सदा कारुण्यरूपिणे ।
शान्तिक्षान्तिस्वरूपाय, ज्ञानानन्दाय ते नमः ॥३५॥

नमस्ते गुरवे नित्यं महामण्डलरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय ज्ञानिनां गुरवे नमः ॥३६॥

नमस्ते गुरवे नित्यं परं कैवल्यरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय ऋषीणाम् ऋषये नमः ॥३७॥

नमस्ते गुरवे नित्यं आत्मबोधस्वरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय गुरूणां गुरवे नमः ॥३८॥

नमस्ते गुरवे नित्यं ज्ञानानन्दस्वरूपिणे ।
मोहान्धकारनाशाय भानुरूपाय ते नमः ॥३६॥

नमस्ते गुरवे नित्यं सर्वेषां बुद्धिसाक्षिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय प्रेमरूपाय ते नमः ॥४०॥

नमस्ते गुरवे नित्यं महामङ्गलरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय वरदाय नमो नमः ॥४१॥

नमस्ते गुरवे नित्यं नित्यानन्दप्रदायिने ।
ज्ञानानन्दाय देवाय विश्वनाथाय ते नमः ॥४२॥

नमस्ते गुरवे नित्यं महाशोकविनाशिने ।
ज्ञानानन्दाय देवाय ज्ञानपूताय ते नमः ॥४३॥

नमस्ते गुरवे नित्यं सदा चिद्घनरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय तपःपूताय ते नमः ॥४४॥

नमस्ते गुरवे नित्यं कर्मयज्ञस्वरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥४५॥

नमस्ते गुरवे नित्यं ब्रह्मधामस्वरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय योगगम्याय ते नमः ॥४६॥

नमस्ते गुरवे नित्यं जटाजूटकिरीटिने ।
ज्ञानानन्दाय देवाय सदाऽऽनन्दाय ते नमः ॥४७॥

नमस्ते गुरवे नित्यं योगिने योगरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय महादेवाय ते नमः ॥४८॥

नमस्ते गुरवे नित्यमात्मबोधप्रदायिने ।
ज्ञानानन्दाय देवाय वेदवेद्याय ते नमः ॥४९॥

नमस्ते गुरवे नित्यं परमानन्दरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय विश्वरूपाय ते नमः ॥५०॥

नमस्ते गुरवे नित्यं साकारशिवरूपिणे ।
ज्ञानानन्दाय देवाय योगिनां पतये नमः ॥५१॥

नमस्ते गुरवे नित्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मने ।
ज्ञानानन्दाय देवाय ज्ञानिनां पतये नमः ॥५२॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५३॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५४॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५५॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥५६॥

आत्म-निवेदन

सनातनधर्मका सूर्य अस्त हो गया ।

जिसको कल्पना भी असह्य थी, जिसे सुननेके लिये हम प्रस्तुत नहीं थे, क्रूर कालने उसे करही तो डाला! मानवजातिका अमूल्यधन लुट गया! जिसने भगवान् राम-कृष्णको भी नहीं छोड़ा, उस कुटिल कालकी क्रूरताकी क्या सीमा है! गत २८ जनवरीको प्रातःकाल अप्रत्याशित •अकस्मात् हमें सुनना पड़ा कि प्राणीमात्रके अहेतुक हितैषी, सबके मित्र, श्रीभारतधर्म-महामण्डल, श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्, क्षत्रियमहासभा, वैश्यमहासभा आदि अनेक संस्थाओंके संस्थापक एवं प्राणदाता हिन्दूधर्म तथा संस्कृतिके आधारस्तम्भ परमहंस परिव्राजकाचार्य योगिराज गुरुवर्य महर्षि श्री १००८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज अब हमारे बीच नहीं रहे! वे ब्राह्ममुहूर्तमें अपने ब्रह्मरूपमें सदाके लिये विलीन हो गये! अब वह शुभ्र गौरवर्ण जटामुकुटधारी प्रशस्तभाल, सुन्दर भ्रू, स्नेहस्निग्ध ज्योतिर्मय नेत्र, नोकिली उन्नत नासिका, विशालकाय, छोटे-छोटे रक्तवर्ण सुन्दर चरण, सदा प्रसन्न साकार शङ्कर-मूर्तिका दर्शन अब हमें नहीं मिलेगा! हम हृदय थामकर रह गये। सब दिशाओं में अन्धकार छा गया। अपने स्वरूपमें सदारमण करनेवाले वे महापुरुष आत्माराम आप्तकाम महर्षि थे। जगत्में उनका अपने लिये कोई भी कर्तव्य शेष नहीं था, अतः उनके लिये शोक करनेका कोई अवसर नहीं है, परन्तु दिनरात लोकहितकी चिन्तामें संलग्न, दिव्यदृष्टिसम्पन्न ऐसे शास्त्रपारदर्शी महर्षिका ऐसे समयमें तिरोभाव साधारणतः मानवजाति और विशेषतः हिन्दूजातिका सबसे महान् दुर्भाग्य है। उनके तिरोभाव होने से इतनी बड़ी क्षति हुई है, जिसके पूर्ण होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। मानवजातिकी आध्यात्मिक उन्नति एवं हिन्दूधर्म तथा वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा पूज्यपाद श्रीमहाराजके दीर्घकालव्यापी जीवनका

पवित्र व्रत था। इसके लिये श्रीजीने अनेक संस्थाओंकी स्थापना करके उनको चलाया, सैकड़ों मौलिक ग्रन्थोंका प्रणयन किया, अनेक कार्यकर्त्ता एवं धर्मवक्ता प्रस्तुत किये, जिनमें उनके परमप्रिय सुयोग्य शिष्य ब्रह्मीभूत स्वामी दयानन्दजी महाराज सनातनधर्मके प्रकाण्ड पण्डित एवं अद्वितीय वक्ता थे। प्राचीनकालकी रीति थी कि शिष्यगण ग्रन्थ लिखते एवं अपने आचार्यों या गुरुओंके नाम देते थे, परन्तु इन पूज्यपाद महर्षिने उल्टी गंगा बहायी। उन्होंने जितने ग्रन्थ लिखे, उनमें किसीमें भी अपना नाम न देकर स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, म० म० पं० अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि आदि अपने शिष्योंके नाम दिये। श्रीजी स्वयं नाम-रूपसे बहुत दूर रहते थे। एकान्तसेवन और अध्यात्म-चिन्तन उनका स्वभाव था। उनमें आध्यात्मिक पूर्णता, आधिदैविक पूर्णता एवं आधिभौतिक पूर्णताके पूर्ण लक्षण विद्यमान थे। कर्मके नियमसे ही जगत्के नियन्ता सर्वेश्वर अपने सृष्टि-साम्राज्यका शासन करते हैं, परन्तु इस विषयका दर्शन उपलब्ध नहीं था, महर्षि-जैमिनीकृत जो कर्ममीमांसादर्शन उपलब्ध था, उसमें केवल वैदिक यज्ञ-यागादि का वर्णन है, जो आजकलके समयमें साधनोंके अभावके कारण प्रायः प्रचलित भी नहीं है। पूज्यपादने अपने योगतपोबलसे कर्ममीमांसादर्शनके पूर्वार्धका आविष्कार किया, जिसके धर्मपाद, संस्कारपाद, क्रियापाद और मोक्षपाद नामसे चार पाद हैं, और इसमें कर्मराज्यका साङ्गोपाङ्ग निरूपण है। इसका क्रियापाद आजकल आर्यमहिलामें प्रतिमास क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। इसीप्रकार वेदके तीन काण्डोंमें उपासनाकाण्डका भी दर्शन उपलब्ध नहीं था, पूज्यपादने अपने योगबलसे दैवीमीमांसादर्शनका भी उद्धार करके कर्म उपासना एवं ज्ञानकाण्डोंके त्रिविधदर्शनोंको सांगोपाङ्ग पूर्ण किया। इसीप्रकार मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग तथा राजयोग चारोंयोग तथा पञ्चोपासनाओंकी पाँच गीताओंको भी अपने योगबलसे प्राप्त करके साधकोंके कल्याणके लिये प्रकाशित किया। सांख्यदर्शन अबतक नास्तिकदर्शनके रूपमें ही प्रसिद्ध था। पूज्यपाद भगवान्ने अपनी विलक्षण प्रतिभासे जिस सूत्रके द्वारा उसको दूसरे टीकाकार नास्तिकदर्शन सिद्ध कर चुके थे, उसीके द्वारा उसे परम आस्तिक दर्शन सिद्ध कर दिया। पूज्यपाद महर्षिमें परस्पर विरुद्ध विषयोंका समन्वय करनेकी अलौकिक क्षमता थी। जिसप्रकार विमानपर उड़नेवाले मनुष्यको पर्वत, अट्टालिका, वृक्ष आदिसे असमान पृथिवी समान दिखायी देती है, वैसे ही ज्ञानके सर्वोच्च स्तरमें विचरण करनेवाले उन महापुरुषके विचारमें परस्परविरोधी विषयोंका समन्वय अनायास हो जाया करता था। पूज्यपादके सभी भाष्य एवं टीकाओंमें इसका स्पष्ट दर्शन होता है। ईश, केन, कठ, तीनों उपनिषदोंपर पूज्यपादने टीकाएँ की, श्रीभगवद्गीता, श्रीदुर्गासप्तशती, वेदान्तचतुःसूत्री तथा सातों दर्शनोंपर टीका तथा भाष्य किये। इनके अतिरिक्त अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, बंगलाके अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन पूज्यपाद महर्षिने किया। उनमें किसीमें कहीं अपना नाम या चित्र नहीं दिया। यह उनके आध्यात्मिक ज्ञानशक्तिका संक्षिप्त निदर्शन है। इधर वर्षोंसे अधिकांश समय वे समाधिस्थ रहा करते थे, श्रीमहामण्डलके आवश्यक कार्योंमें आज्ञा देने एवं शास्त्रोंके प्रणयनके अतिरिक्त एकान्त वास उन्हें विशेष रुचिकर था।

'अरतिर्जनसंसदि' ठीक अपने स्वरूपमें उनमें प्रतिष्ठित थी। किसीसे वे मिलना भी नहीं चाहते थे। दैवजगत्‌पर उनका अगाध अटूट विश्वास था। अपने भक्त राजाओंसे श्रीभारतधर्म-महामण्डलके यज्ञमंडपमें उन्होंने प्रायः ढाई सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करवाया। भगवद्‌भक्तिका कोई प्रसङ्ग या संगीत सुनते ही उनके आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी, यह उनमें भक्तिकी पूर्णताका बोध कराता था। तपाए हुए सुवर्णके समान गौरवर्ण तपःपूत सर्वाङ्ग-सुन्दर सुडौल उनका शरीर, दिव्य तेजोमय सदा प्रसन्न मनोहारी मुखमण्डल, अलौकिक भव्य व्यक्तित्व, उनकी आधिभौतिक पूर्णताका दिग्दर्शन कराता था। उनकी अमृतवर्षिणी-वाणीमें रोग-तापसे जर्जर प्राणियोंको शान्ति प्रदान करनेकी अपूर्वशक्ति थी। ऐसा लगता था कि लौकिक पारलौकिक कोई विषय नहीं है जिसको वे नहीं जानते हों। तबभी बालकोंसे बालककी तरह खेलते थे। ऐसे महापुरुषोंका किसीने ठीक ही वर्णन किया है :—

बाले बाला विदुषि विबुधा गायके गायकेशाः,
शूरे शूरा निगमविदि चाऽम्नाय लीलागृहाणि।
सिद्धे सिद्धा मुनिषु मुनयः सत्सु सन्तो महान्तः,
प्रौढ़े प्रौढ़ाः किमिति वचसा तादृशा यादृशेषु ॥
मौने मौनी गुणिनि गुणवान् पण्डिते पण्डितोऽसौ।
दीने दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनि प्राप्तभोगः ॥
मूर्खे मूर्खो युवतीषु युवा वाग्मिषु प्रौढ़वाग्मी,
धन्यः कश्चित् त्रिभुवनजयी योऽवधूतेऽवधूतः ॥

तात्पर्य यह है कि संसारी सभी भावोंसे परे विराजमान ब्रह्मस्वरूप मुक्त महापुरुष बालकके सामने बालक, विद्वान्‌के सामने विद्वान्, गायकके सामने श्रेष्ठ गायक, वीरके सामने श्रेष्ठवीर, वेदज्ञके सामने वेदज्ञ, सिद्धोंके सामने सिद्ध, मुनिके सामने मुनि, महात्माओंके सामने महात्मा और प्रौढ़के सामने प्रौढ़ बन जाते हैं; अधिक क्या, जो जिस प्रकारका है, उसके सामने वैसेही बन जाते हैं। वे मौनके सामने मौन, गुणियोंके सामने गुणवान्, पण्डितोंके सामने पण्डित, दीनके सामने दीन, सुखीके सामने सुखी, भोगीके सामने भोगप्राप्त, मूर्खोंमें मूर्ख, युवतीके सामने युवा, वाग्मीके सामने प्रौढ़ वक्ता—ऐसा त्रिभुवनविजयी धन्य है, जो अवधूतमें अवधूत बन जाता है।

ये सभी लक्षण इन महापुरुषमें देखे जाते थे। उनके धर्मकार्योंमें बार बार बाधा होनेपर भी उनके पास निराशाको कभी आश्रय नहीं मिला, ऐसे वे शूर थे, बार-बार लोगोंके धोखा देनेपर अविश्वासको कभी उनके पास स्थान नहीं मिला। वे बालककी तरह सबपर विश्वास करते थे। शरणागतकी रक्षा उनका स्वभाव था। वे प्रेममय, करुणामय और वात्सल्यमय थे, ऐसी महान् विभूतिका इस असमयमें तिरोभाव केवल भारतका नहीं किन्तु संसारका अत्यन्त दुर्भाग्य है और सनातनधर्मका तो सूर्य ही अस्त हो गया।

यद्यपि वह दिव्य साकार मूर्ति हमारे सामनेसे अन्तर्हित हो गयी है, परन्तु ऐसे महापुरुषका कभी अभाव नहीं होता। वे सब जगह सब समय विराजमान हैं। अतः उन गुरुवर्य प्रभुके राजीवचरणोंमें हमारी विनीत प्रार्थना है कि हमें अपने द्वारा निर्दिष्ट मार्गोंपर चलने एवं अपने पवित्र आदेशोंका पालन करनेकी शक्ति प्रदान करनेकी कृपा करें।

पूज्यपादके वियोगमें विह्वल उनके भक्तों तथा श्रीमहामण्डल-परिवारके साथ हम आन्तरिक समवेदना प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि पूज्यपाद द्वारा सञ्चालित धर्मकार्योंका अधिक उत्साह एवं मनोयोगसे सञ्चालन किया जायगा।

श्रीचरणोंका पुण्यस्मरण

[ले० सम्पादकाचार्य पं० गोविन्दशास्त्री दुगवेकर]

यह जानकर सनातनधर्मावलम्बीमात्रके हृदय-पर भयानक वज्राघात हुए बिना न रहेगा कि, विश्वव्यापी सनातनधर्मके उद्धारक, सत्‌शास्त्रोंके अन्वेषक और प्रवर्तक, सनातनधर्मियोंके एकमात्र आधार श्रीभारतधर्ममहामण्डलके संस्थापक और सञ्चालक परमपूज्यपाद भाष्यकार महर्षि परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज ता० २८ जनवरी १९५१ को उषाकालमें समाधिस्थ होकर परब्रह्ममें विलीन हो गये, जिससे सनातनधर्मी संसार अनाथ हो गया है और इस तेजोमय दिन-मणिके अस्तसे सनातनधर्मी जगत्‌में अन्धकार छा गया है।

श्रीजी महाराज केवल साधु, संन्यासी, योगी, सिद्धपुरुष और महात्मा ही नहीं थे, किन्तु उनमें कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगकी एकाधारमें पूर्णता होनेसे वे योगिराज थे और सच्चे महात्मा थे। शास्त्रोंमें महात्मा किसे कहना चाहिये? इस प्रश्नका इस प्रकार समाधान किया गया है :—"जिस महान् व्यक्तिमें कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगके विशेष लक्षण स्वभावतः प्रकाशित हुये हों, वही महापुरुष 'महात्मा' कहा जा सकता है। कर्मयोगके लक्षणोंमें परोपकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति, परमोपकार अर्थात् मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नति करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति और अहंकार तथा स्वार्थ छोड़कर जगत्‌को श्रीभगवान्‌का स्वरूप मानकर सेवाबुद्धिसे निष्कामकर्म करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्तिके लक्षण जिस महापुरुषमें स्वतः प्रकाशित हों, उसे कर्मयोगी महापुरुष जानना चाहिये। श्रीभगवान्‌के चरणोंमें जिसकी ऐकान्तिकी भक्ति हो, जो श्री भगवान्‌ही सब कुछ हैं, ऐसा समझता हो और नवविधा भक्तिके रसका आस्वादन करता हुआ श्रीभगवान्‌के गुण गाने तथा उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेकी दृढ़निष्ठा रखता हो, वह भक्तियोगका अधिकारी होता है। इसी तरह जिस महापुरुषमें तत्त्वज्ञानका उदय होकर श्रीमद्भगवद्‌गीतोक्त निम्नलिखित ज्ञानीके लक्षण स्वभावसे प्रकाशित हुए हों, वही ज्ञानयोगी कहा जा सकता है। वे लक्षण इस प्रकार हैं :—

'अमानित्व अर्थात् अपनेको श्लाघनीय न समझना, दम्भहीनता अर्थात् धार्मिक होनेका ढोंग न रचना, अहिंसा अर्थात् किसी जीवकी हत्या न करना और न किसीको दुःख देना या उद्विग्न करना, क्षमावान् होना, आर्जव (सरलता) अर्थात् बाहर और भीतरसे एकरूप होना, आचार्योपासना अर्थात् श्रीगुरुदेवकी सेवा, शौच अर्थात् अन्तर्बाह्य पवित्रता, स्थैर्य अर्थात् शारीरिक चाञ्चल्यका त्याग, आत्म-विनिग्रह अर्थात् मनका संयम, इन्द्रियोंके विषयोंसे स्वाभाविक वैराग्य, अहंकारका न होना, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि आदिमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन त्रिविध दुःखोंका अखण्ड अनुभव करना, स्त्री-पुत्र-गृह-ऐश्वर्य आदि विषयोंमें आसक्ति न होना, इष्ट और अनिष्टमें चित्तका समभाव होना, श्रीभगवान्‌में अटल भक्ति होना, एकान्तसेवी होना, जनसमूहमें सम्मिलित होनेसे स्वाभाविक अरुचि होना, आत्मज्ञानमें स्थिरनिष्ठा रखना और आत्म-

ज्ञानकी आलोचनामें निरत रहना, ये सब ज्ञानीके लक्षण हैं। जिस महापुरुषमें ज्ञानकी पूर्णता होगी, उसीमें ये लक्षण स्वाभाविकरूपसे प्रकाशित होंगे। इस प्रकार जिस भगवत्कृपाप्राप्त महापुरुषमें पूर्वोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगके लक्षण स्वभावतः प्रकाशित हुए हों, वही सच्चा महात्मा कहा जा सकता है।"

श्रीजीमें तीनों योगोंके सम्पूर्ण लक्षण स्वाभाविक रूपसे प्रकाशित हुए थे। जैसे वे कर्मनिष्ठ थे, वैसेही श्रीजगदम्बाके अनन्यभक्त थे और जीवन्मुक्त ज्ञानयोगी तो थे ही। एकाधारमें इस प्रकार तीनों योगोंकी शक्तियोंका विकास अन्यत्र नहीं पाया जाता। श्रीजीके जीवनमें यह विकास स्पष्टरूपसे देख पड़ता था। इसके सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं, जो इस संक्षिप्त स्मरणमें विस्तारभयसे समाविष्ट नहीं किये जा सकते। विस्तृत चरितमें उनमेंसे कुछ दिये जायँगे।

श्रीजी केवल अवतारी पुरुष ही नहीं थे, किन्तु पूर्णावतारके लक्षण उनमें पूर्णरूपसे प्रकाशित हुए थे, इसके अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण पाये जाते हैं। सर्वव्यापक, निराकार, मायाविनिर्मुक्त परमात्मा मायामय स्थूलशरीर धारण करके जगत्कल्याणकी बुद्धिसे अधार्मिक दुष्टोंका दमन कर साधु-सज्जनोंकी रक्षा किया करते हैं, यह तो शास्त्रसिद्ध ही है। श्रीभगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे कहा है कि "यद्यपि मेरा जन्म नहीं होता, मैं बनता-बिगड़ता भी नहीं और सबका ईश्वर भी हूँ, तथापि अपनी प्रकृति (माया) का आश्रय कर अपनी मायासे ही अवतार धारण करता हूँ।" 'श्रीभगवान् कब अवतार धारण करते हैं? इस विषयमें कहते हैं,—"जब जब संसारमें धर्मकी ग्लानि होकर अधर्मकी वृद्धि हो जाती है, तब तब मैं अवतार धारण करता हूँ।" श्रीभगवान् किसलिये प्रकट होते हैं? इस प्रश्नका उत्तर देते हैं, "साधु-सज्जनोंकी रक्षा और दुराचारियोंका नाश करने तथा धर्मकी पुनःस्थापना करनेके लिये मैं युग युगमें अवतार धारण करता हूँ।" अवतारकी पहचान क्या है? इस विषयमें कहा है,—"संसारमें जो जो ऐश्वर्ययुक्त, श्रीयुक्त और शक्तियुक्त चैतन्य देख पड़े, वह मेरेही तेज (शक्ति) के अंशसे उत्पन्न हुआ है, ऐसा जानो।" श्रीभगवान्के अवतारोंका कारण जैसा श्रीभगवान्ने गीतामें बताया है, वैसा ही सप्तशतीमें श्रीजगदम्बाने भी बताया है।

वेद (प्रश्नोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् और तैत्तिरीयब्राह्मण) में कहा है कि, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान्, सर्वमय श्रीपरमात्मा षोडशकलात्मक शक्तिसे परिपूर्ण होकर शोभायमान हो रहे हैं। जब परमात्मा सर्वव्यापक हैं, तब उनका अवतार होना (उतरना), कहींसे कहीं आना जाना कैसे सम्भव है? इस आशङ्काका समाधान शास्त्रकार इस प्रकार करते हैं कि, वास्तवमें परमात्मा न कहींसे कहीं आते-जाते हैं और न कहींसे कहीं उतरते चढ़ते ही हैं; किन्तु किसी उपयुक्त केन्द्रमें उनकी शक्ति प्रकट हो जाती है और जिस केन्द्रमें वह शक्ति प्रकट होती है, उसको अवतार कहते हैं। जिस प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक हैं, उसी प्रकार उनकी शक्ति भी सर्वव्यापिनी है। जड़-चेतनात्मक दृश्य संसारकेद्वारा उनकी वह शक्ति विकासको प्राप्त होती है। जब कि, सब शक्तियोंकी आधारभूता महाशक्ति श्रीजगदम्बा उनकी शक्तिस्वरूपिणी हैं, तब संसारमें विकासशील समस्त-शक्तियाँ उन्हींकी होनेमें सन्देह ही क्या रह जाता है?

त्रिविध केन्द्रोंमें श्रीभगवान्‌की शक्तिकी कलाओं-के विकासमें भी तारतम्य होता है। इसका विचार इसप्रकार किया गया है :—"उद्भिदादि चतुर्विध भूतसंघोंमें क्रमशः भगवच्छक्तिकी एकसे चार तक कलाएँ प्रकट होती हैं। मनुष्यमें पाँचसे आठ तक कलाओंका विकास होता है। ये कलाएँ विभूति-युक्त मनुष्यतक लौकिकरूपसे विकसित होती हैं। नौसे सोलह कलाओंतकका विकास जिन केन्द्रोंमें होता है, वे अलौकिक कोटिके होनेके कारण अवतार कहाते हैं। चाहे वे किसीप्रकारके कलेवरमें देख पड़ें, भगवान्‌के कलाविकासके असाधारण केन्द्र माने गये हैं। एकसे लेकर पन्द्रह कलाओंतकका जिन केन्द्रोंमें विकास होता है, वे अंशावतार कहाते हैं और जो केन्द्र सोलह कलाओंसे पूर्ण हो, उसे पूर्णावतार माना है। श्रीकृष्णभगवान् पूर्णावतार थे और वैसेही लक्षण श्रीस्वामीजी महाराजके जीवन-में देख पड़ते थे। दोनोंके चरित्रोंमें बहुत कुछ साम्य है।

श्रीभगवान्‌की शक्तिकी आठकलाओं तकका जिन महापुरुषोंमें विकास होता है, वे विभूतियाँ कहलाती हैं। समय समय पर इन्हींके द्वारा सामयिक रूपसे धर्मरक्षार्थ कार्य हो जाया करता है। सभी सम्प्रदाय प्रवर्तक-महात्मा ईसा, महम्मद, रामानुज, बल्लभ, निम्बार्क, माध्व, नानक, रामदास, रामकृष्ण आदि इसी श्रेणीमें थे। जब प्रकृतिराज्योंमें अव-तारके आनेकी आवश्यकता होती है, तभी अवतार होता है और पूर्णावतार तो तभी होता है, जब धर्म बहुत ही अरक्षित होकर मनुष्यजाति आत्मविचारको भुला देती है और कर्तव्यभ्रष्ट हो जाती है। पूर्णा-वतारी पुरुष जगत्‌में धर्माधर्मका सामञ्जस्य स्थापन करते हैं, जिसका प्रभाव चिरकालतक बना रहता है और मनुष्यजातिको आत्माभिमुख होनेका सुभीता हो जाता है। श्रीभगवान्‌की नौ शक्तिकलाओंसे पन्द्रहकलाओंतकका जिनमें विकास होता है, वे अंशावतार कहाते हैं और उनके द्वारा उस समयके अनुकूल जीवोंके कल्याणका कार्य आंशिकरूपसे हुआ करता है। ऐसे चौबीस अवतार होनेका शास्त्रोंमें प्रमाण पाया जाता है। परन्तु पूर्णावतार एकमात्र श्रीकृष्ण ही थे।

श्रीभगवान् सच्चिदानन्दमय हैं। पूर्णावतारमें इन तीनों सत्ताओंका पूर्णविकास होनेसे उनके जीवनमें कर्म, उपासना और ज्ञान तीनोंकी पूर्णता देख पड़ती है। अंशावतारमें तीनोंमेंसे किसी एकका प्राधान्य रहता है। पूर्णावतारमें सत्त्व, रज, तम तीनों गुणोंका विलक्षण सामञ्जस्य तो होता ही है; किन्तु आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इन तीनों भावोंकी भी पूर्णता होती है। उनके स्थूलशरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी समता (Symmetry) मानसिक वृत्तियोंकी समता और आत्मसम्बन्धीय भावोंकी समता अपूर्व देख पड़ती है। उनमें आधि-भौतिक पूर्णता होनेसे शारीरिक सौन्दर्य, और ब्रह्म-चर्यकी पूर्णता आधिदैविक पूर्णता होनेसे शक्ति और ऐश्वर्यकी पूर्णता और आध्यात्मिक पूर्णता होनेसे ज्ञानकी पूर्णता पूर्णतया दृष्टिगोचर होती है। मान-सिक विरुद्ध वृत्तियोंकी समताद्वारा उनके मनकी सुन्दरता आत्माके विविध भावोंकी समताद्वारा उनके आत्माकी सुन्दरता निखर पड़ती है। पूर्णावतारमें ईश्वरकी सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य इन तीनों शक्तियोंका संयोग हो जाता है। ये सब बातें श्री-जीमें स्पष्टतया देख पड़ती थीं।

श्रीभगवान्‌के पूर्णावतार, अंशावतार, विशेषावतार, अविशेषावतार और नित्यावतार इसप्रकार जैसे पाँच श्रेणीके अवतार होते हैं, वैसे नित्यऋषियों और नित्य देवताओंके भी हुआ करते हैं। अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार रूपसे ही वे प्रकट होते हैं। पितरोंके अवतार नहीं होते। क्योंकि संसारमें पिताही नित्यपितरोंके अवताररूप होते हैं। उन्हींमें स्वास्थ्य और वीर्यशाली सन्तति उत्पादनके लिये पितरोंकी शक्ति विद्यमान रहती है, जिससे पृथ्वीमाता सुपुत्रोंको प्राप्तकर प्रसन्नताका अनुभव करती है। ब्रह्माण्ड-प्रकृतिमें वैदिक तथा वेदानुकूल ज्ञानका विस्तार करना ऋषियोंका कार्य है। जब आसुरीशक्तिके प्रभावसे आवश्यकीय ज्ञान आवृत हो जाता है, तब उस आवरणको हटाकर यथार्थ ज्ञानज्योतिको पुनः प्रकाशित करनेके लिये नित्यऋषियोंके अवतार होते हैं। ब्रह्माण्डप्रकृतिमें दैवी सम्पत्तिकी सुरक्षा और दैवजगतके परिचालनका भार देवताओं पर है। आसुरी शक्तिके अत्याचारसे, जब दैवीसम्पत्तिका ह्रास हो जाता है आर दैवीक्रियाके परिचालनमें बाधा उत्पन्न होती है, तब आसुरीशक्तियोंको दबाकर दैवी-क्रियाओंको पुनः शृङ्खलाबद्ध करनेके लिये नित्य देवताओंको अवतार धारण करने पड़ते हैं।

प्रत्येक ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रकारान्तरसे सगुणब्रह्म होते हैं। जहाँ सृष्टि है, वहीं सगुणब्रह्मका सम्बन्ध है। वे ही गुणत्रयविभागके अनुसार ब्रह्माण्डके सत्त्व, रज और तम गुणत्रयके कार्य किया करते हैं। जगदीश्वर सगुणब्रह्म सृष्टिके कारणस्वरूप हैं; परन्तु कार्य त्रिमूर्तिही करते हैं। वे ही सगुणब्रह्म अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव भावत्रयके अनुसार ऋषि, देवता और पितरोंके रूपमें कार्य किया करते हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें त्रिदेव और ऋषि, देवता तथा पितृगण मिलकर प्रकट होते हैं। उनका परस्पर सम्बन्ध रहता है। पूर्णावतारमें ये छहों शक्तियाँ पूर्णरूपसे विद्यमान रहती हैं। अंशावतारोंमें इनमेंसे कोई कोई शक्ति प्रकाशित होती हैं। ऐसे अवतार उसी देशमें होते हैं, जहाँकी प्रकृति पूर्ण हो। ऐसा देश एकमात्र भारतखण्ड होनेसे यहीं देवताओं और ऋषियोंके अवतार होते आये हैं।

जिनमें अलौकिक अधिदैव शक्तिका विकास होता है, वे देवताओंके अवतार समझने चाहिये। ऐसे भी अवतार होते हैं, जिनमें कई देवताओंकी शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। इसी तरह कई नित्य ऋषियोंकी शक्तियाँ मिलकर किसी केन्द्रमें प्रकट हो जाती हैं। किसी महापुरुषमें नित्यदेवताओंकी और नित्यऋषियोंकी शक्तियोंका एक साथही आविर्भाव हो जाता है। ऐसे महापुरुषोंमें असाधारण ज्ञानशक्ति और लोकोत्तर क्रियाशक्तिका एकसाथही विकास देख पड़ता है। क्योंकि उनमें त्रिभावों, त्रितत्त्वों और त्रिगुणोंका एक साथही उदय होता है। ऐसे अवतार दत्तात्रेय थे। श्रीजीके जीवनकी घटनाओंको देखते हुए यही विश्वास होता है कि, वे दत्तात्रेयके ही अवतार थे और एक उनके अनन्य-भक्तके हठ करने पर उन्हें इस गूढ़ रहस्यको स्वीकार भी करना पड़ा था। अब यह देखना चाहिये कि ऐसे अवतारकी वर्तमान देशकालमें क्यों आवश्यकता हुई? बिना विशेष प्रयोजनके ऐसे अवतारोंका आविर्भाव होना सम्भव नहीं है।

ईसाकी उन्नीसवीं शताब्दीमें इस देशमें धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रोंमें बड़ी

उथल-पुथल हो गयी थी। हिन्दुसाम्राज्यको लुप्त कर यहाँ मुसलमानोंका साम्राज्य सात सौ वर्षों तक बना रहा। समय आ जानेपर विदेशियोंका पौरा यहाँ आया और उसने हिन्दु-मुसलमान दोनोंपर अपना प्रभाव जमा लिया। यह जाति (ब्रिटिश जाति) बड़ी बुद्धिमती और शासनकार्यमें निपुण होनेके कारण उसने तलवारकी अपेक्षा बुद्धिसे अधिक काम लिया। मुसलमानोंके समयमें हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाएँ नहीं बदली थी; उलटे मुसलमानों की धर्मान्धता और तुलसीदास, रामदास, चैतन्यदेव आदि महात्माओंके उपदेशोंसे हिन्दुओंकी धर्मश्रद्धा अधिक बढ़ गयी थी। परन्तु ब्रिटिशलोगोंने शिक्षा और चिकित्साके सूत्र अपने हाथमें ले लिये, जिससे हिन्दुओंकी मनोभूमि ही बदल गयी। उनकी धर्ममें श्रद्धा नहीं रही, उनकी सामाजिक शृंखला उद्ध्वस्त हो गयी और सर्वत्र निरंकुशता देख पड़ने लगी। चारों ओर विदेशियोंका अनुकरण होने लगा, लोग अपने आपको भूल गये और नयी चमक-दमकमें अपनी सब बातेंही न जँचने लगीं। यह परिस्थिति असहनीय थी। यदि यही परिस्थिति और कुछ दिन बनी रहती, तो हिन्दुसंस्कृति, हिन्दुधर्म और हिन्दु-जाति नष्टभ्रष्ट हो जाती। इसी अव्यवस्थाको दूर कर सुव्यवस्था स्थापन करनेके लिये करुणावरुणालय श्री भगवान्‌को देवताओं और महर्षियोंकी कलाओंसे संयुक्त अवतार धारण करना पड़ा।

यह पहले कहा जा चुका है कि, ऐसे अवतार भारतखण्डमें ही होते हैं; क्योंकि यहाँकी प्रकृति पूर्ण है। भारतखण्डमें भी विन्ध्य और हिमालयके बीचकी भूमि, जिसे आर्यावर्त कहते हैं,—पुण्यभूमि मानी गयी है और राम, कृष्ण, बुद्धके यहीं अवतार हुए थे। आर्यावर्तमें भी गङ्गा-यमुनाके बीचकी अन्तर्वेदकी भूमि विशेष पवित्र है। इसीसे श्रीजीका लीला-शरीर वहीं मेरठ नगरमें आविर्भूत हुआ था। भगवान् श्रीकृष्णकी तरह पुण्यमयी मातृदेवीका अष्टम गर्भ था। यह प्राकट्य सम्भवतः सन् १८४५-४६ में हुआ था। जन्मके तिथि, बार आदि श्रीकृष्णसे मिलते जुलते हैं और अधिकांश ग्रह तुङ्गी थे, जिनका प्रभाव श्रीजीके बाल्यकालसे ही देख पड़ता था। उनकी अलौकिक रूप, असाधारण प्रतिभा और अप्रतिम तेजस्विताको देखकर बड़े बड़े लोगोंको चकित हो जाना पड़ता था। श्रीजी अनन्य मातृभक्त और माताके प्रियपात्र थे। यहाँ तक कि, १०-१२ वर्षकी अवस्थातक माताके पासही सोते और एक घड़ीभर भी नहीं बिछुड़ते थे। आपके पितृदेव पुण्यवान् श्री मधुसूदनमुखर्जी बड़े बुद्धिमान् और जंगी व्यवसायी थे। कलकत्तेसे दिल्ली तक उनकी कोठियाँ चलती थीं और ईस्ट इण्डिया कम्पनीपर उनकी अच्छी धाक थी। बङ्गीय भरद्वाज गोत्री कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और पतिपत्नी दोनों श्रीजगदम्बाके परम उपासक थे। उन्हींकी कृपासे उन्हें पुत्ररूपमें परमात्माका लाभ हुआ था। यद्यपि श्रीजीकी व्यावहारिक शिक्षाका यथोचित प्रबन्ध किया गया था और वे उसमें निपुण भी हो गये थे; तथापि उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति अध्यात्मकी ओर थी और वे सदा अध्यात्मचिन्तनमें ही रमे रहते थे। विद्यासम्बन्धी जो ग्रन्थ उठाते, एकबार पढ़कर या सुनकर ही उसको पचा डालते थे। विद्वानों और साधुसन्तोंसे सत्सङ्ग करनेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। इसीलिये उन्होंने अपने उद्यानमें एक लताकुञ्जमें एक आश्रम बनाया था,

जहाँ विद्वान् और महात्मा लोग एकत्र होकर शास्त्र-चिन्ता किया करते थे। श्रीजीकी ओरसे उनका अच्छा सत्कार भी होता था। संयोगवश थोड़ेही दिनोंमें उनके पितृदेवका स्वर्गवास हो गया और अन्य भ्राताओंके होते हुए भी कर्मशक्तिकी प्रबलता होनेसे इतने बड़े व्यवसायके सम्हालनेका भार आपपर आ पड़ा तथा इच्छा न होते हुए भी मातृदेवीके आग्रहसे विवाह-बन्धनमें आबद्ध होना पड़ा। परन्तु इसमें उनका जी नहीं लगता था और दिनरात देश-दशाको सुधारनेका उपाय सोचा करते थे। अन्तमें उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि, जब तक शरीर, मन और प्राण सम्पूर्ण रूपसे देश, धर्म और जातिकी सेवामें अर्पण नहीं किये जायँगे, तबतक इस देशका न उद्धार होगा और न इसका पतन ही रुकेगा।

यदि जगत्कल्याणमें ही देहको लगा देना है, तो दारैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा आदि संकुचित भावनाओंपर तिलांजलि देकर संन्यास-ग्रहण करना ही होगा। जब कोई कार्य होना होता है, तो उसके लिये कारणस्वरूप निमित्त भी उपस्थित हो जाते हैं। इसी तरहके पारिवारिक निमित्त श्री-जीको भी मिल गये और श्रीआदि शङ्कराचार्यकी तरह उन्होंने भी इस प्रतिज्ञापर मातृदेवीकी संन्यासके लिये युक्तिसे अनुमति प्राप्त कर ली कि, उनके अन्तिम समयमें श्रीजी उनके निकट उपस्थित रहेंगे। अन्तःकरणमें पूर्णवैराग्य उदित हो चुका था। गृहस्थीमें पुत्र-कन्याएँ भी उत्पन्न हो चुकी थीं। यों पितृऋणसे उऋण होकर और गौतमबुद्धकी तरह युवावस्थामें ही लक्ष्मी जैसी प्रेममयी पत्नी तथा सुकुमार दो कुमारोंका मोह त्यागकर उन्होंने देव-ताओं और ऋषियोंके कार्यमें संलग्न होनेका संकल्प कर संन्यास ले लिया। जो 'गुरूणां गुरु' हैं, उसका गुरु कौन हो सकता है? परन्तु जिस वर्णाश्रमधर्मका उद्धार और रक्षा करनेमें जो आत्मसमर्पण करना चाहता हो, वह उसकी मर्यादाका कैसे भङ्ग कर सकता है? इसी विचारसे भगवान् श्रीदत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये थे और उसी परम्पराके अनुसार परमतपस्वी और साधक पूज्यपाद श्रीस्वामी केशवानन्दजीका शिष्यत्व स्वीकार कर श्रीजीने संन्यासाश्रम ग्रहण कर लिया। श्रीविग्रहका प्रथम नाम यज्ञेश्वर था, वह बदलकर आपका योगपट्ट ज्ञानानन्द हुआ। दोनोंका अर्थ एक ही है।

संन्यास ग्रहण करनेपर आपने भारतके विभिन्न भागोंमें परिभ्रमण कर देशकी परिस्थितिका सूक्ष्मदृष्टि-से अध्ययन करते हुए हिन्दूजातिकी नाड़ी भलीभाँति जान ली। देवताओं और ऋषियोंको भी किसी महान् कार्यके सम्पादनके लिये शक्तिसंग्रहके हेतु तपस्या करनी पड़ती है। तदनुसार श्रीजीने अर्बुद (आबू) पर्वतके वशिष्ठाश्रममें एकान्तमें स्थित होकर वर्षोंतक कठोर तपस्या की और परिणामस्वरूप वहीं आपको भगवत्साक्षात्कार होकर आदेश हुआ कि, यथार्थ ज्ञानका विस्तार करनेसे ही इस देश, जाति और धर्मका उद्धार हो सकता है। इसी कार्यको अपने जीवनमें सिद्ध करो। श्रीजगदम्बाकी आज्ञा-को शिरोधार्य कर आप कर्मयोगमें प्रवृत्त हुए और चमत्कार यह देख पड़ता कि, जब कभी आपके कार्य-में विघ्नबाधाएँ उपस्थित होतीं, तब श्रीजगदम्बा स्वयं उस कार्यको सम्हाल लेती थीं। श्रीजगदम्बाके साथ वे समरस हो रहे थे। एकबार अनेक दुष्टोंने उनको नानाप्रकारके कष्ट पहुँचाये, जिनको देखकर आस-पासके लोग बहुत घबड़ा गये। उनसे व्याकुलता

से पूछा गया—"महाराज! इस विपत्तिसे कैसे उद्धार होगा?" उन्होंने धीरतासे हँसते हुए उत्तर दिया—"बेटा! चिन्ता क्यों करते हो? जानते नहीं, 'दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलम्'। यह तो उनका शील ही है। वे अपना काम आप सम्हाल लेंगी।" वास्तवमें थोड़े ही दिनोंमें विपत्तियोंके सब मेघ आपही तितर-बितर हो गये और विरोधियोंको अपने मुँहकी खानी पड़ी। ऐसी भक्तियोगकी उत्कटता और अनन्यता अवतारी पुरुषोंमें ही देख पड़ना सम्भव है।

देश और धर्मकी सेवा करनेकी योजना तैयार कर आप आबूकी तपोभूमिसे चलकर हरद्वारमें कुम्भ-स्नानके लिये पधारे और वहीं श्रीभारतधर्म महा-मण्डलकी स्थापना की। यही महामण्डल उनके कार्यक्षेत्रका अन्ततक माध्यम बना रहा। इसीसे कभी कभी वे कहा भी करते थे कि, महामण्डल मेरा शरीर है। महामण्डलका कार्यालय मथुरा-में लाया गया। वहींसे प्रचारकार्य और शास्त्र-प्रकाशनका कार्य आरम्भ हुआ। सुभीता पाकर महामण्डलकार्यालय काशीमें आ गया और यहींसे यह महती संस्था शाखा-प्रशाखाओंमें फैलकर पल्लवित, पुष्पित और सुफलित होने लगी। गत शताब्दीके अन्तमें ही यद्यपि यह संस्था स्थापित हो चुकी थी, तथापि १६०१ में इसकी रजिस्ट्री हो गयी। जिससे स्वार्थियोंकी पहलेकी अन्धाधुन्धी दूर होकर संस्थाका व्यवस्थित रूप हो गया और इसका कार्य सुचारु रूपसे चलने लगा। इसीके द्वारा श्रीजीकी ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति विशेष रूपसे प्रकट होने लगी।

महामण्डलके द्वारा देश-देशांतरोंमें उत्तम धर्मोपदेशक नियुक्त किये गये, सात भाषाओंमें मासिकपत्र निकलने लगे, शास्त्रग्रन्थोंके भाष्य लिखे जाने लगे, सब प्रांतोंमें प्रान्तीय मण्डल और सहस्रों शाखा सभाएँ स्थापित हुईं, ग्रन्थप्रकाशनका कार्य आरम्भ किया गया, उपदेशकोंकी कमी दूर करनेके लिये उपदेशक-महाविद्यालय खोला गया, धर्मचर्चा होने लगी, संस्थाके लिये बहुमूल्य भवन खरीद लिया गया और जो रसे रसेके साथ धर्मकार्य अग्रसर होने लगा। धर्मोन्नति, शास्त्रीय ज्ञानका विस्तार और सामाजिक अभ्युदय करनाही इस संस्थाका सदासे लक्ष्य रहा आया है।

चाहे कोई कार्य छोटा हो या बड़ा, उसके सञ्चालनमें अर्थका प्रयोजन होता ही है। इसके लिये श्रीजीने सर्वप्रथम धन-सम्पन्न वैश्य जातिकी नाडी-को टटोला; परन्तु वणिक् वृत्तिशाली वैश्यजातिमें इस महायज्ञको सम्पन्न करनेकी शक्ति देख नहीं पड़ी। तब श्रीजीकी दृष्टि क्षत्रियजातिकी ओर मुड़ी। उस जातिमें कुछ चैतन्य होनेके लक्षण दिखाई देने लगे। अतः श्रीजीने उनके राज्योंमें सञ्चार किया। बड़े बड़े राज्योंके धार्मिक नरेशों पर श्रीजीके उपदेशोंका अच्छा प्रभाव पड़ा और उन्होंने स्थायी दानपत्रों द्वारा महामण्डलको वर्षासन निश्चित कर दिया। भाग्यवान् नरपतियोंमें दरभंगा, उदयपुर, कश्मीर, टीकमगढ़, किशनगढ़, सैलाना आदि राज्यों-के अधिपति श्रीजीके विशेष भक्त थे और श्रीजीकी आज्ञाओंका पालन किया करते थे। वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाके अनुसार सनातनधर्मी जनताकी प्रतिनिधि-भूत इस संस्थाका नेता वर्णगुरु ब्राह्मण ही होना चाहिये, इस विचारके अनुसार धार्मिक, विद्वान् और राज्यकार्यकुशल स्वर्गीय महाराजाधिराज रमेश्वरसिंह-

बहादुर दरभंगा नरेशको इस महासभाके सभापति पदपर प्रतिष्ठित किया गया।

महामण्डलको आगे कर श्रीजीने उसके द्वारा ऐसे ऐसे महान् कार्य किये, जैसे आजतक न किसीसे बन पड़े और न बन सकते ही हैं। हमारे देशमें मत-मतान्तरोंका बड़ा झगड़ा है, जिसको देखकर विदेशी लोग भी हमारा उपहास करते हैं। जहाँ एक सम्प्रदायके आचार्य अन्य सम्प्रदायके आचार्यको कानी आँखसे भी देखना पसन्द नहीं करते थे, वहाँ श्रीजीने अपने कर्मकौशलसे सब सम्प्रदायके आचार्योंका भी श्रीभारतधर्म-महामण्डलके झण्डेके नीचे एकत्र कर दिया। क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या शाक्त, क्या स्मार्त सभी सम्प्रदायोंके आचार्य महामण्डलके संरक्षक हुए और परस्पर सद्भाव रखने लगे। इसीतरह देशभरकी धर्मसंस्थानोंको आपने एकसूत्रमें आबद्ध किया। श्रौत-स्मार्तकर्मोंके उद्धार और देवताओंकी प्रसन्नताके लिये श्रीमहामण्डलके यज्ञमण्डपमें दो सौसे अधिक वैदिक तथा तांत्रिक छोटे बड़े यज्ञ कराये और प्रधानकार्यालयके वेद भगवान्के ठाकुरद्वारेमें, यज्ञमण्डपके गायत्रीमन्दिरमें और झण्डेतलके हनूमानजीके मन्दिरमें नित्य-नैमित्तिक नियमित पूजा-अर्चाकी व्यवस्था की। श्री आदि शंकराचार्यप्रमुका उत्तराखण्डका ज्योतिर्मठ उच्छिन्न हो गया था, उसका उद्धार कराया और सुयोग्य आचार्यचरणको वहाँ प्रतिष्ठित किया। नरोरामें गंगाजीकी धारा रोक ली गयी थी, उसे सरकारपर दबाव डालकर खुलवा दिया।

श्रीजीके जीवनका सर्वश्रेष्ठ कार्य शास्त्रोंका उद्धार माना जा सकता है। दैवीमीमांसा और कर्ममीमांसा लुप्त थी, इसीसे यहाँ साम्प्रदायिक कलह बना रहा। नित्यऋषियोंकी प्रेरणासे वे दोनों दर्शन अनुसन्धानकर श्रीजीने खोज निकाले। उनपर और अन्य उपलब्ध दर्शनोंपर भाष्य और विस्तृत भूमिकाएँ लिखीं तथा दर्शनशास्त्रको सुव्यवस्थित और शृंखलाबद्ध कर दिया। पञ्चोपासनाओंकी गीताएं खोज निकालीं। संन्यासगीता और संन्यास-पद्धति तैयार की और सर्वजनोपयोगी 'धर्मकल्पद्रुम' नामक महाग्रन्थ लिखवा दिया। इसप्रकार कर्मियों, ज्ञानियों, और भक्तोंके कल्याणके लिये इतना प्रचुर मसाला प्रस्तुत कर दिया है, जो कलियुगके अन्ततक काम आवेगा और उससे हिन्दूजाति, हिन्दूधर्म और हिंदूसंस्कृतिकी चिरकालतक सुरक्षा हो सकेगी। ऋषि मन्त्रद्रष्टा होते है। उन्हें वेदोंके मन्त्र ज्योंकि-त्यों सुनायी देते हैं और शास्त्र उनके अन्तःकरणमें भावरूपसे प्रकट होते हैं। श्रीजीके उक्त असाधारण शास्त्रीय पुरुषार्थसे उनके महर्षि होनेमें कोई संदेह नहीं रह जाता। सब प्रकारके अधिकारियोंके उपयोगी आपने छोटे-बड़े दो सौसे अधिक ग्रन्थ निर्माण किये हैं।

श्रीजीका स्थूलस्वरूप भी अद्भुत था। उनमें ऐश्वर्य, माधुर्य और सौन्दर्य कूट कूटकर भरा था। गौरवर्ण, पूर्ण सुडौल ढाँचा, विशाल और रसीले तेजस्वी नेत्र, प्रशस्त भाल, भव्यमूर्ति, अलौकिक जटाकलाप, कमलचरण सब कुछ अनोखा था। मन्दमुस्कान दर्शकोंके अन्तःकरणोंमें सात्त्विकभाव उत्पन्न कर देती थी। भाषण मधुर और आकर्षक था। विरोधीपर भी उसकी अजब छाप पड़ती थी। वक्तृत्व सारग्राही होनेसे यही कव्युक्ति चरितार्थ होती थी :— "येषां स्वैरकथालापा उपदेशा भवन्ति नः" जिनकी साधारण बोलचाल ही हमारे लिये उपदेशोंका काम

श्रीजी सन १९३८ ई०

करती थी। बालकोंके साथ बालक, विद्वानोंके साथ विद्वान् और योगियोंके साथ योगिराज होनेका उनका स्वभाव हो गया था। त्याग, तप, ज्ञान और तेजस्विता उनमें मूर्तिमती हो रही थी।

पुरुषवर्गके कल्याणके लिये जैसा श्रीमहामण्डल बना, वैसी ही महिलावर्गकी उन्नतिके लिये उनकी सहायतासे श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की स्थापना हुई। उसके सचालन-कार्यका भार उन्होंने अपनी सुयोग्य शिष्या श्रीमती विद्यादेवीजीपर डाला और देवीजी भी श्रीगुरुदेवकी आज्ञा सिर चढ़ाकर परिषद्का कार्य बड़ी लगनसे उत्तमतासे अग्रसर कर रही हैं।

श्रीजीके अनेक क्षेत्रोंके कार्य इतने अधिक है, जिनकी सूची भी इस पुस्तिकामें नहीं आ सकती। त्रिवर्णोंके संघटनका उनका कार्य बेजोड़ है। आगरेकी वैश्यमहासभा और राजस्थानकी क्षत्रियमहासभाके आपही जन्मदाता थे। यदि अनुकूलता हुई, तो श्रीजीका विस्तृत जीवनचरित लिखनेका प्रयत्न किया जायगा और उसीमें महामण्डलकी सेवाओंका विस्तृत विवरण दे दिया जायगा। आजतो इस बहानेसे हम केवल उनका पुण्यस्मरण कर रहे हैं।

शरीर नाशवान् है, चाहे कितने ही वर्षोंतक टिका रहे। इधर बहुत दिनोंसे श्रीजीको अनुभव हो रहा था कि, अब कलेवरका साथ छोड़ना पड़ेगा। अतः उन्होंने अपने शिष्योंसे कह दिया था कि, उसे जला दिया जाय। क्योंकि जिन पंचतत्त्वोंसे यह बना है, वे यथासम्भव शीघ्र अपने अपने रूपमें मिल जाने चाहिये। तदनुसार जब गत २८ जनवरीको उषाकालमें शरीरत्याग ॐकारके अन्तिम उच्चारणके साथ हुआ, तब मणिकर्णिकाकी चरणपादुकाओंमें पवित्रताके साथ उसका अग्निसंस्कार कर दिया गया। सनातन-धर्मका सूर्य अस्त हो गया!

श्रीजी अमर हैं, चाहे उनका शरीर भले ही छुट गया हो। इसी विश्वाससे उनके चरणोंका पुण्यस्मरण करते हुए हम प्रार्थना करते हैं कि, हे गुरुदेव! आपका पुण्यस्मरण हमको सदा होता रहे, जिससे आपका बताया हुआ हमारा कर्तव्यपथ हमें सूझता रहे। हमारी धर्म, देश और भगवान्के प्रति श्रद्धा रहे तथा धर्मसेवा करते करते जैसा आपने तन त्यागा है, वैसा हमारा भी देहान्त हो।

(कृष्णदेव)

सनातनधर्मका सूर्य अस्त हो गया।

हा! प्रातःस्मरणीय ११०८ श्री स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज

(लेखक—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा)

हमने जिस समय देहली के काँग्रेसी समाचार-पत्र 'हिन्दुस्तान'में यह दुःखद समाचार पढ़ा कि भारतके स्वनामधन्य परमपूज्यपाद प्रातःस्मरणीय जगद्वन्द्य ११०८ श्रीज्ञानानंदजी महाराज भारतधर्ममहा-

मंडलका कैलाशवास हो गया तो उस समय हमें जो घोर दुःख हुआ वह कहा या लिखा नहीं जा सकता। आँखों से अश्रुधारा वहने लगी, छाती फटने लगी, शरीरमें काटो तो खून नहीं चारों ओर अंधकार ही अंधकार प्रतीत होने लगा। बरबस मुखसे शब्द निकल पड़ा 'हाय! आज हमारे सनातन-वर्णाश्रम-धर्मका सूर्य अस्त हो गया! हाय! आज हमारी सनातनधर्म, हिन्दूधर्मकी डूबती नैयाको कौन पार लगायेगा? ऐसे महान् भयानक समयमें जबकि दयानंदके आर्यसमाजी चेले सनातनधर्मको जड़मूलसे समाप्त करनेके लिये दिनरात अवतारवाद, मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पणका खंडन करते थे, कलिमलहारिणी श्रीगंगा-यमुनाको दिनरात गाली बकते थे, जात-पाँतको मेट रहे थे, चमार-भंगीके हाथका सबको खिला-पिलाकर भ्रष्ट कर रहे थे, विधवाओंके विवाहका प्रचारकर पातिव्रत्यधर्मको समाप्त कर रहे थे और मंदिरोंसे घृणा करा सबको मंदिर तोड़क औरंगजेब बनाने जा रहे थे, पुराणोंकी कथायें पोपोंकी बता फिरसे हिन्दुशास्त्रोंसे हमाम गर्म करनेकी याद दिला रहे थे, सनातन-धर्मकी नैया डगमगा रही थी और सनातन-धर्मकी पताका झुकने जा रही थी, उस समय भगवान्ने ३० करोड़ हिन्दुओंको एक ऐसा महापुरुष योगिवर्य परमतपस्वी स्वामी ज्ञानानंद जैसा उच्चकोटिका संत भेजा कि जिन्होंने अपनी घोर तपस्याके बल पर अपना एक अद्भुत तेजस्वी महान् संत श्रीस्वामी श्रीदयानंद श्रीमहाराज बी. ए. शिष्यको उत्पन्न किया और सनातन-धर्मकी रक्षाके लिये आगे किया। आपके इस अद्भुत शिष्य-संतको पाकर सनातनधर्मी जगत् निर्भय हो गया और चारों ओर प्रसन्नताकी लहर दौड़ गई। इन शिष्य संतके कारण आर्यसमाजी धूर्त मैदान छोड़ भागने लगे और आपने मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतारवाद पर ऐसे ऐसे शास्त्रार्थ किये और उन्हें ऐसे मुँह तोड़ उत्तर दिये कि बड़े बड़े घोर नास्तिकोंकी बोलती बन्द हो गई, छक्के छूटने लगे और नास्तिक उल्लू आपके तेजके सामने इधर उधर भागकर जान बचाने लगे। आपके प्रतापसे लाखों नास्तिक आस्तिक हो गये और इस प्रकार सनातन-धर्मकी नैया पार लग गई और सनातनधर्मकी पताका शानसे फहराने लगी। क्या सनातन-धर्मी जगत् आपके इस कार्यको भूल सकता है? आज उस समयसे भी बढ़कर घोर विपत्तिके बादल मँडरा रहे हैं। हमारी उस समय तो आर्यसमाजसे आपने रक्षा की, पर जो महान् भयानक समय हिन्दूधर्मको जड़मूलसे समाप्त करनेके लिये आज उपस्थित है और यह मुँहवाये सामने जो गाँधीवाद चला आ रहा है आज इससे रक्षा करनेके लिये सनातनी जगत् आपकी ओर टकटकी लगाये देख रहा था कि कब यह महर्षि फिरसे हमारी रक्षाके लिये आगे आता है? आज यह गाँधीके शिष्य हिंदू-कोडबिल, तलाकबिल द्वारा जड़मूलसे हिन्दूधर्मको समाप्त करने जा रहे हैं, खुलेआम ब्राह्मणकी लड़की की शादी भंगी लड़केसे और ब्राह्मणके लड़केकी शादी भंगीकी लड़कीसे और ब्राह्मण-कन्याकी मुसलमानोंसे पारसियोंसे कर वर्णाश्रमधर्मका विध्वंस कर रहे हैं, दिनरात देशमें करोड़ों बन्दर, मोर, नीलगाय, हिरन, चूहे मारे जा रहे हैं और मछली खाने, मुर्गी अण्डे खानेका गवर्नमेन्टकी तरफसे प्रचार किया जा रहा है और इस प्रकार देशको घोर हिंसक मांसाहारी बनाया जा रहा है, और हिन्दूको 'हिन्दू' कहनेसे रोका जा रहा है उसे आज गैरमुसलिम, हिन्दुस्थानका नाम 'इन्डिया' और हिन्दीकी जगह

हिन्दुस्तानी भाषाके राग अलापे जा रहे हैं। यह गाँधीवाद हिन्दूधर्मको चट करने जा रहा है। ऐसे घोर महान् भयानक समयमें आपका उठजाना हिन्दू-जातिके लिये सबसे बढ़कर घोर दुःखकी बात हुई है।

महर्षिके दर्शन करनेका सौभाग्य।

एक बार जब कि काशीमें पूज्यपाद स्वामी करपात्रीजी महाराजने शतकुण्डी महायज्ञ कराया था तो उस समय हमें भी उसमें जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तभी हमने भारतधर्म-महामण्डलमें जाकर प्रातःस्मरणीय ११०८ श्रीस्वामी श्रीज्ञानानन्दजी महाराजका दर्शन किया था। ऊपर कमरेमें जब जाकर आपके दर्शन किये तो हमें साक्षात् शंकर जैसे प्रतीत हुये। लम्बी घुटनों तक लटकी जटायें परमतपस्वी महापुरुषका दर्शन कर हृदय गद्गद् हो गया और हमने अपनेको महाराज श्रीका दर्शन कर चरण छू आशीर्वाद प्राप्त कर कृत्यकृत्य माना। उस समयके आनन्दको लिखना मानो सूर्यको दीपक दिखाना है। इस घोर कलिकालमें ऐसे महान् तपस्वीका दर्शन कर प्रसन्नता न होगी तो कब होगी ? आपके कितने ही बड़े बड़े योग्य शिष्य थे। बड़े बड़े राजा महाराजा आपके दर्शनार्थ आया जाया करते थे। आज एक एक करके सभी सनातन-धर्मके रक्षक संत उठते चले जा रहे हैं। आपके उठ जानेसे हिन्दूधर्मको सनातनी जगत्की जो महान् क्षति हुई है उसकी पूर्ति निकट भविष्यमें होना बड़ा कठिन है। आज सनातन-धर्मका सूर्य अस्त हो गया है और सनातनी जनताके लिये अन्धकार ही अन्धकार प्रतीत हो रहा है। आज सनाननधर्मको, हिन्दूधर्मको अपने पराये सभी मेटने पर तुल गये हैं, भारतमाताके भी पाकिस्तान द्वारा टुकड़े टुकड़े अङ्गभङ्ग खण्ड खण्ड हो गये हैं, लाखों हिन्दू ललनाओंको उड़ाकर ले जाया गया है जो गुण्डोंके घरोंमें पड़ीं खूनके आँसू बहा रही हैं, करोड़ों हिन्दू दरदरके भिखारी बने घूम रहे हैं, गायोंको हलोंमें जोतनेको कहा जा रहा है और गोवधके लिये विदेशोंसे मशीनें मँगाई जा रही हैं। हाय ! आज इस डूबती नैयाका खिवैया महर्षि भी हमसे छीन लिया गया है, अब तो भगवान् ही रक्षक हैं। हम प्रातःस्मरणीय महाराज श्रीके चरणोंमें श्रद्धांजलि भेंट करते हैं और भगवान् श्रीविश्वनाथसे प्रार्थना करते हैं कि, प्रभो ! जिस सनातनधर्मकी रक्षाके लिये आप बौद्धोंसे टक्कर लेनेके लिये शङ्कराचार्यके रूपमें आये थे अब हमें फिरसे बचानेके लिये पधारो यही प्रार्थना है।

हा ! पितृतुल्य तपोनिधि !
श्री स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज !!

२७ जनवरीकी कालरात्रि ! तेरा बुरा हो, हमने तेरा क्या बिगाड़ा था जो तू अपने निर्वाण-कालमें—जाते जवाते समयमें भी हमारी एक परम निधि लूट कर ही गयी ! २८ जनवरीकी उस पवित्र दैव-वेला, उस ब्राह्ममुहूर्त्तको इतना विषाक्त और विषादमय बना देनेका हत्यारिणी ! तुझे साहस ही कैसे हुआ ? 'हिन्दूसमाजके अनन्य हितैषी, श्री भारतधर्ममहामण्डलके संस्थापक योगिराज श्री स्वामी ज्ञानानन्दजी

महाराज अब इस संसारमें नहीं रहे—इस दुःसम्वाद-को सर्वत्र फैला देनेकी सूत्रधार नटिका बनकर सच बता, तुझे कौनसा सुयश प्राप्त हुआ ? आह, कितनी क्रूरता और निर्ममता समायी थी तेरे मनमें और वह भी न जाने कबकी, कि जिसके आवेशमें आकर तुझे इतना बड़ा जघन्य कार्य कर डालनेमें तनिक लज्जा न आयी ! तुझे क्या पता कि तेरे इस जघन्य कार्यसे हमारा कितना बड़ा मार्गप्रदर्शक, लक्ष्यनिर्देशक, उन्नायक और कल्याणविधायक अथवा एकशब्दमें ही—जो हमारा 'सब कुछ' था—खो गया। कर्ण-कुहरमें तेरी यह लीला आते ही हमतो हृदय थाम कर रह गये !

आह ! विशालकाय, शुभ्र गौराङ्गवर्णवाला हमारा वह देवता-स्वरूप जटाजूटधारी बूढ़ा तपस्वी जिनकी अनुपम और अद्वितीय छवि-शोभा 'श्रीकाशी विश्वनाथजीकी-सी आनन्ददायिनी थी, आज हमें देखनेको कहाँ मिलेगा ? जिसका समग्र जीवन ही उस परमधर्मके उत्थान और अभ्युत्थानमें बीता, जिसकी ग्लानि कभी श्रीभगवान्को भी सहन नहीं होती, उसके साथ तेरी ऐसी क्रूरलीलाका समावेश कहाँ होगा, क्या तू इसे बता सकती है ? एक मन्द मधुर मुस्कानके साथ जिसकी पीयूषवर्षिणी वाणी संसारके अनेकानेक ताप-शाप और अभिशापोंको क्षणमात्रमें निवारण करती, उसको हमारे बीचसे उठा ले जानेमें पापिनी ! तुझे क्या मिला ? आज भारतका सम्पूर्ण आस्तिक समाज तेरे इस पापकृत्यके लिए तुझे कोस रहा है और आजीवन कोसता रहेगा। तेरे इस कुकृत्यके कारण आज हृदयमें जैसी मर्मभेदिनी पीड़ा उत्पन्न हो रही है, उसको यह निर्जीव जड़ लेखनी क्या कभी किसी प्रकार व्यक्त कर सकती है ? उस पीड़ाको और उस व्यथाको तो एकमात्र हृदय ही जानता है, पर उसमें भी अब उसे व्यक्त करनेकी इस समय शक्ति और सामर्थ्य नहीं रही। वह तो सर्वथा अधीर हो रहा है—आह ! लगातार बारह वर्षों तक अविराम सेवामें रहकर जिसकी अकृत्रिम स्नेह-सुधाधारामें परिप्लावित होकर शरीर, मन, वचन और प्राण सभी पवित्र हुए, उसके महावियोगमें हृदय किस भाँति धैर्य धारण करे, क्या कोई हमें बता सकता है ?

आह ! याद आती है आज हमें प्रकाण्ड विद्वत्ता धारण किये हुए श्रीगुरुदेवकी उस दिव्य मूर्त्तिका, उनके उस बालकोंके-से ऋजु स्वभावका, उनकी उस स्नेह-दयापरिपूरित कोमल वाणीका, निष्कलुषित और अकलंकित हृदयके निर्मल पवित्र प्यारका, बेजोड़ हृदयकी उस विशालताका जिसमें काम नहीं, क्रोध नहीं, लोभ नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, मात्सर्य नहीं—ईर्ष्या-द्वेषविहीन, शत्रु और मित्रपर एक समान प्रीति—निःसीम और अगाध उमड़ते हुए उस सागरकी-सी सुन्दर शोभा, जिसमें तनिक भी उबाल नहीं, उफान नहीं, ज्वार नहीं, भाटा नहीं—प्रशांत महासागर-सा अटल और अविचल—हिमालय-सा अडिग, धीर वीर और गम्भीर—देश एवं जाति-हितकी चिन्तनामें अहर्निश निमग्न—सबका प्यारा और सबका सम्मानदाता कौन है ! ऐसा अब जिसके पावन पवित्र स्वरूपमें इन निधियोंका परिदर्शन कर हम अपने मन-मानसको शीतल और परितृप्त कर सकें, उसे जुड़ा सकें ! आह ! गुरुदेवकी वे अनन्त गुणावलियाँ—आज एक एक करके अनेकधा रूपमें, चल-चित्रकी भाँति हृदय-पटल पर उभड़ उभड़कर अङ्कित-चिह्नित और भासित-प्रतिभासित हो रही हैं।

आँखोंके सामने उनका एक ताँता-सा बँध रहा है। भग्नहृदय कलपता हुआ तड़प उठता है उन स्मृतियों-को लेकर—हाँ, आनन्ददायिनी थीं कभी इन सब गुणावलियोंकी मधुर स्मृतियाँ, पर आज ? आज तो उनके इस महावियोगके समय वे हृदयमें शूल गड़ने-की-सी पीड़ा उत्पन्न करनेवाली बन गयी हैं। स्मृति-मात्रसे ही हृदय आकुल-व्याकुल हो उठता है। हृदयकी उस पीड़ाको, मनकी उस आन्तरिक व्यथा को किसे सुनाऊँ ? उसे सुननेवाला और उसे शीतल करनेवाला अब रहा ही कौन ?

गुरुदेव ! तुम चले ? अच्छा, जाओ ; हमे छोड़कर आनन्दपूर्वक चले जाओ और दिव्य लोकके दिव्यधाममें जा विराजो, इसमें हमारे वशकी बात ही क्या यह तो विधिका ही विनिर्मित विधान है—

'आया है सो जायगा, राजा रंक फकीर'

जाओ, हम भी रो-धोकर चुप हो जायेंगे और तनिक हृदय शीतल होनेपर तुम्हारी इन गुणा-वलियोंमे ही तुम्हारे रूपका दर्शन करते फिरेंगे। जीवित रहते तो कभी-कभी 'पत्रं पुष्पं फलं'—तुम्हारी कुछ सेवाकर तुम्हारे ऋणसे उऋण होनेका प्रयास करते, पर अबतो वह भी बशकी बात नहीं रही। अच्छा जाओ, किन्तु अश्रुपूर्ण नेत्रोंकी यह अर्घ्याञ्जलि जो स्वयमेव गिरकर तुम्हारे पूज्यचरणोंमें समर्पित हो रही है, इसे तो श्रद्धाञ्जलिके रूपमें स्वीकार करते ही जाओ गुरुदेव !

शोक-विह्वल :—
तुम्हारा ही
आत्मा
भूतपूर्व सम्पादक 'आर्य-महिला'।

—श्रद्धांजलि सभा—

हिन्दूधर्म, हिन्दूदेश और हिन्दूसमाजकी जो सेवा पूज्यस्वामीजीके द्वारा हुई थी, वह भुलाई नहीं जा सकती। गत २८ जनवरीके प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें पूज्यपाद श्रीस्वामीजीका ब्रह्मनिर्वाण हो गया। गत ४–२–५१ को श्री आर्यमहिला महाविद्यालयमें उनको श्रद्धाञ्जलि समर्पित करनेके लिए एक महती सभा सुप्रसिद्ध एवं प्रकाण्ड विद्वान् महामहोपाध्याय व्याख्यानवाचस्पति श्री पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदीकी अध्यक्षतामें हुई। जिसमें अनेक विद्वान् और प्रतिष्ठित सज्जन एवं महिलाओंने सम्मिलित होकर पूज्यपाद श्रीस्वामीजीके प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित किया। श्रद्धा-ञ्जलि समर्पित करनेके अवसरपर निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और भाषण हुए, जिन्हें अवलोकनार्थ हम क्रमसे आगे प्रकाशित कर रहे हैं।

प्रस्ताव

"हम समस्त काशीवासी, अखिल भारतीय विराट-धर्ममहासभा श्रीभारतधर्म-महामण्डलके पूज्य प्रतिष्ठा-पक स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी महानिर्वाण-प्राप्तिसे अत्यन्त दुःखी है। आपने जो सनातन-धर्म, हिन्दूसंस्कृति एवं मानवताकी सेवा की है उससे आपका नाम इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित रहेगा। जब ब्रिटिश शासनसे भारतवर्ष पदाहत तथा पद-दलित होकर आत्मविस्मृत हो गया था तब आपने महामण्डलद्वारा सुप्त भारतको जगाकर अध्यात्मलक्ष्य

एवं धर्मकी ओर प्रेरित किया। आपहीसे प्रेरणा प्राप्तकर आपके शिष्य ब्रह्मीभूत स्वामी दयानन्दजी प्रभृति महातपस्वी अनेक शिष्योंने सनातनधर्मकी मन्दाकिनी बहा दी। जिसके फलस्वरूप सनातन-धर्मकालेजों एवं महामण्डलकी शाखाद्वारा तरुण भारत जाग उठा। सनातनधर्मपोषक अनेक साहित्योंकी विविध-भाषाओंमें रचना एवं प्रकाशन कर आपने मेघाच्छन्न हिन्दूधर्मसूर्यको मुक्तकर उसके आलोकसे भारत एवं संसारका पथप्रदर्शन तथा दैवीजगत्का रहस्योद्घाटन किया। संक्षेपतः आप स्वतन्त्र भारतकी आत्माको प्रेरणा देनेवालोंमें अग्रणी थे। ऐसे लोकोत्तर महापुरुषके प्रति हम सादर सभक्ति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। आपके अनन्त उपकारोंके लिए देश आपका सदा ऋणी रहेगा। श्रीभगवान् विश्वनाथके चरणोंमें हमारी सांजलि प्रार्थना है कि वे इस दिव्यविभूतिद्वारा ऐसी प्रेरणा दिलाया करें जिससे जगत्में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की स्थापना हो।

हमलोग आज यह भी दृढ़निश्चय करते हैं कि उनकी पवित्र स्मृतिमें ऐसा स्मारक बनाया जाय जिससे उनके जीवन तथा कार्योंसे वर्तमान एवं भावी सन्ततिका पथप्रदर्शन होता रहे।"

इस स्मारक समितिके निम्नलिखित सदस्य चुने गये।

सर्वश्री महामहोपाध्याय पं० गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी, नरेशचन्द्र दत्त, कालीकृष्णचक्रवर्ती, लौटूसिंह गौतम तथा पण्डित प्यारेकिशन कौल।

सभापति म० म० श्री पं० गिरिधरशर्मा का भाषण

उपस्थित सज्जनवृन्द और महिलाओं:—

जिनके दर्शनकेलिये काशीमें आनेकी लालसा मनमें लगी रहती थी, उन स्वामीजी महाराजके कैलाशवासी होनेके कारण हृदयमें बहुत दुःख हो रहा है। ब्रह्मीभूत श्रीस्वामीजी महाराजकी ऐसे तो सभीपर एक समान कृपा रहती थी, किन्तु मुझपर उनकी बहुत ही कृपा रहती थी। उनकी कृपाका मुझे गर्व था और इसीलिये मैंने अपनेको श्रद्धाञ्जलिका अधिकारी समझ इस स्थानको ग्रहण करनेमें संकोच नहीं किया। श्रीस्वामीजी महाराज जैसे महात्मा थे, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके सम्बन्धमें कितना भी कहा जाय, किन्तु सब थोड़ा ही है। ऐसे महात्माओंके पवित्र चरितके कथनसे पवित्रता प्राप्त होती है। मुझे बहुत समय-तक उनके सम्पर्कमें लाभ उठानेका अवसर मिला। एक श्लोक है—'श्रमेण महिमानं' जिसका तात्पर्य है कि कोई अपने परिश्रमसे महिमाको प्राप्त हो जाय। श्रीस्वामीजी सचमुच अपने परिश्रमके कारण ही अत्यन्त महान् महिमाको प्राप्त हुए। उनके चरित्रोंका यदि कोई पूर्णतः वर्णन करना चाहे तो वर्णन करते करते थक भले ही जाय पर उसका अन्त नहीं हो सकता। अतः उनकी चरित्रावलीका स्मरणकर हम उन्हें श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।

श्रीस्वामीजी महाराजके दर्शनका प्रथम सौभाग्य जब मुझे मिला था, प्रायः उसके अनन्तर ही भारत-धर्म-महामण्डल सन् १९०१ में स्थापित हुआ। पूज्य महात्माजीने महामण्डलकी स्थापना करके सनातन-

धर्मके प्रति बहुत बड़ा कार्य किया। मुझे यह बात अच्छी तरह विदित है कि समग्र भारतवर्षमें श्री-भारतधर्म-महामण्डलके द्वारा सनातनधर्म सम्बन्धी जैसे ग्रन्थ प्रकाशित हुए और सनातनधर्मकी जैसी सेवा हुई वैसी किसीके द्वारा नहीं हुई। महामण्डल-के द्वारा सनातनधर्म सम्बन्धी साहित्यका जो प्रका-शन हुआ वह श्रीस्वामीजी महाराजके अनवरत परिश्रमका ही फल है। सन् १६०८ में जब महा-राणा उदयपुर हरिद्वार पधारे थे उस समय मैं वहाँ था। मुझे ऋषिकुलके लिए सहायता प्राप्त करनी थी। महाराज, श्रीकृष्णानन्दजीके आश्रममें पधारे। वहाँ एक साधुसभा हुई और निश्चय हुआ कि ऋषी-केशमें एक साधुपाठशाला स्थापित की जाय। उस समय भी वहाँ मुझे श्रीस्वामीजीका दर्शन प्राप्त हुआ था। महाराणा उदयपुरसे अच्छी सहायता प्राप्त हुई। उसके बाद मुझे महामण्डमें कई बार ठहरनेका भी अवसर मिला। जब-जब मैं मिला पूज्य स्वामीजी महाराजके द्वारा जो वात्सल्य और कल्याणकारी उपदेश मुझे प्राप्त हुए वह कथनमें नहीं आ सकते, और इस प्रकार मुझे वहाँकी बहुत-सी बातें मालूम हुई। अतः जहाँ अनेक हितैषी थे, वहाँ यह भी कहना पड़ेगा और वह छिपाया नहीं जा सकता कि, भारतधर्ममहामण्डलके विरोधी भी थे और उनका विरोध अधिकाधिक मात्रामें हुआ, पर साथ ही हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि महान् पुरुषोंकी महत्ता विरोधसे ही प्रकट होती है। विरोधमें डटकर और कठिनाइयाँ उठाकर ही कार्य करनेसे महात्माओं-का महत्त्व प्रकट होता है। श्रीभगवान् व्यासने युधिष्ठिरसे कहा था, कि तुमसे विरोध करके तुम्हारे शत्रुओंने तुम्हारा बहुत उपकार किया। यदि विरोधी खुलकर तुम्हारे ऊपर आक्रमण न करते तो तुमको महत्त्वप्राप्तिका मार्ग कभी भी न मिलता। अतः द्वेषकरनेवालोंने तो उपकार किया और तुम्हारे महत्त्वको देखनेका संसारको अवसर दिया। महामण्डलका विरोधभी ऐसा ही हुआ, पर श्री-स्वामीजी महाराजने जिस धर्म-दृढ़ता और शान्तिके साथ उनके बीच जनकल्याण करते हुए कदम आगे बढ़ाया उससे उनकी सहनशीलता, गाम्भीर्य एवं कार्यपटुताका अपूर्व परिचय मिला है। कार्य करनेकी विशेष दक्षतासे ही उन्होंने अपना सुयश कायम रक्खा। इसप्रकार विरोध रहते हुए भी सुयशको कायम रखना सरल बात नहीं। वह बड़ी बात होती है। महाराजने यह सब कुछ किया। विरोध रहते हुए भी महामण्डलका प्रभाव यथास्थान रहा। विरोध रहते हुए भी इसके संरक्षक अनेक राजा-महाराजा हुए। मैंने स्वयं देखा था, एकबार इसी हथुआकी कोठीमें बहुतसे राजे और महाराजे इसके अधिवेशनमें सम्मिलित होनेके लिए एकत्रित हुए थे। काश्मीर, उदयपुर इत्यादि और महाराज दरभंगाका तो कहना ही क्या, वे तो निरन्तर इसके संरक्षक रहे और अब भी हैं। उनसे श्रीभारतधर्ममहामण्डल एकबार ही नहीं; निरन्तर मासिक सहायता पाता हुआ चला आता है। श्रीस्वामीजीका प्रभाव, उनका व्यक्तित्व, उनका ऋजु स्वभाव इतना उत्तम था कि उनकी आज्ञा-पालनके लिये सबलोग नत-मस्तक रहते थे। उनकी आज्ञासे इधर-उधर जाने-का किसीको साहस नहीं होता था। ऐसे धर्म-विरोधी कालमें भी धर्मकी मर्यादाकी रक्षा जो महा-मण्डलद्वारा हुई उसका सम्पूर्ण श्रेय श्रीस्वामीजी महाराजको ही है। समय परिवर्तनशील है।

परिवर्तन सदा होते रहते हैं, किन्तु श्रीभारतधर्म-महामण्डल श्रीस्वामीजी महाराजके तपोबल और कार्यप्रणालीसे अबतक एक समान पूर्णरूपेण प्रतिष्ठा प्राप्त है। १६०२ के बाद इस समयतक अर्थात् इस ५० वर्षके अवसरमें इस संस्थाद्वारा सनातनधर्मकी रक्षामें जो कुछ हुआ उसका पूर्ण श्रेय श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजको ही है। उनकी बुद्धिमत्ता, कार्य-प्रतिभा इतनी अद्भुत थी कि सभी लोग सहर्ष उनकी आज्ञा पालनकरनेको तैयार रहते। मैं पहले कह चुका हूँ कि धर्मग्रन्थोंका प्रकाशन और धर्मसाहित्यका प्रकाशन जैसा महामंडल द्वारा हुआ वैसा कहीं नहीं हुआ और किसीने भी नहीं किया। मुझसे लोग पूछते हैं कि किसी ऐसे ग्रन्थका नाम बतलाइये जिससे सनातनधर्मका तत्त्व अच्छी तरह मालूम हो जाय, उसका आभास पूर्ण-रूपसे प्रकट हो जाय तो मैं उसे 'धर्मकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थका हवाला जो महामंडलद्वारा प्रकाशित हुआ है, देता हूँ। इस ग्रन्थमें हिन्दूधर्मके तत्त्वका पूर्ण-रूपसे निरूपण है। संसारका कोई भी ग्रन्थ इसकी प्रतिस्पर्द्धामें टिक नहीं सकता। श्रीस्वामीजीके द्वारा ही इस ग्रन्थकी उत्पत्ति हुई है। श्रीस्वामीजीके द्वारा अनेकों धर्म-ग्रन्थोंकी उत्पत्ति हुई, किन्तु श्रीस्वामीजी किसी ग्रन्थपर अपना नाम नहीं देते थे। लोगोंका कथन था कि महामण्डल केवल साहित्य प्रकाशनका कार्य करता है, प्रचार कार्य नहीं। वह प्रचार-कार्य सम्पूर्ण भारतमें श्रीस्वामी दयानन्दजी द्वारा हुआ। श्रीस्वामी दयानन्दजी महाराज श्रीस्वामीजीके प्रिय शिष्य थे। उन्होंने सर्वत्र भारतमें जा-जाकर धर्मका उत्तम प्रचार किया। मैं तो श्रीस्वामीजीका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उनकी कृपा हमारे ऊपर इतनी थी कि जिस विषयमें और जब कभी मैंने उनसे निवेदन किया कभी परांमुख नहीं हुआ। लोग कहते थे कि श्रीभारतधर्म महामण्डलद्वारा जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे सब पण्डितों द्वारा लिखे गये हैं। स्वामीजी महाराज उनसे लिखवाया करते थे। किन्तु मेरे अपने अनुभवसे और इस समय पेपरों और अख-बारोंमें जो बात प्रकाशित हुई हैं उनसे यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि वे सब धर्मग्रन्थ उन्हींके कलमसे निकले हैं। संक्षेपमें मैं कहूँगा कि साहित्यसेवा और धर्मप्रचारका जो कार्य श्रीस्वामीजीद्वारा हुआ वह अप्रतिम हुआ। हिन्दूधर्मके विपरीत कोई बात गवर्नमेंटद्वारा यदि होती थी तो सर्वदा बड़ी निर्भी-कताके साथ श्रीस्वामीजी उसके विरोधमें तत्पर हो जाते थे। सभाओं तथा महाधिवेशनोंके द्वारा वे उसके उग्र विरोधमें लग जाते थे और इसप्रकार कई बार उन्होंने धर्मके विपरीत कार्य करनेसे गवर्नमेंटको रोका था। श्रीस्वामीजी महाराजके गुणगानके लिए बहुत समय चाहिए। यह सब होते हुए भी श्री-स्वामीजी महाराज जिस सादगीके साथ जीवन व्यतीत करते थे वह अवर्णनीय है। जिस समय मैंने हरिद्वारमें श्रीस्वामी केशवानन्दजीके आश्रममें उनका दर्शन किया था श्रीस्वामीजी केवल एक कमण्डलके साथ कम्बलपर बैठे रहते थे। मेरे एक मित्र श्रीयज्ञेश्वरजी मेरे साथ थे, उन्होंने एक श्लोक मुद्राराक्षसका कहा। उसमें चाणक्यकी साधारण कुटी और उनकी रहन-सहनका वर्णन था। चाणक्य-के द्वारा यद्यपि सम्पूर्ण राज्यका ही संचालन होता था किन्तु ऐसा होते हुए भी उनकी रहन-सहन पूर्णतः साधारण थी। आसन-कमंडल और अग्निदेवके सिवाय वहाँ और कुछ नहीं था, कुटियाकी जीर्ण छान

भी झुकी हुई मानो उन्हें नमस्कार कर रही थी। यही दशा श्रीस्वामीजी महाराजकी भी थी। कम्बल और कमण्डल एकमात्र उनकी पूँजी थी। भोजन केवल एकबार करते थे। ऐसे महात्माका दर्शन करके हरएकके चित्तमें श्रद्धाका उदय स्वयमेव हो जाता है, क्योंकि सब कुछ प्राप्त है, पर उसका तृणवत् परित्याग कोई ही कर सकते हैं। सबको चाहिये कि ऐसे महात्माओंके चरित्रोंको देखें, भालें और उनसे उपदेश ग्रहण करें। हमारी श्रुतिस्मृतियोंकी प्रार्थनाओं और आकांक्षाओंमें यह प्रकट किया गया है, कि हम शतायु हो जाँय। मनुष्यजीवनके लिये यही पर्याप्त समझा गया है, परन्तु हमारे स्वामीजी महाराजने इस शतका उल्लंघन कर श्रुति-स्मृतियोंका भी रिकार्ड तोड़ दिया। वे १०५ वर्ष तक जीवित रहे और अन्तिमक्षण तक धर्मकी रक्षाके लिये कार्यमें निमग्न हो जनहित साधन करते रहे।

आजके इस घोर दुर्दशाग्रस्त समयमे हमें उनसे और भी बहुत बड़ी सहायता मिलती। अब तो ऐसा समय आ गया है, कि धर्मकी बात ही बुरी लगती है। हमने स्वराज्य प्राप्त किया और समझे थे कि उससे हमारे धर्मकी रक्षा होगी किन्तु उस स्वराज्यमें अबतो धर्मको उखाड़नेकी चेष्टा हो रही है। ऐसे समयमें उनकी जितनी आवश्यकता थी, उसे सभी धर्मप्रिय लोग समझ सकते हैं, पर नियतिका नियम अटल है। उसपर किसीका वश नहीं। अबतो हमारा यही कर्त्तव्य है, कि परमात्मासे प्रार्थना करें कि श्रीस्वामीजी महाराजकी आत्माको परलोकमें चिरशान्ति प्राप्त हो। हमारी यह प्रार्थना उनके प्रति एक प्रकारकी श्रद्धाञ्जलि प्रदर्शनमात्र ही है, ऐसे महात्मा लोग तो अपने तपोबलसे ही चिरशान्ति प्राप्त करते हैं और ब्रह्मपदलीन होते हैं, अस्तु श्रीस्वामीजी महाराजके प्रति हम सादर अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करके अपना कर्त्तव्यपालन करते हैं।

श्री ठा० लौटूसिंहजी गौतम

एम० ए०, काव्यतीर्थ

हृदय दुःखी है। श्रीस्वामीजीके महाप्रस्थानसे जो अभाव प्रकट हुआ है उसकी पूर्त्ति नहीं की जा सकती। श्रीस्वामीजी महाराजने धर्मक्षेत्रमें कितने कार्य किये और देश उनका कितना ऋणी है, थोड़े समयमें इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। श्रीमान् सभापतिजी महोदयने थोड़ेमें उसपर जो प्रकाश डाला है, उसके अनुमोदन करनेकी भी आवश्यकता नहीं। जनकल्याण करनेके कार्योंके प्रति इस संसारमें विचार बहुतोंके हुआ करते हैं, किन्तु उन्हें कार्यरूपमें लाकर विघ्न-बाधाओंसे डटकर सामना करना और उन्हें परिपूर्ण करना बड़ा कठिन कार्य होता है और जो लोग ऐसा कर सकते हैं, जनता उन्हें पूजती है, श्रीस्वामीजी महाराज ऐसे ही महात्माओंमेंसे एक अप्रतिम महात्मा थे। सन् १८५८ के बलवेके पश्चात् देशके सामने एक बड़ी समस्या प्रस्तुत हुई थी, भारतीय संस्कृति और भारतीय विभूतिकी रक्षाका विकट प्रश्न भारतके सामने था। श्री स्वामीजीने इसके हेतु बहुत बड़े कार्य किये। श्री स्वामीजीका दैवीजगत्पर बहुत बड़ा विश्वास था, इस विश्वासको वे सबके मनमें बिठाना चाहते थे। उनका कथन था, कि यदि दैवीजगत्पर प्राणीमात्रका विश्वास हो जाय, तो देशकी सारी आपदायें नष्ट हो जाँय इसमें कोई सन्देह नहीं। यद्यपि उनका पार्थिव शरीर चला गया है किन्तु उनका यह कार्य हमारे सामने है। उसीको पूरा करनेमें

हम सबको एकचित्त होना चाहिये। यही हमारा उनके प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन होगा। महामण्डलका स्वरूप सनातनधर्मकी सेवा है। इन सेवाओंका श्रेय यदि किसीको दिया जाय तो वह श्रीस्वामीजीको देना होगा। वे जनताकी सच्ची सेवा जानते थे। यही उनका परम मन्त्र था, इसके हेतु उन्होंने अनवरत श्रम किया। १०५ वर्षकी अवस्थामें भी वे नित्य-क्रियायोंसे खाली होकर सात बजे इस कार्यके लिये बैठ जाते थे। मैंने कई विभूतियोंको देखा है। प्रायः ८० वर्षकी अवस्थामें बोलनेकी शक्ति नहीं रह जाती। पर वे बैठकर ७ बजेसे ११ बजेतक युवककी भाँति कार्य करते थे। उनका कथन था कि जो जाति जीवित रहना चाहती है, उसे अपनी संस्कृति नष्ट नहीं होने देनी चाहिये। किसी जातिकी यदि संस्कृति नष्ट हो जाय तो वह जाति मर जाय। भारतीय संस्कृतिकी रक्षा और उसके दिग्दर्शनके लिये उन्होंने एक प्राचीन शैलीका इतिहास भी तैयार किया। संस्कृतिकी रक्षामें जीवन समर्पित करनेवाले ऐसे महात्माके प्रति अच्छीसे अच्छी श्रद्धाञ्जलि यही है कि हम उसके कार्योंको आगे बढ़ावें। लोग सनातनधर्मको दकियानूसी और संकीर्ण विचारवाला धर्म बतलाते हैं, किन्तु सनातनधर्म या हिन्दूधर्म मानवताका धर्म है, श्रीस्वामीजीने इसे अच्छी तरह सिद्ध कर दिया। इस धर्मके लोप होनेके कारण ही आज मानवताके टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। यदि इस धर्मके विचार लोगोंके हृदयमें उत्पन्न हो जाँय तो मानवताके टुकड़े न हों। वह अखण्ड बन जाय। श्रीस्वामीजी महाराज श्रीभगवान्‌को भी कार्यरूपमें ही देखते थे। उनका यह महामन्त्र था और इस रूपमें ही :—

"तस्मै कार्यात्मने नमः" कहकर वे श्रीभगवान्‌को भी नमन करते थे। श्रीस्वामीजी महाराज बड़े मधुर आलोचक भी थे। हिन्दूजातिकी आलोचना करते हुए वे कहते थे कि 'धर्मप्राण हिन्दूजाति प्रमादमें आ गयी है।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस जातिमें जहाँ प्रमाद आया और उसने धर्मको हटाया कि वह वहाँ पतित हुई। इस समय वातावरण बड़ा दूषित हो गया है। हमारी स्वतन्त्रता हमारे धर्मको उलट देनेके लिये प्राप्त हुई। धर्म तो अब उन्नतिका बाधक समझा गया है। इस धर्मरुचिकी रक्षा और सेवाही स्वामीजीकी अच्छी सेवा और श्रद्धाञ्जलि होगी। 'हिन्दूधर्म एक पदार्थ है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकता क्योंकि उसका आधार आध्यात्मिकता है। मानवताका स्वरूप हिन्दूधर्म है हिन्दूधर्म द्वेष-विहीन है। वह किसीमें द्वेष नहीं करता।' श्रीस्वामीजीके यह विचार कितने मूल्यवान् हैं, महत्त्वमय हैं, इसे समझनेकी आवश्यकता है। इस आवश्यकताकी प्रेरणा देनेवाले पूज्य स्वामीजीकी स्मृतिमें हम सबको चाहिये कि एक स्मारक स्थापित करें। यह कृतज्ञता प्रकाशनका उत्तम कार्य होगा। श्रीस्वामीजीके हम सभी अत्यन्त कृतज्ञ हैं। हमें कृतज्ञ बनना चाहिये। कृतघ्न नहीं! पूज्य स्वामीजी तो अपने पवित्रकार्योंसे ही दिव्यलोकमें चले गये। इसके लिये हमें प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं। हम उन्हें श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं, और चाहते हैं कि स्मारक बनाने वाली समितिकी तत्काल रचना करनेकी चेष्टा की जाय।

श्री पं० विन्ध्येश्वरीप्रसादजी शास्त्री

श्रीपूज्यपाद स्वामीजीने जीवनका लक्ष्य पूरा कर लिया। उन्हें विदित हो गया था, कि अब जीवनके

अन्तिम क्षण हैं। देहान्त होनेके दो दिन पहले उन्होंने कहा था कि यह शरीर अब नहीं चलेगा। पूज्य स्वामीजीका जीवनकाल शास्त्रीय पुरुषार्थमें व्यतीत हुआ उनके जीवनका लक्ष्य शास्त्र-साहित्यकी सृष्टि करना था। शास्त्रीय मर्यादाओंकी रक्षासे ही सृष्टि-की भलाई हो सकती है। यही उनका सिद्धान्त था और इसके लिये उन्होंने बहुत कुछ कार्य किया भी। उन्होंने संसारके सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञानको तीन भागोंमें बाँटा था—(१) आर्ट (कला), (२) साइंस (विज्ञान), (३) फिलासफी (दर्शन)। उनका कथन था कि विज्ञानकी ओर तो सारा संसार झुका हुआ है, पर दर्शनकी ओर सबका ध्यान कम क्या, कुछ भी नहीं है। कला और विज्ञान केवल प्रकृतिका विज्ञान है किन्तु दर्शन ईश्वरीय विज्ञान है। मानवमात्रका कल्याण इस ईश्वरीय-विज्ञानमें ही निहित है। इस ईश्वरीय विज्ञानके लिये पूज्य स्वामीजीने जो कार्य किया है, वह अपूर्ण रह गया है। सामग्री सभी कुछ महा-मण्डलमें श्रीस्वामीजी द्वारा प्रस्तुत है। आवश्यकता केवल यह है, कि श्रीस्वामीजी जैसा कोई योग्य महा-पुरुष इस कार्यको हाथमें लेकर उसे पूर्ण करे। इस कार्यका पूर्ण करना ही हम लोगोंकी उसके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

सभापतिजी महोदय जो इस समय काशी हिन्दूविश्वविद्यालयमें संस्कृतशिक्षाके डाइरेक्टरके रूपमें आये हुए हैं और काशीमें ही रहते हैं, उनकी विद्वत्ता अगाध है, उनसे उपयुक्त इस कार्यके लिये कोई अन्य नहीं प्रतीत होता है। हम प्रार्थना करते हैं, कि सभापतिजी महोदय, श्रीस्वामीजीके इस कार्यको आगे बढ़ानेके लिए उसे हाथमें लेवें तो उनसे श्रीस्वामीजीके संकल्पोंकी पूर्ति होगी और देशका उपकार होगा। अधिक समय मैं नष्ट करना नहीं चाहूँगा, केवल इस एक बातकी ही महान् आवश्यकता प्रकट करते हुए मैं पूज्य स्वामीजी महा-राजको अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल-मन्त्रीसभामें
स्वीकृत मन्तव्य—

"श्रीमहामण्डलकी प्रबन्धकारिणी समितिके सदस्य योगिराज प्रातःस्मरणीयचरण जीवन्मुक्त ज्ञान-तपोवयोवृद्ध स्वामी श्रीज्ञानानन्दजी महाराजको १०५ वर्षकी अवस्थामें शिवसायुज्य प्राप्तिसे अत्यन्त क्षुब्ध है। जिस समय हिन्दूधर्म और हिन्दूजातिपर चारों ओरसे घोर आक्रमण हो रहे थे, उस समयसे करीब अर्द्धशताब्दीके पूर्वसे ही पूज्य स्वामीजीने श्री-भारतधर्म-महामण्डलकी स्थापना करके हिन्दूजातिका जो महान् उपकार किया है, वह सर्वविदित है। सहस्रों विद्वान् स्वामीजीके ज्ञानालोकसे आलोकित होकर सब प्रान्तोंमें लेख, वक्तृता, सेवाद्वारा हिन्दूजनता और हिन्दूधर्मकी सेवा कर रहे हैं। सहस्रों वर्षोंसे विलुप्त प्राय: अनेक दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थ स्वामीजीकी कृपासे आविर्भूत और प्रकाशित हुए हैं। आदि-शंकराचार्यके द्वारा स्थापित पीठोंकी मर्यादा और शृंखलाकी व्यवस्था और रक्षा विलुप्तप्राय ज्योतिर्मठका

द्वार और उसपर योग्य आचार्यकी स्थापना, आजसे बीसों वर्ष पूर्व अंग्रेजी गवर्नमेंटद्वारा प्रतिरुद्ध गंगाप्रवाहको प्रबल आन्दोलनद्वारा अक्षुण्ण प्रवाहित करना, भारतधर्म-महामण्डलके प्रधान सभापति स्वर्गीय दरभंगाधिपति श्रीरमेश्वरसिंह मिथिलेशको प्रेरितकर काशी हिन्दूविश्वविद्यालयकी स्थापनामें अत्युत्तम सहयोग दिलाना आदि श्रीस्वामीजी महाराजके अगणित कार्य चिरस्मरणीय हैं। श्रीमहामण्डलकी प्रबन्धकारिणीके हम सभी सदस्य श्रीस्वामीजी महाराजके चरणोंमें श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं और श्रीकाशी विश्वनाथसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि, हिन्दूजातिको ऐसी शक्ति दें जिससे स्वामीजीद्वारा निर्दिष्ट सन्मार्गका वह अनुसरण कर सके।

सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि श्रीमहामण्डल-भवनके ऊपरका कमरा दक्षिण ओर वाला, जिसमें श्रीजी महाराज रहते हुए ब्रह्मीभूत हुए, उसको तीर्थरूपसे समादृत और सुरक्षित रखा जाय, उनके व्यवहारकी सभी वस्तुओंकी लिस्ट बनाकर रक्षा की जाय, श्रीजी महाराज जिस आरामकुर्सीपर विराजते रहे हैं उसपर उनका सुन्दर तैलचित्र रखा जाय तथा प्रातः सायं दोनों समय उसकी पूजा आरती विधिपूर्वक की जाय।

सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि श्रीजी महाराजके द्वारा उपक्रान्त जितने भी श्रीमहामण्डलके कार्यविभाग हैं—जैसे शास्त्रप्रकाशन विभाग, मानार्पण-विभाग, परीक्षा विभाग, देवसेवा, साधुसेवा, गोसेवा विभाग, उपदेशकमहाविद्यालयविभाग, रक्षा-विभाग आदि विभागोंके कार्योंका सम्पादन, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी भाषा समन्वय भाष्यसहित सप्तदर्शनोंका प्रकाशन, सभाष्य मन्त्र, हठ, लय, राजयोगोपयोगी चारों योगसंहिताओंका प्रकाशन और श्रीदत्तात्रेय धर्ममीमांसाका हिन्दीभाष्यसहित प्रकाशन आदि कार्य अवश्य सम्पन्न किये जायँ। यह पुण्यकार्य तभी सम्भव हो सकता है कि जब सभी सदस्य श्रीजीकी मूर्तिके समक्ष प्रतिज्ञापूर्वक एकता और सहयोगकी लोकोपकारिणी भावनासे सदा प्रेरित हों।

सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि भगवद्भक्त सर्वसाधारणकी आध्यात्मिक उन्नति तथा धार्मिक भावनाओंकी प्रेरणा प्राप्त करनेके लिये श्रीजीकी एक सुन्दर संगमरमर श्वेत प्रस्तरकी प्रतिमा किसी समुचित स्थानपर स्थापित की जाय तथा उस प्रतिमाका सायं प्रातः सविधि पूजन होनेका भी प्रबन्ध किया जाय।

सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि श्रीजी महाराजकी एक ऐसी जीवनी प्रकाशित की जाय, जिसमें उनके सब कार्यों और शास्त्रीय पुरुषार्थोंका विवरण रहे। यह भी निश्चय हुआ कि श्रीजीके स्मारकरूपसे 'सूर्योदय' और 'आर्यमहिला' के विशेषांक प्रकाशित किये जायँ।"

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्‌की प्रबन्धसमितिमें स्वीकृत मन्तव्य

"श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्‌के प्रबंधसमितिके हम सदस्यगण परमहंस परिव्राजकाचार्य योगिराज प्रातःस्मरणीय परमाराध्य परमपूज्यपाद श्री १००८ महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजके

रही उन्होंने कहा "हाँ"। पुनः महाराजने पूछा—उनका चार लाख रुपया आपके पास है, जो उन्होंने अयोध्यामें मन्दिर बनानेके लिये आपके पास रखा था? महाराजने कहा "हाँ"। अबतो महाराजा और भी आश्चर्यसे स्तम्भितसे रह गये। उन्होंने श्रीजीसे पूछा—महाराज आपको ये बातें कैसे विदित हुई? तब पूज्यपादने रातकी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी और आदेश दिया कि स्वर्गीया महारानीके संकल्पके अनुसार शीघ्रातिशीघ्र मन्दिर बना दें। एवं देवताकी सेवा-पूजा एवं भोगरागका सुप्रबन्ध करा दें। अब इस कार्यमें कदापि विलम्ब करना उचित नहीं। महाराजाने आज्ञा शिरोधार्य की, और शीघ्रही अयोध्यामें रामजीके मन्दिरके निर्माण का कार्य प्रारम्भ करा दिया। स्वर्गीया महारानीके उसी चारलाख रुपयेसे मन्दिरका निर्माण होगया उसमें राम-जानकीकी प्रतिष्ठा हो गयी और बचे रुपयेसे जमींदारी खरीदकर मन्दिरमें लगा दिया गया, जिससे सदा नियमितरूपसे मन्दिरमें सेवापूजा होती रहे। यही मन्दिर अयोध्यामें "कनकभवन"के नामसे प्रसिद्ध है। इसप्रकार पूज्यपादके द्वारा कितने ही मन्दिरोंका निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ, जिन सबको लिखनेसे अलग एक ग्रन्थ ही बन सकता है। परन्तु उन्होंने कभी इसकी परवाह नहीं की, यही उनकी लोकोत्तर महानता थी।

भगवान् महर्षि ज्ञानानन्दजी महाराजश्रीके दिव्य जीवनकी एक झाँकी।

[ले० श्रीमती सुन्दरीदेवी एम. ए., बी. टी.]

यह ठीकही कहा है कि—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि कोनु विज्ञातुमर्हति॥

वस्तुतः लोकोत्तर महापुरुषोंकी महानता एवं समुद्र जैसी गम्भीरताका थाह पाना, उसे समझना साधारण मनुष्य-बुद्धिका कार्य नहीं; क्योंकि ऐसे महान् पुरुषोंकी महत्ता एवं गम्भीरता समझनेके लिये समझनेवालेकी बुद्धिभी उतनीही सूक्ष्म और हृदय विशाल होना चाहिये। अतः मुझमें इन दिव्य लोकोत्तर महात्माको पहचाननेकी कुछ भी क्षमता नहीं थी, तब भी उनकी प्रतिदिनकी साधारण-चेष्टाएँ जो देखनेको मिलती थीं, उन्हींको देख मैं स्तम्भित रह जाती और स्वतः मेरे मनमें यह प्रश्न उठता कि, क्या मनुष्यके लिये यह सम्भव है? इसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

पूज्यपादके दर्शनार्थ सभीप्रकारके मनुष्य आया करते थे। आशुतोष शङ्करका दरबार था, किसीके आने पर रोक नहीं थी। अतः सज्जन-दुर्जन सभी श्रेणीके लोग आते थे, सभीके साथ वे समानरूपसे प्रेम-स्नेहपूर्ण व्यवहार करते। उनमें ऐसे लोग भी आते जिन्होंने पूज्यपादद्वारा संस्थापित एवं सञ्चालित संस्थाओंको अपूरणीय क्षति पहुँचायी थी, यथेष्ट विरोध किया; दूसरा कोई उनकी सूरत देखना भी पसन्द नहीं करता किन्तु पूज्यपाद श्रीजी उनके साथ भी उसी स्नेह एवं

प्रेमका बर्ताव करते जैसा कोई परमस्नेहवान् पिता अपने पुत्रके साथ करता है। मैं कभी कभी निवेदन करती कि यह व्यक्ति ऐसा है, तो आज्ञा देते कि "क्षमा करना सीखो, क्षमा बहुत बड़ी वस्तु है, उसकी प्रकृति ही ऐसी है।" और यह श्लोक सुना देते—

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात ! विषयान् विषवत् त्यज ।
क्षमाऽर्जवदयातोषं सत्यं पीयूषवद् भज ॥

कोई विशेष वस्तु उनके भिक्षाके लिये आती तो आदेश होता कि सबको मिला कि नहीं और सबको प्रसाद दिलानेके अनन्तर ही वे भिक्षा करते थे। पूज्यपाद सर्वोच्च पहुँचे हुए परमहंस महात्मा थे, उनको अपने शरीरका भान नहीं रहता था। उनके लिये कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं था, तब भी श्रीमहामण्डल-भवनमें रहनेवाले सभी आश्रितोंपर उनकी समानरूपसे स्नेह-दृष्टि रहा करती थी। श्रीमहामण्डलभवनमें अतिथि भी आया करते हैं, जिनमें सभी श्रेणीके लोग आते थे। चाहे कोई विशिष्ट व्यक्ति हो, या भले ही नगण्य ही क्यों न हो, उसको यथासम्भव आराम पहुँचानेकी सुव्यवस्थाके लिये पूज्यपाद मानो अधीर हो उठते थे, जितने लोग उनकी सेवामें होते, सबको और प्रत्येकको उसकी देख-भाल एवं आवश्यकतापूर्तिके लिये आज्ञा देते थे और प्रत्येकसे उसकी सुख-सुविधाके विषयमें पूछते एवं व्यवस्था कराते थे। आतिथ्यके सम्बन्धमें उनका इतना ध्यान रहता था। यहाँतककी जीवनके अन्तिमदिन जिसदिन वे मृत्युशय्यापर थे, उन्हींको इन्दौरसे देखनेकेलिये डा० एस० के० मुकर्जी आये थे। श्रीमहामण्डलके निवासी सभी श्रीजीकी रुग्णावस्थासे इतने चिन्तित एवं व्यग्र थे कि किसीको भोजन-शयनकी सुधि नहीं थी, न अवकाश था। सन्ध्या आठ बजेका समय था। श्रीजीने अपने पास बैठे हुए एक भक्तसे पूछा कि डा० मुकर्जीने भोजन किया ? उत्तर मिला कि नौकर गया है, वह उनको भोजन करा देगा। इतना सुनते ही पूज्यपाद बहुत ही असन्तुष्ट हो गये और कहा कि "वह तुम्हारे यहाँ आया है, तुमने उसको नौकरको सौंप दिया, बड़ी लज्जाकी बात है। अभी तुम स्वयं जाओ और उसे अच्छी तरह भोजन कराओ।" जब उक्त सज्जन उठकर गये और डाक्टर महोदयको स्वयं खड़े रहकर भोजन कराया एवं आकर निवेदन किया कि वे अच्छी तरह भोजन कर चुके, मैं वहाँ था, तब पूज्यपादको शान्ति हुई। साधारण मरणासन्न मनुष्य जो मृत्युशय्या-पर पड़ा हो, उसके लिये क्या यह कभी सम्भव हो सकता है ?

मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी-कीट-पतङ्गके लिये भी उनको उतना ही स्नेह था। वे श्रीमहामण्डलभवनके ऊपरके एक कमरेमें विराजते थे। उसमें 'शारदा लाइब्रेरी'की पुस्तकोंकी आलमारियाँ हैं। उस कमरेमें कभी कभी चूहेके छोटे बच्चे या पक्षीके बच्चे गिर पड़ते थे, पूज्यपाद मुझे आज्ञा देते कि इनको दूध पीलाओ और तबतक रक्षा करो, जबतक ये स्वतः चलने लगे या उड़ सकें।" इसीप्रकार दैववश एक गिलहरीका बच्चा आ गया। उसकी रक्षा की, बड़ा होनेपर उसे कई बार पेड़पर छोड़ दिया किन्तु वह लौटकर फिर चली आती थी। दो-तीन बार ऐसा ही हुआ। तब यह सोचकर कि दूसरे जीव इसे मार न डालें, उसको रखना पड़ा था। पूज्यपाद प्रतिदिन उसके लिये चार-पाँच बार पूछते कि उसको कुछ खानेको दिया या नहीं। किसी किसी दिन कार्याधिक्यसे मैं उसको दूध देना भूल जाती, तो

मुझपर डाँट पड़ती थी। अभी थोड़े दिन पहले वह गिलहरी मर गयी थी तो उसकी उत्तमगति हो, इसके लिये उसे सावधानीसे गंगामें डलवानेका प्रबन्ध करनेकी पूज्यपादने आज्ञा दी। तदनुसार ही किया गया। ऐसे क्षुद्र जीवोंपर भी उनकी वही करुणा-दृष्टि थी। उनके विशाल हृदयकी समताका यह एक छोटा-सा निदर्शन है। ऐसी कितनी बातें प्रति-दिन हुआ करती थीं, जिनको लिखा जाय तो एक बृहद्ग्रन्थ बन जायगा।

ब्रह्मनिर्वाण-प्राप्तिके पहले पूज्यपाद केवल छः दिन अस्वस्थ थे। इनमें अन्तिम तीन दिन उनके श्रीविग्रह-में असहनीय वेदना थी। तब भी प्रशान्तभावसे लेटे रहते थे। उनकी चेष्टामें कोई अशान्ति, उद्वेग या चञ्चलता व्यक्त नहीं होती थी। वे थोड़ी देरके अन्तरसे थोड़ा-थोड़ा गङ्गाजल पीते थे; उसके लिये भी उन्होंने आज्ञा दी कि "नमश्चण्डिकायै" इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक तीन-तीन बार गङ्गाजल दो।"

पूज्यपादको ता० २१ जनवरीसे बार बार लघुशङ्का होने लगी थी। उसके एक दो दिन पहलेहीसे कुछ कोष्ठवद्धताका अनुभव हुआ था। उसका साधारण उपचार होता रहा। डाक्टर-वैद्यभी बुलाये गये, परन्तु ठीक-ठीक निदान किसीके समझमें नहीं आया। दूसरे दिनसे शौच-पिशाब दोनों ही बन्द हो गया तब एक प्रसिद्ध डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने निदान किया कि, मूत्रग्रन्थि (Prostrate gland) अधिक अवस्थाके कारण बढ़कर पिशाब बन्द कर दिया है। अविलम्ब पिशाब निकालना चाहिये। अन्यथा विष फैलनेका डर है। इसके बाद दूसरे दिन एक दूसरे डाक्टरने यन्त्रकी सहायतासे पिशाब निकाला। पिशाब सरलतासे निकलता रहे, इसलिये डाक्टरोंने अन्य कोई उपाय न जानकर पेड़ूपर आपरेशन करके एक मार्ग बना देनेका निश्चय किया। पूज्यपाद इन्जेक्सनतकके विरोधी थे। कभी उन्होंने इन्जेक्सन भी नहीं लिया था, परन्तु जब डाक्टरोंने बतलाया कि बार-बार यन्त्रकी सहायतासे पिशाब निकालनाभी भयसे रहित नहीं है, और आपरेशनके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है, तब उन्होंने आपरेशनकी अनुमति दे दी। ता० २७ जनवरीको प्रातःकाल डाक्टर आये, आपरेशनकी व्यवस्था उसी कमरेमें जहाँ वे विराजमान थे, की गयी। आपरेशनके पहले पूज्यपादका रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) देखा गया तो १५० था, जितना पचास वर्षके स्वस्थ मनुष्यका होना चाहिये था। यह देखकर डाक्टरलोग आश्चर्य-चकित हो गये। पूज्यपादको आपरेशन टेबुलपर लेटा दिया गया। इस कार्यमें पूरे डेढ़ घण्टे लगे, उनको क्लोरोफार्म देकर अचेत भी नहीं किया गया था, परन्तु पूज्यपाद शान्तभावसे लेटे रहे; बीच-बीचमें डाक्टर मुकर्जीसे पूछते जाते थे कि "अभी कितना देर है।" उन्होंने चरण या हाथ भी नहीं हिलाया। इस धीरता एवं वीरतासे उन्होंने आपरेशन करवाया। आपरेशनके बाद एक भक्तने पूछा कि, पूज्यपादको इससे बहुत कष्ट हुआ होगा? पूज्यपादने उत्तर दिया कि—नहीं, कोई विशेष कष्ट तो नहीं हुआ। फिर उक्त भक्तने पूछा, महाराज बराबर समाधिस्थ थे। इसपर पूज्यपाद मुस्कराकर चुप रह गये। आपरेशनके पश्चात् पुनः—रक्तचाप देखा गया तो १४५ था। केवल पाँच डिग्री ही कम था। यह देख सभी उपस्थित डाक्टर अवाक्‌से रह गये। डाक्टर मुकर्जी जो मध्यभारतके प्रसिद्ध अद्वितीय डाक्टर हैं, बोल उठे कि, मैंने अपने जीवनमें ऐसा

किसीको नहीं देखा। पूज्यपादकी अवस्थाको देखते हुए मेरा अनुमान था कि, ब्लडप्रेशर बहुत नीचे गिर जायगा। परन्तु यह कितनी आश्चर्यकी बात है कि केवल पाँच डिग्री ही कम हुआ है। इत्यादि।

इसके बादही डाक्टर मुकर्जीको इन्दौर लौट जाना आवश्यक था। वे आज्ञा लेने और प्रणाम करने पूज्यपादके निकट गये तो उनको पूज्यपादने—

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

यह स्तुति सुनायी और कहा कि, श्रीजगदम्बाको स्मरण करते हुए जाना सब मंगल होगा। इसप्रकार उनको आशीर्वाद दिया और अपना वरदहस्त उनके सिरपर रखा। उस अवस्थामें यह सब एकमात्र उन्हींके लिये सम्भव था।

पूज्यपाद महाराजश्रीका हृदय नवनीतके समान कोमल था। किसीके सामान्य दुःखसे भी वे द्रवित हो जाते थे। इस आसन्नमृत्युकी अवस्थामेंभी उनके इस स्वभावमें कोई अन्तर नहीं आया था; जैसा कि साधारणतः मनुष्योंमें हुआ करता है। आपरेशनके एक घण्टे बादकी एक घटनाका यहाँ उल्लेख करती हूँ।

सब डाक्टर यथास्थान जा चुके थे। पूज्यपाद लेटे हुए थे एवं यथापूर्व थोड़ा थोड़ा गङ्गाजल कुछ मिनटके अन्तरसे उनको पिलाया जाता था। सेवाके लिये मैं, मेरे कालेजकी कुछ सहयोगिनी बहिनें वहाँ थीं। इस बार एक बहिनने उनको गङ्गाजल पिलाया, तो वह बाहर पूज्यपादके कपड़ोंपर गिर गया। यह श्रीमती देवीजीको ठीक नहीं प्रतीत हुआ। अतः उन्होंने उक्त बहिनसे कहा—आपसे ठीक तरह नहीं पिलाया जाता, और वे स्वयं गङ्गाजल पिलाने लगीं। पूज्यपादको इस कठिन पीड़ाकी अवस्थामें भी यह अनुभव करते देर नहीं लगी कि, गङ्गाजल पिलाना रोकनेसे उक्त बहिनके हृदयमें कितनी वेदना हुई होगी। पूज्यपादने उसीसमय आज्ञा दी कि, गङ्गाजल वही पिलायेगी और उसको बुलाकर उससे माँग-माँगकर कई बार उसीके हाथसे गङ्गाजल पीया, जिससे वह प्रसन्न हो गयी और उसकी अवसन्नता जाती रही।

सन्ध्या पाँच बजे जब उनकी नाड़ी देखी गयी तो विदित हुआ कि नाड़ी बन्द है। तबसे ब्रह्मनिर्वाणके समयतक नाड़ीकी वही दशा रही। यथा-सम्भव उपचार होते रहे। डाक्टर भी बुलाये गये, परन्तु कोई फल नहीं हुआ। तब भी वे बराबर पूर्ववत् बातें करते रहे। प्रायः रात्रिके आठ बजे डाक्टरोंकी सम्मतिसे आक्सिजन गैस मँगाया गया। वह ज्योंही उनके नाकके पास लाया गया, पूज्यपादने उसे अपने हाथसे उठा फेका और कहा "घबड़ाओ मत, धैर्यसे काम लो।" उपस्थित डाक्टर यह सब देखकर आश्चर्य चकित हो गये और कहने लगे कि, हमने अपने जीवनमें ऐसा व्यक्ति नहीं देखा, जिसकी घण्टों-से नाड़ीकी गति बन्द हो और इसप्रकार ठीक-ठीक सब बातें करता हो। इसीप्रकार वे बड़ी शान्तिसे लेटे थे। ऐसा लगता था कि, वे समाधिस्थ थे। इसी तरह ब्राह्ममुहूर्तमें पाँच बजकर दस मिनटपर अपने महान् आत्माको सदाके लिये परमात्मामें मिलाकर भौतिक-शरीरका परित्याग कर दिया और विदेहमुक्तिरूपी ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त कर लिया! उसके बाद भी उन दिव्य महापुरुषका मुखमण्डल अपूर्व आभा एवं तेज-से देदीप्यमान हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि, वे प्रगाढ़ निद्रामें सो रहे हैं। इसीप्रकार अन्ततककी

उनकी सामान्य चेष्टाएँ भी असाधारण और अमानुषिक हुआ करती थीं। उनको देख मैं यही विचार करती कि क्या मनुष्यके लिये यह सम्भव है ?

लाइब्रेरीके जिस कमरेमें पूज्यपाद विराजते थे श्रीभारतधर्ममहामण्डलकी मन्त्रीसभाने उसे तीर्थकी तरह सुरक्षित रखनेका निश्चय किया है एवं पूज्यपादके व्यवहारकी वस्तुओंको भी यथापूर्व सुरक्षित रखनेका भी निश्चय किया है। तदनुसार उस कमरेमें पूज्यपाद जिस आराम-कुर्सीपर विराजमान रहते थे, उसपर उनका एक तैलचित्र रखा गया है। वहाँ दोनों समय पूजा-आरती आदि होती है। अब जो भी दर्शनार्थ वहाँ जाते हैं, उनको ऐसा अनुभव होता है कि पूज्यपाद वहाँ विराजमान हैं। वह स्थान रिक्त-सा नहीं अनुभव होता है। यह भी एक अद्भुत चमत्कार है।

हमारी उनके राजीवचरणोंमें करबद्ध यही प्रार्थना है कि, हम उनकेद्वारा प्रदर्शित मार्गोंपर चल सकें, ऐसी बुद्धि तथा शक्तिप्रदान करनेकी कृपा करें। जिससे विश्वका मङ्गल हो।

साष्टाङ्ग प्रणाम।

सभी ओर थी घोर अविद्या
और देशमें था अज्ञान।
आर्यसंस्कृति और हमारा
धर्म सनातन था म्रियमाण॥

ऐसे दारुण पतनकालमें
लिया देव तुमने अवतार।
अपनी सतत साधनासे तुम
करते रहे लोक उपकार॥

भारतधर्म-महामण्डलसे
किया देशमें धर्म प्रचार।
आर्यमहाविद्यालयद्वारा
महिलाओंमें किया सुधार॥

ग्रन्थ अनेकों लिखकर तुमने
बचा लिया संस्कृतिका नाश।
मानों इस कलियुगमें फिरसे
हुए अवतरित वेदव्यास॥

जीवनमुक्त हुए अब तुम पर
लोकहितार्थ तुम्हारे काम।
सदा अमर रक्खेंगे तुमको
धन्य धन्य साष्टाङ्ग प्रणाम॥

—एक भक्त

भगवान् महर्षि ज्ञानानन्दजी महाराज-प्रणीत-ग्रन्थोंकी तालिका

क्रमांक	पुस्तकोंका नाम	श्रेणी	प्रकाशन
१	कर्ममीमांसादर्शन धर्मपाद	मौलिक सूत्र	प्रकाशित
२	कर्ममीमांसादर्शन संस्कारपाद	,,	,,
३	कर्ममीमांसादर्शन क्रियापाद	,,	यन्त्रस्थ
४	कर्ममीमांसादर्शन मोक्षपाद	,,	अप्रकाशित
५	कर्ममीमांसादर्शन धर्मपाद	भाष्य	प्रकाशित
६	कर्ममीमांसादर्शन संस्कारपाद	,,	,,
७	कर्ममीमांसादर्शन क्रियापाद	,,	यन्त्रस्थ
८	कर्ममीमांसादर्शन मोक्षपाद	,,	अप्रकाशित
९	कर्ममीमांसादर्शन	वृत्ति	,,
१०	सांख्यदर्शन	,,	,,
११	न्यायदर्शन	,,	,,
१२	योगदर्शन	,,	,,
१३	वैशेषिकदर्शन	,,	,,
१४	ब्रह्ममीमांसादर्शन	,,	,,
१५	दैवीमीमांसादर्शन	,,	,,
१६	दैवीमीमांसादर्शन	सूत्र	प्रकाशित
१७	दर्शनादर्श	भाष्य	,,
१८	लययोगसंहिता	,,	प्रकाशित
१९	राजयोगसंहिता	,,	,,
२०	मन्त्रयोगसंहिता	,,	प्रकाशित
२१	हठयोगसंहिता	,,	,,
२२	श्रीदत्तात्रेयधर्ममीमांसा	,,	यन्त्रस्थ
२३	वेदान्तदर्शन चतुःसूत्री	भाष्य	प्रकाशित
२४	योगदर्शन	,,	,,
२५	तत्त्वबोध	टीका	,,
२६	मार्कण्डेयपुराण प्र० भा०	भाष्य	,,
२७	मार्कण्डेयपुराण द्वि० भा०	,,	,,
२८	मार्कण्डेयपुराण तृ० भा०	,,	,,

क्रमांक	पुस्तकोंका नाम	श्रेणी	प्रकाशन
२६	देवीभागवत प्र० स्कन्ध	भाष्य	प्रकाशित
३०	देवीभागवत द्वि० स्कन्ध	,,	,,
३१	ईशावास्योपनिषद्	टीका	,,
३२	कठोपनिषद्	,,	,,
३३	केनोपनिषद्	,,	,,
३४	गायत्रीमन्त्रकी टीका	,,	,,
३५	कल्किपुराण	,,	,,
३६	रामगीता	भाष्य	,,
३७	सप्तशती गीता दुर्गा	टीका	,,
३८	श्रीमद्भगवद्गीता प्र० ख०	,,	,,
३६	श्रीमद्भगवद्गीता द्वि० ख०	,,	,,
४०	विष्णुगीता	मौलिक	,,
४१	सूर्यगीता	,,	,,
४२	शक्तिगीता	,,	,,
४३	धीशगीता	,,	,,
४४	शम्भुगीता	,,	,,
४५	संन्यास गीता	,,	,,
४६	गुरुगीता	,,	,,
४७	धर्मविज्ञान प्र० ख०	,,	,,
४८	धर्मविज्ञान द्वि० ख०	,,	,,
४९	धर्मविज्ञान तृ० ख०	,,	,,
५०	धर्मकल्पद्रुम प्र० भा०	,,	,,
५१	धर्मकल्पद्रुम द्वि० भा०	,,	,,
५२	धर्मकल्पद्रुम तृ० भा०	,,	,,
५३	धर्मकल्पद्रुम चतु० भा०	,,	,,
५४	धर्मकल्पद्रुम पंच० भा०	,,	,,
५५	धर्मकल्पद्रुम षष्ठ भा०	,,	,,
५६	धर्मकल्पद्रुम सप्त० भा०	,,	,,
५७	धर्मकल्पद्रुम अष्ट० भा०	,,	..

क्रमांक	पुस्तकोंका नाम	श्रेणी	प्रकाशन
५८	गोस्वामी तुलसीदासकृतरामायणटीका	मौलिक	प्रकाशित
५९	गीतार्थचन्द्रिका	”	”
६०	प्रवीणदृष्टिमें नवीनभारत प्र० भा०	”	”
६१	प्रवीणदृष्टिमें नवीनभारत द्वि० भा०	”	”
६२	नवीनदृष्टिमें प्रवीण भारत	”	”
६३	शास्त्रचन्द्रिका	”	”
६४	साधनचन्द्रिका	”	”
६५	धर्मचन्द्रिका	”	”
६६	आर्यगौरव	”	”
६७	नीतिचन्द्रिका	”	”
६८	सनातनधर्मदीपिका	”	”
६९	धर्म-प्रश्नोत्तरी	”	”
७०	धर्मकर्मदीपिका	”	”
७१	धर्मसोपान	”	”
७२	परलोकप्रश्नोत्तरी	”	”
७३	सरल साधन-प्रश्नोत्तरी	”	”
७४	हिन्दूधर्मका स्वरूप	”	”
७५	स्मरणी	”	”
७६	स्त्रीपुरुषविज्ञान	”	”
७७	अन्तःकरणविज्ञान	”	”
७८	श्राद्ध और परलोकविचार	”	”
७९	सतीधर्म और योगशक्ति	”	”
८०	निर्मूल आक्षेपोंका उत्तर	”	”
८१	मनुष्यधर्म	”	”
८२	सतीसदाचार	”	”
८३	धर्मतत्त्व	”	”
८४	भारतधर्म-समन्वय	”	”
८५	परलोकतत्त्व	”	”
८६	आचारचन्द्रिका	”	”

क्रमांक	पुस्तकोंका नाम	श्रेणी	प्रकाशन
८७	धर्मप्रवेशिका	मौलिक	प्रकाशित
८८	व्रतोत्सव कौमुदी	"	"
८९	पूजा और प्रार्थना	"	"
९०	कर्मरहस्य	"	"
९१	कन्याशिक्षासोपान	"	"
९२	महिला प्रश्नोत्तरी	"	"
९३	धर्माधर्म प्रश्नोत्तरी	"	"
९४	तीर्थदेवपूजन प्रश्नोत्तरी	"	"
९५	सदाचार प्रश्नोत्तरी	"	"
९६	परलोक रहस्य	"	"
९७	चतुर्दशलोक रहस्य	"	"
९८	ब्रह्मचर्य सोपान	"	"
९९	राजशिक्षा सोपान	"	"
१००	साधन सोपान	"	"
१०१	शास्त्र सोपान	"	"
१०२	धर्मप्रचार सोपान	"	"
१०३	नित्यकर्म चन्द्रिका	"	"
१०४	सदाचार सोपान	"	"
१०५	उपदेश पारिजात	"	"
१०६	श्रीभारतधर्म-महामण्डल रहस्य	"	"
१०७	भारतवर्षका इतिवृत्त	"	"
१०८	संगीत सुधाकर	"	"
१०९	पुराण रहस्य	"	"
११०	गोव्रततीर्थ महिमा	"	"
१११	संन्यासधर्म पद्धति	"	"
११२	सुगम साधनचन्द्रिका	"	"
११३	धर्मसुधाकर	"	"
११४	श्रीमधुसूदन संहिता	"	"

क्रमांक	पुस्तकोंका नाम	श्रेणी	प्रकाशन
११५	आर्यजाति	मौलिक	प्रकाशित
११६	आदर्श देवियाँ प्र० भा०	संकलित	,,
११७	आदर्श देवियाँ द्वि० भा०	,,	,,
११८	श्रीव्यासशुकसंवाद	,,	,,
११९	चरित्रचन्द्रिका प्र० भा०	,,	,,
१२०	चरित्रचन्द्रिका द्वि० भा०	,,	,,
१२१	संन्यासगीता (मूलमात्र)	,,	,,
१२२	सतीचरित्र चन्द्रिका	,,	,,
१२३	स्तोत्रकुसुमाञ्जलि	,,	,,
१२४	व्रतोत्सवचन्द्रिका	,,	,,
१२५	त्रिवेदीसन्ध्या	,,	,,
१२६	कहावत रत्नाकर	,,	,,
	बंगला—		
१२७	पुराणतत्त्व	मौलिक	,,
१२८	जन्मान्तरतत्त्व	,,	,,
१२९	साधनतत्त्व	,,	,,
१३०	अवतारतत्त्व	,,	,,
१३१	नारीधर्म	,,	,,
१३२	सदाचार शिक्षा	,,	,,
१३३	नीतिशिक्षा	,,	,,
	अंग्रेजी—		
१३४	World's Eternal Religion	,,	,,
१३५	India's Eternal Religion	,,	,,
१३६	The Pioneer of World Civilization	,,	,,

पूज्यपादकी प्रेरणासे लिखित व प्रकाशित

१	कुमारिल भट्ट	हिन्दी	,,
२	आदर्श जीवन-संग्रह	,,	,,
३	तुलसीदासकृत रामायण	बंगला	,,

क्रमांक	पुस्तकोंका नाम	श्रेणी	प्रकाशन
४	पारिवारिक प्रबन्ध	बंगला	प्रकाशित
५	आचार प्रबन्ध	"	"
६	गो-रक्षा	"	"
७	भक्तितत्त्व	"	"
८	महर्षिचरित	"	"
९	अगस्त्यचरित	"	"
१०	सांख्यरहस्य	"	"
११	योगरहस्य	"	"
१२	वैशेषिकरहस्य	"	"
१३	न्यायरहस्य	"	"
१४	कुमारिलभट्ट	"	"
१५	ऋजुपाणिनीयम्	संस्कृत	"

क्षमा-याचना।

भगवान् महर्षि श्री ११०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज प्रभुके ब्रह्मनिर्वाणप्राप्तिपर 'आर्य-महिला'का यह श्रद्धाञ्जलि-अङ्क पाठक-पाठिकाओंके सामने रखते हुए हमें भगवान् वेदव्यासकी यह उक्ति स्मरण आती है—

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत् कल्पितं
स्तुत्याऽनिर्वचनीयताऽखिलगुरो ! दूरीकृता यन्मया
व्यापित्वञ्च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना
क्षन्तव्यं जगदीश ! तद्विकलता दोषत्रयं मत्कृतम् ।

अर्थात् हे प्रभो ! रूपरहित आपके रूपकी मैंने ध्यानद्वारा कल्पना की, स्तुतिके द्वारा आपकी अनिर्वचनीयताको दूर किया और तीर्थयात्राके द्वारा आपकी सर्वव्यापकताको बाधित किया ; मेरे इन तीनों अपराधोंको आप क्षमा करें ।

वस्तुतः 'आर्यमहिला'के इस विशेषाङ्कके प्रकाशनद्वारा पूज्यपाद भगवान्‌के किसी एक सामान्य गुणका भी दिग्दर्शन नहीं कराया जा सकता, फिर उनके अगम्य स्वरूपका एवं अशेष गुणोंका वर्णन यदि स्वयं शेष-शारदा करें, तो कदाचित् पार पा सकें । अतः यह प्रयास हमारा धृष्टतापूर्ण अपराधही है।

पूर्णावतार भगवान् कृष्णके सम्बन्धमें महाभारतमें ऐसा कहा गया है कि भगवान् कृष्णको

केवल तीन आदमी पहचानते थे,—एक धर्मराज युधिष्ठिर, दूसरे महात्मा विदुर और तीसरे पितामह भीष्म। भगवान्के साथ दिन-रात रहनेवाला अर्जुन भी उन्हें नहीं पहचान सका था। यह बात तो भगवद्गीतामें अर्जुनद्वारा जो क्षमाप्रार्थना की गयी है, उसीसे स्पष्ट होती है—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं, हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वाऽपि।
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु
एकोऽथवाप्यच्युत ! तत्समक्षं, तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥

अर्थात् आपकी इस महिमाको न जानकर सखा समझ, मैंने प्रमादवश या प्रेमसे हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखा ! आदि कहकर तथा आहार-विहार, सोने-बैठने, एकाकी अथवा अन्यके सामने हास-विनोदमें जो कुछ निरादर किया है, उसके लिये क्षमा माँगता हूँ।

भगवान्ने स्वयं भी कहा है कि—

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।

अर्थात् जो मूढ़ मनुष्य मुझको मनुष्यरूप समझकर अवज्ञा करते हैं, वे मेरे परम भाव-भूतोंके महेश्वर-रूपसे नहीं जानते।

ठीक यही स्थिति पूज्यपाद भगवान् महर्षि ज्ञानानन्दजी महाराज प्रभुके सम्बन्धमें दृष्टिगोचर होती है। उन लोकोत्तर महापुरुषके वास्तविक स्वरूपको सम्पूर्णरूपसे किसीने भी नहीं पहचाना। साधारणतः किसी भी मनुष्यकी पहचान उसके जीवनकालमें क्वचित् ही होती है। फिर जं महापुरुष प्रकृतिके सामयिक स्रोतको एक ओरसे दूसरी ओर पलट देनेके लिये आते हैं, उनका तो जन-साधारणमें विरोध ही होता है। अतः ऐसे महापुरुषको जनसाधारणके लिये नहीं पहचानना स्वाभाविक ही है। ऐसी स्थितिमें उन महापुरुषकी उपयुक्त श्रद्धाञ्जलि हो ही कैसे सकती है ? पुनः लौकिक दृष्टिसे भी इसे इतना सुन्दर नहीं बनाया जा सका; क्योंकि हमारे पास समयका भी अभाव इसलिये था कि, 'आर्यमहिला'का ३२वाँ वर्ष मार्चमें समाप्त हो जाता है, अप्रेलसे नया वर्ष प्रारम्भ होता है, अतः पूज्यपादके भारतवर्षव्यापी भक्तोंसे प्रबन्ध मँगानेके लिये इस अङ्कको अधिक समय रोका नहीं जा सकता था, इसे मार्चमें प्रकाशित होना ही चाहिये था। इसके अतिरिक्त छपाईकी दर पाँचगुनी और कागजकी कीमत भी पाँचगुनी हो गयी है। अतः समयका अभाव, साधन-सामग्रीका अभाव तथा अन्य अनेक असुविधाएँ होते हुए यह श्रद्धाञ्जलि-अङ्क प्रकाशित करनेकी जो धृष्टता हुई, इसके लिये उन परमाराध्य भगवान्महर्षिके चरणोंमें हमारी विनीत क्षमायाचना है। —सम्पादिका

कर्ममीमांसादर्शन ।

[गतांकसे आगे]

बुद्धिके अनुसार अधिकार स्वभावसिद्धरूपसे तीन श्रेणीके होनेसे त्रिविध अनुशासन भी स्वभावसिद्ध हैं। त्रिविध बुद्धिके लक्षणोंके विषयमें श्रीगीतोपनिषद्में इस प्रकारसे वर्णन है :—

प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षञ्च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥
यया धर्ममधर्मञ्च कार्यञ्चाकार्यमेव च ॥
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ॥
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ।

हे पार्थ ! धर्ममें प्रवृत्ति होनी चाहिये, अधर्मसे निवृत्ति होनी चाहिये, किस समय क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये किसमें भय है और किसमें अभय, किससे मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और किससे मुक्त होता है, ये बातें जिस बुद्धिसे जानी जाती हैं, उसे सात्त्विकी बुद्धि कहते हैं । हे पार्थ ! जिस बुद्धिसे यह ठीक नहीं मालूम होता कि, धर्म क्या है और अधर्म क्या है, क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये, उसे राजसी बुद्धि कहते हैं। हे पार्थ ! अज्ञानसे ढंकी रहनेके कारण जिस बुद्धिसे अधर्म्म धर्म्म जान पड़ता है और हित अहित मालूम होने लगता है, उसे तामसी बुद्धि कहते हैं ॥१६६॥

प्रसंगसे क्रियाका नियामक कौन है, सो कहा जाता है—

देश और काल स्वाभाविकी क्रियाका नियामक है ।।१६७।।

अनुशासनके अधीन होकर कर्म करनेसे मनुष्यकी क्रमोन्नति बाधारहित होगी, यह पहले ही सिद्ध हो चुका है। उसी प्रकार देशकालका विचार भी अवश्य करने योग्य है। क्योंकि देश-काल कर्मका नियामक है। कर्म स्वाभाविक है, क्योंकि प्राकृतिक स्पन्दनसे कर्मकी उत्पत्ति होती है। ऐसा होनेपर भी देश-काल उसका नियामक होता है। प्रकृतिका स्पन्दन देश और कालके अनुसार न्यूनाधिकरूपको धारण करता है। क्योंकि प्राकृतिक परिणाम देश-कालसे परिच्छिन्न है। यद्यपि मूलप्रकृतिका स्वरूप देश-कालसे सूक्ष्म है, परन्तु प्रकृति जब वैषम्यावस्थाको प्राप्त होकर परिणामिनी होती है, तो वह वैषम्यावस्थाप्राप्त गुणवती प्रकृति देश और कालके द्वारा परिच्छिन्न हो जाती है। जब देश-कालके द्वारा वैषम्यावस्थाप्राप्त प्रकृति परिच्छिन्न है और उसी त्रिगुणमयी प्रकृतिका स्पन्दन कर्म है, तो कर्म भी देश-कालसे परिच्छिन्न है। इस कारण कर्मका नियामक देश-कालका होना स्वतःसिद्ध है। स्थूल उदाहरणसे इस विज्ञानको इस प्रकार समझ सकते हैं कि, सब कर्म सब देशमें और सब कर्म सब कालमें कदापि उपयोगी नहीं हो सकते। यदि मनुष्य दिवानिद्रा करे, तो अल्पायु होगा और यदि रात्रिको निद्रा न करे, तो अल्पायु होगा। इस कारण रात्रिमें निद्रित होना ही नियम है। इसी प्रकार देशको भी समझना उचित है ॥ १६७ ॥

इससे क्या होता है, सो कहते हैं—

अत एव कर्म आद्यन्तवान् है ।।१६८।।

नैसर्गिकक्रियानियामकौ देशकालौ ॥ १९७ ॥

तस्मादाद्यन्तवत्ता कर्मणः ॥ १९८ ॥

जब कर्मका नियामक देश और काल है और कर्म देश-कालके द्वारा सदा परिच्छिन्न रहता है, तो कर्मका सादि और सान्त होना भी सिद्ध होता है। देश और कालकी परिधिके अन्तर्गत जब कर्मका होना सिद्ध हुआ, तो कर्मका आदि भी देश-कालके अन्तर्गत और कर्मका अन्त भी देश-कालके अन्तर्गत होगा। अतः कर्म सादि और सान्त है, यह सिद्ध हुआ ॥ १६८ ॥

प्रसंगतः देश-कालका विज्ञान कहा जाता है—

देश और काल प्रकृति और ब्रह्मकी प्रतिकृति है ॥ १६६ ॥

जब ब्रह्ममें लीन प्रकृति ब्रह्मसे पृथक् होकर द्वैतभावको प्रकट करती है, तब पहिले काल और देश प्रकट होता है। वह काल ब्रह्मरूप है और देश प्रकृतिरूप है। कालके अनुभवमें चित्सत्ताका प्राधान्य है। ये ही काल और देश यावत् दृश्य-प्रपंचको आच्छादित करके अपने अनादित्व और अनन्तत्वको दिखाकर यथाक्रम ब्रह्म और ब्रह्मप्रकृतिके महत्त्वको *घोषित करते रहते हैं। इस कारण ब्रह्मकी प्रतिकृति काल और प्रकृतिकी प्रतिकृति देश है, ऐसा मानना विज्ञानविरुद्ध नहीं होगा ॥ १६६ ॥

और भी कह रहे हैं—

वे विराटवत् अनादि अनन्त हैं ॥ २०० ॥

अनन्तकोटिब्रह्माण्डमय कार्यब्रह्मरूपी श्रीभगवान्‌का जो विराट्‌रूप है, वह जिस प्रकार आदि-अन्त-रहित है, उसी प्रकार देश और काल भी आदि-अन्त-रहित है। यह पहले ही सिद्ध किया गया है कि, पिण्डरूपी अधिभूतसृष्टि और ब्रह्माण्डरूपी अधिदैव-सृष्टि ये दोनों सादि और सान्त होनेपर भी अनन्त ब्रह्माण्डमय सृष्टिप्रवाहरूपी अध्यात्मसृष्टि आदि-अन्त-रहित है। यह भी पहले कहा गया है कि, ब्रह्म और ब्रह्मप्रकृति महामायाकी साक्षात् प्रतिकृति यथा-क्रम काल और देश है और सृष्टिकी सब वस्तुएँ देश-काल-परिच्छिन्न हैं। सुतरां अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-मय भगवान्‌की विराट् मूर्तिकेलिये आदि-अन्त-रहित देश और कालका होना अवश्यम्भावी है। इस कारण श्रीभगवान्‌की विराट् मूर्तिके सदृश ये दोनों भी आदि-अन्त-रहित है ॥ २०० ॥

कर्मपर उन दोनोंका कैसा प्रभाव पड़ता है सो कहा जाता है :—

देश-कालके अनुसार क्रियाका तारतम्य होता है ॥ २०१ ॥

कर्म देश-कालके द्वारा परिच्छिन्न होनेसे और सृष्टिके यावत् पदार्थपर देश-कालका पूर्ण प्रभाव रहनेसे देश-कालके अनुसार कर्ममें रूपान्तर होना स्वतःसिद्ध है। इस कारण देशकी स्थिति और काल-की स्थितिके अनुसार धर्मके सब अंगों और उपाङ्गों के स्वरूपोंमें तारतम्य होता है। केवल उनके साधनों-में ही तारतम्य नहीं होता है, उनके फलोंमें भी तार-तम्य होता है। यज्ञभूमि और यज्ञरहित-भूमिके आचारोंमें तारतम्य होता है। आर्य्यभूमि और अनार्य्यभूमिके धर्मसाधनोंमें तारतम्य होता है। तीर्थमें कर्म करने तथा अन्यत्र कर्म करनेके फलमें अनेक अन्तर होता है, यह स्मृतिसे अनुमोदित है। मरुभूमि, पार्वत्यभूमि और सुन्दर समतल भूमिके निवासियोंके धर्मसाधनके क्रियासिद्धांशोंमें तारतम्य

*देशकालौ प्रकृतिब्रह्मात्मकौ ॥ १९९ ॥
तयोरनाद्यनन्तत्वं विराड्वत् ॥ २०० ॥

तदनुबन्धिक्रिया तारतम्यात् ॥ २०१ ॥

हुआ करता है। उसी प्रकार कालधर्म भी अपरिहार्य्य है। आश्रमधर्मकी मूलभित्ति कालसम्बन्धसे निर्णीत की गई है। मनुष्यकी आयुके अनुसार ही ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यासधर्म निर्णीत हुए हैं। सुकालमें जो कर्म अतिअनाचार और अधर्मरूपसे वेद और स्मृतियोंमें माने गये हैं, दुर्भिक्ष, महामारी, राज्यविप्लव आदिके समय वे ही निन्दनीय कर्म आपद्धर्मके अनुसार माननीय समझे जाते हैं। इस प्रकारसे देश और कालका सदा प्रभाव धर्मके अंगों और उपांगोंपर पड़नेके कारण क्रियाके स्वरूपमें तारतम्य होना अवश्यसम्भावी है ॥२०१॥

सुतरां—

इसी कारण धर्ममें वैचित्र्य होता है ॥ २०२ ॥

धर्मका स्वरूप ही वैचित्र्यपूर्ण है। स्मृतिशास्त्रमें धर्मकी महिमा कहकर धर्मको इसप्रकार नमस्कार किया गया है :—

यं पृथक् धर्मचरणाः पृथक् धर्मफलैषिणः ।
पृथक् धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥

अर्थात् पृथक् पृथक् धर्मोंके आचरण करनेवाले, पृथक् पृथक् धर्मफलकी अभिलाषासे पृथक् पृथक् धर्मोंद्वारा जिसकी पूजा करते हैं, उस धर्मरूप परमात्माको नमस्कार है।

यही कारण है कि, वैदिक धर्म और सब धर्मोंसे व्यापक और वैचित्र्यपूर्ण है और अनेक अंग-उपांगोंमें विभक्त है। वैदिकधर्म किसी लौकिक विचारपर प्रतिष्ठित न होनेके कारण और लोकोत्तर अपौरुषेय सिद्धान्तोंपर स्थित होनेके कारण यह स्वाभाविक वैचित्र्यपूर्ण है। जब देश, काल और पात्र इन तीनोंकी पृथक्ता स्वभावसिद्ध है, तो उसके अनुसार क्रियाके स्वरूप और क्रियाके फलमें भी पृथक्ता होना स्वभावसिद्ध है। पात्रका समावेश अन्य दोनोंमें हो जाता है। प्रथमतः स्थूलशरीरको दर्शनशास्त्रके आचार्य्योंने देशके अन्तर्गत माना है। क्योंकि जिस प्रकार ब्रह्माण्ड देशका परिचायक है, वैसा ही पिण्ड भी देशका परिचायक है। द्वितीयतः कालधर्मका साक्षात् सम्बन्ध स्थूलशरीरसे होनेके कारण कालका प्रभाव भी स्थूलशरीरसे ही प्रकट होता है। इस कारण देश, काल और पात्र, इन तीनोंमेंसे देश ही प्रधान माना गया है। पात्रका विचार इन दोनोंके अन्तर्गत ही समझा जानेसे पूज्यपाद महर्षि सूत्रकारने केवल देश-कालकेद्वारा ही धर्मका वैचित्र्यपूर्ण होना माना है। धर्म, कर्त्तव्य और आचारादिके निर्णय करनेमें देश और कालका विचार रखना विज्ञानसिद्ध है। यही कारण है कि, साधारणधर्म साधारणरूपसे ब्रह्माण्ड-पिण्डका धारक होनेसे सर्वजीवहितकारी है, परन्तु विशेषधर्म विचित्र है और विशेष अधिकारमें हितकारी है। मनुष्य पूर्णावयव जीव होनेसे और कर्मसंग्रहमें स्वाधीन होनेसे उसमें रुचिवैचित्र्य और अधिकारवैचित्र्य रहता ही है। इसीकारण 'यं पृथग धर्मचरणाः' इत्यादि कहकर ऋषियोंने धर्मको नमस्कार किया है। वेदके शाखाभेदसे और पुराणों तथा तन्त्रादिके उपासनाभेदसे आचारवैचित्र्य नियमितरूपसे पाया जाता है और सम्प्रदायभेद होनेसे अनेक मत-भेदोंकी प्रतीति होती है। यही कारण है कि भगवान् वेद-व्यासजीने कहा है :—

'वेदा विभिन्नाः श्रुतयो विभिन्नाः
नाऽसौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्' इत्यादि ।

अतो धर्मवैचित्र्यम् ॥ २०२ ॥

वेद अनन्त हैं, श्रुतिवचन भी अनन्त हैं और मुनियोंके मतोंमें भी भिन्नता है। यही कारण है कि, आर्य्यधर्म और अनार्य्यधर्ममें भेद है और यही कारण है कि, जगत्‌में अनेक धर्ममत-मतान्तर होते आये हैं और होते रहेंगे ॥ २०२ ॥

अब प्रसंगसे ऋषियोंका मतभेद कह रहे हैं :—

इसी कारण ऋषियोंके मतमें भेद-प्रतीति होती है ॥ २०३ ॥

ब्रह्माण्डसे लेकर पिण्डपर्य्यन्त और ग्रह-उपग्रहसे लेकर अणुपर्य्यन्त सबको पृथक्-पृथक्‌रूपसे धारण करना ही धर्मका कार्य्य है। दूसरी ओर जैसा स्थूल-सृष्टिमें धर्मका पृथक्-पृथक् आधिपत्य है, वैसा सूक्ष्मसृष्टिमें भी है। इसी कारण धर्मके स्वरूपमें मतभेदकी प्रतीति और साधनमें अधिकारभेद होना स्वतःसिद्ध है। इसी अपरिहार्य्य कारणसे धर्मके विषयमें ऋषि और मुनियोंमें मतभेद पाया जाता है ॥ २०३ ॥

अब धर्म-लक्षणके विषयमें पहला मत कह रहे हैं :—

विहितकर्म धर्म हैं, यह जैमिनिका मत है ॥ २०४ ॥

पूज्यपाद महर्षि जैमिनिने जिन-जिन शास्त्रोंमें धर्मके लक्षणके सम्बन्धमें अपना मत कहा है, उसके अनुसार धर्मलक्षण यही है कि, वेदविहित कर्म ही धर्मशब्दवाच्य है। वेद त्रिकालज्ञ हैं। प्रत्येक कल्पका यावत् ज्ञान सृष्टिके आदिमें उस कल्पमें प्रकाशित होनेवाले वेदमें प्रकाशित हो जाता है और वेदसम्मत अन्यान्य शास्त्र वेदके ही भाष्यरूप हैं। अतः वेद और वेदसम्मत शास्त्रसमूह जिन-जिन कर्मोंके करनेकी आज्ञा देते हैं, वे उनके मतमें धर्म-शब्दवाच्य हैं। अतः महर्षिके मतमें वेद और वेद-सम्मत शास्त्रसे अनुमोदित कर्म ही धर्म है और वेद तथा वेदसम्मत शास्त्रसे निषिद्ध कर्म अधर्म है। वेदोक्त और स्मृतिशास्त्रोक्त यावत् कर्मकाण्डादि सब ही इसी सिद्धान्तका अनुसरण करते हैं। उसी प्रकार उपासनाप्रवर्त्तक जितने तन्त्रशास्त्र हैं, उनमें साधन-शैलीको बतानेवाले जितने आचार हैं उनमेंसे तीन आचारोंको तन्त्रशास्त्रोंने प्रधानता दी है। इस मतकी पुष्टिके लिये उदाहरण दिया जाता है कि, तन्त्रोंमें प्रचलित दक्षिणाचार नामक आचार इसी सिद्धान्तका पोषक है ॥ २०४ ॥

अब दूसरा मत कह रहे हैं :—

महर्षि नारदके मतमें विधिसाध्यमान कर्म धर्म है ॥ २०५ ॥

पूज्यपाद देवर्षि नारदके मतके अनुसार विधि-साध्यमान कर्म ही धर्म है और धर्माधर्मनिर्णयके विषयमें गुरु, आचार्य्य और महज्जन ही अनुकरणीय हैं। धर्माधर्मनिर्णयके विषयमें नाना आचार्य्यों-में मतभेद प्रतीत होता है, वेद और शास्त्रोंमें भी मत-भेद-प्रतीति होती है। अतः आत्मज्ञ गुरु, शास्त्रज्ञ आचार्य्य और कुलपरम्पराय, सम्प्रदायपरम्पराय महज्जन जो पथ बतावें, वही पथ धर्मका पथ है। अथवा इस प्रकारसे भी विचार सकते हैं कि, जो महापुरुष अविद्या दूर करनेके अर्थ विद्याकी शिक्षा देवें वे आचार्य्य कहाते हैं और जो महापुरुष

अतो महर्षिप्रस्थानेषु भेदप्रतीतिः ॥ २०३ ॥
विहितकर्म धर्मेति जैमिनिः ॥ २०४ ॥
विधिसाध्यमानमिति नारदः ॥ २०५ ॥

अभ्युदय तथा निःश्रेयस-प्राप्तिके लिये साधनोंकी दीक्षा देवें, वे गुरु कहाते हैं। ऐसे आचार्य्य अथवा गुरु अवश्य ही वेदज्ञ, शास्त्रज्ञ, तत्त्वज्ञ अथवा आत्मज्ञ होते हैं। वे जिस विधिका उपदेश देते हैं, साधकके लिये वही धर्म है, ऐसा देवर्षि नारदका मत है। भक्ताग्रगण्य देवर्षि नारद अपनी भक्तिदृष्टिसे एकमात्र आचार्य्य अथवा गुरुमें ही ज्ञान-सूर्य्यका उदय देखते हैं; इस कारण धर्माधर्मनिर्णयमें वे आचार्य्य अथवा गुरु-प्रदर्शित विधिको ही धर्म मानते हैं। इसी सिद्धान्तके अनुसार अनेक वैदिक और अवैदिक धर्मसम्प्रदाय और उपासनासम्प्रदाय प्रचलित हुए हैं और होंगे। यही कारण है कि, सम्प्रदायोंकी उपासना और कर्मविधिमें पार्थक्य पाया जाता है। परन्तु उन उन सम्प्रदायोंके लिये वे सब उपादेय हैं॥ २०५॥

अब तीसरा मत कह रहे हैं:—

आत्मोन्मुख कर्म धर्म है, यह गौतमका मत है॥ २०६॥

पूज्यपाद महर्षि गौतमके मतमें सब शारीरिक, वाचनिक तथा बौद्धिक कर्म धर्म है, जो मनुष्यको आत्मोन्मुख करता है। यह तो स्वतःसिद्ध है कि, मनुष्यका अन्तःकरण इन्द्रियोन्मुख होते होते निम्नसे निम्न अवस्थाको प्राप्त हो जाता है। अतः कर्मसमूह जीवको जितने अधिक इन्द्रियोन्मुख करेंगे, उतने ही उनमें अधर्मके भाव उत्पन्न होंगे। सब सिद्धान्तोंका सारांश यह है कि, जो कर्म जीवको आत्मासे विमुख करे, वही अधर्म है। दूसरी ओर धर्मकी ऊर्द्ध्वगति सदा आत्माकी ओर रहती है और अन्तमें धर्मशक्ति ही जीवको अभ्युदयके आत्मोन्मुख स्रोतमें बहाकर अन्तमें निःश्रेयसरूपी आत्मपदमें पहुँचा देती है। इस कारण महर्षिका धर्माधर्मनिर्णयके विषयमें यह मत विज्ञानानुमोदित है। ज्ञान और अज्ञानके निर्णायक तथा तत्त्वज्ञानप्रकाशक जितने ज्ञानकाण्डके मत हैं, वे सब इसी मौलिक भित्तिपर स्थित हैं। वैदिक, तान्त्रिक अथवा मिश्र उपासनाकाण्ड और कर्मकाण्डकी जो त्रिविध साधन-पद्धतियाँ हैं, वे सभी इसी मौलिक सिद्धान्तको आश्रय करके बनायी गयी हैं, तभी वे सब वैदिक कहाती हैं॥ २०६॥

अब चौथा मत कह रहे हैं:—

महर्षि कणादिके मतमें अभ्युदय और निःश्रेयस्कर कर्म धर्म है॥ २०७॥

मानवधर्मकी धारिका शक्तिके प्रभावसे मनुष्य पहले ऐहलौकिक अभ्युदयकी इच्छा करता है और उसे प्राप्त करता है। जब वह कुछ और उन्नत हो जाता है, तो पारलौकिक अभ्युदयकी इच्छा करता है और उसे प्राप्त करता है। अन्तमें जब सत्वगुणकी अभिवृद्धि कर लेता है, तो निःश्रेयसकी इच्छा करता है और निःश्रेयसको प्राप्त करता है। इस कारण जिन कर्मोंके द्वारा ऐहलौकिक अभ्युदय और पारलौकिक अभ्युदय प्राप्त हो, जो कर्म अभ्युदयका मार्ग सरल कर दें और अन्तमें निःश्रेयसभूमिमें पहुँचा दें, वे सब शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक कर्म धर्मशब्दवाच्य हैं, यही पूज्यपाद महर्षि कणादका मत है। आर्य्यजातिकी वर्णाश्रमशृङ्खलाकी मौलिक भित्ति इसी सिद्धान्तपर स्थित है॥ २०७॥

आत्मोन्मुखमिति गौतमः॥ २०६॥

अभ्युदयनिःश्रेयसकरमिति कणादः॥ २०७॥

अब पांचवां मत कह रहे हैं :—

अक्लुष्टपोषक कर्म धर्म है; ऐसा महर्षि पतञ्जलिका मत है ॥ २०८ ॥

इस संसारमें बन्धन और मोक्ष सबका कारण एकमात्र मन है, क्योंकि मन वृत्तिराज्यका आधार है। कर्मका संस्कार भी अन्तःकरणमें ही जमा रहता है। मन वृत्तिमय है। पूज्यपाद महर्षि पतञ्जलि ने वृत्तिराज्यको दो भागोंमें विभक्त किया है। यथा :—क्लृष्टवृत्ति और अक्लुष्टवृत्ति। कितनी ही मनोवृत्तियाँ क्यों न हों, वे या तो क्लुष्ट होंगी या अक्लुष्ट होंगी। क्लुष्टवृत्ति तमोवर्द्धक और अक्लुष्टवृत्ति सत्त्ववर्द्धक होती है। अतः महर्षिके मतमें जो शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक कर्म मनकी क्लृष्टवृत्तियों को बढ़ावें, वे अधर्म कहावेंगे और जो कर्म मनकी अक्लुष्टवृत्तियोंकी वृद्धि करें, वे सब धर्मशब्दवाच्य होंगे। मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, इन चार योगसिद्धान्तोंको अवलम्बन करके जितने साधनसम्प्रदाय हुए हैं और होंगे, उनकी भित्तिको यही मत पुष्ट करता है। उदाहरणरूपसे कह सकते हैं कि, तन्त्रोक्त दिव्याचारकी साधनविधियाँ सब इसी भित्तिपर स्थित हैं ॥ २०८ ॥

अब छठाँ मत कह रहे हैं :—

लीलामोचक धर्म है, यह महर्षि कपिलका मत है ॥ २०९ ॥

लीलामयी महाप्रकृति महामायाकी लीला यह दृश्यप्रपञ्चरूपी सृष्टि है। त्रिगुणमयी प्रकृतिके त्रिगुण-जालमें फँसकर जीव आवागमनचक्रमें निरन्तर घूमा करता है। इसीसे लीला-विलास स्थायी रहता है। पूज्यपाद महर्षि कपिलके मतमें यही धर्मका स्वरूप निर्णय किया गया है कि, जिन जिन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक कर्मोंके द्वारा यह त्रिगुण-जनित लीला-बन्धन बढ़े, वे ही अधर्म कहावेंगे और जिन जिन कर्मोंके द्वारा यह जीवनबन्धनकारी लीलाग्रन्थि अपने आपही खुलती जाय, वे सब शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक कर्म धर्मशब्दवाच्य होंगे। तात्पर्य यह है कि प्रकृतिका लीला-वैभव पुरुषके स्वच्छ स्वरूपमें प्रतिफलित होकर उसको फँसाता है। तत्त्वज्ञानके द्वारा साधक जितना ही प्रकृतिके स्वरूपको जानता जाता है, उतना ही पुरुषका फँसाव घटता जाता है। जिन जिन कर्मोंके द्वारा यह फँसाव घटता जाय, पूज्यपाद महर्षि कपिलके मतमें वे ही सब धर्म हैं। यावत् वैदिक मतानुयायी कर्मकाण्ड और दार्शनिक सम्प्रदायोंके जितने आचार प्रचलित हैं और होंगे, उन सबकी मौलिक भित्ति यही विज्ञान है ॥ २०९ ॥

अब सातवाँ मत कह रहे हैं :—

महर्षि भरद्वाजके मतमें सत्त्ववृद्धिकर कर्म धर्म है ॥ २१० ॥

धर्मलक्षणनिर्णयके विषयमें महर्षि सूत्रकार अपना मत कह रहे हैं कि, जिन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक कर्मोंके द्वारा तमोगुणका ह्रास हो और सत्त्वगुणकी वृद्धि हो, वही धर्मशब्दवाच्य है। इसी सिद्धान्तपर यह मीमांसा-शास्त्र प्रतिष्ठित है। सनातनधर्मके सर्वव्यापक और सर्वजीवहितकारी धर्मविज्ञानकी मूलभित्ति यही है ॥ २१० ॥

अक्लुष्टपोषकमिति पतञ्जलिः ॥ २०८ ॥
लीलामोचकमिति कपिलः ॥ २०९ ॥
सत्त्ववृद्धिकरमिति भरद्वाजः ॥ २१० ॥

अब आठमां मत कह रहे हैं :—

महर्षि अङ्गिराके मतमें ईश्वरार्पित कर्म धर्म है॥ २११ ॥

महर्षि अङ्गिराके मतका सारांश यह है कि, चाहे किसी प्रकारका कर्म हो, जब वह ईश्वरार्पणपूर्वक किया जाय, तो वही कर्म धर्मशक्तिको उत्पन्न करेगा। आत्मासे प्रकृतिका जिस प्रकार सम्बन्ध है, उसी प्रकार प्रकृतिका कर्मसे सम्बन्ध है। आत्मासे प्रकृति अलग होकर सृष्टि-लीलाविलासको प्रकट करती है। प्रकृतिके आत्मासे अलग होकर तरङ्गायित होनेकी जो अवस्था है, वही कर्मोत्पत्तिका कारण है। वही जीवभावको उत्पन्न करता है, यह इस दर्शनशास्त्रमें भलीभाँति प्रमाणित हुआ है। यही अनन्तकोटि-ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरी ब्रह्मप्रकृतिके सृष्टिविलासका गूढ़ रहस्य है। लयकी क्रियायें इससे विपरीत होती हैं। कर्म जब प्रकृतिमें प्रवेश करता है और प्रकृति ब्रह्ममें अव्यक्त दशाको प्राप्त हो जाती है, तब कर्मके साथ दृश्यप्रपञ्चमय जगत् परमात्मामें लय हो जाता है। बन्धन और मोक्षका एकमात्र कारण जीवका अन्तः-करण जब बहिर्मुखीन होता है, तो वही अवस्था बन्धन उत्पन्नकारी होती है और जब अन्तःकरणकी गति आत्माकी ओर होती है, वही जीवकी मुक्तिका कारण बनती है। इसी दार्शनिक सिद्धान्तको लक्ष्यमें रखकर महर्षि अङ्गिराने सिद्धान्त निश्चय किया है कि, साधक भगवद्भक्तियुक्त होकर जिन जिन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक कर्मोंको करते समय धृति और विचारको काममें लाकर सच्चे हृदयसे परमात्मामें अर्पण करता हुआ करेगा, वे सब कर्म धर्मशब्दवाच्य होंगे। शंका-समाधानके लिये कहा जाता है कि, जब आत्मोन्मुख होना ही अभ्युदय और निःश्रेयसप्राप्तिका एकमात्र कारण है, जब सबकी परिसमाप्ति और सबका आश्रयस्थल आत्मा है और जब आत्माको लक्ष्यमें लाते ही जीवके सब कलुष उसके शुभाशुभ कर्मोंके साथ स्वतः ही हानिको प्राप्त होते हैं, तो यह स्वतःसिद्ध है कि, आत्माकी ओर स्थिर लक्ष्य रखकर जो कोई कर्म किया जायगा, वह जीवका अभ्युदय और निःश्रेयसकारी धर्म बन जायगा, चाहे वह सत् हो या असत्। दूसरी ओर यह सिद्धान्त निश्चित है कि, बिना अन्तःकरणके विक्षेपरहित हुए और बिना भक्तिद्वारा भगवद्भावापन्न हुए साधकके मनकी गति आत्माकी ओर हो ही नहीं सकती और जब भक्तकी मनोवृत्ति आत्मोन्मुखिनी है, तो उस अन्तःकरणमें धर्म और पुण्यका उदय होना स्वभावसिद्ध है। इस विषयको दूसरे प्रकारसे भी समझ सकते हैं कि, अन्तःकरणका अन्तिम तत्त्व भाव है। इस कारण यदि भाव सत् हो, तो असत् कर्मभी सत् हो जाता है और यदि भाव असत् हो, तो सत्कर्मभी असत् हो जाता है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, जीवहिंसा असत् कर्म है, परन्तु यज्ञमें पशु-बलि धर्म हो जाता है। इसी प्रसङ्गसे एक एक विशेष मतका दिग्दर्शन कराया जाता है। तन्त्रशास्त्रोंमें कर्मकाण्ड और उपासना-काण्डके प्रवर्त्तक जितने आचार हैं, वे सब दक्षिणाचार, दिव्याचार और वामाचाररूपी तीन श्रेणियोंमें विभक्त किये गये हैं। उनमेंसे वामाचारकी आचार-पद्धति इसी विज्ञानकी भित्तिपर स्थित है। अतः

ईश्वरार्पितमित्यङ्गिराः ॥ २११ ॥

भावशुद्धिपूर्वक कर्म करना ही धर्म है। ईश्वरस्मरण-पूर्वक ईश्वरमें अर्पित कर्म करनेसे भावकी स्वतः शुद्धि होती है। इस कारण पूज्यपाद महर्षि अङ्गिराका सिद्धान्त यह है कि, शारीरिक, मानसिक आदि कोई भी कर्म हो, श्रीभगवान्में अर्पण करके भगवत्प्रीत्यर्थ जो कर्म होगा, वह अवश्य ही धर्मशब्दवाच्य होगा॥ २११॥

अब नवाँ मत कह रहे हैं :—

लोकहितकर कर्म धर्म है, यह महर्षि व्यासका मत है॥ २१२॥

व्यष्टि और समष्टिरूपसे ब्रह्माण्ड और पिण्ड एक ही है। अतः जिस कर्मके द्वारा किसी व्यक्तिका हित होता हो अथवा जिस कर्मके द्वारा जगत्का हित होता हो, व्यष्टि और समष्टिसम्बन्धसे दोनों एक ही है। उसीप्रकार जगत्के साथ जगत्कर्त्ता भगवान्का भी एकत्वसम्बन्ध विद्यमान है। पिपीलिकासे लेकर हस्तीपर्य्यन्त, एक मनुष्यसे लेकर मनुष्यसमाज-पर्य्यन्त सभी समष्टि और व्यष्टिरूपसे भगवान्से सम्बन्धयुक्त हैं। पशु-पक्षीसे लेकर साधारण मनुष्य-सृष्टि पर्य्यन्त और असभ्य मनुष्यसे लेकर उन्नत ज्ञानी मनुष्यतकमे श्रीभगवान्की चित्कलाका तारतम्य रहनेपर भी भगवान् और भगवान्की सृष्टि एकही सम्बन्धसे युक्त है। इसकारण लोकपूजाद्वारा भगवान्की पूजा होती है। इसी प्रकार वसुधा ही अपना कुटुम्ब है, जगत् ही परमात्मा का स्वरूप है, ऐसी बुद्धि रखकर जो छोटेसे छोटा अथवा बड़ेसे बड़ा शारीरिक, मानसिक अथवा बौद्धिक कर्म किया जाय, वही धर्मशब्दवाच्य होगा। पूज्यपाद महर्षि-वेदव्यास की सम्मति यह है कि, शारीरिक, वाचनिक और बौद्धिक जो कर्म लोकहितकर अर्थात् जगद्धित-कर उद्देश्यसे नियोजित हो, उसको धर्म कहते हैं। जगत्सेवा ही भगवत्सेवा है और भगवत्सेवाका कार्य धर्मकार्य्य होगा, इसमें संदेह ही क्या है? भगवान् वेदव्यासकी सम्मति है :—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

उसके लिये एक व्यापक साधारण लक्ष्य धर्मके विषयमें करानेके लिये ऐसा मत प्रकट करना स्वाभाविक ही है। यद्यपि धर्मके व्यापकलक्षण, विशेष-लक्षण और साधारणलक्षणके विषयमें बहुत कुछ विस्तृत मीमांसा पहले पादमें हो चुकी है, तथापि विभिन्न महर्षियोंके विभिन्न मतसे कौनसा कर्म, धर्म हो सकता है और कौनसा नहीं हो सकता, यह विषय इन सूत्रोमें विवृत किया गया है॥ २१२॥

अब मतपार्थक्यका कारण कह रहे है :—

संस्कार और अधिकारभेद ही इसका कारण है॥ २१३॥

पूज्यपाद महर्षियोके मतोंमें इस प्रकारका भेद देखकर जिज्ञासुओंको शंका हो सकती है। इस कारण कहा जाता है कि, महर्षियोंका मतभेद वास्तवमें नहीं है। अधिकारियोका संस्कारवैचित्र्य और अधिकारवैचित्र्य ही इसका कारण है। अपने पूर्वजन्मार्जित विभिन्न संस्कार और प्रारब्धजनित अधिकारवैचित्र्यके कारण मनुष्योंका प्रकृति, प्रवृत्ति और शक्तिमें भेद होना स्वाभाविक है। उस भेदके

[क्रमशः]

लोकहितमिति व्यासः॥ २१२॥

संस्काराधिकारभेदोऽत्र हेतुः॥ २१३॥

आवश्यक सूचना

'आर्य-महिला'का यह अङ्क इस वर्षका अन्तिम अङ्क है। इसके साथ आपका साधारण सदस्यताका चन्दा समाप्त हो रहा है। आगामी अप्रेल माससे आर्य-महिला ३३वें वर्षमें पदार्पण करेंगी। इस ३३वें वर्षका प्रथम अङ्क विशेषाङ्क होगा जिसमें श्रीमद्भागवतका एकादश स्कन्ध सम्पूर्ण होगा। आर्य-महिलाके पाठकोंको ऐसा सुन्दर साहित्य बिना मूल्य प्राप्त होगा। अतः निवेदन है कि अपना १९५१–१९५२ का सदस्यता-शुल्क ५) रुपया मनिआर्डर द्वारा शीघ्र कार्यालयमें भेजकर अनुगृहीत करें। आपके सुविधाके लिये मनिआर्डर फार्म इसी अङ्कके साथ लगा हुआ है, शीघ्रता करें। विलम्ब होनेसे आपको इस अङ्कसे निराश होना पड़ेगा। जो सज्जन महापरिषद्के पाँच साधारण सदस्य बना देंगे उनको यह विशेषाङ्क सहित एक वर्ष तक 'आर्य-महिला' बिना मूल्य भेजी जायगी। मनिआर्डर कूपनपर अपना नाम, पूरा पता तथा सदस्य-संख्या साफ-साफ लिखें; नये सदस्य 'नया' ऐसा लिखें।

निवेदक

व्यवस्थापक।

श्री आर्य-महिला-हितकारिणी महापरिषद्

श्रीमहामण्डल भवन, बनारस कैन्ट।

आर्य-महिलाके पाठकोंको अभूतपूर्व उपहार।

आर्यमहिला के २३वें वर्ष के प्रथम अङ्क में श्रीमद्भागवत का एकादशस्कन्ध प्रकाशित हो रहा है। भगवान् वेदव्यासप्रणीत श्रीमद्भागवत में बारह स्कन्ध तीनसौ पैंतीस अध्याय और अठारह हजार श्लोक हैं। इस अद्वितीय महान् ग्रन्थका सारभूत ग्यारहवाँ स्कन्ध मानों सम्पूर्ण ग्रन्थका प्राण है। इस स्कन्धमें सांख्ययोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग आदि सभी विषयोंका सुन्दर सरल विवेचन है और भगवद्भक्तिसे ओत-प्रोत है। यह ज्ञानी, भक्त या कर्मी सभीके लिये समानरूपमे उपकारी है। श्रीआर्य-महिलाहितकारिणी-महापरिषद्के सदस्य सदस्याओं एवं आर्य-महिलाके पाठकोंको यह अनमोल ग्रन्थ विना मूल्य प्राप्त होगा। अतः यदि आप महापरिषद्के सदस्य नहीं हैं, तो आज ही पाँच रुपया मनिआर्डरसे भेजकर महापरिषद्का सदस्य बनिये। कागजकी कमीके कारण थोड़ी ही प्रतियाँ छप रही हैं। अतः शीघ्रता कीजिये अन्यथा निराश होना पड़ेगा। मनीआर्डर कूपनपर अपना नाम तथा पता साफ-साफ लिखें।

निवेदक :—

व्यवस्थापक।

आर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद,

श्रीमहामण्डल-भवन जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

प्रकाशक—श्रीमदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।
मुद्रक—श्रीसुधीरचन्द्र चक्रवर्त्ती, कमला प्रेस, गोदोलिया बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌की मासिक मुखपत्रिका

श्रावण सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ४ | जुलाई १९५१

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी. एम. ए., बी. टी.

रघुवर तुमको मेरी लाज,
सदा सदा मैं शरण तिहारी,
तुम हो गरीबनिवाज ॥
पतित उधारन विरद तिहारो,
श्रवणन सुनी अवाज ।
मोसे पतित पुरातन कहिये,
पार लगा दो जहाज ॥
अघखंडन दुःखभंजन
जनको यही तिहारो काज ।
'तुलसीदास' पर कृपा,
करिये भक्तिदान दे आज ॥

विषय-सूची।

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥

श्रावण सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ४ | जुलाई १९५१

प्रार्थना

और कहँ ठौर रघुवंशमणि मेरे।

पतित पावन प्रणत पाल अशरण शरणं।
बाँकुरे विरद विरदैत केहि केरे॥
कतहुँ नहिं ठाऊँ कहँ जाऊँ कोशलनाथ।
दीन वितहीन हौं बिकल बिनु डेरे॥
'दास तुलसिहिं' बास देहु अब करि कृपा।
बस गज गीध व्याधादि जेहि खेरे॥

आत्म-निवेदन

निर्वाचन और महिलाएँ

भारतीय पवित्र संस्कृति और परम्पराके अनुसार आर्यनारियोंका प्रधान कार्यक्षेत्र, उनका घर ही रहा है। पिता-माता, पति-पुत्र, सास-श्वसुर, अतिथि-अभ्यागत, आश्रित, रोगी आदिकी समुचित सेवा शुश्रूषा, घरकी सुव्यवस्था, भोजनकी सुव्यवस्था सन्तानका पालन, उसकी रक्षा और शिक्षाका कार्य कुलदेवियोंका प्रधान कार्य रहा है। ये कार्य इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि, संसारकी शान्ति, सुख, स्वास्थ्य एवं जीवन इन्हींपर अवलम्बित है। विशेषतः नारियाँ आदिशक्ति जगन्माताकी प्रतिकृति होनेके कारण स्नेहपूर्ण मातृत्व एवं गृहिणीत्व उनके स्वभावमें ओतप्रोत एवं भरपूर है। यह उनको उत्तराधिकारके रूपमें जगन्माताने प्रदान किया है, अतः वे इन कार्योंको जितनी सुन्दरता एवं मधुरतासे सम्पन्न कर सकती हैं और करती हैं, पुरुष वैसा कदापि भी नहीं कर सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने कभी सामाजिक या राजनैतिक कार्योंमें भाग ही नहीं लिया हो। देश और कर्तव्यकी पुकार होनेपर उन्होंने पुरुषोंके कन्धेसे कंधा भिड़ाकर संकटकालमें शस्त्र भी उठाया है, युद्ध भी किया और शत्रुओंके दाँत खट्टे किये हैं। इतिहासको उठाकर उलटिये तो उसमें इनके इस रणरंगिनी चण्डीके रूपका दर्शन होगा, आवश्यकता पड़नेपर इन्होंने शासनसूत्रको भी बड़ी योग्यतासे सम्हाला है। महारानी अहिल्याबाई, महारानी लक्ष्मीबाईके उदाहरण अभी प्रत्यक्ष ही है। आज देश, भारतीय संस्कृति एवं आर्यनारियोंके प्राचीनतम गौरवमय सतीत्वपर घोर सङ्कट है; अतः आर्यनारियोंको उसकी रक्षा एवं मानवताकी रक्षाके लिये अब सावधानीसे कार्यक्षेत्रमें उतरना चाहिये।

हमारे पूज्यपाद महर्षियोंने सहस्रों वर्ष पहले भविष्यवाणी की थी कि "सङ्घे शक्तिः कलौ युगे।" अर्थात् कलियुगमें सङ्घशक्तिकी प्रधानता है। आज प्रत्यक्ष देखा जा रहा है, कि बहुमतके द्वारा सर्वनियन्ता ईश्वरका भी तिरस्कार किया जा रहा है। अतः अपनी चिरसञ्चित सतीत्व-सम्पत्ति, धर्म एवं राष्ट्रकी रक्षाके लिये नारियोंको अपने मताधिकारका निःसंकोच होकर अवश्य उपयोग करना चाहिये। वयस्क मताधिकारके अनुसार प्रत्येक इक्कीस वर्षीय महिलाको चुनावमें अपना मत देनेका अधिकार है। आगामी निर्वाचनमें नारियोंको अवश्य अपने इस अधिकारका उपयोग करना चाहिये, और ऐसे व्यक्तियोंको अपना मत (वोट) देना चाहिये जिससे जनता-जनार्दनकी सच्ची सेवा तथा भारतीय पवित्र संस्कृतिकी रक्षा हो सके।

दलबन्दीका दल-दल

आज जहाँ देखिये दलबन्दीही दलबन्दी दिखायी देती है, शायद ही ऐसी कोई संस्था हो जहाँ दलबन्दी नहीं हो। सरकारमें दलबन्दी, प्रत्येक समाजमें दलबन्दी, संस्थाओंमें दलबन्दी, नेताओंमें दलबन्दी, इन दलबन्दियोंके कारण कोई जनहितका कार्य सुचारु रूपसे नहीं होने पाता, न उसकी सुव्यवस्था होने पाती है। सच तो

यह है कि, आज दलबन्दीका संक्रामक रोग हमारे देशमें लग गया है। और यह देखकर तो बड़ा क्षोभ होता है, कि प्रान्तीय शिक्षाविभाग, जिसके सर्वोच्च अधिकारी श्रीमान् बा० सम्पूर्णानन्दजी जैसे विद्वान्, विवेकी एवं विचारशील व्यक्ति हैं, वह अब शिक्षा-संस्थाओंको भी दलबन्दीका दलदल बनाने जा रहा है। क्योंकि अब सरकारी सहायता पानेवाली सभी शिक्षा-संस्थाओंकी प्रबन्ध-समितियोंमें सरकारके तीन प्रतिनिधि सदस्य रहेंगें, प्रत्येक शिक्षा-संस्थाओंके अध्यापकवर्गका एक प्रतिनिधि रहेगा। अतः प्रत्येक शिक्षा-संस्थाओंकी प्रबन्ध-समितियोंमें स्वभावतः ही दो दल बन जायंगे। एक दल इन सरकारी प्रतिनिधियों एवं शिक्षकोंका होगा, दूसरा दल अन्य स्वतन्त्र सदस्योंका होगा। इस सम्बंधकी असुविधाओं एवं बुराइयोंकी ओर अनेक बार शिक्षा-विभागका ध्यान आकर्षित किया गया, अनुनय-विनय किया गया, प्रार्थना की गयी, परन्तु एक नहीं सुनी गयी। शिक्षाविभाग अपने हठपर तुला है। शिक्षा-विभागके इस हठका कुपरिणाम जनताको भोगना पड़ेगा। शिक्षासंस्थाओंको इस दलबंदीके दलदलमें फँस जानेसे उनकी किसी प्रकारकी उन्नति, प्रगति या सुव्यवस्थामें कोई सहायता तो मिल नहीं सकती, किन्तु वे संस्थाएँ अब दलबन्दीका अखाड़ा बन जायंगी जहाँ दो दलोंका चख-चख सदा चलता रहेगा। यह दुर्भाग्यकी बात है, सरकारकी सभी सूझ उलटी होती है, जिससे जनताकी लाभके बदले हानि ही होती है।

चरित्रशीलता

(लेखिका—श्रीमती लक्ष्मीदेवी शर्मा, प्रयाग।)

जीवनकी सबसे अमूल्य निधि चरित्रशीलता है। यही एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा व्यक्तिकी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा प्रत्येक प्रतिष्ठित समाजमें होती है। इसे प्राप्त कर कोई भी पुरुष संसारकी अत्यन्त ही दुर्लभ निधिको भी प्राप्त कर सकता है और संसारके कठिन से भी कठिन कार्यको सुगमतासे कर सकता है। उसमें संसारकी महान्‌से महान् शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं, वही संसारका आदर्श पुरुष बन सकता है। चरित्रशील व्यक्ति सांसारिक वैभव प्राप्त न होनेपर भी सदैव सुखी रहता है। ऐसे ही व्यक्तियोंको सभ्य एवं शिक्षित समाजका आदर्श कहा गया है। चरित्र ही किसी देशकी संस्कृतिमें जीवन-संचार करता है। बालकोंकी शिक्षाका अन्तिम उद्देश्य भी चरित्रनिर्माण ही है।

चरित्रगठनका कार्य :—शैशवकालमें बालकके चरित्रगठनकी सामग्री एकत्र होती है। इस अवस्थामें जो संस्कार बालकोंके मनमें पड़ जाते हैं, वे उनके जीवनमें एक विशेष प्रकारका चमत्कार उत्पन्न कर देते हैं। यही संस्कार उसके चरित्रविकासमें सहायक हो सकते हैं अथवा उसकी गतिका अवरोध कर सकते हैं। मनुष्यको चरित्रशील बननेमें निम्नलिखित साहित्योंका भी गहरा प्रभाव पड़ता है।

कहानियाँ—बालकोंके मनमें शुभसंस्कारोंके डालनेमें कहानियाँ बहुत सहायक होती हैं। कहानियोंके द्वारा बालकोंको उदार, परोपकारी और वीर पुरुष बनाया जा सकता है। बचपनमें बालक जिस प्रकारकी कहानियाँ सुनते हैं, वैसा ही उनके चरित्र-पर प्रभाव पड़ता है। हमारे देशमें प्रतिष्ठित एवं

विद्वान् व्यक्तियोंकी लिखित अनेकों ऐसी कहानियाँ हैं, जिनसे समाजके बालकोंकी मनोवृत्तिपर अच्छा प्रभाव पड़ता है। अतः प्रत्येक मातापिताका कर्तव्य है कि, ऐसी सुन्दर कहानियोंको सीखें और छोटे बालकोंको सुनावें।

वीरगाथाएँ—छोटे बालकोंके चरित्रमें जिसप्रकार कहानियाँ आवश्यक हैं, उसीप्रकार किशोरावस्थाके बालकोंके लिये इतिहास और वीरगाथाएँ आवश्यक हैं। मनुष्यका मन जिसप्रकारके कल्पना-जगत्में भ्रमण करता है, उसका आचरण भी उसीप्रकारका हो जाता है। मनुष्य सदासे अपनेसे बड़ेका अनुकरण करनेके लिये तत्पर रहता है इसीलिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अच्छी अच्छी वीर गाथाएँ पढ़ें और अपने बालकोंको भी ऐसे साहित्यों-को पढ़नेका अवसर दें।

इतिहास—चरित्रशील होनेमें इतिहासके अध्ययनका भी बहुतही महत्व है। इतिहाससे बालकोंको अतीत कालका ज्ञान होता है और भविष्यकी तैयारी करनेके लिये योग्यता प्राप्त होती है। इतना ही नहीं, उन्हें अपने पूर्वजोंके प्रति श्रद्धा और भक्ति होती है साथ ही उनकेद्वारा किए गये कार्योंसे अपने कार्योंमें प्रोत्साहन मिलता है।

वीर पुरुषोंकी ज़यन्तियाँ तथा देवपूजा—चरित्रशील होनेमें वीरपुरुषोंकी जयन्तियाँ मनाना तथा देवपूजा भी बहुत सहायक होते हैं। हमारे देशके भूतपूर्व आदर्श पुरुष प्रताप, शिवाजी तथा दयानन्द। सरस्वती, गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा सूरदास, हिन्दीके आदि नेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा स्वामी शिवानन्द आदि जैसे वीरोंकी जयन्तियाँ उनके जन्मदिवसपर मनानी चाहिये। साथ ही गीता, रामायण तथा महाभारत एवं भागवत आदि धर्मग्रंथोंके पूजापाठ एवं अध्ययनसे भी चरित्र-के ऊपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः शिक्षकोंको चाहिये कि वे बालकोंमें प्रथमावस्थासे ही उक्त विषयोंके पठन-पाठन एवं अध्ययनकी ओर श्रद्धा एवं रुचि उत्पन्न करें और उन्हें हर समय ऐसी शिक्षाएँ दें जिससे उनके हृदयमें अपने पूर्वजों एवं वीरपुरुषों के प्रति निष्ठा एवं ईश्वरके प्रति भक्ति उत्पन्न हों।

चरित्रशीलताके मुख्य अंग—उक्त साहित्योंके अतिरिक्त चरित्रशील बननेके मुख्यरूपसे कुछ ऐसे साधन एवं लक्षण हैं जिनसे ही कोई भी व्यक्ति चरित्रशील एवं प्रतिभाशाली कहा जाता है। ऐसे ही कुछ साधन चरित्रशीलताके मुख्य अङ्ग माने जाते हैं जिनमें मुख्यतः कुछका उल्लेख नीचे किया जाता है।

(क) उच्च आदर्श—चरित्रशील होनेमें उच्च आदर्शों का बहुत बड़ा महत्व है। आदर्शहीन मनुष्य कभी भी चरित्रवान् नहीं हो सकता, वह सद्गुणोंसे तो रहित होता है ही, साथ ही उसमें अपनी कमीको जाननेकी भी शक्ति नहीं होती। वह अपनी कमीको न देखकर दूसरोंमें उसे आरोपित करता और अपने दुःखका कारण अपने आपको न समझकर दूसरोंको समझता है। जिस मनुष्यके विचार नियन्त्रित रहते हैं तथा जिस लक्ष्यकी ओर वे अग्रसर होते हैं उसकी क्रिया भी नियन्त्रित रहती हैं और उनका प्रवाह उसी लक्ष्य विशेषकी ओर होता है। अतएव यह तो सर्वथा सत्य है, कि जिस मनुष्यका जितना ही ऊँचा आदर्श होता है, वह उतना ही चरित्रशील होता है। आदर्श, मनुष्यके विचारोंको सूत्रीभूत करता है और उन्हें नियंत्रणमें रखता है।

(ख) अध्यात्मशक्ति—चरित्रशीलताका प्रथम अङ्ग अध्यात्मशक्ति अथवा मानसिक दृढ़ता है। अपने निश्चित लक्ष्यकी ओर पूर्णरूपसे अग्रसर रहना और अनेक बाधाओंके पड़नेपर भी अपने निश्चित मार्गसे विचलित न होना चरित्रशील व्यक्तियोंके आचरणका प्रथम लक्षण है। जब किन्हीं भी दो भावनाओंका हमारे मनमें आविर्भाव होता है, (यथा सिनेमा देखना या अध्ययन करना) तो दोनोंमें हमारे मनके अन्तर्गत द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है जो भावना इस द्वन्द्वमें विजयी होती है, उसके अनुसार शारीरिक व मानसिक क्रियाएँ होने लगती हैं। विजयी भावना वही होती है जो अधिक शक्तिशाली हो। प्रायः ऐसा ही होता है, कि कोई भावना अपने आपमें अधिक शक्ति न होते हुए भी वह द्वन्द्वमें सफल हो जाती है। जैसे, विद्याध्ययन और सिनेमा देखनेकी भावनामेंसे पहली भावना दूसरीसे अपने आप निर्बल होते हुए भी द्वंद्वमें विजयी हो जाती है। उसका एकमात्र कारण है अध्यात्मशक्ति।

यह कार्यका निर्णय करनेवाली अन्तिम शक्ति है यही जिस भावनाको चाहती है, दबा देती है और जिसको चाहती है, उसे शक्तिशाली बना देती है। इसीप्रकार कई बार इस प्रकारके निर्णयसे यह अत्यन्त शक्तिशाली हो जाती है, जिससे जीवन आदर्शमय हो जाता है। चरित्रशील व्यक्तिका कोई भी निर्णय अध्यात्मशक्तिके प्रतिकूल नहीं होता और जब यह इस प्रकारसे कई बार निर्णय कर चुकती है, तो फिर उसके लिये किसी भी प्रकारका सुन्दरसे सुन्दर एवं उच्च निर्णय कर लेना असाध्य नहीं रह जाता। चरित्रशील बननेमें अध्यात्मशक्तिका बहुत बड़ा स्थान है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको चरित्रशील बननेके लिये अपनी अध्यात्मशक्तिको शुभकामनाओं एवं शुभनिर्णयों द्वारा शक्तिशाली बनाना चाहिये।

(ग) धार्मिकता—अध्यात्मशक्ति धार्मिक विचारों एवं उच्च सिद्धान्तोंपर चलने तथा उनका पालन करनेसे आती है। धर्मही एक ऐसा मार्ग है, जिसके द्वारा मनुष्यको मानसिक बल मिलता है। धर्मके अंतर्गत सदाचार एवं ईश्वराराधना आदि सभी बातोंका समावेश है। जो व्यक्ति निश्चित सिद्धान्तके ही आधारपर अपनी जीवन-यात्राके लिये प्रस्थान करता है वह अपनी यात्रामें पूर्ण सफल हो सकता है। साथ ही अपने जीवनको सुखमय बना सकता है और दूसरे व्यक्तियोंके लिये भी मार्ग निर्देशक बन सकता है। जिन्हें ईश्वरपर विश्वास है, और जिन्हें अपने प्रत्येक कार्यको करते समय इस बातका आभास होता रहता है कि मेरा प्रत्येक कार्य कोई महान् अदृश्य आत्मा देख रही है, वे अपने लक्ष्यसे कभी भी विचलित नहीं हो सकते। उनमें किसी भी प्रकारकी कायरता एवं अकर्मण्यता नहीं आ सकती। जो व्यक्ति अपने प्रत्येक कर्तव्योंको भलीभाँति जानता है तथा उनके पालन करनेमें सदैव तत्पर रहता है उसकी मानसिक शक्तियाँ दृढ़ हो जाती है और उसकी चित्तवृत्तियोंकी ओर अग्रसर होती हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने किसी भी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं चलता और न तो अपने कर्त्तव्योंको ही पहचानता है, उसमें कभी भी मानसिक दृढ़ता एवं धार्मिकता आ ही नहीं सकती। इस प्रकार वह अपने जीवनस्तरको दुर्भाग्य और अकर्मण्यताके अन्धकारमें गिरा देता है।

(घ) आत्मबल—आध्यात्मिकशक्ति तथा मान-

सिक दृढ़ता तथा धार्मिकताका जो स्थान चरित्रशीलतामें है वही स्थान आत्मबलका भी है। जब कोई भी व्यक्ति विवेक-बुद्धिसे कार्य करता है और अपने प्रलोभनकी शक्तियोंको नियन्त्रणमें रखकर उन्हें अपनी लालसावृत्तिको प्राप्त करनेसे रोकता है तभी उसे आत्मबल प्राप्त होता है। अपने आत्मबलके ही द्वारा कोई भी व्यक्ति चरित्रशील हो सकता है। इस प्रकार धीरे धीरे अभ्यासोंद्वारा आत्मबल प्रात किया जा सकता है। आत्मबलद्वारा संसारकी अमूल्यनिधियाँ सरलता एवं सुगमतासे ही प्राप्त हो सकती हैं। उसे अपने किसी भी लक्ष्यके साधनमें किंचिन्मात्र भी कठिनाई प्रतीत नहीं होती।

(ङ) मानसिक रुचि—बालकोंमें उनकी जन्मजात पाशविकतासे मुक्त करनेके लिये ज्ञानकी वृद्धि एवं रुचियोंका विकास करना आवश्यक है। उन्हें अपने अपने अध्ययन या किसी आवश्यक कामोंसे मुक्त होनेपर अच्छे कामोंमें लगाना चाहिये। इस प्रकारसे उनका चरित्र अपने आप उच्च एव उज्ज्वल हो जाता है, और उसमें अच्छे अच्छे कार्योंके करनेकी रुचि उत्पन्न होती है। इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रारम्भसे ही बालकको अच्छी अच्छी बातोंका ज्ञान कराया जाय। क्योंकि जबतक कि किसीभी उच्च कार्यका ज्ञान उन्हें नहीं होगा तबतक उस कार्यमें उनकी रुचि ही कैसे हो सकती है? इसीप्रकार जब उन्हें किसी उच्च विषयमें रुचि ही नहीं है तो वे किसी बड़े सामाजिक कार्य एवं व्यक्तिगत चरित्रसुधारको लगनके साथ कैसे कर सकते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे अपनी सन्तानोंमें सर्वोच्च कार्योंके करनेकी रुचि उत्पन्न कर उनकी ज्ञानवृद्धिके लिये उन्नतशील कार्यों एवं मार्गोंका ज्ञान करावें। क्योंकि किसी भी व्यक्तिके चरित्रशील बननेका मुख्य साधन ज्ञानवृद्धि ही है।

(च) उत्तेजना—प्रत्येक व्यक्तिकी चरित्रशीलतामें उत्तेजनाका बड़ा महत्व है। चरित्रके ऐसे अमूल्य गुण यथा—आत्मबल, मानसिक दृढ़ता, धार्मिकता एवं आध्यात्मिक शक्ति तथा धैर्य आदि उत्तेजनासे ही प्राप्त होते हैं। अतः बालकोंको अनेक शुभकार्योंमें प्रोत्साहित एवं उत्तेजित करना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है। उन्हें जीवनके उच्च आदर्शोंकी ओर अग्रसर होनेके लिये सदैव उत्तेजित करते रहना चाहिये। उनको ऐसे कार्योंके लिये प्रतिक्षण उत्तेजित करना चाहिये जिनके द्वारा मनुष्यका जीवन सुखमय एवं आनन्दमय हो सकता है और जिनके द्वारा मनुष्यको अपने लक्ष्यसाधनमें सहयोग मिल सकता है।

निरुत्साही व्यक्तियोंका जीवन निराशामय बना रहता है। उनकी किसीभी कार्यको करनेमें लगन नहीं देखी जाती। इस प्रकार उनमें अनेकों प्रकारकी आत्मनिर्बलताओंका आविर्भाव हो जाता है और वे अपने उत्साहको नष्टकर कायर बन जाते हैं।

ऊपर मैं चरित्रशीलताके मुख्य मुख्य अङ्गों एवं लक्षणोंकी विशद विवेचना कर चुकी हूँ। इनका एकमात्र उद्देश्य मनुष्यको चरित्रशील बनाना है। अतः इनका यदि अध्ययन और अपने जीवनके कार्योंमें उपयोग किया जाय तथा इनके ही द्वारा अपने जीवन-लक्ष्यका निर्देश किया जाय तो कोई व्यक्ति चरित्रशील बन सकता है। उसकी आत्मा महान् एवं दृढ़ हो सकती है फिर इस भाँति चरित्रशील बनकर कोई भी व्यक्ति अपने दाम्पत्य एवं सामाजिक जीवनको सुखद एवं आनन्दमय बना सकता है।

मातृजातिका सम्मान करो।

(ले० श्रीमती विद्यादेवीजी)

'माँ' जितना मधुर, मनोहारी और हृदयहारी शब्द है वैसा संसारमें कोई शब्द नहीं। मनुष्यके ऊपर जब कभी कोई गाढ़ विपत्ति आती है या कठिन संकट आ पड़ता है, तब बिना विचारे ही उसके मुखसे 'माँ' शब्द ही झट निकल पड़ता है और 'माँ' की ही याद आती है। साधारण ठेस लगनेसे लेकर घातक भयङ्कर क्लेशके समय भी स्वभावतः 'माँ' शब्द बिना जाने ही मुखसे निकल पड़ता है। दार्शनिक सिद्धान्तके अनुसार शब्द भावके प्रकाशक होते हैं। सभी शब्दोंसे कुछ भाव अवश्य प्रकट होता है। इस अनुभूत सत्यके अनुसार 'माँ' इस एक अक्षरवाले शब्दमें अनन्त स्नेह, अगाध अहेतुक प्रेम, एवं अनन्त शक्ति निहित है, 'माँ' शब्दका उच्चारण करते ही ऐसी एक अतिमधुर, करुणामयी, प्रेममयी, स्नेहमयी दया-वात्सल्यको मूर्ति हमारे सामने आती है, जिससे हमें विश्वास होता है, कि वह हमारे विपत्तियोंका नाश करेगी, संकटसे उद्धार करेगी, कठिनाइयोंका निपटारा करेगी, विघ्नोंका विनाश करेगी और विपत्ति-आपत्ति-संकटसे जर्जरित प्राणोंको अपने अकृत्रिम स्नेह-सुधासे सिञ्चन करेगी, हमारे अगणित अपराधोंको भूलकर हमें सान्त्वना, शक्ति, साहस और बल प्रदान करेगी। यह धारणा इतना सत्य, स्वाभाविक, सरल एवं सहज है कि प्रकृतिराज्यका एक अबोध शिशु भी जब किसी कारण विपन्न एवं भयभीत होकर अपनी माताके गोदमें पहुँच जाता है, और अपनेको उसके स्नेह-सिञ्चित अञ्चलसे ढक लेता है, तब वह अपनेको सब ओरसे निरापद निर्भय समझता है। माताका गोद मानो उसके लिये अभेद्य दुर्ग है, सब ओरसे सुरक्षित किला है, जिसमें किसी शत्रुसैन्यका समावेश सम्भव नहीं। केवल इस लोकके मनुष्योंका ही नहीं, संसारके रक्षक देवताओंकी भी यही दशा है। जब उनको अपनी बुद्धि, शक्ति, सैन्य-सामन्त काम नहीं देते, जब वे सब ओरसे निराश एवं हताश हो जाते हैं, तब माताकी ही शरण लेते हैं और वह 'माँ' अपनी शरणागत सन्तानकी रक्षाके लिये, उसको विपत्तियोंसे बचानेके लिये अविलम्ब अपने अट्टहास-से देवताओंको आनन्दित और उत्साहित करती हुई रणरङ्गिनी चण्डिकाके रूपमें आविर्भूत हो जाती है, देवताओंका दुःख दूर करती है, उनको अपने पदोंपर प्रतिष्ठित करती है। ऐसे अनेक उदाहरण पुराणोंमें मिलते हैं। माताकी ऐसी महिमा अनन्त कालसे चली आयी है। इसी कारण सबसे प्राचीन मनुष्यजाति हिन्दूजातिमें माताकी इतनी महिमा है। प्राचीनकालके विद्यालयोंमें "मातृदेवो भव" की प्रथम, उसके अनन्तर "पितृदेवो भव", आचार्यदेवो भव", "अतिथिदेवोभव" आदिकी शिक्षा दी जाया करती थी। यहाँ तककी माता-पिता और आचार्य यदि एक स्थानमें बैठे हों तो सबसे पहले माताको प्रणाम करनेकी आज्ञा शास्त्रकार देते हैं। भगवान् मनुने तो कहा ही है—

"पितुर्दशगुणा माता गौरवेणाऽतिरिच्यते"

माताकी महिमा सर्वोपरि है, वह साक्षात् जगन्माता का स्वरूप है; इसीकारण तो कहा है, कि जहाँ स्त्रीका अपमान या तिरस्कार होता है, वहाँके सब शुभकार्य निष्फल हो जाते हैं, उस कुलका नाश हो जाता है; इत्यादि अनेक शास्त्राज्ञा इस प्रकारके भरे पड़े हैं।

जब तक हमारे देशमें इस मातृजातिका शास्त्रोक्त सम्मान था, उचित आदर था, वे यथार्थरूपमें गृहस्वामिनी थीं, विधवाओंकी संन्यासीकी तरह पूजा होती थी, उनके तपत्यागमें सहायता दी जाती थी, कन्या-विक्रय महान् पाप समझा जाता था, कन्याओंको उनके उपयुक्त उत्तम शिक्षा दी जाती थी, और स्त्रीमात्र श्रीजगदम्बाका स्वरूप समझकर पूजित होती थी, तब यह देश धनधान्य, सुख-शान्तिसे परिपूर्ण था, दुःख-दरिद्रता, दीनता-हीनता, अभाव-अशान्तिको यहाँ स्थान नहीं था, सब ओर आनन्द-ऐश्वर्य, सुख-सौख्यका साम्राज्य था और आर्यजाति पृथिवीकी सब मनुष्य-जातिकी पथ-प्रदर्शक गुरु थी।

अब भी जहाँ जिस गृहमें देवियोंका देवीकी तरह सम्मान किया जाता है, उनका उचित आदर किया जाता है, वहाँ श्री-सुख-शान्ति-आनन्द मूर्त्तिमान् दिखायी देते हैं; ऐसा घर साक्षात् अन्नपूर्णाका मन्दिर प्रतीत होता है। परन्तु यह लिखते हुए खेद होता है, कि वर्तमान समयमें नारियोंपर नाना प्रकारके अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं। ऐसे स्वेच्छा-चारी नरपिशाचोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, जो अपना स्वेच्छाचारिताकी चरितार्थताके लिये अपनी परमसाध्वी धर्मपत्नी पर या बहू-बेटीपर मनमाना अत्याचार करते हैं, उसको गालियाँ देते हैं, पीटते हैं, नाना प्रकारसे तिरस्कार करते हैं; उनको भोजन-वस्त्रके लिये भी दुःखी करते हैं। भारतीय पवित्र संस्कृतिके अनुसार स्त्री-पुरुष दोनों एकके पूरक होते हैं, स्त्री-पुरुषकी अर्धाङ्गिनी होती है, अतः स्त्रीकी आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं मानी गयी है, नीच पुरुषगण इसका दुरुपयोग करते हैं। ऐसे घरोंमें गृहदेवियाँ फटे-पुराने मैले-कुचैले वस्त्रोंमें दीन-हीन दशामें पड़ी रहती हैं और पुरुष उत्तम उत्तम कीमती वस्त्र धारण करते हैं, मनमाना आमोद-प्रमोद भी करते हैं। लड़की-लड़कोंके लालन-पालन भोजन-वस्त्रमें भी भेदभाव किया जाता है; ऐसे भी नरपिशाच हैं, जो स्त्रियोंको मारभी डालते हैं। इनके अत्याचारोंका कहाँतक वर्णन किया जाय! इन सब जघन्य पापोंका जो कुछ फल होना चाहिये,वह तो समयपर परलोकमें या जन्मान्तरमें होगा ही, क्योंकि कर्मका फल उतना ही निश्चित है, जितना दिनके पश्चात् रात्रिका होना, परन्तु समाजके शक्तिशाली नर-नारियोंका यह पवित्र कर्तव्य है, कि वे ऐसे नरपिशाचोंको उचित दण्ड दें, तिरस्कार करें और स्त्रियोंपर होनेवाले अत्याचारों को बन्द करें।

यदि भारत देशको सुख-समृद्धिशाली बनाना है, यदि प्रत्येक गृहको आनन्द-शान्तिका सदन बनाना है, यदि अपनी सन्तानको स्वस्थ, सुन्दर, धार्मिक, देशभक्त बनाना है, यदि पुनः अपना खोया हुआ अतीत गौरव प्राप्त करना है, तो मातृजातिकी जगन्माताके रूपमें सम्मान-पूजा करो, कन्याओंको उत्तम शिक्षा दो, विधवाओंको संन्यासीके समान पूज्य समझो और उनका सम्मान करो। उनके जीवनकी कठिनाइयोंको दूर करके, उनकी शिक्षा-रक्षाका उचित प्रबन्ध करो। उनका तिरष्कार या घृणा घोर पाप है। गृहके सर्वाधिकार गृहस्वामिनीके ही हैं, उनमें हस्तक्षेप करनेका किसीको अधिकार नहीं है अतः प्रत्येक गृहमें इसको कार्यान्वित करो। स्मरण रखो कि, व्यक्ति, जाति, राष्ट्र सबका स्वास्थ्य, जीवन, शान्ति, सुख, सम्मान, सन्तानका पालन शिक्षा, स्वास्थ्य, अपना अभ्युदय और निःश्रेयस

जगन्माताकी प्रत्यक्ष प्रतीक इस मातृजातिपर ही सम्पूर्णतया निर्भर है। इसका तिरस्कार-अपमान करके त्रिलोकमें कहीं त्राण नहीं है। अतः अपना एवं अपने राष्ट्रका जो कल्याण चाहते हैं, उन्हें सावधानी एवं तत्परताके साथ नारियोंपर होने वाले विविध अत्याचारोंको दूर करना चाहिये और उनका उचित उच्च सम्मानका पद उनको देना चाहिये, तभी व्यष्टि-समष्टि, समाज, राष्ट्र एवं मानव जातिका यथार्थ कल्याण होगा और यह भारत देश पुनः नन्दनवन बनेगा। दुःख-दरिद्रता दूर होगी, दीनता-हीनता, रोग-शोक, सन्ताप, अशांति दूर होगी। घर-घर श्री-शांतिका साम्राज्य होगा और महामहिमामयी सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारिणी सर्वशक्तिमयी श्रीजगन्माता-की कृपा प्राप्त होगी।

श्रीभगवद् गीता

(हिन्दी पद्यानुवाद)

श्रीमोहन वैरागी

(गताङ्कसे आगे)

(३३)

अपने जिन प्रियजन हित मुझको राज्यभोग वैभव सुख इष्ट।
जीवनकी ममता तज कर सब वही युद्धमें हाय प्रविष्ट॥

(३४)

गुरुजन मित्र पुत्र पौत्रादिक मामा ससुर पितामह बन्द्य।
साले सम्बन्धी ये प्रियजन इन्हें मारना कितना निन्द्य॥

(३५)

अपने प्राणोंकी रक्षा या यह सारा त्रिभुवनका राज्य।
इन्हें मारकर नहीं चाहता अहो क्षुद्र-सा यह साम्राज्य॥

(३६)

इन कौरवगण की हत्यासे पायेंगे क्या हम सुख शान्ति।
केवल पाप लगेगा हमको और रहेगी सदा अशान्ति॥

(३७)

अतः कृष्ण इस कुलविनाशसे सिद्ध न होगा कोई अर्थ।
बन्धु-बान्धवोंकी हत्यासे होगा केवल घोर अनर्थ॥

(३८)

यदपि लोभवश भ्रष्टबुद्धि ये देख न पाते कुलक्षय-दोष।
स्वजनोंसे विरोध करनेमें रहा सदैव इन्हें सन्तोष॥

(३९)

किन्तु मुझे जब कुलविनाशके दोषोंका है सम्यक् बोध।
फिर क्यों दें हम योग युद्धमें क्यों न युद्धका करें विरोध॥

(४०)

कुलविनाश होनेसे केशव होता नष्ट सनातन-धर्म।
धर्म नाश होनेसे कुलमें छा जाता सब ओर अधर्म॥

(क्रमशः)

वर्तमान युग और नारी

[श्री जितराम पाठक, बी० ए०]

आज युगकी पुकारके नामपर चारों ओरसे नारी-स्वतंत्रताकी आवाज उठने लगी है। आजकी नारी तथाकथित पुरुषके पराधीनता-पाशसे मुक्त होनेके लिये व्याकुल है और अपने कल्पित जीवनके स्वप्नजालमें उलझी-उलझीसी दृष्टिगत होती है। समशिक्षा, समाधिकार आदिके लिये आये दिन चर्चा हुआ ही करती है। यहाँतक वे कहने लगी हैं कि, अब यह सम्भव नहीं कि पुरुष कमाएँ और स्त्रियाँ घरमें बैठकर खाएँ; नारीको अपने पैरोंपर आप खड़ा होना है, क्योंकि भावी सामाजिक व्यवस्थामें शिशु-पालन एवं गृहस्थी-सञ्चालन पुरुष तथा स्त्री दोनोंको मिलकर करना है।

हमारी देवियोंका आरोप है कि, वे पुरुषके हाथकी कठपुतली मात्र हैं। उनकी कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं। वे पुरुषके टुकड़ोंपर पलनेवाली उसकी (Sex Impulse) की पूर्तिका साधनमात्र है। उन्हें सामाजिक आदर्शोंके बन्धनमें जकड़कर सहज मानवोचित स्वतन्त्रतासे भी वञ्चितकर दिया जाता है। पति, पत्नीके रहते नाना प्रकारके दुष्कर्म करके भी अलांछित ही रहता है, किन्तु यदि उसने इस पथपर पहला कदम भी बढ़ाया कि, उसे कुलटा करार देकर उसके जीवनके साथ खिलवाड़ किया जाता है। इसी सामाजिक विडम्बनाके आधारपर नारीने विद्रोहका झण्डा बुलन्द किया है और अपनी स्वतन्त्रताके लिये जमीन आसमान एक करनेको तैयार है। मुक्तिकी कामना आज उसके नस-नसमें जोर पकड़ रही है।

वास्तवमें देखा जाय तो आजके नारी-जीवनमें

पर्याप्त सुधारकी आवश्यकता है। समाजके दो प्रधान अङ्ग हैं—पुरुष और नारी। अतः नारीको उपेक्षित कर हम आगे नहीं बढ़ सकते। हमारा वास्तविक विकास तभी सम्भव है, जब समाजके दोनों अङ्गोंमें पर्याप्त सुधार हो। इस सुधारके लिये नारीको भी उसके अधिकार देने होंगे। उसकी स्वतंत्रता आजके प्रगतिशील युगमें कोई रोक नहीं सकता। किन्तु, हमें देखना यह है कि, उसे किस तरहके अधिकार मिलने चाहिये? क्या विदेशी सभ्यताके मोहजालमें जकड़ी युवतियोंके सपनोंके संसारको साकार होने दिया जाय? क्या नारी अपने अधिकारोंको अक्षुण्ण बनायें रखनेमें समर्थ हो सकती है? इन अधिकारोंकी समाजपर क्या प्रतिक्रिया होगी? आदि…।

हमारी देवियाँ कहती हैं कि, उन्हें मातृत्वके महत्वके भुलावेमें डाल पराधीनताकी शृङ्खलाको जबर्दस्त बनाया जाता है। उनका आरोप सर्वथा अनुपयुक्त है। नारी मानव-समाजकी माता है। वह उस सरिताके समान है, जो कठिनाइयोंकी चट्टानको चूर करती समाजकी तलहटीमें बहती और उसे सदा हराभरा एवं उर्व्वर बनाए रखती है। आजकी नारी मुलम्मेकी चकाचौंधके समक्ष कुन्दनकी कान्तिकी उपेक्षा करने लगी है। उसे यह नहीं सूझता कि माताका जीवन कितना मधुर तथा आनन्दप्रद है। उसका जीवन त्यागका जीवन है। यही कारण है कि माता मानवके लिये सदासे पूजनीय एवं श्रद्धेय रहा है। प्रेमचन्दजीने ठीक ही कहा है:—"नारी केवल माता है, और उसके उपरान्त जो कुछ है वह मातृत्वका उपक्रम है। मातृत्व संसारकी सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे बड़ी विजय है।" (गोदान)

आजकी विद्रोहिनी नारी हमारे समाजका सबसे प्रधान अङ्ग है। हम उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। अनादि कालसे ही नारी मानव-इतिहासकी प्रधान नायिका है। एक अज्ञात लेखकके अनुसार मकड़ीके जालेकी भाँति विश्वका इतिहास नारी-केन्द्र-बिन्दुके चारों ओर सिकुड़ता एवं फैलता है। हमारे जीवनको सच्चे अर्थमें जीवन बनानेके लिये रागमयी एवं सौंदर्य-प्रसूता नारीकी नितान्त आवश्यकता है। उसकी अनुपस्थितिमें जीवन विरागमय एवं सूना हो जायेगा। सृष्टिको सौंदर्यमय बनानेका सारा श्रेय नारीको है। 'प्रसाद'जीने 'अजातशत्रु'में कहा है कि नारी सृष्टिरूपी उपवनका पुष्प है, जिसका कार्य है सौंदर्य देना। उनके अनुसार नारी जीवनमें पीयूषकी धारा बनकर उमड़ पड़ती है:—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतलमें पीयूष श्रोत-सी बहा करो जीवनके सुन्दर समतलमें।" अब हमें देखना है कि क्या नारी जिस बराबरीके अधिकारके लिये लालायित है, वह उसका उचित हिस्सा है कि नहीं? क्या दोनोंके अधिकार एक-से हो सकते हैं? गम्भीरता पूर्वक विचार करनेपर यह पता चलता है कि, नारी तथा पुरुषकी स्वतन्त्रता न एक-सी हो सकती है और न होनी चाहिये। इसलिये कि दोनोंकी वैज्ञानिक रचनामें बड़ा अन्तर है। उनके शारीरिक एवं मानसिक संघटनोंमें नैसर्गिक वैषम्यके कारण दोनों को एक-से अधिकार नहीं दिये जा सकते। वैज्ञानिकोंकी मान्यता है कि नारीमें कोमलता एवं भावनाका बाहुल्य है तो पुरुषमें पौरुष एवं कठोरताकी

अधिकता है। अतः दोनों एक तरहके कार्य कर सकनेमें समर्थ नहीं। इसीलिये हमारे प्राचीन पण्डितोंने दोनोंके क्षेत्रको विभाजित कर दिया था। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें स्वतंत्र थे। आज भी हम श्रम-विभाजनकी रीतिके अनुसार दोनोंको एक निश्चित सीमा तक ही अधिकार दे सकते हैं। यदि श्रम-विभाजनकी नीतिको स्वार्थ-मूलक बताकर नारी प्रत्येक क्षेत्रमें अपनी टाँग अड़ाने लगे तो हमारा सारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन कटु तथा असह्य हो जायगा। नारीके लिये तो "नमाज छुड़ाने गये और रोजा गले पड़ा" वाली कहावत होगी। दोनोंमेंसे किसीका भी जीवन सुखमय नहीं रह सकता। दाम्पत्य जीवनकी भी इतिश्री ही समझ लीजिये। शिशु-पालन एवं गृहस्थी-सञ्चालनमें साम्याधिकार भी खतरेसे खाली नहीं।

आज पाश्चात्य देशोंका अनुकरण कर हमारे यहाँ भी इस तरहके अप्रासङ्गिक विचार उठने लगे हैं और हमारी देवियाँ भ्रान्तिकी ओर बढ़ती जा रही हैं। वे अपनेको सोचती-समझती नहीं। बराबरीके अधिकारके फलस्वरूप यूरोपमें जो भ्रष्टाचार फैला है वह किसीसे छिपा नहीं। आर्थिक प्रश्न हल करनेके नामपर अनेक तरहके पापाचार हो रहे हैं। इङ्गलैण्डकी सम्प्रति बेकारीकी ओर भी हम ध्यान आकृष्ट किये बिना नहीं रह सकते।

नारी अपनी स्वतन्त्रताको तबतक स्थायी नहीं रख सकती जबतक वह आर्थिक-क्षेत्रमें स्वावलम्बी न हो जाय। इसके लिये आफिसकी खाक छाननी ही होगी। पति-पुत्रकी डाँट यदि बर्दाश्त नहीं होती तो बड़े बाबूकी झिड़की लेट होनेपर सुननेका आदी होना ही पड़ेगा।

अन्तमें कहना यह है कि, हर बातमें यूरोपकी नकल ठीक नहीं। किसीमें सब गुण ही नहीं होते। हम पच्छिमी सभ्यतासे आदान-प्रदान कर सकते हैं, उसका अनुकरण नहीं। वह पूर्वजद्वारा बतायी गयी लीकका अनुसरण करें। वह गुमराह न हो। किन्तु, इसके साथ ही उसके मौलिक अधिकारोंको भी भुलाया नहीं जा सकता। उसके अधिकार उसे देने ही होंगे। नारी अंतमें नारी है। सब कुछ होते हुए भी वह मातृत्वके लोभका संवरण नहीं कर सकती। रागमय जीवनसे वह अपना पल्ला नहीं छुड़ा सकती। उसे जीवनमें सेवा एवं त्यागका व्रत इसलिये लेना होगा कि वह शाश्वत प्रेमका आविर्भाव कर सके। वह सौंदर्यमयी अवश्य है मगर इससे शाश्वत प्रेमका सृजन नहीं हो सकता। दाम्पत्य जीवनको सुखमय बनानेमें ही उसके लक्ष्यकी चरम परिणति है। प्रणय एवं परिणयका मूल्य इसीमें निहित है। नारी अपने अधिकारके लिये पुरुषसे होड़ न लगाये। उसे उसके मौलिक अधिकार निश्चय ही मिलेंगे और नारी सच्चे अर्थमें स्वतन्त्र होगी। प्रेमचन्दजीने गोदानमें कहा है :—"पुरुषमें नारीके गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है और यदि नारीमें पुरुषके गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है।"

भगवत्पूज्यपाद श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वरका मार्मिक उपदेश

धर्महीन शिक्षाने आत्मगौरव नष्ट कर दिया है।

ब्राह्मणका धन है तप, क्षत्रियका धन है बाहु-बल, वैश्यका धन है द्रव्य और शूद्रका धन है कला-कौशल और सेवावृत्तिमें निपुणता। यदि ब्राह्मण तपसे हीन है तो वह अरब-खरबपति भी क्यों न हो जाय, वह तो धनी नहीं कहा जा सकता, इसी प्रकार कोई वैश्य यदि कंगाल है, तो वह भी धनी नहीं कहा जा सकता। अपने धनसे जो धनी है, वह धनवान् है, और दूसरेके धनसे मँगनीके धनसे कोई धनवान् बनना चाहे तो यह रईसी कितने दिन चलेगी?

आजकल धर्महीन शिक्षा होनेके कारण प्रायः कर्त्तव्याकर्त्तव्यका बोध ही नहीं रह गया है और इसीलिये सारी व्यवस्था बिगड़ रही है। लोगोंका दृष्टिकोण सङ्कीर्ण हो गया है। ब्राह्मण तपका महत्व भूल गये। जिसके कारण वे कौपीनवन्त रहते हुए भी महाप्रतापी चक्रवर्ती नरेन्द्रोंको भी बनाने बिगाड़नेमें समर्थ रहते थे, उस शक्तिसञ्चयके साधन तपकी ओरसे उपेक्षा होनेका ही फल है, कि आज गली गली सेठोंका लड़का खिलाते ठोकर खाते फिर रहे हैं।

ब्राह्मण और साधु ही समाजके मुख माने जाते हैं। सारा अङ्ग स्वर्णका हो जाय और मुँहपर एक धब्बा (कुष्ठका) रह जाय तो कोई उसे सुन्दर नहीं कहेगा। मुख पहले स्वच्छ रहना चाहिये क्योंकि सामने पहले वही आता है। इसलिये ब्राह्मणों और साधुओंको अपने धनसे धनी होनेका प्रयत्न करना चाहिये, तप करना चाहिये और दैवीशक्तिका सम्पादन करना चाहिये कुछ हो या न हो, पर कमसे कम विश्वम्भरपर ही विश्वास करो या अपने भाग्यपर ही भरोसा रखो। कमसे कम पेटके लिये तो दरवाजे दरवाजे धक्का खाते मत फिरो। इतनी हीनता उठानेसे तो मर जाना ही अच्छा। स्मरण रखो कि तुम व्यास-वशिष्ठ अत्रि-अङ्गिरा आदि समर्थ त्रिकालज्ञ महर्षियोंकी सन्तान हो, अभीतक उन्हींके नामसे तुम्हारे गोत्र चले आ रहे हैं तो कमसे कम उनकी तो इज्जत बचाओ। राजकुमार होकर दरवाजे दरवाजे धक्का खाये, यह तो शोभा नहीं देता। ब्राह्मण होकर साधु होकर भगवान्के कहलाकर टुकड़ोंके लिये धक्का खाना बड़ी भद्दी बात है। ब्राह्मणों-साधुओंको "तृणवन्मन्यते जगत्" होना चाहिये।

"लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेच्छम्" लक्ष्मीजीकी हजार बार गरज हो तो आये, नहीं तो चली जायें, उसके लिये हमें दीन नहीं होना है। लक्ष्मीपति भगवान् हमारे बने रहें, और हमें कुछ नहीं चाहिये—यह वृत्ति ब्राह्मणोंकी होनी चाहिये। विचारसे धैर्यपूर्वक अपने कर्तव्यके अनुकूल कार्य किया जाय तो लोकमें भी सिर ऊँचा रहेगा और परलोक भी उत्तम बनेगा।

× × × ×

मनमानी तो कर सकते हो परन्तु मनमाना फल नहीं ले सकते।

मनुष्य कर्म करनेमें तो स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगनेमें परतन्त्र है। चोर यदि चाहे तो चोरी करे और न चाहे तो न करे, परन्तु चोरी कर लेनेपर उसका फल वह अपनी इच्छाके अनुसार नहीं भोग सकता, फल भोगनेके लिये तो उसे न्यायालयके अधीन ही रहना पड़ेगा। न्यायाधीश जैसा फैसला करेगा, उसीके अनुसार उसे दण्ड भोगना पड़ेगा।

शास्त्रोंने मनुष्यके लिये स्पष्ट आज्ञाएँ दी हैं, कि यह करो, यह न करो। इसीसे मालूम होता है कि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है, वह सब प्रकारके कर्म कर सकता है, इसीलिये शास्त्रका आदेश है कि कहीं मनुष्य ऐसे कर्म न करे जिसके परिणाममें दुःख भोगना पड़े। मनुष्यको दुःखसे बचानेके लिये ही विधि-निषेधात्मक शास्त्र हैं। जिन कर्मोंका फल दुःखद होता है, उन्हें ही अशुभकर्म या पापकर्म कहा गया है। मनुष्य पाप करके दुःखका भागी न बने, यही शास्त्रकी उपयोगिता है। यदि मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र नहीं तो कर्तव्यविधेयक शास्त्र ही व्यर्थ हो जायँ क्योंकि जो कार्य करनेमें समर्थ होता है, उसीको आज्ञा दी जाती है। अपने मरे हुए नौकरसे कोई नहीं कहता कि एक गिलास जल पिला दो; क्योंकि जानता है कि, वह उठकर जल नहीं पिला सकता। इसी प्रकार जो कर्म करनेमें समर्थ होता है, उसीको आज्ञा दी जाती है।

सिद्धान्त यही निकलता है, कि नवीन कर्म करनेमें मनुष्य स्वतन्त्र है और जो कुछ वह पूर्वजन्मोंमें या इस जन्ममें पहले कर चुका है, उन कर्मोंके फल भोगनेमें परतन्त्र है। उन कर्मोंका जो फल परमात्मा देगा, वह उसको भोगना ही पड़ेगा।

जब कर्म करनेमें स्वतन्त्र है, तो फिर शुभकर्म ही करना चाहिये। शुभकर्म अधिक बढ़ जायगा तो मलिन वासनाएँ भी क्षीण पड़ जायगी फिर अधिक शुभ कार्य होंगे। इसलिये ऐसा नहीं सोचना चाहिये, कि ईश्वर करता है, वही हम करते हैं।

× × × ×

दैव दैव आलसी पुकारा—

पुरुषार्थहीन लोग कर्म करनेके लिये भी ईश्वरको प्रेरक मानते हैं। प्रारब्ध काम करता है, यह ठीक है, परन्तु प्रारब्धके सहयोगकी एक सीमा है। प्रारब्ध यहाँतक कर सकता है कि कोई लाकर ग्रास मुखमें डाल दे। मुखमें पड़ा हुआ ग्रास भी चबाकर जबतक निगला न जायगा, तबतक बेकार है। इसीलिये बिना पुरुषार्थके प्रारब्ध भी नहीं भोगा जा सकता। इसीलिये विहित पुरुषार्थ करो। अधिकार-अनधिकार विचारपूर्वक कार्य करो और ऐसे ही कार्य करो जिनका फल भोगनेमें कष्ट न हो।

(श्रीशङ्कराचार्य उपदेशसे उद्धृत।)

सच्ची समता

दूसरेके साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिये, इस विषयमें भगवान् व्यासकी यह आज्ञा है कि, "आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्।" अर्थात् जो बर्ताव अपनेको प्रतिकूल हो, उसका व्यवहार दूसरोंके साथ कभी नहीं करना चाहिये। दूसरे शब्दोंमें इसका सीधा तात्पर्य यह है, कि दूसरोंके साथ वही बर्ताव करना चाहिये, जो हम दूसरोंसे अपने लिये चाहते हैं। यही सच्ची समता है।

नेहरूजी अपना पुरस्कार वापस लें।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्की सञ्चालिका और अखिलभारतीय महिला-सङ्घकी अध्यक्षा श्रीमती विद्यादेवीजीने नेहरूजीके कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्टके सम्बन्धसे हिन्दूकोडबिलकी चर्चा की है, उसका प्रबल विरोध करके निम्नांकित वक्तव्य दिया है। —सम्पादिका।

प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूजीने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको जो रिपोर्ट दी है, जो ता० ८-७-५१ की अमृतबाजार पत्रिकामें प्रकाशित हुई हैं, उसमें उन्होंने हिन्दूकोडबिलके विषयमें कहा है कि,—"मैं निश्चित रूपसे हमारी महिलाओंको पिछड़ी हुई नहीं कहता। उन्होंने जातीय स्वातन्त्र्य-संग्राममें महत्वपूर्ण भाग लिया और अनेक क्षेत्रोंमें उन्होंने बड़ी योग्यतासे कार्य किया है। यह सत्य है कि, उनको अनेक सामाजिक असुविधाओंके भीतर रहना पड़ता है और राजनैतिक क्षेत्रमें भी उनको वह स्थान नहीं प्राप्त है, जिसके वे योग्य हैं। मैं समझता हूँ कि, किसी जातिकी उन्नति पुरुषोंसे अधिक वहाँकी महिलाओंपर निर्भर रहती है। कुछ दिनोंसे हिन्दू महिलाओंकी असमर्थता दूर करनेके लिये एक कानून धारासभाके सामने है, मैं आशा करता हूँ कि हिन्दूकोडबिल शीघ्र ही पास हो जायगा।" श्रीनेहरूजीके इस कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है, कि स्वातन्त्र्य-संग्राममें हिन्दू महिलाओंने जो त्याग एवं बलिदान किये, उसका पुरस्कारस्वरूप उनको हिन्दूकोडबिल दिया जा रहा है। इस विषयमें हम श्रीनेहरूजीसे स्पष्ट कह देना चाहती हैं कि, हिन्दू महिलाएँ जिनके नसोंमें सती सीता, सावित्री, अरुन्धती, अनुसूया, लोपामुद्राआदि महाभागाओंके पवित्र रक्त प्रवाहित होते हैं और जो इन देवियोंके चरण-चिह्नोंका अनुसरण करनेमें ही अपना परम गौरव समझती हैं, वे हिन्दू महिलाएँ श्रीनेहरूजीके इस पुरस्कारको कभी भी स्वीकार नहीं कर सकती है। हिन्दूकोडबिल हिन्दू महिलाओंके लिये पुरस्कार नहीं, तिरस्कार और अभिशाप है। इसके द्वारा हमारी चिरसञ्चित सतीत्व-सम्पत्ति, सम्मान एवं अतीत गौरव सदाके लिये समाप्त हो जायगा। इसी कारण हम इस काले कानूनका प्रारम्भसे तीव्र विरोध करती आयी हैं और तब तक इसका प्राणप्रणसे विरोध करेंगी, जब तक यह सर्वदाके लिये समाप्त नहीं कर दिया जायगा। खेदसे कहना पड़ता है कि, श्रीनेहरूजी विदेशी वातावरणमें लालित-पालित और शिक्षित हुए हैं, अतः उनके मस्तिष्कमें पश्चिमी स्त्रियोंका आदर्श भरा रहनेसे वे हिन्दू नारियोंकी पवित्र भावना समझ ही नहीं सकते हैं; अपने जाति-धर्म एवं पदगौरवका स्वाभिमान रखनेवाली हिन्दू नारियाँ उस पश्चिमी आदर्शको कभी भी अपने हृदयोंमें स्थान नहीं दे सकती हैं। हम केवल अपना अतीत गौरव प्राप्त करना चाहती हैं; किसी अन्य देशका उच्छिष्ट खाना नहीं चाहतीं। भारतीय पवित्र संस्कृतिमें महिलाओंका जो सर्वोच्च सम्मान-पूर्ण स्थान, अधिकार एवं गौरव है, उसकी संसारमें कहीं भी तुलना है, हिन्दू महिलाएँ अपने इस स्थानको प्राप्त करनेके लिये सचेष्ट हैं।

श्रीनेहरूजी यदि महिलाओंको राजनीतिक क्षेत्रमें उनके योग्य स्थान वस्तुतः देना चाहते हैं, तो केन्द्रीय तथा प्रांतीय मन्त्रिमण्डलोंमें तथा केन्द्रीय एवं प्रान्तीय संसदोंमें महिलाओंको आधा स्थान दें। यही उनका उचित सम्मान एवं पुरस्कार हो सकता है।

हिन्दूकोडबिल तो एकमात्र धोखेकी टट्टी है। इससे हिन्दू महिलाओंका सर्वनाश निश्चित है। अतः नेहरूजी अपना यह पुरस्कार कृपया वापस लें।

महापरिषद्-सम्वाद

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌की प्रबन्ध-समितिकी बैठक ता० ४—६—५१ को बाबू किशोरीरमण प्रसादजीकी अध्यक्षतामें हुई थी। इसमें निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुये।

सर्वसम्मतिसे उप समितिकी रिपोर्टके अनुसार विद्यालयकी निम्नलिखित नियुक्तियाँ स्वीकृत हुईं।

१—कुमारी विद्यावर्मा बी० ए० एल० टी०, सहायक अध्यापिका।

२—कुमारी नीति लाहरी बी० ए० बी० एड०, सहायक अध्यापिका।

३—कुमारी अमिता राय बी० ए० बी० एड०, सहायक अध्यापिका।

४—कुमारी करुणा घोष बी० ए० बी० एड०, सहायक अध्यापिका।

५—श्रीमती कलावती द्विवेदी बी० ए० बी० एड०, सहायक अध्यापिका।

६—श्रीमती प्रियम्बदा शर्मा बी० ए० बी० एड०, सहायक अध्यापिका।

७—श्रीविश्वनाथ जगन्नाथ जोसी सङ्गीतरत्न, सङ्गीत शिक्षक।

८—श्रीमती चरणकुमारी माथुर एच० एस० तथा इन्टरमेडिएट परीक्षाकला, बम्बई, ड्राइङ्ग शिक्षिका।

९—श्रीमान् नरेन्द्रलाल देव, सहायक लेखक।

उपरोक्त सब नियुक्तियाँ ७—७—५१ से १ वर्षके परीक्षाकालपर स्वीकृत हुई हैं।

वाद्यशिक्षकके पदके लिये आनन्दचरण अधिकारी संगीत-रत्नका प्रार्थनापत्र बिना तारीखका उपस्थापित हुआ। निश्चय हुआ कि उपसमिति इनका साक्षात् करके यदि योग्य समझे तो नियुक्ति करके इस समितिको सूचित करे।

प्रिंसपलकी रिपोर्टसे विदित हुआ कि बसकी वर्तमान दरसे विद्यालयको आर्थिक क्षति हो रही है। अतः निश्चय हुआ कि आगामी जुलाईसे प्रत्येक दरमें १) रुपया मासिक वृद्धि की जाय।

प्रिंसपलकी रिपोर्टसे विदित होता है कि छात्रावासके वर्तमान शुल्कमें भी घाटा पड़ता है अतः निश्चय हुआ कि आगामी जुलाई माससे निम्नलिखित शुल्क लिया जाय—

भोजन खर्च २१॥), बिजली १॥), कमरेका किराया प्रतिछात्रा २) मासिक, चिकित्साशुल्क २) प्रवेश शुल्क ५)।

कुमारी कुसुम शर्माका अवकाश सम्बन्धी प्रार्थनापत्र २—६—५१ का प्रिंसपलकी रिपोर्टके साथ उपस्थापित हुआ। निश्चय हुआ कि १५—५—५१ से ७—७—५२ तक इनको बिना वेतनका अवकाश दिया जाय।

श्रीमिथिलेशकुमारी श्रीवास्तवका प्रार्थनापत्र २१—५—५१ का प्रिंसपलकी रिपोर्टके साथ उपस्थापित हुआ। निश्चय हुआ कि इनकी नियुक्ति ७—७—५१ से एक वर्षके परीक्षाकालपर वेतनक्रम ७५—५—११० इ० वी० ६—१४०—इ० वी०—७—१७५ पर की जाय।

महापरिषद्‌का अप्रेलमासका आय-व्ययका हिसाब उपस्थापित हुआ और स्वीकृत हुआ।

बलराज दूबेका ता० १—४—५१ का प्रार्थनापत्र उपस्थापित हुआ। निश्चय हुआ कि जिस तारीखसे यह काम करता है, उससे इसकी नियुक्ति चपरासीके कार्यके लिये २५) रु० वेतन और १०) रु० मँहगाई-पर १ वर्षके परीक्षाकालपर की जाय।

प्रिंसपलकी शिफ़ारिसके अनुसार निश्चय हुआ कि रामदुलार चपरासीका वेतन जुलाई माससे ५) रुपया मासिक बढ़ा दिया जाय यह भी निश्चय हुआ कि दाइयोंका वेतन १) मासिक जुलाईसे बढ़ा दिया जाय।

कर्ममीमांसादर्शन ।

[गतांकसे आगे]

कारण साधन-शैलीके अलग-अलग मार्गोंमें रुचि होना भी स्वाभाविक है। उसीके अनुसार जगत्-कल्याणबुद्धिसे कृपालु धर्माचार्य महर्षियोंने अलग अलग मार्गका निदर्शन कराया है। जिसको जिस मार्गसे अग्रसर होनेका सुभीता होगा, वह उसी मार्गसे अग्रसर हो सकेगा। सबका पहुँचना या तो अभ्युदयभूमि या निःश्रेयस भूमिपर ही होता है॥ २१३॥

उसका दूसरा कारण कह रहे हैं :—

सर्वजीवहितकारी होना भी इसका कारण है॥ २१४॥

धर्मका विराट् स्वरूप और उसकी व्यापक सत्ता ब्रह्माण्ड, पिण्ड, जड़, चेतन सबमें समानरूपसे रहकर सृष्टिकी रक्षा करती है। परन्तु मनुष्ययोनिमें उसका आधिपत्य विलक्षण है। मनुष्य जब पञ्चकोषोंकी पूर्णताको प्राप्त करके अपने पिण्डका अधीश्वर हो जाता है, तब उसको धर्मशक्तिका अनुगमन करना आवश्यक हो जाता है।

चेतनजगत्में धर्मकी नियामिका शक्तिकी पूर्णता दृष्टिगोचर हुआ करती है। व्यष्टिसृष्टिके क्रमके अनुसार जीवभावका विकास उद्भिज्जयोनिसे प्रारम्भ होकर जीव क्रमशः स्वेदज, अण्डज और जरायुजके अन्तर्गत लाखों योनियोंमें घूमता हुआ मनुष्ययोनिको प्राप्त करता है। उद्भिज्जयोनिमें अन्नमयकोष, स्वेदजमें प्राणमयकोष, अण्डजमें मनोमयकोष, जरायुजकी पशुयोनियोंमें विज्ञानमयकोष और मनुष्ययोनिमें आनन्दमयकोषका विकास हुआ करता है। अर्थात् उद्भिज्जमें एक, स्वेदजमें दो, अण्डजमें तीन, जरायुज पशुओंमें चार और मनुष्योंमें पाँचों कोषोंका विकास होकर पूर्णता हुआ करती है। परन्तु नीचेकी योनियोंमें अन्य कोष गौण रहते हैं। यह सब धर्मकी ही शक्ति है, जिससे जीव प्रकृतिराज्यमें क्रमोन्नत होता हुआ मनुष्ययोनितक पहुँचता है। इसलिये भगवान् वेदव्यासजीने जीवोंकी क्रमोन्नतिको लक्ष्य करके कहा है :—

उन्नतिं निखिला जीवा धर्मेणैव क्रमादिह ।
विदधानाः सावधाना लभन्तेऽन्ते परं पदम् ॥

धर्मके द्वारा ही समस्त जीव क्रमोन्नति लाभ करते हुए अन्तमें परमपदको प्राप्त करते हैं।

जड़राज्यके समस्त जीव प्रकृतिके अधीन होनेके कारण इनमें धर्मका विकास प्रकृतिकी सहायतासे प्राकृतिकरूपसे हुआ करता है। केवल चेतनराज्यके जीव मनुष्यमें ही कर्म करनेकी स्वतन्त्रता और विचारशक्ति होनेसे उसमें धर्मका विकास स्वतन्त्रताके साथ पूर्णरूपसे हो सकता है। अतएव मनुष्य ही धर्मसाधनका अधिकारी है। श्रीभगवान् वेदव्यासने महाभारतमें कहा है :—

सर्वजीवहितकारित्वं च धर्मस्य ॥२१४॥

मानुषेषु महाराज ! धर्माऽधर्मौ प्रवर्ततः ।
न तथाऽन्येषु भूतेषु मनुष्यरहितेष्विह ॥
उपभोगैरपि त्यक्तं नाऽऽत्मानं सादयेन्नरः ।
चाण्डालत्वेऽपि मानुष्यं सर्वथा तात ! शोभनम् ॥
इयं हि योनिः प्रथमा यां प्राप्य जगतीपते !
आत्मा वै शक्यते त्रातुं कर्मभिः शुभलक्षणैः ॥

मनुष्यमें ही धर्म और अधर्मकी प्रवृत्ति ठीक ठीक हुआ करती है। मनुष्योंसे इतर जीवोंमें इस प्रकार नहीं होती। अत्यन्त दुःखी होनेपर भी मनुष्यको खिन्न नहीं होना चाहिये; क्योंकि चाण्डाल होनेपर भी मनुष्ययोनि और योनियोंसे उत्कृष्ट है। यही प्रथम योनि है, जिसको प्राप्त करके मनुष्य शुभकर्म करता हुआ मुक्तिपदको प्राप्त कर सकता है।

उद्भिज्जसे लेकर पशुपर्यन्त जड़राज्यके सकल जीवकोषोंके विकासके अनुसार प्राकृतिकरूपसे धर्म-विकासको प्राप्त किया करते हैं। एकमात्र अन्नमय-कोषका विकास होनेसे ही उद्भिज्जमें ऐसी शक्ति देखी जाती है कि, शाखामात्रके रोपणसे वह शाखा वृक्षरूपमें परिणत हो जाती है। इस प्रकारकी उद्भिज्जकी शक्ति धर्मके किञ्चित् विकासका ही सूचक है। स्वेदजमें प्राणमयकोषके विकासके साथ साथ जो बहुत प्रकारकी प्राण-क्रियाएँ देखनेमें आती हैं; यथा—रोगोंके कीटोंसे शरीरमें व्याधि होना अथवा देशमें महामारी फैलना और खूनके सफेद कीटोंके द्वारा व्याधियोंका नाश होना, वे सब स्वेदजयोनिमें धर्मके विकासका ही परिचायक हैं। अण्डजमें मनो-मयकोषके विकासके साथ साथ प्रेम, द्वेष आदि वृत्तियोंका विकास होना भी धर्मशक्तिके विकासका ही फल है। जरायुजमें विज्ञानमयकोषके विकासके साथ ही साथ पशुओंमें धर्मविकाससे बहुत प्रकारकी बुद्धि-वृत्तिके लक्षणका प्रकाशित होना तो प्रत्यक्षसिद्ध ही है। हाथी, घोड़ा और सिंह आदि उन्नत पशु बुद्धिके कार्योंको अपने अपने अधिकारके अनुसार बहुत अच्छी तरह करते हुए दिखायी देते हैं। यह सब धर्मके विकासका ही प्रत्यक्ष लक्षण है। इस तरह प्राकृतिकरूपसे धर्मविकासको प्राप्त करता हुआ जीव अन्तमें मनुष्ययोनिको प्राप्त करता है।

जड़राज्यके जीव प्रकृतिके पूर्णतया अधीन होनेके कारण प्रकृतिमाता उनको शिशुवत् गोदमें लालन-पालन करती हुई मनुष्ययोनितक पहुँचा देती है। इसी कारण प्रकृतिका ही पूर्ण प्रतिभाव्य (जिम्मेवरी) होनेके कारण ये जीव पाप-पुण्यके भागी नहीं होते। परन्तु मनुष्ययोनिमें आकर अहङ्कारके बढ़ जानेसे मनुष्य स्वतन्त्र होकर कर्म किया करता है और प्रकृति-के अनुशासनका उल्लङ्घन करके यथेच्छ इन्द्रियसेवादि-में प्रवृत्त हो जाता है। जड़राज्यमें रहते समय प्राकृतिक नियमानुसार आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि क्रिया नियमितरूपसे हुआ करती थी, वह मनुष्य-योनिमें प्रकृतिपर आधिपत्य लाभ करनेके कारण अनियमित हो जाती है। इसीका यह फल है कि, जीवकी जो क्रमोन्नतिकी धारा उद्भिज्जयोनिसे मनुष्य-योनिके पूर्वतक बनी हुई थी, वह यहाँ बाधा प्राप्त होनेसे पुनः नीचेकी ओर जाने लगती है। यह धर्मकी ही शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्यकी यह अधोमुखिनी गति रुककर ऊर्द्ध्वमुखिनी हो जाती है। इसी कारण सनातनधर्म पृथिवीके सब धर्म-मार्गोंका पितास्वरूप है। वह स्वाभाविक और

प्रकृतिसहजात है। धर्म ही मनुष्यको मनुष्यधर्मकी विधि, वर्णधर्मकी विधि, आश्रमधर्मकी विधिआदि-से क्रमशः उन्नत करता हुआ अन्तमें मुक्तिपदको प्राप्त कराता है। अतः प्रकृति-प्रवाहके अनुकूल चलकर क्रमशः उन्नतिको प्राप्त करते हुए अन्तमें मुक्तिलाभ करना ही धर्म है और प्रकृतिके प्रतिकूल चलकर अवनतिको प्राप्त करना अधर्म है। इस प्रकारसे धर्मकी धारिकाशक्ति सहजपिण्डके जीवोंमें स्वाभा-विक संस्कारको लेकर प्रकृतिके स्वभावके अनुसार उद्भिज्जादि योनियोंका अभ्युदय कराती है। उसके अनन्तर मनुष्ययोनिमें वही शक्ति असभ्य किरातसे अनार्य और अनार्यसे आर्यजातिमें पहुँचाकर और असभ्यतासे सभ्यताकी अवस्थामें लाकर क्रमशः अभ्युदयमार्गमें अग्रसर करती रहती है और अन्तमें वह जगन्नियामिका शक्ति मनुष्यको तत्त्वज्ञान प्रदान करके निःश्रेयसका मार्ग बताती है। तत्पश्चात् उसे आत्मज्ञानका अधिकारी बनाकर उच्चज्ञानभूमिमें पहुँचा देती है। यही धर्मकी सर्वजीवहितकारिणी शक्ति और उसकी असीम महिमा है। मानवधर्मके बहत्तर अङ्ग और अनेक उपाङ्गोंमेंसे कुछ कुछ अङ्ग और उपाङ्गोंका अवलम्बन करके अनेक अवैदिक धर्ममत और धर्मपन्थ जगत्में प्रकाशित हुए हैं, हो रहे हैं और होते रहेंगे और वे अपने अपने अधिकार-के अनुसार तत्तत् अधिकारी जीवोंका अभ्युदय कराते रहते हैं और कराते रहेंगे। यही धर्मका सर्वजीवहितकारित्व है। ऐसे सर्वजीवहितकारी धर्ममें जबतक अधिकारभेद न रहे, तबतक वह सर्वजीव-हितकारी नहीं बन सकता ॥२१४॥

अब प्रसङ्गसे उसका सर्वोपरि महत्त्व कह रहे हैं—

वह सर्वधारक है ॥२१५॥

सृष्टिके समस्त पदार्थोंको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। एक जड़ और दूसरा चेतन। अतः इन दोनों पदार्थोंको जिस ईश्वरीय शक्तिने धारण कर रखा है, उसको धर्म कहते हैं। भगवान् वेदव्यासने पातञ्जल-योगके भाष्यमें और भी वर्णन किया है :—

योग्यतावच्छिन्ना धर्मिणः शक्तिरेव धर्मः।

धर्मीकी योग्यतायुक्त शक्ति ही धर्म है अर्थात् जड़ या चेतन, किसी भी पदार्थमें जिस शक्तिके न रहनेसे पदार्थकी सत्ता ही नहीं रहती, उस शक्तिका नाम धर्म है। जैसा कि, अग्निका उष्णत्व, जलका द्रवत्व, चुम्बककी लौहाकर्षणशक्ति इत्यादि। इसी विज्ञानको चेतनपदार्थमें भी घटा सकते हैं। यथा :—मनुष्यका धर्म मनुष्यत्व है। अर्थात् जिस शक्तिके विद्यमान रहनेसे मनुष्य मनुष्यपद-वाच्य हो सकता है, वही शक्ति उसका धर्म है। इसीप्रकार पशुका धर्म पशुत्व, ब्राह्मणका धर्म ब्राह्मण-त्व और शूद्रका धर्म शूद्रत्व इत्यादि। अतः इस विज्ञानसे यह पूर्णतया सिद्ध हुआ कि, धर्मकी अलौ-किक शक्तिके द्वारा ही समस्त विश्वब्रह्माण्ड सुरक्षित हो रहा है।

प्रकृतिके विशाल-राज्यमें धर्मकी लीला देखकर हृदयवान् व्यक्ति चकित होते हैं। इस विराट्के

स हि सर्वधारकः ॥२१५॥

गर्भमें कितने ही कोटि कोटि ब्रह्माण्ड सुशोभित है, जिनकी संख्या करना असम्भव है। महानारायणोपनिषद्में वर्णित है :—

अस्य ब्रह्माण्डस्य समन्ततः स्थितान्येतादृशान्यनन्तकोटिब्रह्माण्डानि ज्वलन्ति। इत्यादि॥

इस ब्रह्माण्डके चारों ओर और भी अनन्तकोटि-ब्रह्माण्ड देदीप्यमान हैं। हरएक ब्रह्माण्डमें कितने ही ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, शशी, सूर्य, नक्षत्र अपनी अपनी कक्षामें घूम रहे हैं और ये सब जीवलोक हैं। परन्तु धर्मकी ऐसी धारणा करनेवाली शक्ति है जिसके द्वारा सब ग्रह-उपग्रहोंमें आकर्षण-विकर्षण-शक्तिका सामञ्जस्य होनेसे कोई कक्षाच्युत नहीं होते। विशाल ग्रहके अधिक आकर्षणसे छोटा ग्रह उसके गर्भमें प्रविष्ट होकर नष्ट नहीं होता। यहाँ धर्मकी विश्वधारण करनेवाली शक्तिका ही फल है। यह बात पाश्चात्य विज्ञानसे भी सिद्ध है कि, प्रत्येक परमाणुमें आकर्षण और विकर्षण दोनों शक्तियां विद्यमान हैं। स्थूलजगत्की सृष्टिके समय आकर्षणशक्तिका आधिक्य होनेसे परमाणु आपसमें मिलकर स्थूलजगत्की उत्पत्ति करते हैं। इसीतरह प्रलयके समय विकर्षणशक्तिका प्राबल्य होनेसे सब परमाणु पृथक् पृथक् होकर स्थूलजगत्का लय किया करते हैं। परन्तु स्थितिकी दशामें आकर्षण और विकर्षणका सामञ्जस्य रहा करता है। इस सामञ्जस्यका रखना धर्मकी धारिकाशक्तिका ही कार्य है, जिससे स्थितिकी दशामें इस वैचित्र्यमय संसारकी मधुर लीला देखनेमें आती है।

धर्म-विज्ञानके स्वरूपको और भी अच्छी तरह समझनेके लिये धर्मकी धारिकाशक्तिके अनुसार ब्रह्माण्डमें धर्मशक्ति, पिण्डमें धर्मशक्ति, जड़में धर्मशक्ति, चेतनमें धर्मशक्ति और मनुष्यमें धर्मशक्ति, इन सबको अलग अलग समझनेकी आवश्यकता है। जिसप्रकार स्थूलपदार्थोंमें आकर्षणशक्तिसे परस्परमें मेल और विकर्षणशक्तिसे उसकी पृथक्ता सिद्ध होती है, उसी प्रकार अन्तर्जगत्में अर्थात् मनोराज्यमें राग और द्वेष ये दोनों शक्तियाँ विद्यमान हैं। रागशक्तिद्वारा एक मनुष्यका चित्त दूसरेके तरफ खींच जाता है; इसीसे श्रद्धा, प्रेम, स्नेह आदि वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जो परस्परके चित्तको खींचती हैं। यही कारण है कि, रागजनित आकर्षणसे पिता, पुत्र, पति, स्त्री आदि आत्मीय स्वजनके मोहसे जगत् दृढ़ बन्धन-युक्त है। इससे ठीक विरुद्ध शक्तिको द्वेष कहते हैं। इसी कारण शत्रुके लिये अन्तःकरणमें इस द्वेषवृत्तिका उदय होनेसे शत्रुके प्रति अमङ्गलकी इच्छा होकर वह द्वेषकी वृत्तिमें बनी रहती है। हमारे पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अपनी सर्वमुखिनी प्रतिभासे यह प्रत्यक्ष करके शास्त्रोंमें दिखाया है कि, जड़राज्यमें जैसी आकर्षण और विकर्षणशक्ति है, ठीक वैसी ही चेतनराज्यमें रागशक्ति और द्वेषशक्ति विद्यमान है। रागशक्ति रजोगुणमयी है और द्वेषशक्ति तमोगुणमयी है। उसी प्रकार आकर्षणशक्ति रजोगुणमयी है और विकर्षणशक्ति तमोगुणमयी है। दूसरी ओर आकर्षणशक्ति और विकर्षणशक्तिके समन्वयकी अवस्थामें सत्त्वगुणमयी धारिकाशक्तिका उदय होता है और अन्तर्जगत्में राग तथा द्वेषके समन्वयकी अवस्थामें ज्ञानका विकास होकर जीवका अन्तःकरण सत्त्वगुणमय हो जाता है। इसी कारण समझना उचित है कि, एक ब्रह्माण्डमें जबतक सूर्य, ग्रह, उपग्रह आदिमें आकर्षण और विकर्षण-

शक्तिका समन्वय विद्यमान रहता है, तभी तक वह ब्रह्माण्ड अपने स्वरूपमें स्थित रहता है और सब ग्रह, उपग्रह आपसमें टकराकर प्रलयसे नष्ट नहीं हो जाते। ब्रह्मशक्ति महामायाकी ही यह जगन्नियामिका ब्रह्माण्डधारिका धर्मशक्ति है, जो प्रत्येक ब्रह्माण्डको अपने अपने स्वरूपमें और अनन्तकोटिब्रह्माण्डोंको अपने अपने स्थानोंमें धारण की हुई है। यही ब्रह्माण्डमें धर्मशक्तिके उदयका दिग्दर्शन है।

अब दूसरी ओर ब्रह्माण्डमें धर्मशक्तिके अनुरूप ही प्रत्येक पिण्डमें भी धर्मकी सर्वव्यापिनी और स्थितिकारिणी शक्तिका अनुभव प्रत्यक्ष ही है। प्रत्येक पिण्डमें उस पिण्डकी ऊर्द्ध्वमुखीन जो चित्-सत्ता है, उसकी अभिवृद्धि जिस क्रियाके द्वारा हो, वही पिण्डका धर्म है। जीवपिण्ड तीन प्रकारका होता है। एक सहजपिण्ड, दूसरा देवपिण्ड और तीसरा मानवपिण्ड। उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज, इन चतुर्विध भूतसंघोंकी नाना योनियाँ जिन पिण्डोंको आश्रय करके इस मृत्युलोकमें रहती हैं, वे सब पिण्ड सहजपिण्ड कहाते हैं। इसका कारण यह है कि, ओषधि वृक्ष आदि उद्भिज्ज-योनियाँ, जल, रक्त, पृथिवीआदिमें रहनेवाली कीटाणुरूपी स्वेदजयोनियाँ, अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले सर्प, कपोत, मयूर आदिकी नाना योनियाँ और जरायुजसे उत्पन्न होनेवाले मृग, हस्तीआदि जरायुजयोनियाँ, प्रकृतिके सहजकर्मद्वारा संचालित होनेके कारण इनके पिण्ड सहजपिण्ड कहाते हैं। दूसरी ओर दैवीशक्तिसम्पन्न नाना देवताओं, नाना असुरों, नाना ऋषियों, नाना पितरों और नाना प्रेतोंकी अनेक-योनियाँ जिन पिण्डोंको धारण करती हैं, वे सब देवपिण्ड कहाते हैं। इस मृत्युलोकमें मनुष्य जिस पिण्डको धारण करता है, वह मानवपिण्ड कहाता है। ब्रह्माण्डको धारण करनेवाली वही धर्मशक्ति अनन्तरूपसे यावत् पिण्डोंमें व्याप्त रहकर पिण्डधर्मकी रक्षा करती रहती है। पिण्डधर्मकी रक्षा दो प्रकारसे होती रहती है। एक बहिरूपसे एक अन्तरूपसे। क्योंकि प्रत्येक पिण्डमें शरीर और शरीरी दोनोंका अस्तित्व विद्यमान है। प्रत्येक पिण्डमें उस विशेषपिण्डके पिण्डधर्मकी रक्षा होना शरीरधर्मसे सम्बन्ध रखता है और प्रत्येक पिण्डके जीवको प्रथम दशामें अभ्युदय और दूसरी दशामें निःश्रेयसका मार्ग मिलना, यह उस पिण्डमें स्थित जीवात्माकी क्रमाभिव्यक्तिसे सम्बन्ध रखता है। धर्मकी जगद्धारिकाशक्ति एक ओर पिण्डकी यथावत् क्रिया-सम्पादनमें सहायक रहती है और दूसरी ओर अन्तःकरणमें सत्त्वगुणको उत्तरोत्तर विकसित करती हुई उसको अभ्युदय और निःश्रेयसके मार्गपर चलाया करती है।

अब धर्मशक्ति जड़जगत्में किस प्रकारसे कार्यकारिणी रहती है, सो विचारनेयोग्य है। चाहे प्रस्तरखण्ड हो, चाहे काष्ठ-खण्ड हो, उसके उदाहरणसे यह औदाहरण समझनेयोग्य है। काष्ठकी सृष्टि होते समय वृक्षमें उस काष्ठके परमाणु आकर्षण-शक्तिद्वारा खींचकर एकत्रित हुए थे। यही काष्ठके रजोगुणकी अवस्था है। समयान्तरमें जब वह काष्ठ घुन लगकर अथवा सड़कर मिट्टीके रूपमें परिणत होता है, यही उसके तमोगुणकी अवस्था है। इसी प्रकार जब पत्थर पृथिवीव्यापिनी तड़ितशक्तिके प्रभावसे मिट्टीआदि द्वारा पत्थरके रूपमें परिणत

होता है; यही उसके रजोगुणकी अवस्था है। पुनः जब अग्नि, वायु, जल आदिके प्रभावसे पत्थरके परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं, यही उसके तमोगुणकी अवस्था है। परन्तु इन राजसिक और तामसिक अवस्थाओंके समन्वयकी जो अवस्था है, जिस अवस्थामें काष्ठ अथवा पत्थर अपने स्वरूपमें स्थित रहता है, वही सत्त्वगुणकी अवस्था है। इसी अवस्थामें धर्मकी धारिकाशक्ति जड़पदार्थोंमें विद्यमान रहती है।

चेतन जीवमें वही धर्मशक्ति जीवअन्तःकरणमें क्रमशः सत्त्वगुण और ज्ञानकी अभिवृद्धि करती हुई जीवको उद्भिज्जसे स्वेदज, स्वेदजसे अण्डज और अण्डजसे जरायुजजगत्की नाना योनियोंमें अग्रसर कराती हुई मनुष्ययोनिमें पहुँचा देती है। पुनः मनुष्ययोनिमें अनार्यसे आर्य, शूद्रसे वैश्य, वैश्यसे क्षत्रिय, क्षत्रियसे ब्राह्मणशरीरमें पहुँचाकर क्रमशः तत्त्वज्ञानी आत्मज्ञानी बनाकर मुक्त कर देती है। यही चेतनराज्यमें धर्मशक्तिका ज्वलन्त दृष्टान्त है। अतः जड़राज्य, चेतनराज्य, स्थावर, जङ्गम, पशु, मनुष्य, मानवपिण्ड, देवपिण्डआदि परमाणुसे लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त सब स्थलमें सर्वव्यापक सबका आश्रयरूपी धर्मही सबकी रक्षा करता है। यही धर्मका सर्वोपरि महत्त्व है ॥२१५॥

और भी कह रहे हैं—

वह मल, विकार, विक्षेप, आवरण और अस्मिता दूर करनेवाला होनेसे सर्वशुद्धिप्रद है ॥२१६॥

पहले यह सिद्ध हो चुका है कि, अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष और आनन्दमयकोष इन पाँचों कोषोंमें तमोगुण बढ़ानेवाली पाँच मलिन शक्तियाँ हैं। अन्नमयकोषके मलिन प्रभावको मल कहते हैं, प्राणमयकोषके मलिन प्रभावको विकार कहते हैं, मनोमयकोषके मलिन प्रभावको विक्षेप कहते हैं, विज्ञानमयकोषके मलिन प्रभावको आवरण कहते हैं और आनन्दमयकोषके मलिन प्रभावको अस्मिता कहते हैं। यह भी पहले सिद्ध हो चुका है कि, किस किस प्रकारसे मलिन-क्रिया किस किस कोषमें पहले प्रारम्भ होती है। आत्मा जब इन पाँचों कोषोंसे यथाक्रम आवृत रहता है, तो इन पाँचोंका मालिन्य बढ़नेसे आत्माका प्रकाश भी ढँकता जाता है और उनका मालिन्य घटनेसे आत्माके ऊपरका भी मालिन्य घटता जाता है। यह भी पहले सिद्ध हो चुका है कि, शुद्धाशुद्धविवेकके अनुसार आचार माननेपर ये पाँचों मालिन्य बढ़ने नहीं पाते, अपने आप घट जाते हैं। धर्मकी ऐसी प्रबल और सर्वमुखिनी शक्ति है कि, उसके द्वारा मल विक्षेप आदि पाँचों दोष अपने आप कम होते जाते हैं और त्रिविधशुद्धि स्वतः होकर अन्तमें निःश्रेयस प्राप्त हो जाता है। यह भी पहले ही सिद्ध हो चुका है कि, विश्वधारक धर्म सत्त्वगुणपोषक, सत्त्वगुणवर्द्धक और सत्त्वगुणमय है। सुतरां स्वच्छकारी स्वच्छसत्त्वगुणमय धर्म सर्वशुद्धिप्रद होगा, इसमें सन्देह ही नहीं है ॥२१६॥

अब प्रकृत विषयको कह रहे हैं—

मलविकारविक्षेपावरणास्मितापहन्तृत्वात् सर्वशुद्धिप्रदश्च ॥२१६॥

क्रियापरिणाम त्रिविध और सप्तविध है ॥२१७॥

जिस प्रकार देश और कालके अनुसार कर्मका वैचित्र्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार प्राकृतिक त्रिविध विभाग और सप्तविध विभागके अनुसार भी कर्मका वैचित्र्य उत्पन्न होता है। सत्त्व, रज, तमोरूपी त्रिगुण; अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी भावत्रय; वात, पित्त, कफरूपी दोषत्रयआदि प्राकृतिक त्रिविध विभाग स्वतःसिद्ध हैं। उसी प्रकार सप्तधातु, सप्तदिन, सप्तज्ञानभूमिआदि स्वाभाविक प्राकृतिक सप्तविभाग हैं। इन सब प्राकृतिक विभागोंके अनुसार क्रियापर अवश्य ही वैचित्र्यपूर्ण प्रभाव पड़ता है और उनके अनुसार कर्मका वैचित्र्य प्रकट होता है। कर्मके वैचित्र्यपूर्ण होनेसे धर्ममें भी वैचित्र्य उत्पन्न होता है। यही कारण है कि, देशकालके पार्थक्य, त्रिविध-अधिकारपार्थक्य तथा सप्तविध अधिकार-पार्थक्यद्वारा धर्माधिकारोंमें वैचित्र्य होना विज्ञानसिद्ध है ॥२१७॥

इस विज्ञानको और भी स्पष्ट कर रहे हैं—

युक्तक्रियाके ये भेद हैं ॥२१८॥

युक्तक्रियाको स्थायी रखनेके लिये देशकाल-विचार तथा त्रिविध अधिकार और सप्तविध अधिकार विचार करना अवश्य कर्त्तव्य है। प्रकृतिके स्पन्दनसे उत्पन्न कर्म धर्मरूपको भी धारण कर सकता है और अधर्मरूपको भी धारण कर सकता है। नियमित फलप्रद भी हो सकता है और अनियमित फलप्रद भी हो सकता है। इस विचारसे धर्मप्रवर्त्तक व्यक्तियोंके लिये सिद्धान्त निश्चय करके कहा जा रहा है कि, देशकालके अधिकारों तथा त्रिविध और सप्तविध अधिकारोंको लक्ष्यमें रखकर कर्मकी प्रवृत्ति होनेपर वह युक्तकर्म कहावेगा। बाधा-रहित होकर नियमित फलप्रद कर्मको युक्तकर्म कहते हैं। इन पूर्वकथित विषयोंको विचारमें रखकर कर्म करनेसे उसमें विफलता हो ही नहीं सकती ॥२१८॥

अयुक्तक्रियाके सम्बन्धमें कह रहे हैं:—

अयुक्तक्रियाका परिणाम बहुशाखासे युक्त होता है ॥२१९॥

आध्यात्मिकभावसे युक्त अथवा धर्म और मोक्षलक्ष्यसे युक्त जो क्रिया होती है, वह युक्तक्रिया कहाती है। यद्यपि युक्तक्रियामें अधिकारभेद अवश्य ही होते हैं; परन्तु उसकी शैली एक ही है और उसके विरुद्ध जो अयुक्त क्रिया है, उसकी शैली बहुशाखाओंसे युक्त होती है। क्योंकि अयुक्तक्रियामें धर्म और मोक्षसिद्धान्त-रहित केवल इन्द्रियसेवाजनित अर्थकामादिकी प्रेरणा रहती है। इन्हीं दोनों लक्ष्योंके अनुसार कर्त्ताकी बुद्धि भी दो प्रकारकी होती है, जिसके उपलक्ष्यमें श्रीगीतोपनिषद्में कहा—

> व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन !
> बहुशाखाह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥

अर्थात् हे कुरुनन्दन ! व्यवसायात्मिका बुद्धि एक होती है तथा अव्यवसायियोंकी बुद्धि बहुशाखाओंसे युक्त और अनन्त होती है।

आत्मा एक और अद्वितीय होनेके कारण आत्मोन्मुखप्रवृत्तिकारी जितनी क्रियाएँ होंगी, वे

त्रिविधा सप्तविधा च क्रियापरिणतिः ॥२१७॥

युक्तक्रियायाः ॥२१८॥

आनन्त्यमयुक्तायाः ॥२१९॥

सब युक्तक्रिया होनेसे एक ही ऊर्द्ध्वगामी भावसे युक्त होंगी। यद्यपि युक्तक्रियामें मोक्ष ही प्रधान लक्ष्य रहेगा, परन्तु अभ्युदयका सम्बन्ध रहनेके कारण उसमें अधिकार तारतम्य होना सम्भव है। कुछ ही हो, युक्तक्रियाओंकी गति प्रकारान्तरसे एक ही शैली-की होगी। किन्तु इस सूत्रमें वर्णित अयुक्तक्रियाकी गति ठीक उससे विपरीत होती है। क्योंकि उसमें अभ्युदय और निःश्रेयसप्रद एकमात्र आध्यात्मिक लक्ष्य नहीं रहता है। जिस प्रकार विद्याका राज्य एक अद्वितीय आत्मानुसन्धान है, परन्तु अविद्याका राज्य अनन्तवैचित्र्यपूर्ण सुखदुःखात्मक भोग है, ठीक उसीप्रकार अयुक्तक्रिया अनन्तवैचित्र्यपूर्ण अवस्थाओंसे युक्त होती है ॥२१६॥

प्रसङ्गसे अब भोगकी शैली कही जा रही है :—

भोगकी निष्पत्ति द्विविध होती है ॥२२०॥

क्रियाओंका मौलिक भेद कहकर अब महर्षि सूत्रकार भोगका मौलिक भेद कह रहे हैं। जहाँ क्रिया है, वहाँ अवश्य ही प्रतिक्रिया होती है। वस्तुतः जहाँ कर्म है, वहाँ कर्मफलभोग भी अवश्यम्भावी है। वह कर्मफलभोग मौलिक विज्ञानके अनुसार दो श्रेणीमें विभक्त किया जाता है। क्रिया अन्तः-करण और शरीर दोनोंके द्वारा सम्पादित होती है; क्योंकि बिना अन्तःकरणकी प्रेरणाके स्थूलशरीर कार्य नहीं कर सकता और न बिना अन्तःकरणकी सहायतासे स्थूलशरीर भोगकी निष्पत्ति नहीं कर सकता है। दूसरी ओर स्थूलशरीरके भोगकी चरितार्थता अन्तःकरणमें ही होती है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, निद्रित या मूर्च्छित व्यक्तिको जब देहाध्यास नहीं रहता है, उस समय उसके शरीरपर चन्दन लेपन करनेसे जिस प्रकार चन्दनकी भोग-समापत्ति नहीं होती, उसी प्रकार केवल मनसे ही यदि कोई जलपान करे, तो तृषित व्यक्तिकी तृषाकी विकलता दूर नहीं हो सकती। इसकारण भोगकी निष्पत्तिके लिये जिसप्रकार शरीरकी आवश्यकता है, उसी प्रकार अन्तःकरणकी आवश्यकता है। सुतरां भोगकी शैली भी दो प्रकारकी है ॥२२०॥

प्रसङ्गसे कहते हैं—

त्रिगुण और त्रिभाव धर्म और कर्म-वैचित्र्य-का कारण है ॥२२१॥

प्रकृतिके सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण एवं पुरुषके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत, ये तीन भाव स्वाभाविक हैं। इसी कारण सब पदार्थ और सब वृत्तियाँ त्रिगुण और त्रिभावसे सम्बन्ध रखती हैं। सृष्टिका प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग स्वभावसे ही त्रिगुण और त्रिभावसे पृथक पृथक् स्वरूपको धारण करता है। कोई ऐसा विषय नहीं हो सकता, जिसका सम्बन्ध तीन गुण और तीन भावसे हो न सके। सुतरां धर्म जो जड़ और चेतन दोनोंका धारक है और जो जड़प्रकृति और चिन्मयी प्रकृति दोनोंमें अनुस्यूत है और जो कर्म सृष्टि, स्थिति और लयका कारण है, वे दोनों त्रिगुण और त्रिभावके सम्बन्धसे अलग कदापि नहीं रह सकते। सुतरां तीनों गुणों और तीनों भावोंके घात-प्रतिघातसे धर्म और कर्मका स्वरूप अनन्तवैचित्र्यमय हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, भोजन

[क्रमशः]

द्विविधा भोगनिष्पत्तिः ॥२२०॥

त्रयो गुणभावा धर्मकर्मवैचित्र्ये निदानम् ॥२२१॥

धार्मिक साहित्यकी अपूर्व निधियाँ

धर्म-विज्ञान

तीन खण्ड

(ब्रह्मीभूत श्री १०८ स्वामी दयानन्दजी महाराजद्वारा विरचित)

सनातनधर्मके विभिन्न विषयोंका विशद प्रतिपादन तुलनात्मकरूपसे इस बृहद् ग्रंथमें किया गया है और इसमें पश्चिमी विद्वानोंके प्रमाण भी दिये गये हैं। यह ग्रन्थ तीन खण्डोंमें प्रकाशित है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इसका अध्ययन करना परमावश्यक और लाभदायक है। यह पुस्तक एम० ए० क्लासकी पाठ्य पुस्तक हो सकती है। मूल्य प्रथम खण्ड ५), द्वितीय ४), तृतीय ४)।

धर्मतत्त्व

धर्माधर्मसम्बन्धी ज्ञानप्राप्त करना प्रत्येक हिन्दूका आवश्यक कर्तव्य है। इस धर्मग्रन्थमें तथा उसके अङ्गोंपर संक्षेपसे बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। अतः प्रत्येक गृहस्थके लिये यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है, ऐसे स्कूल और कालेज तथा पाठशालाएँ जिनमें धार्मिक शिक्षा देनेका नियम है, इस धर्मग्रन्थसे काफी लाभ उठा सकते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाओं यानी सभी वर्गके लोगोंके लिये यह समान हितकारी है। धर्मज्ञानकी ज्योतिको घर-घरमें जगानेके लिये यह सर्वाङ्गसुन्दर एवं उपयोगी ग्रन्थ है। मूल्य १=) मात्र।

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण-सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है :—

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	,,
,, १/२ पृष्ठ	१२)	,,
,, १/४ पृष्ठ	८)	,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला-कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

मुद्रक :—श्री सुधीरचन्द्र चक्रवर्ती, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की मासिक मुखपत्रिका

आर्य-महिला

भाद्र पद सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ५ | अगस्त १९५१

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी. एम. ए., बी. टी.

बसो मेरे नैननमें नँदलाल ।
मोहनी मूरत साँवरो सूरत,
नैना बने बिसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजत,
उर बैजन्ती माल ॥
छुद्र घंटिका कटि तट शोभित,
नूपुर सबद रसाल ।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई,
भक्त बत्सल गोपाल ॥

(मीराबाई)

विषय-सूची।

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

भाद्रपद सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ५ | अगस्त १९५१

प्रार्थना

तदस्तु मे नाथ ! स भूरिभागो,
भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां,
भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥

हे नाथ ! मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि, मैं इस जीवनमें या दूसरे जन्ममें अथवा किसी तिर्यक्योनिमें ही जन्म ग्रहणकर आपके दासोंमेंसे एक होऊँ और आपके चरण-कमलोंकी सेवा करूँ ।

आत्म-निवेदन।

धर्महीन शासनकी देन

हमारे शास्त्रोंमें पतिके शरीरान्तके पश्चात् सहमरण या वैधव्यव्रत लेकर जीवित रहनेकी व्यवस्था स्त्रियोंके लिये है। प्राचीनकालसे यह एक प्रथाके रूपमें परिणत हो गयी और इसका दुरुपयोग भी इस प्रकार होने लगा कि, जो स्त्री पतिके शवके साथ जलना नहीं भी चाहती, उसे जबरदस्ती जला दिया जाता था। विशेषतः राजपुतानेके क्षत्रियोंमें इसका बहुत ही दुरुपयोग हुआ है। जिस वस्तुका दुरुपयोग होता है, उसकी प्रतिक्रिया होती ही है। अंग्रेजी शासनने इस प्रथाको बन्द करनेके लिये कानून बनाया। कानून लागू होनेके पहले दिन बंगालके त्रिवेणी तटपर एक सती हुई, जिसका विवरण उस वर्षके बङ्गालके गजटमें है। प्रायः पैंतीस वर्षीया बंगाली महिला अपने पतिका शव अपने गोद लेकर त्रिवेणी तटपर बैठी हुई थी, उसका अट्ठारहवर्षीय पुत्र चिता सजानेकी व्यवस्था कर रहा था, इतनेमें दो पादरी वहाँ जा पहुँचे थें, उन्होंने उक्त सती देवीको सती नहीं होनेके लिये बहुत समझाया। उस देवीने उनसे कहा कि, आप इतना इसलिये कहते हैं कि, आप समझते हैं कि, पतिके साथ जीवित जलनेसे मुझे बहुत कष्ट होगा अतः मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि, मुझे बिलकुल कष्ट नहीं होगा। इतना कहकर उस देवीने अपने पुत्रको एक दीपक लानेकी आज्ञा दी। पुत्रने तत्काल आज्ञाका पालन किया, घृतपूर्ण दीपक आ गया, उसमें मोटी बत्ती लगाकर जला दिया गया और उस देवीने अपनी दो अङ्गुलियाँ दीपकके लवमें दे दी और स्वयं उक्त पादरी महाशयोंसे बात करने लगी। अङ्गुलियोंका मांस जलकर उनकी केवल हड्डियाँ रह गयीं, किन्तु उस महिलाने उसकी कुछ भी वेदना अनुभव नहीं किया। पादरी अवाक् रह गये, श्रद्धासे उनके सिर झुक गये, उन्होंने निल डाउनकरके देवीसे बिदा ली। जो मरना नहीं चाहती है, उसको पीट-पीटकर जबर्दस्ती जलाना जितना घोर पाप है, वैसी ही जो अपने पतिप्रेममें आत्मविस्मृत होकर अपने नश्वर शरीरको पतिदेवकी चितामें समर्पणकर पतिका सहगमन करना चाहती है, उसका तिरस्कार कर उसे दुःख देना और उसके पुण्यकार्यमें बाधा देना भी नारकीय नृशंसतापूर्ण कार्य है। यह पवित्र भारतभूमि यहाँकी सतियोंसे सदा पवित्र होती आयी है। अब भी प्रतिवर्ष इस धर्महीन युगमें भी दो-चार देवियोंके चिताप्रवेशके समाचार अवश्य मिलते रहते हैं। ऐसी ही एक घटना ग्वालियरमें हुई थी। लश्करमें १७ अप्रेल ५१ को बनारसी देवी (ब्राह्मणी) अपने मृतपतिके साथ सती हो गयीं। सुना जाता है कि प्रायः पच्चीस हजार जनता उसको श्रद्धाञ्जली देनेके लिये एकत्र हुई थी, साथ ही कुछ धर्मध्वन्सी नर-पिशाचोंने उस सती होनेवाली स्वर्गीय देवीपर ढेले, चप्पल और जूते फेके! इसस बढ़कर देशका दुर्भाग्य क्या हो सकता है? इसके अनन्तर इसी सतीकाण्डको लेकर मध्यभारतकी धारासभामें लज्जास्पद विवाद चला। कांग्रेसियोंने इसे पुलिसकी

अकर्मण्यता बतायी एवं गुण्डोंका प्रोत्साहन कहा और एक महिलाने तो इस कारण भारतको 'मन्द भारत' कह डाला किन्तु सरदार फाल्के साहबने इस उद्दण्डताका उचित विरोध किया और कहा कि, "यह नारीका शुद्ध आत्मसमर्पण है। जबतक हिन्दू-धर्म मौजूद है, तबतक जो गूढ़ समस्याएँ रहेंगी, उसमें सती-प्रथा भी है। सोशियलिज्मका टानिक जबर्दस्ती किसीके गलेके नीचे उतार सकना सम्भव नहीं।" इसप्रकार इस जघन्य विवादमें श्रीसरदार फाल्केने हिन्दूसंस्कृतिकी सम्मानरक्षा की। इसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। सती होनेवाली देवीपर ढेले, चप्पल, जूते फेकनेकी यह नृशंसता एवं वर्वरता एकमात्र धर्मविहीन शासनकी देन है।

अपने मस्तिष्ककी खिड़की खोलें।

प्रधानमन्त्री श्रीजवाहरलाल नेहरूने बंगलोरमें हुई अखिल-भारतीय-कांग्रेस-कमेटीको दी गई अपनी रिपोर्टमें हिन्दूकोडबिलके विषयमें जो कुछ कहा है, उससे सिद्ध होता है, कि स्वातन्त्र्य-संग्राममें महिलाओंने जो महत्वपूर्ण भाग लिया है, उसका पुरस्कार-स्वरूप हिन्दू महिलाओंको प्रधानमन्त्री हिन्दूकोडबिल देना चाहते हैं। नेहरूजी पश्चिमी सभ्यताके उपासक हैं, उनके मस्तिष्कमें पाश्चात्य-महिलाओंका आदर्श ओतप्रोत है, अतः वे हिन्दू महिलाओंकी पवित्र भावनाओंको समझ ही नहीं सकते हैं। परन्तु वे हिन्दू महिलाएँ जिनको अपनी संस्कृति एवं गौरवका अभिमान एवं आत्मसम्मानका ज्ञान है, कभी भी नेहरूजीका यह पुरस्कार स्वीकार नहीं कर सकतीं। वे अच्छी तरह जानती हैं कि, हिन्दू संस्कृतिमें जो उनका गौरव, सम्मान एवं अधिकार है, वह संसारके किसी स्त्री-जातिको कभी प्राप्त नहीं है। नेहरूजी अच्छी तरह जानते हैं कि हिन्दू महिलाओंने इस बिलके सूत्रपात होनेसे अबतक इसका कितना तीव्र विरोध प्रदर्शन किया है, तब भी नेहरूजी अपनी जिदपर तुले हुए हैं। नेहरूजी कई बार अपने भाषणोंमें दूसरोंको कह चुके हैं कि "अपने दिमागकी खिड़कियाँ खुली रखो"। परन्तु नेहरूजीने स्वयं अपने दिमागकी खिड़कियां बन्द कर रखी है, जिसमें पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति पहलेसे भरी हुई है, उसके अतिरिक्त अन्य किसी विषयके प्रवेशका अवसर नहीं है। अतः यह उपदेश वे अपने ऊपर लागू करें और अपने मस्तिष्ककी खिड़कियां खोलें, तभी उनको हिन्दू महिलाओंकी पवित्र उच्चतम भावना कुछ समझमें आवेगी।

ॐ नमः श्रीसद्गुरवे सच्चिदानन्दाय।

तुम हो सनातन ब्रह्म एकसे तीन भये,
ब्रह्मा विष्णु शिव राजें तुम्हारे सहारेपर।
तीनों पुनि एक भये समन्वय रूप धरो,
जगद्गुरु दत्तात्रेय जगत उधारे पर॥

जगके कल्याणहेतु बार बार दौरि आये,
वेद शास्त्र तारे सबै ज्ञानिनके हारे पर।
डूबत मोहमायामें सत्तर तो पार कीन्हें,
अब तो उबारो नाथ पग है करारे पर॥
स्त्रीरूपं वा स्मरेद्देवं पुंरूपं वा विचिन्तयेत्।
अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्दलक्षणम्॥

गुरुपूर्णिमा, २००८। चरणचञ्चरीक—गोविन्द।

भक्तपुत्रसे भगवान्‌की प्राप्ति।

लेο श्रीमती अन्नपूर्णा देवी

प्राचीन समयमें सोमशर्मा नामसे विख्यात एक ब्राह्मण थे। वे बड़े धर्मात्मा, भगवद्भक्त एवं सदाचारी थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम सुमना था। सुमना भी परम साध्वी तथा छायाकी तरह पतिका अनुगमन करनेवाली थी। ये दम्पती नर्मदातटपर अमरकन्टकमें निवास करते थे। इनके कोई पुत्र नहीं था। दोनोंका सारासमय जप, तप, दान, व्रत-उपवास, अतिथि-सेवा तथा परोपकारमें व्यतीत होता था। ऐसा ही करते-करते बहुत समय बीतनेपर सती सुमनाने गर्भधारण किया। समयपर उस साध्वीने सभी शुभलक्षणोंसे युक्त देवताओंके समान सुन्दर एक पुत्रका जन्म दिया। यह पुत्ररत्न पाकर दोनों बड़े प्रसन्न हुए, इसको उन्होंने प्रभुका प्रसाद ही समझा। ब्राह्मणश्रेष्ठने पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार किया और उसका नाम देवव्रत रखा। देवव्रत चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह प्रतिदिन बढ़ने लगा। दम्पती बड़े प्रेमसे उसका पालन करने लगे।

इस भाग्यवान् पुत्र देवव्रतके जन्मके बादसे ही सोमशर्माके घरमें मानों साक्षात् महालक्ष्मी विराजने लगी। उनका घर धनधान्यसे भरपूर हो गया। उनके यहाँ हाथी-घोड़े, गाय-बैल, सोना-चाँदी, मुक्ता-मणि आदि किसी वस्तुकी कमी नहीं रही। सोमशर्मा भी इतना सब वैभव-विलासका साधन पाकर प्रमादी नहीं बने, वे प्रायः तीर्थोंमें जा-जाकर याचक तथा दीन-दुखियोंको यथेष्ट दान करते। विद्वान् ब्राह्मण, याचक, अतिथि-अभ्यागत कभी भी कोई सोमशर्माके घरसे अनादृत या निराश नहीं लौटता था। उनका सारा समय इसप्रकार दान-पुण्य एवं ज्ञानार्जनमें लगा रहता था। सभी उनके सुयशकी सराहना करते थे। इसप्रकार सोमशर्माकी उज्ज्वल-कीर्ति सब ओर परिव्याप्त हो गयी। पुत्र देवव्रतपर पिता-माताके इस पुण्य-प्रतापका गहरा प्रभाव पड़ा। बचपनसे ही उसके हृदयमें प्रगाढ़ भगवद्भक्ति उत्पन्न हो गयी। उसकी बाल-क्रीड़ाएं भी इसीप्रकार की

होती थीं। पिताने उसे वेदवेदाङ्गके साथ गीत-वाद्य-नृत्य आदि ललित कलाओंकी भी अच्छी शिक्षा दी। परन्तु पिता-मातासे प्राप्त संस्कारोंने उसपर कुछ ऐसा प्रभाव उत्पन्न कर दिया कि बालक देवव्रत हर समय भगवान्‌के मंगलमय नामोंका स्मरण तथा चिन्तन किया करता था। इसप्रकार वह द्विजश्रेष्ठ सदा भगवान्‌का ध्यान करते हुये ही बच्चोंके साथ खेला करता था। वह मेधावी, पुण्यात्मा और पुण्यमें प्रेम रखनेवाला था। उसने अपने साथी बालकोंका नाम अपनी ओरसे परमात्मा श्रीहरिके नामपर ही रख दिया था। वह महामुनि था और भगवान्‌के ही नामसे अपने मित्रोंको भी पुकारा करता था। 'ओ केशव! यहां आओ, चक्रधारी माधव! बचाओ, पुरुषोत्तम! तुम्हीं मेरे साथ खेलो, मधुसूदन हम दोनोंको वनमें ही चलना चाहिये।' इस प्रकार श्रीहरिके नाम ले-लेकर वह ब्राह्मण बालक मित्रोंको बुलाया करता था। खेलने, पढ़ने, हँसने, सोने, गीत गाने, देखने, चलने, बैठने, ध्यान करने, सलाह करने, ज्ञान अर्जन करने तथा शुभकर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय भी वह श्रीभगवान्‌को ही देखता और जगन्नाथ, जनार्दन आदि नामोंका उच्चारण किया करता था। विश्वके एकमात्र स्वामी श्रीपरमेश्वरका ध्यान करता रहता था। तृण, काष्ठ, पत्थर तथा सूखे और गीले, सभी पदार्थोंमें वह धर्मात्मा बालक श्रीकेशवको ही देखता, कमललोचन श्रीगोविन्दका ही साक्षात्कार किया करता था। सुमनाका पुत्र ब्राह्मण देवव्रत बड़ा बुद्धिमान् था; वह आकाशमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंमें, वनोंमें, जल, थल और पाषाणमें तथा सम्पूर्ण जीवोंके भीतर भी भगवान् श्रीनरसिंहका दर्शन करता था।

इसप्रकार बालकोंके साथ खेलमें सम्मिलित होकर वह प्रतिदिन खेलता तथा मधुर अक्षर और उत्तम रागसे युक्त गीतों द्वारा श्रीकृष्णका गुणगान किया करता था। उसके गीत ताल, लय, उत्तम स्वर और मूर्च्छनासे युक्त होते थे। देवव्रत कहता—सम्पूर्ण देवता सदा भगवान् श्रीमुरारिका ध्यान करते हैं। जिनके श्रीअङ्गोंके भीतर सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जो योगके स्वामी, पापोंका नाश करनेवाले और शरणागतोंके रक्षक हैं, उन भगवान् श्रीमधुसूदनका मैं भजन करता हूँ। जो सम्पूर्ण जगत्‌के भीतर सदा जागते और व्याप्त रहते हैं, जिनमें समस्त गुणोंका निवास है तथा जो सब दोषोंसे रहित है, उन परमेश्वरका चिन्तन करके मैं सदा उनके युगल चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। जो गुणोंके अधिष्ठान हैं, जिनके पराक्रमका अन्त नहीं है, वेदान्तज्ञानसे विशुद्धबुद्धिवाले पुरुष जिनका सदा स्तवन किया करते हैं, इस अपार, अनन्त और दुर्गम संसार-सागरसे पार होनेके लिये जो नौकाके समान हैं, उन सर्वस्वरूप भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरण लेता हूँ। मैं श्रीभगवान्‌के उन निर्मल युगलचरणोंको प्रणाम करता हूँ, जो योगीश्वरोंके, हृदयमें निवास करते हैं, जिनका शुद्ध एवं पूर्णप्रभाव सदा और सर्वत्र विख्यात है। देव! मैं दीन हूँ, आप अशुभकी भयसे मेरी रक्षा कीजिये। संसारका पालन करनेके लिये जिन्होंने धर्मको अङ्गीकार किया है, जो सत्यसे युक्त, सम्पूर्ण लोकोंके गुरु, देवताओंके स्वामी, लक्ष्मीजीके एकमात्र निवासस्थान, सर्वस्वरूप और सम्पूर्ण विश्वके आराध्य हैं, उन भगवान्‌के सुयशका सुमधुर

रससे युक्त संगीत एवं काललयके साथ गान करता हूँ। मैं अखिल भुवनके स्वामी भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान करता हूँ जो इस लोकमें दुःखरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं। जो अज्ञान-मय तिमिरका ध्वंस करनेके लिये साक्षात् सूर्यके तुल्य हैं तथा आनन्दके अखण्ड मूल और महिमासे सुशोभित हैं, जो अमृतमय आनंन्दसे परिपूर्ण समस्त कलाओंके आधार तथा गीतके कौशल हैं, उन श्रीभगवान्का मैं अनन्य अनुरागसे गान करता हूँ। जो उत्तम योगके साधनोंसे युक्त हैं, जिनकी दृष्टि परमार्थकी ओर लगी रहती है, जो सम्पूर्ण जगत्को एक साथ देखते रहते हैं तथा पापी लोगोंको जिनके स्वरूपका दर्शन नहीं होता, उन एकमात्र भगवान् श्रीकेशवकी मैं सदाके लिये शरण लेता हूँ।

इस प्रकार सुमनाका पुत्र देवव्रत दोनों हाथोंसे ताली बजाकर ताल देते हुए भगवान्के सुमधुर नामोंका गान करता और बालकोंके साथ सदा प्रसन्न रहता था। प्रतिदिन बालस्वभावके अनुसार खेलता और भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। अपने सुलक्षण पुत्र देवव्रतको खेलते देख माता सुमना कहती—'बेटा! कुछ भोजन कर ले, तुझे भूख लगी होगी।' यह सुनकर वह बुद्धिमान् बालक सुमनाको उत्तर देता—'माँ भगवान्का ध्यान महान् अमृतके तुल्य है, मैं उसीसे तृप्त रहता हूँ—मुझे भूख नहीं लगती।' भोजनके आसन पर बैठकर जब वह अपने सामने मिष्टान्न परोसा हुआ देखता, तब कहता—'इस अन्नसे भगवान् श्रीविष्णु तृप्त हों।' वह धर्मात्मा बालक जब सोनेके लिये जाता, तब वहाँ भी श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए कहता—'मैं योगनिद्रापरायण भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आया हूँ।' इसप्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह श्रीवासुदेवका चिन्तन करता और उन्हींको सब वस्तुएँ समर्पित कर तब स्वयं ग्रहण करता था। समय पर पिताने सुव्रतका विवाह गुणवती, रूपवती, सुलक्षणा कन्यासे कर दिया था परन्तु बड़भागी देवव्रतका मन इस सांसारिक विषयोंमें रमता नहीं था, उसका मन तो सदा परम प्रेममय प्रभुमें ही रमा करता था। धर्मात्मा सुव्रत युवावस्था आने पर काम-भोगका परित्याग करके विन्ध्यपर्वतपर जा भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लग गया। वहीं उस मेधावीने श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुये तपस्या आरम्भ कर दी। उस श्रेष्ठ पर्वत पर सिद्धेश्वर नामक स्थानके पास वह निर्जन बनमें रहता और काम-क्रोध सम्पूर्ण दोषोंका परित्याग करके इन्द्रियोंको संयममें रखते हुये तपस्या करता था। उसने अपने मनको एकाग्र करके भगवान् श्रीविष्णुके साथ जोड़ दिया। इस प्रकार परमात्माके ध्यानमें बहुत दिनों तक लगे रहने पर उसके ऊपर शंख, चक्र, गदाधारी भक्तवत्सल भगवान् श्रीजगन्नाथ बहुत प्रसन्न हुये तथा लक्ष्मीजीके साथ उसके सामने प्रकट होकर बोले—'प्यारे देवव्रत! अब तुम्हारा कल्याण हो, ध्यानसे उठो, मैं विष्णु तुम्हारे पास आया हूँ, मुझसे वर माँगो।' मेधावी देवव्रत भगवान् श्रीविष्णुके ये मधुर वचन सुनकर अत्यन्त आनन्दसे गद्गद् हो गया। उसने जब आँखें खोलीं तो जनार्दन सामने खड़े हैं, फिर तो दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीभगवान्को प्रणाम किया और इस प्रकार स्तवन किया—

संसारसागरमतीव गभीरपारं
दुःखोर्मिभिर्विविधमोहमयैस्तरंगैः ।
सम्पूर्णमस्ति निजदोषगुणैस्तु प्राप्तं
तस्मात् समुद्धर जनार्दन मां सुदीनम् ।

जनार्दन ! यह संसार-सागर अत्यन्त गहरा है, इसके पार जाना कठिन है। यह दुःखमयी लहरों और मोहमयी भाँति भाँतिकी तरङ्गोंसे भरा है। मैं अत्यन्त दीन हूँ और अपने ही दोषों तथा गुणोंसे—पापपुण्योंसे—प्रेरित होकर इसमें आ फँसा हूँ; अतः आप मेरा इससे उद्धार कीजिये।

कर्माम्बुदे महति गर्जति वर्षतीव
विद्युल्लतोल्लसति पातकसञ्चयैर्मे ।
मोहान्धकारपटलैर्मम नष्टदृष्टे-
र्दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम् ॥

कर्मरूपी बादलोंकी घटा घिरी हुई है, जो गरजती और बरसती भी है, मेरे पापोंकी राशि विद्युल्लताकी भांति उसमें थिरक रही है। मोहरूपी अन्धकार समूहसे मेरी दृष्टिविवेकशक्ति नष्ट हो गयी है, मैं अत्यन्त दीन हो रहा हूँ; मधुसूदन मुझे अपने हाथका सहारा दीजिये।

संसारकाननवरं बहुदुःखवृक्षैः
संसेव्यमानमपि मोहमयैश्च सिंहैः ।
संदीप्तमस्ति करुणा बहुवह्नितेजः
संतप्यमानमनसं परिपाहि कृष्ण ॥

यह संसार महान् वन है, इसमें बहुतसे दुःख ही वृक्षरूपमें स्थित हैं। मोहरूपी सिंह इसमें निर्भय होकर निवास करते हैं, इसके भीतर शोकरूपी प्रचण्ड दावानल प्रज्वलित हो रहा है, जिसकी आंचसे मेरा चित्त सन्तप्त हो उठा है। कृष्ण! इससे मुझे बचाइये।

संसारवृक्षमतिजीर्णमपीह उच्चं
मायासुकन्दकरुणा बहुदुःखशाखम् ।
जायादिसङ्घच्छदनं फलितं मुरारे
तं चाधिरूढपतितं भगवन् हि रक्ष ॥

संसार एक वृक्षके समान है, यह अत्यन्त पुराना होनेके साथ बहुत ऊँचा भी है, माया इसकी जड़ है, शोक तथा नाना प्रकारके दुःख इसकी शाखायें हैं, पत्नी आदि परिवारके लोग पत्ते हैं और इसमें अनेक प्रकारके फल लगे हुए हैं। मुरारे ! मैं इस संसार वृक्षपर चढ़कर गिर रहा हूँ, भगवन् ! इस समय मेरी रक्षा कीजिये—मुझे बचाइये।

दुःखानलैर्विविधमोहमयैः सुधूमैः
शोकैर्वियोगमरणान्तकसंन्निभैश्च ।
दग्धोऽस्मि कृष्ण सततं मम देहि मोक्षं
ज्ञानाम्बुनाथ परिषिच्य सदैव मां त्वम् ॥

कृष्ण ! मैं दुःखरूपी अग्नि, विविधप्रकारके मोह-रूपी धुएँ तथा वियोग, मृत्यु और कालके समान शोकोंसे जल रहा हूं; आप सदा ज्ञानरूपी जलसे सींचकर मुझे सदाके लिये संसार-बन्धनसे छुड़ा दीजिये।

मोहान्धकारपटले महतीव गर्ते
संसारनाम्नि सततं पतितं हि कृष्ण ।
कृत्वा तरीं मम हि दीनभयातुरस्य
तस्माद् विकृष्य शरणं नय मामितस्त्वम् ॥

कृष्ण ! मैं मोहरूपी अन्धकारराशिसे भरे हुये संसार नामक गड्ढेमें सदासे गिरा हुआ हूं, दीन हूँ,

और भयसे अत्यन्त व्याकुल हूँ, आप मेरे लिये नौका बनकर उस गड्ढेसे निकालिये, वहाँसे खींच-कर अपनी शरणमें लीजिये।

त्वामेव ये नियतमानसभावयुक्ता
ध्यायन्नन्यमनसा पदवीं लभन्ते।
नत्वैव पादयुगलं च महत्सु पुण्यं
ये देवकिन्नरगणाः परिचिन्तयन्ति॥

जो संयमशील हृदयके भावसे युक्त होकर अनन्य अन्तःकरणसे आपका ध्यान करते हैं वे आपकी पदवीको प्राप्त हो जाते हैं; तथा जो देवता और किन्नरगण आपके दोनों परमपवित्र चरणोंको प्रणाम करके उनका चिन्तन करते हैं, वे भी आपकी पदवी-को प्राप्त होते हैं।

नान्यं वदामि न भजामि न चिन्तयामि
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि।
एवं हि मामुपगतं शरणं च रक्ष
दूरेण यान्तु मम पातकसञ्चयास्ते।
दासोऽस्मि भृत्यवदहं तव जन्म जन्म
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि॥

मैं न तो दूसरेका नाम लेता हूँ न दूसरेको भजता हूँ, और न दूसरेका चिन्तन ही करता हूँ, नित्य निरन्तर आपके युगल चरणोंको प्रणाम करता हूँ। इसप्रकार मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें, मेरे पातकसमूह शीघ्र दूर हो जायँ, मैं भृत्यकी भाँति जन्म जन्म आपका दास बना रहूँ। भगवन्! आपके युगल-चरण-कमलोंको सदा प्रणाम करता हूँ।

श्रीकृष्ण! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मुझे यह उत्तम वरदान दीजिये—मेरे माता-पिताको सशरीर अपने परमधामको पहुँचाइये। मेरे ही साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलिये।

भगवान्‌ने कहा—देवव्रत! तुम्हारी यह उत्तम कामना अवश्य पूर्ण हो।

इसतरह देवव्रतकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भगवान् श्रीहरि उन्हें उत्तम वरदान दे, दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको चले गये। देवव्रतके साथ ही सुमना और सोमशर्मा भी भगवान् विष्णुके दिव्य-धामको सदेह चले गये।

इसप्रकार भाग्यशाली सोमशर्मा एवं साध्वी सुमनाने अपने भगवद्भक्त पुत्रके कारण भगवान् विष्णुके उत्तमधामको प्राप्त किया।

अर्थ नामक अनर्थ।

अर्थ अर्थात् धनसे कौन-कौनसे अनर्थकारी दुर्गुण मनुष्यका आश्रय करते हैं, इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा है—

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥
एते पञ्चदशानर्था अर्थमूला मता नृणाम्।
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्॥
११।२३।१८—१९

अर्थात् धनसे मनुष्योंमें ये पन्द्रह अनर्थ अवश्य होते हैं यथा—चोरी, हिंसा, मिथ्याभाषण, पाखण्ड, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेद-बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा (होड़), लम्पटता, जूआ, तथा (व्यभिचार-मद्यपानादि) व्यसन। अतः अपना कल्याण चाहनेवालोंको इस अनर्थरूपी अर्थका दूरसे ही त्याग करना चाहिये।

श्रीभगवद् गीता

(हिन्दी पद्यानुवाद)

श्रीमोहन वैरागी

(गताङ्कसे आगे)

(४१)

बढ़ता जब प्राबल्य पापका होतीं कुलवधुयें अकुलीन ।
नारीके पापाचरणोंसे होती सन्तति वर्णविहीन ॥

(४२)

वर्णहीन ऐसे कपूत वे तज देते अपना कुलधर्म ।
करते पतित पूर्वजों को निज होते लुप्त श्राद्ध सत्कर्म ॥

(४३)

इसप्रकार कुल जाति धर्मका हो जाता सम्पूर्ण विनाश ।
धर्मच्युत कुलघ्न प्राणीसब करते सदा नरकमें वास ॥

(४४)

किन्तु हाय धिक् ज्ञान हमारा धर्म हमारा हा धिक्कार ।
कुलका महानाश लखकर भी हमको इष्ट स्वजन संहार ॥

(४५)

राज्य और सुखकी तृष्णामें प्रिय हमको बान्धवका रक्त ।
धिक् यह क्षात्रधर्म हे अच्युत हुये पापमें हम अनुरक्त ॥

(४६)

अस्त्रशस्त्रसे विरत हुआ मैं खो दूँ भले समरमें प्राण ।
वध-कर डालें कौरव मेरा इसमें अहो अधिक कल्याण ॥

(४७)

यों कहकर कातर विषादसे रखकर अपना धनु तूणीर ।
समरभूमिमें रथपर अर्जुन बैठ गये होकर गम्भीर ॥

इति प्रथम अध्याय ।

'भारतीय नारियाँ अपना भाग्य-निर्माण स्वयं करेंगी'

अ० भा० महिलासंघकी प्रधान मंत्रिणीका वक्तव्य।

अखिल भारतीय महिलासंघकी प्रधान मंत्रिणी श्रीमती शान्तादेवी वैद्याने श्री जे० के० टण्डन चुनाव-अधिकारी उत्तरप्रदेशके नाम निम्न वक्तव्य भेजा है :—

महोदय,

अखिल भारतीय महिलासङ्घने आगामी निर्वाचनोंमें सामूहिकरूपसे भाग लेनेका निश्चय किया है। उत्तरप्रदेशमें अधिकांश कैन्डीडेटोंका निर्णय हो गया है, महिलासङ्घ मुख्यतः राजनीतिक संस्था है, किन्तु अन्य राजनीतिक-संस्थाओंकी भांति हो-हल्ला और प्रचारका तूमार नहीं बाँधता उसकी एक स्थिर निश्चित नीति है।

१७ करोड़ स्त्रियोंका भाग्य आज प्रजातन्त्रीय नीतिके हाथमें है, भारतीय नारियोंकी प्रशस्त परम्परागत पवित्र भावनाओंका प्रतिनिधित्व अंग्रेजोंके मानस पुत्र सेक्युलर राजनीतिज्ञ नहीं कर सकते। अपना भाग्यनिर्णय हम स्वयं करेंगी। एतदर्थ ही हमारा चुनाव प्रयास है।

यद्यपि आपने महिलासङ्घको संकेत निर्णायक पार्टियोंके ८-७-५१, के सम्मेलनमें नहीं बुलाया है, किन्तु आशा है कि हमारे आवेदनपर आप अवश्य विचार करेंगे।

हमारा यह निवेदन उत्तरप्रदेशकी ३ करोड़ नारियोंकी ओरसे है। हम सांकेतिक चिह्नोंके झमेले या प्रतिस्पर्धामें नहीं पड़ना चाहतीं, हमारा सांकेतिक चिह्न केवल एक भारतीय नारीका होगा अर्थात्.... भारतीय वेश-भूषामें साड़ी पहने हुए नारीका चित्र हमारे चुनाव बक्सोंपर होना चाहिये।

परिचय

अखिल भारतीय महिलासङ्घकी स्थापना हुए तीन साल हुए। भारतमें हमारी हजारों शाखायें हैं, महिलासङ्घ कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं, इसमें सभी जातियों, सभी धर्मों और सभी वर्गोंकी स्त्रियाँ सम्मिलित हैं।

हमारी राजनीति प्रशस्त प्रजातन्त्रीय भारतीय राजनीति है। पाश्चात्य गुलामीकी छल कपटवाली प्रजातन्त्रीय राजनीति नहीं।

आगामी चुनाव और महिलायें।

—आयुर्वेदाचार्य श्रीमती शांतादेवी वैद्या—
प्रधान मन्त्रिणी अ० भा० महिलासङ्घ,

अखिल भारतीय महिलासङ्घने बहुत सोच समझकर आगामी निर्वाचनोंमें सामूहिकरूपसे भाग लेनेका निश्चय किया है। भारतीय महिलाओंने विश्वमें अपना एक सर्वोच्च पवित्र आदर्श रक्खा है

"स्वधर्म रक्षा" और वह स्वधर्म भी क्या, "पतिसेवा" इस पतिसेवापर ही अपना सब कुछ निछावर कर दिया। मनोविज्ञानकी कारिणीमें सर्वोच्च स्थान है आत्मसम्मान-कल्पनाका, जिसके दो रूप हैं, १—यश, २—वैभव या ऐश्वर्य, इन दोनोंका भी भारतीय कुलाङ्गनाओंने त्याग किया, उनका सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं। पुत्र, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, सब कुछ पतिके लिये, उन्होंने अपना नाम भी नहीं रक्खा, जिस नामके लिये दुनिया मरती है वह अपना नाम भी नहीं चाहती। अमुककी पत्नी, अमुककी बहन या माता कहलानेमें ही उन्हें प्रसन्नता होती है। धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे उनके नामका निषेध नहीं, उनके नामकरण-संस्कारका भी विधान है, उस नामसे सम्बोधित भी होती है, इसमें कोई दोष नहीं, किंतु यह एक अद्भुत या सर्वोच्च त्यागका ही आदर्श है कि, उन्हें अपना नामकी भी इच्छा नहीं। इस वर्तमान वोटर-लिस्टके बनाने या जनगणनामें उन्होंने यही भारतीय आदर्श अपनाया, अमुककी माता, अमुककी बहन, अमुककी भाभी इत्यादि बताया।

वे धर्मशास्त्रकी दृष्टिसे अपने पतिका नाम नहीं लेतीं किन्तु उनके पतियोंने भी अपनी पत्नी कहके लिखाया :—

न नाम ग्रहणं कुर्यात् कृपणस्य गुरोस्तथा।
भार्याया अभिशप्तस्य जनकस्य विशेषतः॥

यह एक भारतीय धार्मिक परम्परा है।

इस निर्वाचनमें सक्युलर सरकार इससे अनुचित लाभ उठना चाहती है। वह उन करोड़ों स्त्रियोंके वोट ही व्यर्थ कर देना चाहती है, जिन्होंने धार्मिक परम्पराके पालनमें अपना नाम नहीं बताया उनके नाम अमुकपारत्वे वोटरलिष्टमें दर्ज हैं या छोड़ दिये गये हैं। यह सब सरकार व्यर्थ कर देना चाहती है। सेक्युलर सरकारका यह एक धार्मिक हस्तक्षेप है।

न्याय, दंड, पुरस्कार, व्यवहार यह नाम बताने या न बतानेपर छोड़े नहीं जा सकते। यह धार्मिक और राजनीतिक भी सिद्धान्त है। धार्मिक दृष्टिसे तो यज्ञादि जितने कार्य होते हैं, उनमें स्त्रीके नामका विधान नहीं है। प्रारम्भिक संकल्पमें ही पुरुष कहता है कि, मैं सपत्नीक यह काम करता हूँ। स्त्रीके नामका आख्यान न होनेपर भी उसे फल बराबर मिलता है। राजनीतिक दृष्टिसे भी न्याय, दंड, पुरस्कार व्यवहार आदि नाम न बतानेपर छोड़े नहीं जा सकते। उदाहरणार्थ यदि कोई स्त्री चोरी करती है या अन्य कोई अपराध करती है और अपना नाम नहीं बताती तो क्या उसको दंड नहीं दिया जायगा। उसे तो दंड दिया ही जाता है। यही बात पुरस्कार की भी है। व्यवहारमें भी यदि राशनकार्डमें अपना नाम नहीं लिखाती और पुरुष, पुत्र अथवा भाई आदिके नामपर ही अपना उल्लेख कराती है तो क्या उनको राशन नहीं दिया जायेगा? राशन उन्हें दिया ही जाता है, यह न्याय है। नामके अनाख्यानसे उन्हें फलसे वञ्चित रखना अन्याय है।

फिर भी यदि अपनी धार्मिक मर्यादाका पालन करते हुए भारतीय परम्परासे उन्होंने ऐसा नहीं किया तो वोट फलसे वञ्चित रखना और अन्याय है। प्रश्न हजारों लाखोंका नहीं, बल्कि करोड़ों स्त्रियोंके अधिकारका है। सरकार इसे सोच-समझकर ठीक कर दे तो अच्छा है, अन्यथा न्यायालयद्वारा भी इसका निर्णय होना चाहिये, यह यों ही नहीं छोड़ा

जा सकता। दस करोड़ महिला वोटरोंके हानि लाभका प्रश्न है, यह एक वैधानिक प्रश्न है।

स्त्रियोंका मताधिकार इस प्रकार क्षीण कर देनेसे स्त्रियोंकी हानि ही होगी, यह स्पष्ट है। भारतीय स्त्रियोंका प्रतिनिधित्व करनेवाला महिला-संघ कांग्रेस-की इस नीतिको भलीभाँति समझता है। ब्रिटिश कालमें स्त्रियोंके लिये कुछ सीटे निश्चित थीं, उनपर स्त्रियाँ ही जा सकती थीं, किन्तु समानाधिकारके कांग्रेसी ढोंगने वह भी खतम करदी, अब किसी भी स्त्रीका असेम्वलीमें पहुँचना दुस्तर है, कांग्रेसमें समानाधिकारोंमें अबतक स्त्रियोंको बसकन्डेक्टर, पुलिस-चौकीदारी आदि अपमानजनक स्थान दिये है, जहाँ वस्तुतः कोई प्रतिष्ठा या अधिकारकी बात है वहाँपर स्त्रियोंका कोई नाम नहीं लेता। स्त्रियोंके वोट लेनेके ख्यालसे श्री नेहरू जी तथा अन्य नेता लोग कभी-कभी अकाही-तुकाही दाग दिया करते है किन्तु व्यवहारमें सब उलटा ही करते हैं। कांग्रेसी स्त्रियां जो वेचारी स्वतंत्रता-संग्राममें बराबर लड़ती रहीं वे भी दुरदुराई जा रही है। पंतजीके पास वे कुछ सीटोंके लिये गयी थीं किन्तु निराश होकर लौट आयीं। समानताकी दृष्टिसे महिलाओंको सभी जगहकी आधी सीटें मिलनी चाहिये, और मिनिस्ट्रीमें आधे विभाग भी। यह ईमानदारीकी बात होगी।

किन्तु कांग्रेस स्त्रियोंके सम्मानमें ऐसा कुछ करनेवाली नहीं। उल्टे भारतीय संस्कृति, सभ्यता और राष्ट्रीय मर्यादायें, जिनकी स्त्रियोंने प्राणपणसे आजतक रक्षा की है उन्हें भी नाश कर देनेपर तुली हुई है।

ऐसी सरकारका मुकाबला करना हमारा कर्त्तव्य हो गया है। अतः महिला-संघ आगामी निर्वाचनोंमें प्रशस्त भाग लेगा और विभिन्न अभारतीय इज्मोंके विषोंद्वारा देशके साथ बदी करनेवाले वादी पुरुषों, महिषासुरों, शुम्भ-निशुम्भों और चंड-मुडोंका प्रत्येक सीटसे "गर्ज गर्ज क्षणं मूढ" कहते हुए मुकाबिला करेगा।

महापरिषद्-सम्वाद

अ० भारतीय महिलासंघका अधिवेशन

अखिल भारतीय आर्यमहिला-हितकारिणी महा-परिषद्की प्रधानमंत्रिणी, आर्यमहिला इण्टरकालेजकी संचालिका माननीया श्रीमती विद्यादेवीजी महोदया जो अ० भारतीय महिलासंघके अध्यक्षापदको भी सुशोभित करती हैं, महिलासंघके कार्यकारिणी समितिके अधिवेशनमें सम्मिलित होनेके लिये बम्बई गयी थीं। आपकी अध्यक्षतामें २० अगस्तको कार्य-कारिणी बैठक हुई जिसमें विभिन्न प्रान्तोंकी महि-लाओंने भाग लिया। उसी दिन अपराह्नमें बम्बई प्रान्तीय महिला-सम्मेलन भी आपकी ही अध्यक्षतामें ही सम्पन्न हुआ है। अनेक आवश्यक प्रस्ताव स्वीकृत हुए। वहाँकी महिलाओंमें जो जागृति एवं उत्साह दीख पड़ा है, उससे विश्वास होता है कि भारतके प्रधान नगर बम्बईका यह सम्मेलन अवश्य सफल होगा।

श्रीमती शान्तादेवी वैद्या प्रधान मन्त्रिणीका उत्साह भी प्रशंसनीय है। इस सम्मेलनने आगामी निर्वाचनमें स्त्रियोंके समानाधिकारके आधारपर आधा सीटका दावा रखते हुए चुनाव करनेका निश्चय किया है। धनसंग्रहके लिये एक समिति बनायी गयी है। श्रीमती गायत्री वाजोरिया कोषाध्यक्षा निर्वाचित हुई। महिलासंघने निर्वाचनके घोषणापत्र तैयार कर लिया है। जिसको प्रचारित और प्रकाशित करनेका भार संघकी प्रधानमन्त्रिणीको दिया गया है। यदि इसी-प्रकार तत्परताके साथ महिलासंघका प्रचारकार्य अग्रसर होता रहा तो इसके द्वारा बहुत बड़ी सफलता प्राप्त होनेकी आशा है।

जन्माष्टमी तथा भगवत्पूज्यपाद महर्षि ज्ञानानन्दजी महाराजकी षष्ठशती महोत्सव

श्रीभारतधर्म महामण्डलमें जन्माष्टमी महोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया गया। इसी दिन महामण्डलके संस्थापक परम पूज्यपाद महर्षि भगवान् श्रीस्वामीज्ञानानन्दजी महाराजकी १०६ षष्ठशती जयन्ती भी मनायी गयी। प्रारम्भमें सुमधुर सितार-वाद्य तथा संगीतके पश्चात् श्री जलेश्वरनाथ द्विवेदी बी. ए. एल. एल. बी, आर्यमहिला महाविद्यालयके संस्कृताध्यापक पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, पं० शिवनाथ उपाध्याय व्याकरणाचार्य तथा पं० शिवनिधि दूबेका श्रीकृष्ण चरित्र तथा श्रीस्वामी जी महाराजके महान् कार्योंके सम्बन्धमें भाषण हुआ। तत्पश्चात् आचार्य लौटूसिंह गौतम एम. ए. एल. टी. महोदयका श्रीकृष्णचरित्र तथा गीता-महत्त्वके सम्बन्धमें गवेषणापूर्ण अत्यन्त सुन्दर विवेचनात्मक भाषण हुआ अन्तमें भगवान्के तथा पूज्यपाद श्रीस्वामी महाराजके तैल चित्रका पूजन तथा भगवन्नाम संकीर्तनके बाद प्रसाद वितरण किया गया। इस अवसरपर आर्यमहिला विद्यालयकी प्रधानाध्यापिका, अध्यापिकायें छात्रायें तथा प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। उत्सव कार्य रात्रि १ बजे समाप्त हुआ।

आर्यमहिला महाविद्यालयमें स्वतन्त्रता दिवस

आर्यमहिला विद्यालय-भवनमें स्वतन्त्रता दिवसोत्सव राष्ट्रीय ध्वजके अभिवादनसे प्रारम्भ हुआ। विद्यालयकी बालिकाओंने गीत, अभिनय एवं भाषणसे अपने हर्षोल्लासको प्रकट किया। श्रीमती प्रधान अध्यापिकाजीने "हमें स्वतंत्रता दिवस कैसे मनाना चाहिये" पर प्रकाश डाला तथा कुछ अध्यापिकाओंने भी स्वतंत्रता-दिवसके महत्वका परिचय बालिकाओंको दिया। राष्ट्रीयगानके अनन्तर मिठाई वितरण कर उस दिनकी सभा विसर्जित हुई।

आर्यमहिला महाविद्यालयमें जन्माष्टमी महोत्सव

आर्यमहिला विद्यालयमें ता० २४—८—५१ को विद्यालयकी संचालिका श्रीमती विद्यादेवीजीकी अध्यक्षतामें बड़े समारोहके साथ जन्माष्टमी महोत्सव मनाया गया। बालिकाओंद्वारा मधुर मङ्गलाचरणसे कार्यका प्रारम्भ हुआ। विद्यालयके संस्कृत अध्यापक पं० शिवनाथ उपाध्यायने भगवान् कृष्णके लोकोत्तर कार्योंपर अपने भाषणपर प्रकाश डाला। बालिकाओं द्वारा श्रीकृष्ण-सुदामाका अभिनय किया गया जो बड़ा ही सुन्दर था। अन्तमें अध्यक्षाजीने जयन्ती मनानेका उद्देश्य एवं भगवान् कृष्णकी महिमाका दिग्दर्शन कराया और छात्राओंको अपने आदर्शके अनुसार अपना कर्तव्यपालनका उपदेश दिया। अनन्तर पूजन तथा प्रसाद वितरणके पश्चात् समारोह समाप्त हुआ।

पाकिस्तानमें पड़ी लाखों बहिनोंसे राखी कौन बँधवाने जायगा

पिलखुवामें रक्षाबंधनके उत्सवपर भक्त रामशरण दासजीका ओजस्वी भाषणका सारांश

(प्रेषक—राममनोरथसिंह बी० ए०)

पिलखुवाके सुप्रसिद्ध सनातनी नेता भक्तवर रामशरणदासजीका रक्षाबंधन उत्सवपर दिया महत्त्व-पूर्ण यहाँ दिया जाता है। इसे सुनकर सभीके रोमाञ्च खड़े हो गये थे। आशा है पाठक इसे ध्यान-से पढ़ेंगे।

सज्जनों प्रियबन्धुओं। आज रक्षाबन्धनका दिन आगया। आज सभी भारतके हिन्दू भाई अपनी बहिनोंके पास जायेंगे और भाई-बहिनोंसे अपने हाथोंमें राखी बँधवायेंगे। बहिनको भाईके हाथमें राखी बाँधते समय और उसे मीठा खिलाते समय और भाईको बहिनको रुपये भेंट करते समय जो प्रसन्नता होगी वह वर्णन नहीं की जा सकती। सभी भाई बहिनोंके यहाँ राखी बँधवाने जायँगे परन्तु मैं पूछता हूँ, आजके इन बेशर्म हिन्दुओंसे कि क्या कोई माईका लाल जो पाकिस्तानमें पड़ी लाखों हिन्दू ललनाओंसे लाखों बहिनोंसे पाकिस्तानमें जाकर उनसे राखो बँधवायेगा? ऐहिन्दुवों! क्या तुम पाकिस्तानमें पड़ी मुसलमान गुण्डोंके चंगुलमें फँसी उन हिन्दू बहिनोंके भाई हो या वह तुम्हारी बहिन नहीं है? आज तो तुमने गाँधीकी अहिंसाका पाठ पढ़ तकली चर्खे घुमा, चर्खे यज्ञकर कायरतासे भारत-माताके खण्ड खण्ड कर अङ्गभङ्गकर, टुकड़े टुकड़ेकर पाकिस्तान बनवाया है, जिसमें आज लाखों बहिनें गुण्डोंके घरोंमें पड़ी खूनके आँसू बहा रही हैं, रो रही हैं, दहाड़ मार रही हैं, बिलबिला रही हैं आज उन निरपराध बहिनोंको छुड़ाकर लाना, उनकी सुधि लेना उन बहिनोंके आँसू पोंछना, उनसे राखी बँधवाना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है? क्या आज तुम्हारा यही एकमात्र कर्तव्य रह गया है कि बहिन बेटियाँ भलेही दहाड़ मारमार कर रोती रहें, लाखों मठ मन्दिर ढ़ाकर धूलीमें मिलाये जाते रहें, करोड़ों हिन्दू दरदरके भिखारी बनाये जाते रहें और हम १५ अगस्तकी खुशीमें गुलछर्रे उड़ाते रहें, गाते बजाते रहें, सिनमा नाटक देखते रहें? हिन्दुवों! क्या सर्वस्व नष्ट हो जानेपर भी आज भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलीं तुम्हारी कुम्भकर्णी निद्रा भंग नहीं हुई? क्या जिन नेताओंने तुम्हारे देशके टुकड़े टुकड़े कराये, करोड़ो हिन्दुवोंको दरदरके भिखारी बनाये क्या आज भी तुम इन नेताओंसे अपनी रक्षाकी आशा लगाये बैठे हो? अरे मूर्ख हिन्दूओं! यदि यह काँग्रेसी हिन्दुस्तानी तेरी पाकिस्तानमें पड़ी लाखों हिन्दू बहिन-बेटियोंको अपनी बहिन बेटी मानते तो क्या उनकी यह हालत होती। अरे तू किनसे आशा लगाये बैठा है? याद रख यह तेरी आशा निराशामें परिणत होगी? मैं आज डंकेकी चोट घोषणा कर पूँछता हूँ, कि है कोई माईका लाल है कोई महाराणाप्रताप शिवाकी संतान, जन्मा है किसी वीराङ्गना पतिव्रता क्षत्राणीने अपनी पवित्र कोखसे ऐसा शेर जो मूँछोंपर ताव दे सिंहनाद करता हुआ पाकिस्तानीके घरोंमें जा बहिनोंको छुड़ा-कर लावे और उनसे राखी बँधवाये? ऐ

एक सीताके लिये राम रावण युद्ध करनेवाले हिन्दुवों! एक द्रौपदीके लिये महाभारत रचाने वाले हिन्दुवों! आज तुम्हें क्या हो गया है? आज क्या तुम्हें पाला मार गया है, तुमपर फालिज पड़ गया है क्या तुममें-से हिन्दुत्व समाप्त हो गया है? आज लाखों बहिनोंके गुण्डोंके चंगुलमें फँसी रहनेपर भी तुम्हारे कानोंपर जूँ नहीं रेंगती, तुम्हारी निद्रा भंग नहीं होती, तुम्हारा खून नहीं खौलता? अरे तुम मनुष्योंसे तो लाख दर्जे अच्छा था भारतका वह गृद्ध जिसने सीताकी रक्षाके लिये अपने पर कटवा दिये पर अपने सामने भारतीय हिन्दू ललनाका अपमान होते नहीं देखा। तुमसे करोड़ दर्जे अच्छे थे वे बन्दर भालू जिन्होंने रामका साथ दे रावणकी लंकाको फूँका और भारतीय हिन्दू ललनाको छुड़ाकर ही दम लिया। आज तुम्हारा छुड़ाना तो दूर तुम्हें तो खुशियाँ मनाने गाने बजाने डाँस करानेकी रंगा रेलियाँ मनानेकी सूझ रही है क्या वास्तवमें आज तुम्हारा यहीं कर्तव्य है? मैं तो आज यही कहूँगा कि! एहिन्दू! यदि तेरे अन्दर कुछ भी हिन्दुत्व शेष हो, राणा शिवाका खून हो तो उठ पाकिस्तानमें पड़ी बहिन बेटियोंको छुड़ाये बिना, उनसे राखी बँधबाये बिना दम न ले आज यही तेरा एक मात्र कर्तव्य है।

क्या हिन्दू मेरी तुच्छ प्रार्थनापर ध्यान देगा?

पृथ्वीके भार कौन है?

कैसे मनुष्य पृथ्वीके भाररूप है, इस विषयमें महाराज भर्तृहरिने कहा है—

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न दया न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

अर्थात् जिसके न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न शील है, न दया है, और न धर्म है, वे इस पृथ्वीके भारभूत हैं और मनुष्यके रूपमें पशु है।

अतः प्रत्येक मनुष्यको चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, विद्याका अध्ययन अवश्य करना चाहिये, तपस्या अवश्य करनी चाहिये सत्पात्रमें दान अवश्य करना चाहिये, ज्ञानका अर्जन भी अवश्य करना चाहिये, शीलवान् भी होना चाहिये, दीन-दुःखियोंपर दया करनी चाहिये और अपने अपने धर्मका पालन करना अवश्य चाहिये। इन गुणोंसे युक्त मनुष्य ही मनुष्य कहलाने-योग्य है; अन्यथा श्रीभर्तृहरिजीके शब्दोंमें वह मनुष्यरूपमें पशु है और संसारका भार है।

हिन्दू-कोडबिल

हिन्दूनरनारियोंको चुनौती

आये दिन देशपर नानाप्रकारके संकटके बादल मड़रा रहे हैं। कहीं अतिवर्षा, कहीं अवर्षा कहीं जलप्लावन, कहीं सूखा हो रहा है। उधर मियाँ लियाकतअली खाँ मुक्का ताने युद्धके लिये ललकार रहे हैं; और पाकिस्तानमें जेहादका जोरदार प्रचार चल रहा है। इधर अन्नके लिये हाहाकार मचा है। वस्त्रका अकाल है। देशके विभाजनके फलस्वरूप हमारे लाखों भाई-बहिन आश्रय-हीन हो कुत्ते-बिल्लियोंसे भी हीन जीवनके दिन बिता रहे हैं। ये सब बड़ी-बड़ी विकट विपत्तियाँ हमारी सरकारके सामने खड़ी हैं, परन्तु इनकी हमारी अपनी कहानेवाली सरकारको कोई चिन्ता नहीं। उसे हिन्दू-कोडबिल पास करनेकी उतावली हो रही है। इसीलिये १० सितम्बरको हिन्दूकोडबिल संसदके अधिवेशनमें लाया जा रहा है। क्योंकि सरकारको अपना हठ पूरा करना है। अपने इस हठके सामने सरकार अपनी धर्मनिरपेक्षता नीतिको भी तिलाञ्जलि दे रही है, क्योंकि हिन्दू-कोडबिल हिन्दूधर्मपर प्रत्यक्ष प्रहार है और हम तीस करोड़ सनातनी हिन्दू नरनारियोंको चुनौती है! इसका उत्तर हमको इतनी दृढ़तासे देना चाहिये कि सरकार यह अनुभव करे कि, हिन्दूजनतापर उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई भी कोड सरकार अपने सत्ताके बलपर लाद नहीं सकती। सरकार अपने सत्ताके मद (नशे) में चूर हो रही है, वह समझती है, कि वह जो चाहे कर सकती है। हिन्दूजनताको अपने उग्र विरोध प्रदर्शनद्वारा सरकारको यह बता देना चाहिये कि, वह सरकारकी यह अनधिकार चेष्टा कदापि सहन नहीं करेगी। जिस हिन्दू-कोडबिलकी किसीकी ओरसे माँग नहीं की गयी, किन्तु इसके प्रारम्भसे लेकर अबतक देशके सर्वमान्य बड़े-बड़े विद्वानों, जजों, वकीलों तथा सब श्रेणीके स्त्री-पुरुषोंने विरोध किया; सरकारके पास लाखों विरोध-पत्र, एवं तार भेजे गये, हजारों सभाओं-अधिवेशनोंमें लाखों नरनारियोंने इसके विरोधमें प्रस्ताव स्वीकृत किया और इसे वापस लेनेके लिये सरकारसे प्रार्थना की, अनुनय-विनय किया; परन्तु सरकारने एक नहीं सुनी और उसे पास करनेके लिये १० सितम्बरसे विचार होने जा रहा है। यह घोर अन्याय और गणतन्त्रका गला घोंटना नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? अतः हिन्दूनरनारियोंसे हमारी प्रार्थना है कि, अब प्रमाद-निद्रामें सोनेका समय नहीं है। अधिकसे अधिक संख्यासे दिल्ली चलिये और अपने शान्तिपूर्ण उग्रविरोध प्रदर्शनसे हिन्दूकोडबिल पास करना असम्भव कर दीजिये। जो नहीं जा सकें, वे प्रधान मन्त्रीके पास तार या पत्र भेज अपना विरोध प्रकट करें। आपहीके मतोंसे (वोटोंसे) हुकूमतकी कुर्सियोंपर बैठकर आपहीकी गाढ़ कमाईका रुपया कररूपमें लेकर आपहीके धर्म-संस्कृति एवं परम्पराका नाश करनेका जो यह दुःसाहस सरकार करने जा रही है, उसे बतला दीजिये कि,हम हिन्दू-नरनारी अभी जीवित हैं; हम अपने ऋषि-महर्षियोंद्वारा निर्मित मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदिकी जगह अम्बेदकर-स्मृति हिन्दू-कोडबिल कदापि नहीं स्वीकारकरेंगे।

———

विद्यादेवी।

कर्ममीमांसादर्शन ।

[गतांकसे आगे]

एक कर्म है। द्रव्यशुद्धिके विचारसे किया हुआ भोजन सात्त्विक, केवल स्वादके विचारसे किया हुआ भोजन राजसिक और बिना विचारे अनर्गल भोजन तामसिक होगा। यज्ञशेषरूपसे भोजन अध्यात्मशुद्धिप्रद, इष्ट-प्रसन्नता अर्थात् साम्प्रदायिक विचारसे भोजन अधिदैवशुद्धिप्रद और केवल शरीरके नैरोग्यके विचारसे किया हुआ भोजन अधिभूतशुद्धिप्रद होगा। इसी प्रकार दान एक धर्माङ्ग है। केवल कर्त्तव्यबुद्धिसे किया हुआ दान सात्त्विकदान होगा, मतलबसे किया हुआ दान राजसिक दान होगा और अनर्गल बिना विचारे किया हुआ दान तामसिक दान कहावेगा। इसी प्रकार वह दान जगत्को ब्रह्मरूप समझकर किया जाय, तो अध्यात्मशुद्धिप्रद होगा। अपने देश, अपनी जाति अपने इष्टदेव और अपने पितृ आदिके निमित्त जो दान होगा, वह अधिदैवशुद्धिप्रद होगा और जो दान अपने ही शरीरके लक्ष्यसे होगा, वह अधिभूतशुद्धिप्रद होगा इसी प्रकारसे त्रिगुण और त्रिभावके परस्पर सम्मेलनके घात-प्रतिघातसे धर्म और कर्म नाना वैचित्र्यरूपको धारण करता है ॥२२१॥

और भी कहते हैं :—

त्रिभावकी युगपत् क्रिया होनेसे भी ॥२२२॥

जितने प्रकारके कर्म हैं, वे तीन भावोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। यथा :—शारीरिक कर्म, जिसमें वाचनिककर्मादि भी सम्मिलित हैं। मानसिक कर्म, जिसमें संकल्पादि सम्मिलित है और बौद्धिककर्म, जिसमें ज्ञान और विचारका सम्बन्ध है। सब कर्म इन्हीं तीनों श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। एकसे दूसरी श्रेणी और दूसरीसे तीसरी श्रेणी सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम है। इस कारण एक समयमें ही तीनोंकी अलग अलग क्रिया प्रकट हो सकती है। मनुष्य जब जगत्के लिये दान करता है, तो वह शारीरिक कर्म है। जब जगत्के लिये दानका संकल्प करता है, तब वह मानसिक कर्म और जगत्कल्याणके लिये दानका उपाय निर्धारण करता है, वह बौद्धिक कर्म है। परन्तु एकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी श्रेणीका सूक्ष्मतरराज्यसे सम्बन्ध रहनेके कारण तीनोंकी क्रिया एक साथ भी हो सकती है। इसका उदाहरण यह है कि, ब्राह्मणभोजन एक अधिभौतिक यज्ञ है। यज्ञकर्त्ता उत्तम पदार्थ देकर श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है। उत्तम पदार्थोंका संग्रह करना और सदाचारसे भोजन कराना यह शारीरिक कर्म है। इसमें शील और सदाचारादि तथा धनव्ययकी आवश्यकता होती है। सबको उत्तम योजनासे ब्राह्मणभोजनरूपी आधिभौतिक यज्ञ सुसम्पन्न होता है। परन्तु उसी समय यज्ञकर्त्तामें साथ ही साथ मानसिककर्म और बौद्धिककर्म भी हो सकता है। ब्राह्मणोंकी बाहरचेष्टापर अनुकूल अथवा प्रतिकूल लक्ष्य डालना मानसिक कर्म है। उसी प्रकार कौन कैसा पात्र है, इसका विचार करना बौद्धिककर्म है। ये तीनों ही युगपद् हो सकते हैं और यज्ञके फलको सुधार सकते हैं अथवा बिगाड़ सकते हैं ॥२२२॥

त्रिभावस्य युगपत्कार्य्यकारित्वं चापि ॥२२२॥

प्रसङ्गसे फलोत्पत्तिका मूल कह रहे हैं :—

वासना ही फलोत्पत्तिका मूल है ॥२२३॥

चाहे तामसकर्म हो, चाहे राजसकर्म हो, चाहे सात्विककर्म हो, चाहे अध्यात्मकर्म हो, अधिदैवकर्म हो या अधिभूतकर्म हो, चाहे शारीरिककर्म हो मानसिककर्म हो अथवा बौद्धिककर्म हो, सब अवस्थामें ही यदि वासना-संग्रहका अवसर रहे, तो वासनासे संस्कार, संस्कारसे कर्म और कर्मसे कर्मफल उत्पन्न होता है। केवल वासनासे फलोत्पत्ति नहीं होती। उसी प्रकार वासनारहित कर्मसे भी फलोत्पत्ति नहीं होती। यही कारण है कि, वासनारहित कर्म जीवन्मुक्त करते हुए कर्मबन्धनसे मुक्त रहते हैं। अतः कोई कर्म हो, साथ साथ वासना रहनेसे फलोत्पत्ति होती है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, धान्य-वृक्षका यदि सब धान्य संग्रह करके काममें लाया जाय, तो उसका बीज नष्ट हो जानेसे उस धान्यकी जाति नष्ट हो जाती है और बीज रहनेसे पुनः बीजसे वृक्ष और वृक्षसे फलकी उत्पत्ति होना अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार वासनाके प्रभावसे सब कर्मोंसे फलोत्पत्ति होना निश्चित है। वासना बराबर बनी रहनेसे कर्मकी उत्पत्ति अवश्य होती रहती है ॥२२३॥

और भी कहते हैं :—

क्रियाकी प्रतिक्रिया होना निश्चित होनेसे भी ॥२२४॥

प्राकृतिक स्पन्दनसे क्रियाकी उत्पत्ति होती है और त्रिगुणके स्वाभाविक तरङ्गसे प्रकृतिमें स्पन्दन होता रहता है। इस कारण प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होना भी स्वाभाविक है। त्रिगुण-जनित एक क्रिया जब उत्पन्न होती है, तो जैसे तड़ागका जलतरङ्ग तड़ागके तटतक पहुँचकर स्वभावसे ही पलट जाता है, उसी प्रकार प्रत्येक क्रियाकी समाप्तिमें प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक है। दूसरी ओर सब दृश्यपदार्थ देश-कालसे परिच्छिन्न हैं। इस कारण तरङ्गका पलटना होता ही रहता है। कर्मरूपी ऊर्मिमालाएँ व्यक्तिगत देश और कालरूपी तटमें पहुँचते ही पुनः लौटती हैं। यही क्रियासे प्रतिक्रियाके अवश्यम्भावी होनेका मौलिक सिद्धान्त है ॥२२४॥

प्रसंगसे फलोत्पत्तिका प्रकार कह रहे हैं :—

शरीर, शक्ति, जाति, आयु, भोग, प्रकृति और प्रवृत्ति प्रारब्धजनित होती है ॥२२५॥

कर्मफल उत्पन्न होते समय जब प्रारब्ध बनता है, तो उससे स्थूलशरीर, स्थूल और सूक्ष्मशक्ति, ब्राह्मणादि तथा आर्य-अनार्य आदि जाति, आयुका काल, भोगके विषय, जीवकी प्रकृति और प्रवृत्ति ये सब जीवको प्राप्त होते हैं। संस्काररूपी बीजसे वासनाकी सहायतासे जब प्रारब्धरूपी अङ्कुरोत्पत्ति होती है, तो उस समय प्रारब्धभोगके अनुकूल जीवको स्थूलशरीर, यथायोग्य शक्ति, प्रारब्धके अनुकूल जाति, आयु और भोग तथा अङ्कुरित संस्कारके अनुकूल स्थूलशरीरकी प्रकृति और सूक्ष्मशरीरकी प्रवृत्ति प्राप्त होती है ॥२२५॥

वासनैव फलोत्पत्तौ मूलम् ॥२२३॥

क्रियाप्रतिक्रियाया नूनं भावित्वं च ॥२२४॥

शरीर-शक्ति-प्रकृति-प्रवृत्ति-जात्यायुर्भोगाः प्रारब्धजन्याः ॥२२५॥

प्रसङ्गसे भोग के भेद कह रहे हैं :—

भोगसमूहके चौबीस भेद हैं ॥२२६॥

जहाँ क्रिया होती है, वहाँ प्रतिक्रिया अवश्य होती है और जहाँ बीज रहता है, वहाँ अवसर मिलनेपर उससे अङ्कुरोत्पत्ति होना निश्चित है। इसी प्रकार प्रारब्धजनित भोगका होना अवश्यम्भावी है। वह भोग अनन्त प्रकारका होनेपर भी कर्मपारदर्शी पूज्य-पाद महर्षियोंने अनन्तभोगराशिको चौबीस श्रेणियोंमें विभक्त किया है। जीव जो कुछ कर्म शरीरद्वारा, मनद्वारा या बुद्धिद्वारा करता है, वह सब कर्म प्रतिक्रियारूपसे संस्कार उत्पन्न करता है। उस संस्कार-राशियोंमेंसे जो जो संस्कार प्रारब्ध बनकर अङ्कुरोत्पन्न करने लगते हैं, वे ही भोग उत्पन्न करते हैं। इस अत्यन्त गम्भीर कर्म-प्रतिक्रियाशैलीको अच्छी तरह समझनेके लिये और भी स्पष्ट विचारकी आवश्यकता है। पहले कहा गया है कि, संस्कार दो प्रकारका होता है। एक स्वाभाविक, दूसरा अस्वाभाविक। स्वाभाविक संस्कारकी गति और क्रिया एक ही प्रकारकी होती है और उसमें प्रतिक्रियाकी कोई सम्भावना नहीं रहती। यह कैसे सम्भव है, सो पूर्वपादमें अच्छी तरह कहा गया है। अस्वाभाविक संस्कारका मूल जैववासना है। जब जीव मनुष्य-योनिमें पहुँचता है, तो उसके पाँचों कोष पूर्ण हो जानेसे नवीन वासना करनेकी शक्ति प्राप्त करता है। वासना विचित्र होती है। इसलिये प्रतिक्रिया भी विचित्र होती है। प्रतिक्रियाको विचित्रताके कारण फलोत्पत्तिमें भी विचित्रता होती है। मनुष्यशरीर अथवा देव-शरीर पाकर जीव जबतक वासनाके वशीभूत रहता है और मुक्त नहीं होता है, तबतक वह हर समय वासना करता रहता है। चाहे शारीरिक कर्म करे, चाहे मानसिक कर्म करे और चाहे बौद्धिक कर्म करे, वह कर्म करते समय चित्तमें वासना जड़ित रहनेसे अपने चित्तमें उक्त कर्मोंका बीजरूपी संस्कार लेकर जमा करता जाता है। यही अनन्त जन्म-जन्मान्तरका अनन्त वैचित्र्यपूर्ण कर्मवृक्षसे संगृहीत बीजरूपी संस्कार-राशिका बीजसंग्रह-गृहरूपी संचित-कर्म कहाता है। बुद्धिभेद न हो, इसलिये कहा जाता है कि, कर्म चाहे क्रियारूपमें रहे, या संस्कार-रूपमें रहे, उसको कर्म ही कहते हैं। इसका उदाहरण यह है कि, ब्राह्मणकर्म और क्षत्रियकर्म भी कर्म कहाता है और साधारणरूपसे क्रियमाणकर्म और संचितकर्म भी कर्म कहाता है। जैसे शास्त्रोंमें आत्मा शब्दका प्रयोग आत्माके लिये भी आता है, प्रकृतिके लिये भी आता है और जीवात्माके लिये भी आता है; ठीक उसी प्रकार कर्म-शब्दका प्रयोग भी व्यापक है। ये सब बातें समझकर कर्म, संस्कार और कर्म-फल आदि शब्दोंके प्रयोगोंको हृदयङ्गम करना उचित है। क्रियाके कर्ताके हृदयकी वासनाके अनुसार क्रियाका बीजरूपी संस्कार संग्रह होता है। वही संस्काररूपी बीज समयपर अङ्कुरित होता है, तब पुनः वृक्षरूप धारण करके क्रियाके रूपमें होकर फलोत्पन्न करता है। यही पूर्वक्रियाकी प्रतिक्रिया है। फल भोग करते समय जीव वासनाके बलसे पुनः संस्कार-रूपी बीज संग्रह करता है। यही "बीज-वृक्षन्याय" का अनादि-अनन्तप्रवाह है। इस प्रवाहके सब स्थलोंको ही कर्म शब्द-वाच्य किया जाता है। अब

चतुर्विंशतिभेदा भोगाः

जिज्ञासुको शंका यह हो सकती है कि, भोगके समय भोगकी परिसमाप्तिसे उस कर्मका ह्रास हो जाना उचित था, सो क्यों नहीं होता? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान यह है कि, जीव अपनी पूर्वजन्मार्जित वासना और संस्कारके बलसे क्रियासे प्रतिक्रिया उत्पन्न करके फलभोग कर लेता है। परन्तु फलभोग करते समय भी उसका अन्तःकरण वासनाजालसे जड़ित रहता है। इसी कारणसे फलभोगरूपी प्रतिक्रियाका अवसान हो जानेपर भी नवीन वासना नवीन संस्कार संग्रह कर लेती है और उस नवीन वासनासे उत्पन्न क्रिया पुनः दूसरी प्रतिक्रियाकी कारण बन जाती है, यही क्रिया और प्रतिक्रियाका क्रम अनन्त वैचित्र्यमयी भोगशृङ्खला एवं नियमित घूर्णायमान आवागमनचक्रको स्थायी रखता है। क्रियावैचित्र्यके अनुरूप प्रतिक्रियावैचित्र्य होनेसे भोगवैचित्र्यका होना भी स्वाभाविक है। तौ भी पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने भोगकी श्रेणियाँ बाँध दी हैं। वे ही श्रेणियाँ चौबीस हैं, जिनका दिग्दर्शन आगे कराया गया है ॥२२६॥

अब उसका विस्तार कह रहे हैं :—

सुखी, दुःखी, ज्ञानी, मूढ़ और विकलाङ्गरूपसे मनुष्योंका भोग पाँच प्रकारका है ॥२२७॥

भोगसमूहको समझानेके अभिप्रायसे प्रकृतिके चौबीस भेदोंके अनुसार दर्शनकार ने उनको चौबीस श्रेणियोंमें विभक्त किया है। यद्यपि कर्म-वैचित्र्यके अनुसार भोगवैचित्र्य स्वाभाविक और अनन्त है, तथापि यथासम्भव भेद बतानेके लिये उसकी चौबीस श्रेणियाँ बाँधी गयी हैं। उनमेंसे पाँच श्रेणियाँ मनुष्यपिण्डकी हैं। यथा—सुखी मनुष्योंका भोग, और दुःखी मनुष्योंका भोग, जिनका सम्बन्ध स्वर्ग और नरकके साथ दिखाया जा सकता है और जो स्वाभाविक है। तीसरा ज्ञानी मनुष्योंका भोग, जो अपने ज्ञानसे भोगको घटा सकते हैं। चौथा मूढ़ मनुष्योंका भोग, जिनको अपने भोगका पता ही नहीं चलता है और पाँचवाँ विकलाङ्ग मनुष्योंका भोग, जिनके कर्मेन्द्रिय या ज्ञानेन्द्रियोंके नष्ट होनेसे उनके भोगोंमें बहुत कुछ विचित्रता आजाती है ॥२२७॥

और भी कह रहे हैं—

नित्य, नैमित्तिक और तीर्य्यक्रूपसे देवताओंका भोग त्रिविध है ॥२२८॥

ब्रह्माण्डके सब लोकोंके भोगोंमेंसे स्वर्ग-सुखभोग सबसे वैचित्र्यपूर्ण होनेपर भी उसको तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। यथा—स्वर्गके दिकपालादि पदधारियोंका भोग, स्वर्गमें गये हुए स्वर्गसुखभोगी जीव-समूहका भोग और स्वर्गके नानाविध भूतसङ्घका भोग। स्वर्गीय इन्द्रादि देवपदधारी ऐशकर्मके फलसे स्वर्गके पदधारी बन जाते हैं और वहाँका सुखभोग करते हुए प्रायः अभ्युदयको प्राप्त करते रहते हैं। यह स्वर्गसुखका एक प्रकार है। उसी प्रकार मृत्युलोकके पुण्यात्मा जीव शरीरपातके अनन्तर कुछ समयके लिये स्वर्गमें जाकर वहाँका सुखभोग करते हैं। यह स्वर्गसुखका दूसरा प्रकार है और स्वर्गमें जो पारिजात आदि वृक्ष, कोकिल आदि पक्षी एवं इसी प्रकारके नानासुखभोगी जीवोंका भोग है, वह स्वर्गीय सुखका तीसरा प्रकार है ॥२२८॥

सुखिदुःखिज्ञानिमूढविकलाङ्गतया मानवानाम् ॥२२७॥

नित्यनैमित्तिकतिर्य्यक्तया देवानाम् ॥२२८॥

और भी कह रहे हैं—

उसी प्रकार नारकियोंका ॥२२६॥

शरीरान्त के अनन्तर दुःखभोगका स्थान नरकलोक है। जो जीव पापकर्म करते हैं, उनको नरककी प्राप्ति होती है। नरक भी रौरव, कुम्भिपाक आदि अनेक प्रकार के हैं। वहाँके भोगको भी तीन श्रेणियोंमें विभक्तकर सकते हैं। नरकके पदाधिकारी जो वहाँका प्रबन्ध करते हैं, उनका भोग, जो जीव मृत्यु आदि लोकोंसे अपने अपने पापकर्मके लिये वहाँ भेजे जाते हैं, उनका भोग और वहाँके काग, गृध्र, शृगाल आदि तिर्य्यक् योनियों का भोग ॥२२६॥

और भी कह रहे हैं—

तीन पिण्डके अनुसार अवतारोंका है ॥२३०॥

अवतार तीन श्रेणीके तीन पिण्डोंको अवलम्बन करके हुआ करते हैं। यथा—श्रीराम, कृष्ण आदि मानवपिण्डधारी अवतार, मत्स्य, कूर्म आदि सहजपिण्डधारी अवतार और नृसिंह, हयग्रीव आदि देवपिण्डधारी अवतार। अवतारोंमें विशेषता यह होती है कि, उनके भोगका सम्बन्ध एक ओर उस देहधारीके साथ और दूसरी ओर जिसका अवतार होता है, उसके साथ रहनेसे उनके भोगमें वैचित्र्य आ जाता है। इस भोग की विचित्रताकी भी तीन श्रेणियाँ बाँधी गयी हैं ॥२३०॥

और भी कहते हैं—

उसी प्रकार आरूढ़पतितोंका ॥२३१॥

आरूढ़पतित जीवोंका भोग त्रिविध होता है। चाहे देव योनि हो, चाहे असुर योनि हो, चाहे मनुष्ययोनि हो, सब श्रेणियोंके जीव ही आरूढ़पतित होकर तीन श्रेणियोंके पिण्डोंका आश्रय कर सकते हैं। यथा—सहजपिण्ड, देवपिण्ड और मानवपिण्ड। देवपिण्डके अनेक उच्च नीच विभाग हैं, उनमेंसे उच्च अधिकारसे निम्न अधिकारमें आरूढ़पतित होना सम्भव होता है। दूसरी ओर देवपिण्डधारियोंका तीर्यकयोनिमें आना सम्भव है। यथा—यमलार्जुन नामक देवताओंका मृत्युलोकमें वृक्षयोनिमें आजाना। इसी प्रकार देवताओंका आरूढ़पतित होकर मानवपिण्डमें आनेके प्रमाण पुराण-शास्त्रोंमें अनेक मिलते हैं। यथा—जय विजय आदिके। इसी प्रकार मृत्युलोकके मनुष्योंका भी आरूढ़पतित होकर तिर्य्यक योनिमें पहुँचनेका प्रमाण पुराणोंमें बहुत मिलता है। यथा—भरतका मृग होना, पिङ्गाक्ष्य, विराध, सुपुत्र और सुमुख नामक मुनिपुत्रोंका पक्षियोनिमें आरूढ़ पतित होना। सुतरां आरूढ़पतितकी तीन श्रेणियाँ बाँधकर उनके भोगोंका भी त्रिविध विभाग कर सकते हैं ॥२३१॥

और भी कहते हैं—

स्वर्ग-नरक-सम्बन्धसे आतिवाहिकका भोग द्विविध है ॥२३२॥

एक लोकसे दूसरे लोकमें ले जाते समय जीवको जो अस्थायी स्थूलशरीर मिलता है और जिस अवस्थाको पाकर पुण्यात्मा सुख भोगता हुआ और पापात्मा दुःख भोगता हुआ एक लोकसे लोकान्तरमें जाता है, जीवकी उस गतिको आतिवाहिक गति और उस समय जो स्थूलशरीर प्राप्त होता है, उसको

तद्वदेव नारकिनाम् ॥२२९॥

पिण्डत्रयानुसार्य्यवताराणाम् ॥२३०॥

तद्वदारूढपतितानाम् ॥२३१॥

आतिवाहिको द्विधा स्वर्गनरकाभ्याम् ॥२३२॥

आतिवाहिक शरीर कहते हैं। तत्त्वदर्शी मुनियोंने उस अवस्थाके भोगके दो भाग किये हैं। यथा—नरकलोकमें जाते समय दुःखमय भोगकी प्राप्ति होती है और स्वर्गलोकमें जाते समय सुखमय भोगकी प्राप्ति होती है। अब यह प्रश्न हो सकता है कि, इस मृत्युलोकके शरीरसे ही जिनकी गति स्वर्गलोकमें होती है, जैसी धर्मराज युधिष्ठिर और वीरवर अर्जुन तथा और अनेक राजाओंकी हुई थी, उसको क्या समझना चाहिये ? इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, इस प्रकारके अलौकिक शक्तिविशिष्ट व्यक्तियोंके एक लोकसे लोकान्तरको जाते समय दैवीसहायतासे उनके शरीरमें परमाणुओंका परिवर्तन होकर जो विशेष अवस्था प्राप्त होती है, वह भी आतिवाहिक गतिका एक विशेष प्रकार है। उदाहरणरूपसे कहा जाता है कि, स्वलोक तेजस्तत्त्व प्रधान है और मृत्युलोक पृथिवीतत्त्वप्रधान है। इस कारण तैजसतत्त्वके लोकमें पार्थिवतत्त्वका शरीर तभी पहुँच सकता है, जब उस शरीरके परमाणुओंका परिवर्तन हो जाय। देवताओंकी सहायतासे ऐसा हो जाना असम्भव नहीं है। अतः दार्शनिक विज्ञानसे यह निश्चित है कि, दैवीसहायतासे किसी असाधारण दशामें स्थूलशरीरमें ऐसा परिणाम हो सकता है और जब स्थूलपार्थिवदेहधारी व्यक्ति मृत्युलोकसे भूलोकके देशोंको अतिक्रमण करता हुआ, तदन्तर भुवर्लोकके देशोंका अतिक्रमण करता हुआ स्वर्लोकमें पहुँचता है और यहाँ अपना स्थूलशरीर छोड़कर नहीं जाता, तो अवश्य ही यह मानना पड़ेगा कि, उस गतिके समय उसके स्थूलशरीरमें दैवीसहायतासे ऐसा परिणाम होता है कि, जिससे वह लोकान्तरमें जा सके। यह परिणाम उसके लिये आतिवाहिक देहका काम करता है ॥२३२॥

और भी कहते हैं—

पदाधिकारी और नैमित्तिक प्रेतोंका इस तरह प्रेतत्त्वका भोग द्विविध है ॥२३३॥

प्रेतलोकके जीवोंके भागोंके दो विभाग किये जा सकते हैं। यथा—प्रेतलोकके पदधारी बेतालादिका भोग और प्रेतलोकगामी जीवोंका भोग। प्रेतलोकके पदधारी प्रेतोंका सम्हाल करते हैं, उनको रक्षा करते हैं और उनको दण्ड भी देकर उनके अधिकारके अनुसार उन्हें चलाते हैं। इस कारण प्रेतलोकगामी साधारण जीवोंसे उनका भोग विशेष है ॥२३३॥

और भी कह रहे हैं—

भक्त और ज्ञानीका भोग एक एक है ॥२३४॥

ब्रह्माण्डकी भोगश्रेणियोंकी पर्यालोचना करनेपर यह भी विचारमें आवेगा कि, सबसे उन्नत ब्राह्मस्वर्गमें जिसको पञ्चम, षष्ठ और सप्तमलोक अर्थात् जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक कहते हैं और शास्त्रोंमें जिनको ब्रह्मलोक भी कहते हैं, उनमें नाना उपासनालोक और नाना ज्ञानलोक भी विद्यमान हैं। वहाँके रहनेवाले महात्माओंकी भोग-श्रेणी दो भागोंमें विभक्तकर सकते हैं। एक वह श्रेणी है, जिसमें सालोक्य, सामीप्य आदि गतिप्राप्त महात्माओंके भोग, उपासना-सम्बन्धीय भोगके दृष्टान्त हैं। ऐसे उपासक महात्माओंके भोग अन्य भोगोंसे अतिविलक्षण होते हैं और ज्ञानी महात्माओंके भी भोग ऐसे ही विचित्र

प्रेतानां द्विधा पदनिमित्ताभ्याम् ॥२३३॥

भक्तज्ञानिनोरेकैकः ॥२३४॥

होते हैं। देवलोकके देवर्षियोंका भोग इसी श्रेणीमें समझना उचित है। इस प्रकारसे उपासक महात्माओंके भोग और ज्ञानी महात्माओंके भोग एक-एक श्रेणीके अलग-अलग होते हैं, ऐसा समझना उचित है ॥२३४॥

और भी कह रहे हैं—

विलक्षणता होनेसे स्त्रियोंकी भोगश्रेणी एक है ॥२३५॥

जितने प्रकारकी भोगश्रेणियाँ हैं, उनमेंसे तेईसका वर्णन करके अब चौबीसवीं भोगश्रेणीका वर्णन महर्षिसूत्रकार कर रहे हैं। स्त्रियोंका भोग एक स्वतन्त्र श्रेणीका है। यह पहले ही सिद्ध हो चुका है कि, सृष्टिधारामें स्त्री-धारा और पुरुष धारा दोनों अलग-अलग बहती हैं। एकमें आकर्षण शक्ति और दूसरीमें विकर्षणशक्ति विद्यमान है। एक क्षेत्ररूपा है, दूसरी बीजरूपा है। अतः दोनोंका भोग स्वतन्त्र स्वतन्त्र होगा, इसमें संदेह नहीं। इस कारण स्त्री-जातिकी भोग-श्रेणी एक स्वतन्त्र भोगश्रेणी है, ऐसा मानना ही पड़ेगा ॥२३५॥

प्रसङ्गसे कहते हैं :—

आवान्तर भेदसे अनेक प्रकारका है ॥२३६॥

यद्यपि दार्शनिक विचारके अनुसार विभाग करनेसे भोगके चौबीस प्रकार होते हैं, जैसा कि ऊपर कहा गया है, परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि, इनके आवान्तरभेदसे भोगके अगणित भेद होंगे यथा—स्त्री-शरीरके, स्त्री-संस्कारके अनुसार भोगकी एक ही श्रेणी होनेपर भी त्रिलोक-पवित्रकारिणी सतीके भोग, अपवित्र वेश्याके भोग, माताके भोग और स्त्रीके भोग तथा उनके भी आवान्तर भोगोंकी अनेक श्रेणियाँ बन सकती हैं। इसी प्रकार देवपदधारी व्यक्तियोंके भोगके देश-काल-पात्रभेदसे अनेक भेद हो सकते हैं। यथा—चतुर्विध-भूतसङ्घके चालक पदधारी, विभिन्न पीठोंके रक्षक विभिन्न देवपदधारी और दिक्पालपदके अधिकारी व्यक्तियोंके भोगोंमें बहुत व्यवधान होगा। इस प्रकार प्रत्येकके आवान्तर भेदोंसे भोगोंकी अगणित श्रेणियाँ हो सकती हैं ॥२३६॥

प्रसंगसे कहते हैं—

भोग-वैचित्र्य होनेसे प्रारब्धभोगके भी अनेक आवान्तर भेद होते हैं ॥२३७॥

ऐसा देखनेमें आता है कि, प्रारब्धसे जीवको विशेष धनकी प्राप्ति होनेपर भी कोई उसको पापमें लगाता है, कोई उसको पुण्यमें लगाता है और कोई उसको सञ्चय करके दूसरोंके भोगके लिये रख जाता है। सञ्चय करनेवाले धनीको यथेष्ट सदुपदेश देनेपर भी वह धन-व्यय नहीं कर सकता। इसी प्रकार विद्या, बल और नाना ऐश्वर्य्योंकी प्राप्तिके उदाहरणसे इस सूत्रके विज्ञानको समझना उचित है ॥२३७॥

वह कैसे होता है, सो कहा जाता है—

सभी भोग दोनों शरीरोंद्वारा होते हैं ॥२३८॥

कर्मका विपाकरूप भोग स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर इन दोनों के द्वारा ही हुआ करता है। प्रथम

स्त्रीणामेक एव वैलक्षण्यात् ॥२३५॥

आवान्तरभेदादनेकधा ॥२३६॥

प्रारब्धमप्येवं भोगवैचित्र्यात् ॥२३७॥

सर्वेऽपि देहाभ्याम् ॥२३८॥

तो साधारणतः दोनों शरीर ही भोगको सुसिद्ध करते हैं। जैसा पहले कहा गया है कि भोगमें स्थूलशरीर भोगका आयोजन करता है और अन्तः-करण उसका अनुभव करता है। यह साधारण नियम है। असाधारण भोग केवल अन्तःकरणसे भी होता है। इसी कारण शरीरके रोगको व्याधि कहते है और अन्तःकरणके रोग को आधि कहते हैं। ये ही अशुभ भोगके उदाहरण हैं। इसी प्रकार शुभ भोगके उदाहरणमें पूजाप्रसाद और धर्मप्रसादको ले सकते हैं। इष्टदेवके सम्मुख चढ़ाया हुआ मिष्टान्न स्थूलशरीरके द्वारा शुभभोग प्रधानतः प्रदान करता है, परन्तु धर्मसाधन, पुण्यकर्म आदिका शान्ति-सुख रूपी शुभभोग अन्तःकरणमें होता है। यही कारण है कि, सब लोकों में दोनों शरीर रहते हैं। मृत्युलोक-में जिस तरह पार्थिवशरीर सूक्ष्मशरीरके साथ रहता है, अन्यलोकमें अन्यलोकोंके उपयोगी अन्य-तत्त्व प्रधान अन्य प्रकारका स्थूलशरीर रहता है ॥२३८॥

अब प्रसङ्गसे जन्मान्तरगतिका वर्णन किया जाता है—

आतिवाहिकी गति सूक्ष्मशरीरकी होती है ॥२३९॥

भोगकी निष्पत्ति स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों-से होनेसे यह शङ्का स्वतः ही हो सकती है कि, दोनों शरीरोंका जब इस प्रकार घनिष्ठ सम्बन्ध है और मृत्युके बाद स्थूलशरीर यहीं पड़ा रहता है, तो लोकान्तर प्राप्ति किस प्रकारसे होती है ? इस प्रकार-की स्वाभाविक शङ्काकी निवृत्तिके प्रसङ्गसे कहा जाता है कि, लोकान्तर प्राप्तिके समय केवल सूक्ष्मशरीरकी आवश्यकता होती है। यद्यपि सब लोकोंमें ही स्थूलशरीर पुनः मिल जाता है और यद्यपि भोगकी निष्पत्ति दोनों शरीरोंके द्वारा ही होती है, तथापि लोकान्तरप्राप्तिके समय स्थूलशरीर अनावश्यकीय होनेसे उसको जीर्णवस्त्रपरित्यागकी तरह जहाँका तहाँ छोड़ना पड़ता है और सूक्ष्मशरीरसे लोकान्तरमें जाना पड़ता है। उस समय उस सूक्ष्मशरीरधारी जीवको जिसमें रखकर लोकान्तरमें पहुँचाया जाता है, उसको आतिवाहिक देह कहते हैं और उस गतिको आतिवाहिकी गति कहते हैं। जैसे लिफाफेमें रखकर चिट्ठी भेजी जाती है, उसी प्रकार आतिवाहिक देहमें रखकर सूक्ष्मशरीरको लोकान्तरमें देवतागण पहुँचाते हैं। वहन करता है, इस कारण वह आतिवाहिक शरीर कहाता है ॥२३९॥

अब उस गतिको स्पष्ट कर रहे हैं—

इसके द्वारा पितृलोकादिमें गति होती है ॥२४०॥

वह लोकान्तरमें ले जानेवाली आतिवाहिकी गति प्रेतलोकव्यापी, नरकलोकव्यापी, पितृलोक-व्यापी, देवलोकव्यापी, असुरलोकव्यापी अथवा इसी मृत्युलोकमें पुनरावृत्तकारी होती है। मनुष्य मृत्युके अनन्तर या तो दुःखभोगके लिये प्रेतलोक और नरकलोकमें जाता है, या सुखभोगके लिये पितृलोकमें अथवा भुवः स्वः आदि देवलोकोंमें अथवा अतल, वितल आदि असुरलोकोंमें अथवा मिश्रभोग-के लिये और कर्म करनेके लिये कर्मभूमि मृत्युलोकमें

[क्रमशः]

सूक्ष्मस्यगतिरातिवाहिकी ॥२३९॥ सा पितृलोकादौ ॥२४०॥

धार्मिक साहित्यकी अपूर्व निधियाँ

धर्म-विज्ञान

तीन खण्ड

(ब्रह्मीभूत श्री १०८ स्वामी दयानन्दजी महाराजद्वारा विरचित)

सनातनधर्मके विभिन्न विषयोंका विशद प्रतिपादन तुलनात्मकरूपसे इस बृहद् ग्रंथमें किया गया है और इसमें पश्चिमी विद्वानोंके प्रमाण भी दिये गये हैं। यह ग्रन्थ तीन खण्डोंमें प्रकाशित है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इसका अध्ययन करना परमावश्यक और लाभदायक है। यह पुस्तक एम० ए० क्लासकी पाठ्य पुस्तक हो सकती है। मूल्य प्रथम खण्ड ५), द्वितीय ४), तृतीय ४)।

धर्मतत्त्व

धर्माधर्मसम्बन्धी ज्ञानप्राप्त करना प्रत्येक हिन्दूका आवश्यक कर्तव्य है। इस धर्मग्रन्थमें तथा उसके अङ्गोंपर संक्षेपसे बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। अतः प्रत्येक गृहस्थके लिये यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है, ऐसे स्कूल और कालेज तथा पाठशालाएँ जिनमें धार्मिक शिक्षा देनेका नियम है, इस धर्मग्रन्थसे काफी लाभ उठा सकते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाओं यानी सभी वर्गके लोगोंके लिये यह समान हितकारी है। धर्मज्ञानकी ज्योतिको घर-घरमें जगानेके लिये यह सर्वाङ्गसुन्दर एवं उपयोगी ग्रन्थ है। मूल्य १=) मात्र।

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण-सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है :—

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	,,
,, १/२ पृष्ठ	१२)	,,
,, १/४ पृष्ठ	८)	,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

वाणी-पुस्तकमाला

का

अद्वितीय दार्शनिक प्रकाशन।

श्रीभगवद्गीता।

(अन्वय, सरल सुन्दर हिन्दी अनुवाद एवं गीता-तत्त्व-बोधिनी टीका-सहित)

(दो भागोंमें सम्पूर्ण)

लोकप्रसिद्ध श्रीभगवद्गीताके गूढ़ दार्शनिक तत्त्वोंको अत्यन्त सरलतासे समझनेके लिये गीता-तत्त्व-बोधिनी टीकासे बढ़कर अभीतक गीताकी कोई दूसरी टीका प्रकाशित नहीं हुई है। परमहंस परिव्राजकाचार्य भगवत्पूज्यपाद योगिराज श्री ११०८ महर्षि स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजके वचनामृतद्वारा गीताके गूढ़ रहस्योंको समझनेके लिये गीताकी प्रस्तुत टीका एक अनुपम साधन है। अवश्य अध्ययन कीजिये और आध्यात्मिक आनन्द तथा शान्ति प्राप्त कीजिये। साथ ही ऐसे अमूल्य ग्रन्थरत्नके संग्रहद्वारा अपने पुस्तकालयकी शोभा बढ़ाइये। आज ही एक प्रतिका आर्डर भेजिये। अन्यथा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; थोड़ी प्रतियाँ ही छपी हैं।

मूल्य सम्पूर्ण प्रतिका ७||)

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक

श्रीवाणी-पुस्तकमाला,

महामण्डल भवन,

जगतगञ्ज, बनारस कैन्ट।

वाणी-पुस्तकमालाके

स्थायी ग्राहक तथा एजेन्टोंके नियम।

(१) कोई भी सज्जन एकबार केवल १) देकर इस पुस्तकमालाका स्थायी ग्राहक बन सकते हैं।

(२) स्थायी ग्राहकोंको वाणी-पुस्तकमाला तथा आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकोंपर प्रतिशत बीस रुपया कमीशन दिया जाता है।

(३) कोई भी नई पुस्तक प्रकाशित होते ही स्थायी ग्राहकोंको उसका सूचना दे दी जाती है। ग्राहकके लिखनेपर उनकी पुस्तक बीस प्रतिशत कमीशन कमकर वी० पी० से भेज दी जाती है। परन्तु ग्राहकोंका मनिआर्डरद्वारा मूल्य भेजकर पुस्तकें मँगानेसे वी० पी० खर्च बचेगा।

(४) अन्य ग्राहकोंकी तरह स्थायी ग्राहकोंका भी डाकव्यय पैकिङ्ग आदि देना पड़ता है।

(५) स्थायी ग्राहकोंको अपना नाम, पूरा पता, पोस्ट तथा रेलवे स्टेशन आदि साफ़-साफ लिखना चाहिये।

(६) २५) रुपयेकी पुस्तकें मँगानेसे पुस्तकोंके मूल्यका एक-चौथाई अग्रिम भेजना आवश्यक होगा।

(७) कोई भी सज्जन ५०) रुपयेकी पुस्तक एक साथ खरीदनेसे इनका एजेन्ट बन सकते हैं।

(८) एजेन्टोंको २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला-कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।
मुद्रक :—श्री सुधीरचन्द्र चक्रवर्ती, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌की मासिक मुखपत्रिका

आश्विन सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ६ | सितम्बर १९५१

मन पछितैहै अवसर बीते ।

दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु,
करम बचन अरु ही ते ॥ १ ॥

सहसबाहु दसबदन आदि नृप,
बचे न काल बली ते ।

हम हम करि धन-धाम सँवारे,
अन्त चले उठि रीते ॥ २ ॥

सुत-बनितादि जानि स्वारथरत,
न करु नेह सबही ते ।

अंतहु तोहिं तजैंगे पामर !
तू न तजै अबहीं ते ॥ ३ ॥

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़
त्यागु दुरासा जी ते ।

बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ
विषय-भोग बहु घी ते ॥ ४ ॥

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी. एम. ए., बी. टी.

विषय-सूची

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतम सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यत ॥

आश्विन सं० २००८ | वर्ष ३३ संख्या ६ | सितम्बर १९५१

प्रार्थना

देवि ! प्रपन्नार्तिहरे ! प्रसीद ,
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं,
त्वमीश्वरि !! देवि ! चराचरस्य !

शरणागतके दुःखका विनाश करनेवाली देवि ! तुम प्रसन्न हो. समस्त विश्वकी माँ ! तुम प्रसन्न हो, हे विश्वेश्वरि ! तुम विश्वकी रक्षा करो, तुम्हीं चराचर विश्वकी ईश्वरी हो ।

आत्मनिवेदन।

माँ दुर्गे!

पुनः विजया दसमी आयी। प्रति वर्ष विजया दसमी और नव-रात्रोंकी पूजा हमें उस दिनका स्मरण दिलाती है, जब जनता रावणके अत्याचारोंसे त्रस्त थी, जप, तप, योग, होमका अनुष्ठान कठिन हो गया था, ऋषि-महर्षियोंका एवं वेद-शास्त्रोंका तिरस्कार हो रहा था, सब ओर रावणके दूत ऋषि-मुनियोंके योग-यागमें बाधा डालते थे और उनकी हत्या करनेमें भी नहीं हिचकते थे। चारों ओर हाहाकार मचा था। रावणके पापोंसे पृथिवी धँसी जारही थी। ऐसे समयमें दुष्टोंका दलन, साधुओंका त्राण एवं पृथिवीका बोझ उतारनेके लिये भगवान् रामने अवतार लिया था। उन दिनों हमारे ऋषि-मुनि जंगलोंमें रहते थे और कन्द-मूल-फल खाकर अपना सारा समय परमात्माकी आराधना तथा विश्वके हितचिन्तनमें बिताते थे। रावणके सहयोगी इनका जंगलोंमें जीना असम्भव कर रहे थे। अतः भगवान् रामचन्द्रने पितृ-आज्ञाके व्याजसे चौदह वर्षोंतक बनोंमें निवास किया। बिना शक्तिके शक्तिमान् 'निराकार ब्रह्म' और शिव 'शव' बन जाते हैं। अतः रावण जैसे महा असुरका संहार करनेके लिये भगवान् रामने सर्वशक्तिमयी दुर्गति-हारिणी तुम दुर्गाकी आराधना की, परम वात्सल्यमयी परम करुणामयी तुम प्रसन्न हो गयीं और प्रत्यक्ष दर्शन देकर भगवान् रामको विजयका वरदान दिया। भगवान् रामने विजय-यात्रा की, रावण-कुलका संहार हुआ, आसुरी शक्तिका पराजय हुआ, सज्जनोंकी रक्षा हुई और मानवताने सुखकी श्वाँस ली। प्रति वर्ष विजया दसमी आती और हमें आसुरी शक्तिपर दैवीशक्तिकी विजयकी याद दिलाती है। हम बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे वरदायिनी सर्वशक्ति माँकी आराधना करते हैं और हमारा हृदय नवीन आशा, उत्साह, उमंग और आनन्दसे भर जाता है और विश्वास होता है कि हम अब भी इसी प्रकार तुम्हारी सुधा-सिंचित स्नेह कृपा प्राप्त करेंगे [illegible] हमें दीनता, हीनता द[illegible] आसुरी शक्तियोंपर वि[illegible] दुर्गे तुम्हारी कृपा ही हमारा [illegible] मयी माँ! तुम प्रसन्न हो।

नेहरूजी घोर साम्प्रदायिक!

पुलिस और मिलिटरीके पहरेके भीतर विरोधमें प्रदर्शनकारी महिलाओं तथा महात्माओंपर लाठी प्रहार कराकर इन दिनों संसद-भवनमें हिन्दूकोड-बिलपर बहस चल रहा है। ऐसा गणतन्त्रका नमूना शायद किसी अन्य देशने न कभी देखा होगा न सुना ही होगा। प्रधान मंत्री नेहरूजी अनेक बार कह चुके हैं कि, हिन्दूकोडबिल संसदके इसी अधिवेशनमें पास कर दिया जायगा। क्या यह नेहरूजीकी घोर साम्प्रदायिकता नहीं है? जब भारत Secular State कहा जाता है, तब वह केवल हिन्दुओंके लिये हिन्दूकोड बिल पास करनेपर क्यों तुले हुये हैं? यदि अपनेको हिन्दू कहना अपने धर्मका अभिमान रखना, अपनी संस्कृतिका गौरव रखना आदि नेहरूजीकी परिभाषामें साम्प्रदायिकता है, तो केवल हिन्दुओंके लिये हिन्दू कोड बिल बनाकर हिन्दूधर्म एवं संस्कृतिके नाशका प्रयत्न करना घोर साम्प्रदायिकता क्यों नहीं है? श्री नेहरूजी साम्प्रदायिकताके भूतसे बहुत भयभीत हैं और उसको निर्मूल करना चाहते हैं, परन्तु इस अन्याय और पक्षपातपूर्ण नीतिसे हीं तो साम्प्रदायिकता बढ़ती हैं। इन धमकियोंसे, लाठी-वर्षा,

(शेष पृष्ठ ७१८ में)

आदर्श भाई

(कहानी)

(लेखक-पं शिवनाथ जी दूबे, साहित्यरत्न)

माँ दुर्गाके चरणोंमें पुष्पोंके ढेर लगे थे। सामने छोटासा घृतदीप जल रहा था और धूपकी गन्धसे कमरा भर गया था।

अनिलने अच्छी तरहसे देखा, प्रमोद बाबू पद्मासन लगाये बैठे हैं। उनकी हथेली पलथीके बीचमें एक-दूसरेके ऊपर रक्खी है। आंखें बन्द हैं और उनसे दो पतली धारायें बह रही हैं।

अनिल बोल नहीं सका, पूजा-घरमें वह दबे पांव आया था। प्रमोद इतना आस्तिक है, मांके चरणोंमें उसका इतना अगाध स्नेह है—इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे विरले ही छात्र इस दिशाकी ओर आ पाते हैं। अनिलने मांके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उसने देखा, मांके पूजागृहमें ही संगमर्मरकी एक और मानवमूर्ति रक्खी हुई है। उसपर भी पुष्प अर्पित थे।

प्रमोद जैसा अद्वितीय विद्वान् साधारण मनुष्यकी मूर्ति रक्खे, यह सम्भव नहीं! अवश्य ही यह किसी महान् पुरुषकी मूर्ति होगी। अनिल प्रमोदके गुरुसे परिचित था, यह मूर्ति उनकी नहीं थी। उसने ध्यानसे देखा, मूर्ति अपरिचित थी। सरल मुखाकृति और सजे बाल थे। खद्दरका कुर्ता दीख रहा था।

जिज्ञासा-निवृत्तिका समय न देखकर वह चुपचाप बाहर निकल आया।

नारियलके झुरमुटके आगे सुपारीके पचासों पेड़ दीख रहे थे। वे पीछे छूट गये। केलेका विस्तृत बगीचा था, उससे भी आगे निकल गये। अब दोनों धानके मेड़ोंपर चल रहे थे। फलोंसे लदे सोनेकी भांति पीले पीले धान अत्यन्त सुहावने लग रहे थे।

प्रमोद चुपचाप चल रहा था। प्रकृतिके ये मोहक दृश्य उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाये। अनिलका मन रखनेके लिये उसने कहा, चलो उस खजूरके नीचे।

वहाँ खजूरके एक-दो नहीं अस्सी वृक्ष थे। सामने एक पुष्करिणी थी और परिष्कृत तटपर जगज्जननी दुर्गाका एक मन्दिर था छोटा सा। मन्दिरमें तीन मील के भीतर कोई गाँव नहीं था इस कारण यहाँ अत्यन्त श्रद्धालु जन ही आ पाते थे और उनकी संख्या अत्यल्प थी।

प्रमोदने अनिलके साथ मांको प्रणाम किया। अनिलने देखा प्रमोदकी आँखें फिर बरस पड़ीं। वही कुछ निश्चय नहीं कर सका।

आओ, यहाँ बैठें। प्रमोद अनिलको मांके-मन्दिर केसामने वाले छोटे चबूतरे पर ले गया। चबूतरा पक्का था और था पुष्करिणीके समीप।

पूर्णिमा थी उस दिन। नील आकाशमें पूर्णचन्द्र खिले हुये थे। उनकी शीतल एवं स्निग्ध किरणें पुष्करिणीकी लघुलहरियोंके साथ खेल रही थीं। तारिकायें शान्त एवं मौन थीं। मन्द पवन थिरक रहा था।

अनिल पूजा-गृहकी मूर्तिके सम्बन्धमें एक बार प्रश्न कर चुका था, बैठते हुए उसने फिर पूछा--'वे कौन थे, और तुम उनसे कैसे प्रभावित हुए? यदि कोई विशेष आपत्ति न हो तो मुझे भी बता दो।

'आपत्तिकी कोई बात नहीं' अनिल! प्रमोदने तुरन्त कहा। 'तुम पहली बार मेरे गाँव आये हो। तुम्हारे जैसे सहृदय, सदाचारी और स्नेही मित्रसे क्या छिपाया जा सकता है। और यह छिपानेकी तो कोई बात भी नहीं है। यह मेरे बड़े भाईकी मूर्ति

है, अनिल भैया! ये देवता थे। दैव-दुर्विपाकसे इनकी प्रत्यक्ष छत्रछायासे मुझे वञ्चित होना पड़ा, इसीसे मैंने इनकी मूर्ति बनवायी है और उसे पूजता हूं। इनकी पूजासे मुझे पवित्रतम भाव और मांकी भक्ति मिलती है। आज जो मैं विद्या, धन, गौरव और प्रतिष्ठाका पात्र बना हूँ, सो सब इन्हींकी कृपाका प्रसाद है। सबसे बढ़कर महत्वकी बात तो यह है कि, मैं मांको मां इन्हींके सदुपदेशोंसे समझ पाया था।'

प्रमोदने कहा—'वह देखो।' प्रमोदने पुष्करिणीमें उछलती हुई मछलियोंकी ओर संकेत किया। पुष्करिणीके पानीसे हाथ डेढ़ हाथ ऊपर कूद-कूदकर वे क्रीड़ा कर रही थीं। चन्द्रदेवकी सुधासिक्त किरणोंमें वे सुकोमल चाँदकी तरह चमक जाती थीं 'आजसे सात वर्ष पूर्वतक इन्हीं छोटी मछलियोंकी भांति मेरा जीवन निश्चिन्त एवं आनन्दपूर्ण था। मेरे जीवनमें सुख था, शान्ति थी और थी मस्ती। चिन्ता, शोक और विषादकी छाया भी मुझे स्पर्श नहीं कर पाती थी। पर अब यह निश्चिन्तता और आनन्द मुझसे छिन गया है।

पिताजीका दर्शन मैं नहीं कर पाया और माता, जब मैं पांच वर्षका था, तभी चल बसी थीं। अब मेरा बहलानेवाला मेरे एक बड़े भाईके अतिरिक्त और कोई नहीं था। भैयाके बादकी दो तीन संतानें जीवित नहीं रह सकी थीं। इस कारण मांका अपूर्व प्रेम मुझपर था।

मांके मृत्युके समय मैं रो पड़ा। भैयाने मुझे अपनी गोदमें उठा लिया और जाने क्या-क्या कहकर चुप करा दिया। मांके परलोक गमनसे भैयाका हृदय टूट रहा है, मुझे इसका ज्ञान भी नहीं हो सका।

मैं धीरे धीरे बड़ा हो रहा था। भाभी तो मुझे चाहती ही थीं किन्तु भैया मुझे प्राणोंसे अधिक प्यार करते थे। उनकी वकालत खूब चल रही थी। पैसेका अभाव नहीं था, फिर भी वे अपने ही हाथों मेरी सेवा करते। मैं बारहका हो गया था, पर वे थपकी देकर मुझे सुलाया करते और जबतक मुझे गहरी नींद नहीं आ जाती, वे स्वयं नहीं सोते थे।

उनकी इच्छा थी, मुझे अद्वितीय विद्वान् बनानेकी। इसके लिये वे पूर्ण प्रयत्न करते। दो घण्टे रात रहते ही वे स्नान-संध्यासे निवृत्त होकर माँ दुर्गाके चरणोंमें बैठ जाते। अरुणोदय हो जाता और मांके समीप ही रहते। मांके समीप रहनेमें उन्हें अपूर्व सुख मिलता, मांके बिना वे नहीं रह पाते। 'माँके बिना मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं' वे कहा करते। शयनके पूर्व भी मांके समीप वे कुछ समय अवश्य बैठते।

कमसे कम आध घन्टे मैं भी मांके समीप बैठा करूँ वे बारबार प्रेमके साथ मुझसे कहते। वे कहते 'पुत्र मांका हृदय-खण्ड होता है, प्रमोद! अत्यन्त क्रूरकर्मी पुत्रपर भी मां कभी कुपित नहीं होती। वह परम कल्याणमयी एवं स्नेहशीला है। धीरे-धीरे मैं भी भगवती दुर्गाके समीप बैठने लगा। दिन जाते देर नहीं लगती। मैं सोलह पार कर गया।

'संसार बड़ा विचित्र है। अनिल!' 'कुछ रुककर प्रमोदने कहना शुरू किया—'जहां फूल है, वहीं कांटा भी है। मैं मैट्रिक हो चुका था। भैयाका स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था, पर न जाने क्यों भाभी मुझपर रुष्ट रहने लगीं।

बाहर मैं अधिक समय नहीं लगाता, पर कुछ भी देर होती तो वे बिगड़ जातीं। कदाचित लाखोंकी सम्पत्तिसे उनका मस्तिष्क फिर गया था। वे मुझे ऐसी जली कटी सुनातीं, जो सहने लायक नहीं होती पर मैं चुपचाप सह लेता और भैयासे कुछ न कहता। भाभी एक न एक बहाना निकालकर भैयासे मेरी शिकायत किया करतीं। पर वे सुनकर भी टाल जाते।

भाभीका मन असाधारण रीतिसे बदल गया उन्होंने मुझे अलग कर देनेका भैयाके सामने प्रस्ताव रख दिया। भैया सन रह गये। उनका

चेहरा उतर गया। उन्होंने भाभीको बहुत समझाया पर भाभीपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भैया यह नहीं चाहते थे, इससे कुछ दिन और निकल गये।

मुझे खूब स्मरण है, तीन दिन निकल गये, भैया-के मुँहमें जलका एक बूंद भी नहीं गया' आंसू पोंछते हुये प्रमोदने कहा 'वे कचहरी तो कैसे जाते। उन्होंने मुझे बुलाया। भाभी वहां पहलेसे ही उप-स्थित थीं। भैयाकी सूखी आकृति देखकर मेरी आंखें भर आई पर मैं चुप था। सिर झुकाये खड़ा रहा। भैयाके हाथमें दो दस्तावेज कागज थे।

'तुम्हारी भाभीने तुमसे अलग हो जानेका निर्णय कर लिया है।' उन्होंने धीरेसे कहा। विवश होकर इनका प्रस्ताव मुझे स्वीकार करना पड़ा है। इसके लिये मेरी दो शर्तें हैं।' कुछ रुककर उन्होंने कहा। 'जिसे जो स्वीकार हो, लेले. पर तुम्हारी भाभी तुमसे बड़ी हैं, इसलिये पहले मांगनेका अधिकार इन्हींका है।'

मैं अपराधीकी भांति चुप था। उन्होंने स्पष्ट किया. एक ओर मेरी समस्त सम्पत्ति और एक ओर अकेला मैं हूँ। कागज लिखे लिखाये तैयार हैं, सिर्फ हस्ताक्षर करने शेष हैं।

'मैं सम्पत्ति चाहती हूँ।' भाभीने कुछ देर रुक-कर कह दिया। मैं भैयाके चरणोंमें गिर गया। उन्होंने मुझे अपने वक्षसे चिपका लिया।

कागजोंपर हस्ताक्षर हुआ। भैया मुझे लेकर उसी अवस्थामें एक धोती कुर्ता पहने घरसे निकल गये। हम लोग कलकत्तेके दूसरे मुहल्लेमें पहुंचे, मकान मिलनेमें कठिनाई नहीं हुई। भैयाकी प्रैक्टिस चल रही थी। दो तीन महीनेमें सारी व्यवस्था ठीक हो गई। कोई अभाव खल नहीं पाया।

उन्हें यदि कोई चिन्ता थी तो मेरी। वे चाहते थे मैं महान्, विद्वान्, अनुपम सदाचारी एवं मांका नैष्ठिक भक्त बन जाऊं। अपनी इस लक्ष्य-सिद्धिके लिये वे निरन्तर प्रयत्नशील थे। और आज उनका ही प्रसाद है कि, मैं मांके समीप कुछ देर बैठ पाता हूं। मांको मैं भैयाके सहारे ही जान पाया।

प्रमोदकी आंखें भर आयी थीं। अनिल प्रमोदकी बातें ध्यानसे सुन रहा था। वे कह रहे थे, 'एक वर्ष दस मास निकल गये। एक दिन मैंने देखा, भाभी भैयाके पैरोंपर गिरी हुई फूट फूटकर रो रही हैं।'

'सारी संपत्ति नष्ट हो रही है' हिचकियां लेते हुए कह रही थीं। 'मैंने बड़ा अपराध किया था। मुझे ज्ञान नहीं था. अब क्षमा कीजिये।' मेरी ओर दृष्टि पड़ते ही लपक कर उन्होंने मुझे अपनी गोद-में दबा लिया. 'मुझे आपकी और इस भाईकी आवश्यकता है।' भाभी प्रायश्चित कर चुकी थीं।

भैया तो सरलताकी जीवित प्रतिमा थे। उदारता उनमें कूट-कूटकर भरी थी। किसीका जी दुखाना उन्होंने सीखा ही नहीं था। मुझे लिये वे भाभीके साथ पुनः घरमें आ गये।

यह तो उनके सम्बन्धकी एक बात थी। उनका समस्त जीवन त्याग, तप और परोपकारमें ही बीता वे मनुष्यके रूपमें देवता थे। उनकी मूर्तिसे मुझे आज भी प्रेरणा मिलती है। वे जैसे आज भी मेरा पथ-प्रदर्शन करते हैं। मुझे उनका वाक्य भूल नहीं पाता 'पुत्र मांका हृदय-खण्ड होता है, प्रमोद! वह मांसे अलग नहीं आ सकता। वह मांके समीप ही रहेगा।' इसलिये माँके पूजागृहमें ही मैं उनकी मूर्ति रखता हूँ।

प्रमोद चुप हो गया। सुधाँशुकी सुधामयी धवल किरण पृथ्वीके कण कणमें प्रविष्ट हो गई थीं। घर चलनेके लिये खड़े होते हुए अनिलने कहा 'तुम बड़े भाग्यवान् हो, प्रमोद जो ऐसे देवोपम भाई तुम्हें मिल गये थे।'

(कल्याणसे)

श्रीभगवद्गीता ।

द्वितीय अध्याय हिन्दी पद्यानुवाद ।

श्रीमोहन वैरागी ।

सञ्जयने कहा—

(१)

साश्रु नयन उद्विग्नमना तब
खेदखिन्न करुणासे व्याप्त।
अर्जुनसे बोले यों माधव
तुमको हुआ मोह क्यों प्राप्त ॥

श्री भगवानने कहा—

(२)

असमयका यह मोह तुम्हारा
निन्दनीय वर्जित है पार्थ।
यही तुम्हारा क्षात्रधर्म क्या
यही तुम्हारा बल पुरुषार्थ ॥

(३)

करो दूर दुर्बलता मनकी
उठो शत्रुके वीर विरुद्ध।
तजकर तुच्छ आत्मकायरता
प्रस्तुत हो करनेको युद्ध ॥

अर्जुनने कहा—

(४)

कैसे धनुष उठाऊँगा मैं
पूजनीय गुरुद्रोण विरुद्ध।
रणमें भीष्मपितामहसे मैं
कैसे तात करूँगा युद्ध ॥

(५)

अपने गुरुजनको न मारकर
मुझे अन्न भिक्षाका इष्ट।
गुरुजनके शोणितसे मिश्रित
विविध भोग सुख भी न अभीष्ट ॥

(६)

अथवा उचित और अनुचित क्या
ज्ञात न मुझको मैं मतिहीन।
विजय पराजय किसकी होगी
यह भी अहो ईश्वराधीन ॥

(७)

जिन्हें मारकर जगमें मुझको
जीनेकी न चाह गोविन्द।
वे कौरव सब सम्मुख मेरे
खड़े हुये करनेको द्वन्द ॥

(८)

कायरताको प्राप्त भ्रान्त मैं
धर्म अधर्म ज्ञानसे हीन।
पता न मुझे अशुभ शुभ क्या है
शिष्य तुम्हारा शरणाधीन ॥

(क्रमशः)

(पृष्ठ १६५ का शेष)

गोली-वर्षा या बम वर्षा से नहीं मिटाया जा सकता। इसको मिटानेका सरल सीधा उपाय यही है कि, नेहरूसरकार किसी वर्ग विशेषका पक्षपात छोड़कर सबके साथ समानताका बर्ताव करे। भारतमें हिन्दू, मुसलमान, इसाई, पारसी आदि अनेक धर्मके अनुयायी रहते हैं, क्या कारण है कि केवल हिन्दूओं के लिये हिन्दूकोड बनाया जा रहा है? मुसलमान इसाई आदिके लिये क्यों नहीं कोड बनाया जाता? यह क्या हिन्दूओंके साथ घोर अन्याय नहीं है? जब हिन्दूओंकी ओरसे इसका तीव्र विरोध होता आया है और हिन्दू धर्माचार्योंने बार-बार घोषित कर दिया है कि हिन्दूकोड बिलसे हिन्दूधर्मपर घातक प्रहार होगा, तब भी केवल हिन्दूओंके लिये हिन्दूकोडबिल पास करनेका दुराग्रहपूर्ण हठ देखते हुए तो यही कहना पड़ता है कि, श्रीजवाहरलाल नेहरू स्वयं कट्टर साम्प्रदायिक हैं और देशमें यदि साम्प्रदायिकता बढ़ रही है, तो उसका पूरा-पूरा उत्तरदायित्व श्री नेहरू जी एवं नेहरू सरकार पर है।

हिन्दूकोडबिलसे हिन्दू-महिलाओंका सर्वनाश

[ले०—श्रीमती विद्यादेवी जी]

भारतीय संसदमें आजकल हिन्दूकोडबिलपर बहस चल रहा है। इसके विरोधमें मनो कागज काले हो चुके, हजारों सभाएँ हो चुकीं और लाखों प्रस्ताव पास कर सरकारको भेजे जा चुके। इसके भयङ्कर विरोधमें "हिन्दूकोडबिल तथा उसका उद्देश्य" नामकी पुस्तिका जो सरकारद्वारा प्रकाशित है, इसकी प्रस्तावनामें ही लिखित इन पंक्तियोंसे पता चलता है कि "भारतीय राज्य व्यवस्थापिकामें पास होनेके लिये पेश किये गये हिन्दूकोड बिलपर जनतामें जितना प्रचण्ड विवाद उत्पन्न हो चुका है, आधुनिक भारतके इतिहासमें समाज-सुधार सम्बन्धी किसी भी विषयपर इससे पहले शायद ही कभी हुआ होगा।" वस्तुतः यह बिल इतना ही भयङ्कर है। कोई भी हिन्दू स्त्री-पुरुष जिसको अपने धर्म, संस्कृति, परम्पराका गौरव है वर्भा भी इसका समर्थन नहीं कर सकता। अपनी सरकारकी बाजी लगाकर इसको कानून बना डालनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले प्रधान मन्त्री श्रीनेहरूजी उनके ही शब्दोंमें दुर्भाग्यवश हिन्दू हो गये हैं, और नेहरूजीके कृपापात्र विधिमन्त्री अम्बेडकर तो अनेक बार हिन्दू धर्मकी निन्दा कर चुके हैं और मनुस्मृति जो हिन्दुओंका परम पवित्र धर्मशास्त्र है, उसे जला भी चुके हैं। अन्य जितने थोड़ेसे इसके समर्थक स्त्री-पुरुष हैं, उन्होंने विदेशी और विजातीय अनुकरण एवं उच्छिष्ट भोजनमें ही अपना गौरव समझा है। इन कुछ थोड़े लोगोंको छोड़ कर देशके सभी हिन्दू नर-नारी इसके घोर-विरोधी हैं, परन्तु आजके सत्ताधारियोंको इसकी कोई चिन्ता नहीं। वे समझते हैं कि, उनपर कोई शासक नहीं, वे मनमानी करनेके लिये स्वतन्त्र हैं। अस्तु, इस लेखमें हिन्दू महिलाओंपर इसका कैसा प्रभाव पड़ेगा, केवल इसी विषयपर विचार करना है

शायद इसके साथ किसीका भी मतभेद नहीं हो सकता कि, सती-साध्वी सच्चरित्रा स्त्री ही सबसे अधिक सम्मान एवं पूज्य-भावसे देखी जाती है। इतना ही केवल नहीं, एक सती स्त्रीके सामने बड़े-बड़े योगी यती, तपस्वी, ज्ञानी सभीका मस्तक श्रद्धाभक्तिसे स्वतः झुक जाता है भारतीय हिन्दू नारियोंने केवल अपने सतीत्वके बलसे विधिका विधान उलट दिया, अपने मृत पतियोंको जिला लिया, यमधर्मराजको पराजित किया ब्रह्मा-विष्णु-महेश इन ब्रह्माण्ड नायकोंको बालक बना दिया और जब जो कुछ करना चाहा, वह कर डाला। इसी कारण पवित्र भारतीय संस्कृतिमें नारियोंका जितना ऊंचा स्थान है, उतना संसारकी किसी मनुष्य जातिमें नहीं है। भारतीय संस्कृतिमें नारी कभी भी भोग-विलासकी वस्तु नहीं समझी गयी, न उसे पुरुषोंके समान समझा गया। वह सदा दुर्गा, लक्ष्मी, गौरीरूपसे पूजी गयीं और आजभी पूजी जाती है। भगवान मनुने तो घोषित कर रखा है कि—

> यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
> यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

अर्थात् जहाँ नारियोंकीपूजा होती है, वहाँ देवता रमते हैं, जहाँ इनकी पूजा नहीं होती है, वहांके सब पुण्य कार्य निष्फल हो जाते हैं। हिन्दू-नारियोंको यह सर्वोन्नत पूजाका स्थान इसलिये प्राप्त हुआ था कि, वे तप-त्याग एवं आत्मसंयमकी प्रतिमा बनकर सीता, सावित्री, दमयन्ती, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अनसूया आदिके रूपमें जन-समाजके सामने आयीं उन्होंने किसीके सामने अधिकारकी याचना नहीं की, किन्तु

अपने तपस्या, त्याग एवं आत्म-संयमसे सबपर अपना अधिकार स्वतः कर लिया। आज भी इन महाभागा देवियोंका नाम लेकर हिन्दूमात्र अपनेको पवित्र और गौरवान्वित समझता है। यह पूजा, गौरव और सम्मान यहांके ऋषि मुनियोंने आर्यनारियोंपर कृपा या दया करके नहीं दिया। किन्तु उनकी तपःशक्ति, लोकोत्तर आत्मत्याग एवं महिमाको जानकर ही दिया था। आर्यनारियोंका सतीत्व ही एकमात्र ऐसी वस्तु है, जो संसारमें अन्यत्र कहीं देखने सुननेको नहीं मिलता। आर्यनारियोंकी ही एक यह विशेषता है, जिसकी उपमा और तुलना संसारकी किसी स्त्री-जातिमें नहीं है। हिन्दूकोडबिलके द्वारा सिविल मैरेज और तलाक प्रथा प्रचलित होनेपर आर्यनारियोंका अनन्त कालका सञ्चित यह अमूल्य धन नष्ट हो जायगा और वे इस लोक-परलोक कहींकी नहीं रहेंगी।

हिन्दूकोड बिलमें पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रके समान कन्याका भी अधिकार रखा गया है। नवशिक्षित कुछ महिलाएं इसी प्रलोभनमें इस बिलका समर्थन करती हैं। अविवाहित पुत्रीका पिताकी सम्पत्तिमें अधिकार तो हिन्दू शास्त्रोंने रखा ही है, परन्तु इस बिलमें विवाहित पुत्रीको भी पिताकी सम्पत्तिमें अधिकार दिया गया है। यह सुननेमें जितना मधुर एवं सरल है, व्यवहारमें उतना ही कटु तथा जटिल है। भारत सरकारके कानून मन्त्री डाक्टर अम्बेडकर-द्वारा आयोजित अनियमित हिन्दूकोड कान्फरेन्समें श्रीआर्य महिलाहितकारिणी महापरिषद्की ओरसे मुझे भी सम्मिलित होनेका अवसर प्राप्त हुआ था। उसमें इस विषयपर बड़ा मनोरञ्जक विवाद हुआ था। विशेषतः जो महानुभाव इस बिलके समर्थक थे, उन्होंमेंसे एकने विवाहित पुत्रीको पिताकी संपत्तिमें हिस्सा देनेसे अनेक व्यावहारिक उलझनोंका वर्णन किया, जैसे विवाह हो जानेपर पुत्री अपने पतिके यहां चली जायगी, तो पिताकी सम्पत्तिका प्रबंध कैसे कर सकेगी? तब उसको वह सम्पत्ति किसीके हाथ बेच देना पड़ेगा, पिताका यदि एक ही घर हुआ तो उसके बिके हुए भागमें कोई अन्य व्यक्ति अधिकारी हो जायगा, इससे लड़कोंको अनेक असुविधाएं उठानी पड़ेगी, इससे उत्तम यह होगा कि, विवाहिता पुत्रीको पिताकी सम्पत्तिमें हिस्सा नहीं देकर पतिकी सम्पत्तिमें हिस्सा दिया जाय। इसपर एक दूसरे सज्जनने कहा कि, पतिकी सम्पत्तिमें स्त्रीको आधा हिस्सा देनेसे यदि स्त्रीने विवाह-विच्छेद किया तो, पतिकी आधी सम्पत्ति लेकर वह दूसरी जगह चली जायगी। पुनः उस पुरुषने यदि दूसरा विवाह किया और उस स्त्रीने भी तलाक दिया, तो वह भी पतिके हिस्सेके धनसे आधा हिस्सा लेकर चली जायगी। इस प्रकार उस पुरुषके पास कुछ भी नहीं बचेगा।" इसपर एक महिला जो संसदकी सदस्या हैं बौखला उठीं और बोलीं कि "ये पुरुष लोग हम लोगोंको पिता-पति किसीकी सम्पत्तिमें हिस्सा नहीं देना चाहते है।" इसपर अच्छी हंसी हुई। इस विषयपर इसी प्रकारके वाद-विवाद घण्टों होते रहे, परंतु निष्कर्ष कुछ नहीं निकला और वह कानफरेन्स समाप्त हो गयी।

इन सब कठिनाइयोंको पहलेसे सोचकर और सब ओर जिसमें सुविधा हो, इसे विचार कर ही हमारे यहाँके ऋषि-मुनियोंने पुत्रीको पिताकी सम्पत्तिमें हिस्सा बड़ी युक्तिसे दिया है। वह इस प्रकारसे दिया है कि, अविवाहित पुत्रीको तो पुत्रके साथ हिस्सा रखा और विवाहितको वस्त्र, आभूषण, उपहार आदि दहेजके रूपमें दे देनेका विधान बना दिया है। साथही इस प्रकारसे प्राप्त धनका नाम "स्त्री-धन" रखा, जिसपर पति-पुत्र-पिता-भाई किसीका भी अधिकार नहीं है। इस व्यवस्थासे पुत्री आजीवन अपने पिता-माता भाई, भतीजों तथा पितरालयके अन्य सब कुटुम्बियोंके प्रेम-स्नेहका भाजन बनी रहती है, पितरालयसे सदा अटूट प्रेम

सम्बन्ध बना रहता है। विशेष-विशेष अवसरोंपर उपहार भी मिलते रहते हैं। इस प्रकार सम्पत्ति-सम्मान दोनों प्राप्त होते हैं।

हिन्दूकोड बिलके समर्थनमें पुरुषोंके अत्याचार-की बात कही जाती है। इस विषयमें प्रश्न यह होताहै, कि क्या कानून बनते ही अत्याचार बन्द हो जायँगे! यदि ऐसा होता तो जिन अपराधोंके लिये कानून विद्यमान है, जैसे दूसरेकी हत्या करनेसे फाँसीकी सजा होती है, दूसरेकी सम्पत्ति चुरानेसे जेल भोगना पड़ता है, इसका कानून रहते हुए भी आज नित्यप्रति हत्या-चोरी-डकैती आदिके अपराध होतेही रहते हैं। कोईभी कानून मूर्तिमान होकर इनको रोकने के लिये कहीं खड़ा तो नहीं रहता है। दूसरी बात यहभी कि, यदि किसी स्त्रीने अपने प्रथम अत्याचारी पति-को तलाक देकर दूसरे पुरुषको पति बनाया, तो वह पति सत्यवान् जैसा सदाचारी और पत्नीभक्त होगा, वह अत्याचार-अनाचार नहीं ही करेगा, इसी का कैसे निश्चय होगा। यदि वह भी अत्याचारी हुआ तो उसे छोड़कर वह स्त्री पुनः तीसरे किसी पुरुषको ग्रहण करेगी, ऐसी स्त्रीमें और किसी बाजारू स्त्रीमें अन्तरही क्या रहेगा? पुनः ऐसी स्त्रीकी क्या दशा होगी? वह इस लोकमें अयश एवं दुःख, परलोकमें नरककी ही भागिनी होगी।

इन सब अत्याचारों एवं असुविधाओंसे नारियों-की कानून रक्षा नहीं कर सकता। उसका तो एक ही उपाय है कि, सामाजिक संगठन-शक्तिसे इन बुराइयोंको दूर किया जाय और ऐसा वातावरण बनाया जाय जिससे पुरुष अपने सामने एक पत्नी-व्रत भगवान् रामका आदर्श रखें। अपनी विवाहिता धर्मपत्नीका शास्त्रोक्त सम्मान करें अन्य स्त्री-मात्रको माता-भगिनी-पुत्री समझें। और स्त्रियां भगवती सीता, सावित्री, सुकन्या, अनसूया, आदि देवियोंको अपना आदर्श बनाकर उनके चरण-चिन्हों-का अनुसरण करना अपना कर्त्तव्य समझें। जो पुरुष अपनी सती-साध्वी स्त्रीका अपमान करता है, उसका समाज तिरस्कार करे, दण्ड दे। इस समय जो बालक तथा बालिकाएँ हैं पच्चीस वर्ष बाद वे ही राष्ट्रकी निर्मात्री होंगी अतः इनको अभी से धार्मिक नैतिक तथा सदाचारकी उचित शिक्षा दी जाय जिससे वे धर्मभीरु, ईश्वर भक्त, सदाचारी नाग-रिक बनें तो कुछ ही वर्षोंके पश्चात ये सभी बुरा-इयां स्वतः दूर हो जांयगी इस प्रकार भविष्यका सुधार स्वतः हो जायगा। इन उपायोंद्वारा कुरी-तियोंका सुधार होनेपर ही स्त्री पुरुष दोनोंका एवं समस्त सृष्टिका कल्याण हो सकता है। त्रिकाल-दर्शी महर्षियोंके बनाये हुए धर्मशास्त्रके कानून इतने सुविचारित सुदृढ़ एवं सुन्दर हैं, कि वे त्रिकालमें कल्याणकारी हैं, यदि उनका ठीक-ठीक पालन किया जा सके। जो स्त्री-पुरुष उनका पालन नहीं करते हैं, वे उनके विरुद्ध आचरण करके समाजको एवं अपने को कलंकित करते हैं; ऐसे व्यक्तियोंको दण्डद्वारा मार्गपर लानेका उद्योग होना चाहिये। इसीमें व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्रका सच्चा कल्याण निहित है। शासन-सत्ताको केवल शास्त्रोंकी आज्ञाओंका पालन करानेका अधिकार है, हिन्दू-कोडका नया शास्त्र बनानेका नहीं। यही हमारी हिन्दू परम्परा है। यहांके वेद अपौरुषेय हैं। स्मृति-शास्त्र वेदपर आधारित हैं। अतः ऋषि-मुनियोंने भी कोई नया शास्त्र नहीं बनाया। अतः हिन्दूकोड-बिल बनाना सरकारकी अनधिकार चेष्टा है, उससे स्त्री जातिका तो सर्वस्व नाश हो जायगा क्यों कि इस बिलके कार्यान्वित होनेपर उनका सतीत्व-संस्कार तथा गौरव सदाके लिए नष्ट भ्रष्ट हो जायगा।

हिन्दूकोडके विषयमें विविध विचार ।

हिन्दूकोडबिल के विषयमें हमारे धर्माचार्य तथा अन्य कुछ प्रसिद्ध पत्रों के विचार हम यहाँ अपने पाठक-पाठिकाओं के अवलोकनार्थ उद्धृत करते हैं।

प्र०-सम्पादिका !

अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीब्रह्मानंद सरस्वतीजी महाराजने २० सहस्रसे अधिक प्रयागवासी नागरिकोंके समक्ष हिन्दूकोडका तीव्र विरोध करते हुए कहा—यह बिल वेद-शास्त्रोंकी अन्त्येष्टि करनेका भयंकर कुचक्र है। इसके समर्थनमें कहा जाता है कि यह स्त्रीके स्वातंत्र्यकी रक्षा करनेका प्रयास है। किंतु गम्भीरतासे विचार करनेपर यह स्त्रियोंका सबसे भयंकर शत्रु है। तलाककी प्रथा निर्माण की जा रही है। मान लो कि स्त्रीकी ४० वर्ष की आयुके पश्चात् पति तलाक दे देता है तो स्त्रीको कौन पूछेगा? सम्पत्तिसम्बंधी नियम भी इतने अपूर्ण और जटिल हैं कि इससे छिन्न-विच्छिन्नता और कलह-की स्थायी जड़ जमेगी। समाजको दुर्बल बनानेका यह सीधा नुस्खा है।

श्रीजगद्गुरुने आगे कहा-हिंदू कोडबिल समाज-में स्त्री-पुरुषके सम्बंधोंमें कटुता उत्पन्न करनेमें विशेष-रूपसे सहायक होगा। बढ़ते हुए नैतिक अधःपतनको दृष्टिमें रख विचार करनेपर कोडबिलकी भयंकरता और भी स्पष्ट हो जाती है। धर्माचार्यने कहा है कि जगद्गुरु शंकराचार्यके पदपर समासीन होनेवाला व्यक्ति हिंदू समाजकी धार्मिक भावनाओं एवं आदर्शों का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि जनता ही शंकरा चार्यका भी चुनाव करती है। सर्वकल्याणकारी वैदिक धर्मकी रक्षा तथा पोषण करनेमें समर्थ समझकर ही जनताने जगद्गुरुत्वका उत्तरदायित्व सौंपा है। अतः उन्नतिकी उच्चतम अवस्थापर पहुंचानेमें पूर्ण समर्थ वैदिक धर्मके मूलपर ही कुठाराघात होते देख सर-कारको चेतावनी देना शंकराचार्यका कर्तव्य है।

जनताकी हर्षध्वनिके बीचमें शंकराचार्य महाराज-ने आगे कहा यदि हमी वैदिक सिद्धांतोंकी उपेक्षा-कर अपने मनमाने सिद्धान्तोंका प्रचार करने लगें तो यह जनताके साथ विश्वासघात होगा। कर्तव्य-भ्रष्ट होनेपर जनताको अधिकार है कि वह हमें पद-च्युत कर दे। इसी प्रकार संसदके सदस्य भी जिस-जिस क्षेत्रमें चुने गये हैं वहाँकी जनताकी भावनाओं-का प्रतिनिधित्व करें। जनमतकी अवहेलना कर अपनी मनमानी करना उनके साथ विश्वासघात करना है। सैद्धांतिक दृष्टिसे ही नहीं, जनतांत्रिक दृष्टिसे भी एक ऐसे विषयको जो समाजके जीवनमें क्रांतिकारी परि-वर्तन लानेवाला है, बिना जनताकी राय लिए संसदमें पार्टीके बहुमतके बलपर कानून बना देना जनतंत्रका स्वांग रचना है हमारा सरकारसे अनुरोध है कि वह कोडबिलके बारेमें निष्पक्ष जनमत संग्रह करे। यदि जनमत इसके विरुद्ध रहे तो जबरदस्ती इसे जनतापर लादनेकी कुचेष्टा न करे—अन्यथा परिणाम अनर्थ-कारी होगा। (सन्मार्गसे उद्धृत।)

हानिकारक दुराग्रह !

खबर है कि संसदके इसी अधिवेशनमें हिंदू कोड-बिलपर विचार समाप्त करके उसे पासकर देनेपर संसदीय कांग्रेस पार्टी तुल गयी है। हम अपनी सारी शक्तिसे इसका विरोध करना चाहते हैं। यह वस्तुतः गणतंत्रका गला घोंटना है। हम उनका समर्थन भी

पूर्ण शक्तिसे करते हैं जो कहते है कि यह बिल अभी स्थगित रखा जाय और बालिग-वोटसे निर्वाचित संसद् इसे स्वीकार या अस्वीकार करे। किसी सभ्य देशमें विवाह, उत्तराधिकार जैसे नियम जबर्दस्ती बनाये नहीं जाते। परम्पराकी रक्षा की जाती है। इसीसे इग्लैण्डमें पार्लमेण्टके बनाये क़ानूनोंकी अपेक्षा 'कामन ला'को अधिक महत्व दिया जाता है। भारतमें ही इसका विरुद्धाचरण करनेपर कांग्रेसी शासक क्यों तुल गये हैं, यह बात समझमें नहीं आती। जो हो, यदि इसी संसदमें यह बिल पास करके समाजके सिर लादा गया तो अगले निर्वाचनमें इसका घोर विरोध अवश्य किया जायगा जिसका परिणाम आज शासन करनेवाली पार्टीके लिए अच्छा नहीं होगा। हमने जो नयी स्वतंत्रता पायी है उसका अर्थ यह नहीं है कि शासन करनेवाली पार्टी जनतासे अधिकार पाये बिना समाजको आमूल उच्छिन्न करनेका यत्न करें। यह नेहरू सरकारका अत्यन्त हानिकारक दुराग्रह है!

"आज" सौर भाद्र २६ का अङ्क—

जनता सफाई मांगेगी

चुनावमें प्रधानमन्त्रीके हठकी—कोडविरोधमें वीरअर्जुनका मत

जिस प्रकार हिन्दू कोड बिलको संसद्के वर्तमान अधिवेशनमें ही उपस्थित करनेका संसद्की कांग्रेस-पार्टीने निश्चय किया है (और अब पेश भी हो चुका है) उससे प्रगट है कि उक्त निश्चय केवल प्रधानमंत्री नेहरूजीका हठ रखनेके लिए किया गया है। उसे करते हुए इस बिलकी उपयोगिता, अनुपयोगिता अथवा जनताकी इच्छाका तनिक भी ध्यान नहीं रखा गया। यह बिल ब्रिटिश शासनके समयसे लटक रहा है, परन्तु ऐसी एकभी घटना नहीं घटी जिससे यह प्रगट हो कि इसके कानून न बननेसे हिंदू जनताकी अमुक हानि हो गयी। तिसपर भी प्रधानमंत्री इसे यथाशीघ्र कानून बनवा देनेपर तुले हुए हैं क्योंकि एकबार भाषण करते हुए आवेशमें उनके मुखसे यह निकल गया था कि 'इस बिलके पास होने न होनेको मैं अपनेमें संसद्के विश्वासकी कसौटी मानता हूँ और यदि संसद् इसे पास न करेगी तो मैं प्रधानमंत्रित्वसे त्यागपत्र दे दूँगा।' प्रधानमन्त्री भली भांति जानते हैं कि संसद्का बहुमत इस बिलका विरोधी नहीं। सम्भवतः अधिकतर सदस्य इस प्रकारके किसी बिलकी आवश्यकताका ही अनुभव करते हैं परन्तु वे इसे इसके वर्तमान रूपमें और जल्दबाजीमें पासकर देना पसन्द नहीं करते। इसी कारण संसद्के अधिकतर सदस्योंको यह बिल तुरत-फुरत पास कर देनेके लिए वैसा उत्साह नहीं है जैसा कि प्रधानमन्त्री को है। परन्तु प्रधानमन्त्री इस सचाईका कुछ विचार न करके, अपने पदकी स्थिति और वैयक्तिक प्रभावका दुरुपयोग करके, हठपूर्वक इस बिलको तुरत पास करवा देने पर तुल गये हैं। उनका यह कार्य लोकतांत्रिक सिद्धांतों और परम्पराओंका विरोधी तो है ही, जनघातक भी है।

इस सम्बन्धमें प्रधानमंत्रीका हठ इसीसे प्रगट है कि उन्होंने यह देखते हुए भी कि इतना बड़ा और विवादास्पद बिल, संसद्के अन्य कार्यकी उपेक्षा किए

बिना शीघ्र पास नहीं हो सकता, इसे आगामी चुनाओंसे पूर्वही पास करवानेका बीड़ा उठा लिया है। संसद्के अधिकतर सदस्य इस विषयमें प्रधानमंत्रीके हठका विरोध न करके जनघातका भारी अपराध कर रहे हैं। हमारा विश्वास है कि आगामी चुनावोंमें जनता उनसे इस अपराधकी सफाईकी मांग करेगी।

प्रधानमंत्रीने और उनके साथियोंने यह देखकर कि यह बिल सबका सब तो संसद्के इस अधिवेशनमें पास नहीं हो सकता, इसे दो भागोंमें बांट दिया है। एक भाग वह जिसमें सगोत्र विवाह और तलाक आदिकी धारायें हैं और दूसरा वह जिसमें कन्याओंको भी पैतृक सम्पत्तिमें भागी होनेका अधिकार दिया गया है। संसद्की कांग्रेसपार्टीने निश्चय किया है कि पहले विवाहसम्बन्धी भागको विचारार्थ लिया जाय। और यदि आवश्यकता हो तो समस्त बिलको पास करनेके लिए आगामी चुनाओंसे पूर्व संसद्का एक अधिवेशन और बुला लिया जाय। विधिमंत्री डाक्टर अम्बेडकर बिलको शीघ्र पास करवानेके लिए इसमें स्वयं ही अनेक संशोधन करनेको भी तैयार हो गये हैं। उनका प्रयत्न यह रहेगा कि इन संशोधनोंके द्वारा बिलके विरोधकी तीव्रता यथाशक्ति कुण्ठित कर दी जाय।

परन्तु सब अवस्थाओंको देखते हुए हमें पता लगता है कि इतने प्रयत्न करनेपर भी यह बिल आगामी चनाओंसे पूर्व या तो कानूनका रूप धारण कर नहीं सकेगा और यदि जल्दबाजीमें बैसाकर भी दिया गया तो वह इतना त्रुटिपूर्ण होगा कि भावी संसद्को सुधारनेके लिए उससे भी अधिक धन, श्रम और उसे समयका व्यय करना पड़ेगा जितना कि वर्तमान संसद इसे पास करनेके लिए करेगी। यह राष्ट्रीय साधनोंका अपव्यय तो होगा ही, वर्तमान प्रधानमन्त्री की हठधर्मिताकी निन्दाका सूचक भी होगा।

(दैनिक संमार्गसे उद्धृत)

'भारत'के हिंदूकोडपर विचार।

लोकमतकी ओरसे काफी विरोध होनेके बावजूद हिन्दूकोडबिल को विचारार्थ संसदके सामने उपस्थित कर दिया गया है और इसपर विवाद प्रारंभ हो गया है। प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरूने यह इच्छा प्रकट की है कि 'बिलका प्रथम तथा द्वितीय भाग इसी अधिवेशनमें पास कर लिया जाय और शेष भागोंपर विचार करना समयपर निर्भर करेगा। उन्होंने इस बातपर भी जोर दिया है कि 'प्रथम दो भागोंपर विवाद इसी सप्ताहके अन्दर समाप्त कर दिया जाय। वैसे तो सरकारको बहुमत प्राप्त है और नेहरूजी चाहें तो उस बहुमतके बलसे अपने इच्छानुसार शीघ्र ही उसे पास करा सकते हैं। किंतु ऐसे विवादग्रस्त विधेयकको पास करानेमें यह जल्दबाज़ी और उतावली कभी वांछनीय नहीं कही जायगी। सब सदस्योंको उसपर जनताकी ओरसे अपना विचार प्रकट करनेका अवसर मिलना चाहिये। संशोधनोंको उपस्थित करने तथा उनपर अच्छी तरहसे विचार करनेका समय भी प्राप्त होना चाहिये। यदि सरकार

संसद तथा लोकमतको साथ लेकर चलना चाहती है तो फिर उसे जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। हिन्दू-कोडबिल ऐसा बिल नहीं है जिसका इसी अधिवेशन में पास किया जाना अनिवार्य हो।

वास्तवमें हमारा यह मत रहा है कि 'बिलके वादविवादग्रस्त स्वरूपको देखते हुये उचित यह होगा कि मौजूदा संसद द्वारा उसे पास करानेका प्रयत्न न किया जाय। आम चुनावके बाद जब नयी संसद् संघटित हो तब वह इस प्रश्नको उठाये।'

एक बात और है, यह हिन्दू कोडबिल १६४८ई० में तैयार किया गया था। उस समय धर्म-निरपेक्षवाद-पर आधारित नया विधान बना भी नहीं था। इस नये विधानमें मौलिक अधिकारोंकी व्यवस्था करते हुए कहा गया है कि 'विधि या कानूनके सामने सब नागरिक समान होंगे। धर्म, मूलवंश तथा जाति, आदिके आधारपर कोई भेदभाव नहीं किया जायगा। इस नये विधानके बन जानेके बाद तो १६४८ का बनाया गया कोडबिल बिचारके लिए रखना ही नहीं चाहिये था। कोड पास करना ही था तो कोई नया कोड तैयार किया जाता जिससे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी प्रशासित होते और जो एक समान सब पर लागू होता।

यदि विवाह और तलाक, उत्तराधिकार और भरण-पोषण, अवयस्क और उसकी संरक्षकता तथा संयुक्त परिवार सम्पत्तिके विषयमें राष्ट्रीय सरकार परम्परागत कुछ प्रथाओं और विधियोंको राष्ट्रके विकास और अभ्युत्थानके लिए उचित नहीं समझती, इन सब बातोंके सम्बन्धमें वह कोई आदर्श नियम या व्यवस्था लागू करना चाहती है तो उसका धर्म था कि अपने आधारभूत सिद्धान्त धर्म-निरपेक्षवादका ध्यान रखते हुए सभी जातियोंके लिए एक-सा कानून पास करानेके लिए मसविदा तैयार करती। अगर सब जातियोंके लिए एक ही कानून लागू नहीं किया जा सकता तो हिंदू कोडबिलको लादनेका प्रयत्न भी त्याग देना चाहिये था।

बहुविवाहकी प्रथाका उन्मूलन हमें निश्चयात्मक रूपमें वांछनीय प्रतीत होता है। हिंदू कोडबिलकी कतिपय अच्छी बातोंमें एक अच्छाई यह भी है कि बहु-विवाहको निषिद्धकर देनेकी व्यवस्था की गयी है। किंतु यदि बहु-विवाह हिंदुओंके लिए हानिकारक है तो मुसलमानों तथा दूसरी जातियोंके लिए भी हानि-कारक ही होगा। एक-सा नियम सबके लिए होना चाहिये। दूसरी जातियोंको अलग छोड़कर जब यह सुधार केवल हिंदुओंपर लादा जा रहा है तो धर्म-निरपेक्षताका क्या अर्थ रह जाता है?

एक बात और है। कहा जाता है कि 'राष्ट्रपति हिंदू कोड बिलको देशके लिए हितकर नहीं समझते और यदि संसद्ने पास भी कर दिया तो वे अपनी स्वीकृति नहीं देना चाहेंगे।' इस समाचारकी सत्यता का अभीतक खंडन नहीं हुआ है। फिर हम यह भी जानते हैं कि राष्ट्रपतिके पदको सुशोभित करनेके पूर्व डाक्टर राजेन्द्रप्रसादने इस बिलके विरुद्ध मत प्रकट किया था। आज भलेही वे अपने पदके कारण सार्वजनिक रूपसे इस प्रश्नपर अपना बिचार व्यक्त करनेमें असमर्थ हों किंतु उक्त मत अज्ञात नहीं है।

हम पहले भी कह चुके हैं कि बहुतसे उच्च शिक्षाप्राप्त प्रगतिशील बिचार रखनेवाले व्यक्ति भी

बिलके विरोधी हैं। फिर क्यों न इसपर बिचार करना अभी स्थगित रखा जाय और नये विधानके अनुसार आगे चलकर कोई सर्वांगीण कोडबिल प्रस्तुत करनेका प्रयत्न किया जाय। ऐसे वादविवाद-ग्रस्त विषयोंपर कानून पास करनेका यह समय नहीं है। (दैनिक 'सन्मार्ग' से उद्धृत)

राष्ट्रपति हिंदूकोडपर स्वीकृति न दें।

वे भारतीय जनशक्तिके प्रतीक हैं और अधिकांश जनता बिलविरोधी।

'स्वतन्त्र भारत'का हिन्दूकोड पर विचार

स्थानीय स्वतन्त्र राष्ट्रीयपत्र 'स्वतन्त्र भारत' २० सितम्बरके अपने अग्रलेखमें हिन्दू कोड बिलके सम्बंधमें लिखता है—

हिंदू कोड बिलपर पार्लमेंटमें बहस आरम्भ हो गयी है। हिंदू कोड बिलकी धाराओं और उनमें निहित सिद्धान्तोंके अलावा बड़े महत्वका एक वैज्ञानिक प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ है। इधर कुछ समाचार पत्रोंमें यह खबर छपी है कि राष्ट्रपतिने इस सम्बंधमें प्रधान मंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरूको एक पत्र लिखा है। यह सभीको मालूम है कि राष्ट्र-पति पदपर आनेके पहले राजेन्द्र बाबूने सार्वजनिक रूपसे हिंदू कोड बिलका विरोध प्रकट किया था। राष्ट्रपति पदपर आनेके बाद अपनी वैधानिक स्थिति के कारण वे अपना मत सार्वजनिक रूपसे प्रकट नहीं कर सके। लेकिन हिंदू कोड बिल पार्लमेंट द्वारा पास होनेके बाद कानूनका रूप धारण करनेके लिए राष्ट्रपति द्वारा उसपर स्वीकृति प्रदान करना जरूरी है। अब प्रश्न यह है कि हिंदू कोड बिलके विरोधी राजेंद्र बाबू राष्ट्रपति पदमें उसपर स्वीकृति प्रदान करेंगे या नहीं?

यहीं एक वैधानिक गुत्थी उपस्थित हो जाती है। प्रश्न यह है कि पार्लमेंट द्वारा पास किये गये किसी कानूनपर राष्ट्रपति अपनी स्वीकृति देनेसे इनकार कर भी सकते हैं या नहीं? जहाँतक संविधानका संबंध है, उसमें धारा ५३ (१) में स्पष्ट लिखा है कि 'भारतीय प्रजातंत्रके शासनके एक्जीक्यूटिव अधिकार राष्ट्रपतिमें निहित हैं।' इसीके बाद धारा ७४ (१) में कहा गया है कि राष्ट्रपतिको मंत्रणा देने और शासनकार्य-सम्पादनमें सहायता करनेके लिए उनका एक मंत्रिमण्डल होगा।' इन धाराओंसे तो यह स्पष्ट है कि राष्ट्र-पतिको अपने मंत्रिमण्डकी राय मानने या न माननेका पूरा अधिकार है। इससे यह स्पष्ट है कि मंत्रिमण्डल स्वेच्छासे कोई ऐसा काम नहीं कर सकता जो राष्ट्रपति न चाहें क्योंकि शासन का वैधानिक अधिकारी राष्ट्रपति है। किंतु प्रश्न यह उठता है कि क्या राष्ट्रपतिकी भी ब्रिटिश सम्राट्की ही भाँति केवल वैधानिक स्थिति मात्र नहीं है जिसे अपने मंत्रिमण्डल और पार्लमेंटके निर्णयोंको स्वीकार करना ही पड़ता है।

खैर, यह प्रश्न तो वैधानिक पंडितोंके विचारनेका है। लेकिन संविधानकी धारा ८६ (२) के अन्तर्गत

किसी भी विषयपर अपना संदेश पार्लमेंटके सम्मुख भेज सकता है। और धारा ७८ (ब) के अन्तर्गत किसी भी प्रस्तावित कानूनके सम्बन्धमें अपने प्रधान-मंत्रीसे पूछताछ कर सकता है पार्लमेंटमें उपाध्यक्षने यद्यपि यह प्रश्न नहीं उठने दिया कि 'राष्ट्रपतिने नेहरूजीको हिंदू कोडबिलके सम्बन्धमें कुछ लिखा है या नहीं।' लेकिन राजेन्द्र बाबूके इस सम्बंधमें बिचारोंको जानते हुए और उपर्युक्त धारामें उनके अधिकारको देखते हुए इस समाचारको बिलकुल निराधार नहीं कहा जा सकता कि राजेन्द्र बाबूने नेहरूजीको इसबिलको संभवतः स्थगित करनेके लिए लिखा होगा। फिर भी नेहरू सरकार इस बिलको इसी पार्लमेंटमें जिसमें उनके साथ हाथ उठानेवालोंका ही बहुमत है, पास करनेपर दृढ़ है, बावजूद इसके कि इस विषय पर देशमें काफी विवाद हो चुका है और हो रहा है। ऐसे व्यक्ति और संस्थाएं भी इसका विरोध कर रही हैं जिन्हें प्रतिक्रियावादी कहना कठिन है। इससे तो यही प्रमाणित होता है कि जन-तंत्रकी दुहाई देनेके साथ ही जनमतकी अवहेलनाकर अपने मतको दूसरोंपर बलात् लादना नेहरू सरकार चाहती है। लेकिन यह तो जनतंत्र नहीं, उसका उपहास है।

अब हम उस बिलके आधारभूत सिद्धांतोंपर भी एक दृष्टि डाल लें। हम इसपर पहले भी लिख चुके हैं। इस बिलमें दो मूल सिद्धांत रखे गये हैं एकपत्नी नियम और तलाकका अधिकार। काफी विरोधके कारण सम्पत्तिसम्बंधी धाराएं फिलहाल स्थगितकर दी गयी हैं। यह तो सरकारने एक बुद्धि-मत्ताका काम किया है। लेकिन उपर्युक्त दोनों बातोंके सम्बंधमें भी तर्क नेहरू-सरकारके पक्षमें नहीं जाता। कोई सामाजिक सुधार कानून द्वारा तभी न्याययुक्त कहलाता है जब उसकी कोई तत्काल आवश्यकता हो अथवा बहुमतकी प्रगति अल्पमतके कारण रुक रही हो। साथ ही उसमें समाजमें अव्यवस्थाकी स्थिति पैदा होनेका खतरा न हो। बहुपत्नी प्रथाको कोई आदर्श-प्रथा नहीं कहता और न कोई यही कहता है कि जो तलाकका अधिकार चाहते हैं उन्हें यह अधिकार न दिया जाय। लेकिन प्रश्न यह है कि जो तलाकका अधिकार नहीं चाहता, जो अपनी प्राचीन परम्पराके अनुसार वैवाहिक संबन्धको केवल सामाजिक ठेका न मानकर अधिक स्थायी सम्बंध मानता है, उसपर तलाकका अधिकार लादकर उसके सामने एक शारीरिक सुखका स्थायी प्रलोभन कायम करना कहांतक न्याय संगत है—कहांतक तर्क-पूर्ण है? इस बातका कोई प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं कि हिंदू-समाजके ९० प्रतिशत भाग-नीची कह-लानेवाली जातियोंमें तो तलाककी प्रथा वैसे ही कायम है। तब केवल १० प्रतिशतको यह अधिकार देनेके लिए लोचदार सामाजिक नियमोंके स्थानपर, जो समयकी गति और आवश्यकतानुसार बदलते रहे हैं और जिनमें बदलते रहनेकी क्षमता है, एक कड़ा-सा कानून बना देना किसी भी दृष्टिसे उचित सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि आजकी स्थितिमें तो इतना लोच है कि जो तलाकका अधिकार चाहता है या जिसे अपने ऊपर स्वयं विश्वास न हो, एक पत्नीव्रतके लिए कानूनी बंधनकी आवश्यकता है उसके लिए भी देशमें कानून हैं। साथ ही हिंदुओंमें समयके साथ और आवश्यकतानुसार बदलते रहनेकी इतनी क्षमता भी है कि ब्रह्मसमाज, राधास्वामी अथवा आर्यसमाज आदिके सामाजिक नियमोंमें

परिवर्तनोंके साथ भी वह पूरे हिन्दूसमाजके अंग बने हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि हिंदू-समाजकी यह परिवर्तनशीलता अब समाप्त हो चुकी है। तब इस कानूनको पास करनेका क्या औचित्य है, यह हमारी समझमें नहीं आता।

एक बात और भी बहुत महत्वपूर्ण है। भारत धर्मनिरपेक्ष-असम्प्रदायवादी राज्य है। यहां प्रत्येक नागरिकके चाहे वह किसी धर्मका अनुयायी हो, बराबर अधिकार हैं और बराबर जिम्मेदारियां। प्रश्न यह है कि क्या इस कानून द्वारा अधिकारों और जिम्मेदारियोंमें भेद नहीं हो रहा है? और इस प्रकार क्या यह बिल संविधान का उल्लंघन नहीं करता? इस कानूनके पास होनेके बाद हिंदू एक-पत्नीव्रत रहेंगे, लेकिन मुसलमानोंको बहुपत्नीका अधिकार रहेगा। इससे यह भय है कि बहुत से लोग अपनी वासनाओंकी तृप्तिके लिए ही अपना धर्म-परिवर्तन करेंगे उसी प्रकार जैसे पश्चिमी देशोंमें तलाकके लिए लोग एक स्थानसे दूसरे स्थानपर—जहां कानून भिन्न है—चले जाते हैं। इससे तो समाजमें अव्यवस्था फैल जायगी। और उधर नीची कहलानेवाली जातियोंके सामाजिक नियमों और इस कानूनमें जो संघर्ष होगा उससे यह अव्यवस्था और भी व्यापक रूप धारणकर समाजके स्थायित्वको ही धक्का न दे, यह भय है। इन बातोंको ध्यानमें रखते हुए हम एक बार फिर नेहरूसरकारसे यही अनुरोध करते हैं कि प्रगतिके नामपर अव्यवस्था फैलानेकी जिद छोड़ दे। साथ ही हम राष्ट्रपतिसे भी अपील करते हैं कि यदि उन्होंने नेहरूजीको कुछ लिखा है वह तो ठीक ही है, लेकिन यदि उनका मंत्रिमंडल अपनी जिदपर अड़कर यह बिल पास ही करा ले तो भारती-जनशक्तिके प्रतीक होनेके नाते उनका कर्त्तव्य है कि उस बिलपर स्वीकृति प्रदान न करें, ताकि आम चुनावके बाद नवनिर्मित पार्लमेंट स्थापित होनेतक यह कानून लागू न हो सके।

महामण्डलमें श्रीजीका चित्रसंग्रह।

(ले० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर)

श्रीभारतधर्ममहामण्डलभवनमें जिस प्रकार एक वृहत् पुस्तकालय स्थापित हुआ है, जिसमें हस्तलिखित और मुद्रित बहुमूल्य सहस्रों ग्रन्थ संगृहीत हुए हैं, उसी प्रकार एक विशाल चित्रालय भी है, जिसमें सहस्रों पौराणिक, दार्शनिक, औपनिषदिक, ऐतिहासिक और व्यावहारिक चित्रोंका संग्रह किया गया है। समझने के लिये विषय सुगमसे सुगम शब्दोंमें लिखा जा सकता है, या चित्रोंद्वारा समझाया जा सकता है। श्रीमहामण्डलके संस्थापक श्रीस्वामीजी महाराजने अपने जीवनमें जैसे सैकड़ों धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ लिखे, वैसे अनेक दार्शनिक और औपनिषदिक बड़े बड़े अनेक रङ्गोंमें बड़े परिश्रम और खोजके साथ तैल चित्र भी बनवाये हैं, जिनसे प्रतिपाद्य विषयके समझनेमें बड़ी सुगमता हो गयी है। वे सब चित्र श्रीमहा-मण्डलके चित्रालयमें सुरक्षित हैं। उनमेंसे कुछ चित्रोंका यहाँ परिचय कराया जाता है।

ब्रह्माण्डका मानचित्र ।

कालज्ञान-सम्बन्धी शास्त्रको इतिहास कहते हैं। काल और देशका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होनेसे इतिहासके विद्यार्थियोंको देशका भी ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। कमसे कम जिस देशमें हम रहते हैं, उसका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना तो बहुतही आवश्यक है। ब्रह्माण्ड क्या है और ब्रह्माण्डके साथ अपने भारतवर्षका क्या सम्बन्ध है, इसको समझानेके लिये श्रीजीमहाराजने एक विशाल ब्रह्माण्डका मानचित्र तैयार कराया है। उसको ध्यानपूर्वक देखनेसे ब्रह्माण्डका स्वरूप समझमें आ जाता है।

शास्त्रानुसन्धानके द्वारा यह निश्चित है कि, भारतवर्ष नामसे हमारा सब मृत्युलोक ही समझना चाहिए। इसीको दुनियाँ या वर्ल्ड कहते हैं। उसका प्रधान अंग भारतद्वीप है, जो हिन्दुस्तानके नामसे प्रसिद्ध है। समग्र ब्रह्माण्डके मानचित्रमें उसका स्थान कहाँ है और समग्र ब्रह्माण्डकी आधिभौतिक स्थिति कैसी है, यह इस मानचित्रमें बताया गया है। ब्रह्माण्डमें जो चतुर्दश भुवन है, उनका परस्पर सम्बन्ध क्या है, बिलस्वर्ग, भौमस्वर्ग, माहेन्द्रस्वर्ग, प्राजापत्यस्वर्ग और ब्राह्मस्वर्गकी अलग अलग स्थिति कैसी है, ऊपरके सप्त और नीचेके सप्त लोकोंमेंसे बीचके भूलोकके विस्तारका स्वरूप क्या है, उसमें सप्तद्वीप और सप्त समुद्र कैसे हैं, उनका स्वरूप क्या है, उन सात द्वीपोंमेंसे जम्बुद्वीपका स्थान कहां है, उसमें नौवर्ष कहाँ कहाँ हैं, पितृलोक, नरकलोक, प्रेतलोक और मृत्युलोक जिसको भारतवर्ष या पृथ्वी कहते हैं—इनके स्थान कहाँ हैं और भारतवर्षमें भारतद्वीपकी स्थिति कहाँ है, ये सब बातें बड़ी कुशलतासे बतायी गयी हैं। इस मानचित्रमें यह भी बताया गया है कि, भूर्लोक और भुवर्लोक रूपी भौम स्वर्ग, जिसके अन्तर्गत समस्त ग्रह, नक्षत्र, राशिचक्रआदि हैं,—उसको दिव्य सुमेरु पर्वत कैसे धारण किये हुए है और उसीको आश्रय करके ध्रुवलोक, सप्तर्षिमण्डल, सूर्य, राशिचक्र तथा ग्रहगण कैसे स्थित हैं। इसी चित्रमें ब्रह्माण्डके ईश्वर और संचालक ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेवोंके और कर्मके नियन्ता धर्मराज यम, देवराज इन्द्र, कालराज मनु तथा असुरराज बलि इन चारों देव पदधारियोंके भी चित्र दे दिये गये हैं। इस चित्रके अवलोकनमात्रसे सारे ब्रह्माण्डका भव्य रूप अन्तश्चक्षुओंके सामने उपस्थित हो जाता है। इसका विस्तृत विवरण 'भारतवर्षका इतिवृत्त' नामक ग्रन्थमें प्रकाशित हुआ है, जो अध्ययन करने योग्य है।

अब इस अद्वितीय चित्रका संक्षेपमें विज्ञान भी जान लेना आवश्यक होनेसे वह यहाँ दिया जाता है। इससे वर्ण्य विषयमें कोई संदेह नहीं रह जायगा। ब्रह्माण्डके चतुर्दश भुवनोंके नाम ये हैं:—१-भूर्लोक, २ भुवर्लोक ३ स्वर्गलोक, ४-महर्लोक, ५-जनलोक, ६ तपोलोक और ७-सत्यलोक ये सात ऊपरके और १-अतल, २ वितल,-३-सुतल, ४-तलातल, ५-महातल, ६-रसातल और ७-पाताल ये सात नीचेके लोक हैं। मनुष्यके शरीरको धारण करनेवाला जैसा मेरुदण्ड (रीढ़) है, वैसाही ब्रह्माण्डके भूर्लोकके कुछ नीचेसे लेकर स्वर्गलोकसे कुछ ऊपरतक दैवी सुमेरुपर्वत ब्रह्माण्डको धारण किये हुए है। नीचेके सातलोक बिल स्वर्ग कहाते हैं, जिनमें असुरलोग वास करते हैं। इन सातों

लोकोंका भोग इन्द्रिय भोगके सम्बन्धसे ऊपरके लोकोंके भोगोंसे विशेष होनेके कारण आसुरी प्रकृतिके जीव उन्नत भोगोंकी इच्छासे इन्हीं लोकोंमें जाकर आसुरी भोग भोगते हैं। ऊपरके सात लोकोंमें भूर्लोक और भुवर्लोक भौमस्वर्ग कहाते हैं, जो मध्यम श्रेणीके स्वर्गलोक हैं। इन्हींके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, नक्षत्र, पृथिवी आदि स्थूल लोक हैं। सूर्यमण्डलका स्थान भुवर्लोकमें और ध्रुवलोकका स्थान भूर्लोक और भुवर्लोककी संधिमें हैं। चौदह-लोकोंमेंसे ऊपरके पाँच लोक दिव्यस्वर्ग कहाते हैं। स्वर्लोकको माहेन्द्रस्वर्ग, महर्लोकको प्राजापत्य स्वर्ग, और जनलोक, तपोलोक और सत्यलोकको ब्राह्मस्वर्ग भी कहते हैं। ये ही ब्रह्मलोक, उपासनालोक और उन्नत ज्ञानलोक हैं। इन पाँचों लोकोंमें सात्विक भोगोंकी अधिकता होनेसे ऊपरके उत्तरोत्तर लोकोंमें उन्नतसे उन्नत महदात्माएँ जाती हैं। उनके निवासके वे ही स्थान हैं।

भौमस्वर्गके अन्तर्गत भूर्लोक सात विभागोंमें विभक्त है, जो द्वीप कहाते हैं। वे इस प्रकार हैं:—१-जम्बुद्वीप, २-प्लक्षद्वीप, ३-शाकद्वीप, ४-कुशद्वीप, ५-क्रौञ्चद्वीप, ६-शाल्मलद्वीप और ७-पुष्करद्वीप। ये प्याजके छिलकेके समान एकके ऊपर एक हैं और सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं, जो एक दूसरेके बीच-बीच में हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं:—१-लवण-समुद्र, २-इक्षुसमुद्र, ३-सुरासमुद्र, ४ घृतसमुद्र, ५-दधिसमुद्र, ६-दुग्धसमुद्र, और ७-उदकसमुद्र। ये समुद्र जलमय नहीं, किंतु वायवीय हैं। सातों द्वीपोंके वातावरणमें बहुत अंतर है। उनके उपादानभी भिन्न भिन्न हैं। उक्त सप्तद्वीपोंमेंसे जम्बुद्वीपमें नौ वर्ष हैं। यथाः—१-भारतवर्ष, २-किम्पुरुषवर्ष, ३-हरिवर्ष, ४-रम्यकवर्ष, ५-हिरण्मयवर्ष, ६-उत्तरकुरुवर्ष, ७ इलावृतवर्ष, ८-भद्राश्ववर्ष और ९-केतुमालवर्ष। भारतवर्ष जम्बुद्वीपमें दक्षिणकी ओर स्थित है और बीचके इलावृतवर्षमें मेरुपर्वत खड़ा है। उसीको वेष्टन करके अन्य वर्षभी स्थित हैं। भारतवर्षके भी नौ विभाग हैं। इस समय उनके नाम एशिया, अफ्रिका, युरोप, अमेरिका आदि कुछ भी हो, प्राचीन नाम इस प्रकार हैं:—१-इन्द्रद्वीप, २-कशेरुमान्, ३-ताम्रवर्ण, ४ गभस्तिमान, ५-नागद्वीप, ६-सौम्य, ७ गान्धर्व, ८-वारुण और ९-आर्यावर्त यही आर्यावर्त इस समय हिन्दुस्तान कहाता है। यहीं पूज्यपाद महर्षियोंने जगत्के पथप्रद-र्शनका कार्य आरम्भ किया था। भारतवर्ष अर्थात् हमारी पृथ्वी ही मृत्युलोक है, शेष सब देवलोक हैं। भारतवर्षके चारों ओर अन्तरीक्षमें प्रेतलोक है और नीचे लवण समुद्रके तटपर नरकलोक है। इसीको पितृलोक कहते हैं और यहीं यमधर्मराजकी राज-धानी है। भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक-जो त्रिलोक कहाते हैं-इनका विस्तार अन्य लोकोंसे कुछ बड़ा है और इन तीनोंका विस्तार एक दूसरेके समानही है। सुमेरुपर्वत सूक्ष्म शक्तिमय पर्वत है। इस प्रकार इस विशाल और अलौकिक देवी ब्रह्माण्डके मानचित्रको ज्ञाननेत्रके सम्मुख रखकर हमारे मृत्युलोकरूपी भारतवर्षका मानचित्र विचारने योग्य है। इसको देखनेसे इसके निर्माता पूज्यपाद श्रीजीके असाधारण अन्तर्दृष्टि सम्पन्न होनेका आभास मिलता है और यह सब विषय शास्त्रीय प्रमाणोंसे सिद्ध है।

ज्ञान गोलक।

यह चित्र बड़ाही मार्मिक और रहस्यपूर्ण है।

श्रीजगदम्बाकी जो अलौकिक अचिन्तनीय दैवीशक्ति इस जड़ चेतनात्मक सृष्टिको धारण किये हुए है, उसीको पूज्यपाद महर्षियोंने 'धर्म' कहा है। उसी त्रिगुणात्मिका महाशक्तिके रजोगुणसे सृष्टि होती है और तमोगुणसे उसका विलय हो जाता है। मध्यवर्ती सत्वगुणसे सृष्टिकी रक्षा हुआ करती है। जीवोंके वासोपयोगी लोकसमूह जबतक विद्यमान रहते हैं ग्रह-नक्षत्रादि अपने स्वरूपमें रहकर अपनी अपनी कक्षाओंमें भ्रमण करते रहते हैं, तबतक धर्मकी धारिका शक्तिही उनके अस्तित्वकी रक्षा किया करती है। विकासवाद या क्रमोन्नतिवादके अनुसार जड़राज्यसे ही चेतनराज्यका आविर्भाव होता है। श्रीजगदम्बा अपनी शक्तिके द्वारा जब सृष्टिक्रम आरम्भ करती हैं, तब प्रथम मृत्तिकामें उद्भिज्ज जीवका प्राकट्य होता है। जल और मिट्टीके संयोगसे काई जैसा जो पदार्थ उत्पन्न होता है. वही पहला निम्नश्रेणीका उद्भिज्ज है। उस जीवसे लेकर मनुष्यकी मुक्तिकी अवस्था तक वही शक्ति जीवको धारण किये रहती है। वह जीवमें सत्वगुणका क्रम-विकास करती हुई उसको पुनः पूर्ण सत्वगुणकी अवस्थामें पहुँचाकर मुक्त कर देती है। वही शक्ति उद्भिज्जको नानायोनियोंमें भ्रमण कराके स्वेदज-योनियोंमें पहुंचाती है। इसी क्रमसे जीवको नाना-योनियोंमें भ्रमण कराती हुई वह स्वेदजसे अण्डज, अण्डजसे जरायुज पशु और पशुसे मनुष्य-योनिमें पहुँचा देती है। उद्भिज्ज योनिमें जीवके चारकोष सुप्त रहते हैं और अन्नमय कोषकाही विकाश उसमें होता है। क्रमशः ऊपरकी योनियोंमें एक-एक अधिक कोषका विकाश होता रहता है। जब जीव अन्नमय प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँचों कोषोंकी पूर्णता प्राप्तकर लेता है, तब मानव-पिण्डमें पहुँच जाता है। मनुष्य पंचकोशोंकी पूर्णता प्राप्तकर अपने पिण्डका अधीश्वर बनकर अपनी इच्छाके अनुसार सब काम करने लगता है। जब उसका अपनी इच्छाशक्ति पर अधिकार होजाता है, तब उसे पाप-पुण्यका भी भागी बनना पड़ता है। अन्य चौरासीलाख योनियोंमें पाप-पुण्यका भय नहीं है। भारतवर्षरूपी मृत्युलोकमेंही मनुष्यको कर्म करनेका अवसर मिलता है। अन्य ऊपर-नीचेके सबलोक भोगलोक हैं। भारतवर्ष कर्मभूमि है। यहाँ जो जैसा कर्म करेगा, वैसाही अन्य भोगलोकोंमें जाकर फलभोग करना होगा। 'जो जस करे, सो तस फल चाखा।'

जब चिच्छक्तिसे ही जीवमात्रकी उत्पत्ति हुई है, तब सभीमें न्यूनाधिक परिमाणमें ज्ञान विद्यमान है। परन्तु मानवपिण्ड पूर्ण होनेके कारण मानव सत्कर्मोंका अनुष्ठान कर धर्मकी वृद्धि करता हुआ 'नरसे नारायण' भी हो सकता है। पूज्यपाद महर्षि-योंने शास्त्रोंमें जड़ा प्रकृतिसे पूर्ण ब्रह्मतक पहुँचनेमें एक सोपान-परम्परा बतायी है। उन्होंने सिद्धकर दिया है कि जीवके अन्तःकरणमें उदित होनेवाली सात अज्ञान भूमियाँ है और सात ज्ञान भूमियाँ। अज्ञान भूमियोंकी अधिष्ठात्री देवी अविद्या है और ज्ञानभूमियोंकी अधिष्ठात्री देवी विद्या। इस चित्रमें दोनोंकी मूर्तियाँ अंकित हैं, क्योंकि दोनों आदि शक्ति श्रीजगदम्बाके ही रूप हैं। अविद्या कुरूप, काली और फाँसी तथा झाड़ू लिये हुए है और विद्या शंख, चक्र, गदा, पद्म धारणकी हुई प्रसन्नवदना परम सुन्दरी है। अविद्याके कौतुकसे मनुष्यका पतन होता है और विद्याकी कृपासे वह अमृतत्वको प्राप्त-

करता है। ज्ञानगोलकमें रंगों द्वारा यह भी दिखाया है कि, घोर तमोगुणसे ऊपर उठता हुआ जीव किस क्रमसे शुद्ध सत्वगुण तक पहुंच आता है। चित्रके नीचेके सिरेमें जड़ा प्रकृति है और ऊपरके सिरेमें ब्रह्म है, जिसका स्वरूप ॐकार है। पूर्वाचार्योंने अज्ञान-भूमियोंका स्वरूप निर्णय करनेके लिये निम्नसे निम्न अधिकारके जीवोंके अन्तःकरणों पर संयम करके पहले अनुभव किया और फिर जीवोंकी क्रमोन्नतिकी पीढ़ियाँ बांधी। उन्होंने देखा कि उद्भिज्ज जीवोंके समष्टि चिदाकाशमें अज्ञानभूमिका सबसे नीचा स्तर है। दूसरा स्तर स्वेदज जीवोंके, तीसरा स्तर अण्डज योनिके और चौथा स्तर जरायुज (पशु) जीवोंके समष्टि चिदाकाशमें उन्हें देख पड़ा। क्योंकि उनमें स्वाभाविक रूपसे ही पंचकोशोंका एक-एक करके क्रमशः विकाश होता जाता है। इसके अनन्तर अज्ञानभूमियोंके ऊपरके तीन स्तर अज्ञान-सेवी मनुष्योंमें इसप्रकार पाये जाते हैं:—१-देहको ही आत्मा समझना अर्थात् देहात्मवादको स्वीकार करना अज्ञान भूमिका पांचवां स्तर है। २-देहातिरिक्त आत्मवाद छठा स्तर है और ३-आत्मातिरिक्त शक्तिवाद सातवाँ स्तर है। इस समय जितने दर्शन-मत भारतके अतिरिक्त समस्त संसारमें प्रचलित हैं, उनका इन्हीं तीन अज्ञान भूमियोंमें समावेश होजाता है। इनको पारकर लेनेपर मनुष्यको ज्ञानभूमियोंमें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त होता है। अविद्या-सेवित राज्यकी सीमा उक्त अज्ञान भूमियोंमें समाप्त होकर विद्यासेवित राज्यकी सीमा ज्ञानभूमियोंसे प्रारम्भ होती है। ज्ञानभूमियाँ इस प्रकार हैं:—१-ज्ञानदा, २-संन्यासदा, ३-योगदा, ४-लीलोन्मुक्ति ५-सत्पदा, ६-आनन्दपदा और ७-परात्परा। इन्हीं सात ज्ञानभूमियोंकी सात पीढ़ियोंपर चढ़ आनेपर जीव ब्रह्मानन्द पारावारमें उन्मज्जन-निमज्जन करने लगता है। इसी पदकी प्राप्ति करना आर्यजातिका प्रधान और मौलिक लक्ष्य है।

इन्हीं सात ज्ञानभूमियोंके अनुसार वैदिक दर्शन-शास्त्र सात श्रेणियोंमें विभक्त हुआ है। इनमेंसे दो पदार्थ-वादके दर्शन हैं,—न्याय और वैशेषिक, दो सांख्य प्रवचनके दर्शन हैं,—योग और सांख्य तथा वेदके तीन काण्डोंके अनुसार तीन मीमांसा-दर्शन हैं,—कर्ममीमांसा, दैवीमीमांसा और ब्रह्म-मीमांसा। पदार्थवादके दोनों दर्शनोंमें अनुमानके द्वारा जगत्कर्त्ताका अनुसन्धानकर स्थूल प्रपञ्चके मौलिक परमाणुओंकी नित्यता सिद्धकी गयी है। सांख्य प्रवचनके दोनों दर्शनोंमें यथाक्रम प्रकृति और पुरुषकी नित्यता और दोनोंका पृथक् पृथक् यथार्थ स्वरूप बताकर तत्त्वज्ञानीको मुक्ति मार्गमें अग्रसर किया है और तीनों मीमांसादर्शनोंमें अपने-अपने ढंगपर प्रकृति और पुरुषकी एकता सिद्धकर पहलेमें जगतही ब्रह्म है, दूसरेमें ब्रह्मही जगत् है और तीसरेमें मैं ही ब्रह्म हूं, इस प्रकारके लक्ष्यको स्थिर किया है। इस चित्रके द्वारा पूज्यपाद श्रीजीने वैदिक ज्ञानका यथार्थ स्वरूप प्रकटकर तत्त्वज्ञानियोंको कृतकृत्य किया है। इसीसे इसका नाम 'ज्ञान गोलक' है और इसकी सहायतासे अज्ञानभूमियों और ज्ञान-भूमियोंका समझ लेना बहुत ही सुगम हो गया है। इसके अनुशीलनसे ऐसा कोई जिज्ञासु नहीं, जो तृप्त न हो और ऐसा कोई बुद्धिमान् नहीं, जो चकित न हो।

वेदाविर्भाव।

यह सभी तत्त्वज्ञानी स्वीकार करते हैं कि, वेद

सबसे प्राचीन हैं, अनादि हैं और नित्य हैं। उनका समय समयपर आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है, परन्तु नाश कभी नहीं होता। इस चित्रमें यह बताया गया है कि वेदोंका आविर्भाव किस प्रकार होता है। ऊपर शुद्ध सत्त्वमयी वीणा पुस्तक-धारिणी पद्मासना भगवती सरस्वती प्रसन्न मुख विराजमान हैं और उनके तेजोमण्डलमें किरणें निकल रही हैं। नीचेके ओर अन्तर्दृष्टि सम्पन्न ध्यान-मग्न पद्मासन लगाये पूज्यपाद महर्षिगण बैठे हैं और ज्ञान जननी माताके तेजोमण्डलसे निकली हुई किरणें उनके हृदयोंमें प्रवेश कर रही है। उन्हें वेदोंका साक्षात्कार हो रहा है। वे वेदोंके कर्ता नहीं, द्रष्टा हैं। यही इस चित्रके द्वारा दिखाया गया है। इसका विज्ञान संक्षेपमें बता देना उचित जान पड़ता है।

वेद और शास्त्रोंसे यह सिद्ध है कि, विद्यारूपी नदीका प्रवाह पाँच धाराओंमें प्रवाहित होता है। (पञ्चस्रोता सरस्वती)। अतः पूज्यपाद महर्षियोंने पाँच प्रकारकी पुस्तकें मानी हैं:—१ ब्रह्माण्ड पुस्तक, २. पिण्ड पुस्तक, ३ नाद पुस्तक, ४ बिन्दु पुस्तक और ५. अक्षरमयी पुस्तक। जो ब्रह्माण्डके अधीश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश अथवा श्रीजगदम्बाकी प्रेरणासे प्रकाशित हों और जिनकी स्थिति ऊपरके सबसे ऊँचे तीन लोकोंमें नित्य रहे, उन ज्ञानमयी पुस्तकोंका नाम ब्रह्माण्ड पुस्तक है। जो भूलोकके दैवी राज्यके ऋषियों द्वारा प्रेरित होकर अथवा आसुरी शक्ति द्वारा प्रकाशित हों, वे पुस्तकें ब्रह्माण्ड पुस्तकोंके अन्तर्गत मानी गयी हैं। इनकी सामग्री नीचेके असुरलोक और भूलोकसे मिलती है। वेदको स्मरण कर ऋषियोंके अवतार जो ज्ञानराशि प्रकाशित करते हैं, वह बिन्दु पुस्तकोंके नामसे अभिहित होती हैं। उनको ही स्मृतिशास्त्र कहते हैं। जो सृष्टिके आदिकालमें ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें ज्योंकी त्यों मन्त्ररूपमें सुनायी देती हैं, वे नादमयी पुस्तकें कहाती हैं। वे ही वेद हैं। ये चारों अलौकिक पुस्तकें हैं। ये चारों और लौकिक बुद्धिसे प्रकाशित अन्य साधारण पुस्तकें जब अक्षरोंमें लिखी जाती हैं, तब वे अक्षरमयी पुस्तकें कही जाती हैं। पहली चार प्रकारकी पुस्तकें नित्य और अक्षरमयी पुस्तकें अनित्य मानी गयी हैं।

वेद किसी मनुष्यके द्वारा नहीं रचे गये हैं। अन्य पुस्तकें भावरूपसे मनुष्योंके चित्तमें उदित होती हैं परन्तु वेद अपौरुषेय है। मन्वन्तर-मन्वन्तर या कल्प-कल्पान्तरमें भी वेदोंका ज्ञान नित्य बना रहता है और वेदोंके शब्द भी नित्य विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक सत्ययुगमें इस मृत्युलोकमें वेदोंका आविर्भाव हुआ करता है। मन्वन्तरके अन्तमें खण्ड-प्रलय होकर सृष्टिमें नवीनता अवश्य आती है, किन्तु बीज पुराना ही बना रहता है। कल्पान्तमें सम्पूर्ण सृष्टिका प्रलय होकर नवीन सृष्टि होती है। ब्रह्माण्डके भूः भुवः स्वः इस त्रिलोक में ही सृष्टि स्थिति प्रलयकी क्रिया नानारूपसे हुआ करती है। चारों युगों और मन्वन्तरका प्रभाव भी इन्हीं तीनों लोकोंमें अधिक पड़ता है। कल्पके अन्तमें जो प्रलय होता है, वह नीचेके सात और ऊपरके चार लोकोंमें ही होता है। सबसे ऊपरके तीन लोक, जो ब्राह्मस्वर्ग कहाते हैं और जहां भगवान ब्रह्मा निवास करते हैं, ज्योंके त्यों बने रहते हैं। वहीं नित्य रूपसे वेद भी सुरक्षित रहते हैं और प्रत्येक सत्य युगके आरम्भमें इस मृत्यु-लोकमें वे आविर्भूत होते हैं।

आजकल पदार्थविद्याका बोलबाला है। इस विद्यामें लोगोंका मूल विश्वास है। अतः इसी विद्याके द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है कि, आदिसृष्टिमें ऋषियोंके समाहित अन्तःकरणोंमें वेदका सुनायी देना असम्भव नहीं है। आजकल पश्चिमी देशोंकी 'साइकिक रिसर्च सोसाइटियों (प्रेत-विद्याका अनुसन्धान करनेवाली गोष्ठियों)ने यह प्रत्यक्षरूपसे सिद्ध कर दिखाया है कि, जिनके हृदयोंका प्रेतलोकके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, उनको प्रेतलोकके जीवोंके शब्द स्वाभाविक रूपसे अच्छी तरह सुनायी देते हैं। इसमे भी स्थूल जगत्का स्पष्ट उदाहरण यह है कि, रेडियो यन्त्रके द्वारा सैकड़ों कोसोंके शब्द उसी क्षण घर घरमें सुनायी देने लगते हैं। जहाँ रेडियो यन्त्र नहीं है, वहाँ सुनायी नहीं देते। इसी तरह आदिसृष्टिमें ऋषियोंके अन्तःकरण ब्राह्मस्वर्गके साथ एक स्वरमें मिले होते हैं, इस कारण वेदकी ऋचाओंका उनके अन्तःकरणमें आविर्भाव हो जाता है। उनका हृदय ही रेडियो यन्त्रका काम करता है। योगसाधना द्वारा ऐसा हृदय बना लेना सम्भव है। जिनको ब्राह्मस्वर्गके वेद ज्योंके त्यों सुनायी देते हैं, उन्हींको ऋषि कहते हैं। तीसरा लौकिक उदाहरण यह है कि, एक ही स्वरमें मिले हुए कई बाजे यदि किसी कमरेमें रक्खे हों और उनमेंसे कोई एकही बाजा बजाया जाय, तो सब बाजे झंकार करने लगते हैं। इसी तरह जिनके अन्तःकरण ब्राह्मस्वर्गके साथ एक स्वरमें मिले हों, उनको वेदोंका सुनायी देना कौन बड़ी बात है? वेदकी तरह स्मृतिशास्त्र भी नित्य है। पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि स्मृति शास्त्र ही हैं। वे ऋषियोंको शब्द रूपमें ज्योंके त्यों तो नहीं सुनायी देते, किन्तु दैवी जगतकी सहायतासे उनके अन्तःकरणोंमें भावरूपसे आविर्भूत होते हैं। अन्ततः भावरूपसे स्मृतिशास्त्र भी नित्य ही हैं।

वैदिक दर्शनशास्त्रने सिद्धकर दिया है कि, प्रतिकल्पके आरम्भमें जितनी ज्ञानराशि प्रकट होती है, वह उस कल्पके अन्ततक बनी रहती है। युगयुगान्तरमें उनका केवल आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है। वर्तमान कल्पके आरम्भमें वेदकी ११८० संहिताएँ, ११८० ब्राह्मण ग्रन्थ और ११८० उपनिषद् उपलब्ध हुए थे। उनमेंसे इस समय छः सात संहिताएँ, बीस-पचीस ब्राह्मण ग्रन्थ और सौ सवा सौ उपनिषद् बच रहे हैं। इस कल्पके आरम्भमें वेदका विस्तार ३५४० खण्डोंमें पाया गया था। वह प्रत्येक सत्य युगमें पाया जाता है और कलियुग के अन्ततक उसका बहुतसा अंश लुप्त भी हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यास-पदधारी देवता बदल जाते हैं। वे वेदके भाष्यरूपी पुराण-ग्रन्थ प्रकाशित करते हैं। गत द्वापर युगमें दो इतिहास ग्रन्थ, १८ महापुराण, १८ पुराण, १८ उपपुराण, १८ औपपुराण तथा इस चौकड़ीयुगमें ४६ हजार तन्त्रग्रन्थ, जिनको आगमशास्त्र कहते हैं और जिनमें सब श्रेणीकी विद्याओंका समावेश है, प्रकाशित हुए थे। उनका थोड़ा सा भी अंश इस समय नहीं मिलता। इसी तरह ऋषिप्रणीत अनेक सूत्रग्रन्थ जैसे— गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, कल्पसूत्र, शिक्षासूत्र, संगीतसूत्र, स्मार्तसूत्र (धर्मशास्त्र) आदि तथा ज्योतिष, आयुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग आदि की संहिताएँ सत्ययुगके आरम्भमें विद्यमान थीं; उनका महदंश भी इस समय उपलब्ध नहीं होता।

यह एक शंका हो सकती है कि, जब मन्वन्तर बदल जाने पर मनुष्योंकी सभ्यता और दैवी शृंखला बदल जाती है और कल्पनान्तर में सारी सृष्टि ही बदल जाती है, तब वेद और वेदसम्मत शास्त्रोंकी नित्यता कैसे स्वीकार की जाय? इसका समाधान पहलेही कर दिया गया है कि, ब्रह्माकी रात्रिमें चतुर्दश भुवनोंमें से ग्यारह भुवनोंका प्रलय हो जाता है और शेष तीन भुवन बच जाते हैं, जिनको ब्राह्म-स्वर्ग कहते हैं, उनमें वेद और वेदसम्मतशास्त्र स्थित रहते हैं। अतः उनकी शब्द और भावरूप से नित्यता स्वतः सिद्ध है। वे ही नित्य वेदशास्त्र अनेक ऋषियोंके द्वारा सत्ययुगमें मृत्युलोकमें प्रकाशित होते और कलियुगके अन्ततक लुप्त हो जाते हैं उनकी यह परम्परा सदा बनी रहती है। जैसे—ब्रह्माण्डकी सब कर्म शृंखला देवपदधारी व्यक्तियोंके द्वारा परिचालित होती है, वैसे ब्रह्माण्डकी ज्ञान शृंखला देवलोकवासी नित्य ऋषियोंके द्वारा परिचालित होती है। जबतक एक ब्रह्माण्ड जीवित रहता है, तबतक उसकी ज्ञान-राशि भी ऊपरके देवलोकोंमें सुरक्षित रहती है। चारों युगों और उनके अन्तयुगोंके अनुसार दैवी-शास्त्र, आसुरीशास्त्र, अध्यात्मशास्त्र, विज्ञानशास्त्र आदिका आविर्भाव-तिरोभाव इस मृत्युलोकमें यथा देशकाल हुआ करता है क्योंकि ज्ञान नित्य है।

इसी शास्त्रीय-विज्ञान के अनुसार पूज्यपादश्रीजी महाराजने वेदाविर्भावका यह तैलचित्र तैयार कराया है। श्रीभगवती सरस्वती पाँच धाराओंमें पाँच प्रकारकी पुस्तकोंके रूपमें ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें तेजो रूपमें प्रवेश कररही है. यह इस चित्रमें दिखाया गया है। उपर्युक्त विज्ञानको ठीक समझकर इस चित्रपर जो जिज्ञासु दृष्टि डालेंगे, वे अलौकिक आनन्दको प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इनके अतिरिक्त वर्णाश्रमबन्ध, धर्मकल्पवृक्ष, श्रीमहालक्ष्मीका आविर्भाव, आदि मानवसृष्टिकी पुण्य भूमि, तपोबनका आश्रम, वेदके काण्डत्रय पञ्चोपासनाके अनुसार भगवान्‌विष्णु, शम्भु, महा-शक्ति, सूर्यदेव और गणपतिके भी बड़े-बड़े चित्र बनवाये गये है, जो दर्शनीय और ध्यान-मनन करने योग्य हैं इन सबका विवरण 'सूर्योदय' के श्रीजीके स्मारक विशेषांकमें प्रकाशित किया गया है

ये सब मौलिक दार्शनिक और औपनिषदिक चित्र हैं तदतिरिक्त सैंकड़ों पौराणिक और ऐति-हासिक चित्रोंका श्रीजीने संग्रह किया है। श्रीमद्भाग-वत, महाभारत. रामायण. तन्त्र और अन्यान्य पुराणोंकी प्रधान-प्रधान घटनाओंके चित्र, १५-१६वी शताब्दीसे लेकर अबतक के और इससे भी पहलेके धर्माचार्यों, साधु-सन्तों और महात्माओंके चित्र तथा मुख्य मुख्य प्राचीन और आधुनिक देशी नरेशोंके चित्र श्रीजीके इस संग्रहमें संगृहीत हुए हैं। चित्र-संग्रहमें श्रीजीने पक्षपात नहीं किया है। आर्यमहा-पुरुषोंकी तरह महात्मा ईसा, महम्मद पैगम्बर आदि अन्य धर्मोके प्रवर्तकोंके चित्रोंको भी संग्रहालयमें स्थान दिया गया है। श्रीजीके भक्तोंने श्रीजीके अनेक चित्र बनवाकर इस संग्रहालयमें रख दिये हैं. उनमें श्रीमान् रणजीतसिंहजीका बनवाया हुआ विशाल तैलचित्र, जो श्रीजीके लीलासंवरणके १५-२० दिन पूर्व उतारा गया था और उपदेशक महाविद्यालयके हालमें शोभा पा रहा है, श्रीजीका अन्तिम चित्र है, दर्शनीय है और हमें कर्मयोगके लिये प्रेरणा दे रहा हैं। हिन्दूधर्मका समुज्वल स्वरूप प्रकट करनेवाला ऐसा चित्रसंग्रह भारतमें अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता। श्रीजीका यह दर्शनीय और मननीय पुरुषार्थ बेजोड़ है।

आर्यमहिलाके नियम

१—आर्यमहिला' श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्‌की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्‌के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण-सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखमें प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १८ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समय पर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तर में विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंट के पतेमें आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है:—

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५) प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५) ,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०) ,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०) ,,
,, १/२ ,,	१२) ,,
,, १/४ पृष्ठ	८) ,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको 'आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

काशी-पुस्तकमालाके

स्थायी ग्राहक तथा एजेन्टोंके नियम।

(१) कोई भी सज्जन एकबार केवल १) देकर इस पुस्तकमालाका स्थायी ग्राहक बन सकते हैं।

(२) स्थायी ग्राहकोंको काशी-पुस्तकमाला तथा आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकोंपर प्रतिशत बीस रुपया कमीशन दिया जाता है।

(३) कोई भी नई पुस्तक प्रकाशित होते ही स्थायी ग्राहकोंको उसकी सूचना दे दी जाती है। ग्राहकके लिखनेपर उनकी पुस्तक बीस प्रतिशत कमीशन कमकर वी० पी० से भेज दी जाती है। परन्तु ग्राहकोंका मनिआर्डरद्वारा मूल्य भेजकर पुस्तकें मंगानेसे वी० पी० खर्च बचेगा।

(४) अन्य ग्राहकोंकी तरह स्थायी ग्राहकोंको भी डाकव्यय पैकिङ्ग आदि देना पड़ता है।

(५) स्थायी ग्राहकोंको अपना नाम पूरा पता, पोस्ट तथा रेलवे स्टेशन आदि साफ साफ लिखना चाहिये।

(६) २५) रुपयेकी पुस्तकें मँगानेसे पुस्तकोंके मूल्यका एक-चौथाई अग्रिम भेजना आवश्यक होगा।

(७) कोई भी सज्जन ५०) रुपयेकी पुस्तक एक साथ खरीदनेसे इनका एजेन्ट बन सकते हैं।

(८) एजेन्टोंको २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला-कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

मुद्रक—सर्वोदय प्रेस, महाबीर, बनारस।

श्री आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की मासिक मुखपत्रिका

आर्य-महिला

कार्तिक सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ७ | अक्तूबर १९५१

श्रीमती सुन्दरी देवी. एम. ए., बी. टी.
प्रधान सम्पादिका :—

जनम सिराने अटके अटके ।
ना हरि भजे न तीरथ सेवे,
रहे बीच ही लटके ॥
राजकाज सुत-पितु की डोरी,
बिन विवेक फिरौं भटके ।
कठिन जो ग्रन्थि परी माया की,
तोरी जात न झटके ॥
कोटिक कला काछि दिखराये,
लोभ न छूटत नटके ।
सूरदास शोभा क्यों पावे,
पिय विहीन धन मटके ॥

विषय-सूची

अद्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥

कार्तिक सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ७ | अक्टूबर १९५१

प्रार्थना

लज्जा मोरी राखो श्याम हरी।
कीनी कठिन दुःशासन मोसे,
गहि केशन पकरी॥
आगे सभा दुष्ट दुर्योधन
चाहत नग्न करी।
पाँचों पाण्डव सब बल हारे
तिनसौं कछु न सरी॥
भीषम द्रोण विदुर भये विस्मित
तिन सब मौन धरी।
अब नहिं मात पिता सुत बाँधव,
एक टेक तुमरी॥
बसन प्रवाह किये करुनानिधि,
सेना हार परी।
सूरश्याम सब सिंह शरण लई,
कहा शृगाल डरी॥

"सूरदास"

आत्मनिवेदन।

दैवी विजय

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-नायक सर्वशक्तिमान् भगवान्की कृपासे अन्ततः हिन्दूकोडबिल वर्तमान संसदके लिये स्थगित हुआ। प्रधान मंत्री श्रीजवाहरलाल नेहरूने जिसे पास करनेके लिये अपनी सरकार की बाजी लगादी थी, और घोषित किया था कि "यदि हिन्दूकोडबिल पास नहीं हुआ तो हमारी सरकार पदत्याग करेगी" उन्हीं नेहरूजीने ता० २६ सितम्बरको संसदमें घोषित किया कि "समयका अभाव होनेसे इस समय हिन्दूकोडबिल पर विचार नहीं होगा।" यद्यपि इस संसद्का एक अधिवेशन फेब्रुअरी १९५२ में होनेकी सम्भावना है, परन्तु उसमें भी इस बिलके पास होनेकी सम्भावना नहीं है। इस प्रकार हिन्दूजातिके लिये कोढ़रूपी वह बिल वर्तमान संसदके लिये तो समाप्त हो गया, परन्तु नेहरूजी तथा उनकी सरकारने पदत्याग नहीं किया यह नेहरू-सरकारकी करारी हार तथा दैवी पक्षकी विजय है।

हिन्दूकोडबिल सम्बन्धी संग्राम देवता एवं असुरोंका संग्राम था, इस कारण यह तात्कालिक विजय आसुरी सम्पत्तिपर दैवी सम्पतिकी विजय है। इसका सर्वोपरि श्रेय हिन्दूजातिके सर्वमान्य नेता वीतराग त्याग-तपोमूर्ति पूज्यपाद श्रीकरपात्रीजीको है, जिन्होंने सर्दी और गर्मी, दिन और रात एक-समान करके भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तक सतत पर्यटन करके प्रगाढ़ मोहनिद्रामें पड़ी हुई हिन्दूजातिको जगाकर इस बिलके विरोधका प्रचण्डतमरूप बना दिया। देशके कोने-कोनेसे सहस्रों नर-नारियोंका दल इस बिलके विरोधके लिये दिल्ली पहुँचने लगा और उग्र विरोध तथा प्रदर्शन प्रारम्भ हो गया। पूज्य स्वामी करपात्रीजी तथा महिलाओं पर पुलिस द्वारा निष्ठुरतासे लाठी प्रहार कराया गया, इसके विरोधमें अखिल भारतीय महिला-संघकी प्रधान मन्त्रिणी लखनऊकी श्रीमती शान्तादेवी वैद्या तथा मद्रासके प्रसिद्ध नेता स्वामी सत्यानन्दजी ने आमरण अनसन प्रारम्भ कर दिया। इतना संगठित एवं जोरदार विरोध देखकर समयाभावका बहाना बनाकर इस समयके लिये हिन्दूकोड बिल स्थगित करनेके लिये नेहरू सरकारको विवश होना पड़ा। परन्तु यह भूलना नहीं चाहिये कि यह सामयिक विजय है, अन्तिम विजय अभी प्राप्त करना शेष ही है। इससे यह भी सिद्ध है कि यदि हिन्दूनर-नारी संगठित हो जायँ, तो नेहरू-सरकार नहीं संसारकी किसी सरकारमें यह शक्ति नहीं कि हमारी इच्छाके विरुद्ध कोई कानून हम पर लाद सके। अतः अब सावधान होकर अपने कर्तव्य-पालनमें तत्पर हो जाना चाहिये। अब केवल दो महीनेके पश्चात् आम चुनाव होने जारहा है। इसी चुनाव पर पांच वर्षों के लिये भारतका भविष्य तथा हिन्दूकोडका भी भविष्य निर्भर करता है। श्रीनेहरूजीने दिल्लीमें गांन्धी-जयन्तीके उपलक्षमें आयोजित ता० २ अक्टुबरको सभामें तथा कांग्रेस के सभापतिपदसे भाषणमें हिन्दूकोड सम्बन्धी जो विचार प्रकट किये हैं, उनसे यह निश्चय है, कि कांग्रेस यदि पुनः अधिकारमें आवेगी तो सबसे

पहले हिन्दूकोडबिल ही पास करेगी और नेहरूजी अपना हठ अवश्य पूरा करेंगे। गत चार वर्षोंके कांग्रेसी-शासनमें जनता जितनी त्रस्त हुई, वह प्रत्यक्ष ही है। अन्न-वस्त्र-आवासके लिये हाहाकार अब भी मचा ही है! नेहरूजीके धर्महीन-राज्यमें धर्म-हीनता एवं नास्तिकताके प्रचारसे जनताका घोर नैतिक पतन हुआ, फलत. नेहरूजीके शासनके इन चार वर्षोंमें जितनी चोरी, लूट, हत्या डकैती, चोरबाजारी भ्रष्टाचारका बोल-बाला रहा है, उतना इससे पहले नहीं था, दैवी प्रकोपके फलस्वरूप जितनी अनावृष्टि, अतिवृष्टि जल-प्लावन, भूकम्प, तथा टिड्डियोंकी उत्पति जितनी इन वर्षोंमें हुआ, उतना इधर कभी नहीं हुआ था। जनताके इन सब अगणित विपत्तियोंके कारण तथा उनके निराकरणकी ओर नेहरूजीका कभी ध्यान नहीं जाता न उनको इसकी कोई चिन्ता ही है। उनको तो हिन्दूकोडबिल पास करनेकी अपनी हठपूर्ण प्रतिज्ञा पूरी करनेकी चिन्ता है। और यद्यपि अबतक उन्होंने साम्प्रदायिकताकी कोई परिभाषा नहीं की है, परन्तु साम्प्रदायिकता मिटाने की चिन्ता से वे बेचैन हैं। अतः जनता पर इस समय अपनी जाति एवं देशकी रक्षाकी भारी जिम्मेदारी है। इस चुनावमें यदि ईश्वरसे डरनेवाले धार्मिक चरित्र-वान् सदाचारी और सच्चे व्यक्तियोंको उम्मेदवार खड़ा किया जाय और ऐसेही व्यक्तियोंको मत दिये जायँ जो हिन्दूकोडबिल रद करने एवं गोहत्या बन्द करनेकी प्रतिज्ञा करें तो ये सारी विपत्तियाँ दूर हो सकती हैं और रामराज्यका स्वप्न पूर्ण नहीं तो किसी अंशमें सत्य हो सकता है। अबतो सरकार बनाना जनताके हाथ है, चाहे वह रावण-राज्य बनावें या रामराज्य बनावें, अतः यदि रामराज्यकी स्थापना चाहते हैं, तो ऐसे ही लोगोंको अपना प्रतिनिधि बनाकर संसद तथा विधान-सभाओंमें भेजें तभी दैवी सम्पत्तिकी अन्तिम विजय होगी, हिन्दूकोडबिल रद्द होगा, गोहत्याका कलङ्क दूर होगा, दैवी प्रकोप सब दूर होंगे, और भारत पुनः जगद्‌गुरु बनकर जगतको सुख-शान्तिका सन्देश सुनावेगा।

दहेज प्रथा—

कन्यादान-सम्बन्धी शास्त्रीय आज्ञाके अनुसार कन्याको यथाशक्ति उत्तम वस्त्र एवं आभूषणोंसे आभूषित कर कन्यादान करनेका विधान है, और इसी सम्बन्धसे वर-कन्या को विविध उपहार देनेका भी विधान है, परन्तु कन्याके पिताकी इच्छा एवं शक्तिके अनुसार ही यह सब करना था। हिन्दूजातिका पतन होते-होते ऐसा भी समय आगया कि कुछ लोग कन्याविक्रय करनेवाले बन गये और भी कन्याएँ बेची जाती हैं तथा जिन लोगोंको हीनकुल होनेके कारण अथवा वृद्ध होनेके कारण विवाहके लिये कन्याएँ नहीं मिलती हैं, ऐसे लोग कन्याओंका क्रय करके विवाह करते हैं। इससे भी आगे कुछ ऐसी प्रथा चली है कि अब वरोंका विक्रय होने लगा है। शिक्षित और धनवान् घरके लड़कों का तिलकके रूपमें दस, बीस, पचास हजार तक मूल्य चूकाना पड़ता है। पिता-माताकी प्रबल इच्छा रहती है कि उसकी प्यारी पुत्री धनी घरमें शिक्षित वरसे व्याही जाय जिससे वह आजीवन सुखी रहे, इसके कारण ऐसी परिस्थिति हो गयी है कि अच्छी कुलीन किन्तु धनहीन लोगोंकी कन्या चाहे कितनी गुणवती रूपवती हो विवाह होना असम्भव होगया है। कितने ही लोग धनाभाव

के कारण पुत्रीका विवाह करनेमें असमर्थ हो जाते हैं और अपनेको असमर्थ पाकर मृत्युका आलिङ्गन करते हैं। अभी एक हबड़ाके बङ्गाली सज्जनने अपनी दो पुत्रियोंका विवाह न कर सकने के कारण मुगलसरायमें आकर आत्म-हत्या करली। यह शिक्षित-समाजके लिये कितनी लज्जाकी बात है। आज सब ओर सुधार एवं प्रगतिकी चर्चा है, परन्तु ऐसी कुरीतियोंके सुधारकी ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। जहाँ अपने स्वार्थका प्रश्न आता है, सारा विवेक एवं विचार पर पानी फिर जाता है। यदि आजका शिक्षित युवक-समाज इस ओर ध्यान दें, तो हिन्दूजातिका यह कलङ्क दूर कर सकता है। आज तो कन्याविक्रयसे अधिक वर-विक्रयका बाजार गर्म है। इसके कारण कितने ही पिताको आत्महत्या करनी पड़ती है, कितनी वधुओंको भी मृत्युके मुखमें झोंक दिया जाता है और भी अनेक अनर्थ होते हैं। क्या शिक्षित युवक-समाज इस ओर ध्यान देगा?

——

दाम्पत्यजीवन और संयुक्त कुटुम्ब।

(ले०—श्रीमान् पं० किशोरीदासजी वाजपेयी)

कुटुम्ब हमारी एक सामाजिक संस्था है, जिसमें सार्वजनिक जीवन बितानेकी हमें प्रारम्भिक शिक्षा मिलती है; सहयोग, सहिष्णुता तथा त्यागकी भावना-का विकास होता है। मानवताके विकासकी ये सीढ़ियाँ हैं। पाश्चात्य आँधीके झोंकेसे हमारा यह कल्पवृक्ष हिल गया है, डगमगा गया है। विवाह होतेही नवदम्पती पृथक् घर बसानेकी धुनमें मस्त हो जाते हैं और वैसे माता-पिता भी यह सोचने लगे हैं कि विवाहके बाद अलग ही रहना ठीक है।

इस प्रकारकी धारणामें रस नहीं, तत्व नहीं और जीवन नहीं है। कौटुम्बिक जीवनमें ये सब बातें हैं, यदि समुचित संचालन हो। सुन्दर कौटुम्बिक जीवन के कुछ लाभ देखिए।

संयम और रस—कौटुम्बिक जीवनमें 'गुरुजन-लाज-लगाम' लगी रहती है, जिससे तारुण्य-तुरंग इधर-उधर बहकने नहीं पाता, ऐसा भाग नहीं सकता कि काबूमें न रहे। यदि घोड़ा सवारके वशमें न रहे, तो मजा क्या? जीवन खतरेमें पड़ जाय! सवारके अधीन घोड़ा रहना चाहिये। यदि तारुण्यने हमें अपने वशमें कर लिया और कहींका कहीं ले जाकर पटक दिया तो जानके लाले! गुरुजनोंकी लाज तारुण्य-तुरंगकी लगाम समझिए। नवदम्पतीको सुसंस्कृत कुटुम्बमें एकदम छूट नहीं मिलती, कुछ नियंत्रण या अंकुश रहता है। फलतः जबर्दस्ती संयम हो जाता है। जो लोग कौटुम्बिक जीवनसे अलग होकर दाम्पत्य जीवन बिताते हैं, वे इस नियन्त्रण और संयमसे वंचित हो जाते हैं। फलतः बे-लगाम तारुण्य-तुरंग इस वेगसे दौड़ता है कि इनके जीवनसे आ- बनती है। शरीरके पोषकतत्त्व एकदम क्षीण हो जाते हैं और फलतः क्षय (तपेदिक) आ घेरता है। आजकल नवयुवकों और नवयुवतियोंमें यह जो भयंकर बीमारी दिखायी

देती है, उसका एक मुख्य कारण संयमका अभाव है। संयम-हीनताके साथ-साथ पोषक सामग्रीका न मिलना 'कोढ़की खाज' समझिए।

कुटुम्बमें नवदम्पतीको जहाँ संयमकी महौषधि मिलती है, वहीं आनन्दका आधार भी है। 'अति-परिचयाद् अवज्ञा' की बात प्रसिद्ध है। नवदम्पती प्रारम्भमें, चार-छः वर्ष, या दस-पाँच वर्ष, यदि कम मिल पाते हैं, तो उनमें परस्पर आकर्षण रहता है। एक दूसरेसे मिलनेको, बात करने को, सदा उत्सुक रहता है। कहीं कभी थोड़ा बहुत बात करनेका अवसर मिल गया तो उससे तृप्ति नहीं होती। चाह बनी रहती है, जो रसका आधार है। प्रेम बना रहता है और फिर दस-पाँच वर्षमें तो वास्तविक दाम्पत्य आ जाता है। वह वैसा आकर्षण समाप्त होनेसे पहले स्थिर स्नेहकी नीव लगा जाता है। दोनोंके बीचमें, शिशुके रूपमें, एक नया आकर्षण आ जाता है। अब वह तरल प्रेम गम्भीरता पकड़ जाता है, गहरा या घना हो जाता है। चंचलता जाती रहती है।

जो लोग कुटुम्बसे अलग होकर दाम्पत्य-जीवन बिताते हैं, वे इस आकर्षणसे बंचित हो जाते हैं। सदा साथ रहनेसे एक दूसरेके प्रति बहुत जल्दी आकर्षण समाप्त हो जाता है। रूखापन बढ़ता है, एक दूसरेके अवगुण देखने लगता है, झगड़ा शुरू होता है और दाम्पत्य दानव बनकर जीवनको खा जाता है।

बीमा—कौटुम्बिक जीवन एक सुन्दर और स्वाभाविक बीमा भी है। एक कुटुम्बमें चार सदस्य कमानेवाले हैं, और आठ पोष्य, तो सब बराबरीसे रहते हैं। जो जितना कमाता है, कुटुम्बके प्रमुखको सौंप देता है, अधिकसे अधिक दस प्रतिशत अपने दाम्पत्य जीवनके निजी खर्चको अपने पास रखकर कुटुम्बका मुखिया फिर यथावश्यक सब खर्च करता है। सबके योग-क्षेम तथा बच्चोंकी शिक्षा आदिका वह समुचित प्रबन्ध करता है। कुटुम्बका कोई सदस्य कुछ अधिक कमाता है, तो उसके बच्चोंपर अधिक व्यय न होगा और कम कमानेवालेके बच्चोंपर कम नहीं। अधिक कमानेवालेकी प्रतिष्ठा अवश्य अधिक होगी और स्वाभाविक भी है। यदि कोई सदस्य बेकार हो जाता है, या दिवङ्गत हो जाता है, तो उसके बाल-बच्चेके लालन-पालन तथा शिक्षा आदिका प्रबन्ध उसी तरह होगा, जैसा कि उसके सामने उसके उपार्जित द्रव्यके सहयोगसे होता। विधवा भी बराबरीकी हैसियतसे रहेगी। यह उत्तम कुटुम्बकी अवस्था है।

जो लोग कौटुम्बिक जीवनसे अलग हो जाते हैं, ये इस स्वाभाविक बीमेका लाभ नहीं उठा सकते। तुरन्त उन्हें चिन्ता हो जाती है – यदि मैं न रहा, तो मेरी प्रेयसीका या सन्ततिका क्या होगा! वह घबड़ाकर किसी बीमा कम्पनीमें जीवनबीमा कराता है। दुर्घटना होनेपर कभी कभी उस रुपयेके मिलनेमें बड़ी कठिनाई होती है। कभी कभी प्राप्त द्रव्यको भी विधवासे दूसरे चंटलोग भी झटक लेते हैं और वह बेचारी अपने बच्चोंको लिए दुर्दशा भोगती रहती है। भाई-बन्धु सब अलग-अलग अपनी-अपनी डफली बजाते हैं। कोई मदद नहीं करता। इसकी शिक्षा ही नहीं मिली, नींव ही नहीं लगी!

फलितार्थ—इन पंक्तियोंका फलितार्थ यही कि हमारी कुटुम्बसंस्था अत्यन्त उपयोगी चीज है। अशिक्षा या कुशिक्षाके कारण इसमें कुछ दोष अवश्य आ गये हैं, जिन्हें दूर कर देना चाहिए। संयुक्त कुटुम्ब-सा सरस जीवन और कहाँ।

सतीकी शक्ति ।

(लेखक--स्वामी श्रीरामसुखदासजी)

रात्रिका समय था । प्रजाके सुख-दुःखका निरीक्षण करनेके लिए राजा भोज सामान्य कर्मचारीके रूपमें घूम रहे थे । घूमते फिरते एक झोपड़ीके पास पहुँचे । उससे दरिद्रता टपक रही थी । वहाँ उन्होंने देखा एक पुरुष अपनी पत्नीकी जाँघ पर शिर रखकर सो रहा था । पत्नी जाग रही थी—इसी बीचमें उसका अबोध शिशु हाथके तथा पेटके बल सरकता हुआ अंगीठीके पास पहुँच गया । आग जल रही थी । परन्तु वह सती नारी पतिदेवके जग जानेके भयसे उनका शिर नहीं हटा सकी और न मुँहसे ही कुछ बोली । बच्चा प्रज्ज्वलित अंगारोंको अपने कमल सरीखे हाथोंमें लेकर खेलता रहा, अग्निदेव शीतल हो गये थे । भोजके आश्चर्यकी सीमा न रही । वे लौट आये ।

राजाभोजने 'हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः' की समस्या पूर्तिके लिए लब्ध-प्रतिष्ठ कवियोंका आवाहन किया । अधिक परिमाणमें पुरस्कार भी रक्खा गया था, परन्तु पुरस्कारका अधिकारी कोई नहीं निकला । अन्तमें कविवरेण्य श्री कालिदासने उस समस्याकी पूर्ति इस प्रकार किया—

सुतं पतन्त प्रसमीक्ष्य पावके,
न बोधयामस पतिं पतिव्रता ।
पतिव्रताशापभयेन पीड़ितो,
'हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः ॥

अपने पुत्रको अग्निमें गिरता हुआ देखकर भी पतिव्रताने अपने पतिको नहीं जगाया । उस पतिव्रता नारीके भयसे अग्निदेव चन्दन-पङ्ककी भाँति शीतल हो गये ।

राजाभोजकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही । पुरस्कार श्रीकालिदासको मिला ।

× × ×

ऐसी सती नारियाँ धन्य हैं । उनकी तपस्या तथा अलौकिक शक्तिके सामने कौन नतमस्तक नहीं हो सकता ! ऐसी ही पावन देवियोंके चरण-रजके स्पर्शमात्रसे दुःखोंका सर्वनाश हो जाता है । इनके द्वारा स्थायी आनन्द-मङ्गलकी उपलब्धि तो होती ही है, प्राणी भव-बन्धनसे भी मुक्त हो जाता है ।

लज्जा ।

सती-जीवनमें श्रीके साथ ही ह्री (लज्जा) का मधुर विकाश नयनगोचर होता है । मनुष्योंमें लज्जा देवीका भाव है । स्त्रीजातिमें देवी-भाव नैसर्गिक (स्वाभाविक) होनेसे लज्जा भी नैसर्गिक है । सतीत्वके उत्कर्षके साथ साथ देवीभावका अधिक विकास होनेसे ह्रीकी भी पूर्णता होती है । सती स्त्री स्वभावतः ही विशेष लज्जाशील हुआ करती है । लज्जाका कारण अनुसन्धान करनेसे यही प्रतीत होता है कि पशुधर्मके प्रति मनुष्योंकी जो स्वाभाविकी घृणा है, वही लज्जाका कारण है । मनुष्य-प्रकृतिमें पशुत्वका आवेश अनुभव करनेसे ही लज्जाका उदय हुआ करता है । पशुप्रकृतिमें

लज्जा नहीं है। पशु निर्लज्ज होकर आहार, निद्रा, मैथुनादि करता है। प्रकृतिसे अतीत ब्रह्मपदमें स्थिर होनेपर भेदभाव होनेसे लज्जारूप पाश नहीं रहता है। इस सबसे अधम व सबसे उत्तमकोटिके सिवाय बीचकी कोटिमें लज्जाका विकास रहता है। दिव्यभावके विकासके साथ-साथ लज्जाका तिरोभाव होता है। आहार, निद्रा, मैथुनादि कार्य स्थूलशरीरसे साक्षात् सम्बन्ध रखनेके कारण पशुभाव युक्त हैं, परन्तु जीवनरक्षा व बंश-रक्षाके लिए इन कार्यों के अत्यावश्यकीय होनेके कारण आर्यमहर्षियोंने आध्यात्मिक भावोंके साथ मिलाकर इन कार्यों मेंसे पशुभावका प्रभाव नष्ट करनेका प्रयत्न किया है, तथापि दिव्यभावयुक्त प्रकृतिमें स्वभावतः इन सब कार्योंको करते हुए लज्जा आती है। पुरुषमें दैवीभाव (प्रकृतिभाव) से पुरुषभावकी अधिकता होनेसे पुरुपको इन सब कार्यों में स्वभावतः लज्जा कम होती है, परन्तु स्त्रीमें पुरुषभावसे दैवीभाव (प्रकृतिभाव) की अधिकता होनेसे स्त्रीको इन सब कार्योंमें स्वभावतः अधिक लज्जा होती है। पुरुष-प्रकृतिके साथ स्त्री-प्रकृतिका यही प्रभेद है। इसी प्रभेदको रखते हुए दोनों अपने अपने अधिकारके अनुसार पूर्णताको प्राप्त कर सकते हैं। पुरुष अपने ज्ञान-स्वरूपकी ओर अग्रसर होता हुआ अन्तमें भेद-भाव विस्मृत कर लज्जारूप पाशको काट सकता है, परन्तु स्त्रीकी पूर्णता तभी होगी जब स्त्री अपने लज्जामूलक दैवीभावको पूर्णतापर पहुँचावेगी। दैवीभावकी पूर्णता पातिव्रत्यकी पूर्णतामें होती है, इसलिए लज्जाशीलता सतीधर्मका लक्षण है। निर्लज्जा स्त्री सती नहीं हो सकती। लज्जा स्त्री-जातिका भूषण है, इसके न होनेसे स्त्रीका स्त्रीभाव ही नहीं रहता है। लज्जाके बलसे स्त्री अपने पातिव्रत्य-धर्मका भी ठीक ठीक पालन कर सकती है। स्त्रीको पुरुषका अधिकार या पुरुषकी तरह शिक्षा प्राप्तकर अथवा वैसा आचार ग्रहण कर निर्लज्ज बननेसे उसकी बड़ी भारी हानि होती है।

पाश्चात्य देशोंमें स्त्री-पुरुषका साथ बैठकर भोजन, आलाप और एकत्र भ्रमण आदि आचार विद्यमान हैं, इसी कारण वहाँकी स्त्रियोंमें निर्लज्जता व पुरुषभाव अधिक है और पातिव्रत्यकी महिमापर भी दृष्टि कम है। उत्तम सतीका क्या भाव है और पतिके साथ सहमरण कैसा होता है, पाश्चात्यस्त्रियाँ स्वप्नमें भी इन सब बातोंका अनुभव नहीं कर सकती हैं। आर्य्य शास्त्रोंमें पातिव्रत्यके बिना स्त्रीका जीवन ही व्यर्थ है। इसीलिए अवरोध-प्रथा (parda System) आदि के द्वारा आर्यनारियोंमें लज्जाभावकी रक्षाके लिए भी प्रयत्न किया गया है और इसीलिए स्त्री-पुरुषोंका एकत्र भोजन व भ्रमण आदि आर्यशास्त्रोंमें विधान नहीं किया गया है।

आजकल धर्मशिक्षाहीन पाश्चात्य सभ्यताभिमानी विकृत मस्तिष्क कोई कोई मनुष्य अवरोधप्रथा (परदा-प्रणाली) को नष्ट करके स्त्रियोंको निर्लज्ज बनाना, उनसे पुरुषोंके भीतर निरंकुश भावसे भ्रमण या नृत्य, गीत, वाद्य व नाटकादि कराना और विदेशीय नर-नारियोंकी तरह उनका हाथ पकड़कर डोलते रहना या हवाखोरी करने जाना आदि बातोंको सभ्यताका लक्षण और स्त्रियोंपर दया करना समझते हैं तथा इससे विपरीत सनातन अवरोध-प्रथाको उनपर अत्याचार अन्याय व निर्दयता समझते हैं। विचार करनेसे उनकी यह धारणा नितान्त भ्रममूलक सिद्ध होगी। किसी पर दया

करना अच्छा है और सदैव अच्छा है, परन्तु जिस दयाके मूलमें विचार नहीं हैं, उससे कल्याण न होकर अकल्याण होता है । स्त्री-जातिपर दया करना अच्छा है, किन्तु जिस दयामें पातिव्रत्यका मूल ही कट जाय वह दया दया नहीं है, अपितु महापाप है । घरकी स्त्री निर्लज्ज बना बाहर न निकालनेमें निठुरता होती है यह लाञ्छन भी भ्रम-मूलक ही है। आर्य्यशास्त्रोंमें स्त्री-जातिका जितना गौरव माना गया है, वैसा किसी भी देश या शास्त्र-में नहीं है। अन्य देशोंमें तो स्त्री, पुरुषके विलासकी सहचरी है, किन्तु आर्यजातिमें वह समस्त गार्हस्थ्य धर्ममें सहधर्मिणी व अर्द्धांशभागिनी है । वह जगदम्बा स्वरूपिणी है, जिसकी प्रत्येक दशाका दिव्यभाव से पूजन करना साधकको मुक्तिलाभ तक प्रदान कर सकता है । देवीभागवतमें सतीपूजा, गौरी या कुमारीपूजा सर्व-कामप्रदायक कहा गया है। ऐसी शक्तिमयीदेवी जिनको जगदम्बाका रूप समझ-कर शास्त्रोंने पूजा करनेकी आज्ञा दी है, उनको निर्लज्जा होकर बाजारमें घूमनेकी आज्ञा या रूप बनाकर पुरुषोंके सामने नाटक करनेकी आज्ञा शास्त्र नहीं दे सकता। रत्नकी रक्षा उसे सुरक्षित छिपा रखनेमें ही होती है, वह बाजारमें फेकनेवाला वस्तु नहीं। हाथ पकड़कर भ्रमण करना भी उचित नहीं।

काम आदि वृत्तियाँ सङ्गके द्वारा ही अधिक हुआ करती है। अतः इस प्रथासे निर्लज्जता और विषयासक्ति वृद्धिकी स्पष्ट संभावना है।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए कि यह बात पूर्णतः सत्य है, कि जिस स्त्रीको अनेक पुरुष काम-भाव व काम-दृष्टिसे देखते हैं, उसके पातिव्रत्यमें अवश्य ही हानि होती है। मानसिक व शारीरिक बिजलीकी शक्ति नेत्रसे, स्पर्शसे या केवल चित्तके द्वारा ही अन्य व्यक्तिपर अपना प्रभाव डाल कैसे उसे प्रभावित किया जा सकता है, मेसमेरीजम और हिप्नोटिजिम विद्याके द्वारा यह भलीभांति सिद्ध हो चुका है। इन सब कारणोंसे अवरोध-प्रथाको तोड़कर स्त्रियोंको निर्लज्जा होकर पुरुषोंके बीच रहने और बाजार घूमनेका प्रचलन अतीव बुरा है।

देवीभागवतके तीसरे स्कंधके २० वें अध्यायमें शशिकला नामकी एक कन्याने अपने पितासे स्वयम्बरप्रथाके विरोधमें कहा—

'नाहं दृष्टिपथेराज्ञां गमिष्यामि पितः किल।
कामुकानां नरेशाणां गच्छन्त्यन्याश्च योषितः ॥
धर्मशास्त्रे श्रुतं तात ! मयेदं वचनं किल।
एक एव वरो नार्य्या निरीक्ष्यः स्यान्न चापरः ॥
सतीत्वं निर्गतम् तस्या या प्रयाति बहूनथ।
संकल्पयन्ति ते सर्वे दृष्ट्वाऽऽमे भवतामिति ॥
स्वयं वरे स्रजं धृत्वा यदा गच्छति मण्डपे।
सामान्या सा तदा जाता कुलटेवाऽपरा वधूः ॥
वारस्त्री विपणिं गत्वा यथावीक्ष्य नरस्थितान् ।
गुणागुण परिज्ञानं करोति निजमानसे ॥
नैकभावा यथा वेश्या वृथा पश्यति कामुकम् ।
तथाहं मण्डपे गत्वा कुर्वे वारस्त्रिया कृतम् ॥

हे पिता मैं राजाओंके नेत्रोंके सामने नहीं आऊँगी, क्योंकि व्यभिचारिणी स्त्रियाँ ही कामुक पुरुषोंकी दृष्टिके सामने आती हैं। धर्मशास्त्रोंमें मैंने सुना है कि पतिव्रता स्त्री केवल अपने ही पतिको देखेगी, अन्यकी ओर वह दृष्टिपात नहीं करेगी। जो अनेक लोगोंके दृष्टि-पथमें आती है, उसका पातिव्रत्य नष्ट हो जाता है। जो राजकन्या हाथमें

वरमाला लेकर स्वयम्बर सभामें आती है, उसको वेश्याकी तरह सभीकी स्त्री बनना पड़ता है, इत्यादि।

वेदमें भी अवरोधप्रथाकी पुष्टि की गयी है। ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके चौथे अध्यायके २६ वें सूक्तमें लिखा है—

यो वाँ यज्ञभिरावयोऽधिवस्त्रा वधूरिव।

'अवगुण्ठन वस्त्रद्वारा आवृता बधूकी तरह जो यज्ञके द्वारा आवृत है, इत्यादि। रामायणमें भी अवरोध-प्रथाका वर्णन है—

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतैराकाशगैरपि,
तामद्य सीतां पश्यान्ति राजमार्गगता जनाः॥

जिस सीतादेवीको आकाशसे उड़नेवाले पक्षी भी नहीं देख पाते थे, उसी देवीको आज राजमार्गके पथिकगण भी देखने लगे।

रावणके मृत होनेके पश्चात् मन्दोदरी रणक्षेत्रमें रुदन करती है—

'द्रष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो मामिहऽनवगुण्ठिताम्।
निर्गतां नगरद्वारात्यदभ्यामेवाऽऽगतां प्रभो!॥
पश्येष्टदार! दारांस्ते भ्रष्टलज्जाऽवगुण्ठनान्।
बहिर्निष्पचितान्सर्व्वान् कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि॥

हे स्वामिन् मैं तुम्हारी महिषी होनेपर भी अवगुण्ठन (परदा) त्यागकर आज नगरसे बाहर पैदल आयी हूँ। यह देखो तुम्हारी सब स्त्रियाँ आज लज्जा और अवगुण्ठनको त्याग बाहर आ गयी हैं, ऐसा देखकर भी तुम्हें क्रोध क्यों नहीं हो रहा है?

इन सब प्रमाणोंसे निश्चय होता है, कि पर्दा-प्रणाली प्राचीनकालमें थी और उसकी अब भी वैसी-ही आवश्यकता है। मालविकाग्निमित्र व मृच्छ-कटिक आदि काव्य और उपन्यास ग्रंथोंसे भी हजार वर्ष पहले यहाँ पर अवरोध-प्रथा प्रचलित थी, ऐसा सिद्ध होता है। सीता, सावित्री और दमयन्ती आदि सतियाँ जो अपने पतिके साथ बाहर निकली थीं, उसका विशेष कारण था। घटनाचक्र-से उनको ऐसा करना पड़ा था। साधारण प्रथाके अनुकूल वह आचार नहीं था, इसलिए अनुकरणीय नहीं। हाँ, यहाँ इतना मान लेनेमें कुछ हर्ज नहीं कि अतिकठिन पर्देकी रीति जो आजकल कहीं कहीं जेलखानेकी तरह प्रचलित है और जिससे स्त्रियोंके आवश्यक विकाशमें बाधा होती है वह आर्य्य-रीति नहीं है। अतिकठिन पर्दा, यवनसाम्राज्यके आपत्तिपूर्ण कठिन दिनोंकी देन है, वह त्याग करने योग्य है।

स्त्री-धर्म।

(श्री पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी, काशी)

प्रकाशमान दीपपर पतंग जलते हुए तो सभी जगह देखे जाते हैं, पर बुझे हुए दीपपर पतंगका जलना हिन्दमें ही दृष्टिगोचर होता है।

शास्त्रकारोंने स्त्रियोंके सत्कारका बड़ा माहात्म्य कहा है और उनके अनादरमें बहुतसे दोष दिखलाए हैं। स्त्रियोंका पूजन भोजन-वस्त्रालङ्कारादिसे सदा करना चाहिये, उन्हें सुशोभित या हर्षित रखना

चाहिये। जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है, वहाँ देवता रमण करते हैं उस कुलका बड़ा कल्याण होता है, जहाँ उनकी पूजा नहीं होती वहाँकी सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। जहाँ कुल-बधुएँ सोच करती हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है।

स्त्रियोंसे धर्म, अर्थ, काम तीनों सधता है। प्रार्थना की जाती है कि 'स्त्री मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्। तारणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्। दुर्गसंसारका सन्तरण भी मनोरमा कुलोद्भवा मनोवृत्तानुसारिणी स्त्री द्वारा होता है। अतः विवाहके समय वरसे प्रतिज्ञा करायी जाती है कि 'धर्मे अर्थे कामे च अनया सह वर्त्तितव्यम्। धर्म अर्थ और कामका आचरण इसके साथ करना। आज भी यज्ञादि कोई भी धर्मकार्य्य बिना स्त्रीके हो नहीं सकता।

स्त्री और पुमान् का सम्बन्ध ऐसा है कि बिना एकके धर्म-निरूपणके दूसरेके धर्मका सम्यक्रूपसे निरूपण नहीं हो सकता। अतः पहिले यही विचार करना है कि स्त्री और पुमान् शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है?

स्त्यै शब्दसंघातयोः। शब्द तथा संघातके अर्थमें 'स्त्यै' धातुका प्रयोग होता है। स्त्यै+ड्ट्+ङीप=स्त्री। भगवान् भाष्यकार कहते हैं, अधिकरणसाधनालोके स्त्री, स्त्यायत्यस्याम्= गर्भ इति' कर्तृसाधनश्च पुमान् सूते पुमान् इति' लोकमें अधिकरण साधना स्त्री है। जिसमें गर्भ संघातरूपको प्राप्त हो, उसीको स्त्री कहते हैं, और पुमान् कर्तृ साधन है, पुमान् ही प्रसव करता है। यही स्त्री और पुमान्की विशेषता है, पुमान् शुक्रका स्थापन करनेवाला है। स्त्रीमें शुक्र-शोणितका संयोग होता है, वह गर्भ धारण करती है। जो गर्भ धारण नहीं करती उसमें स्त्रीत्वका साफल्य नहीं है। आज भी स्त्रीसमाजमें वन्ध्याका आदर नहीं है।

इस भेदपर मनन करनेसे पता चलता है कि इसके मूलमें अध्यात्म कारण निहित है। प्रकृति और पुरुषके योगमें ही यह सृष्टि है। इनमें प्रकृति जड़ और पुरुष चेतन है। भगवान्ने भगवद्गीतामें कहा है, मेरी माया-त्रिगुणात्मिका प्रकृति (महद्ब्रह्म) समस्त भूतोंकी योनि है, उसीमें मैं (उत्पत्तिके कारणरूप) बीजको स्थापन करता हूँ। सभी योनियोंमें जो मूर्तियाँ पैदा होती हैं, उन सबकी गर्भ धारण करनेवाली (माँ) मेरी प्रकृति है, और मैं गर्भाधान करनेवाला (बीजप्रद) पिता हूँ। इसीलिये प्रकृति और पुरुषका पूजन हमारे यहाँ स्त्री और पुमान्के रूपसे होता है, क्योंकि वही मातृशक्ति और पितृशक्ति जगत्में स्त्री और पुमान् रूपसे व्यक्त हुई। श्रुति भगवती कहती हैं 'रुद्रोनर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः।'

जो सम्बन्ध प्रकृति और पुरुषमें है, वही स्त्री और पुमान्में भी है। पुरुष स्वतंत्र है, प्रकृति उसके आश्रित है। पुरुष एक रूप है, प्रकृति बहुरूपा है, पुरुष चेतन है, प्रकृति जड़ है, पुरुष शुद्ध है, प्रकृति अशुद्ध है पुरुष प्रेरक है, प्रकृति नियोज्य है। इन बातोंको मनमें रखकर यदि स्त्री-धर्मको देखा जाय, तो उसकी उपादेयता मनमें आ सकेगी। जो इन बातोंको नहीं समझते, या नहीं समझना चाहते वे ही स्त्रीधर्ममें अत्याचार, निर्दयता, गुलामी और स्वार्थपरायणताका स्वप्न देखते हैं।

स्त्री और पुमान्में भोक्ता और भोग्यभाव स्वाभाविक है, पर सभी देश और सभी कालमें भोक्-

भोग्य रूपिणी प्रवृत्तिको स्वच्छन्दगामिनी होने देना श्रेयस्कर नहीं माना गया है। इसीलिये विवाहकी प्रथा है और वैवाहिक जीवनके लिये सुस्थिर नियम हैं। अनुभवहीन कामान्ध व्यक्ति रूपपर ही मोहित हो जाते हैं। जिन जिन बातोंका विचार होना विवाहमें आवश्यक है, उनपर उनकी दृष्टि भी नहीं जाती, विशेषतः कन्याको वरान्वेषणकी स्वतन्त्रता देनेमें उनके शीलकी रक्षाका दुर्घट व्यापार है। अतः हिन्दुओंमें यह प्रथा है कि माता-पिता जिसे उचित समझें उसके हाथ कन्यादान करें, और वह उसी वरकी यावज्जीवन सेवा करे और उसके मरनेपर भी उसका उल्लंघन न करे।

जिस किसी भाँति जीवनका निरर्गल करनाही मानवसमाजका उद्देश्य नहीं हो सकता। उसके लिए केवल वर्त्तमान जन्मको ही सब कुछ मान लेना और परलोकपर दृष्टिपात न करना अस्वाभाविक है। स्त्री जड़ प्रकृतिकी व्यक्त मूर्ति है, उसके गुरुदेव चेतनकी व्यक्त मूर्ति उसके पतिदेव है, अतः पतिकी शुश्रूषामें ही वह कृतार्थ हो सकती है। पतिकी पूजाका अवसर मिलना भाग्य है, गुलामी नहीं है।

वस्तुस्थितिपर परदा डालना भी प्रवञ्चना है। सच्ची बात तो यह है कि स्त्रीका अवयवसंगठन ही ऐसा है कि वह स्वभावसे अपावन है, उसमें स्वतंत्रताकी योग्यता नहीं है। विवाहके द्वाराही उसके ये दोष मिट सकते हैं। जब वैदिकमन्त्रसे उसका पति 'प्राणस्ते प्राणं सन्दधामि' अस्थिभिस्तेस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचात्वचं सन्दधामि' प्राणोंसे तेरे प्राणोंको मांससे मांसको, अस्थिसे अस्थिको, त्वक्से त्वक्को मिलाता हूँ, उच्चारण करके अपने शरीरको उसके शरीरसे एक कर देता है, तब उसके शुक्रधारणसे वह अशुद्ध नहीं होती। वह उसकी शरीर हो जाती है। इसीलिये विवाह-संस्कारको ही स्त्रीके लिये उपनयन स्थानीय माना है, पतिसेवाको ही गुरुकुलवास बतलाया है और घरके काम-काजको ही अग्निहोत्र कहा है। फलतः जिन लोगोंके यहाँ विवाह-संस्कार वैदिक विधिसे होता है, उनके यहाँ न विवाहविच्छेद (Divorce) हो सकता है और न स्त्री पतिके मरने पर भी उसका उल्लंघन (विधवा-विवाहादि) कर सकती है।

जो लोग स्त्रियोंको पिता, पति, तथा पुत्रसे स्वतन्त्र करनेका आन्दोलन उठाते हैं, वे स्त्री-जातिका हित नहीं कर रहे हैं. पिता, पति और पुत्रसे स्वतंत्र होकर स्त्री अपने शीलकी रक्षा नहीं कर सकती। वह बलवती होनेपर भी पुरुषपर बलात्कार नहीं कर सकती, पुरुषही उसपर बलात्कार कर सकता है। अतः शीलकी रक्षाके लिए वह सदा पिता, पति तथा पुत्रके परतंत्र अपनेको बनाये रक्खे।

पाश्चात्योंके वे मानसिक दास यहाँके सतियोंकी महिमा समझनेमें असमर्थ हैं, जिनकी आँखें आज भी समाचार-पत्रोंमें सतियोंका समाचार सुनकर नहीं खुलतीं। किसी मुसलमान कविने कहा है कि— 'प्रकाशमान दीपपर पतंग जलते हुए तो सभी जगह देखे जाते हैं, पर बुझे हुए दीपपर पतंगका जलना हिन्दमें ही दृष्टिगोचर होता है'।

जिन पाश्चात्यदेशोंमें भर्ता प्राप्तिके लिए कन्यायें लालायित हुई फिरती हैं, और उनके ऐसे प्रयत्नका उपहास husband-hunting नाम रखकर किया जाता है, पुरुष यावज्जीवन गार्हस्थ्य सुखसे वञ्चित रहना पसन्द करते हैं, पर विवाहकी बेड़ी अपने पैरोंमें डालना नहीं चाहते, उन देशोंके कुप्रथाओंका

प्रचार पाश्चात्योंके मानसिक दास इस देशमें सुधारके नामपर नये नये स्वनिर्मित काननों द्वारा किया चाहते हैं।

यहाँ बेटे चाहे बिनब्याहे रह जायँ, पर बेटियोंका विवाह तो करनाही पड़ेगा। अंधी, लँगड़ी और लूली कन्याओंका विवाह हो ही जाता है। अपने अभाग्यसे विधवा हो जायँ, यह दूसरी बात है, पर एक बार भर्ता तो उनकी पहुँचके भीतर आ ही जाता है। यहाँ कन्याएँ बूढ़ी होकर नहीं मरतीं, भारतकी विधवाओंसे पाश्चात्य देशोंमें बूढ़ी कन्याओंकी संख्या कहीं अधिक है।

स्त्रीधर्म लिखनेके पहिले बहुतसी बातें प्राक्-कथनके रूपमें कहनी हैं, इस छोटेसे लेखमें उन सबका समावेश दुःसाध्य व्यापार है, तथापि इतनी बात अत्यन्त दृढ़तापूर्वक धारण करने योग्य है कि सर्वज्ञ शास्त्रकारोंने जो धर्म जिसके लिए लिखा है, तदनुसारही आचरण करनेसे इहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण होगा। अल्पज्ञ जीवोंके हरावागमें सदा धोखाही धोखा रहता है। असख्य वर्षों के किये हुए अनुभव तथा नियमोंको बरसाती मेढ़कोंके आवाजपर तोड़ देना बुद्धिमानी नहीं है।

भारतकी ललनाओंको स्वधर्मका ज्ञान परम्परासे चला आता है, यदि बाहरी विकारोंसे वे बचाई जा सकें, तो उन्हें धर्मशास्त्रके वचन सुनाकर शिक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं है। स्वधर्मका ज्ञान इन्हें पुरुषोंसे अधिक है। पुरुष ही स्त्रियोंको विषयगामी बनाते हैं। यही उनके सर्वनाशके कारण हैं। ये अपना सुधार न करके स्त्री-सुधार करने चलते हैं। परम आवश्यकता इस बातकी है कि पहिले पुरुष स्त्रीधर्मको समझें, जानें और तब कल्याणके लिये प्रयत्न करें।

नारीधर्म—चाहे बालाहो, चाहे युवती, चाहे बूढ़ी, पर स्त्री कोई काम घरका भी स्वतन्त्रतापूर्वक न करे। बचपनमें पिताके वशमें रहे जवानीमें पतिके वशमें और पतिके मरनेपर पुत्रोंके वशमें रहे, स्त्री कभी स्वतंत्र न रहे, पिता, भर्ता और बेटोंसे स्त्री पृथक् रहना न चाहे, उनके विरहसे स्त्री, पति और पिता दोनोंके कुलको निन्दनीय बनाती है! स्त्री पतिके नाराज होनेपर भी प्रसन्न रहे, घरके कामोंमें होशियार रहे, घरके सामानको साफ सुथरा रक्खे और हाथ दबाकर खर्च करे। पतिकी आराधना देवताकी भाँति करे। स्त्रियोंको भर्त्तासे पृथक् कोई यज्ञ नहीं है, न दान है, न उपवास है। पति-सेवासे ही उसकी स्वर्गलोकमें पूजा होती है। पाणिग्रहण करनेवाले पतिका अप्रिय, पतिलोक चाहनेवाली स्त्री उसके जीतेजी या मरनेपर भी कदापि न करे। सब कुछ रहते हुए भी पवित्र फलफूल और मूल खाकर दिन बिता दे, और एक पतिके ही सर्वोत्तम व्रतकी कल्पना करे। बालबच्चोंकी लालचसे जो स्त्री भर्ताका उल्लंघन करती है, वह इस लोकमें निन्दित होती है, और उस पुत्रद्वारा उसे स्वर्ग भी नहीं होता। दूसरेसे पैदा हुआ लड़का पुत्र नहीं है, और न दूसरेकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ ही पुत्र हो सकता है। साध्वी स्त्रीके लिए दूसरे भर्ताका कोई विधान नहीं है। अपने अपकृष्ट पतिको छोड़कर जो दूसरे उत्कृष्टको सेवा करती है, वह इस लोकमें निन्दित होती है और परपूर्वा कहलाती है। व्यभिचारसे स्त्रीकी इस लोकमें निन्दा होती है और मरनेपर वह गीदड़ी होती है और उसे कुष्ठादि रोग हो जाते हैं। जो मनसा वाचा कर्मणासे पतिका उल्लंघन नहीं करती, उसे पतिलोक प्राप्त होता है और भले लोग उसे

साध्वी कहते हैं। इस भाँति स्त्री धर्मसे मन, वाणी और देहका संयम करके इस लोकमें अतुलकीर्ति और मरनेपर पतिलोक प्राप्त करती है, यह स्त्री-धर्म है, इसका पालन सभी साध्वी स्त्रियोंको करना चाहिये और पुमानोंको भी ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिसमें उनका धर्म सुरक्षित रहे।

भगवान् व्यासने कहा है कि स्त्रियाँ इसलिए धन्य हैं कि पतिपर प्रेम होना उनके लिये स्वाभाविक है और इसीसे उनकी सद्‌गति होती है। श्री-गोस्वामीजीने एक अर्धालीमें स्त्री-धर्मका सार दे दिया है—

एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा

— —

नेहरूजीकी साम्प्रदायिकता।

इधर कुछ दिनोंसे प्रधानमंत्री श्रीजवाहरलाल नेहरूजीके जो भाषण होते हैं उनमें हिन्दू कोडबिल एवं साम्प्रदायिकताका प्रमुख स्थान रहता है। ता० २ अक्टूबरको नयी दिल्ली में उन्होंने भाषण दिया था, उसपर प्रयागसे प्रकाशित 'अमृत बाजारपत्रिका'के सुयोग्य सम्पादकने अग्रलेखमें जो अपना विचार प्रकट किया है. और जो उक्त पत्रके ६-१०-५१ के अङ्कमें छपा है, उसका अविकल अनुवाद यहाँ 'आर्य-महिला' के पाठक-पाठिकाओं के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जाता है। —सम्पादिका।

श्री नेहरूने साम्प्रदायिकताके विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी है। उन्होंने अक्तूबर २ को नई दिल्लीमें अपने १०० मिनटके भाषणका अधिकांश भाग सम्प्रदायवादी और उनकी प्रगतिका प्रकटरूपसे विरोध करनेमें खर्च किया। उन्होंने घोषणा की कि जहाँतक उनका सम्बन्ध है वह अपने जीवनके अन्तिम श्वास तक साम्प्रदायिकताके विरुद्ध सरकारके भीतर और आवश्यक हुआ तो बाहर दोनों मोर्चे पर युद्ध करेंगे।

अपने उसी भाषणमें घोर हर्षध्वनिके बीच उन्होंने यह भी घोषित किया कि हिन्दूकोडबिलका उन्होंने समर्थन किया है और आगे भी करते रहेंगे तथा उसे स्वीकृत करानेमें तत्पर रहेंगे। प्रधानमंत्रीको कौन विश्वास दिलायेगा कि नवीन साम्प्रदायिकताके जन्मका हिन्दू कोडबिल एक साधन है जिसके विरुद्ध वह खड्‌गहस्त हैं।

यदि साम्प्रदायिकतासे लड़ना और उसे उन्मूलन करना अभीष्ट है तो उन समस्त उपकरणोंका जो इसके जनक हैं दमन करना होगा।

हिन्दूकोड बिल ऐसा ही एक उपकरण है। धर्मनिरपेक्षिताका सच्चा अर्थ कभी जनसाधारणमें प्रचारित नहीं हुआ। धर्मनिरपेक्ष राज्य ईश्वरविहीन राज्य नहीं है। किन्तु धर्मनिरपेक्ष राज्य वह है जिसमें सभी धार्मिक विश्वासोंका समानरूपसे सम्मान है तथा समस्त पूजा-स्थान यथा मंदिर, मस्जिद, गिरजा आदि एक समान पूज्य हैं।

धर्मनिरपेक्षिता एक सम्प्रदायका दूसरे सम्प्रदाय-से विशेषांतर नहीं करती और समस्त लोगोंको चाहे उनका धार्मिक विश्वास कुछ भी हो, कानूनकी दृष्टिमें उन्हें समान समझनेका विश्वास दिलाती है। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष राज्य भारतकी दार्श-

निकता तथा संस्कृतिकी उच्च परम्परापर आधारभूत है। हिन्दू कोडबिल इस प्रकारके धर्म निरपेक्षिता की विचार भावना पर ठेस ही नहीं पहुंचाता है; प्रत्युत इसका प्रस्तुत स्वरूप तो परस्परमें अंतर डालनेका एक प्रयोग-सा है। हिन्दू कोडबिलके सबल समर्थन से नेहरूसरकारने सब तरहकी साम्प्रदायिक तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियोंको धर्म निरपेक्षिताका भ्रान्ति-मूलक अर्थमें प्रचार करनेमें सहायता दी है। जैसे अनीश्वरवादिताकी स्थापना और धार्मिक आचार विचार तथा पूजा-प्रार्थनाकी संकटमयी स्थितिको प्रचारित करना।

जैसा कि दुर्भाग्य था हिंदू कोडबिलका पार्लमेंन्ट द्वारा नेतृत्वकरनेका भार एक ऐसे मंत्रीको सौंपा गया जो हिन्दूधर्म तथा समाजमें कोई भी गुण अथवा सत्यता नहीं पाता। सारी स्वतन्त्रताओंमें हिन्दूजन अपनी धार्मिक स्वतंत्रताका अत्यन्त आदर करते हैं। चिर-सम्मानित परम्पराका स्वतंत्ररूपसे अनुगमन करना उन्हें अत्यधिक मान्य है।

धार्मिक कारणोंसे हिन्दूकोडबिलके विरोधियोंके लिये यह समझना अत्यन्त सरल था कि—धार्मिक आचार-विचारके पालनको स्वतंत्रता जो अत्यन्त प्रिय था इस बिल द्वारा संकटजनक स्थितिमें है। अपढ़ जनतामें साम्प्रदायिक भावनाओंको उत्तेजित करना भी उनके लिये अत्यन्त सरल था। यदि श्री नेहरू तनिक ठककर विचार करें तो तुरंत उनकी समझमें आजायगा कि हिन्दू और सिखोंमें साम्प्रदायिकताको बार-बार उत्तेजित करनेके अपराधका अधिकांश हिन्दूकोडबिलके विधाताओंका उत्तरदायित्व है। साम्प्रदायिकताको बढ़ानेमें अभी हालमें कुछ और उपकरणभी कारण हुये हैं। वह श्री नेहरू सरकारकी पाकिस्तान सम्बन्धी नीति है। यह नीति पर्याप्तरूपसे वास्तविकतासे दूर है तथा यथेष्टमात्रामें सदा भारतके अनुकूल भी नहीं रही है। सारी बातोंके पूर्व हमारी सरकारकी पराराष्ट्रनीति भारतके अनुकूल होनी चाहिये। किंतु पाकिस्तानके संबंधमें जिसने हमारे देशके विरुद्ध अपनी शत्रुताको छिपानेका भी कभी यत्न नहीं किय। नेहरूसरकारने जब तब उत्तेजक अनुकूल नीतिका व्यवहार किया है।

जब कभी कराँचीका हितसाधन होता है वह नई दिल्लीसे मसौदा करके निश्चिन्त हो जाता है। जब कभी कराँचीका लाभ होता है वह मसौदेको बिना किसी तरहकी हिचकके तोड़ देता है।

स्वयं प्रधानमंत्रीने यह स्वीकार किया है कि अल्प संख्यक सम्बंधी मसौदा जो नई दिल्लीमें हुआ था तोड़ दिया गया है। पिछले चार-पाँच माससे पूर्वी बंगालके हिन्दू अल्पसंख्यकोंको निकाल भगानेका क्रम फिर जोरोंसे चल रहा है और हमारी सरकार एक असहाय दर्शककी तरह यह सब देख रही है।

जेहाद आंदोलनके शांत होनेका कोई चिह्न नहीं दीखता और अभी हालमें पाकिस्तानप्रेसने एक पैशाचिक कार्यक्रमका आविष्कार किया है। पाकिस्तानके विदेशी प्रतिनिधियोंकी यह एक कटु प्रवृत्ति है कि भारतको बदनाम करना और उसकी सरकार तथा जनताके विरुद्ध तरह-तरहकी झूठी अफवाह फैलाना। किंतु वास्तविकता कुछ और होनेके कारण पाकिस्तानके सम्बंधमें कड़ी नीतिके व्यवहारकी देशव्यापी माँगका होना नितांत स्वाभाविक ही है।

भारतकी हितरक्षाके ध्यानसे दृढ़ नीतिकी आव-

श्यकताका अनुभव करना साम्प्रदायिक नहीं है। हढ़नीतिको आवश्यक समझना युद्धलिप्सा भी नहीं है। पाकिस्तानके साथ शांतिस्थापन करनेमें हमारी सरकार महत्वपूर्ण राष्ट्रीय हितको बलि देकर भी प्रयत्नशील है।

फासिस्ट देशके साथ जो कि पाकिस्तान निस्सन्देह है, शांतिस्थापनका कार्य उदारता और त्यागकी नीतिसे संभव नहीं है। एक और भी कारण है जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है। प्रधानमंत्रीने अपनेको समझा रक्खा है कि अब मुसलमान ऐसी स्थितिमें नहीं हैं कि वे साम्प्रदायिकतामें पड़ें-केवल कुछ हिन्दू और सिख इस विषको फैलानेका यत्न कर रहे हैं। क्या सारे साम्प्रदायिक मुसलमान भारत छोड़कर चले गये हैं। क्या इसीलिये मद्रासकी कांग्रेसपार्टीने मुस्लिमलीगके साथ चुनाव सम्बंधी भाईचाराका नाता जोड़ा है, किंतु श्रीनेहरू प्रधानमंत्री होनेके नाते हम सबोंसे कहीं अधिक अच्छी तरह जानते हैं कि कुछ मुस्लिम साम्प्रदायिक, भेदियाका काम करने लगे हैं।

देश इस बातका विश्वास चाहता है कि नेहरूसरकार इस भयावह स्थितिसे पूर्णतया अभिज्ञ हैं।

राजमाता

[लेखक—श्रीशिवनाथ दुबे]

मगध-नरेश विन्दुसार चकित थे। रूप-यौवन-सम्पन्न अनेक रानियाँ थीं उनके अन्तःपुरमें। उनके एक-एक अंग जैसे विधिके करोंसे अत्यन्त सावधानीसे निर्मित हुए थे। धरातलपर वैसा सौंदर्य और भी कहीं होगा, इसकी उन्हें कल्पना भी नहीं थी, पर इस नाइनको देखतेही नरपतिकी धारणा धूलमें मिल गयी।

इस नाइनके लावण्यमयी तुलनामें उनके अन्तःपुरकी सौंदर्यमयी देवियाँ नगण्य हैं। इस अनुपम सौंदर्यराशिके सामने तो वे पानी भरती दीखती हैं। इसके मृग सरीखे नेत्र, इसकी अकल्पनीय सुन्दर मुखाकृति, नागिन सरीखे लम्बे सटकारे काले केस, और गोल-गोल बाहें, किन-किन अंगोंको देखें वे। जहाँ दृष्टि जाती, नेत्र वहीं टिक जाते, हटनेका नामही नहीं लेते। नाइनके रोम-रोममें चुम्बकीय आकर्षण प्रतीत होता था। इतनाही नहीं, नाइन परम धार्मिक थी, वह सरल थी और थी सच्चरित्र एवं सद्गुण-सम्पन्ना, उसका रूप गंगाकी उज्ज्वल धाराकी भाँति पवित्र दीख रहा था। नन्दपुत्र विन्दुसार अधीरहो रहे थे, पर वे क्षत्रिय थे। अधम कृत्य उनसे सम्भव नहीं।

नाइन नरेशके केश काट रही थी और नरेशकी दृष्टि नाइनके पैरोंपर थी। सुकोमल अरुण पल्लव सरीखी उसकी पदांगुलियां और छोटे-छोटे मनोहर नख, नरेशकी आँखोंमें धँसते जा रहे थे। कितना लावण्य है इसमें? नरेश मन-ही-मन सोच रहे थे।

"मैं परम सन्तुष्ट हूँ।" केश छूँट जानेपर विन्दुसारने नाइनसे कहा "तुम्हें जो इच्छाहो मांग लो।"

नाइनके शरीरसे पसीना छूटरहा था। वह कांप रही थी। बड़े साहससे उसने कहा 'बचन एक होता है महाराज।'

'निश्चय।' नरेशने दृढ़तासे उत्तर दिया' मैं बचनसे नहीं मुकर सकता।'

'आप मेरे पति बनें।' समस्त साहस एकत्रकर उसने कह दिया।

अहं राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः कथं मया सार्द्धं समागमो भविष्यति (दिव्यावदान अः)।

'क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्तसे नाइनका सम्बन्ध कैसे सम्भव है?' नरेशने घबराकर कहा, पर उनका हृदय नाइनके लिये तड़प उठा था।

'मैं नाइन नहीं।' उसने भयमिश्रित स्वरमें मधुर कण्ठसे कहा।

'फिर तुम कौन हो?' आश्चर्य और प्रसन्नतासे प्रश्न किया विन्दुसारने।

'महाराज'! निवेदन किया उसने 'चम्पानगरीके दरिद्र ब्राह्मणकुलमें जन्म लिया है मैंने। शैशवमें ही मुझे देखकर एक ज्योतिषीने कह दिया यह राजरानी और राजमाता होगी। ज्योतिषीके उक्त कथनने मेरे पिताके मनपर अमिट प्रभाव डाला। यौवनमें मैं पूर्णतया पदार्पण भी नहीं कर पायी कि धन-लोभसे इस पाटलिपुत्रमें उन्होंने मुझे आपके करोंमें प्रदान कर दिया। आपने मुझे अन्तःपुरमें भेजा तो रानियाँ मुझे देखकर ईर्ष्यासे जल उठीं।'

'रानियोंके ईर्ष्याका कारण?' प्रश्न कर बैठे नरेश विन्दुसार।

'मैं ठीक नहीं कह सकती महाराज।' वह बोली 'जगत्‌का मुझे अनुभव नहीं, पर मुझे लगा कि मेरे रूपभयमे—कि कहीं आपकी आसक्ति उनसे हट न जाय—उन्होंने मुझे नाइनका काम सीखनेका आदेश दिया।'

नरेशने देखा, प्रफुल्ल नलिनीकी भाँति उसके अनिन्द्य मुखपर भय छा गया है और उसके नेत्र-कोरसे अश्रु बिन्दु लुढक रहे हैं। नरेशने उसे अपनी ओर खींच लिया।

...शुभमुहूर्तमें वह मगध नरेश विन्दुसारकी सहधर्मिणी बनी। वह दरिद्र कन्या पटरानी हुई। महारानी हुई। पाटलिपुत्रकी राजमाता हुई।

महाराजअशोक इन्हींके पुत्र थे।

नारी अधिकारोंकी हत्या।

श्रीपण्डित नेहरूजीसे नम्रनिवेदन

अत्यन्त खेदके साथ लिखना पड़ता है कि प्रजातंत्र और समानाधिकारके ढोंगके साथ नारी-अधिकारोंकी हत्याकी जारही है। हिन्दूकोड जैसे घृणित बिलों द्वारा उन्हें समानता, स्वतंत्रताके विषग्रास देकर उनका परोक्ष वध किया जारहा है। उनके लिये ऐन्द्रजालिक बिल बनाकर समानाधिकारके

नामपर वेश्यावृत्तिका बाजार खोला जारहा है। यह नारी जातिके कल्याणका मार्ग नहीं उसे अपनी स्वाभाविक सच्चरित्रतासे अंधगर्तमें गिरनेका मार्ग है। नारियोंको मूर्ख बनानेका प्रयत्न है। यदि कांग्रेस या अन्य पार्टियोंको देखा जाय तो यह नारी अधिकारोंकी हत्याके प्रयत्नमें ही लगी हैं।

अभी पत्रोंमें मैंने कांग्रेसके अध्यक्ष और भारतके महामन्त्रीका वक्तव्य पढ़ा, वे इस बातपर खेद प्रकाश करते हैं कि चुनावकी उम्मीदवारीमें बहुत कम महिलायें आई। कांग्रेसाध्यक्ष पं० नेहरूजीकी खेद-प्रकाश सम्बंधी सहृदयतामें मुझे संदेह नहीं, किन्तु मैं उनसे नम्र निवेदन कर देना चाहती हूँ कि भारतीय महिलाओंके लिये कांग्रेसने दरवाजे बन्दकर रक्खे हैं। कांग्रेसी पदलोलुप स्वार्थी पुरुषोंने उन्हें आनेही नहीं दिया। उत्तरप्रदेशका हाल मैं जानती हूँ। जहां कांग्रेसी बहनें जो जेलयात्रायें भी कर चुकी हैं, ईमानदार शिक्षिता विदुषी हैं। वे पुरुषों द्वारा आवेदनपत्र देनेसे रोकी गईं। जो इनलोगोंके इतना कहनेके बावजूद भी आवेदनपत्र देने गईं वे भी डांट-फांटकर लौटा दी गईं। जिन्होंने आवेदनपत्र दिये. रुपये भी जमा किये उनको जिलोंसे ही षड्यंत्र करके निकाला गया।

पार्लामेंट्रीबोर्डकी भी लीला विचित्र है। जितने मेम्बर हैं. वे सभी उम्मीदवार हैं, उन्होंने अपने लिये अच्छी अच्छी सीटें छांट ली, उन सीटोंपर यदि किसी विदुषी महिलाने आवेदन किया तो वह सर्वोच्च विदुषी होती हुयी भी हटा दी गई।

अभी कुमारी हरदेवी मलकानी एम० ए० एम० यड० मान्ट्रडिप, सम्पादिका 'नारी' लखनऊ आई थीं। उन्होंने जेलयात्रा भी की है। काशीके जिस क्षेत्रसे नारी जागृति और अभ्युत्थानका कार्य किया था उस क्षेत्रकी श्रद्धापात्र भी थीं, उनकी सीट श्री कमलापति त्रिपाठीने हड़प कर ली। त्रिपाठीजी बोर्ड के सर्वेसर्वा हैं। 'घरका परसैया अँधेरीरात' उन्होंने चरितार्थ की। ऐसे कार्य बोर्डके अन्य मेम्बरोंने भी किये हैं। पार्लामेंट्रीबोर्डसे कोई स्त्री ली भी नहीं गई।

एक स्त्रीने आवेदनपत्रभी दिया था उसपर बड़ी चख-चख चली। पार्लामेंट्रीबोर्ड-वालोंने कहा कि वह बोर्डमें आकर अपनी सीट भी छाँटने लगेंगी। वह न तो बोर्डमें ली गई न उन्हें सीटही दी गई। वे कांग्रेसीजामा पहने रोती हुई लौट आईं।

चुनाव सम्बंधी महिलाओंकी निर्णायिका या सर्वेसर्वा श्री उमाजी नेहरू हैं। वे महिलाओंसे प्रतिज्ञा लेती हैं कि तुम्हें हिन्दूकोडका समर्थन करना होगा। देहलीकी एक मीटिंगमें हिन्दूकोडकी शर्त रक्खी, और कानपुरकी श्रीमती ताराजीने तलाकका आनंद बताया, जिसके विरोधमें कुछ तेजस्वी महिलाओंने फटकारा और बोलनेका समय मांगा, किंतु उन्हें बोलनेही नहीं दिया गया। अब उन सदाचारिणी महिलाओंके रुपये भी जप्त किये जारहे हैं, और उन्हें सीटें भी नहीं दी जारही हैं। वातावरण बड़ा क्षुब्ध है। ऐसी स्थितिमें कौन ऐसी वेगैरत महिला होगी जो कांग्रेसके पास फटकेगी। जो दीनदार ईमानदार सदाचारिणी भारतीय महिलायें हैं उनके लिये कांग्रेसका मार्ग अवरुद्ध है। उन्होंने चाहे जितना राष्ट्रहितका काम किया हो, चाहे जितनी बार जेलयंत्रणायें भुगती हों चाहे जितनी विदुषी हों, उनके लिये कोई गुन्जाइस

नहीं रक्खी गई अब महिलायें आयें तो कैसे आयें? ऊपरसे कांग्रेस अध्यक्षका खेदप्रकाश करना यह तो नारीजातिकी विडम्बना, मूर्खता और अयोग्यताकी दुहाई देना है। मैं इसबातको मानती हूं कि कांग्रेसाध्यक्षके हृदयमें नारीजातिका सम्मान है। वे सच्चाईसे चाहते हैं कि नारियोंको अधिकार दिये जांय, किंतु कांग्रेसी स्वार्थी पदलोलुपोंके कारण उनकी कुछ चलती भी नहीं। उन्होंने कुछ प्रयत्न भी किया, किंतु कांग्रेसी कुणापपर बैठे हुये पार्लामेंट्रीबोर्डके गृद्धोंने छोटी-छोटी चिल्होंको चोंच मारकरही भगा दिया।

अभी देहलीमें हिन्दूकोड स्थगित होनेके बाद अनशन तोडनेके चौथेदिन पं० नेहरूजीको अभिवादन करने और कोडस्थगनपर धन्यवाद देने गई थी। उन्हें मेरे प्रति वात्सल्य भी था और झुंझलाहट भी। उन्होंने बहुत डांटा फटकारा वे बुजुर्ग हैं, मैंने सब सुन लिया, किंतु जब कोड सम्बन्धी समानाधिकारोंकी उन्होंने चर्चा छेड़ी तब मैंने अंजली फैलाकर समानाधिकार माँगे। मैंने कहा कि १७ करोड़ भारतीय नारियोंकी ओर से मैं आपसे समानाधिकारकी मांग कर रही हूँ। हमारे अनुपातके हिसाबसे हमें शासनमें अधिकार दिये जांय। आधी सीटें पार्लामेंटकी और आधी विधानसभाओंकी दी जांय। यह हमारी प्रजातंत्रीय न्याय यांचा है महिलायें हम योग्यसे योग्य देंगी, हजारों बी० ए० एम० ए० शास्त्रिणी पढ़ी-लिखी योग्य दीनदार, ईमानदार महिलायें और कांग्रेसी जेलयात्रिणी महिलायें भी बहुसंख्यक तैयार हैं। हमारे हक हमको दिये जांय, हमारी आनुपातिक संख्या वहां पहुँचे, फिर हम कोड-फोड स्वयं बनालेंगीं। हमारे लिये पुरुषोंको जहमत नहीं उठानी पड़ेगी। यह है हमारा सच्चा प्रजातंत्रीय समानाधिकार। और आप भारतके प्रधानमंत्री तथा कांग्रेसके अध्यक्ष हैं-एक कलमसे हमें यह अधिकार दे सकते हैं। कोडसे तो हमें अधिकार दिला रहे हैं, दे नहीं रहे हैं। शासनमें हमारी सत्ता न होनेसे किसी प्रकारके दिये हुये अच्छे या बुरे अधिकार हमारे लिये घातकही सिद्ध होंगे। अतः आप हमें समानाधिकार शासनसे ही देना प्रारम्भ करें।

इसपर श्री पं० नेहरूजीकी कुछ प्रसन्नता और गंभीरमुद्राको देखकर मैंने 'मौनं स्वीकृत लक्षणं' समझ लिया था। किंतु मैं मनही मन यह समझती थी कि पं० जी के चाहते हुये भी यह न हो सकेगा। कांग्रेस आज लूटू-खाऊ और पदलोलुप पुरुषोंकी संस्था होगयी है। उसमें एक भारी षडयंत्र है वे स्त्रियोंको वेश्या और अपनी पैशाचिक लिप्साका खिलौना बनाना चाहते हैं। वे विदुषी नारियोंको स्वतंत्र मस्तिष्क लेकर आने देना नहीं चाहते। वही आज होरहा है।

अखिल भारतीय महिलासंघने स्वतंत्र होकर चुनाव लड़नेका निश्चय किया था। उसको चुनाव चिन्ह तक नहीं मिलरहा है। निर्वाचनाधिकारी कांग्रेसी इशारोंपर अड़चनें डाल रहे हैं। चिन्ह न मिलनेके कारण महिलासंघका चुनावकार्य रुका पड़ा है। कोई चुनाव सम्बन्धी सुविधा हमें नहीं मिल रही है। यह है कांग्रेसी समानाधिकार का ढोंग। कांग्रेसमें स्त्रियोंका कोई आदर नहीं, सम्मान नहीं, और कोई स्थान भी नहीं।

अंतमें मैं श्री पंडितजीसे फिर अनुरोध कर रही हूँ कि इन बातोंको जरा बारीकीसे देखें और समझें कि हमारे साथ कांग्रेस और कांग्रेसी सरकारका कैसा व्यवहार रहा है और हो रहा है।

शान्तादेवी वैद्या
प्रधान मंत्रिणी
अखिल भारतीय महिला संघ, हसनगंज, लखनऊ।
दि० २६।१०।५१

श्रीभगवद् गीता—द्वितीय अध्याय

(हिन्दी पद्यानुवाद)

श्री मोहन वैरागी

[गतांक से आगे]

(९)

माधव दूर करो भ्रम मेरा
करो दुसह द्विविधासे त्राण।
मुझे बताओ वह शुभ-साधन
जिसमें हो मेरा कल्याण॥

(१०)

मिले मुझे इन्द्रत्व भले-ही
सुख साम्राज्य लोक परलोक।
किन्तु दूर हा! कैसे होगा
मेरे मनका दारुण शोक॥

सञ्जय ने कहा—

(११)

ऐसा कहकर दुखित पार्थ तब
बोले केशवसे हे नाथ।
मैं न करूँगा युद्ध समरमें
रहूँ भले-ही सदा अनाथ॥

(१२)

दुखविह्वल सन्तप्त पार्थसे
बोले तब माधव सोल्लास।
हे राजन् रणमध्य कहायों
अर्जुन हो क्यों व्यर्थ उदास॥

श्री भगवान ने कहा—

(१३)

करते हो सन्ताप व्यर्थका
अपने को बनते सज्ञान।
जीवन तथा मृत्यु ये दोनों
ज्ञानीजन के लिये समान॥

(१४)

वर्तमान थे हम युग युगमें
अमर हमारा है अस्तित्व।
जीते हैं मरनेको हमसब
मरकर पाते हैं अमरत्व॥

(१५)

बाल युवा वृद्धावस्था ज्यों
होती तनुमें प्रकटित लीन।
त्यों देहावसान होनेपर
मिलता मनुज शरीर नवीन॥

(१६)

शीत-उष्ण सुख-दुखकर जितने
इन्द्रियजनित विषय सम्भोग।
अस्थिर नाशवान् हैं सारे
क्षणभङ्गुर उनका उपभोग॥

(क्रमशः)

नारीजातिका विशेष धर्म ।

प्रवृत्ति भावको अन्तःकरणसे नष्ट करके क्रमशः निवृत्ति भावको परिपूर्ण करना धर्मका धर्मत्व है। मनुष्यको छोड़कर नीचेकी श्रेणीके जितने जीव हैं, वे प्रकृति माताकी आज्ञाके वशवर्ती होते हैं। प्रकृतिके अधीन उनकी सारी चेष्टाएँ सदा ही नियमित रहा करती हैं। वे कभी भी प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन नहीं करते। किंतु मनुष्य प्रकृतिपर आधिपत्य रखनेवाला जीव है, अतः उसकी चेष्टा प्रकृतिके प्रतिकूल अनियमित, उच्छृङ्खल और उद्दाम हो जाती है। यह उद्दाम प्रवृत्ति नियमित होकर निवृत्तिका पोषण करे और अन्तमें प्रवृत्तिका लय करके निवृत्तिकी पूर्णता करे इसका नाम धर्म है। यही धर्मका धर्मत्व है! यही धर्मत्व आर्यशास्त्रोंमें विविध धर्मविधि रूपसे प्रकाशमें लाया गया है। अतः जिन विधियोंके द्वारा पुरुष पूर्णपुरुष हो सके, वे सब विधियाँ पुरुषके लिये धर्म हैं और जिन विधियोंके द्वारा नारी पूर्ण नारी हो सके, वे नारीके लिये धर्म होंगी। यहाँ यह बात अच्छी तरह ध्यानमें रख लेनी चाहिये कि पुरुष अथवा स्त्री दोनोंकी ही पूर्णताका रहस्य प्रवृत्तिके नाश और निवृत्तिकी पूर्णतामें ही निहित है। यदि इस सिद्धांत अथवा लक्ष्यके विपरीत कोई विधि कहीं दिखायी पड़े तो उसे अशास्त्रीय, अधर्ममूलक अथवा कपोलकल्पित समझना चाहिये।

आर्यशास्त्रोंमें प्रकृतिकी सत्ता पुरुषसे स्वतंत्र नहीं मानी गयी है। पूर्ण प्रकृति परमात्मामें विलीन रहती है। सृष्टि-दशा परिणाम दशा है, अतः वह अपूर्ण दशा है, मनुसंहिताका वचन है, कि सृष्टिके समय परमात्माने अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके आधेमें पुरुष और आधेमें स्त्री बन प्रकृतिमें ही विराट् सृष्टिकी लीलाका विस्तार किया। श्रुति आदि भी यही कहती हैं, कि जिस समय सृष्टि नहीं रहती है, उस समय परमात्मा एक (अकेले) रहते हैं और सृष्टिदशामें प्रकृति उनमेंसे ही निकलकर समस्त संसारका सृजन करती है और अन्तमें उस लीलाके पूर्ण होनेपर वह पुनः परमात्मामें विलीन हो जाती है। उपनिषदोंसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। बृहदारण्यकोपनिषदमें कहा है—'सृष्टिके पहले परमात्मा एक ही थे अतः रमण न कर सके। उन्होंने द्वितीयकी इच्छा की और स्त्री-पुरुष जैसे मिलकर साथ रहनेका संकल्प किया। इससे परमात्मा दो भागोंमें विभक्त हो स्त्री और पुरुष बन गये इसलिये यह शरीर अर्द्ध चणककी तरह रहता है और विवाहके द्वारा स्त्री इसे पूर्ण करती है। जिससे सृष्टि होने लगती है।

संसार प्रकृति-पुरुषात्मक है। पुरुषमें परमात्मा और स्त्रीमें प्रकृतिकी सत्ता विद्यमान है। पुरुषसे पृथक् होनेपर ही प्रकृति परिणामिनी हुआ करती है। जबतक प्रकृति-परिणाम है तभीतक सुखदुःख मोहात्मक संसार-वृत्तिका लीला-विलास है और उसमें सर्वत्र ही अपूर्णता है। जबतक प्रकृति पुरुषसे पृथक् रहती है, तबतक अपूर्ण ही रहा करती है। इस अपूर्ण जीव प्रकृतिको पूर्णकरके परमात्मामें लय करनेके लिये ही जीव सृष्टिका विस्तार है। प्रकृतिका यह संसार पुरुषमें लय होनेके लिये ही अग्रसर होता है। अतः प्रकृतिका यही धर्म है, कि जिससे वह

पुरुषमें लय हो सके। यह एक सूक्ष्म गम्भीर विज्ञान है और इसीको स्मरण करके महर्षियोंने नारीके लिये नारी-धर्मका उपदेश किया है।

जिस प्रकार प्रकृतिकी सत्ता स्वतन्त्र नहीं है, उसी प्रकार स्त्रीकी भी सत्ता स्वतन्त्र नहीं। जिस प्रकार प्रकृति पुरुषसे ही अर्द्धाङ्गिनी रूपमें निकलती है और उसीमें लयको प्राप्त हो जाती है और लय होनेकी जो चेष्टाएँ हैं वे उसके धर्म हैं, ठीक उसी प्रकार जिन जिन उपायोंसे नारी अपनेको उन्नत करती हुई पुरुषमें लयको प्राप्त हो सकती है, वे ही चेष्टाएँ नारीके भी धर्म हो सकते हैं।

किसी वस्तुमें किसी वस्तुको लय कर देनेके लिये 'तन्मयता' परमावश्यक है। बिना 'तन्मयता' के कोई अपनेको दूसरेमें लय नहीं कर सकता। तन्मयता' अपनी पृथक् सत्ताके भल जानेको कहते हैं। पृथक् सत्ताका ज्ञान जबतक हृदयमें विद्यमान रहता है, तबतक कोई दूसरेमें लय हो ही नहीं सकता। अतः जो धर्म नारीको पुरुषमें तन्मय हो जानेकी शिक्षा दे वही नारियोंके लिये धर्म है। पातिव्रत्य धर्म स्त्रीको पूर्ण उन्नत करता हुआ अन्तमें उसे तन्मयताकी दशामें पहुंचा देता है, अतः पातिव्रत्य धर्म ही स्त्रीका एकमात्र धर्म है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं, कि कोई भी वस्तु जो अपूर्ण है वह पूर्ण तभी हो सकती है जब वह पूर्णमें विलीन हो जाय। अपूर्णके पूर्ण होनेका इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय है ही नहीं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, कि प्रकृतिको सत्ता अपूर्ण है, अतः वह पूर्णमें ही लय होकर पूर्ण हो सकती है। उससे पृथक् होकर पूर्ण नहीं हो सकती। अपूर्ण ब्रजकी गोपियाँ पूर्ण भगवानमें तन्मय होती हुई उनमें अपनेको लय करके ही पूर्ण हो गयीं। अपनी सत्ताको भूलकर जब वे अपनेको कृष्ण समझने लग गयीं, तभी उनको पूर्ण पुरुष कृष्णका दर्शन हुआ। तिलचट्टा भ्रमरकीटमें तन्मय होकर जब अपनी सत्ताको भूल जाता है, तभी वह भ्रमरकीट बन सकता है। इसलिये अपूर्ण नारी पूर्णताको तभी प्राप्त कर सकती है, जब वह कीट भृंगकी तरह ब्रजकी गोपियोंकी तरह पूर्ण पुरुषमें अपनेको तन्मय और लय कर दे। इस प्रकार तन्मय होने और लय होनेकी एकमात्र शक्ति, तपः प्रधान पातिव्रत्य धर्ममें ही सन्निहित है। अतः वही यथार्थमें नारीके धर्म हैं, दूसरा और कुछ भी नहीं। उसके विपरीत जो कुछ भी है, वह नारीके लिये अहितकर होनेसे अधर्म है। पुरुषका धर्म ऐसा नहीं है।

यागपरः पुरुष धर्मः।

(कर्ममीमांसा)

पुरुषधर्म यज्ञ प्रधान है। गीतामें भी कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाचप्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

यज्ञमें अधिकारवान प्रजाकी सृष्टि करके प्रजापतिने उनको यज्ञकी ही आज्ञा दी थी और कहा था, कि इस यज्ञसे ही तुम्हारी उन्नति और मनोरथकी पूर्ति होगी। किन्तु स्त्रीके लिये—

तपः प्रधानोनार्यः

(कर्ममीमांसा)

स्त्रीधर्म तपःप्रधान है। स्वाभाविक चञ्चल इन्द्रिय प्रवृत्तियोंको विषयोंसे रोकनेको तप कहते हैं। पातिव्रत्यधर्म तपोमूलक है। इसमें नारीको अपनी समस्त चेष्टाओंको अन्य सभी ओरसे 'प्रत्याहार' करके पतिमें विलीन कर देना होता है अतः पातिव्रत्य धर्म ही स्त्रीका तपः प्रधान धर्म है और इसी धर्मके द्वारा उसे पूर्णताकी प्राप्ति होती है। भगवानने गीतामें कहा है कि—स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः': अपने धर्ममें मरना अच्छा दूसरेका धर्म पाप है।

——

आर्य महिलाके नियम

१—आर्यमहिला' श्री आर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समय पर सूचना न मिलनेसे बाद कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमे असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तर में विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिए पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देना चाहिये।

६ सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंट के पतेसे आना चाहिए।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होने वाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है:--

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	,,
,, १/२ ,,	१२)	,,
,, १/४ पृष्ठ	८)	,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये, अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

वाणी-पुस्तकमाला

का

अद्वितीय दार्शनिक प्रकाशन

श्रीभगवद्गीता

गीता-तत्त्व-बोधिनी टीका-सहित

[दो भागोंमें सम्पूर्ण]

लोकप्रसिद्ध श्रीभगवद्गीताके गूढ़ दार्शनिक तत्त्वोंको अत्यन्त सरलतासे समझनेके लिये गीता-तत्त्व-बोधिनी टीकासे बढ़कर अभीतक गीताकी कोई दूसरी टीका प्रकाशित नहीं हुई है।

पूज्यपाद श्री ११०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजके वचनामृतद्वारा गीताके गूढ़ रहस्योंको समझनेके लिये गीताकी प्रस्तुत टीका एक अनुपम साधन है। अवश्य अध्ययन कीजिये और आध्यात्मिक आनन्द तथा शांति प्राप्त कीजिये। साथ ही ऐसे अमूल्य ग्रन्थरत्नके संग्रहद्वारा अपनी पुस्तकालयकी शोभा बढ़ाइये। आज ही एक प्रतिका आर्डर भेजिये। अन्यथा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; थोड़ी प्रतियाँ ही छपी हैं।

मूल्य सम्पूर्ण प्रतिका ७।।)

प्राप्तिस्थानः—

व्यवस्थापक

श्रीवाणी-पुस्तकमाला

महामंडल भवन

जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला-कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

मुद्रक—सर्वोदय प्रेस, मधुरावीर, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌की मासिक मुखपत्रिका

पौष-माघ सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ९-१० | दिसम्बर १९५१-जनवरी १९५२

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी एम. ए., बी. टी.

लज्जा मेरी राखो श्याम हरी।
कीनी कठिन दुःशासन मोसे,
गहि केशन पकरी ॥
आगे सभा दुष्ट दुर्योधन,
चाहत नग्न करी।
पाँचो पाण्डव सब बल हारे,
तिन सौं कछु न सरी ॥
भीषम द्रोण विदुर भये विस्मित,
तिन सब मौन धरी।
अब नहिं मात पिता सुत बांधव,
एक टेक तुम्हरी ॥
बसन प्रवाह किये करुणानिधि,
सेना हार परी।
'सूर' श्याम जब सिंह शरण लई,
कहा सृगाल डरी ॥

विषयानुक्रमणिका

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

मार्गशीर्ष सं० २००८ | वर्ष ३३, संख्या ६ | दिसम्बर १६५१

प्रार्थना

हरि बिन कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुन सुन्दरी, जिय मिलन न हरि बिसरै ॥
और मित्र ऐसे समया महँ, कत पहिचान करै ।
विपति परे कुसलात न बूझै, बात नहीं उचरै ॥
उठिके मिले तन्दु हम दीने, मोहन बचन फुरै ।
सूरदास स्वामी की महिमा, टारि विधी न टरै ॥

* * *

आत्म-निवेदन

क्षमा-याचना

अनेक प्रयत्नके अनन्तर 'आर्यमहिला' युद्धकालीन अनेक वर्षोंकी अनियमिततासे आगे बढ़कर नियमित समय पर पाठकोंके पास पहुँचने लगी थी; परन्तु यह अङ्क पुनः पिछड़ गया है। इसका कारण देश-व्यापी अभूतपूर्व निर्वाचन है। इस निर्वाचनमें सभी संस्थाओं एवं सभी व्यक्तियोंको किसी-न-किसी रूपमें विजड़ित होना पड़ा। सभी अन्य कार्य इन दो महीनोंमें उपेक्षितसे हो गये। प्रेसोंने भी केवल चुनाव सम्बन्धी साहित्य छापनेका कार्यही किया। विशेषतः काशीने तो चुनाव की समाप्तिके बादही शान्तिकी श्वाँस ली। महापरिषद्के पास अनेक कार्य-विभाग होनेसे सदासे ही उसको साधनोंकी कमी तथा कार्यकर्त्ताओंकी कमीका अनुभव होता आया है। अतः इस चुनाव युद्धका भी अधिक प्रभाव उसपर हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी कारण 'आर्यमहिला' पाठक-पाठिकाओं के पास पुनः विलम्बसे पहुंच रही है। इस अनिवार्य विलम्बके लिये 'आर्यमहिला' के प्रेमीपाठक क्षमा करेंगे ऐसी आशा है। अब शीघ्रसे शीघ्र 'आर्यमहिला' नियमित पहुँचने लगे इसके लिये हम प्रयत्नशील हैं।

हिन्दूकोड कसौटीपर

संसदमें डाक्टर अम्बेदकर अपनी सारी शक्ति लगाकर भी हिन्दूकोडबिल पास करानेमें सफल नहीं हो सके, बेचारेकी साध पूरी नहीं हो सकी; तब झल्लाकर उन्होंने कानून मन्त्रीके पदसे त्यागपत्र दे डाला। आशा की थी कि, नेहरूजी उनका त्यागपत्र स्वीकार न करके मनावन करेंगे; परन्तु उनकी यह आशा भी पूरी नहीं हुई। नेहरूजीने उनका त्यागपत्र तत्काल स्वीकृत कर लिया। अब अम्बेदकर महाशय क्या करते? आपने हिन्दूकोड रूप अपने बच्चेको जिलानेके लिये उसीको दिखाकर चुनावके मैदानमें उतर पड़े और वोटकी भीख माँगते चले, किन्तु उनको सोलह हजार वोटोंसे हारना पड़ा। उनका दत्तक पुत्र हिन्दूकोडको वे बचा नहीं सके। उनकी इस हारके साथ-साथ उनका ऐसा राजनीतिक पतन हुआ कि अब उठना असम्भव प्रायः है। इतनाही नहीं, इस बिलकी बड़ी भारी समर्थिका इनकी साथी पश्चिमी वातावरणमें विचरनेवाली दो महिलाएँ श्रीमती रेणुकाराय और श्रीमती दुर्गाबाई थीं, श्रीमती रेणुकाराय भी बंगालसे पराजित हो गयीं और मद्राससे दुर्गाबाई भी पराजित हुईं। यद्यपि कांग्रेसने इनको विजयिनी बनानेके लिये कोई कोर-कसर उठा नहीं रखा होगा।

इन तीनोंकी हारसे यह सिद्ध हो गया कि कोई भी कोड जनताकी इच्छाके विरुद्ध उसपर लादा नहीं जा सकता। जनताकी भावनाओंको कुचलनेका परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता। आज कहने के लिए तो जनताका राज है; किन्तु जनता अन्न एवं वस्त्रके लिये तरस रही है, जनता कहती है—'हमें रोटी दो, हमें कपड़ा दो, हमें रहने की जगह दो।' प्रधान मन्त्री नेहरूजी कहते हैं "हम हिन्दू कोड बिल देंगे।" यह है जनताका राज। इसपर हमें स्वर्गीय गांधीजीकी उस समयकी उक्ति स्मरण आती है, जब यहाँ अँग्रेजी शासन था, गांधीजीने एकबार कहा था कि "मैंने रोटी माँगी, मुझे पत्थर मिला।" यही दशा कांग्रेस सरकारकी है। जनता अन्न, वस्त्र, आवासके लिये तड़प रही है, बिलख रही है, त्राहि त्राहि कर रही है, उसके बदलेमें उसे हिन्दूकोडबिल दिया जा रहा है, फिर भी जनताका राज है। जनताके राजका ऐसा नमूना संसारमें कहीं अन्यत्र देखने-सुननेको नहीं मिलेगा।

अस्तु, हिन्दूकोड-बिलके बड़े बड़े समर्थक इस चुनावमें धराशायी हो गये। जनताने कांग्रेस सरकारके इस अन्याय पूर्ण अनुचित कार्य पर अपना रोष प्रकट किया और यहाँतक कि नेहरूजीके चनाव-क्षेत्र में उनकी स्थिति भी चिन्ताजनक हो गयी। हिन्दू-कोड-बिलको लेकर श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी जैसे एक सन्त जो किसी समय आर्य-महिलाके सम्पादक पदको विभूषित कर चुके हैं; चुनावके मैदानमें कूद पड़े। जनताका रुख ब्रह्मचारीजीके समर्थनमें देख नेहरूजी घबड़ा गये और सरकारकी सारी शक्ति वहाँ लगा दी गयी। नेहरूजी, उनकी बहिन विजयलक्ष्मी पंडित, उनकी पुत्री इन्दिरागांधी, कानून मन्त्री श्री कैलाशनाथ काटजू एवं श्री पन्तजी, श्रीप्रकाशजी आदि सभी कांग्रेसी चोटीके नेता नेहरूजीकी सम्मान रक्षाके लिये प्रयागमें दौड़ पड़े। नेहरूजीको तथा काटजूजीको जनताको भुलानेके लिये अपने भाषणोंमें कहना पड़ा कि हिन्दूकोड बिल वर्तमान रूपमें पास नहीं होगा, उसमें सुधार किया जायगा आदि। यह सब जनताको धोखा देकर केवल वोट लेनेके लिये किया गया हो तब भी कोई आश्चर्य नहीं है, परन्तु जनता अब सचेत हो चुकी है, अब जनताकी भावनाओंको कुचलकर शासनकी गद्दियों पर अधिक दिन अधिकार जमाए रहना सम्भव नहीं होगा। इस निर्वाचनसे यह स्पष्ट हो गया कि यदि केवल हिन्दूकोड-बिल पर चुनाव लड़ा गया होता और कांग्रेस पदत्याग कर चुनाव लड़ती तो देशके किसी भी राज्यमें कांग्रेसी सरकार नहीं बन पाती। जनताने कांग्रेसको क्या इसीलिये अपने खूनसे सींच कर बलशाली बनाया था कि उसकी सरकार बनने पर हिन्दूकोड बिल पास करके हिन्दुओंका सर्वनाश किया जायगा और नये-नये कसाईखाने बनाकर गोहत्या जारी रखा जायगा? यदि पहले ये बातें कही गयी होतीं तो कोई भी कांग्रेसका साथ न देता। आज जब महिलाओंने कहा कि हमें हिन्दू-कोड बिल नहीं चाहिये तो उनकों निर्लज्जता एवं निष्ठुरताके साथ एसेम्बली भवनके पास पुलिस द्वारा लाठीसे पिटवाया गया, उनके बाल पकड़कर घसीटा गया और क्या-क्या अपमान नहीं कराया गया? अब आगे देखना है कि यह काला कानून किस रूपमें पुनः संसदमें उपस्थापित किया जाता है।

भगवती लोपामुद्रा

एक समय देवगुरु बृहस्पतिजीके नेतृत्वमें देवताओंका एक प्रतिनिधि-मण्डल देवताओंके विशेष कार्यके लिए महर्षि अगस्तके पास गया था। उस समय देवगुरु बृहस्पतिजीने इस प्रकार कहा—महाभाग अगस्त्यजी! आप धन्य हैं, कृत्य-कृत्य हैं और महात्मा पुरुषोंके लिये भी माननीय हैं। आपमें तपस्या की सम्पत्ति है, आपमें स्थिर ब्रह्मतेज है, आपमें पुण्यकी उत्कृष्ट शोभा है, आपमें उदारता है और आपमें विवेकशील मन है। आपकी सहधर्मिणी ये कल्याणमयी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता हैं, आपके शरीरकी छायाके तुल्य हैं। इनकी चर्चा भी पुण्य देनेवाली है। मुने! ये आपके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करतीं, आपके खड़े होनेपर स्वयं भी खड़ी रहतीं, आपके सो जाने पर सोतीं और आपसे पहले जाग उठती हैं। ये कभी अपने आपको आपके सामने अलंकारहीन अवस्थामें नहीं उपस्थित करतीं। जब आप किसी कार्यसे कहीं परदेशमें जाते हैं, तब ये एक भी अलंकार नहीं धारण करतीं। आपकी आयु बढ़े—इस उद्देश्यसे ये कभी आपका नाम नहीं उच्चारण करती हैं। दूसरे पुरुषका नाम भी ये कभी अपनी जीभ पर नहीं लातीं। ये कड़वी बात सह लेती हैं; किन्तु स्वयं बदलेमें कोई कटुवचन मुँहसे नहीं निकालतीं। आपके द्वारा ताड़ना पाकर भी प्रसन्न ही होती हैं जब आप इनसे कहते हैं—'प्रिये! अमुक कार्य करो, तब ये उत्तर देती हैं—'स्वामिन्! अभी किया। आप समझलें वह काम पूरा हो गया।' आपके बुलाने पर ये घरके आवश्यक काम छोड़कर भी तुरन्त चली आती हैं और कहती हैं—प्राणनाथ! दासीको किस लिये बुलाया है। आज्ञा देकर मुझे अपने प्रसादकी भागिनी बनाइये।' ये दरवाजे पर देर तक नहीं खड़ी होतीं, द्वार पर बैठती और सोती भी नहीं हैं। आपकी आज्ञाके बिना कोई वस्तु किसीको नहीं देतीं, आप न कहें तब भी ये स्वयं ही आपके लिये पूजाका सब सामान जुटा देती हैं। नियमके लिये जल, कुशा, पत्र-पुष्प, और अक्षत आदि प्रस्तुत करती हैं। सेवाके लिये अवसर देखती रहती हैं और जिस समय जो वस्तु आवश्यक अथवा उचित है, वह सब बिना किसी उद्वेगके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित करती हैं। पतिके भोजन करनेके बाद बचा हुआ अन्न और फल आदि खाती और पतिकी दी हुई प्रत्येक वस्तुको महाप्रसाद कहकर शिरोधार्य करती हैं। देवता, पितर और अतिथियोंका तथा सेवकों, गौओं और याचकोंको भी उनका भाग अर्पण किये बिना ये कभी भोजन नहीं करतीं। वस्त्र आभूषण आदि सामग्रियोंको स्वच्छ एवं सुरक्षित रखती हैं। ये गृहकार्य में कुशल हैं सदा प्रसन्न रहती हैं, फजूल खर्च नहीं करतीं, एवं आपकी आज्ञा लिये बिना ये कोई उपवास और व्रत आदि नहीं करती हैं। जन-समूहके द्वारा मनाये जाने वाले उत्सवोंका दर्शन दूरसे ही त्याग देती हैं। तीर्थयात्रा आदि तथा विवाहोत्सव-दर्शन आदि कार्योंके लिये भी ये कभी नहीं जातीं। पति सुखसे सोये हों, आरामसे बैठे हों अथवा अपना मौजसे कहीं रम रहे हों, तो उस समय कोई अन्तरंग कार्य आजाने पर भी उन्हें कभी नहीं उठातीं। रजस्वला होनेपर ये तीन राततक अपना मुंह पतिको नहीं दिखातीं। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाँय तबतक अपनी बात भी पतिके

कानोंमें नहीं पड़ने देतीं। भलीभाँति स्नान कर लेने पर पहले पतिका ही मुँह देखती हैं और किसीका नहीं। अथवा यदि पतिदेव उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करती हैं। पतिकी आयुवृद्धि चाहती हुई पतिव्रता स्त्री अपने शरीरसे हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल, चोली, पान, शुभ माङ्गलिक आभूषण कभी दूर न करे। केशोंका सवारना, वेणी गूँथना तथा हाथ और कान आदिके आभूषणोंको धारण करना कभी बन्द न करे। अपने स्वामीसे द्वेष रखने वाली स्त्रीसे वे कभी बात तक नहीं करती हैं। ये कहीं भी अकेली नहीं रहती हैं और न कभी नंगी होकर स्नान ही करती हैं। सती स्त्रीको ओखली, मूसल, झाड़ू, सिलौट, चक्की और चौखठपर कभी नहीं बैठना चाहिए। पतिव्रता स्त्री कभी धृष्टताका परिचय न दें। जहाँ जहाँ पतिकी रुचि हो; वहीं सती स्त्री सदा प्रेम रखे। यही स्त्रियोंका उत्तम व्रत, यही उनका परमधर्म और यही एकमात्र देवपूजा है कि वे पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन न करे। पति नपुंसक, दुर्दशाग्रस्त, रोगी, बूढ़ा, अच्छी स्थिति वाला अथवा बुरी परिस्थितिमें पड़ा हुआ हो, तो भी पतिका कभी त्याग न करे। पतिके हर्षमें हर्ष माने और पतिके मुख पर विषादकी छाया देखकर स्वयं भी विषाद-ग्रस्त हो। पुण्यात्मा सती सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके साथ एक रूप होकर रहे। पतिको चिन्ता और परिश्रममें न डाले। तीर्थस्थानकी इच्छा रखने वाली अपने पतिका चरणोदक पीये, क्योंकि उसके लिये केवल पति ही भगवान् शिव और विष्णुसे बढ़कर है। जो पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करके व्रत और उपवास आदिके नियम पालती हैं, वह अपने पतिकी आयु हर लेती हैं और मरनेपर नरकमें गिरती हैं। जो स्वयं प्रसन्न रहकर पतिको प्रसन्न रखती हैं उसने तीनों लोकोंको प्रसन्न कर लिया है। पिता थोड़ा सुख देता है, भाई थोड़ा सुख देता है और पुत्र भी थोड़ा ही सुख देता है, अपरिमित सुख देनेवाला तो पति ही है। अतः उसकी सदा पूजा करनी चाहिए। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है इसलिये स्त्री सबको छोड़कर केवल पतिको पूजा करे।

इतना कहकर बृहस्पतिजी लोपामुद्रासे बोले—पतिके चरणारविन्दों पर दृष्टि रखनेवाली महामाता लोपामुद्रे! हमने काशीमें जाकर जो गंगा स्नान किया है उसीका यह फल है कि हमें आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। लोपामुद्राकी इस प्रकार स्तुति करके देवगुरुने अगस्त्य मुनिसे कहा—'महर्षे! आप प्रणव हैं और ये लोपामुद्रा श्रुति हैं। आप मूर्तिमान तप हैं और ये क्षमा हैं आप फल हैं और ये सत् क्रिया हैं। महामुने! इन्हें पाकर आप धन्य हैं। ये देवी पातिव्रत का मूर्तिमान तेज हैं और आप साक्षात् सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मतेज हैं। इस परभी आपमें यह तपस्याका तेज और बढ़ा हुआ है। भला आपके लिए कौन-सा कार्य असाधारण है। यद्यपि कुछ भी आपसे अविदित नहीं है; तथापि देवता लोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं वह मैं बतलाता हूँ मुने! ध्यान देकर सुनें। विन्ध्यनामसे प्रसिद्ध पर्वत मेरुगिरिसे डाह रखने के कारण बढ़कर इतना ऊँचा हो गया है कि उसने सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया है, उसकी इस वृद्धिको आप रोकिये।

देवगुरु का यह बचन सुनकर महामुनि अगस्त्यने क्षणभरके लिए चित्तको एकाग्र किया और 'बहुत अच्छा, आप लोगों का कार्य सिद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर देवताओं को विदा किया। तत्पश्चात् उन्होंने देवताओंका कार्य सम्पन्न किया।

ब्राह्मण बालिका सुलक्षणा

प्राचीन समयमें काशीपुरीमें प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे। वे आत्रेय कुलमें उत्पन्न, सदाचारी तथा अतिथिजनोंके प्रेमी थे। उनकी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वह घरके काम-काजमें बड़ी चतुर तथा पतिकी सेवामें तत्पर रहती थी। ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे यथासमय एक उत्तम लक्षणोंवाली कन्याको जन्म दिया। वह कन्या मूल नक्षत्रके प्रथम चरणमें उत्पन्न हुई थी। उस समय बृहस्पति केन्द्रमें थे। वह बड़ी शुभ लक्षणोंवाली थी। अतः उसका नाम सुलक्षणा रखा गया। ब्राह्मणकी वह कन्या पिता-माताके घरमें दिन-दिन बढ़ने लगी। वह बड़ी रूपवती, विनयशील सदाचार परायण तथा माता-पिताका प्रिय करने वाली थी। घरकी सामग्रियोंको माँज-धोकर साफ सुथरा रखनेमें अत्यन्त निपुण थी। वह अपने पिता के घरमें जैसे-जैसे बढ़ने लगी, वैसे-ही-वैसे पिताके मनमें यह चिन्ताभी बढ़ने लगी कि—'मेरी यह परम सुन्दरी उत्तम लक्षणोंवाली श्रेष्ठ कन्या किसको देने योग्य है। इसके योग्य उत्तम वर मुझे कहाँ मिलेगा, जो कुल, अवस्था, शील, स्वभाव, शास्त्राध्ययन, रूप और धनसे भी सम्पन्न हो। किसके साथ ब्याह होने पर इसे सुख मिलेगा।' इस प्रकार चिन्तानामक ज्वरसे ग्रस्त हो प्रियव्रत ब्राह्मण गृह आदि सब वस्तुओंका त्याग करके मृत्युको प्राप्त हो गए। पिताके मरने पर उस कन्याकी प्रतिव्रता माताभी कन्याको अकेली छोड़कर पतिके साथ सती हो गयी। पातिव्रतका पालन करनेवाली सहधर्मिणी का यह धर्मही है कि वह पतिके जीते-जी तथा मरने परभी पतिके ही साथ रहे। पुत्र, पिता, माता और बन्धु-बान्धव इनमें से कोई भी पतिके सदृश्य स्त्रीकी रक्षा नहीं करते। स्त्री अपने पतिके चरणोंकी जो सेवा करती है, वह सेवा ही सर्वत्र उसकी रक्षा करती है। माता-पिताके मरने पर सुलक्षणा दुःखसे व्याकुल हो उठी। उसने उनके और्ध्वदैहिक संस्कार करके दशाह आदि क्रियायें सम्पन्न की और अनाथ एव दीन होकर वह चिन्ता करने लगी—'अहो! मैं पिता-मातासे हीन असहाय अबला इस संसार-सागरके उस पार, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है, कैसे जा सकूँगी; क्योंकि स्त्री-भाव सबके द्वारा तिरस्कृत होनेवाला है। मेरे माता-पिताने मुझे किसी वरको अर्पण नहीं किया। ऐसी दशामें मैं स्वेच्छासे दूसरे किसी वरका वरण कैसे करूँ। यदि मैंने किसी का वरण कर भी लिया, तो भी यदि वह कुलीन गुणवान, सुशील, और अपने अनुकूल रहनेवाला न मिला, तो उसका वरण करनेसे भी क्या लाभ होगा। इस प्रकार चिन्ता करती हुई रूप, उदारता और गुणों से युक्त उस ब्राह्मण कन्या सुलक्षणाने अनेकों युवकों द्वारा प्रतिदिन बार बार प्रार्थना की जाने पर भी किसीको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया। पिता-माताकी मृत्यु और उनके अद्भुत वात्सल्यका स्मरण करके वह बार बार अपनी और इस नश्वर संसारकी निन्दा करने लगी—'अहो! जिन्होंने मुझे जन्म दिया और बड़े लाड़-प्यारसे पाला, वे मेरे माता-पिता कहाँ चले गए? देहधारी जीवकी इस अनित्यताको धिक्कार है। जैसे मेरे ही आगे मेरे माता-पिताका शरीर चला गया; उसी प्रकार मेरा भी

शरीर चला जायगा।' ऐसा विचार करके उस बालिकाने अपने मन और इन्द्रियोंको अपने आधीन किया और स्थिरचित्त हो दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई वह उत्तरार्कदेवके समीप कठोर तपस्या करने लगी। उसकी तपस्याके समय प्रतिदिन एक छोटी-सी बकरी उसके आगे आकर अविचल भावसे खड़ी हो जाती, फिर सन्ध्याके समय वह कुछ घास तथा पत्ते आदि चरकर और उत्तरार्क कुण्डका जल पीकर अपने स्वामीके घर लौट जाती थी। इस प्रकार पाँच-छः वर्ष व्यतीत होने पर एक दिन भगवान् शिव पार्वतीदेवीके साथ विचरते हुए वहाँ आए। उत्तरार्कदेवके समीप तपस्या करती हुई सुलक्षणाको उन्होंने ठूँठ पेड़की भाँति अविचल और तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल देखा। तब दयामयी पार्वती-देवीने भगवान् शङ्करसे निवेदन किया—'देव! यह सुन्दरी कन्या बन्धु-बान्धवोंसे हीन है, इसे वर देकर अनुगृहीत कीजिए। पार्वतीजीका यह वचन सुनकर दयासागर भगवान् शिवने नेत्र बन्दकर समाधिमें स्थित हुई उस कन्यासे वर देनेके लिए उद्यत होकर बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सुलक्षणे! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूं, तुम कोई वर माँगो।'

महादेवजी की यह अमृतवर्षिणी वाणी सुनकर सुलक्षणाने नेत्र खोले और देखा कि सामने वरदान देनेके लिए उद्यत आशुतोष भगवान् त्रिलोचन खड़े हैं और उनके वामभागमें देवी उमा विराजमान हैं। उन दोनोंका दर्शन करके सुलक्षणाने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। इतनेमें ही उसे अपने आगे खड़ी हुई वह बकरी दिखाई दी। तब वह सोचने लगी—'इस जीवलोकमें अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए कौन मनुष्य जीवन नहीं धारण करता है? परन्तु जो परोपकारके लिए जीवन धारण करता है, उसीका जीवन धारण सफल है।' मन-ही-मन ऐसा विचार कर उसने भगवान् शिवसे कहा—'कृपा निधान! यदि आप मुझे वर देना उचित समझते हैं, तो पहले इस बेचारी बकरी पर अनुग्रह कीजिए।' सुलक्षणाकी यह परोपकार भरी वाणी सुनकर शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न हुए और पार्वती देवीसे इस प्रकार बोले—'गिरिराज नन्दिनी! देखो, साधु पुरुषोंकी ऐसीही परोपकारयुक्त बुद्धि होती है। सम्पूर्ण लोकोंमें वे ही धन्य हैं और वे ही सम्पूर्ण धर्मोंके आश्रय हैं जो सर्वथा परोपकारके लिए यत्न करते हैं। सब वस्तुओंका संग्रहभी कहीं दीर्घकाल तक नहीं ठहरता। एक मात्र परोपकार ही चिरस्थायी होता है। यह सुलक्षणा परमधन्य और अनुग्रह करने योग्य है। देवि! तुम्हीं बताओ, इस सुलक्षणाको और इस बकरीको भी कौन सा वरदान देना चाहिए?'

पार्वती देवीने कहा - भगवन्! यह शुभआचरणोंवाली सुलक्षणा कल्याणके लिए उद्योग करने वाली है; यह मेरी सखी होकर रहे। यह बालब्रह्म-चारिणी है, इससे मुझे अत्यन्त प्रिय होगी। मेरी इच्छा है कि यह दिव्य शरीर धारण करके सदैव मेरे समीप निवास करे। यह बकरी भी यहीं काशी नरेशकी कन्या हो और काशीमें उत्तम भोगोंका उपभोग करके अंतमें परम मोक्षको प्राप्त हो।

इस प्रकार पार्वतीजीके कहे हुए सब वचनको सिद्ध करके सर्वव्यापी भगवान् विश्वनाथने अपने मंदिरमें प्रवेश किया।

श्रीभगवद् गीता—द्वितीय अध्याय

(हिन्दी पद्यानुवाद)

श्री मोहन वैरागी

[गतांक से आगे]

(२५)

लेता जो जन जन्म जगत्में,
होता निश्चय उसका अन्त।
जन्म मरण ये कालचक्र हैं,
गति उनकी अनवरत अनन्त ॥

(२६)

जीवनके उपरान्त सदा हम,
हो जाते हैं आकृतिहीन।
तथा जन्मके पहले भी सब,
रहते हैं आकारविहीन ॥

(२७)

रहती बस जीवन तक सबकी,
एक दूसरेसे पहचान।
आते यहाँ अजान सदा हम,
जाकर फिर होते अनजान ॥

(२८)

कोई इसे विचित्र मानता,
कोई कहता इसे अनूप।
पर न समझ पाता कोई भी
आत्माका अज शाश्वत रूप ॥

(२९)

अतः पार्थ फिर कोई कैसे
कर सकता आत्माका घात।
आत्मा अजर अमर अविनाशी
काया है नश्वर जड़जात ॥

(३०)

पालन करो अभय होकर तुम
अपना क्षात्रधर्म हे वीर।
करो नाश दुर्जन दुष्टोंका
है अधर्मसे धरा अधीर ॥

(३१)

अनायास-ही अहो धनञ्जय
दुर्लभ सुखद स्वर्गका द्वार।
पाता जो क्षत्रिय रण द्वारा
है उसका सौभाग्य अपार ॥

(३२)

और विरत होकर यदि रणसे
किया नहीं तुमने संग्राम।
होगा नष्ट धर्म-यश दोनों
पाओगे अशान्ति अविराम ॥

(क्रमशः)

* * * *

श्रीराधाचरितकी झलक

[ले०-श्री रामाधीन पाण्डेय]

भारतवर्षकी भूमि सदासे आदर्शोंकी भूमि रही है। इसीके अंकमें बड़े-बड़े आचार्य, सन्त, तपस्वी एवं महापुरुषोंका आविर्भाव हुआ। इसके ही रजमें लोट पोटकर उनका जो चरित हुआ वह सिर्फ हमारे लिये ही नहीं, अपितु सारे संसारका पथप्रदर्शक बना। इन विमल चरित्रोंकी छाया छू जानेपर भी वह आभा, वह दीप्ति चमक उठती है जिसके लिये देवोंको भी तरस आता है और होती है उन्हें हार्दिक अभिलाषा कि हम भी इसी पुण्यभूमिमें जन्म ग्रहण करें, इसीके पावन रजमें फूलें, फलें और बढ़ें :—

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्ति ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषः सुरत्वात्॥

यहीं तक नहीं, उस अलौकिक लीलाधाम परम-पुरुषको भी जब कौतुक करनेकी इच्छा होती है तब इसी पुनीत धराधामपर अवतीर्ण हो विविध लीलाओं द्वारा अपने भक्तोंको सनाथ करते हैं। पापराशिका समूल नाशकर भाराक्रान्त भूभागकी कण-कण भूमिको स्वपादरजःपूत बना डालते हैं। यही आदि पुरुष नारायण कभी राम, कभी कृष्ण, कभी वामन प्रभृतिके विशुद्ध कलेवरमें हमारी आँखोंके सामने आकर अपनी आदिशक्तिके सहयोगसे अभूतपूर्व लीला विलास वश अखिल विश्वके रंगमंचपर तरह-तरहके कार्य करते कराते दृष्टिगोचर होते हैं। हम इनके इस वास्तविक रहस्यको समझ नहीं पाते और कभी देव, कभी महापुरुष आदि कह विश्राम ले लेते हैं। सहृदयजन इसे ही तो अवतार कहा करते हैं।

यों तो हमारे लिये परम प्रभुके सभी अवतार आदर्श हैं ही, पर विशेषतया दो ही अधिक अनुकरणीय बनते हैं—एक जब वह हमारे समक्ष मर्यादा-पुरुषोत्तमका और दूसरा लीलापुरुषोत्तमका बाना धारण कर लेता है, तब हमारी आस्था शायद किसी हद तक पहुँच पाती है। यह क्यों? चूँकि ये चरित्र मानवी सृष्टिके लिये उपयोगी एवं आदर्श हो जाते हैं। ये तभी आदर्श होते हैं जब पुरुष प्रकृतिस्थ एवं प्रकृति पुरुषस्थ रहा करती है। तात्पर्य यह कि भगवान् रामका चरित्र महारानी सीताके बिना तथा भगवान् कृष्णका चरित्र राधिका देवीके बिना पूरा नहीं, अधूरा है। अतः यह निर्विवाद है कि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रोंमें पूर्णता लानेका जितना श्रेय महारानी सीताका है, उतनाही लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंको पूर्ण करनेमें भगवती राधिकाका। अथवा यों कहिये कि भगवान् राम और महारानी सीता तथा भगवान् श्रीकृष्ण और भगवती श्रीराधिका एकही शरीरके दो भिन्न मूर्त्तरूप ही तो हैं।

खेद है कि आजके शिक्षित एवं सभ्य कहलाने-वाले हममेंसे कुछ विकासवादी लोग भागवती महिमाके वास्तविक रहस्यके तह तक पहुंचनेका प्रयास न कर इन आदर्श चरितोंके सम्बन्धमें तरह-तरहकी अटकलबाजियाँ लगाया करते हैं। खासकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवती राधिकाके सम्बन्धमें तो ऐसे ऐसे कुतर्क उपस्थित करते हैं जिनपर वाणीका मौनावलम्बन करा देना ही उपयुक्त जँचता है।

विशेषतया सिनेमाजगत्‌में भ्रमण करनेवाले सज्जनोंके मस्तिष्कमें तो इन धार्मिक तथ्योंके सम्बन्धमें भी वही चलचित्र पटवाली कथावस्तु प्रत्यक्ष प्रमाण बन जाती है। चाहे वह हमारी सभ्यतासे सीमित हो या न हो। हाय रे समाज! जो कभी वेद, पुराण, धर्मशास्त्र आदि के सिवा किसी अन्यको कुछ समझता ही नहीं था, वही आज अपना वैभव, साहित्य, सभ्यता और संस्कृतिको तिलाञ्जलि दे, उच्छृंखल सभ्यताकी एक नंगी देनको ही आप्त प्रमाण मान बैठता है। भगवती राधिकाके सम्बन्धमें कुछोंका कथन यह होता है कि इनका विवाह सम्बन्ध किसी अन्यसे हुआ था और ये भगवान् श्रीकृष्णपर अनन्य प्रेम करती थीं जो एक पतिव्रता नारीके लक्ष्यसे बाहरकी बात है। यदि बात वस्तुतः ऐसी हो तौभी श्रीराधादेवीके चरित्रमें कुछ दोष नहीं आता। इससे उनके चरित्रमें और चारुता ही तो आती है; क्योंकि जबतक पारिवारिक आसक्ति तथा सगासे सगा स्नेहसे विराग नहीं होजाता तबतक आत्मारामरमें रमणकी बात ही कहाँसे आसकती है। अनन्यत्वके बिना वह सदा अप्राप्य है। इस सम्बन्धमें गीताका उपदेश है कि:—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

किन्तु वस्तुतः श्रीराधिका क्या थीं। उनका आविर्भाव कहाँ, कब और कैसे हुआ तथा उनके चरित्रोंमें कौन-कौन-सी विशेषताएँ भरी पड़ी हैं, इसको जान लेना आवश्यक है। पौराणिक तथ्योंपर हड़ताल तो कभी भी डाला जा सकता है जब समयकी सारी अनुकूलता सुलभ तथा हमारे सामने सर्वदा प्रस्तुत है।

एक समय देवर्षि नारदने श्रीनारायणसे श्रीराधिकाजीके दिव्य-चरित्रोंको जाननेके लिये उत्कट इच्छा प्रकट की थी। उस समय श्रीनारायणने कहा—देवर्षे सुनो—मैं तुम्हारे सामने वह उपाख्यान रख रहा हूँ जिसे कैलास पर्वतपर भगवान् शंकरने अपनी परम प्रेयसी पार्वतीको सुनाया था।

शृणु दुर्गे प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्।
चरितं राधिकायाश्च दुर्लभं सुपुण्यदम्॥
पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रासमण्डले;
रत्नसिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः,
स्वेच्छामयश्च भगवान् बभूव रमणोत्सुकः॥
एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधारूपो बभूव सः,
दक्षिणांगश्च श्रीकृष्णो वामांग सा च राधिका॥

गोलोकमें जगत्पति रत्न-सिंहासन पर बैठे थे। अकस्मात् रमणोत्सुक हो चले और रमणी बनानेकी प्रबल इच्छा हुई। जिसकी इच्छासे ब्रह्माण्डका ब्रह्माण्ड बन जाय, राई पर्वत और पर्वत राई बन जाय; उसे फिर विलम्ब किस बातकी; तुरत ही एक शरीर दो विभक्त रूपोंमें परिणत हो गया। इतना ही नहीं—

बभूव गोपीसंघश्च राधाया लोमकूपतः
श्रीकृष्णलोमकूपैश्च बभुवुः सर्ववल्लवाः।
राधा वामांशभागेन महालक्ष्मीर्बभूव सा,
चतुर्भुजस्य सा पत्नी देवी वैकुण्ठवासिनी॥

विविध क्रीड़ाकलाचतुरकी इच्छा और बढ़ी और उसकी पूर्तिके लिये सारे समाजका सृजन पलभरमें ही सम्पन्न हो गया। एक तो गोलोक, उसमें भी वृन्दावन, फिर भी सारा रास-रंगका समाज। अब तो नित्यप्रति सभी अंशों एवं कलांशोंके साथ अनेकशः रास होने लगे। कृष्ण

प्रकार एक लाख मन्वन्तरकी अवधि बीत चली। इसी बीच एक दिन समस्त गोप और गोपियोंके बीच मानिनी राधिका किसी विशेष कारणवश रासेश्वरका परिहास करने लगीं। अकस्मात् पंकज-लोचनके अनन्य सखा भक्त श्री सुदामाजी वहाँ पहुंचे। अपने भगवान्का परिहास उन्हें नहीं रुचा। अतः उनके मुँहसे निकल पड़ा कि:—

कथं वदसि मातस्त्वं कटुवाक्यं मदीश्वरं,
विचारणां विना देवि करोषि भर्त्सनं वृथा ॥
मानुष्या इव कोपस्ते तस्मात्त्वं मानुषीभव,
भविष्यसि न सन्देहो मया शप्ता त्वमम्बिके ॥

हे मातः! तुम व्यर्थ ही भगवान्को क्यों फटकार रही हो। हो तो तुम जगदम्बा, लेकिन आज तुम्हारा कोप एक सहज मनुष्यका-सा क्यों हुआ जा रहा है। अभीसे तुम अपनेको सँभालो अन्यथा शाप दे दूँगा, जिससे तुमको मृत्युलोकमें जाना पड़ेगा। पर श्रीराधा कबकी माननेवाली थीं। भगवदिच्छा भी तो यही थी, अन्ततोगत्वा सुदामाजी उबल पड़े और

शशाप तां सुदामा च त्वमितो गच्छ भारतम्,
भव गोपी गोपकन्या गोपीभिः स्वामिरेव च,
तत्र ते कृष्ण विच्छेदो भविष्यति शतं समाः ॥
छायया कलया चापि परप्रस्ता कलंकिनी,
मूढ़ा रायाणपत्नीं त्वां वक्ष्यन्ति जगतीतले ॥
रायाणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने वने,
भविष्यति महायोगी राधा शापेन गर्भजः ॥

बस! महाशाप दे ही तो दिया—भारतके गोकुल में जा वृषभानुके यहाँ गोपकन्याका रूप धारण करो। वहाँ सौ बरसों तक तुम्हें श्रीकृष्णका विरह-दुःख भोगना पड़े। भगवान् श्रीकृष्णका ही एक अंश रायाणके रूपमें वहाँ जायगा जिससे तुम्हारी छायाके साथ सम्बन्ध होगा और इस रहस्यके मर्मको नहीं जाननेवाले मूर्खजन तुम्हें कलंकिनी बना रायाण पत्नी कहकर पुकारेंगे। दारुण शाप सुन श्रीराधा व्याकुल हो उठीं। भारत-भूतल पर जाना पड़ेगा इससे तो उतनी दुःखी न हुईं जितना भगवान् श्रीकृष्णके विरहसे। नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और अतिकातर एवं विह्वल हो प्राणेश्वरसे प्रार्थना करने लगीं कि:—

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि किंकरीवचनं प्रभो,
त्वया विना कथं नाथ यास्यामि धरणीतले ॥
कति कालान्तरं बन्धो! मेलनं च भविष्यति,
प्राणेश्वर ब्रूहि सत्यं ते भविष्यत्येव गोकुले ॥
निमेषं च युगशत भविता मे त्वया विना,
कं द्रक्ष्यामि क्व यास्यामि को वा मां पालयिष्यति ॥

प्राणवल्लभ! यह तुम्हीं तो बताओ कि मैं तुम्हारे बिना भूतल पर जा, कैसे रह सकूँगी। पलभरका भी तुम्हारा वियोग हमारे लिये सैकड़ों युगके समान किस प्रकार व्यतीत होगा। तुम्हारे सिवा वहाँ मैं किसे देखूँगी, किससे बोलूँगी, कहाँ रहूँगी, कहाँ जाऊँगी, सच बताओ। शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता और साथ-साथ हमारा-तुम्हारा बिलगाव भी सम्भव नहीं है। मैं इसको नहीं समझ पा रही हूं, मनसे धीरज भागा जा रहा है। अपनी अनन्य सहचरीकी ऐसी बातें सुन श्यामसुन्दर मुस्करा उठे और बोले—

त्यजाश्रुमोक्षणं राधे भ्रान्तिञ्च निष्फलां सति,
विहाय शंकां निःशंके वृषभानुगृहं व्रज ॥
प्राणाधिके महादेवि स्थिरा भव भयं त्यज,
यथा त्वञ्च तथाहञ्च का चिन्ता ते मयि स्थिते ॥

अयोनिसम्भवास्त्वञ्च भविता गोकुले सति,
अयोनिसम्भवोऽहञ्च नावयोर्गर्भसंस्थितिः ॥

हृदयेश्वरि ! चिन्ता छोड़ो और शीघ्र ही गोकुलमें वृषभानुके यहाँ जानेकी तैयारी करो। हम दोनोंकी गर्भ स्थिति तो हो ही नहीं सकती। तू वहाँ जा और वृषभानुकी पत्नी कलावतीके प्रसवकी प्रतीक्षा करो। गर्भको वायुसे रोककर मायाके बलसे प्रसवकालमें अपना रूप छोड़ शिशुरूप धारण कर लेना। किसी प्रकारकी शंका न करो, कलावती भी कोई सामान्य रमणी नहीं बल्कि,

बभुवुः कन्यकास्तिस्रः पितॄणां मानसात् पुरा,
कलावती रत्नमाला मेनकाश्चातिदुर्लभाः ॥
रत्नमाला च जनक वरयामास कामुकी,
शैलाधिपं हरेरंश मेनका सा हिमालयम् ॥
दुहिता रत्नमालाया अयोनि सम्भवा सती,
श्रीराम पत्नी श्रीः साक्षात् सीता सत्यपरायणा ॥
कन्यका मेनकायाश्च पार्वती सा पुरा सती,
अयोनिसम्भवा सा च हरेर्माया सनातनी ॥
सा लभे तपसा देवी शिवं नारायणात्मकम ,
कलावती सुचन्द्रञ्च मनुवंशसमुद्भवम् ॥

कलावती, रत्नमाला और मेनका ये तीन मानस कन्यायें हैं। रत्नमालाका विवाह विदेहराज जनक, मेनकाका हिमाचलसे है और इनकी तनया श्रीसीता और श्रीपार्वती साक्षात् नारायण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी तथा भगवान् शंकरकी अर्द्धाङ्गिनी बनी हैं। कलावतीका विवाह सुचन्द्र से है। यही सुचन्द्र इस समय शापके कारण वृषभानुके रूपमें आया है। अत हे प्रिये ! किसी प्रकारकी शंका न करो।

तस्या लभस्व जन्मत्वं शीघ्रं नन्दव्रजं व्रज,
त्वामहं बालरूपेण गृह्णामि कमलानने ॥
तत्र हेतोर्गमिष्यामि कृत्वा कंसभयच्छलम् ,
यशोदा मन्दिरे मांञ्च सानन्दे नन्दनन्दनम् ॥
नित्यं द्रक्ष्यसि कल्याणि समाश्लेषणपूर्वकम् ,
स्मृतिस्ते भविता काले वरेण मम राधिके ॥

मैं भी तुम्हारे ही कारण कंसादि दुष्टोंके बधके व्याजसे उसी गोकुलमें नन्द यशोदाके यहाँ आकर तुझसे बालरूपमें ही मिलूँगा और तब तुम्हारी स्मृति जग उठेगी। जानती हो, यह सब हमारी मायाके सिवा दूसरा कुछ नहीं है। हमें वहाँ चलकर तुम्हारे सहयोगसे अनेक कार्य करने हैं। इस समय भूतल पापोंके भारसे दबा जा रहा है। अत्याचार, अनाचार और व्यभिचार पराकाष्ठा पर पहुँच रहा है। अनयसे सारा मृत्युलोक त्रस्त है। पापकी दैनन्दिनी विजय और धर्मकी पराजय हो रही है और सुभगे ! हमारी विरद तो तुम्हें मालूम ही है कि :-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

वही समय आ पहुंचा है। अब हम विलम्ब नहीं कर सकते। हमारे भक्त चीख रहे हैं, उनकी दुर्दशा हो रही है। जब हमारे भक्त ही नहीं रहेंगे तो फिर हमारा अस्तित्व ही क्या रहेगा। और भी देवपिता और देवमाता कश्यप-अदिति का बन्धनमोक्ष करना भी आवश्यक है। ये बसुदेव देवकीके रूपमें मथुरापुरी स्थित कंसके कारागारमें शृङ्खलाओंसे निगड़ित हैं। अतः इन्हीं के यहाँ आविर्भूत हो पुनः गोकुलमें पदार्पण करूँगा। साथ-साथ इन्हें ही यह वर प्राप्त है कि मैं प्रतिकल्पमें इन्हीं के यहाँ आविर्भूत होऊँ रही बात हमारे-तुम्हारे वियोग की, उस सम्बन्धमें कहाँ तक कहूँ, किसी प्रकारकी दूसरी

भावना न लाना। हममें तुममें तो भेद हो ही नहीं सकता। दूधसे धवलता, भूमिसे गन्ध, अग्निसे दाहकत्व और जलसे शैत्य कदापि पृथक् नहीं हो सकता। कुलाल मिट्टी के बिना घट तथा स्वर्णकार सोने के बिना भूषण बनानेमें असमर्थ है; उसी प्रकार तुम्हारे बिना सृष्टिका सृजन आदि सर्वथा असम्भव है। हाँ, मुझे मुचुकुन्द, यवन तथा कंस प्रभृति सैकड़ों आततायियों का दमन, द्वारिकापुरीका निर्माण, राजसूय आदि यज्ञों का अनुष्ठान आदिसे पीड़ित प्रजाकी रक्षा करना परमावश्यक है। इसको सम्पादन किये बिना मेरा कार्य अधूरा ही रहेगा और ये बिना वियुक्तावस्थाके हो नहीं सकते। अतः प्रिये धैर्य रखो—

दिवानिशमविच्छेदो मया सार्द्धमतः परम्,
भविष्यति त्वया सार्द्धं पुनरागमनं व्रजम्॥
कान्ते विच्छेद समये वर्षाणा शतके सति,
नित्यं संमीलनं स्वप्ने भविष्यति त्वया सह॥

मैं भूभार को उतार, मालाकार, तन्तुवाय कुब्जिका आदिको मोक्ष प्रदान कर फिर मैं तुमसे इसी पुण्य वनमें मिलूँगा। नन्द यशोदा तथा गोपादिकोंका शोक मार्जनकर समस्त गोप-गोपिकाओंके साथ इसी गोलोकमें तुम्हारे साथ आऊँगा। वियुक्तावस्थाके समय नित्य ही स्वप्नमें हम दोनोंका सम्मेलन होगा। किसी प्रकारका सन्देह न करो। यह सब हमारी ही योगमायाकी विभूति है। बिरलेही इस रहस्य तक पहुंच पाते हैं, जब कि हमारी अटूट कृपा उनपर होती है। अब भगवती राधिकाके सारे सन्देह मिट गये। पतिके कर्तव्यको पूरा करना ही आदर्श पत्नीका कर्त्तव्य है दूसरा नहीं। अस्तु, श्रीचरणोंमें मस्तक नवा आदेश शिरोधार्य्यकर—

राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारते सति,
वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह॥
अयोनि सम्भवा देवी वायुगर्भा कलावती,
सुषाव मायया वायुं सा तत्राविर्बभूव ह॥

श्री राधा भारतमें गोकुलकी ओर चल पड़ीं। यहाँ वृषभानुकी पत्नी कलावतीके प्रसवका समय नजदीक आ पहुँचा। ठीक समय पर प्रसव हुआ और वायुमय गर्भ होनेके कारण श्रीराधा वहीं प्रकट हो गईं। धन्य है मायाका विस्तार, सारे गोकुलमें यह सम्वाद बिजली-सा फैल गया कि महाभाग वृषभानुके यहाँ कन्यारत्नका प्रादुर्भाव हुआ है। कन्याके आतेही सम्पूर्ण नगरकी श्री चमक उठी, प्रकृति बदल गयी, प्रतिगृह, बीथी, वन, उपवनमें एक नयी उमंग, नया उत्साह, नित्य नवरस और नूतन रंग अपना-अपना साज सजाने लगा। वृषभानु और कलावतीने अपने भाग्य सराहे, गोकुलवालोंने अपने-अपने जन्म सराहे नगरके इस छोरसे उस छोर तक महानन्दकी सरिता प्रवाहित हो चली। क्यों न हो, श्री जगदम्बा ही जहाँ अवतार धारण करें वहाँ की श्रीशोभाके बारेमें फिर कहना ही क्या?

राधा चली गयी। अब मुझे भी वहाँ चलना चाहिये। क्रूर कंस द्वारा प्रपीड़ित वसुदेव-देवकी मथुराके कारागारमें बन्द हैं। चलें, वहाँ जाकर सन्तप्त दम्पतिको आश्वासन दूं। सातके बाद आठवें का समय आ पहुँचा है। इस प्रकार निश्चयकर भगवान् चल पड़े। इधर देवकीके प्रसवका समय आ पहुंचा। कारागारमें ही प्रसव हुआ और भगवान् श्रीकृष्ण वहीं प्रकट हो गये। दम्पति अद्भुत बालक का रूप निहार विस्मित हो गये और क्षणभरमें ही देखा बालक वही शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज

नारायणके रूपमें सामने खड़ा है। शृंखलाएँ पहले ही से टूट गई हैं। दम्पतिको होश हुआ। अपने पूर्व वृत्तान्त स्मरण होने लगे। वासुदेव बोले--अपने कथनानुसार मैं तुम्हारे यहाँ आ गया हूँ। अब विलम्ब न करो। मुझे ले शीघ्रतासे यमुनापार गोकुलमें नन्द यशोदाके यहाँ रख आओ। वहाँ योगमाया शिशुरूपमें वर्तमान है उसे उठा लाओ। सबेरा हुआ चाहता है। अभी तुम्हें कुछ दिनों तक बन्धनमें रहना है फिर मुक्त करूँगा। अवसाद छोड़ दो। पुनः वह भगवान् तुरत ही शिशुरूपमें बदल गये और अपनी माया हटा ली। वसुदेव-देवकीने परामर्श किया। बालकको ले निर्विघ्न यमुना-पार गोकुलमें नन्द यशोदाके घर गये। वहाँ योगमाया सो रही थी। बालकको रख दिया और उसे उठा चले आये। फिर वही बात। स्वयं सपत्नीक बेड़ियोंमें बन्द। सहसा बच्चेके रोनेकी आवाज सुनाई दी। पहरेदार जगे। अपने महाराजको सूचित किया। दुष्ट कंस दौड़ता-हाँफता कारागारके भीतर आया और किया वही जो उसका कर्त्तव्य था।

इधर यशोदाने जाना हमें पुत्र-रत्न मिला। नन्दके पास धाई दौड़ी। नन्द आये। जात संस्कारादि सविधि सम्पन्न हुआ। भोर होते ही गोकुलके घर-घरमें वृत्त पहुँच गया। पुरवासी झुण्डके-झुण्ड बालकको देखने आये, पुरुष-नारी, बालक-बालिका, युवा-वृद्ध सबोंने देखा। ओह! अपूर्व लावण्य, मनमोहक आकृति, धन्य हैं नन्द-यशोदाके भाग्य, जिसकी कोखने ऐसा पुत्ररत्न उत्पन्न किया। कोई कहता, अरे भाई! कुछ समझमें नहीं आता, उधर वृषभानुकी कन्या, उधर नन्दका पुत्र, दोनोंकी अलौकिकता देखते ही बनती है। कोई कहता ये युगल-जोरी तो नहीं है, जो पुण्यक्षीण होनेसे इस गोकुलके अजिरमें आ गये हैं। स्त्रियाँ आपसमें कहतीं—बहन कलावती और यशोदाके भाग्य धन्य हैं, जिनके यहाँ ऐसा पुत्र और ऐसी कन्या आ गई है। मालूम पड़ता है एक सोना है तो दूसरी सुगन्ध, एक चन्द्र है तो दूसरी चन्द्रिका। ऐसा लगता है मानो विधाताने अपना सृष्टिक्रम ही बदल दिया है। देखो न, इन दो अपूर्व शिशुओंके आगमनके बादसे सारा गोकुल कैसा सुप्रसन्न दिखाई पड़ता है। अवश्य ये कोई दिव्य दम्पति हैं इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार तरह-तरहकी बातें सुन नन्द-यशोदा फूले न समाते। धीरे-धीरे कुछ दिन बीते। बालकका नाम रखा गया कन्हैया। पुत्रवत्सला यशोदा कन्हैयाको पलभर भी अलग नहीं रखना चाहतीं। महाभाग नन्द तो हृदयसे बाहर करते ही नहीं।

एक दिन व्रजेश्वर बालक श्यामको लेकर व्रजके वृन्दावनमें गये। वहाँ वन, उपवन, तालाब आदिसे बालकका मन बहला एक कुञ्जके निकटवर्ती वटकी छायामें बैठ विश्राम करने लगे। सहसा देखते हैं कि प्रकृति आलोडित हो रही है। देखते ही देखते नभमण्डल धूम मेघावृत हो चला। अन्तरिक्ष नीरव एवं दिशाएँ स्तब्ध हो गयीं। अनुभव हुआ कि दारुण झंझावात, मेघोंका गम्भीर गर्जन एवं बिजलियोंकी कड़कड़ाहटसे अचल थरथरा उठेंगे और धरणीका भी कलेजा धँस उठेगा। क्रमशः अतिवृष्टि प्रारम्भ हो गयी और लगे सब वृक्ष झूमने। अब तो व्रजेश्वर अपनेको सँभाल न सके, पैरों तलेसे धरती खिसकी-हुई सी मालूम पड़ने लगी। सुतस्नेहसे कातर व्रजाधिप लगे देवी-देवताओंको मनाने। हमारा कृष्ण कैसे बचे, इस प्रलयकारी

हृदयसे; भगवन्! रक्षा करो। प्यारे नीलमणीको छातीसे छिपाये बूँदोंके प्रहार एवं वायुके झँकोरोंसे विक्षिप्त हो उठे। निहारा, बालकृष्णके मुख-चन्द्रको। अघटितघटनापटीयसी बुद्धि चकरा उठी। सहसा श्यामसुन्दर मुस्कुरा उठे। उसी कौतुकी नटवरकी यह माया ही तो थी। अब व्रजेश्वरकी स्मृति जगी। महर्षि गर्गाचार्यने कहा था – नन्द यह बालक सामान्य बालक नहीं, पर वही है जिससे तुम्हें पूर्व जन्ममें वर प्राप्त है। समय आनेपर वृन्दा-बनमें तुम्हें महाप्रभुका दर्शन होगा। बस, तन्मय हो गये और लगे स्वरूपका ध्यान करने। आँखें खुलती हैं तो सामने देखते हैं कि श्रीराधा खड़ी है। लगे तर्क-वितर्क करने-आखिर यह इस सूनसान स्थानमें ऐसे बीहड़ समयमें आयी ही कैसे? समझा; निश्चय ही यह हमारा पुत्र नहीं बल्कि चराचर स्वामी है और यह राधा उसीकी वामाङ्गभूता सह-चरी है। महर्षि गर्गकी सभी बातें सच्ची निकलीं। अनुकूल समय जान मौनावलम्बन छोड़ बोल उठे:--

जानामि त्वां गर्गमुखात् पद्माधिक प्रियां हरेः,
जानामीमं महाविष्णुं परं निर्गुणमच्युतम् ॥
तथापि मोहितोऽहञ्च मानवो विष्णुमायया,
गृहाण प्राणनाथञ्च गच्छ भद्रे यथासुखम् ॥
पश्चाद्दास्यसि मत्पुत्रं कृत्वा पूर्णमनोरथं,
इत्युक्त्वा स ददौ तस्यै रुदन्तं बालकं भिया;
जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं मुखात् ॥

राधे! मैं अब तुम्हें और तुम्हारे श्यामको समझ गया। मैं मनुष्य भला मायाके इस रहस्यको क्या समझूँ; लो अपने प्राणनाथको और अपना मनोरथ पूराकर फिर मुझे पहुँचा देना। अब हटा लो अपनी माया। श्री राधिकाने बालकको ले लिया छातीसे लगाया और हँस पड़ी। कहा भी:—

उवाच नन्दं सा यत्नान्त प्रकाश्यं रहस्यकम्,
अहं दृष्टा त्वयानेन कति जन्म फलोदयात् ॥
प्राज्ञस्तं गर्गवचनात् सर्वं जानासि कारणम्,
अकथ्यमावयोर्गोप्यं चरितं गोकुले व्रज ॥
वरं वृणु व्रजेशत्वं यत्ते मनसि वर्तते,
युग्योश्चरणे भक्तिं देहिनान्यत्र मे स्पृहा ॥

हे व्रजेश, तुम विद्वान् हो, गर्गसे सारी बात सुन चुके हो, अतः अब घर जाओ। लेकिन स्मरण रहे हम लोगोंके इस रहस्यको गुप्त रखोगे। अब जो कुछ इच्छित हो वर माँग लो। अनुकूल अवसर जान व्रजेशने कहा—हमें तो तुम दोनोंके चरणोंमें अविच्छिन्न भक्ति चाहिये और कुछ नहीं। बस मनचाहा वर मिला, अति प्रसन्न हो घरकी ओर लौट पड़े। योगमायाका विस्तृत विस्तार सीमित हो गया। प्राणवल्लभको छातीसे चिपकाये श्रीमती राधिका कान्तारके अन्तर प्रदेशकी ओर चल पड़ीं और एकान्तमें आकर लगीं उस अनोखी छविको निहारने, निरखने और परखने। इतना ही नहीं —

कृत्वा वक्षसि तं कामात् श्लेषं चुचुम्बहं,
पुलकांगित सर्वांगी सस्मार रासमण्डलम् ॥

श्यामसुन्दरको गलेसे लगाया, बार-बार चूमा। सारा शरीर पुलकायमान् हो उठा और गोलोकका रास स्मरण हो चला। रासमण्डलके संस्मरण होते ही देखा कि इस सुनसान प्रदेशमें एक परम मनो-हर अतिरमणीय वितान सज गया। तोरण, पताका तथा नाना देशोद्भव पुष्पोंसे सारा प्रान्त सुशोभित हो जगमगा उठा। यत्र-तत्र रत्नपूर्ण कलशें सैकड़ोंकी संख्यामें कुबेरके भवनको भी लजाने लगीं।

केशर, कस्तूरी, अगुरु, चोवा, चन्दन, कुंकम, सिन्दूर आदि सुगन्धित द्रव्योंसे सम्पूर्ण कानन सुरभित हो उठा। मण्डपकी विचित्र रचनासे श्रीराधिकाजीका अन्तस्तल आकर्षित हो उठा और वे उसके भीतर प्रवेश कर गयीं। अन्तः प्रदेशमें जा देखती क्या हैं कि:—

ददर्श रत्नकुम्भस्थं शीतं स्वच्छं सुधोपमम्,
पुरुषं कमनीयञ्च किशोरं श्यामसुन्दरम्॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं चन्दनेन विभूषितम्,
शयानं पुष्पशय्यायां सस्मितं सुमनोहरम्,
पीतवस्त्रपरिधानं प्रसन्नवदनेक्षणम्॥
क्रोडं बालकशून्यञ्च दृष्ट्वा तं नवयौवनम्,
सर्वस्मृति स्वरूपा सा विस्मयं परमं ययौ॥

श्यामसुन्दर पीताम्बर धारण किये भव्य शय्या पर आसीन हैं। उनकी शोभा विचित्र है। नयी जवानी, श्यामलता सलोना रूप, कमलनयन, करोड़ों मनोजको भी लजा देनेवाली सुन्दरता, ईक्षणमें मादकता हमें अपनी ओर बरबस खींच रही है। हमारा अंक बालक-शून्य है। कैसी विचित्रता है उस आनन्दघनकी। उस लीला वपुधारीकी यह अप्रतिम और अतर्क्य लीला देख विस्मय विमुग्ध हो श्रीराधा अपनी लीला भूल गयी और लगी उस रूपसुधारसका आस्वादन करने। माधवी रूप सुधा-माधुरीने राधाको विक्षिप्त बना डाला। नवसंगमकी लालसा उद्दीप्त हो उठी। सारा शरीर आनन्दातिरेकसे रोमांचित हो उठा। फिर क्या था, पुष्पधनुने श्रीराधिकाजीके ऊपर बाण-प्रहार करना प्रारम्भ कर ही तो दिया। फलतः श्याम-मुख-चन्द्र-चकोरी श्रीराधा नारी सहज विभूति लज्जा एवं संकोचवश खड़ी-खड़ी रसिकराजकी स्नेह-सरितामें लगी डूबने और उतराने। उनकी यह स्थिति देख राधिकाराधन बोल उठेः—

तामुवाच हरिस्तत्र स्मेराननसरोरुहाम्,
नवसंयमयोग्याञ्च पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा॥
राधे स्मरसि गोलोके वृत्तान्तं स्मरणं यदि,
अद्यपूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत् पुरा प्रिये॥

प्रिये! गोलोकका वृत्तान्त तुम्हें स्मरण है। आज मैंने जो बात स्वीकार की थी उसे पूरा करूँगा। तुम्हारे बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता; क्योंकि तू ही सृष्टिका आधार हो और मैं बीजरूप, फिर भी अच्युत हूँ। भगवती राधिका प्राणेश्वरकी पीयूषवर्षिणी वाणी सुन सचेत हो बोलीं:—

स्मरामि सर्वं जानामि विस्मरामि कथं प्रभो,
यत्त्वं वदसि सर्वाहं त्वत्पादाब्जप्रसादतः॥
भक्तस्यैकस्य शापेन गोपिकाहं महीतले,
शत वर्षञ्च विच्छेदो भविता मे त्वया सह॥

नाथ! तुम्हारे चरणकमलकी कृपासे हमें सब कुछ स्मरण है। एक भक्तके शापसे हमें गोपी बनना पड़ा है, साथ-साथ सौ वर्षों तकका आपका वियोग भी स्मरण है। लेकिन हे मायेश! तुम धन्य हो। तुम्हारी मायाके प्रभावसे हमारे जैसे कितने भक्त जन्म-जन्मान्तर तक भ्रममें पड़े रहते हैं। भावनाके अनुकूल ही तुम्हारी कृपा होती है, फिर भी योग्य अथवा अयोग्य दम्पति पर तो कृपा समान ही रहनी चाहिये। तुम सोये हो और मैं खड़ी हूँ। अब तो क्षणभरका भी बिलगाव हमारे अन्तस्थलको व्यथित बना रहा है। अब अधिक देर न करो। जीवनधन! दो अपना चरण कमल, उसे सिरसे लगा वक्षःस्थलमें धारणकर प्रतीक्षामें तप्त हृदयका तपन शान्त करूँ। श्रीराधिकाकी यह अहेतुकी निष्ठा देख

सच्चिदानन्दघनने कहा, प्रिये घबड़ाओ नहीं—

यदेवाचरणं यत्र देशे जन्मनि वा प्रिये,
न खण्डनीयं तत् तत्र मया पूर्वं निरूपितम् ॥
तिष्ठ भद्रे क्षणं भद्रं करिष्यामि तव प्रिये,
त्वन्मनोरथ पूर्णस्यकाल: स्वयं समागत: ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा जगाम पुरतो हरे: ,
माला कमण्डलुकर ईषत्स्मेर चतुर्मुख: ।

जिस देशमें आगमन हुआ हो, जहाँ जन्मलाभ किया हो, वहाँका जो सदाचार है उसे तोड़ना नहीं चाहिये; क्योंकि मैंने ही तो उसकी पहले ही से महत्ता दी है। क्षण भर ठहरो। तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होनेका समय स्वयं आ गया है। इसी बीच जगत्पिता चतुरानन हाथमें माला और कमण्डलु धारण किये भगवान्‌के सम्मुख उपस्थित हुये और दम्पतिकी भिन्न-भिन्न तरहकी स्तुति प्रार्थना की फिर श्रीरमिकेश्वरका मनोगत भाव जान—

तदा ब्रह्मा तयोर्मध्ये प्रज्वाल्य च हुताशनम ,
हरिं संस्मृत्य हवनं चकार विधिना विधि: ॥
ता च तं कारयामास सप्तधा च प्रदक्षिणम् ,
पुन: प्रदक्षिण राधां कारयित्वा हुताशनम् ,
प्रणम्य च पुन: कृष्णं वासयामास ता विधि: ॥
तस्या हस्तञ्च श्रीकृष्णं ग्राहयामास तद्विधि:
वेदोक्त सप्तमंत्राश्च पाठयामास माधवम् ॥
संस्थाप्य राधिकाहस्तं हरेर्वक्षसि वेदवित्,
श्रीकृष्ण हस्त राधाया पृष्ठदेशे प्रजापति: ,
स्थापयित्वा च मन्त्राश्च पाठयामास राधिकाम् ॥
पारिजात प्रसूनानां मालामाजानुलम्बितम् ,
श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधा द्वारा ददौ मुदा ॥
प्रणमय्य पुन: कृष्ण राधाञ्च कमलोद्भव: ,
राधागले हरिद्वारा ददौ मालां मनोरमाम् ॥

जगद्धाताने दोनोंके बीच अग्निदेवका आवाहन कर उसमें विधिवत् हवन किया और दम्पतिसे सप्त प्रदक्षिणा करायी। श्रीराधिकाका हाथ भगवान् श्रीकृष्णके हाथोंमें पकड़वा कर वेदोक्त सात मन्त्रोंको श्यामसुन्दरको पढ़ाया। फिर राधिकाका हाथ हरिके वक्षस्थल तथा हरिका हाथ राधाके पृष्ठदेश पर स्थापित करा प्रजापतिने वेद मन्त्रोंको श्रीराधिका द्वारा भी पढ़वाया। इसके बाद पारिजात पुष्पोंकी मालाओंको लेकर राधाने श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्णने श्रीराधाके गलेमें पहना दी। पुन: पद्मयोनिने श्रीराधिकाजीको भगवान् श्रीकृष्णके वामभागमें बैठाकर सविधि हवन किया। अग्निकी पूर्णाहुति दी और दम्पतिको सम्पुटांजलि करा, वेदोक्त पाँच प्रतिज्ञा-मन्त्रोंको बारी-बारीसे उन्हें पढ़ाया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और भगवती राधिकाका पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ।

एतस्मिन्नन्तरे देवा: सानन्द पुलकोद्गमा: ।
दुन्दुभिं वादयामासुरानक मुरजादिकम् ॥
पारिजात प्रसूनाना पुष्पवृष्टिं चकार ह,
जगुर्गन्धर्व प्रवरा ननृतुश्चाप्सरसो गणा: ॥
तुष्टाव श्रीहरिं ब्रह्मा तमुवाच ह सस्मित:,
युवयोश्चरणाम्भोजे भक्तिं मे देहि दक्षिणाम् ॥

श्रीराधा और कृष्णका परिणयन हुआ जान सारा सुरलोक पुलकित हो उठा। देवोंने दुन्दुभियाँ बजाईं, गन्धर्वलोक आनन्दके गीत गाये और अप्सरालोकने खूब ही नृत्य किया। जगत्पिताने अनुकूल अवसर जान श्रीहरिकी पूरी स्तुति की और कहा—नाथ! इस विवाहकी दक्षिणा हमें अवश्य दें और वह यह कि श्रीयुगल चरणकमलोंमें हमारी अविछिन्न भक्ति सदा बनी रहे। राधाके मनोरथ पूरे हुए।

फिर वही बालक श्रीकृष्ण और वही राधिका, वही वन। महाभाग नन्द घर आ, यशोदाको किसी प्रकार सन्तोष दिला नगरके बाहर उपवनमें टहल रहे थे कि राधा आ पहुँची। बालकृष्णको नन्दके हाथोंमें सौंप दिया और स्वयं अपने घर चली गयीं।

इधर वृषभानुने देखा कोटिपूर्णशशिप्रभा तप्तकांचनवर्णा राधिका तरुणी हुई जा रही है। अतः एक योग्य वरके साथ इसका विवाह संस्कार सम्पन्न करा देना चाहिये। अस्तु, अनुकूल वरकी खोज हुई और वह गोकुल में ही मिला।

अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्,
सार्द्धं रायाणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार ह ॥

वरका नाम था रायाण, उत्तम कुल, अच्छी स्थिति। बस उसीके साथ कन्याका विवाह सम्बन्ध निश्चित कर दिया। फिर स्वकुलाचारके अनुसार वैवाहिक लग्न आदि निश्चित किये गये। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। इसी बीच एक दिन श्रीराधाने अपनी मातासे कुछ इंगित किया, लेकिन उसे वह समझ न सकीं। समझ पाती ही कैसे? यह तो गोलोकका शाप ही था, वहाँ श्रीकृष्ण भगवान्के ऊपर मानके कारण मनमें जो विकार हो गया था उसका फल भोगना था। फल था कलंकिनी बनना और इसलिये उस जगदाधारने पहले ही से ऐसा रूपक रचा रखा था तथा भगवती राधाको यह आदेश दे दिया था कि उस समय अपनी छाया छोड़ अन्तर्हित हो जाना, जिसमें साधारणजन इस रहस्यको न जान सकें और अपनी मूढ़तावश तुम्हें पत्नीही कहकर सम्बोधित करें वैवाहिक लग्न जब उपस्थित हुआ, सारा समाज जुट गया, पुरोहित आये, नेगी आये, नेग ले गये, जब सिन्दूरदानकी तैयारी होने लगी तब—

छायां संस्थाप्य तद्गेहे सान्तर्द्धानं चकार ह,
बभूव तस्यवैश्यस्य विवाहश्छायया सह ॥

मायाधीश्वरी राधिका उस देहमें छाया रख वहीं अन्तर्हित होगईं और उस वैश्यका विवाह छायाके साथ ही हुआ। हालाँ कि यह वैश्य कोई अन्य नहीं बल्कि:—

गोलोके गोपकृष्णांशः रायाणः जात गोकुले,
श्रीकृष्णपत्नी या राधा, तदर्द्धांग समुद्भवा ॥

भगवान् श्रीकृष्णका ही अंश था जिसे साक्षात् हरिने गोकुलमें इसी कार्यके लिये भेजा था। क्योंकि श्रीराधा साक्षात् हरिके अर्द्धांगसे उद्भूता होनेके कारण किसी दूसरेकी पत्नी हो नहीं सकती थीं। वस्तुतः बात तो यह थी कि भगवान् अपने भक्तोंका सृजन, पालन और रक्षा स्वयं करते हैं तथा उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं आने देता। यदि आता है तो चाहे जिस तरह हो, दुलारसे या प्यार से, दुत्कारसे या फटकारसे डाँटसे या दण्डसे उसे निर्विकार बनाता ही है, भले ही उसे उस भक्तके लिये कठिनसे भी कठिन अकर्त्तव्य, निन्दित, घृणित कार्य्य भी करने क्यों न पड़ें। अस्तु, शापके कारण श्रीराधिका गोकुलमें रायाणको छाया, पत्नी भी बनीं; लेकिन राधाका रूप-दर्शन हुआ भगवान् श्रीकृष्णके साथ ही।

स्वप्ने राधापदाम्भोजं न हि पश्यन्ति बल्लवाः,
स्वयं राधा हरेः क्रीडे छाया रायाण मन्दिरे ॥

यही तो है भगवती राधिकाके चरित्रोंकी एक छोटी-सी झलक। कहाँ इस देवीके जीवनमें वह कुत्सित वासनामय भावावेश है, जो हमें आज पग-पग पर पदच्युत बना देता है? यह अतृप्त वासना

जो आज विकासवादकी अखिल पूँजी समझी जाती है, जिसके द्वारा प्रभावित हो हम मानव पशु ही नहीं, बल्कि दानव बनकर तरह-तरहके घृणित कार्य करते भी नहीं अघाते। वह भले ही हमारी नित्य संगिनी बनी रहे, चाहे समाज नरका हो अथवा नारीका, पर इसका सामर्थ्य और साहस ही क्या, जो उन पवित्रात्माओंकी छाया भी छू सके। बात तो वस्तुतः यह है कि हम आज नैतिकतासे इतने नीचे गिर गये हैं और अहर्निश गिरे जा रहे है कि हमारा ज्ञान, विज्ञान और मस्तिष्क सर्वथा विवेक-हीन, निःसार और सदोष बन गया है; फलतः हम पर-दोष एवं पर-छिद्रान्वेषणमें ही जीवन बिता डालना अपना परम लक्ष्य समझने लग जाते है। इतना ही नहीं, हम उन महापुरुषों और देवियोंके चरित्र, जो हमें संसारमें आज भी गौरवान्वित कर रहे हैं; उनमें भी कहीं कुछ कमजोरी है या नहीं, इसीको ढूँढ निकालनेमें ही अपने मस्तिष्क, अपनी विद्वता एवं सज्जनताका एकमात्र श्रेय समझते हैं। उनमें कौन-सी विशेषतायें है, कहाँ कुछ रहस्य है, क्या तथ्य है, इन पर ध्यान जाते ही नहीं, तब तक पहुंचनेकी बात तो दूर रहे। भागवती महिमा इतनी सीधी-सादी नहीं, जो चल-चित्रकी तरह देखी-सुनी जा सके। हाँ, यह भी देखी जाती, सुनी जाती है पर इन बाह्य इन्द्रियोंमे नहीं; उसके लिये आवश्यकता है अन्तरके इन्द्रियोंमे काम लेनेकी और तभी उसके रहस्य भी समझे जा सकते हैं, अन्यथा नहीं। आज भी भक्त एवं सहृदय जनता इन दिव्य चरित्रोंके मनन, कीर्तन कर आनन्दके पोखरेमें डुबकियाँ लगाया करती है। इन चरित्रोंके रहस्योंकी ओर मस्तिष्क लगा, परम प्रभुका साक्षात्कार कर, देश, समाज तथा अपनेको पावन बना, आज भी उनके जन नाच उठते हैं और थिरक उठती है उनकी अन्तरात्मा तथा हृतन्त्रियोंसे एक आध-बार नहीं, बल्कि बार-बार यह ध्वनि निकल पड़ती है कि: —

रा-शब्दोच्चरणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभम्,
धा-शब्दोच्चारणाद्भक्तो धावत्येव हरेः पदम् ॥
आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं वदेद्बुधः,
व्यतिक्रमे ब्रह्म-हत्या लभते नात्र संशयः ।

* * * *

क्या बच्चों को पीटना अनिवार्य है ?

[ले०—श्री गोविन्द शास्त्री दुगवेकर]

प्रत्येक देशके स्वतन्त्र मानव समाजोंकी अपनी एक स्वतन्त्र संस्कृति होती है और उसका वे निरन्तर पोषण किया करते हैं; परन्तु जो समाज अन्य किसी समाजकी अधीनतामें आ जाते हैं, परतन्त्र हो जाते हैं, उनकी संस्कृतिमें सांकर्य आ जाता है और वे अपनी मूलसंस्कृतिसे हाँथ धो बैठते है। अंग्रेजी शासनमें सौ-दो सौ और मुसलमानी शासनमें छः-सात सौ वर्ष रहने के कारण हमारी भी यही दशा हो गयी है। हमने अपनी प्राचीन विशुद्ध संस्कृति भुला दी है। उसमें अंग्रेजों और

मुसलमानोंकी संस्कृतिकी बहुत-सी बातें आ जानेसे संकरता आ गयी है। जब कि अब हम स्वतन्त्रताके वायुमण्डलमें श्वास लेने लगे हैं, जब हमें अपने संस्कृतिरूपी सोनेको गलाकर, उसमें की मिलावट-को पृथक् कर, उसे फिर विशुद्धरूपमें परिणत करने का प्रयोजन प्रतीत होने लगा है। उत्तम और श्रेष्ठ संस्कृतिका शास्त्रकारोंने यह लक्षण निर्धारित किया है कि, जिसमें सत्वगुणकी अभिवृद्धिकी गुञ्जाइश हो, वह अनुकरणीय और उपादेय संस्कृति है और जो रजोगुण या तमोगुणकी ओर ले जावे, वह त्याज्य और हेय है। प्राचीन आर्य-संस्कृति सत्वगुण से आपाततः परिपूर्ण होनेके कारण विदेशीय विद्वानोंने भी उसकी 'आदर्श संस्कृति' कहकर प्रशंसा की है। ग्रामीण कृषकों और निर्धन श्रमिकोंमें भी यहाँ सत्वगुणका कितना उत्कर्ष देख पड़ता था, इसके आँखों देखे उदाहरण उन्होंने अपने यात्रा-वर्णनोंमें लिख रक्खे हैं।

हमारे देशमें नन्हें-नन्हें कोमल बच्चोंको बात-बातमें पीट देने, उनको चोट पहुँचाने, उनके शरीर पर आघात करनेकी जो प्रथा चल पड़ी है, वह ईसाई और मूसाई (महम्मदी) संस्कृतिकी देन है। हमारे आर्य-साहित्यमें इसका कहीं प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु अंग्रेजी-फारसी पढ़े हुए हमारे यहाँ के विद्वान् तोते जब अपने गुरुओंकी सिखायी हुई सिद्धांत स्वरूप कुछ कहावतोंको सुनाकर इसका समर्थन करने लगते हैं, तब उनकी बुद्धि पर दया आ जाती है। एक कहावत इस प्रकार है: —

"Spare the rod spoil the child"

इसी आशयकी हमारी देशी भाषाओंमें भी कहावतें बन गयी हैं। यथाः—

छड़ी लागे छम छम विद्या आवे घम घम।
छड़ी जमामा छोड़ दिया विद्याने मुँह मोड़ लिया।

मानों बच्चे पीटनेके लिए ही जन्म ग्रहण करते हैं। जिस संस्कृतिमें अन्य धर्मियोंको मार डालना पुण्य कार्य माना जाता है, सत्य और हित का उपदेश करनेवालोंको सूली पर चढ़ा दिया जाता है, उसमें स्त्रियों, बहू-बेटियों और बच्चोंको पीटना शास्त्रोक्त माना जाना स्वाभाविक है; परन्तु मानवता के विचारसे यह प्रथा समर्थनके योग्य नहीं कही जा सकती।

नीति विशारद चाणक्यका एक वचन हैः—

लालयेत्पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥

अर्थात् बच्चेका पाँच वर्ष तक पालन (लाड़-प्यार) करे, तदनन्तर दस वर्ष तक उसे अनुशासनमें रहना सिखावे और जब वह सोलहवें वर्षमें प्रवेश करे, तब उसके साथ मित्र जैसा व्यवहार करे। पाँच वर्ष तक बच्चेका लाड़-प्यार करना भला भी जान पड़ता है; क्योंकि उस अवस्थामें वे अबोध और निर्विकार रहते हैं। उनके खेलने-खाने, मचलने, चलने-फिरने, बोलने-हँसने, लुढ़कने-पुढ़कनेमें एक प्रकारका सौन्दर्य रहता है और उससे घरके सब लोगोंका चित्त वे अपनी ओर आकृष्ट किये रहते हैं। तदुपरान्त वे जब अनुशासनमें रहने लगते हैं, तब भावी जीवनकी नींव जमाते हैं। उस समय उन्हें जैसी आदतें पड़ जाती हैं, वैसा ही उनका चरित्र-गठन होता है। यदि १५-१६ वर्षका लड़का गोदके बच्चेकी तरह माँका दूध पीने लगे, तो उसे पागल ही कहना चाहिये। यह अनुशासनके विरुद्ध है। इस श्लोक और गोस्वामी तुलसीदासजीकी

सुप्रसिद्ध चौपाईमें जो 'ताड़न' शब्द आया है, उसका सरल अर्थ है,—'अनुशासन'। 'पीटना' या 'लतियाना' अर्थ करना युक्तियुक्त नहीं है। ढोल भी पीटा नहीं जाता, किन्तु बजाया जाता है। बजानेके कुछ नियम होते हैं। उनके अनुसार उसे काममें लाना ही उसका अनुशासन है।

प्राचीन आर्य-संस्कृतिके अनुसार त्रिवर्णोंके बालक गुरुकुलमें भेज दिये जाते थे, सो पिटवानेके लिये नहीं, किन्तु शिक्षा ग्रहणकर देश, धर्म और जातिकी सेवाका ढंग जाननेके लिये। यदि बच्चोंको पीटने-पीटवानेसे ही उनका जीवन बन सकता है, तो शिक्षासंस्थाओंकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। प्रातःकाल उठते ही लात, घूंसा, थप्पड़, लाठी, जूता, बेत आदिसे उनकी यथेष्ट पूजाकर देनेसे ही काम बन जायगा और इस महँगी—कन्ट्रोलके दिनोंमें जो बच्चोंकी पढ़ाईमें व्यर्थ व्यय होता है, वह बच जायगा।

बच्चोंके मारखानेके तीन स्थान होते :-१ घरके गुरुजन (माता-पिता, ताऊ चाचा, बड़े भाई, ताई-चाची आदि), २—पाठशालाके गुरुजी, मखतबके मौलवी साहब और ३—आपसके झगड़ेकी मार-पीट। घरके गुरुजन, उनके मनके विरुद्ध कोई बात हो जानेसे, क्रोधान्ध होकर चाहे जैसे पीटने लगते हैं। गुरुजी और मौलवी साहब पीटनेमें बुद्धिसे काम लेते हैं और पीटनेकी ऐसी युक्तियाँ खोज निकालते हैं कि, बच्चेको कष्ट तो असहनीय हो, किन्तु शरीर-पर चोटके चिन्ह देख न पड़ें और आपसकी मार-पीटमें सशक्त बच्चे अशक्त बच्चोंको पीट देते हैं। इस मारपीटमें कभी-कभी गहरी चोट आजाती है, आँख फूट जाती है, हाथ-पैरकी हड्डियोंके जोड़ उखड़ जाते हैं और कभी कभी जानपर आफत आ जाती है। एक बार एक बच्चेका उसके साथीने ऐसा गला दबाया कि, उस समय घरके लोग बचानेको न होते, तो उसके प्राण निकल जाते। शिष्टता और सदाचारके वातावरणमें रहनेसे तीसरे प्रकारकी मार तो रुक सकती है; परन्तु गुरुजन और गुरुजी-मौलवी साहबकी मारसे बचनेका कोई उपाय नहीं है। माँ या घरका कोई व्यक्ति बच्चेको यदि पाठ-शालामें पहुंचाने जाता है, तो गुरुजी या मौलवी साहब को यह चेतानेको नहीं भूलता कि, यह बड़ा बदमाश होगया है। इसको खूब पीटिये। इसका परिणाम यह होता है कि, जो विद्यालय बच्चोंके लिये नन्दनवन या मनोरञ्जनका—आनन्दका—स्थान होना चाहिये, वह उन्हें नरक या कारागार प्रतीत होने लगता है और जिन गुरुओंके प्रति उन्हें श्रद्धा होनी चाहिये, वे यमदूत जैसे भयानक देख पड़ने लगते हैं। उनके दर्शनसे ही उनके प्राण सूख जाते और शरीर काँपने लगता है। यह स्थिति हमारे यहाँ ही नहीं; विलायतमें भी है। महाकवि शेक्सपीयरने अपने 'एज यू लाइक इट' नाटकमें इसका बड़ा सुन्दर-सुन्दर वर्णन किया है।

इस देशमें मुसलमानोंका राज्य स्थापित होजाने पर जो मखतब खुले, उनमें बच्चे हण्टरसे पीटे जाते थे और जिस मखतबमें मार अधिक पड़ती हो वह उत्तम माना जाता था। उनका विश्वास था कि, बिना मार खाये विद्या आ ही नहीं सकती। उन मखतबोंमें जिन्होंने शिक्षा ग्रहण की, उन्होंने वही परम्परा आगे भी जारी रक्खी। अंग्रेजी राज्य होने पर पहले पहल ईसाइयोंने यहाँ स्कूल खोले, जो सरकारी सहायतासे चलते थे। उनमें भी पीटनेका

सिलसिला जारी रहा। दो चार बेंत फटकारनेका सभी मास्टरोंको अधिकार था; परन्तु अधिक पीटने का अधिकार हेडमास्टरको ही रहता था। वह अपराधी बच्चेको एक कमरेमें बन्द करके खूब धुनता, जिससे कभी-कभी बच्चेको महीनोंमें खटिया पर पड़े-पड़े हलुआ खाना पड़ता था मार खाते समय बच्चा चीखता, तो किसीके कानों पर जूं नहीं रेंगती थी और इस नृशंसताके विरुद्ध कभी किसी अभिभावकने आवाज ऊँची नहीं उठायी। उन्हें भरोसा था कि, मार खानेसे ही विद्या आती है।

हमारे आदर्श प्राचीन गुरुकुल होने चाहिये; क्योंकि हर एक जातिकी संस्कृति, सभ्यता रीति-नीति, मनोरचना, विचार-प्रणाली, आनुवंशिक संस्कार, विश्वास और लक्ष्य विभिन्न होनेसे तदनुसार ही उसकी शिक्षाकी व्यवस्था होना आवश्यक है। आर्य जातिकी उक्त सब बातें मुसलमानों या ईसाइयों से भिन्न होनेसे अन्य धर्मावलम्बियोंकी शिक्षा-प्रणाली आर्यपरम्पराके अनुकूल नहीं हो सकती हमारे प्राचीन गुरुकुलोंमें पशुबलसे नहीं; किन्तु मनोबलसे अध्यापनका कार्य हुआ करता था। जो अध्यापक ठोंक पीटकर बच्चोंको वैद्यराज बनाना चाहता है, समझना चाहिये कि, वह डार्विनका नातेदार है। हालमें ही पशुसे मनुष्य बना है, परन्तु जबतक उसका पशुभाव बना है, वह कदापि अध्यापन कार्य करनेके योग्य नहीं बन सका है प्राचीन पुराण इतिहास आदि संस्कृत भाषाके साहित्यमें कहीं बच्चोंके पीटे जानेका उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन कालमें हमारे पूर्वज जब बिना मार खाये ही विद्वान् होते आये हैं, तब वर्तमान कालमें ही हमारे कोमल बच्चोंको लतियाने का क्यों अनिवार्य प्रयोजन प्रतीत होने लगा? यह विदेशियोंका अनुकरण नहीं तो क्या है?

प्राचीन गुरुकुलोंमें गुरु-शिष्यका जैसा मधुर सम्बन्ध देख पड़ता था, उसकी वर्तमान विद्यालयों और विश्वविद्यालयोंके गुरु-शिष्योंके सम्बन्धसे तुलना की जाय, तो आकाश-पाताल-सा अन्तर देख पड़ेगा। जहाँ गुरुकुलोंमें शील, सौजन्य, शिष्टाचार और अनुशासनकी सर्वत्र झांकी देख पड़ती थी, वहां आज उद्दण्डता, कलह, दुर्वचन, स्वेच्छाचार और निरंकुशताके बीभत्स दर्शन होते हैं। इतनी कड़ाई मार-पीट, डण्डेका प्रयोग, अर्थदण्ड, अपमान आदि करने पर भी ऐसी विषमता क्यों देख पड़ती है? शिक्षा व्यवसाइयोंके मस्तिष्कका दिवाला निकल गया, इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? गुरुकुलोंमें सबसे पहले यह शिक्षा दी जाती थी कि प्रत्येक शिष्य आचार्यके आज्ञाधीन रहें और उनकी आज्ञाओंका अपना पवित्र कर्तव्य समझकर पालन करे। आज आज्ञा भंगका दौर-दौरा है। विद्यार्थी लोग माता-पिता, राजा तथा गुरुजनकी आज्ञाओंको भंग करने, उनकी अवज्ञा करने, उनको नासमझ समझनेमें कृतार्थ समझते हैं। शास्त्रोंमें इस आचरणको बिना शस्त्रके बध करना कहा है नीतिका बचन है: -

आज्ञाभंगो नरेन्द्राणां द्विजानां मानखण्डनम्।
पृथक् शय्या च नारीणां अशस्त्र वध उच्यते॥

तात्पर्य यह है कि जिन बच्चोंको आज हम मार पीटकर विद्वान् बनाना चाहते हैं, वे ही कल उक्त प्रकारसे हमारा अशस्त्रबध करनेको प्रस्तुत हो जाते हैं।

घरमें बच्चों पर गालियोंके मन्त्रोंसे पवित्र किये हुए लात, जूता, घूंसा, रस्सी, छड़ी, थप्पड़, दीवारसे

सिर टकराने आदि से मारका काम चल जाता है; किन्तु गुरुजीकी पाठशालाका दण्ड-विधान देखकर तो रोमाञ्च खड़े हो जाते हैं। वहाँ बेत, पंखेकी डण्डी, हण्टर आदिके अतिरिक्त कुर्सी बनना, एक पैर पर खड़े होना, निहुरकर पैरके अंगूठे पकड़कर खड़े होना, कोलदण्डा, मुरगा, सूरजका बच्चा आदिके जो दण्ड दिये जाते हैं, उनके आविष्कारमें बड़ी बुद्धि लगायी गयी है। उनसे बच्चेको प्राणान्तिक कष्ट तो भरपूर होते हैं किन्तु शरीर पर मार खाने का कोई चिन्ह नहीं दिखाई देता इन दण्डोंका स्वरूप समझने योग्य है—

जैसे :—कोलदण्डा—इसमें बच्चेके दोनों हाथ घुटनोंके नीचेसे बाहर निकालकर डोरीसे बाँध दिये जाते हैं और केहुनीके जोड़ोंके नीचे पीठकी ओरसे एक मोटा डण्डा ब्योंड़ेकी तरह पहना दिया जाता तथा बच्चेको लेटा दिया जाता है। न हाथ हिला सकता, न पैर। शरीरको खुजला भी नहीं सकता और वेदनाओंसे व्याकुल होजाता है। रोता है, तो कौन सुनता है? उलटे ऊपरसे छड़ी सटकने लगती है। घण्टों पड़ा-पड़ा बच्चा बेचैन हो जाता है।

मुरग़ा—इसमें कोलदण्डेकी तरह घुटनोंसे हाथ बाहर निकालकर कान पकड़वा दिये जाते हैं और पंजोंके बलपर उकडूँ बैठा दिया जाता है तथा गर्दन-पर एक कंकड़ रख दिया जाता है हिलने-डुलनेसे यदि कंकड़ गिर पड़े, तो लात-घूसों और हण्टर-छड़ीसे खबर ली जाती है। इस दण्डमें बच्चेका सारा शरीर भर आता है और आँखोंमें रक्त उतर आता है। इस दण्डसे बच्चेका मस्तिष्क विकृत होनेकी सम्भावना रहती है; परन्तु गुरुजीको इसकी क्या परवाह? उन्हें तो बच्चोंके सतानेमें ही आनन्द आता है।

सूरजका बच्चा—इसमें बच्चेके दोनों हाथ बाँधकर उसे खूँटीमें लटका दिया जाता है। दोनों पैर बाँध दिये जाते हैं और ऊपरसे मार पड़ती है। इसीका लघुरूप यह है कि, कागज़ दबानेकी 'क्लिप' बच्चेके कानमें लटका दी जाती है और फिर अँगुलियोंसे दबाई जाती है, जिससे बच्चा चीखने लगता है। अँधेरी कोठरी (काल कोठरी) में बच्चेको बन्द करके भी सूरजका बच्चा दिखाया जाता है।

कभी कभी इसका परिणाम बड़ा भयानक होता है और वह बच्चेका आजीवन भोगना पड़ता या प्राणोंसे ही हाथ धो बैठना पड़ता है। आँखों देखी दो-चार घटनाओंको नमूनेके रूपमें यहां बता देना उचित जान पड़ता है

भेलसा (ग्वालियर राज्य) के स्कूल की दीवाल-पर एक लड़केके हाथसे स्याही गिर गयी। हेड-मास्टरने बेत उठाया और अन्य लड़कोंको इसके दण्डका स्वरूप दिखानेके लिये उसे एक-एक कमरेमें ले जाकर उसके एक ही हाथमें १०-१२ बेत जमाये। आठ कमरे थे, इस कारण उसपर सब मिलाकर ९६ बेत पड़े। बेत दातौनकी तरह ब्रुश बन गया और बच्चेके हाथ की सब शिराएँ टूट गयीं। हाथसे खून बह रहा था, अन्तमें लड़का बेहोश होकर गिर पड़ा, पर मास्टर साहबको दया नहीं आयी लड़का घर पहुँचाया गया। महीनों डाक्टरोंने मरहम पट्टी-की; परन्तु हाथ अच्छा नहीं हुआ, वह बेकाम हो गया और दाहिना हाथ होनेसे जीविका उपार्जन करनेमें भी वह सदाके लिये असमर्थ हो गया।

चाँदा (मध्य प्रदेश) के एक स्कूलमें मास्टरने एक लड़केको कालकोठरीमें बन्द करनेका दण्ड

दिया। उस अँधेरी कोठरीमें जब लड़का बन्द होगया, तब वहाँ एक साँप निकला और उसे डसने लगा। लड़का बहुत चिल्लाया कि, मास्टर साहब मुझे साँप काट रहा है; परन्तु यह कहकर कि, बहाना कर रहा है, मास्टरने उधर ध्यान नहीं दिया। स्कूल बन्द होनेसे पहले कोठरी खोली गयी, तो लड़का मरा पड़ा हुआ मिला। विद्याप्राप्तिके लिये उसे यमलोकमें भेज दिया था।

मारखानेसे कितने ही बच्चे अन्धे, लंगड़े, लूले, बहरे हो जाते हैं, इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। एक बापने अपने बेटेको एक बड़ा लोटा खींचकर ऐसा मारा कि, उसके पैरकी हड्डी टूट गयी और वह सदाके लिये लँगड़ा होगया। यह चुनारकी घटना है। एक पिताजीने अपने मुन्नूके हाथकी दो अँगुली पकड़कर ऐसी तानीं कि, बीचोबीच हथेली फट गयी और हाथ बेकाम होगया। यह थाना (बम्बई) की घटना है। एक मामाने अपनी भांजीके गालमें ऐसी थप्पड़ जड़ी कि, उसकी आँख की पुतली नाकके नीचे घुस गयी और वह ऐंचातानी होगयी; जिससे उसका विवाह होना कठिन होगया और बहुत-सा धन देकर बड़ी अवस्थाके पुरुषसे उसका सम्बन्ध करना पड़ा। यह सतने (रीवाँ राज्य) की बात है। थप्पड़से बच्चोंके कानके पर्दे तो प्रायः फटा करते हैं।

यह निर्दयता और पशुभावकी चरम सीमा है। राजशासनमें अपराधियोंको जब बेत लगानेका दण्ड दिया जाता है, तब डाक्टर द्वारा जाँच करा ली जाती है कि, वह उतने बेत सह सकता है, या नहीं। यदि न सह सकता हो, तो दण्डका स्वरूप बदल दिया जाता है और बेत लगाये भी जाते हैं, तो डाक्टरके सामने। साथ ही साथ बेत लग जानेपर डाक्टरके द्वारा दवा लगानेकी भी व्यवस्थाकी जाती है। परन्तु जेलके अपराधियोंकी अपेक्षा बच्चोंकी अवस्था बहुत कम होनेपर भी उनके लिये कोई व्यवस्था नहीं। क्योंकि बच्चे पैदा करनेसे ही उन्हें पीटनेका अभिभावकोंको अधिकार प्राप्त हो जाता है और गुरुजीके सामने तो दूसरोंके बच्चे होते हैं। उनको धुननेमें वे क्यों आनाकानी करने लगें? फिर भी आश्चर्य यह है कि, बच्चोंको पाठशालामें पहुँचाते समय अभिभावक गुरुजीको यह चेतानेमें कभी भूल नहीं करते कि, गुरुजी, इसको खूब पीटा करो! बड़ा बदमाश होगया है। 'लातके देवता बातसे नहीं मानते' इत्यादि।

अब यह देखना है कि, जिन बच्चोंके लिये माता-पिता देवताओंकी मिन्नत मानते हैं, अपने सुख-दुःखका विचार न कर अपना सर्वस्व लगाकर बच्चोंका परिपालन करते हैं और उनको अपना जीवनाधार या कलेजेका टुकड़ा मानते हैं, उनको निर्दयतासे क्यों पीटते हैं और ऐसी वाहियातकी गालियाँ क्यों देते हैं, जिनका अर्थ स्वयं नहीं जानते? क्या उनके हृदयमें बच्चोंके प्रति स्नेह नहीं होता? या मार देते समय प्रेमका स्रोत सूख जाता है? इसका उत्तर यह है कि, उनमें स्नेह होता है, प्रेम होता है, सब कुछ होता है; किन्तु उस समय वे क्रोधके वशीभूत होकर अन्धे हो जाते हैं और उनकी विवेक-बुद्धि मारी जाती है। उन्हें बच्चोंको सुधारनेके प्रयत्न करनेसे पहले आत्म निरीक्षण कर अपना सुधार करनेका प्रयत्न करना चाहिए। बच्चे तो बच्चे ही हैं; परन्तु अपनेको ज्ञानी और बुद्धिमान समझनेवाले लोग जब विकारवश हो जाते हैं, तब

बच्चेसे बच्चे ही नहीं; किन्तु दया और विवेकहीन, निरेपशु, या बीभत्स यमकिङ्कर बन जाते हैं।

कभी-कभी न्यायानुसार बच्चोंको दण्ड देना आवश्यक हो जाता है; परन्तु न्याय देते समय न्यायाधीशका मन निर्विकार होना चाहिए। विकार-वश होकर दिया जाने वाला दण्ड अन्याय ही माना जायगा। तुनक मिजाज या क्रोधान्ध मनुष्य न्याय-अन्यायका विचार कब करता है? प्रायः अभिभावकों या गुरुदेवोंके क्रोधावेशमें आजानेपर ही बच्चे पीटे जाते हैं। पीटनेसे बच्चेके शरीर और मनपर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका विचार करनेको उन्हें अवकाश कहाँ? शारीरिक कष्टसे बचनेके लिये बच्चे झूठ बोलने और नाना प्रकार की तिकड़म भिड़ाने लगते हैं। साधारणतः समझनेकी बात है कि, बच्चेको पढ़ाते समय कोई विषय उसके मस्तिष्कमें न उतरता हो और उसे पीट दिया जाय, तो उसकी धृति और ग्रहणशक्ति नष्ट हो जाती है। उसका चित्त पीठकी वेदनासे व्याकुल हो जानेसे उस विषयमें उसका चित्त प्रविष्ट ही नहीं हो सकता, वह सोचेगा क्या खाक? उसको पढ़ाई असह्य कष्ट-कारक हो जाती है और वह पढ़नेसे जी चुराने लगता है। परिणामतः उसका जीवन संकटमें पड़ जाता है और अपढ़ होनेसे आजीवन दुःख भोगता रहता है। किसी वस्तुको हृदयङ्गम करनेके लिये मस्तिष्कका शान्त रहना आवश्यक है। जो अभिभावक या गुरु बच्चेकी बुद्धिका अध्ययन कर तदनुसार उसमें पढ़नेकी अभिरुचि उत्पन्न नहीं कर सकता, वह अध्यापनके कार्य करनेके योग्य नहीं समझा जा सकता। बच्चोंकी बुद्धि यदि डण्डेसे ही समुन्नत हो सकती, तो दो-चार बार कुचल देनेसे ही वह बृहस्पति बन जाता, सरकारको भी विद्या-विभागमें इतना व्यय नहीं करना पड़ता और विद्वानोंको भी अध्यापन-कलामें योग्यता प्राप्त करनेके लिए माथापचाना न पड़ता।

यदि बच्चा कोई अपराध करता है, तो अभिभावक तत्काल क्रोधमें लाल होकर उसे पीट देता है; परन्तु शान्त चित्तसे यह नहीं सोचता कि, उसने यह अपराध क्यों किया, जो उसके लिये ही हानिकारक है। यह भी वह विचार नहीं करता कि किस तरह यह बात इसके चित्तमें उतार दी जाय, जिससे ऐसा यह फिर अपराध न करे। शरीरका घाव डाक्टरों द्वारा अच्छा किया जा सकता है, किन्तु हृदयका घाव कोई अच्छा नहीं कर सकता। महाभारतमें कहा है:—

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचादुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥

अर्थात् बाणों या कुल्हाड़ीसे वृक्षको काट देनेपर भी वह फिर पनप जाता है, परन्तु दुर्वचनसे जो हृदयमें घाव हो जाता है, वह कदापि अच्छा नहीं होता। बच्चोंके हृदयमें अपराधकी बात यदि चुभजाय तो फिर वह कभी अपराध नहीं करेगा। अपराध करनेकी इच्छा होना एक मनोव्यापार ही है। अतः बच्चोंके मनको सुसस्कृत करनेका प्रयत्न करना चाहिए। पीटनेसे विपरीत परिणाम होता है। अधिक अपराध करनेकी प्रवृत्ति होती है; परन्तु अभिभावकोंकी दृष्टि बचाकर। इससे उनकी उन्नति रुक जाती है और वे लुच्च आवारा बन जाते हैं। बच्चे पैदा कर देनेसे ही माता-पिताका कर्त्तव्य समाप्त नहीं होता; किन्तु उनको सुयोग्य बनानेका भार भी उन्हींपर होता है। अतः बच्चोंके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षाका ज्ञान अभिभावकोंको होना चाहिए और

इसके लिये इस विषयका उन्हें मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और क्रोधान्ध न होकर विवेकसे काम लेना चाहिए। साथही यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि, अपनी बात बच्चेके मस्तिष्कमें नहीं उतरती, यह दोष बच्चेका नहीं, अपना है। हम उसे ठीक तरहसे बात समझा नहीं सके। बच्चा तो एक कच्चा घड़ा है। जैसा उसे हम बनावेंगे वैसा वह बनेगा। बच्चोंको शिष्टाचार और सदाचार सिखानेसे पहले हमें मनोनिग्रहपूर्वक अपने आचरणपर संयम रखना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई मिलने आवे और हम उससे मिलना न चाहें, तो झटसे बच्चोंसे कहला दिया जाता है कि कह दो बाबूजी घरमें नहीं हैं। इससे जिस प्रकार उन्हें झूठ बोलनेकी आदत पड़ती है, उसी प्रकार किसीके बागमें टहलते हुए वहाँका कोई फूल तोड़ लेने या बच्चोंसे तोड़ लानेको कहनेसे उन्हें चोरी सिखाई जाती है। किसीके साथ हमें अशिष्ट व्यवहार करते हुए जब वे देख लेते हैं, तब आपभी उद्दण्डता करने लगते हैं। बच्चे अनुकरणशील होते हैं। जैसा अपने बड़ोंको करते देखते हैं, वैसाही स्वयं करने लगते हैं। अतः बच्चोंको सुधारनेसे पहले आत्म-संशोधन और आत्मसुधार करना चाहिए। गीतामें भगवान् भी यही कहते हैं—

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते" ॥

इस वचनको स्मरण रखकर बच्चोंकी शिक्षाके समय क्रोधसे बचे रहना चाहिए। क्रोधके वशीभूत हो जानेपर मनुष्य क्या बन जाता है, इसका वर्णन कैलाशवासी देशभक्त श्रीअश्विनीकुमार दासने अपनी 'भक्तियोग' नामक पुस्तकमें बड़े अच्छे ढङ्गसे किया है। उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर देना उचित जान पड़ता है। श्रीदत्तबाबू लिखते हैं:—

"क्रोध दुर्बलताका परिचायक है। जो तेजस्वी होते हैं, वे कभी क्रोधसे विचलित नहीं होते।" महाभारतमें लिखा है:—

"तेजस्वीति यमाहुर्वै पण्डिता दीर्घदर्शिनः।
न क्रोधोऽभ्यन्तरस्तस्य भवतीति विनिश्चितम्"।

अर्थात् "दीर्घदर्शी पण्डित लोग जिसे तेजस्वी कहा करते हैं, उनके हृदयमें क्रोध कभी प्रवेश नहीं करता, यह निश्चित है।" महाभारतमें युधिष्ठिर द्रौपदी-से कहते हैं:—

"क्रोधमूलो विनाशो हि प्रजानामिह दृश्यते।
क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात्क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि ॥
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते।
वाच्यावाच्ये हि कुपितो न प्रजानाति कर्हिचित् ॥
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा।
हिंस्यात्क्रोधादवध्याँस्तु वध्यान्सम्पूजयेत च ॥
आत्मानमपि च क्रुद्धः प्रेषयेद्यमसादनम्।
क्रुद्धो हि कार्यं सुश्रोणि न यथावत्प्रपश्यति।
न कार्यं न च मर्यादां नरः क्रुद्धोऽनुपश्यति" ॥

अर्थात् "इस लोकमें क्रोधही जीवके विनाशका मूल है। क्रुद्ध व्यक्ति पाप करता है, गुरुजनका भी वध करता है और कटु वचनोंसे अपने कल्याणकर कार्यों-का अवमानना करता है। क्रोधके वशीभूत हो जानेसे मनुष्यको वाच्यावाच्यका ज्ञान नहीं रहता। वह न करने योग्य कोई ऐसा काम नहीं, जो न कर डालता हो और बोलनेके अयोग्य ऐसा कोई वचन नहीं, जो वह बोल न देता हो। क्रोधकी उत्तेजनामें आकर वह अवध्योंका वध कर डालता और वध्योंकी पूजा करता है। यही क्यों, वह आत्महत्या भी कर बैठता

है। क्रोधान्ध मनुष्य किस कार्यका क्या फल होगा, यह नहीं सोच सकता। कौन-सा कार्य उचित है और मर्यादाकी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए, क्रुद्ध व्यक्ति इसको नहीं समझ सकता"।

क्रोध मनुष्यका परम शत्रु है। क्रोध मनुष्यके मनुष्यत्वका नाश करता है। पृथ्वीको नरकमें परिणत करनेवाले संसारमें जो लोम-हर्षणकाण्ड हुआ करते हैं, उनके मूलमें क्रोधही होता है। क्रोधके समय क्रुद्ध व्यक्तिके चेहरेपर दृष्टि डालनेसे ही स्पष्टतया पता चल जाता है कि, क्रोध मनुष्यको किस प्रकार पशुभावापन्न कर देता है। जिसका श्रीमुख तुम्हें बड़ा सुन्दर और मधुर देख पड़ता था, जिसका मुखमण्डल हास्यसे सदा खिला रहता था, जिसको तुम देवता समझ रहे थे, जिसके देखनसे ही तुम्हारे हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आजाती थी, क्रोधके समयमें उसके उसी मुखकमल पर दृष्टि डालो, तो तुम्हें देख पड़ेगा कि, वह स्वर्गीय सुषमा उसमे नहीं रही है। उसने नरकाग्निका विकट रूप धारण कर लिया है आँखें लाल हो गयी हैं, होठ काँप रहे हैं, नकुए फड़क रहे हैं,दम फूल रहा है और उसी मधुरमुखपर कालिमाकी छाया छा गयी है और एक आसुरिक भाव जाग उठा है। उस समय उसको आलिङ्गन करना दूर रहा, उसके पास जानेका भी साहस नहीं होता। सुन्दरसे सुन्दर मनुष्यको कुरूपमे कुरूप बनानेमें क्रोधसे बढ़कर कोई शत्रु या मनोविकार कृतकार्य नहीं हो सकता। क्रोधमें आकर मनुष्य क्या नहीं कर सकता? संसारमें बच्चेसे बढ़कर प्यारा कौन हो सकता है? वेदोंने तो पुत्रको आत्माही कहा है 'आत्मा वै पुत्र निमसा' परन्तु एक विद्वान् और प्रतिष्ठित सज्जन उसी आत्माका क्रोधके प्रभावमें आकर एक खांडेसे सिर उतारनेको प्रस्तुत हो गये थे। खांडा पुराना था और जलावनकी लकड़ी फाड़नेके काम आता था। उसमें धार थो नहीं और वे महाशयजी भी कभी मुरगी तक नहीं काटे थे। लगे बच्चेके गलेपर खाँडा रेतने। दिनका समय था। बच्चा चिल्लाया, तो लोग दौड़ पड़े। बच्चेके प्राण बचे; परन्तु यदि समयपर लोग न आ पाते, तो बच्चा अकारण प्राणोंसे हाथ धो बैठता। उसका भाग्य अच्छा था। बेचारा चिरंजीवी हो।

क्रोधमे जिन रोगोंकी सृष्टि होती है, उनको सोचतेही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। चिकित्साशास्त्रके स्वदेशी और विदेशी पारदर्शी विद्वानोंका मत हैं कि, अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा, नाक हृत्पिण्ड और पाकस्थलीसे रक्तस्राव, रक्तवमन आदि रोग क्रोधके वशीभूत हो जानेसे होते हैं। कभी-कभी तो क्रोधावेशमें मृत्यु भी हो जाती है। बगालके बाकरगंज जिलेके एक गाँवकी दो स्त्रियोंमें विवाद चल पड़ा था। एकदिन उनमेंमे एक स्त्री दूसरीको मारने दौड़ी, तो दूसरी एक घरमें जाकर छिप गयी और दरवाजा बन्द कर लिया। पहलीने दरवाजा बहुत खटखटाया; परन्तु जब नहीं खुला, तो वहीं बैठ गयी। पहले तो उसका सारा शरीर थर-थर काँप रहा था, फिर वह मूर्छित हो गयी और थोड़ीही देरमें मरगयी।

पागलखानोंकी रिपोर्टोंसे भी जाना जाता है कि, उन्मादका प्रधान कारण क्रोध है। इसका तो सभीको अनुभव है कि, क्रोधका झटका बैठतेही भोजनकी इच्छा नहीं होती, क्षुधा घट जाती है और उस समय रक्तका वेग बहुत बढ़कर वह शरीरके नाना स्थानोंमें सञ्चालित होने लगता है, जो विशेष क्षतिकारी होता

है। क्रोधसे मस्तिष्कमें आघात होता है और उसीसे उन्मादकी सूचना मिलती है। क्रोधसे पाचनशक्ति भी कम होजाती है। क्रुद्ध व्यक्ति धैर्यपूर्वक अपना मुँह आइनेमें देखे, तो अपनी आसुरी मूर्ति देखकर वह लज्जित हुए बिना नहीं रहेगा और अपने आपको धिक्कारने लगेगा। परन्तु क्रोधमें वह ऐसा क्यों करने लगे?

प्रसिद्ध पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता प्लेटो मौनावलम्बनके द्वारा अपना क्रोध दमन करनेमें सफल हुआ था। वह क्रोध आतेही चुप होजाता था और जब क्रोध ठण्डा हो जाता, तब जिसको जो दण्ड देना होता था, दिया करता था। एक दिन वह इसी तरह क्रोध आजानेसे एकान्तमें चुप होकर बैठ रहा था। इतनेमें उसके एक मित्रने आकर पूछा,– 'प्लेटो, क्या कर रहे हो?' प्लेटोने उत्तर दिया,– 'मैं एक क्रुद्ध व्यक्तिको दण्ड देरहा हूँ।' उसका मत था, 'यदि किसीको कोई दण्ड देना हो, तो क्रुद्ध अवस्थामें दण्डदेना उचित नहीं है। उस समय दण्ड देनेसे दण्डकी मात्राकी मर्यादा नहीं रहती। क्रोधका आवेग घट जानेपर शान्तचित्तसे दण्डविधान करना चाहिये; जिससे किसीके साथ अन्याय नहीं हो पावे। क्रोधके समय स्थान-परिवर्तन कर देना भी उपकारी होता है।'

परन्तु इन सब बातों पर क्रोधी अभिभावक या गुरुजी कभी विचारही नहीं करते और कोमल बच्चे मारके शिकार बनते हैं। मनके विरुद्ध कोई बात हो जानेसे ही मनुष्यको क्रोध आता है। 'बन्दर बालक एक समान' इस कहावतके अनुसार बच्चे प्रायः हमारे मनके विरुद्ध बहुतसी बातें किया करते हैं। क्योंकि उनके लिये दुनियाँ नयी रहती है, हमारा अनुभव उनको कहाँ? ऐसे समयमें धीरता और समझदारीसे काम लेना और आत्मसंवरण करना उत्तम है। बच्चोंको सन्मार्ग दिखाने और असन्मार्गसे परावृत्त करनेके लिये कोई निरापद उपाय सोचना चाहिये।

बालकोंको सन्मार्गमें लानेमें मृदुता जैसी कार्यकारी होती है, वैसी कठोरता हो नहीं सकती। कठोर शासनसे जितना फल होता है, मधुर शासनसे उससे हजारगुना अधिक फल होता है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं। इस सत्यका अनुभव प्रयोगके द्वारा शिक्षक और अभिभावक करके देखें, तो उन्हें अपनी भूल आप विदित हो जायगी। कोई क्रुद्ध-व्यक्ति यदि तुम्हें मारने दौड़े और तुम मृदुतासे उसका सामना करो, तो देखोगे कि, मृदुताके आगे क्रोध परास्त हो जायगा। महाभारतमें लिखा है:—

"मृदुना दारुणं हन्ति मृदुना हन्त्यदारुणम्।
नासाध्यं मृदुना किञ्चित्तस्मात्तीव्रतरं मृदु॥"

"मृदुतासे मृदु और कठोर दोनोंको वशमें किया जा सकता है। मृदुताके लिये असाध्य कुछ भी नहीं है। अतः मृदुता कठोरतासे बहुत अधिक तीव्र होती है।" 'ठण्डा लोहा गरम लोहेको काट देता है' यह कहावत प्रसिद्ध ही है।

आश्चर्य यह है कि, आर्य परम्पराके विरुद्ध और आर्य सभ्यताके लिये लज्जाजनक बच्चोंकी पिटाई की यह प्रथा मुसलमानी शासनकालसे चल पड़नेपर इसकी बुराइयोंपर अबतक किसी भारतवासीने विचार नहीं किया और न इसको रोकनेके लिये कोई आवाजही उठायी। उलटे यावनो और आंग्लसंस्कृति-सम्पन्न अभिभावकों और गुरुओंके द्वारा, स्वयं अपनाये जानेके कारण वही अपौती

परम्परा अपनी सन्तानके लिये भी अक्षुण्ण रक्खी गयी, जो घर-घर और प्रारम्भिक पाठशालाओंमें अंशतः देख पड़ती है।

धन्य हैं वे पचीसों हजार बच्चोंकी माता डाक्टर एनी बेसेण्ट, जिन्होंने इस देशमें सबसे पहले इस प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया और सरकार पर अपना पूरा प्रभाव डालकर हाईस्कूलोंसे यह प्रथा उठादी। उनकी हाईस्कूलके एक हिन्दी मास्टर सुप्रसिद्ध हिन्दीके लेखक लाला भगवानदीनजीने एकबार एक छात्रका कान ऐसा ऐंठा, जिससे उसके कानसे रक्त बहने लगा। इसका पता लगते ही उस समयके हेडमास्टर पं॰ इकबालनारायण गुर्टू साहबने उन्हें तुरन्त नौकरीसे हटजानेकी आज्ञा दी। बहुत अनुनय विनय करनेपर नौकरी तो रह गयी; किन्तु लालाजीको इस अपराधके लिये प्रार्थनाके समय भरी सभामें सब बालकोंके सामने क्षमा माँगनी पड़ी थी। अब एक विदेशी महिला मिसेस माण्टसरी महोदयाने बच्चोंकी शिक्षाके लिये एक नयी वैज्ञानिक प्रणाली निकाली है, जिसका प्रचार संसारभरमें जोरोंसे होरहा है। भारतमें भी उसकी शाखा है और प्रयोग करके देखा गया है कि, उनकी प्रणाली सफल हुई है।

माण्टसरी प्रणालीका आधार मनोविज्ञान है। बच्चा अपराध क्यों करता है या अमुक बच्चेने अमुक अपराध क्यों किया, इस विषयका मनोविज्ञानके अनुसार अध्ययन किया जाय तो उसके निवारणके सात्विक उपाय भी निकल सकते हैं और तामसिक उपायोंसे हाथ खींच लिया जा सकता है। अपराधी बालकसे घरके सबलोग यदि अबोला कर दें, तो वह स्वयं अपने अपराधको खोजनेकी चेष्टा करेगा कि, सबलोग मुझसे क्यों बात नहीं करते हैं। क्रमशः इसी तरह उसे आत्म-निरीक्षण करनेका अभ्यास हो जायगा और आगे चलकर वह उन्नत विचारशील, सदाचारी तथा प्रतिष्ठित नागरिक बन जायगा। क्रोधके वशीभूत होनेसे अन्तमें दुःख, दौर्मनस्य और ग्लानिके सिवा और कुछ हाथ नहीं आ सकता। बंगाली बच्चोंको यह बहुत ठीक ही सिखाया जाता है कि—

"दप् कोरे जोले उठे आगून जे भोन,
धप् कोरे चोले आसे राग ओने भोन।
आगून नीबिया गेले पोड़े थ के छाय,
राग ओ थामिया गेले मोने दुःख पाय"॥

अर्थात आग जैसी धप्से भभक उठती है, क्रोध भी वैसाही धप्से सिरपर सवार हो जाता है; परन्तु आगके बुझ जाने पर जिस प्रकार राख पड़ी रहती है, उसी प्रकार क्रोधके शान्त हो जाने पर मनमें बड़ा दुःख (पश्चात्ताप) होता है"।

हम आर्य हैं हमनेही संसारको किसी समय सभ्यताका पाठ पढ़ाया है। हमें सर्वदा समाजमें सत्वगुणका उत्कर्ष करनेकी ओर ध्यान रखना चाहिए। आजके बच्चे कलके नागरिक हैं। उनके सामने अपने चारित्र्यका ऐसा सुन्दर आदर्श रखना चाहिए, जिससे उनका भावी-जीवन सुखमय हो और संसार उनका अनुकरण करनेको उत्कण्ठित रहा करे। रगड़से तो चन्दनसे भी आग निकलती है, जैसाकि—गोस्वामी जीने कहा है—

"अतिशय रगड़ करे जो कोई।
अनल प्रकट चन्दन तें होई"॥

——

काशीराज दिवोदास

प्राचीन-कालमें दिवोदास नामसे प्रसिद्ध एक काशीराज हुए हैं, स्कन्द पुराणमें उनके आदर्श शासनका वर्णन मिलता है। यह अगस्त तथा कार्तिकेय के सम्वाद रूपमें है। इससे प्राचीन-कालके आदर्श राज्यशासन तथा आदर्श राजाका दर्शन होता है। —सम्पादक

भगवान् अगस्त्यजीने प्रश्न किया—भगवन्! भगवान् शंकरने राजा दिवोदाससे किसप्रकार काशीपुरीका परित्याग करवाया?

कार्तिकेयजीने कहा—गिरिराज मन्दरकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव ब्रह्माजीके बचनोंके गौरवसे मन्दराचलको चले गये। उनके जानेपर उन्हींके साथ सम्पूर्ण देवगण भी उन्हींके साथ वहाँ चले गये। भगवान् विष्णु भी पृथिवीके वैष्णव-तीर्थोंका परित्याग करके जहाँ उमानाथ भगवान् शिव विराजमान थे, उसी मन्दराचल पर चले गये पृथिवीसे देव समुदायके चले जाने पर प्रतापीराजा दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द राज्य किया उन्होंने काशीपुरीमें सुदृढ़ राजधानी बनाकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए सबको उन्नतिशील बनाया। हाथियोंसे भी अधिक बलवान महाराजा दिवोदासका अपराध कभी नागलोग भी नहीं करते थे। दानव भी मानवकी आकृति धारण करके उनकी सेवा करते थे। गुह्यक लोग सब ओर मनुष्योंमें राजाके गुप्तचर बनकर रहते थे। उनकी राजसभामें बैठे हुए विद्वानों एवं मन्त्रियोंको किसीने कभी शास्त्रोंद्वारा नहीं हराया तथा रणाङ्गणमें डटे हुए उनके योद्धाओंको कभी किसीने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा परास्त नहीं किया। उनके राज्यमें कभी ऐसे लोग नहीं देखे गये जो पद-भ्रष्ट तथा दूसरोंके द्वेषभाजन हों। उस समय सब प्रजा अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित एवं सुखी थी। राजा दिवोदासके राज्यमें सभी गाँव ईति भीतिसे रहित थे। कोई गाँव ऐसा नहीं था, जिसकी-रक्षाके लिए राजकर्मचारी उपस्थित न हों। घर-घरमें लोग कुबेरके समान धन-दान करनेवाले थे।

इसप्रकार काशीमें राज्य करते हुए दिवोदासके अस्सीहजार वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये। अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते रहनेवाले राजा रिपुञ्जय (दिवोदास) के द्वारा थोड़े से भी अधर्मका संग्रह नहीं हुआ। वे राजनीति सम्बन्धी छः गुणों के ज्ञाता थे। उनका चित्त अपनी त्रिविध शक्तियोंसे सदा उत्साहित रहता था। वे नीतिनिपुण पुरुषोंके समस्त उपायोंका ज्ञान रखने वाले थे। इसलिए उनके छिद्रों (दोषों) को देवता भी नहीं जानते थे। दिवोदासके राष्ट्रमण्डलमें सभी पुरुष एकपत्नी व्रती थे। स्त्रियोंमें कोई भी ऐसी नहीं थी जो पतिव्रता न हो। एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं था, जिसने वेद शास्त्रोंका अध्ययन न किया हो। कोई भी क्षत्रिय ऐसा न था, जो शूरवीर न हो। एक भी वैश्य ऐसा नहीं दिखाई देता था, जो अर्थोपार्जनके काममें कुशल न हो। शूद्र अनन्य-भावसे द्विजातियोंकी सेवामें लगे रहते थे। उनके राज्यमें अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मचारी थे, जो सदा गुरुकुलके अधीन रहकर वेद-विद्याके अध्ययनमें तत्पर थे। गृहस्थलोग अतिथि-सत्काररूपी धर्ममें कुशल, धर्मशास्त्रोंके मर्मज्ञ तथा

सर्वदा शुभ आचरणोंमें संलग्न रहनेवाले थे। तीसरे आश्रमको स्वीकार करनेवाले वानप्रस्थी वनमें उपलब्ध होनेवाली जीविकाके प्रति ही आदर रखते थे। ग्रामीण वार्ताओंके प्रति उनके मनमें कोई उत्सुकता न थी और वे वैदिकमार्गमें चलने वाले थे। उनके राज्यमें रहनेवाले सन्यासी सब प्रकार की आसक्तियोंसे रहित जीवनमुक्त, संग्रह-शून्य, मन, वाणी और कर्मरूपी दण्डसे युक्त तथा सर्वथा निरग्रह थे। दूसरे अनुलोम और विलोम कर्मसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंने भी अपनी पूर्वपरम्परासे प्रचलित धर्ममार्गका किञ्चिन्मात्रभी परित्याग नहीं किया था। राजा दिवोदासके राज्यमें कोई भी सन्तानहीन, निर्धन, वृद्धोंकी सेवा न करनेवाला तथा अकाल मृत्युसे मरनेवाला नहीं था। चञ्चल, वाचाल, वञ्चक हिंसक पाखण्डी, भाँड, रडुवे और मदिरा बेचनेवाले भी नहीं थे। सर्वत्र मन्त्रोंका घोष सुनाई देता था। पद-पदपर शास्त्र-चर्चा सुनायी देती थी। सब ओर शुभ वार्तालाप होते और आनन्दसे मंगल गीत गाये जाते थे। मांस भक्षी, ऋण लेनेवाले और चोर भी उनके राज्यमें नहीं थे। पुत्र पिताके चरणोंकी पूजा, देवाराधना, उपवास, व्रत, तीर्थ, और देवोपासनाको परमधर्म समझ कर करते थे। नारियाँ अपने पतिके चरणोंकी पूजा, उनके वचनोंको सुनना और स्वामीकी आज्ञाका पालन करना अपना श्रेष्ठ धर्म समझती थीं। सबलोग अपने बड़े भाईकी सदा पूजा करते थे। सेवक प्रसन्नता पूर्वक अपने स्वामीके चरण-कमलोंकी पूजा करते थे। छोटी जातिके लोग ऊँची जातिके लोगोंके गुण और गौरवकी प्रशंसा करते थे। काशीपुरीके रहनेवाले सब मनुष्य तीनों समय वहाँके देवताओंकी बार-बार सेवा-पूजा करते, सब विद्वान् सब स्थानों पर अपनी मनोवाञ्छित वस्तु पाकर सम्मानित होते थे। विद्वान् लोग तपस्वी महात्माओंकी, तपस्वी महात्मा जितेन्द्रिय पुरुषोंकी, जितेन्द्रिय महापुरुष ज्ञानियोंकी और ज्ञानीलोग शिवयोगियोंकी पूजा करते थे। ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें दिनरात विधिपूर्वक उत्तमरूपसे तैयार की हुई मन्त्रपूत एवं बहुमूल्य हविका हवन किया जाता था। दिवोदासके राज्यमें जहाँ-तहाँ सब ओर पग-पगपर शुद्ध द्रव्यराशिके द्वारा बावली, कुआँ और पोखरा खुदवानेवाले तथा बगीच लगानेवाले धर्मात्मा पुरुष बहुत बड़ी संख्यामें थे। वहाँ सब जातिके लोग अनिद्य (उत्तम) सेवा-कार्य से सम्पन्न हो हृष्ट पुष्ट दिखायी देते थे। इसप्रकार सर्वत्र शुद्ध एवं पवित्र बर्ताव करने वाले उस भूपालके छिद्र ढूँढ़नेके लिए देवताओंने बहुत चेष्टा की किन्तु उन्हें थोड़ा सा भी छिद्र नहीं प्राप्त हो सका।

———

आर्य-महिलाके नियम

१—'आर्यमहिला' श्री आर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करनाही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बनने-वालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेके बाद में कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तर-में विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिए पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६ सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंट के पतेसे आना चाहिए।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होने वाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है:--

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
„ „ तीसरा पृष्ठ	२५)	„
„ „ चौथा पृष्ठ	३०)	„
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	„
„ १/२ „	१२)	„
„ १/४ पृष्ठ	८)	„

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

क्रोडपत्र

क्रोडपत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये, अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला-कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।
मुद्रक—सर्वोदय प्रेस, लहुराबीर, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की मासिक मुखपत्रिका

फाल्गुन-चैत्र सं० २००८-९ | वर्ष ३३, संख्या ११-१२ | फरवरी-मार्च १९५२

काहे ते हरि मोहिं बिसारो !

जानत निज महिमा मेरे अघ, तदपि न नाथ संभारो ॥

पनित-पुनीत दीन-हित असरनि-सरन कहत श्रुति चारो ।
हौं नहिं अधम सभीत दीन किधौं वेदन मृषा पुकारो ॥

खग - गनिका - गज - व्याध-पाँति जहँ - तहँ हौंहूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपानिधान, परसत पनवारो टारो ॥

जौ कलिकाल प्रबल अति हो तो तुव निदेस तें न्यारो ।
तौ हरि रोष भरोस दोष गुन तेहि भजते तजि गारो ॥

मसक बिरंचि बिरचि मसक सम, करहु प्रभाव तुम्हारो ।
यह सामर्थ्य अछत मोहिं त्यागहु नाथ तहां कछु चारो ॥

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी एम. ए., बी. टी.

विषयानुक्रमणिका

(*)

अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

फाल्गुन-चैत्र सं० २००८-९ | वर्ष ३३, संख्या ११-१२ | फरवरी मार्च १९५२

प्रार्थना

हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो ।

समदरसी है नाम तिहारो, चाहे तो पार करो ॥

इक नदियाँ इक नार कहावत, मैलो नीर भरो ।

जब दोऊ मिलि एक बरन भये, सुरसरि नाम परो ॥

एक लोहा पूजा में राखत, एक घर बधिक परो ।

पारस गुण अवगुण नहिं चितवे, कञ्चन करत खरो ॥

यह माया भ्रम जाल कहावे, 'सूर' श्याम सगरो ।

अबकी बेर मोहिं आनि उबारो, नहिं प्रण जात टरो ॥

——

आत्म-निवेदन ।

क्वचिदपि कुमाता न भवति ।

माँ ! जगदम्बे ! कबतक ताड़न करेगी ? हमारी दुःख दुर्दशाओंकी तो सीमा नहीं है। हम भूखे-नंगे बिलख रहे हैं और दाने-दानेके लिये तरस रहे हैं, उदर-पूर्तिके लिये अन्न नहीं है और शरीर ढाँकनेके लिये वस्त्र नहीं है। कहीं वर्षोंसे सूखा पड़ा है, कहीं अतिवर्षासे बढ़िया आकर सब कुछ बहा ले जाती है तो कहीं असमय वर्षा होकर सारा सस्य नष्ट हो जाता है, अन्य कहीं भूकम्प होकर सब कुछ पृथ्वीमें समा जाता है। आज विज्ञान का युग है, नित्य नये आविष्कार होते हैं परन्तु ऐसा कोई आविष्कार नहीं हुआ जिससे हमारे इन दुःखोंका अन्त होता। संसारमें जितने आविष्कार अबतक हुए एटम बम, आक्सिजनबम आदि ये सब प्राणियोंके भयंकर विनाशके लिये हुए, शान्ति एवं सुखके लिये नहीं, यद्यपि शान्ति एवं सुखकी खोजमें सभी दिनरात अशान्त हैं। इन सबका एकही कारण है कि हमने तुमसे मुँह मोर लिया है, हम तुम्हें भूल गये हैं, हम परस्पर के ईर्षा, द्वेष, स्वार्थपरता, इन्द्रियलिप्सा की आगमें झुलस रहे हैं। अनाचार, भ्रष्टाचार, दम्भ अभिमान, प्रमाद आदिसे उन्मत्त हो हम सदसद् विवेक खो चुके हैं। हमने अपने धर्म, कर्तव्य एवं मनुष्यत्वकी तिलाञ्जली दे डाली है। हमने उचित-अनुचित जिस उपायसे भी हो, अपने इन्द्रियोंकी तृप्ति और उसके भोगके साधनोंके संग्रहकोही अपने जीवनका चरम लक्ष्य मान लिया है। इस कारण अपने तुच्छ स्वार्थोंके लिये अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थों का नाश करना हमारा प्रतिदिनका कार्य होगया है, उदरपूर्ति और कामनाकी तृप्ति हमारा एकमात्र पुरुषार्थ रह गया है। हमारी इन नीचताओंके कारण माँ तुम हमसे रूठ गयी हो, तुमने मानों हमें दण्ड देनेके कराली कालीका यह विकराल रूप धारणकर लिया है। इसी कारण आज हम सब ओरसे दैविक-भौतिक संकटोंसे घिरे हैं; संसारमें किसीमें सामर्थ्य नहीं जो हमें इनसे बचा सके। परमवात्सल्यमयी सर्वशक्तिमयी माँ ! हम जैसे-तैसे तुम्हारी ही सन्तान हैं, तुम्हारी शरण हैं; हमारे अगणित अपराधोंको क्षमा करो, पुनः एक बार हमें अपनी स्नेहभरीदृष्टिसे देखो, हमारी दुःख दरिद्रता दीनता दूर हो, हमारी बुद्धिमें विवेक, मनमें साहस और शरीरमें शक्तिका सञ्चार हो। हम तुमसे कभी विमुख न हों। महाशक्तिमयी मातः हमें ऐसी शक्ति दो जिससे हम तुम्हारी सेवाके लिये जियें और सदा अपने देश, धर्म और कर्तव्यके लिये मरने-मिटनेको तत्पर रहें। माँ ! हम महान् अपराधी हैं, तब भी तुम्हारी सन्तान हैं। कुपुत्र होता है, परन्तु कुमाता नहीं होती "कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"। वासन्ती नवरात्रमें तुम्हारी आराधना करते हुए हम तुम्हारे चरणोंमें यही प्रार्थना करते हैं कि—

सर्वे-भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदुदुःख भागभवेत् ॥

सब लोग सुखी हों, सब नीरोग हो, सभी शुभ देखें, अशुभ किसीका न हो। कोई भी दुःखका भागी न हो।

—

ईश्वर सरकारको सुबुद्धि दें।

देशव्यापी चुनाव समाप्त हो गया। इसे चुनाव नहीं, चुनावका अभिनय कहना अधिक उपयुक्त होगा। जो भी हो, इसबार किसी प्रकार कांग्रेस पुनः शासनके सिंहासनपर आसीन हो गयी है; परन्तु इस चुनावसे यह तो अवश्य स्पष्ट होगया कि यदि कांग्रेस पद-त्यागकर चुनाव लड़ती और निष्पक्ष चनाव होता तो उसकी विजय असम्भव-प्राय: थी; क्योंकि साधारणजनता कांग्रेसी कुशासन-से ऊब उठी है। इस विषयको प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरूने भी अपने चुनाव-दौरेमें अनुभव किया है ऐसा अनुमान होता है। उन्होंने एक प्रेस कान्फरेन्समें कहा भी था कि यदि मैं स्वयं देशभरका दौरा न करते तो कांग्रेसके नेताओंमें बहुत कम लोग ऐसे थे जो अपना कार्य करते हुए दूसरेकी सहायता करते। अब आगामी पाँच वर्षोंका और समय कांग्रेस सरकारको मिलगया है। उसे चाहिये कि अब भी सावधान हो जाय और समाज-सुधारके नामसे किसीके धर्ममें हस्तक्षेप न करे और किसीकी धार्मिक, सामाजिक स्वतन्त्रताका अपहरण करनेका प्रयत्न न करे। अन्न, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, शिक्षा, रक्षा और न्याय जिनके लिये जनता आज तरस रही है उसकी सुव्यवस्था करे। जनता किसी भी शासनसे इन्हीं सुविधाओंकी आशा रखती है और इन्हीं सातोंकी सुव्यवस्था ही किसी भी सरकारका पहला कर्त्तव्य है; परन्तु यह कटु किन्तु निर्विवाद सत्य है कि कांग्रेससरकार इन कार्योंमें सर्वथा असफल रही। हाँ, कांग्रेस-सरकार योजना बनानेमें सबसे आगे रही। नित्य नयी-नयी अरबों रुपयोंकी योजनायें बनती रहीं और उनपर भूखी-नङ्गी जनताकी गाढ़ीकमायीके करोड़ों रुपये नष्ट किये गये। कोई योजना अब तक कार्यान्वित नहीं हुई और न जनताका उससे कोई हित ही हुआ। हिन्दू-कोडबिलपर ही जनताके करोड़ों रुपये व्यय किये गये; परन्तु जनमत उसका घोर विरोधी होनेसे उसमें भी सरकार असफल रही। यदि ये करोड़ों रुपये देशके बच्चोंकी शिक्षा और स्वास्थ्यके लिये व्यय किये गये होते तो बहुत कुछ कार्य हुआ होता। अस्तु, हमारी मंगलमय श्रीभगवानके चरणों-में यही प्रार्थना है कि कांग्रेस-सरकारको अब भी सुबुद्धि दें जिससे जनताका दुःख दूर हो।

हिन्दू संस्कृति समीक्षा

आर्य-संस्कृति

इधर प्रचलित भाषाओंमें अंग्रेजी 'कल्चर' शब्दके लिए 'संस्कृति' शब्द व्यवहृत होने लगा है। 'पालिसी' शब्दकी तरह 'कल्चर' शब्दका भी अर्थ बहुत व्यापक होनेपर भी उसके लिए 'संस्कृति' शब्द अच्छा गढ़ा गया है। सम् पूर्वक 'कृ' धातुसे भाव-अर्थमें 'क्तिन्' प्रत्यय करनेपर 'संस्कृति' शब्द बनता है, जिसका अर्थ होता है परम्परागत अनुस्यूत संस्कार। यह दर्शन-शास्त्रका सिद्धान्त है कि संस्कार-रूपी बीजके ही अनुसार कर्म-रूपी वृक्ष उत्पन्न होता

है। हमारे जैसे पूर्व संस्कार होंगे वैसे ही हमारे कर्म बनेंगे। आर्योंका प्राचीन रहन-सहन, आचार-व्यवहार, धर्म, कर्म, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था, शास्त्रीय सिद्धान्त, शिक्षा-प्रणाली आदि जिसके प्रधान-प्रधान अवलम्बन हों, वही आर्य-संस्कृति कही जा सकती है।

आर्यजातिके लक्षण

आचारोंमें ही जाति मानी जाती है। शास्त्र कहते हैं 'आचार मूला जातिः' अर्थात् आचार देखकर जाति बनायी जा सकती है। आर्यजातिकी विशेषता यह है कि वह जीवन-यात्रा-निर्वाहमें रजोवीर्य-शुद्धिमूलक वर्ण-व्यवस्था तथा प्रवृत्ति-रोधक और निवृत्तिपोषक आश्रम-व्यवस्था मानती है। इसीसे शास्त्रमें उसका लक्षण कहा गया है 'उभयोपेता आर्यजातिः।' अर्थात् वर्णधर्म और आश्रम-धर्मके लक्षण जिस जातिमें पाये जाँय उसे आर्यजाति कहते हैं। आर्यजातिके शारीरिक व्यापार-मूलक आचार पृथ्वीकी अन्य सब जातियोंसे कुछ विलक्षण हैं। हमारी संस्कृतिका विचार करने-वालोंको यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि जिस मनुष्य-जातिमें रजोवीर्य शुद्धि-मूलक जाति-भेदका सिद्धान्त, सतीत्वधर्ममूलक स्त्रीजातिकी पवित्रता, प्रवृत्तिमूलक ब्रह्मचर्य एवं गृहस्थाश्रम और निवृत्तिमूलक वानप्रस्थ एवं संन्यासआश्रम ऐसे धर्मोंके लक्षण पाये जाते हैं, वही मनुष्यजाति आर्यजाति कहाती है। ये सब बातें आर्य (हिन्दू)-संस्कृतिके मौलिक सिद्धान्त हैं। इसी प्रकार पुरुष-धर्म और नारीधर्मके अधिकार आर्य-धर्ममें अलग-अलग माने गये हैं।

पुरुष और स्त्रीके विभिन्न धर्म

मनुष्य-सृष्टिमें पुरुष और स्त्री—ये दो विभाग हैं और दोनोंके धर्म भिन्न-भिन्न हैं। कैवल्य-प्राप्तिके लिए पुरुष स्वतन्त्र है; परन्तु स्त्री पुरुष होनेकी अपेक्षा रखती है। वह पतिमें तन्मय होकर जब पुरुष होगी, तभी कैवल्य प्राप्त कर सकेगी। पुरुष स्वतन्त्र होनेसे उसका धर्म यज्ञ-प्रधान है, कैवल्य प्रदान करनेवाले ज्ञानका यज्ञके साथ साक्षात् सम्बन्ध है। यज्ञ-धर्म, कर्म, उपासना और ज्ञान—इन तीन काण्डोंमें विभक्त है। स्मृति शास्त्रमें कहा है--

यज्ञ प्रधानतामेति नृणां धर्म इति श्रुतिः।

नारी-धर्म एक विशेषधर्म है। आदिसृष्टि जब आदि-पुरुष परमात्मा और प्रकृति महामायाके सम्बन्धसे आरम्भ होती है, तब जीवकी प्रथमोत्पत्ति-में भी वे ही दो सत्तायें विद्यमान रहेंगी--इसमें कोई सन्देह नहीं है। उद्भिज्जादि जीवोंमें भी पुरुष और नारीकी दो स्वतन्त्र शक्तियाँ देख पड़ती हैं। मनुष्य-योनिमें पहुँचकर जीव जबतक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक नवीन संस्कार भी संग्रह नहीं कर सकता। सहजकर्म परिवर्तित भी नहीं होते, इस कारण साधारण स्त्री स्त्रीहोकर और पुरुष पुरुषहोकर ही अग्रसर होता है। अद्वैत-भावके बिना कैवल्यकी प्राप्ति नहीं होती। वह स्थिति परम-पुरुषके स्व-स्वरूपमें ही विद्यमान है। इसकारण कैवल्याधिगमके लिये पुरुषको आत्म-ज्ञानके अव-लम्बनसे स्व-स्वरूपको प्राप्त करना होता है और स्त्रीको पुरुषमें तन्मयता प्राप्त करके पुरुषधारामें पहुँचनेपर आत्मज्ञानके अवलम्बनसे अद्वैत भावमय स्व-स्वरूपकी उपलब्धि करनी पड़ती है। इस प्रकार

जब स्त्रीको अपनी धारा बदलनी पड़ती है, तब उसके लिये तपोधर्मका आश्रय लेना अनिवार्य है। स्मृतिशास्त्रमें कहा है--

तपः प्रधानतामेति नारीधर्मो यतः सदा।

आदि सृष्टिसे ही स्वाभाविक संस्कार और सहज कर्मके अनुसार पुरुषधारा और स्त्रीधारा दोनों पृथक् पृथक् प्रवाहित हुआ करती हैं। परमपुरुष स्वाधीन, निःसङ्ग तथा चेतन-स्वरूप है और मूल-प्रकृति जड़ा, सङ्गकी अपेक्षा रखनेवाली और पराधीना है। इसीकारण कार्यरूपी सृष्टिप्रवाहमे वे ही गुण वर्तमान रहनेसे नारीका पराधीन होना विज्ञान-सिद्ध है। यही कारण है कि हिन्दूजातिमें कन्यावस्था-से लेकर वृद्धावस्थातक पिता, पति, पुत्र और आत्मीय स्वजनोके संरक्षणमें नारीके रहनेकी विधि है और यही आर्य-जातिकी प्राचीन संस्कृति है।

वैदिक दर्शनोंने यह भी सिद्ध किया है कि इस संसारके स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चके सब अंगोमें दो प्रकारकी शक्तियाँ देखनेमें आती हैं—एक आकर्षण-शक्ति और दूसरी विकर्षणशक्ति। स्थूल-प्रपञ्चमें परमाणुसे लेकर ग्रह-उपग्रहोंतकमें आकर्षण और विकर्षणरूपी दोनों शक्तियोंका कार्य स्पष्ट देखनेमें आता है। ग्रह-उपग्रहादिकी सृष्टि-दशामे परमाणु एकत्र होते हैं और प्रलय-दशामें पृथक् पृथक् होकर ब्रह्माण्डका प्रलय-संसाधन करते हैं। उसी स्थूल-उदाहरणके अनुसार सूक्ष्म अन्तःकरणकी वृत्तियोंमें रागकी वृत्तियाँ आकर्षणजनित और द्वेषकी वृत्तियाँ विकर्षणजनित होती हैं। राग-मूलक आकर्षणशक्ति रजोगुण-समुद्भूत और द्वेष-मूलक विकर्षणशक्ति तमोगुण समुद्भूत है। इन्हीं दोनों शक्तियोंसे समस्त पिण्ड और ब्रह्माण्ड आच्छन्न हैं। दोनों शक्तियोंका विकास पुरुषशरीर और स्त्रीशरीरमें होता रहता है। पुरुष विकर्षण-शक्तिरूप और स्त्री आकर्षण शक्तिरूप है। अन्ततः दोनोंके अधिकार और धर्म भी स्वतन्त्र हैं। आकर्षण-शक्तिसे सृष्टि-क्रिया होती है और विकर्षण-शक्तिसे लय क्रिया। स्मृतिशास्त्र कहता है—

आकर्षणस्वरूपं हि शरीरं योषितामिह।
तथा विकर्षणं नृणां शरीरं स्यात्स्वरूपतः॥

जिस प्रकार अन्तर्जगतमें राग और द्वेष दोनों के समन्वयसे मुक्तिका उदय होता है अर्थात् साधक रजोगुण - संभूत राग और तमोगुण-संभूत द्वेषको जीतकर सत्वगुणके अवलम्बनसे द्वन्द्वातीत हो जाता है—मुक्त होजाता है, उसी प्रकार बहिर्जगतमें ऊर्ध्वरेता होकर वह दाम्पत्य सम्बन्धके आकर्षण और विकर्षणशक्तिकी जय करके द्वन्द्वातीत मुक्तिभूमिमे पहुंच जाता है। इसीसे वानप्रस्थाश्रममें सस्त्रीक रहकर स्त्री सम्बन्धी कामका जय करके मुक्तिमार्गमे अग्रसर होनेकी विधि शास्त्रोंमें पायी जाती है। पतिभक्ति और सतीत्वकी सहायतासे स्त्री मुक्तिमार्गमें अग्रसर होती है और पुरुष भी स्त्री-दुर्गद्वारा सुरक्षित रहकर मुक्तिमार्ग पर विजय लाभ करनेमें समर्थ होता है। दोनों शक्तियोंकी जहाँ सुन्दर समता होती है, वही सत्वगुणमय ज्ञान और आनन्दका स्थान है।

सृष्टि-कार्यमें प्रकृतिकी प्रधानता होती है, यह कहा जा चुका है। चाहे कोई दर्शनशास्त्र उसे मूल-प्रकृति कहे, कोई महामाया कहे, कोई ब्रह्मशक्ति कहे—सब दर्शनशास्त्र प्रकृतिकी प्रधानता मानते हैं। यही कारण है कि वेद, पुराण और तन्त्रादि शास्त्र एक वाक्य होकर नारीका सम्मान करने और उसको जगदम्बाका स्वरूप समझकर उसकी पूजा करने की आज्ञा देते हैं। आर्य-जाति के सदाचारोंमें और उसके पूजा-प्रकारमें कुमारी-पूजा और सुवासिनी-पूजाकी सर्वमान्य विधि पायी जाती है। पश्चिमकी

वर्तमान सभ्य जातियोंमें इन सब दार्शनिक सिद्धान्तों की कल्पना भी नहीं पायी जाती। आर्यजाति स्त्री-जातिको जगदम्बाकी प्रकृति समझकर उसकी पूजा करती है; परन्तु पश्चिमी सभ्य जातियाँ स्त्रीजातिको केवल भोग विलासकी एक सामग्री समझती हैं और उसकी पवित्रता और अपवित्रताका कुछ भी विचार नहीं रखतीं।

सृष्टि-प्रकरणमें स्त्री और पुरुष—इन दोनोंके पृथक्-पृथक् अधिकारके विचारका स्थान सबसे प्रधान माना गया है। क्या प्राचीन साहित्य और क्या नवीन साहित्य, क्या प्राचीन वैदिक शास्त्र-समूह और क्या नवीन अर्थादिशास्त्र समूह और क्या प्राचीन संस्कृतिकी विद्वन्मण्डली और क्या नवीन संस्कृतिके विद्वज्जन इन सबोंका एकमत इस विषयमें होगा कि स्त्री और पुरुष इन दोनोंके अधिकारका प्रश्न सब तरहके सृष्टि प्रकरणमें सबसे प्रधान तथा परमावश्यक है, परन्तु अज्ञानके कारण ऐसे बड़े आवश्यक विषयपर बहुत कम लोग ध्यान दे रहे हैं। वर्तमान समयकी राजनीतिक उथल-पुथल, सामाजिक उथल-पुथल तथा धार्मिक उथल-पुथलकी सन्धिमें सबसे पहले स्त्री और पुरुषके अधिकार-विज्ञानपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

वेद और वेदसम्मत शास्त्र-समूह एक वाक्य होकर बताते हैं कि सृष्टिकी आदि अवस्थामें सृष्टि-कर्त्ता भगवान् ब्रह्माजीने जब सृष्टिका प्रारम्भ किया तब उस समय सबसे पहले सनक, सनन्दन आदि पूर्णावयव मनुष्यरूपी महात्माओंकी सृष्टि हुई। वे पूर्णावयव होनेके कारण उनमें सृष्टिकी वासना तकका सम्बन्ध नहीं पाया गया और न उनसे सृष्टि बढ़ानेका कार्य ही हुआ। उसके बाद भगवान् ब्रह्माजीने दुबारा सृष्टिकी इच्छाकी, जिससे प्रजापतिगण पैदा हुए। ये लोग एक प्रकारके देवता थे। उनको आज्ञा देनेपर उनसे मानसिक सृष्टि उत्पन्न हुई - यह सृष्टिकी दूसरी अवस्था है। उसके बाद सृष्टिकी तीसरी अवस्थामें, जबकि सृष्टिके पूर्णावयव जीव उत्पन्न होगये थे, उस दशामें स्त्री-पुरुषके संयोगसे बैजी सृष्टिका प्रारंभ हुआ, यही साधारण मैथुनी (लौकिकी) सृष्टिकी पहली अवस्था है। हिन्दू-दर्शनशास्त्र इसके पहलेकी अवस्थाको दैवी सृष्टिकी अवस्था मानते हैं। लौकिकी सृष्टिकी अवस्थामें स्त्री और पुरुष दोनोंके अधिकार समान रहनेपर भी नारी-जातिका स्थान प्रधान माना गया है। साधारण तौर पर देखा भी जाता है कि सृष्टि प्रकरणमें पुरुषोंका कार्य मिनटोंका है; किन्तु नारी जातिका वर्षोंका है; क्योंकि उनको गर्भपालन और शिशु-पालन आदि कार्य करने पड़ते हैं। आजकल साइंसकी उन्नतिके साथ-ही-साथ विज्ञानके द्वारा इस बातकी भी पुष्टि हो चुकी है कि उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—इन चारों प्रकारकी जीव-योनियोंमें स्त्री और पुरुषका होना समान रूपसे पाया जाता है। निम्नश्रेणीके उद्भिज्जजीवोंमें स्त्रीरेणु और पुंरेणु—इन दोनोंके संगमसे सृष्टि होनेके प्रत्यक्ष प्रमाण बताये गये हैं। स्वेदज, अण्डज और जरायुज पिण्डोंकी सृष्टि तथा पूर्णावयव मानव-पिण्डोंकी सृष्टि—सभीमें इस विज्ञानकी सिद्धि होती है।

पिण्ड तीन प्रकारका होता है—उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज पशुका सहज पिण्ड, मनुष्यों का मानवपिण्ड और देवताओंका देवपिण्ड। दर्शनशास्त्र, पदार्थविद्याका विज्ञानशास्त्र और

लौकिक अनुभव—इन सबोंसे प्रमाणित होता है कि सृष्टि-प्रकरणमें स्त्रीजातिकी जिम्मेवारी सबसे अधिक है। स्त्री भूमिरूपा है और पुरुष बीजरूप है। यही कारण है कि वेद और शास्त्रोंने एक वाक्य होकर स्त्रीजातिके लिए यज्ञमूलक आचारोंका उपदेश दिया है। दोनोंके लिए पृथक्-पृथक् धर्म और आचारका होना स्वतः सिद्ध है। इस विषयमें हिन्दू-शास्त्र तो एकमत है ही, किन्तु पृथ्वीके सब चिन्ताशील पण्डितोंको भी एकमत होना ही पड़ेगा; क्योंकि सत्य सत्य ही है।

सृष्टिकार्यको पवित्र रखनेके लिये वेद, स्मृति, पुराण, तन्त्र, हिन्दुओंका ज्योतिषशास्त्र और आयुर्वेद आदि सब शास्त्र-समूह एक वाक्य होकर स्त्री-पुरुषके पृथक् अधिकार विज्ञानकी पुष्टि करते हैं। इस अलौकिक और परमावश्यक विषयकी ओर आधुनिक शिक्षित समाजकी दृष्टि आकृष्ट नहीं हुई है।

स्त्रीजातिकी पवित्रता-रक्षा और आध्यात्मिक विज्ञानसम्मत विवाह-पद्धति

सृष्टि-प्रकरणमें स्त्रीजातिकी पवित्रताकी रक्षा और धर्मानुकूल विवाह-पद्धतिकी प्रथाको स्थायी रखना परमावश्यक है। हिन्दू-जातिके अतिरिक्त पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें स्त्रीजातिकी पवित्रताकी रक्षाकी ओर विशेष ध्यान नहीं है। उन जातियोंमें जैसे युवकोंकी स्वतन्त्रता है; वैसेही युवतियोंकी भी स्वतन्त्रता रखी गयी है। वयः प्राप्त होने पर स्त्रियाँ अपनी इच्छासे मनमाने पुरुषोंसे सम्बन्ध कर लेती हैं और पीछेसे उनके अपने-अपने धर्मानुकूल विवाह होता है। विवाह होतेही स्वतन्त्र रीतिसे विवाहित दम्पति आनन्दोत्सव मनानेके लिये बाहर चले जाते हैं और यथेच्छा विहार करते हैं तथा पतिसे अनबन होनेपर एक दूसरेसे अदालतके द्वारा विवाह-विच्छेद भी करा लेते हैं। स्त्रीके विधवा होनेपर उनके यहाँ विधवाओंका बार-बार पुनर्विवाह होता है। पृथ्वीके अन्य धर्मावलम्बियोंमें जन्मान्तरवादपर विश्वास न रहनेसे विवाहित दम्पतिके लोकान्तर होनेपर पति-पत्नीका सम्बन्ध स्थायी नहीं मानते। इनसब कारणोंसे अन्य जातियोंमें 'स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध परलोकमें भी स्थायी रहता है', ऐसा विश्वास नहीं है; किन्तु वर्णाश्रमी हिन्दूजातिमें जन्मान्तर और लोक-लोकान्तरवादका सम्बन्ध पूर्णरूपसे माना गया है। आर्यस्त्रियोंमें सतीत्वधर्मका अधिकार सर्वोपरि माने जानेसे उच्चश्रेणीकी आर्य-नारियोंमें विधवा-विवाहकी आज्ञा नहीं है। शरीरकी तो बातही क्या है, मनसे भी पर पुरुषका सम्बन्ध होना आर्य स्त्रियाँ गर्हित समझती हैं। स्वेच्छासे विवाह और विहार न होने देना ही वेद और स्मृतिकी आज्ञा है। हिन्दूजातिका विवाह एक बड़ा भारी धर्मकार्य है। हिन्दूका विवाह इन्द्रिय-सुखभोगके लिये नहीं; बल्कि परलोकगत पितरोंको चिर-सहायता पहुँचानेके लिये माना गया है। हिन्दू-शास्त्रके अनुसार विवाहकी आठ श्रेणियाँ बतायी गयी हैं—यथा ब्राह्म, आर्ष, दैव, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच। इन आठ श्रेणियोंके विवाहोंमें से ब्राह्मण-जातिमें प्रथम चारश्रेणियोंके विवाह उपादेय हैं और पीछेकी चार श्रेणियोंके विवाह हेय हैं। क्षत्रिय-जातिके लिये अन्य विवाहोंके उदाहरण भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं; परन्तु उनके द्वारा कन्याका संग्रह होनेपर भी पीछेसे शास्त्रोक्त विवाह करनेकी विधि है, जैसे राजाओंके यहाँ गान्धर्व-विवाह हो

आने पर भी पीछेसे शास्त्रोक्त-विवाह-विधिकी पूर्णता की जाती थी। हिन्दू-शास्त्र-समूहका सिद्धान्त यह है कि कन्यामें रजोधर्म हो जानेसे पूर्व कन्याके चित्तको पतिदुर्ग द्वारा सुरक्षित कर देना चाहिये। क्योंकि रजोधर्म पूर्णवयस्काका लक्षण है और पूर्णवयस्का कन्या होनेपर उसमें कामादिकी चेष्टा होना भी स्वाभाविक है, इस कारण आध्यात्मिक-उन्नतिशील हिन्दू-जातिमें वाग्दानकी प्रथा पहलेसेही प्रचलित है और पूर्णवयस्का होनेसे पहले कन्याका चित्त पतिदुर्ग द्वारा सुरक्षित हो जाने पर उसमें अपवित्रता-अनाचारका बीज पैदा ही नहीं होने पाता और सतीत्वका बीज सुरक्षित रहता है। इस कारण स्वेच्छा विवाहका अनादर आर्य-संस्कृतिमें चिरकालसे चला आता है। आर्य-संस्कृतिमें दम्पतिके भेदका कुछ दिग्दर्शन तन्त्र और पुराणोंके आधारपर नीचे कराया जाता है। त्रिगुण सम्बन्धी भेदके अनुसार नर और नारी तीन प्रकारके होते हैं—सात्विक गुणमोहित, राजसिक रूपमोहित और तामसिक नर-नारी काममोहित होते हैं। नर-नारियोंकी मिथुनीभूत कालमें भी तीन दशायें होती हैं। सात्विककी प्राकृतदशा, राजसिककी विकृत दशा और तामसिककी उन्माद दशा होती है। प्राकृत दशा मुक्तिप्रद है, विकृतदशा स्वर्गप्रद है और उन्माद दशा नरकप्रद है—यों समझना चाहिये। सात्विक स्वल्प-मैथुनसेवी, राजसिक कामुक किंतु विचारवान् और तामसिक नर-नारी घोर कामासक्त तथा अविचारी होते हैं। सात्विक नर-नारी ज्ञाननिरत तथा परस्पार्थी होते हैं, राजसिक भोगनिरत और स्वार्थी होते हैं तथा तामसिक नर-नारी विचार रहित, प्रमादी, कामभोग परायण और अनर्थकारी होते हैं। सात्विक नर-नारी पवित्र ज्ञान-कुशल, राजसिक अद्भुत क्रिया-शील और तामसिक पशुभावके सदा पक्षपाती होते हैं। सात्विक स्वभावतः धीर, राजसिक चञ्चल और तामसिक उन्मादी होते हैं। सात्विक नित्य प्रेमिक, राजसिक कुटिल और तामसिक निर्लज्ज होते हैं। सात्विक नर-नारीकी संगम-दशामें अध्यात्मकी ओर लक्ष्य और एक-दूसरेके आनन्दमें तत्परता, राजसिकका एकमात्र कामज सुखकी ओर लक्ष्य और भोगमें तत्परता तथा तामसिकका केवल अपना-अपना लक्ष्य और प्रमाद-जनित सुखमें तत्परता रहती है। सात्विक नर-नारियोंके चित्तमेंही आत्मज्ञान और धर्मका पूर्ण स्वरूप प्रकाशित हो सकता है। स्त्री और पुरुष यदि समान प्रकृति, प्रवृत्ति और धर्मवाले होकर सात्विक लक्षणोंको धारणकर सकें तो उनके लिये अभ्युदयकी तो बात ही क्या, मुक्ति भी अति सुलभ है। यदि दोनों स्त्री-पुरुष ज्ञानी भक्त होकर जन्म ग्रहण करें तो ऐसा लोकातीत मेल हो सकता है। साधारणतः शास्त्रमें पुरुष और स्त्रीकी जो चार श्रेणियाँ बाँधी गयी हैं उनमें उनके शरीरके लक्षण और मापका हिसाब भी दिया गया है जिनका माप कम है, वे उत्तम समझे जाते हैं। यह विचित्रता है जो ध्यान देने योग्य है। तन्त्र और पुराण आदि शास्त्रोंमें पुरुष और स्त्रीके सोलह-सोलह भेद कहे गये हैं। शश, मृग, वराह और अश्व ये पुरुष की चार श्रेणियाँ होती हैं। प्रत्येक श्रेणीमें प्रत्येकका अन्तर्भाव होनेसे पुरुषकी सोलह श्रेणियाँ होती हैं। पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी और हस्तिनी – ये चार श्रेणियाँ स्त्रियोंकी होती हैं। इन चारोंमें प्रत्येकमें प्रत्येकका अन्तर्भाव होनेसे स्त्रीकी भी सोलह श्रेणियाँ हुईं। यदि इन सोलह प्रकारके पुरुष और सोलह

प्रकारकी स्त्रियोंमें ठीक-ठीक समान श्रेणीमें दाम्पत्य-सम्बन्ध स्थापित हो तो वह दोनोंके अभ्युदय और निःश्रेयसका कारण होता है। दोनोंमें यदि स्त्रीकी श्रेणी उच्च हो तो सात श्रेणियोंतक नारीकी प्रकृति सामञ्जस्यकी रक्षा करती है और अभ्युदयका क्रम बना रहता है। सात श्रेणीके अनन्तर अशान्ति, रोग और दुःख होता है। पुरुषका यथाक्रम सामञ्जस्य बना रहता है। तदनन्तर सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षामें बाधा होती है। स्त्रियाँ और पुरुष यदि अपने-अपने धर्मसे च्युत हो जाँय तो सृष्टिका सामञ्जस्य ठीक-ठीक नहीं रहने पाता; क्योंकि नारीधर्म 'तपःप्रधान' है और पुरुषधर्म 'यज्ञ प्रधान' है। नारीके लियेही श्री, मधुर वचन, त्रिविध पवित्रता, स्वार्थ रहितता, पातिव्रत्य, वात्सल्यभाव, सेवापरायणता और पुरुषोंके उपयोगी भावोंमें भावित होनेमें सदा रुचि-ये आठ ही उत्तम गुण कहे गये हैं। पुरुषोंके लिये अपने वर्णाश्रमाचारका सदा प्रतिपालनही उत्तम गुण कहा गया है। स्त्री और पुरुषोंकी परीक्षा बहुत ही कठिन है। ऋतम्भरा-प्रज्ञा-युक्त ज्ञानी भक्तही यथार्थ रूपसे स्त्री-परीक्षा और पुरुष-परीक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। सामुद्रिक विद्या, स्वरोदय विद्या और ज्योतिष विद्या आदिके द्वारा भी दोनोंकी परीक्षा की जाती है।

दाम्पत्य-सम्बन्ध करनेके लिये जिन पचीस बातोंपर ध्यान देना अभ्युदय और कैवल्यकी इच्छा रखनेवालोंको आवश्यक है, वे ये हैं यथा—कुल, शरीर, गण, योनि, ग्रह, राशि, दिन, माहेन्द्र, स्त्री-दीर्घ, राशिका अधिपति रज्जु, वश्य, वेध, वर्णकूट, नाड़ीभूत लिंगाख्य कूट, योगिनी, गोत्र, जाति, पक्षिकूटक, तारा, भकूट, प्रवृत्ति, इन्द्रियदार्ढ्य, बुद्धि और पचीसवाँ—भाव। यदि समानाधिकारमें कल्याणकारी दाम्पत्य-सम्बन्ध हो तो अभ्युदयकी तो बातही क्या, निःश्रेयस भी सुलभ है। ऐसा दाम्पत्य-सम्बन्ध होनेपर देवता, ऋषि और पितरोंकी प्रसन्नता होती है, कुल पवित्र होता है तथा दम्पति स्वयं ज्ञानवान् होकर एवं पूर्ण ज्ञान-सम्पन्न सन्तान प्राप्त-कर जगतको धन्य करते हुए स्वयं भी धन्य होते हैं।

जिस दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्यजातिके स्त्री-पुरुषोंका विवाह-संस्कार प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पना तक पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें नहीं है और न उनके आचार-विचारमें हो सकती है। इस कारण पृथ्वीकी इस वर्तमान उथल-पुथलके दिनोंमें केवल इन्द्रिय-सुखको लक्ष्य करके हिन्दुस्थानके नेतृवृन्दोंको बिना पूर्वापर-विचार किये विपथगामी नहीं होना चाहिये। उनको यह विचार लेना चाहिये कि आर्य-जातिका आध्यात्मिक लक्ष्य कहाँसे कहाँ तक है और आर्योंके नारीधर्म और पुरुषधर्मके अधिकार निर्णय करनेमें हमारे पूर्वजोंने कितना सूक्ष्म विचार और दूरदर्शिताका काम किया है।

हिन्दुस्तानके हिन्दूलोग स्त्री-पुरुषोंके अधिकार-विज्ञान और विवाह-पद्धतिके सिद्धान्तको परम आवश्यक धार्मिक सिद्धान्त समझते हैं; क्योंकि ये सब मौलिक विचार स्त्री-पुरुषोंके भविष्यतको सम्हा-लनेवाले हैं, वंशकी संस्कृति स्थिर रखनेवाले हैं और जातिको पवित्र रखनेवाले हैं। कन्या और वर दोनोंके स्वेच्छाचारी होकर विवाह करनेकी आज्ञा आर्य जातिमें नहीं है; क्योंकि काम पशुभावका स्वाभाविक प्रेरक है। युवती कन्या और युवक इन दोनोंमें संसारका अनुभव नहीं होता। इसकारण उनसे बड़ी-बड़ी भूलें हो सकती हैं। पिता-माता और

पारिवारिक गुरुजनोंमें अनुभव अधिक होता है। अतः उनसे प्रमाद होनेकी सम्भावना कम होती है। इसकारण विवाहप्रथामें युवक और युवतियोंको, स्वाधीनता न देकर उनको नियन्त्रित किया जाय यही आर्य-संस्कृति है। कन्या-अवस्थामें बालिकाओं-को देवीरूप समझना, उनके सामने कभी काम-चेष्टाकी बातें करना भी पापजनक समझना, बाल्या-वस्थामें ही उन्हें धार्मिक शिक्षा देना और धार्मिक व्रतादि कराना, तुलसी-अन्नपूर्णा आदिकी पूजा कराना, कन्याके रजस्वला होनेसे पहलेही उसका विवाह-संस्कार कर देना, प्रथम रजोदर्शनमें गर्भाधान संस्कार कराके देवता, ऋषि और पितरोंका संवर्धन कराते हुए गर्भाधान-संस्कारकी विधि सम्पन्न करना-ये सब बातें आध्यात्मिक उन्नतिमें सहायक हैं। पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें इस प्रकारको पवित्रताके साधक संस्कारोंका नाम तक नहीं है। वहाँ विवाह पशुधर्मका एक सहायकमात्र है।

संस्कार

अब गर्भाधानसे लेकर शरीरपर्यन्त आर्य-जातिके आचारोंके विशेषत्व और महत्त्वके सम्बन्धमें प्रकाश डाला जाता है। साथही साथ लोक-कल्याण बुद्धिसे तुलनात्मक गवेषणाकी जायगी। आर्य-जातिमें विवाह-संस्कार सबसे बड़ा शास्त्रीय संस्कार है— जिसका सम्बन्ध केवल इसी लोक तक नहीं, किन्तु लोक-लोकान्तर तक माना गया है। पृथ्वीकी अन्य सभ्य जातियों और विभिन्न धर्मावलम्बियोंमें विवाह स्थायी संस्कार नहीं है और न उसका सम्बन्ध शरी-रान्तके उपरान्त माना ही गया है। उनमें इन्द्रिय-सुखकी चरितार्थता और इस जन्ममें सामयिक सुख-प्राप्तिके अतिरिक्त कुछ नहीं माना गया है। उनके यहाँ विवाह-विच्छेद साधारणसी बात है; किन्तु आर्य संस्कृतिमें विवाह-विच्छेद हो ही नहीं सकता। यही कारण है कि आर्य-जातिने विधवाका विवाह होना अशास्त्रीय माना है। छोटी-जातियोंमें विधवा विवाह प्रचलित है, परन्तु वह 'विवाह' नहीं 'नाता' कहाता है। द्विजोंमें तो विधवा विवाह अधर्म समझा जाता है, क्योंकि विधवा-विवाह प्रचलित होनेपर त्रिलोक-पवित्रकारी सती-धर्मपर आघात पहुँचता है। आर्य-जातिमें विवाह-संस्कारका सबसे बड़ा उद्देश्य यह रखा गया है कि विवाह परलोकगामी पितरोंके आवागमन-चक्रमें श्राद्धादिसे सन्तति सहायता करे और यही कारण है कि इसी सिद्धान्तके अनुसार दायभागकी व्यवस्था बाँधी गयी है। इन सब सूक्ष्म विषयोंपर आजकलके नवशिक्षित सज्जन कभी ध्यान ही नहीं देते और मनमाने विधानोंको बनानेकी चेष्टा किया करते हैं। वे यह भी नहीं सोच सकते कि कानूनद्वारा सत्यकी जड़ काटना असम्भव है। सत्य सूर्यके समान सत्यही है। सूर्य कभी-कभी बादलोंसे ढँक जाता है, परन्तु वह ढँकना सामयिक होता है।

पृथ्वीकी अन्य जातियोंमें विवाहका काल निश्चित नहीं किया गया है और न स्त्रीसभोगके लिये कोई आध्यात्मिक लक्ष्यही रखा गया है। हनी-मून जैसे वैषयिक आनन्दप्रद आचार उनमें किस प्रकार प्रचलित हैं, सभी जानते हैं। आर्य-संस्कृतिमें रजोदर्शनसे पूर्व विवाह-संस्कार करने की दृढ़ आज्ञा है। यदि ऐसा हो जाय कि विवाहसे पहले ही कन्यामें रजोदर्शन होने लगे तो प्रत्येक रजोदर्शनमें पिताको प्रायश्चित्त करके शुद्ध होनेकी आज्ञा है। प्रथम रजोदर्शन होनेके अनन्तर पशु-धर्मके अनुसार स्त्री-सम्बन्ध न करके ऋषि-देवता और नित्य-नैमित्तिक

पितरोंका संवर्धन करते हुए एक संस्कार करनेकी आज्ञा है, जिसे 'गर्भाधान-संस्कार' कहते हैं। तदनन्तर काम-वृत्तिसे नहीं, धर्म वृत्तिसे स्त्री सम्बन्ध करनेकी आज्ञा आर्य-शास्त्र देते हैं। तदनन्तर पूर्णिमा, अमावस्या आदि पुण्य तिथियों तथा अशास्त्रीय वार-कुयोग, पर्वदिन, आशौचके दिन आदि दिनोंको छोड़कर धर्म-बुद्धिसे युक्त होकर स्त्री संसर्ग करनेकी आर्य-शास्त्र आज्ञा देते हैं। इसके विरुद्ध चलनेका धर्मशास्त्र निषेध करते हैं। अपनी उम्रसे अधिक उम्रकी कन्यासे विवाह करना आर्य-शास्त्रमें निषिद्ध है। गोत्र और प्रवरका सम्बन्ध इस कल्पके प्रारंभसे ही माना गया है और अपने गोत्र तथा प्रवरसे सम्बन्ध कन्यासे विवाह करना मातासे विवाह करनेके समान समझा गया है। जन्मसे जाति मानना, अपनी जातिकी कन्यासे विवाह करना और रजोदर्शनसे पहले विवाह सम्बन्ध करना आर्यविवाहके लक्षण हैं। कामज विवाह अन्य जातिकी स्त्रियोंके साथ दूसरे युगोंमें हो सकता था; किन्तु वह भी अनुलोम विवाह हो सकता था, प्रतिलोम नहीं। अपनेसे निम्नजातिकी स्त्रीसे विवाह करना अनुलोम और उच्च जातिकी स्त्रीसे विवाह करना प्रतिलोम कहाता है। प्रतिलोम नरकका कारण होता है और उसकी सन्तति पतित समझी जाती है। अनुलोम सन्तति माताकी जातिकी होती है। ब्राह्मण यदि शूद्रसे विवाह करे, जैसा दक्षिणमें होता है, तो उसकी सन्तति शूद्र ही मानी जायगी। ऐसी जाति दक्षिण भारतमें विद्यमान भी है, पृथ्वीकी किसी अन्य सभ्यजातिमें विवाहके ऐसे दूरदर्शितापूर्ण नियम नहीं पाये जाते और स्मृति-शास्त्र तथा दर्शन शास्त्र एकमत होकर यह सिद्ध करते हैं कि इन्हीं सब मौलिक कारणोंसे आर्य जाति सृष्टिके आरम्भ-काल से अबतक अपने स्वरूपमें जीवित है। 'पृथ्वीकी अन्य मनुष्यजातियाँ, जिनमे रजोवीर्य शुद्धि और वर्ण-धर्मकी शृङ्खला नहीं है, पतित हो गयीं और कालके कवल में पहुँच गयी। प्राचीन इतिहास और आधुनिक इतिहास हाथ उठाकर इसकी साक्षी दे रहे हैं।

आर्य-संस्कृतिके अनुसार वेद स्मृति और तन्त्रमें सब मिलाकर ४२ संस्कार पाये जाते हैं उनमेसे १६ मुख्य हैं जिनकी मीमांसा वेदके, 'कर्म मीमांसा' दर्शनमें की गयी है। संस्कारको भी मीमांसा शास्त्रमे कर्मका बीज कहा है। जैसे बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही संस्कारसे धर्म प्रकट होता है। सुकौशल-पूर्ण उपायद्वारा ये १६ संस्कार ऐसे बाँधे गये हैं कि विधिपूर्वक उनका अनुष्ठान हो तो ये ही १६ संस्कार जिनमें अन्य सब संस्कारोंका अन्तर्भाव है, मनुष्यको प्रथम ८ संस्कारों द्वारा प्रवृत्तिमार्गमें पूर्णोन्नति देते हैं और शेष ८ संस्कारों द्वारा मुक्तिभूमिमें पहुँचा देते हैं। सोलह संस्कारों में प्रथम संस्कार गर्भाधान संस्कार है और अन्तिम संस्कार सन्यास-संस्कार है। आर्य-शास्त्रोंने यह भली-भाँति सिद्ध किया है कि यदि माता और पिता दोनो सात्विकबुद्धिसे तथा अन्तःकरणसे इच्छा करें और विधिपूर्वक सावधान होकर संस्कार करें तो जैसी चाहें वैसी सन्तान उत्पन्नकर सकते हैं। दम्पतिका साक्षात् सम्बन्ध दैवीजगतसे बाँधनेके लिये गर्भाधान-संस्कार किया जाता है। तदनन्तर कोई भी दैवीकार्य बिना स्त्री और पुरुष दोनोंके एकत्र हुए सम्पन्न नहीं हो सकता। इसीसे गठ-बन्धनकी प्रणाली हिन्दू-जातिमें सर्वत्र प्रचलित है।

इस प्रकार दोनों एकत्र होकर दैवीकार्य करें तो वहाँ एक दैवीपीठ बन जाता है। ये सिद्धान्त आर्य-संस्कृतिके मूलभूत हैं। पृथ्वीकी जो अन्य अवैदिक जातियाँ हैं, उनमें इन पवित्र सिद्धान्तोंकी गन्धमात्र भी नहीं है। ऐसे गूढ़ रहस्य-पूर्ण शास्त्रीय विषयोंका विचार न करके आजकलके नेतृवृन्द जो पश्चिमी जातियोंका अनुकरणकर हिन्दू-जाति, हिन्दू-संस्कृति, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-अचार-विचारोंमें विप्लव मचाना चाहते हैं—यह कितनी हानि और अदूरदर्शिताका कार्य है,—इसे विचारशील पुरुष सुगमताके साथ समझ सकते हैं।

हिन्दू-शास्त्रोंका यह सिद्धान्त है कि जैसा बीज बोया जाता है, वैसाही वृक्ष होता है। अवश्यही वृक्षोत्पत्तिमें और भी कई वस्तुओंकी आवश्यकता होती है--जैसे देश, काल, जल, भूमि आदि; किन्तु सबसे अधिक महत्त्व बीजका है। वैदिक, पौराणिक स्मार्त और तान्त्रिक संस्कारोंका तात्पर्य यही है कि द्रव्य-शुद्धि, क्रिया-शुद्धि, और मन्त्र-शुद्धिसे सुकौशल पूर्ण रीतिपर इन वैदिक संस्कारोंके द्वारा अन्तर्जगतमें ऐसी शक्ति उत्पन्न की जाती है कि वही शक्ति समयान्तरमें वैसे ही वृक्ष और फलकी उत्पत्ति करती है, जैसी इच्छा बीजरोपणके समयमें संकल्प द्वारा की गयी थी। दार्शनिक विषयोंको समझनेके लिये दर्शनोंके अनुशीलनकी आवश्यकता है। इसीमें संस्कार शुद्धिके बलसे भारतवर्षमें (पृथ्वीमें) हिन्दुस्थान (भारत-द्वीप) एक अनोखी भूमि है, जहाँ 'अर्थ' और 'काम'की अपेक्षा 'धर्म' और 'मोक्ष' को प्रधान माना जाता है और मनुष्यजीवनमें आध्यात्मिक उन्नतिको ही श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। इसी अनादि सिद्ध संस्कार-शुद्धिके बलसे भारत-खण्ड (हिन्दुस्थान) में अनेक प्रान्त और भाषायें होने पर भी सम्पूर्ण भारत एक राष्ट्र माना गया है। जिस राष्ट्रमें निवृत्ति परायण धन-ऐश्वर्यकी उपेक्षा करने वाली, तपःस्वाध्याय निरत ब्राह्मणजाति स्वाभाविक नेता समझी जाती है, जिसके शिष्टलोगोंकी राष्ट्र-भाषा संस्कृत है और जिसके सब ग्रन्थ अनादि काल से संस्कृतमें ही बने हैं, जिसके सब शास्त्रीय संस्कार संस्कृतमें ही होते हैं। कोई कुछ भी कहे, किन्तु ऐसी स्थायी और अपरिवर्तनीय अवस्था संसारकी किसी जातिमें नहीं पायी जाती।

सृष्टि होनेके सूत्रपातकी दशामें स्त्रीरूपी पीठमें दैवीजगतसे गर्भाधानके द्वारा सम्बन्ध बाँधा जाता है। तदनन्तर शुद्धाचारके द्वारा दैवीजगतको सामने रखकर सृष्टि उत्पन्न की जाती है। पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म और नामकरण आदि संस्कार दैवीजगतसे सम्बन्ध-स्थापनके लियेही किये जाते हैं। यथा समय 'चूडाकर्म' तो हिन्दू-जातिके सब वर्णोंमें होता है। इसका कारण यह है कि बालककी शिखा रखाकर उसका दैवीजगतसे सम्बन्ध कराया जाता है और उसका उत्तमाङ्ग (सिर) देव-मन्दिरके रूपमें परिणत किया जाता है। द्विज बालकोंका यथासमय 'यज्ञोपवीत संस्कार' करा के उन्हें आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक शुद्धिके लिये तीन लड़ोंका जनेऊ पहनाया जाता है और आजीवन व्रत धारण कराके उसको आध्यात्मिक जीवनके लिये प्रतिज्ञाबद्ध कराया जाता है। इसके अनन्तर बालककी पाठ्यावस्था आरम्भ होती है, जिसमें गुरुका प्राधान्य रखा गया है और गुरु का अधिकार सर्वोपरि माना गया है। तदनन्तर 'विवाह संस्कार' होता है, जो स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये प्रवृत्ति

मार्गका सबसे बड़ा संस्कार है। इस संस्कारमें स्त्री और पुरुषका पृथक्-पृथक् उत्तरदायित्व बताया जाता है और वह उत्तरदायित्व इसी जन्मतक सीमित न रहकर जन्म-जन्मान्तर तक बना रहता है। विवाहित दम्पति हिन्दू-संस्कृतिके अनुसार केवल अपने ही गार्हस्थ्य-जीवनकी सुख-समृद्धिके लिये उत्तरदायी नहीं, किन्तु समस्त ब्रह्माण्डकी सुख-समृद्धिके लिये उत्तरदायी होते हैं। यह महत्ता संसार की किसी जातिमें नहीं पायी जाती। हिन्दू-जातिका पञ्च महायज्ञ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह स्थूल-संसार दैवीजगतकी सहायतासे सुरक्षित रहता और परिचालित होता है। दैवीजगतके सञ्चालकोंमे ज्ञानके प्रवर्तक होनेसे भृगु, वशिष्ठ और अङ्गिरा आदि महर्षियोंका स्थान सबसे ऊँचा है। उनके सम्बर्द्धनके लिये नित्य यज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थका कर्त्तव्य है, यह 'ऋषियज्ञ' है। अष्ट वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, देवराज इन्द्र, धर्मराज, यम आदिके संवर्धनके लिये प्रतिदिन नियमित रूपसे 'देवयज्ञ' करनेकी आज्ञा है; क्योंकि कर्मके दाता उक्त पदधारी देवताही समझे जाते है। तीसरे महायज्ञका नाम है 'पितृ यज्ञ'। पितृगण एक प्रकारके देवता हैं, जो नित्य पितृ कहलाते हैं। उनकी कृपासे कुल—वंश और मनुष्य-समाजकी सुरक्षा होती है और स्त्रीकी गर्भावस्थामें उन्हींकी कृपासे गर्भके अन्तर्गत पूर्वकर्मानुसार देह बनता है। नैमित्तिक पितृ वे कहाते हैं, जो हमारे पितर शरीरान्तके पश्चात् पितृलोकमें पहुँचते हैं और आवागमनके नियमानुसार फिर लौटकर इसी लोकमें आजाते हैं। इनके संवर्धनके लिये जो यज्ञ किया जाता है, वह 'पितृ यज्ञ' कहाता है और यह श्राद्ध-तर्पणके द्वारा भी होता है। तर्पणकी यहाँ तक महिमा है कि तर्पणके द्वारा साधक मिनटोंमें पञ्चमहायज्ञका यजन कर सकता है। चतुर्थ महायज्ञका नाम है 'भूतयज्ञ'। मनुष्यके अतिरिक्त संसारकी अन्य जो जीव सृष्टि है, वह चार श्रेणियोंमे विभक्त है और वे चारों श्रेणियाँ स्वतन्त्र रूपसे देवताओं द्वारा परिचालित और संवर्द्धित होती हैं। जैसे वृक्षादिकी उद्भिज्ज सृष्टि जो रोग उत्पन्न करती और नीरोगता भी उत्पन्न करती है; उसके बादकी स्वेदज सृष्टि—जैसे जूँ, खटमल इत्यादि; अण्डेमें उत्पन्न होनेवाली अण्डज सृष्टि—पक्षी, मछली, सर्प आदिकी सृष्टि और चौथी सृष्टि का नाम है जरायुज सृष्टि जैसे मृग, गाय, घोड़ा और हाथी आदि। मनुष्यकी सृष्टि यद्यपि जरायुज ही है, फिर भी वह उक्त स्वाभाविक जीवसृष्टिसे भिन्न है; क्योंकि उसको धर्माधर्मका अधिकार प्राप्त हो जाता है। हिन्दू-धर्मके महत्त्व उदारता और आचारकी व्यापकताका यह ज्वलन्त प्रमाण है कि वह कृतज्ञताके वश होकर चतुर्विध भूतसंघके कल्याणके लिये प्रतिदिन भूतयज्ञका आदेश देता है। हिन्दू-जातिका पंचम महायज्ञ 'नृ-यज्ञ' कहाता है। अपने भोजनसे पहले किसी वर्ण, किसी आश्रमका मनुष्य हो, आर्य-अनार्य, किसी जाति या देशका हो, उसे देवता समझते हुए पहले भोजन कराकर पीछे गृहस्थको स्वयं भोजन करनेकी विधि है। अतिथि-सेवा भी इसी महायज्ञका अङ्ग माना जाता है। जो अदूरदर्शी सज्जन हिन्दुओंके ऊँच-नीचके अधिकारभेद और मनुष्योंमे स्पर्शा-स्पर्श-विवेक और जाति भेद आदि माननेका कलंक लगाते हैं। वे यदि समाहित-अन्तःकरण होकर शान्तिसे विचार करेंगे तो देखेंगे कि भगवानकी

सर्वव्यापी शक्ति तथा अनन्त प्राणियोंकी एकताका अनुभव, स्थूल और सूक्ष्म लोगोंका सम्बन्ध और मनुष्यमात्रमें भ्रातृभाव-स्थापनाका अधिकार जैसा हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्ममें है, वैसा न कहीं देखनेमें आता है न सुननेमें ही आता है।

प्रवृत्ति-धर्मकी पूर्णता गार्हस्थ्यमें हो जाती है—वह कैसे होती है सो ऊपर बताया गया है। तदनन्तर आर्य-जीवनमें निवृत्त-धर्मका अधिकार प्रारंभ हो जाता है, उस समय जो आश्रम आरंभ होता है, उसका नाम वानप्रस्थ है। यह तृतीय आश्रम है। इस आश्रममें पुरुष अकेला रह सकता है और स्त्रीको भी साथ रख सकता है। सब इन्द्रियादिको वशमें लानेके लिये वह तपस्याके द्वारा प्रयत्न करता रहता है। प्राचीन कालके ऋषि-मुनिगण प्रायःवानप्रस्थही हुआ करते थे, जिनका विवरण पुराण आदि शास्त्रोंमें पाया जाता है। तदनन्तर अन्तमें जो आश्रम ग्रहण किया जाता है, उसका नाम है 'संन्यास'। आज-कल जैसी पृथ्वीभरमें प्रथा है कि एक गृहस्थाश्रमके ढगपरही समस्त जीवन व्यतीत करते और निवृत्तिकी ओर ध्यान भी नहीं देते, यह अनार्य प्रथा है। प्रकृति-माता जैसा इंगित करती है, मनुष्यको उसीका अनुसरण करना चाहिये। नहीं तो जीवका नीचे गिरना स्वाभाविक है। इस कारण प्रवृत्ति धर्म और निवृत्ति धर्म यथासमय अवश्य पालनीय हैं। संन्यासाश्रमके चार पृथक्-पृथक् अधिकार हैं-कुटीचक धर्म, बहूदक धर्म, हंसधर्म और परमहंस-धर्म इनके अलग-अलग साधन और आचार हिन्दू शास्त्रोंमें पाये जाते हैं, जो संन्यास-गीता और संन्यास-पद्धतिमें द्रष्टव्य हैं। इस समय यद्यपि इसमें व्यतिक्रम दीख पड़ता है, तथापि जो व्यवस्था बाँधी गयी है, वह सर्वोत्तम है।

इस प्रकार जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त संस्कारोंसे संस्कृत होकर मनुष्य कैसी नियमित उन्नति कर सकता है, इसकी विस्तृत पद्धति हिन्दू-धर्ममें ही है और हिन्दू-जातिके अधःपतित होने पर भी ये सब संस्कृतिके लक्षण हिन्दू जातिमें ठीक-ठीक मिलते हैं। इस समयके नेतृवृन्दोंको सबसे पहले हिन्दू-संस्कृतिका अध्ययन करके अन्य संस्कृतियोंके साथ तुलनात्मक गवेषणा करनी चाहिये। तत्पश्चात् हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षा करते हुए यदि वे सामाजिक सुधारमें ध्यान देंगे, तभी वे सफल होंगे, नहीं तो ऐहिक और पारलौकिक पतनके कारण होंगे।

हिन्दू-संस्कृतिके सोलह मूलाधार

आर्य-जाति जो धर्मप्राण है, उसके प्राण-स्वरूप हिन्दू-धर्मके सोलह अंग प्रधान हैं। पूज्यपाद महर्षियोंने सनातन हिन्दू धर्मको सोलह प्रधान अंगोंमें विभक्त किया है और इस धर्म को पूर्णचन्द्रकी तरह सोलह कलाओंसे पूर्ण बताया है। हिन्दू-धर्मके ये ही सोलह अंग हिन्दू-संस्कृतिके मूलाधार हैं।

(१) धर्मानुकूल शारीरिक व्यापार-रूपी सदाचार समूह इसका प्रथम अंग है। (२) आत्माकी ओर ले जानेवाले यावत् विचार सद्विचार कहाते हैं। यह उसका दूसरा अंग है। इस दूसरे अंगकी पूर्तिके लिये आर्य-जाति शिखा-सूत्र धारण करती है। शिखाके द्वारा यह शरीर देव-मंदिर समझा जाता है। शिखा बन्धनके समय ब्रह्मा, विष्णु और महेशका ध्यान किया जाता है। सूत्रमें जो तीन लड़ें होती हैं, वे अध्यात्मशुद्धि, अधिदैवशुद्धि और अधिभूत-शुद्धिकी द्योतक हैं। (३) वर्ण-धर्म सनातनधर्मका

तीसरा अंग है। क्योंकि रजोवीर्य-शुद्धिसे ही जातिकी शुद्धि बनी रहती है और जातिकी आधिभौतिक शुद्धि पिताके वीर्य और माताके रजकी शुद्धि पर निर्भर रहती है। (४) जातिकी इस शुद्धिका मूल माताओंके सतीत्व धर्मके पालन पर ही सम्पूर्ण रूपसे निर्भर है। इस कारण आर्य नारियोंमें सतीत्वका प्राधान्य रहता है और यह इसका चौथा अङ्ग है। (५) हिन्दू-जातिके धर्मका पाँचवाँ अंग आश्रम-धर्म है। इसके द्वारा मनुष्य-जातिका जीवन व्यवस्थित रहता है। ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवृत्ति कैसे की जाती है, इसकी सब तरहसे शिक्षा दी जाती है। यहीं जीवनकी समाप्ति नहीं होती। तीसरे वानप्रस्थाश्रममें निवृत्ति सिखायी जाती और चौथे संन्यासाश्रममें निवृत्ति करायी जाती है। इन्हींके द्वारा मनुष्यजीवनकी सार्थकता होती है। (६) दैवीजगतपर विश्वास हिन्दू धर्मका छठा अंग है। यह स्थूलजगत सूक्ष्मदैवीजगतके अधीन होकर सुरक्षित होता है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्के प्रतिनिधि होकर हमारे इस चतुर्दश लोकमय ब्रह्माण्डके सृष्टि-कार्यमें भगवान् ब्रह्मा, रक्षा-कार्यमें भगवान् विष्णु और प्रलय-कार्यमें भगवान् शिव नियुक्त हैं। उनके अधीन रहकर वसु नामक अनेक देवता, रुद्र नामक अनेक देवता और आदित्य नामक अनेक देवता अपने-अपने पदोंपर नियुक्त हैं। दूसरी ओर नित्य ऋषिगण ज्ञानराज्यका संचालन करते हैं और अर्यमा आदि नित्यपितृगण स्थूल-राज्यकी सुव्यवस्था करते हैं। पूर्वजन्मार्जित कर्मके अनुसार सुन्दर शरीर, कुरूप शरीर, अन्धता, वंध-त्वा आदि नित्यपितृगण ही माताके गर्भमें सृजन करते हैं। उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज आदि चतुर्विध भूतसंघकी व्यवस्था भी देवतागण ही करते हैं किसी मनुष्यको मारना अथवा बचाना ये सब काम देवताओं और असुर आदिकी प्रेरणासे ही मनुष्य किया करता है। राजा अथवा विचारपति जब विचार करने बैठता है, तब यदि वह आस्तिक हो तो उसके हृदयमें देवता प्रेरणा किया करते है। यही सब दैवीराज्यकी अलौकिक क्रियायें हैं। (७) भगवान्की दैवीशक्तिपर स्थिर विश्वास रखकर उनके तथा देवताओं और असुरोंके अवतारोंपर विश्वास करना हिन्दू-धर्मका सातवां अंग है। (८) योगमूलक और भक्ति-मूलक हिन्दू-धर्मका जो उपासना-पद्धति है, वह इसका आठवाँ अंग है। स्थूलध्यानमूलक मन्त्रयोग, ज्योतिर्ध्यानमूलक हठयोग, बिन्दुध्यानमूलक लययोग और निर्गुण ध्यानमूलक राजयोग —ये ही योगमार्गके चार भेद हैं। इसीसे हिन्दुओंकी उपासना-प्रणाली बहुत विस्तृत है। (९) मूर्त्ति आदि सोलह प्रकारके दिव्य देशोंमे पीठ स्थापन करके सर्वव्यापक भगवत्सत्ताकी उपासना करना हिंदू-धर्मका नवाँ अंग है। (१०) शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक इसका दसवाँ अंग है। यह अङ्ग बहुत गम्भीर विज्ञानसे पूर्ण है। जीवात्मा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय— इन पाँच कोषोंसे आच्छादित रहता है। शुद्धयशुद्धि और स्पर्शास्पर्श-विचारके द्वारा उन कोषोंकी पवित्रता सम्पादन करता हुआ अंतमें उन्नत साधक मुक्त हो जाता है। इन पाँचों कोषोंके पाँच स्वतंत्र अपवित्र करनेवाले पदार्थ हैं। अन्नमय कोषके दोषको मल कहते हैं। इस मलका लक्षण तो स्पष्टही है। प्राणमय कोषके दोषको विकार कहते हैं। शवादिके स्पर्श करनेसे यह विकार-

शक्ति बढ़ती है; क्योंकि प्राणमय कोष अन्य कोषोंको लेकर लोकांतरमें चला जाता है; तब भी मृतदेहमें अन्यकी प्राणशक्तिको खींचनेकी शक्ति बनी रहती है। इसी कारण अवगाहन स्नान, सुवर्ण स्पर्श, अग्नि स्पर्श आदिकी विधि श्मशान-यात्राके बाद करनेकी शास्त्राज्ञा है। मनोमय बाधक शक्तिको विक्षेप कहते हैं। यह दोष आशौच, सूर्य-चन्द्र ग्रहण आदिके समय आ जाता है, जिसके निवारणके लिये शास्त्रोंमें अनेक उपाय बताये गये हैं। विज्ञानमय कोषके दोषको आवरण कहते हैं और आनंदमय कोषके दोषको अस्मिता कहते हैं। कर्ममीमांसा शास्त्रमें इन दोषोंसे बचनेके लिए ही शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्श-विवेककी विधि बतायी गयी है।

(११) यज्ञों, महायज्ञों पर विश्वास रखना हिन्दू-धर्मका ग्यारहवाँ अंग है। यज्ञ महायज्ञके हिन्दू-शास्त्रमें अनेक भेद कहे गये हैं जो धर्मकार्य एकाधारमें श्रीभगवान्‌की प्रसन्नता सम्पादन करके साथ-ही साथ दैवीराज्यके सम्बर्द्धनका कारण होता है, उसको यज्ञ कहते हैं। यज्ञ और महायज्ञमें भेद यह है कि साधक अपने ऐहिक और पारलौकिक कल्याणके लिये जो साधन करता है—जैसा कि पुत्रेष्टि याग और अग्निहोत्रादि, उसको यज्ञ कहते हैं और जो जगतके मंगलके लिये किया जाता है जैसे पंचमहायज्ञ, उसको महायज्ञ कहते हैं। ऋषियों की तृप्तिके लिये किये जाने वाले यज्ञको ब्रह्मयज्ञ कहते और देवताओंके संवर्धनके लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसको देवयज्ञ कहते हैं। अर्यमा आदि नित्य पितृगण और अपने मृत पूर्वजोंकी तृप्तिके लिये किया जाने वाला यज्ञ पितृयज्ञ है। उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चतुर्विध भूतसङ्घके मंगलके लिये जो यज्ञ किया जाता है, उसको भूतयज्ञ कहते हैं। एक मनुष्य मनुष्यजातिका अंश है; इस कारण कर्त्तव्य-बुद्धिसे भोजनसे पहले जो कोई आ जाय, उसको अन्नादिसे तृप्त करना नृयज्ञ है। ये पञ्चमहायज्ञ आर्य-जातिके नित्यकर्म हैं; परन्तु इस समय इनको लोग बिल्कुल भूल गये हैं (१२) वेदों और वेद-सम्मत स्मृति, पुराण और तन्त्रादि शास्त्रोंमें स्थिर विश्वास रखना हिन्दू-धर्मका बारहवाँ अङ्ग है। (१३) कर्म तथा कर्मका बीज, संस्कार और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियापर दृढ़ विश्वास रखना हिन्दू-धर्मका तेरहवाँ अंग है। (१४) जन्मान्तरवादपर विश्वास हिन्दूधर्मका चौदहवाँ अङ्ग है। मनुष्य मृत्यु-लोकमें आता है और जाति, आयु, भोग प्रकृति, प्रवृत्ति, शक्ति, और संस्कार—इन सातोंके अनुसार अपने कर्म-फलको भोगता है और भोग लेनेपर प्रेतलोक, नरकलोक, पितृलोक, असुरलोक और स्वर्ग आदि लोकोंमें जाता है और घूम-फिरकर पुनः इस मृत्युलोकमें आ जाता है। इसी निरन्तर घूमनेको आवागमन-चक्र कहते है। इसी निरन्तर घूर्णायमान चक्रमें आत्मा या जीवको सहायता पहुँचाने के लिये नाना प्रकारकी श्राद्धविधि, तर्पणविधि और दायभागविधि स्मृतिकारोंने बाँधी है और श्राद्धादिके नाना अधिकार स्मृति-पुराणोंमें वर्णित हैं। आजकल दायभागको जैसा लोग समझते हैं, वैसी दायभागकी विधि साधारण विज्ञानविरुद्ध नहीं है। वह बड़ी सदुव्यवस्थासे बाँधी गयी है। (१५) निर्गुण-उपासना और सगुण-उपासनाकी नाना विधियाँ जो हिन्दूशास्त्रोंमें बतायी गयी हैं, वह हिन्दू-धर्मका पन्द्रहवाँ अङ्ग है और (१६) जीवकी कैवल्य-प्राप्ति इसका सोलहवाँ अङ्ग है। हिन्दू-संस्कृतिको समझनेके लिये सबसे पहले ऊपर लिखित इन सब बातोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।

———

शिव पार्वती विवाह ।

जिस समय सप्तर्षिगण पार्वतीके विवाहका प्रस्ताव भगवान् शिवजीकी ओरसे लेकर पर्वतराज हिमालयके पास आये उस समय उन्होंने अपने स्वजाति बन्धुओंसे इसप्रकार पूछा 'हे मेरु! हे निषद! हे गन्धमादन! मन्दराचल! और हे मैनाक! तुम सबलोग अपनी यथोचित सम्मति दो, कि इस विषयमें क्या करना चाहिये। इसपर बातचीतमें कुशल मेनाने कहा - 'नाथ! इस समय आपसमें विचार करनेसे क्या लाभ? यह कार्य तो तभी सम्पन्न होगया था जब इस बड़भागिनी कन्याने जन्म लिया था। यह देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही उत्पन्न हुई है और भगवान् शिवके लिये ही इसका जन्म हुआ है। अतः यह शिवको ही ब्याही जानी चाहिये। इसने भगवन् रुद्रकी आराधना की है और रुद्रने भी वरदान देकर इसका सम्मान किया है। महाभागा पार्वती साक्षात् सती ही है। अतः यह शिवको ही ब्याही जाय यही उचित है यह वैवाहिक कृत्य हमारे द्वारा भगवान् शिवकी पूजामें निमित्त बनेगा।

मेनाकी यह उत्तम सम्मति सुनकर हिमवान् बहुत सन्तुष्ट हुए और सप्तर्षियोंने वहाँसे पुनः लौटकर भगवान् शिवसे उनकी प्रेयसी पार्वतीका वृत्तान्त इसप्रकार कहा-देवेश! गिरिराज हिमवान्ने अपनी कन्या आपको दे दी, इसमें संशय नहीं है। अब आप देवताओंको साथ ले शीघ्रही पार्वतीसे विवाह करनेके लिये प्रस्थान करें। ऋषियोंका यह बचन सुनकर परमेश्वर शिवने कहा—'विवाह कैसे होगा और बारातमें कौन-कौन चलेंगे। यह सब बात विस्तार पूर्वक बताओ।' इसपर उन ऋषियोंने भगवान् सदाशिवसे हँसकर कहा— देव! भगवान् विष्णुको बुलाना चाहिये। साथही ब्रह्मा, इन्द्र, ऋषिगण, यक्ष, गन्धर्व, नाग, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, अप्सरागण तथा अन्यलोगोंको भी शीघ्र बुलाना चाहिये। ऋषियोंकी यह बात सुनकर महादेवजीने देवर्षिनारदसे कहा—'तुम शीघ्र जाकर भगवान् विष्णुको बुला लाओ। उसके बाद ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य देवगणोंको भी ले आना।' लोक-पावन नारदने भगवान् शिवकी आज्ञा शिरोधार्य की और तुरन्त वहाँसे भगवान् विष्णुके प्रिय धाम बैकुण्ठलोकमें गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान्-विष्णु एक श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हैं। देवी-लक्ष्मी उनकी सेवा कर रही हैं। भगवान्की चार-भुजाएँ हैं तथा वे सब देवताओंमें श्रेष्ठ और अत्यन्त तेजस्वी हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी आभा नील-कमलके समान श्याम है, कानोंमें बहुमूल्य रत्न-जटित मनोहर कुण्डल झलमला रहे हैं। मस्तकपर परम सुन्दर विशाल मुकुट शोभा पारहा है, जिसमें जड़े हुए उत्तम रत्नोंकी प्रभासे वे और भी प्रकाशित हो रहे हैं। गलेमें सुन्दर वैजयन्तीकी वनमाला शोभा देरही है। इसप्रकार त्रिभुवन सुन्दर वे सनातन देव विष्णु बैकुण्ठमें विराज रहे हैं।

ऋषियोंमें श्रेष्ठ सर्वज्ञ नारदजी ब्रह्मवीणा बजाते हुए भगवान् विष्णुके समीप गये और शङ्करजीका संदेश सुनाते हुए बड़े आदरसे बोले— महाविष्णो! शीघ्र चलिये भगवान् शङ्कर तथा पार्वतीका मंगलमय विवाह निश्चित होगया है। उनकी ओरसे सबकार्योंकी व्यवस्था करनेवाले केवल आप ही हैं। 'नारदजीकी बात सुनकर देवाधि-

देव भगवान् जनार्दनने नारदजी तथा पार्षदोंके साथ वहाँसे प्रस्थान किया। भगवान् विष्णु योगेश्वरोंके भी प्रभु हैं, महान् हैं तथा परमात्मा हैं। वे उस समय गरुड़पर आरूढ़ हो श्रेष्ठ देवताओंके साथ आकाशमार्गसे भगवान् शिवके समीप आये। योगीजन जिनके चरणारविन्दोंका सदा चिन्तन करते हैं, वे महादेवजी भगवान् विष्णुको आया हुआ देख उठकर खड़े होगये और आनन्दमग्न हो उन्हें छातीसे लगा लिया। फिर भगवान् हरि और हर दोनों एकही आसनपर विराजमान् हुए। दोनोंने एक दूसरेकी कुशल पूछी। तत्पश्चात् महादेवजीने कहा—'विष्णो! पार्वतीकी तपस्यासे मैं उसके वशमें होगया हूँ और आज उसका पाणिग्रहण करनेके लिये हिमवान्के घर चलना चाहता हूँ। यह बात-चीत हो ही रही थी कि ब्रह्माजी भी इन्द्र तथा सम्पूर्ण लोकपालोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। इसी-प्रकार सब असुर यक्ष दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षि भी आये। सबने एकत्र होकर भगवान् शिवसे एक स्वरमें कहा 'देवाधिदेव! अब आप हमलोगोंके साथ हिमवान्के घर शीघ्र पधारिये।' तब भगवान् विष्णुने भी इस प्रस्तावके अनुरूप बात कही—'शम्भो! आपको गृहसूत्रोक्त विधिके अनु-सारही यहां वैवाहिककर्म करना चाहिये, जैसे नन्दीमुख श्राद्ध और मण्डपकी स्थापना आदि आवश्यक कार्य हैं।' भगवान् विष्णुके कथनानुसार महादेवजीने अपने हितके लिये सबकार्य वैसाही किया। आभ्युदयिक श्राद्धकर्ममें जिनका पूजन उचित और आवश्यक है ऐसे ब्रह्मादि देवताओंकी उन्होंने पूजा की। ब्रह्माजीके साथ कश्यप मुनिने नव-ग्रहोंका पूजन किया अत्रि, वशिष्ठ, गौतम भागुरि, भृगु, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि पराशर, मार्कण्डेय, शिलावाक्, शून्यपाल, अक्षतश्रम्, अगस्त्य, च्यवन तथा गोभिल–ये और दूसरे भी अनेक महर्षि शिवजीके समीप आए। ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन सबने वहाँ विधिपूर्वक शास्त्रोक्त रीतिसे शुभकर्म सम्पन्न कराये। चण्डीदेवी सब भूतोंसे घिरी हुई सबके आगे-आगे चलीं। उन्होंने अपने मस्तकपर सोनेका कलश ले रखा था। चण्डीके पीछे भगवान् शिवके गण थे और गणोंके पीछे इन्द्र आदि देवता लोकपाल और ऋषि चल रहे थे। ऋषियोंके पीछे भगवान् विष्णुके महातेजस्वी कुमुद आदि पार्षद थे जो भगवान्के असंख्य भावोंको शीघ्रही समझ लेनेवाले तथा बड़े मनोहर थे। परम पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले तथा विश्वके एकमात्र बन्धु परमात्मा भगवान् श्रीहरि शिवजीके साथ-साथ चल रहे थे। तीनोंलोकोंके एकमात्र पालक भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ अपने वाहन गरुड़जीकी पीठपर बैठे थे। बड़े-बड़े मुनीश्वर अपने हाथोंमें सुन्दर चवँर लिये हुवा कर रहे थे। सर्वेश्वर श्रीहरि उन सबके साथ बड़ी शोभा पा रहे थे। इसीप्रकार ब्रह्माजी भी चारो वेदों, छहों वेदाङ्गों, आगमों इतिहासों और पुराणोंके साथ अपने वाहन हंसपर विराजमान थे। ब्रह्मा, विष्णु, देवेश्वरगण तथा ऋषिवृन्दसे घिरे हुए भगवान् शिव अपने वाहन वृषभपर बैठकर चल रहे थे। वे सम्पूर्ण योगेश्वरोंके लिये भी दुर्लभ तथा अगम्य हैं। वेद, देवता, सिद्ध और महर्षिगण जिसे धर्म कहते हैं, उसी धर्म स्वरूप, धर्मवत्सल वृषभ-पर महादेवजी आरूढ़ थे। मातृकाएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर अपनी मधुर वाणी द्वारा भगवान् शिवके लिये मंगलगान कर रही थीं। इसप्रकार भगवान् महेश्वर सम्पूर्ण देव-दानवोंके साथ सब प्रकारसे अलंकृत हो नारियोंमें श्रेष्ठ पार्वतीजीका पाणिग्रहण

करनेके लिये गिरिराज हिमवान्‌के घर चले।

इधर गिरिराज हिमालय भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी पुत्रीके लिए उसी प्रकार सब मंगलाचार करा रहे थे। उन्होंने गर्गजीको पुरोहित बनाकर महान् वैभवके द्वारा माङ्गलिक भूमि निर्माण करायी। विश्वकर्माको बुलाकर उनके द्वारा बड़े उत्साहके साथ अत्यन्त विशाल मण्डप तैयार कराया, जो बहुतसी वेदियोंके कारण अतीव मनोहर जान पड़ता था वह मण्डप अनेक प्रकारके गुणोंसे तथा भाँति भाँतके आश्चर्य भरे दृश्योंसे सुशोभित था। वह अपनी दिव्य निर्माण-कलासे देवताओंका भी मन मोह लेता था।

तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता नारदजीको आगे करके हिमवान्‌के परम अद्भुत भवनमें एक साथ प्रवेश किया। उसे विश्वकर्माने विचित्र ढंगसे बनाया था। वहाँ अनेक प्रकारकी आश्चर्यभरी बातें देखनेमें आती थीं। वह यज्ञ-मंडप अत्यन्त पवित्र और उत्तम था। बहुत लोगोंने सर्वश्रेष्ठ बताकर उसकी प्रशंसा की थी। उसकी कारीगरी अद्भुत थी। वह मन और बुद्धिके लिये अतर्क्य था। बुद्धिमान् विश्वकर्माने इस प्रकार विचित्र यज्ञमंडपकी रचना की थी। वे सम्पूर्ण देवेश्वर ऋषियोंके साथ उस मण्डपमें प्रवेश करना ही चाहते थे तब तक हिमवान्‌की दृष्टि उनके ऊपर पड़ी। हिमवान्‌ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन सबके ठहरनेके लिये बड़े मनोहर गृह प्रदान किये। गन्धर्व, सिद्ध, प्रमथ, यक्ष, देव, नाग, तथा अप्सरायें—इनमें जो जहाँ सुख पूर्वक रह सके, वहीं विश्राम स्थान हिमालयने दिया।

हिमवान्‌से सम्मानित होकर सब देवताओंने अपने परिवार और वाहनों सहित उस मण्डपमें आनन्द पूर्वक निवास किया। विश्वकर्माने उसमें बहुत विस्तृत अवकाश बना रखा था। ब्रह्माजीके निवासके लिये अत्यन्त प्रकाशमान स्थान बनाया गया था। उसी प्रकार भगवान् विष्णुके लिये दूसरा भवन बना था जो अत्यन्त विचित्र और बहुतही प्रकाशमान था। विश्वकर्माने उसे अपने हाथों सँवार कर अत्यन्त मनोहर बना रखा था। इसी प्रकार चण्डीगृह भी उन्होंने बड़ा सुन्दर बनाया था। उसके अतिरिक्त विश्वकर्माने जो एक अत्यन्त विचित्र परम मनोहर, महान् मंगलमय श्रेष्ठ देवताओं द्वारा प्रशंसित, कैलासके समान अतिशय प्रभापूर्ण तथा अत्यन्त शोभायमान भवन बना रखा था उसीमें हिमवान्‌ने महान् वैभवके साथ भगवान् शिवको ठहराया। इसी समय मेनादेवी अपनी सखियों तथा ऋषि मुनियोंके साथ भगवान् शिवकी आरती उतारनेके लिये आयीं। उस समय जो बाजे बज रहे थे, उनके शब्दसे तीनों लोक गूँज उठे। मेनाने तपस्वी शिवकी अपने हाथों आरती उतारी। वे बड़ी सती साध्वी थीं। जामाताको देखकर उन्हें पार्वतीकी कही हुई सब बातें स्मरण हो आयीं और वे विस्मय विमुग्ध हो उठीं। मेना मन-ही-मन कहने लगीं अहो! पार्वतीने पहले मेरे समीप जो कुछ कहा था, उससे कहीं अधिक सौंदर्य इस समय मै महादेवजीके अंगोंमें देख रही हूँ। यह सौन्दर्य तो अनिर्वचनीय है।' इस प्रकार विस्मयमें डूबी हुई मेनादेवी अपने घरमें लौट आयीं।

उस समय पार्वती स्नान करके मङ्गलपीठपर बैठी थीं। ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने सब ओरसे उन्हें घेरकर आरती उतारी। तदनन्तर गर्गाचार्यने कहा—'विद्वानों! आप लोग इसी समय पाणिग्रहणके लिये भगवान् शङ्करको इस मण्डपमें ले आवें। इस कार्यमें शीघ्रता होनी चाहिये।' गर्गाचार्यका वचन सुनकर

गिरिराज हिमवान्‌के सब मन्त्री भगवान् शङ्करके पास गये और उन्होंने तीन कलशोंके जलसे माङ्गलिक विधिके अनुसार भगवान् सदाशिवको स्नान कराया तथा उनकी आरती भी उतारी। स्नान करके सुन्दर वस्त्र धारणकर लेनेके पश्चात् शङ्करजीका उन सबने पुनः पूजन किया। उसके बाद उन्हें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित करके हाथी पर चढ़ाया। उस समय भगवान् शिवके मस्तकपर बहुत बड़ा छत्र तना हुआ था, उस छत्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। ऊपरसे चँदोवा तना था और सब ओरसे उनको चँवर डुलाये जा रहे थे। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा सब लोकपाल 'वर' के आगे-आगे चलते हुए उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न दिखायी देते थे। उस यात्राके समय शङ्ख, भेरी, पटह आनक, और गोमुख आदि बाजे बज रहे थे। सम्पूर्ण गायक उत्तम माङ्गलिक गीत गा रहे थे। अरुन्धती, अनुसूया, सावित्री तथा मातृकाओंसे घिरी हुई लक्ष्मीजी भी उस शोभायात्रामें सम्मिलित थीं। इन सबके साथ जगत्‌के एकमात्र बन्धु भगवान् शिव अपने उत्तम तेजसे सुशोभित हो रहे थे। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि वायु, श्रेष्ठ लोकपाल तथा महर्षिगण भी उनके साथ थे। साक्षात् वायुदेव पंखा कर रहे थे। चन्द्रमाने उनके सिरपर छत्र लगा रखा था। सूर्य्य आगे रहकर अपने तेजसे तप रहे थे। देवराज इन्द्र हाथमें बेतकी छड़ी लेकर छड़ीदारका काम करते थे। इस प्रकार देवता और पर्वत भगवान् शिवके आगे चलते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय देवता और मुनि भगवान् शिवके ऊपर फूल बरसा रहे थे, जिससे उनकी शोभा और भी बढ़ गई थी। सामने हिमवान्‌का सुन्दर भवन था जो महान् वैभवके कारण सब ओरसे शोभा सम्पन्न दिखायी देता था उस घरका आँगन सोनेका बना हुआ था। वहाँ द्वार पर भगवान् शिवकी विशेष रूपसे पूजा हुई। फिर मनुष्य, देवता और दानवोंके द्वारा पूजित होकर उन्होंने उस भवनमें प्रवेश किया। इस प्रकार अन्तःपुरमें पहुँचकर भगवान् शिव यज्ञ-मण्डपमें पधारे। उस समय नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे परमेश्वर शिवके गुण गाये जा रहे थे। वहाँ पहुँचने पर गिरिराज हिमवान्‌ने महेश्वरको हाथीसे उतारा और मङ्गलपीठपर बिठाकर सखियों सहित मेना तथा पुरोहितने उनकी विशेषरूपसे आरती की। वहाँ मधुपर्क आदिकी जो आवश्यक विधि है वह सब ब्रह्माजीकी आज्ञासे पुरोहितने तत्काल सम्पन्न किया। तत्पश्चात् अन्तर्वेदीमें प्रवेश करके जहाँ 'तन्वङ्गी' पार्वती समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो वेदीके ऊपर विराजमान थीं वहीं महादेवजी भी लाये गये। उनके साथ भगवान् विष्णु और ब्रह्मा भी थे। वृहस्पति आदि विद्वान् लग्नकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गर्ग और वशिष्ठ मुनि जहाँ घड़ीका स्थान था वहीं बैठे थे। ज्योंही घड़ी पूरी हुई गर्गाचार्यने ॐकारका उच्चारण करके हाथ जोड़कर निवेदन किया। अब मङ्गलमय पुण्य मुहूर्त्त आ गया। पार्वतीने अपने हाथकी अञ्जलिमें अक्षत लेकर उसे शिवके ऊपर छोड़ा। फिर दही, अक्षत और कुशके जलसे उनका भली-भाँति पूजन किया।

इसी समय गर्गाचार्यके आदेशसे हिमवान् अपनी पत्नी मेनाके साथ वहाँ कन्यादान करनेको प्रस्तुत हुए। मेना सोनेका कलश लेकर उनकी अर्द्धाङ्गिनी बनी हुई थीं। परम सौभाग्यवती मेना समस्त आभरणोंसे विभूषित होकर हिमवान्‌के साथ बैठी थीं। उस समय हिमवान्‌ने सबको वर देनेवाले भगवान् विश्वनाथसे कहा 'आज मैं ब्रह्माजी तथा

भगवान् विष्णुका संग पाकर और अपने पुरोहित परम महात्मा गर्गजीके साथ बैठकर देवाधिदेव भगवान् शङ्करको कन्यादान करता हूँ। विप्रवर! इस समय कन्यादानके लिये उत्तम बेला आयी है। इसमें आप संकल्प पढ़ें।' बहुत अच्छा' कहकर वहाँ आये हुए सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने हिमवान्‌की बात स्वीकार की। वे सभी शुभ समयके ज्ञाता थे। उन्होंने तिथि, मास, नक्षत्र, आदिका यथावत् उच्चारण किया। फिर हिमवान् भगवान् शङ्करसे इस प्रकार बोले—

हिमवान्‌ने कहा—तात! महाभाग! आप अपने गोत्रका नाम बतावें और अपने कुलका विशेषरूपसे परिचय दें।

भगवान् शङ्करके मुखारविन्दसे इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं मिला। उस समय नारदजी बहुत हँसे और अपनी वीणा बजाने लगे। यह देखकर बुद्धिमान् हिमवान्‌ने उन्हें मना करते हुए कहा—'प्रभो! आप वीणा न बजाइये।' पर्वतके ऐसा कहनेपर नारदजी बोले—'गिरिराज! तुमने साक्षात शिवजीसे उनका गोत्र बतानेके लिये कहा है; परन्तु इनका गोत्र और कुल तो 'नाद' ही है। भगवान् शङ्कर न तो किसी कुलमें उत्पन्न हुए हैं और न इनका किसी विशेष कुलसे सम्बन्ध ही है। ये गोत्रोंके भी परमगति हैं। महादेवजी नादमें प्रतिष्ठित हैं और नाद उनमें प्रतिष्ठित है। अतः भगवान् शिव नादमय हैं और नादसे ही प्राप्त होते हैं। यही भाव व्यक्त करनेके लिये मैंने इस समय वीणा बजायी है। इनके गोत्र और कुलका नाम ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। भगवान् शिवका कोई रूप नहीं है। इसीलिये किसी कुलमें उत्पन्न न होनेके कारण ये अकुलीन कहलाते हैं। गिरिराज! इसीलिये तुम्हारे ये 'जामाता' गोत्र-रहित हैं। राजन्! मेरे बहुत कहनेसे क्या लाभ। इनके अंशमात्रसे मोहित होकर ये ऋषि लोग भी इनके स्वरूपको यथावत् रूपसे नहीं जानते। यह कन्या कौन है, इस बातको अभी तुम भी ठीक ठीक नहीं जानते। शिव और पार्वती—इन दोनोंसे ही सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति होती है तथा इन्हीं दोनोंके आधारपर यह टिका हुआ है।'

महात्मा नारदका यह वचन सुनकर हिमवान् आदि समस्त पर्वत और इंद्र आदि सब देवता विस्मित होकर उन्हें 'साधुवाद' देने लगे। भगवान् महेश्वरकी गंभीरताको जानकर वहां आये हुए सब विद्वान् आश्चर्यचकित हो परस्पर कहने लगे—जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजीके द्वारा इस सम्पूर्ण विशाल विश्वकी सृष्टि हुई है, जिनसे अभिन्न होनेके कारण यह समस्त जगत परात्पररूप तथा आत्मबोध स्वरूप है, स्वतन्त्र परमेश्वररूपसे जानने योग्य है, वे भगवान् शिव ही अपने त्रिभुवनमय स्वरूपसे युक्त होकर सर्वत्र विराज रहे हैं।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीकी आज्ञासे हिमवान्‌ने कन्या-दान किया और कहा—हे परमेश्वर! मैं अपनी यह कन्या आपकी धर्मपत्नी बनानेके लिये अर्पित करता हूँ, कृपया स्वीकार करें। यह वाक्य बोलकर उन्होंने अपनी कन्या दे दी। फिर कमलके समान नेत्रोंवाले वे दोनों दम्पति (वर-वधू) वेदीके बाहर लाये गये तथा उन पार्वती और परमेश्वरको बाहरकी ही वेदीपर बिठाया गया। जब होमका कार्य आरम्भ हुआ तब ब्रह्माजी भगवान् शिवके समीपही ब्रह्मा-सनपर विराजमान हो गये। हवन पूरा होनेपर ब्राह्मण लोग शान्ति पाठ करने लगे। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उच्च स्वरसे बोले

जानेवाले वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे वहांकी सम्पूर्ण दिशायें गूंज उठीं। तत्पश्चात् देवाङ्गनाओंने महादेवजीकी आरती उतारी तथा ऋषि-पत्नियोंने उनका पूजन किया। गिरिराज हिमालयके घरकी स्त्रियोंने भी वरकी आरती उतारी। संगीतज्ञोंमें कुशल गंधर्व आदिने अपने गीतोंसे तथा महर्षियोंने स्तुतियों द्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न किया। उदारचित्तवाले गिरिराज हिमालयने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर ऋषि, गंधर्व, यक्ष और वहां पधारे हुए अन्य लोगोंको भी बहुमूल्य रत्न भेंट किये इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु और देवेश्वर भगवान् शिवको आगे करके भोजन करने लगे। हिमालयने उन सबका यथोचित सत्कार किया उन सबने एक साथ मिलकर और एक ही स्थानपर पंक्ति लगाकर साथ भोजन किया। कोई-कोई गण पंक्तिसे अलग होकर भोजन करते थे। उन्होंने अपने लिए पृथक् पात्र बना रक्खा था। नन्दी तथा वीरभद्र आदि महात्मा भगवान् शिवके पीछे बैठकर भोजन कर रहे थे। इंद्र आदि देवता तथा ऋषि-मुनि भी भगवान् महेश्वरके पास ही भोजन करते थे। चण्डीके गणोंने भी वहां भोजन किया। बेताल, क्षेत्रपाल, कूष्माण्ड, भैरव, शाकिनी, डाकिनी, यक्षिणी, मातृका, आदि चौंसठ योगिनी तथा अन्यान्य योगीजन भी उस महान् भोजमें सम्मिलित हुए थे।

इस प्रकार वे सब बराती खा-पीकर तृप्त और सन्तुष्ट हुए। उन सबके चित्तमें बड़ा आनन्द था। तदनन्तर ब्रह्मा आदि सभी देवता विश्राम करनेके लिये अपने-अपने डेरों पर गये। इस तरह हिमवान्ने बड़े समारम्भके साथ परम मंगलमय और अतिशय शोभायमान् वह वैवाहिक उत्सव सम्पन्न किया। अन्तिम दिन हिमवान्ने उत्साहपूर्ण हृदयसे वस्त्र, आभूषण और भाँति-भाँतिके रत्न भेंट करके देवाधिदेव भगवान् शिवका पूजन किया। तत्पश्चात् वे विष्णु भगवान्का पूजन आरम्भ किये। सुन्दर-सुन्दरवस्त्रों और आभूषणों द्वारा उन्होंने लक्ष्मी सहित विष्णुका पूजन किया। इसीप्रकार ब्रह्माजी, बृहस्पतिजी और इन्द्राणी सहित इंद्रकी तथा अन्य लोकपालोंकी भी पृथक्-पृथक् पूजा की। वस्त्राभूषणों तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे भूत, प्रमथ और गुह्यक गणों सहित चण्डी देवीका भी पूजन किया। इनके अतिरिक्त भी जो लोग वहां पधारे थे उन सबका हिमवान्ने यथावत् सत्कार किया। इस प्रकार उस समय हिमवान्के द्वारा सब देवता, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण, मनुष्य तथा अप्सरा इन सबका भलीभांति सत्कार किया गया।

इसके बाद भगवान् विष्णुने भी उसी तरह सब पर्वतोंका सत्कार किया। सह्याचल, विन्ध्याचल, मैनाक, गन्धमादन, माल्यवान्, मलय, महेन्द्र, मन्दराचल तथा मेरु इन सबका श्रीहरिने प्रयत्न पूर्वक पूजन किया। श्वेतकूट, श्वेतगिरि, नीलगिरि, उदयगिरि, शृङ्गाचल, अस्ताचल, मानसाचल, कैलाश तथा लोकालोक पर्वतका पूजन ब्रह्माजीने किया। इस प्रकार सभी श्रेष्ठ पर्वतोंकी वहां पूजा की गयी। साथही सम्पूर्ण पर्वत-वासियोंका भी पूजन किया गया। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीके साथ सबके स्वागत-सत्कारका कार्य समुचित रूपसे सम्पन्न किया। दूसरे दिन बारात लौटी। हिमालयने अपने बन्धुओंके साथ गन्धमादन पर्वत तक वरका अनुगमन किया। शिव और पार्वती दोनों महातेजस्वी दम्पति हाथी पर शोभा पारहे थे। ब्रह्माजी विमानपर और भगवान् विष्णु गरुड़पर बैठे थे। इन्द्र ऐरावत

पर और कुबेर पुष्पक विमानपर विराज रहे थे। पाशधारी वरुण मगरपर तथा यमराज भैंसेपर सवार थे। नैऋत प्रेतपर और अग्निदेव बकरेपर चढ़े थे। वायुदेव मृगपर तथा ईषान् वृषभपर आरूढ़ थे। इस प्रकार ये सब लोकपाल और ग्रह अपनी-अपनी सेनाओंके साथ वरको घेरे चल रहे थे। प्रमथ आदि गण भी वरयात्रामें सम्मिलित थे। जिनके कन्या-दानरूपी महान् दानसे भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट हुए. वे गिरिराज हिमवान् तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये।

इस प्रकार भगवती पार्वतीका मंगलमय विवाह भगवान् शिवके साथ अद्भुत समारोहके साथ सम्पन्न हुआ था

❀ ❀ ❀

श्रीभगवद्गीता—द्वितीय अध्याय

(हिन्दी पद्यानुवाद—गतांक से आगे)

श्रीमोहन वैरागी

३३

फैलेगी अपकीर्ति जगत में
होगा हा उपहास महान।
श्रेष्ठ जनों के लिये धनञ्जय
अपयस है बस मृत्यु समान॥

३४

तुम्हें वीरगण भीरु कहेंगे
और हँसेगा स्वजन समाज।
जिनके थे तुम मान्य अभीतक
लज्जित वही करेंगे आज॥

३५

प्रतिपक्षी कौरव ये सारे
देंगे सदा तुम्हें धिक्कार।
लखकर अपनी हीन दशा यों
किसे न होगा क्लेश अपार॥

३६

उठो पार्थ अब धनुष सँभालो
तजो मोह ममता अज्ञान।
यदि मर गये स्वर्ग पाओगे
जीते तो साम्राज्य महान॥

३७

सुख दुख लाभ हानि यश अपयश
इन सबसे रहकर निर्लिप्त।
विजय पराजय एक समझकर
हो अब पार्थ युद्धमें लिप्त॥

३८

होकर विरत फलाफलसे तुम
रत हो कर्मसिद्धिमें पार्थ।
कर्मपाशमे तुम न बँधोगे
यदि है कर्म निपट निस्वार्थ॥

३९

इस प्रकार सब कर्म तुम्हारे
होंगे पार्थ पूर्ण निर्विघ्न।
होगी तुम्हें सफलता निश्चय
तथा दूर होंगे सब विघ्न॥

४०

कर्माकर्म ज्ञात है उसको
मति जिसकी रहती एकान्त।
स्वार्थ वासना निहित बुद्धि तो
होता सदा अनिश्चित भ्रान्त॥

(क्रमशः)

महापरिषद् सम्वाद।

श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की प्रबन्ध समितिकी बैठक चैत्र कृष्ण ६ सोमवार २००८ तदनुसार ता० १७-३-५२ को सन्ध्याकाल ५ बजे श्री-आर्यमहिला महाविद्यालय भवनमें धर्मरत्न श्रीमान् सेठ बाबूलाल जी ढनढनिया महोदयकी अध्यक्षतामें हुई। जिसमें निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

धर्मरत्न श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढनढनिया जी
श्रीमती विद्यादेवी जी महोदया
श्रीमती मलावादेवी सूद
श्रीमान् बाबूकिशोरीरमण प्रसाद जी
श्रीमान् पं० रामशंकर जी वैद्य,
धर्मभूषण श्रीमान् ठाकुर लौटू सिंह गौतम जी
श्रीमान् पंडित अवधेशप्रसाद शर्मा जी
श्रीमान् पंडित रामअवतार पांडेय जी

गत बैठककी कार्यवाही पढ़ी गयी और पुष्ट की गयी।

महापरिषद्का आय-व्ययका मासिक हिसाब अक्टूबर सन् ५१ से जनवरी १९५२ तकका तथा विद्यालयका आय व्ययका मासिक विवरण नवम्बर ५१ से जनवरी ५२ तकका उपस्थापित हुआ और स्वीकृत हुआ।

सन् १९४९-५० के विद्यालयके आडीटरकी रिपोर्ट प्रिंसपल महोदयाके उत्तरके साथ पढ़ी गयी तथा सम्बन्धित कागज-पत्रोंका भी निरीक्षण किया गया। सर्व सम्मतिसे निश्चय हुआ कि जो उचित सुझाव आडिटरने दिया है उसका पालन किया जाय; किन्तु रिपोटके पैराग्राफ पाँचका तीसरा नम्बर और अन्तिम पैराग्राफमें जो आडीटरने आक्षेप किये हैं वे सर्वथा निराधार, अत्यन्त आपत्तिजनक और अपमानजनक हैं। ऐसा लगता है कि निरीक्षकने अपना सन्तुलन खोनेके कारणही ऐसी बातें लिख डाली हैं। यह समिति शिक्षाविभागसे अनुरोध करती है कि इस पर विचार करे। इस मन्तव्यकी प्रति-लिपिके साथ प्रिंसपल महोदयाका उत्तर शिक्षा-विभागको भेज दिया जाय।

यह भी निश्चय हुआ कि तीन हजारकी उधार-की रकमपर जो आपत्ति है वह महापरिषद्की ओरसे सहायता दी गयी थी, अतः विद्यालयमें सहायता लिखी जाय।

गौरी अधिकारीका ता० १६-१२-५१ का त्याग पत्र प्रिंसपलकी रिपोर्टके साथ उपस्थापित हुआ। निश्चय हुआ कि उन्होंने एग्रीमेण्टके अनुसार दो महीनेका न तो नोटिस दिया है न नोटिसके बदले दो महीनेका वेतन ही दिया है। अतः सर्व सम्मतिसे निश्चय हुआ कि उनसे दो माहका वेतन २५२ रु० जो विद्यालयका पावना होता है उनके बाकी वेतन एवं प्रविडेण्ड फण्डमें शिक्षा विभागकी अनुमतिसे वसूल किया जाय और इसपर भी जो रकम बाकी पड़े उसको बट्टे खाते लिखा जाय।

महापरिषद्की प्रबन्ध समितिकी एक बैठक पुनः चैत्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवार सं २००९ को महापरि-षद्के कार्यालयमें हुई थी जिसमें विद्यालयको डिग्री कालेज बनानेके सम्बन्धमें अनेक विचार विमर्श हुआ और उसके लिये आवश्यक कार्यवाही करनेके विषयमें मन्तव्य स्वीकृत हुए। इस बैठकमें सर्व सम्मतिसे श्रीमान् रायगोविन्दचन्द्र जी एम. ए, श्रीमान् गङ्गाशंकर मिश्र एम. ए., श्रीमान् नागेश उपाध्याय एम ए, श्रीमान् प्रो० एस. एल. दर एम. ए और श्रीमान् कविराज ब्रजमोहन दीक्षित इस समितिके सदस्य निर्वाचित किये गये।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्‌का अभूतपूर्व प्रकाशन

स्त्री-पुरुष विज्ञान

मूल्य ।)

स्त्री-पुरुषोंके शारीरिक, मानसिक मौलिक भेद, उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ एवं शक्तियाँ, समान-शिक्षाका भयावह परिणाम, इस पुस्तकमें बड़ी योग्यतासे चित्रित किया गया है। समाजका कल्याण चाहनेवालोंको इसे एकबार अवश्य पढ़ना चाहिये।

अन्तःकरण विज्ञान

मूल्य ।।।)

मनोविज्ञान जैसा गूढ़ विषय इस पुस्तकमें अत्यन्त सरलताके साथ समझाया गया है अन्यत्र कहीं भी ऐसा मनोवैज्ञानिक विवेचन देखनेको नहीं मिलेगा।

स्मरणी

मूल्य ।।=)

हिन्दूधर्मके षोडशसंस्कार तथा हिन्दू-दर्शन-शास्त्रके अनुसार सुख-दुःख, पाप-पुण्य, नरक-स्वर्ग आदिका विस्तृत विवेचन इस पुस्तकमें अत्यन्त रोचकताके साथ किया गया है।

निर्मूल आक्षेपोंका उत्तर

मूल्य ।=)

हिन्दूधर्मपर होनेवाले निर्मूल और असार आक्षेपोंका उचित उत्तर आपको इस पुस्तकमें पढ़नेको मिलेगा। हिन्दूधर्मप्रेमियोंको इसे एकबार अवश्य पढ़ना चाहिये।

सतीधर्म और योगशक्ति

मूल्य ।)

पुनीत आख्यानोंद्वारा सतीधर्मकी महिमाका वर्णन पढ़कर आपको अपने देशके गौरवपर अभिमान होगा। आपकी संतानके लिये यह पुस्तक एक आदर्शका काम करेगी। प्रचारकी दृष्टिसे शिक्षा-संस्थाओंको मूल्यमें रिआयत की जायगी।

व्यवस्थापक—आर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

धार्मिक साहित्यकी अपूर्व निधियाँ

धर्म-विज्ञान

तीन खण्डों में

(ब्रह्मीभूत श्री १०८ स्वामी दयानन्दजी महाराजद्वारा विरचित)

सनातनधर्मके विभिन्न विषयका विशद प्रतिपादन तुलनात्मकरूपसे इस बृहद् ग्रन्थमें किया गया है और इसमें पश्चिमी विद्वानोंके प्रमाण भी दिये गये हैं, यह ग्रन्थ तीन खण्डोंमें प्रकाशित है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इसका अध्ययन करना परमावश्यक और लाभदायक है। यह पुस्तक एम० ए० क्लासकी पाठ्य-पुस्तक हो सकती है। मूल्य प्रथम खण्ड ५), द्वितीय खण्ड ४), तृतीय खण्ड ४)।

धर्मतत्त्व

धर्माधर्मसम्बन्धी ज्ञानप्राप्त करना प्रत्येक हिन्दूका आवश्यक कर्तव्य है। इस धर्मग्रन्थमें उसके अङ्गोंपर संक्षेपसे बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। अतः प्रत्येक गृहस्थके लिये यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है, ऐसे स्कूल और कालेज तथा पाठ-शालाएँ जिनमें धार्मिक शिक्षा देनेका नियम है, इस धर्मग्रन्थसे काफी लाभ उठा सकते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक बालिकाओं यानी सभी वर्गके लोगोंके लिये यह समान हितकारी है। धर्मज्ञानकी ज्योतिको घर-घरमें जगानेके लिये यह सर्वाङ्गसुन्दर एवं उपयोगी ग्रन्थ है। मूल्य १=) मात्र।

आर्य-महिलाके नियम

१—'आर्यमहिला' श्री आर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करनाही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमास प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादमें कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें बिलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिए पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्यमहिला' जगतगञ्ज, बनारस कैंट के पतेसे आना चाहिए।

७—लेख कागजपर एकही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होने वाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है:--

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५) प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५) ,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०) ,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०) ,,
,, १/२ ,,	१२) ,,
,, १/४ पृष्ठ	८) ,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छपानेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

क्रोडपत्र

क्रोडपत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये, अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला-कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।
मुद्रक—सर्वोदय प्रेस, लहुराबीर, बनारस।

श्री आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌की—मुखपत्रिका

आर्य्य-महिला

प्रधान सम्पादिका :—

श्रीमती सुन्दरीदेवी, एम्० ए०, बी० टी०

विषय-सूची

मातृभाषा हिन्दीके लिये—

प्रत्येक भारतीयका कर्तव्य है कि वह हर प्रकारके व्यवहारमें हिन्दीभाषा और देवनागरी लिपिको ही अपनाकर उसे राजभाषा और राष्ट्रभाषाका समुचित स्थान दिलानेमें दृढ़-प्रतिज्ञ हो और दूसरोंसे भी यही प्रतिज्ञा करावे।

— माननीया श्रद्धामाता

अर्द्धं भार्य्या मनुष्यस्य, भार्य्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्य्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्य्या मूलं तरिष्यतः ॥

श्रावण, सं० २००६ | वर्ष ३१, संख्या ५ | अगस्त, १९४९

सर खनतहिं जनम सिरान्यो

कबहूँ मन विश्राम न मान्यो ।
निसिदिन भ्रमत, विसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो ॥
जदपि विषय संग, सहे दुसह दुख, विषम जाल अरुझान्यो ।
तदपि न तजत, मूढ़ ममता बस, जानतहूँ नहिं जान्यो ॥
जनम अनेक, किये नानाविधि, करम कीच चित सान्यो ।
होई न विमल, विवेक नीर विनु, वेदपुरान वखान्यो ॥
निजहित नाथ, पिता-गुरु-हरिसों, हरषि हृदय नहिं आन्यो ।
'तुलसीदास' कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो ॥

— महात्मा तुलसीदास

आर्यमहिलाका आदर्श और कालिदास

श्रीयुत—केदारनाथ शर्म्मा सारस्वत, सुप्रभात-सम्पादक

भारतकेही नहीं ; विश्वके महाकवि कालिदासके सम्बन्धमें हमारी यह एक साधारण धारणा है कि वे शृङ्गाररसके महान् कवि थे। उनके काव्य और नाटक प्रायः नायक-नायिकाओंकी प्रेम-कथाओंके आधारपर ही निर्माण किये गये हैं। यद्यपि कालिदाससे कहीं अधिक नग्नशृङ्गारका वर्णन करनेवाले श्रीहर्ष, कुमारदास, माघ आदि अनेक कवियोंके रहते भी कालिदासकीही शृङ्गारमें अधिक प्रसिद्धिका कारण हमारी उनके प्रति अनभिज्ञता है। हम काव्योंका अध्ययन काव्य एवं अलङ्कारोंको रस और व्यङ्गयकी दृष्टिसे करते हैं। हम कविके उस सूक्ष्मतम व्यङ्गयकी ओर अपनी दृष्टिका प्रयोग नहीं करते, जिससे प्रेरित होकर कवि अपने काव्यके निर्माणमें प्रवृत्त होता है और जो उसका अन्तिम और महान् लक्ष्य होता है।

काव्यका प्रधान उद्देश्य—कान्तासम्मित उपदेश है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी कविताका अन्तिम लक्ष्य या व्यङ्गय अथवा आदर्श है:—रामका चरित्र अनुकरणीय है, भरत, लक्ष्मण, हनूमानके चरित्र अनुकरणीय हैं, रावण, वाली या मन्थरा, कैकेयीके नहीं !

इसी प्रकार अपने समयका प्रतिनिधि कवि तत्कालीन समाजमें प्रचलित बुराइयोंको दूरकरनेका लक्ष्य रखकर अपनी सरस-मधुर वाणीद्वारा समाजके लिये समुचित कर्तव्य और अपनी संस्कृतिके उच्चतम आदर्शको अलक्षितरूपेण उपस्थित करता है, जिसका सहृदय पाठकके हृदयपर अदृश्य किन्तु दृढतम प्रभाव पड़ता है।

कालिदास उसयुगके प्रतिनिधि हैं, जो भारतका स्वर्णयुग कहा जाता है। गुप्तकालीनभारत, स्वर्णभारत था भारतकी सभ्यता, कला, सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य, वैभव और विद्वत्ता उससमय परम सीमापर पहुँच चुकी थीं। राजा और धनी विलास-वासनामें चूर्ण थे। धन-वैभव-मत्त राजाओंके अन्तःपुर कामिनी-करकलित वीणाकी झंकारोंसे झंकारित थे। राजमहल दिनरात नृत्यगीत और मृदङ्गोंकी मेघ-गम्भीरध्वनिसे मुखरित थे। कादम्बरी और कामिनीका बोलबाला था। परन्तु इतना होनेपर भी वे आजकलके विलासी राजा-रईसोंके समान कर्तव्यच्युत न थे। उनका जीवन विदेशियोंसे स्वदेशकी रक्षाके लिये सर्वदा सन्नद्ध रहता था, वे महान्से महान् त्याग करनेके लिये, धर्म और देशपर प्रसन्नताके साथ बलिदान होनेके लिये सदा प्रस्तुत थे और शास्त्र एवं धर्मकी आज्ञा माननेवाले सच्चे वीर थे। फिर भी उस भारतीय-आर्य संस्कृतिकी उनके द्वारा अवहेलना हो जाती थी। आर्यसंस्कृतिके सच्चे सन्देश वाहक महाकवि कालिदासने इन्हें शिक्षा देने और आर्ष-पथ-प्रदर्शन करानेके लिये कान्तासम्मित उपदेशका मार्ग ग्रहण किया था। उन्होंने किसी भी तत्कालीन अपने संरक्षक राजाका नाम तक नहीं लिया, न उनकी प्रशस्तिमें एक पङ्क्तिका भी उपयोग किया।

अपने प्रथमकाव्य कुमारसम्भवमें उन्होंने एक पक्षका सुन्दर और सजीव चित्र अङ्कित किया है। अनिन्द्य सुन्दरी पर्वतराज कन्या पार्वती, अखण्ड ब्रह्मचारी परमतपस्वी शिवजीपर आसक्त होकर उन्हें अपने सौन्दर्यके जालमें फँसाना चाहती थी। सभी देवता उसके सहायक थे। वे उस महातेजस्वी ब्रह्मचारीकी तेजः प्रसूत एक ऐसी महावीर और वर्चस्वी सन्तान चाहते थे जो उनकी रक्षा कर सके। सुन्दर अवसर पाकर देवराज इन्द्रसे प्रेरित काम ने शिवजीके प्रशान्त-पावन आश्रममें

सहसा अपना जाल बिछा दिया। उसके अभिन्न मित्र वसन्तने अकालमें ही तपोवनपर आक्रमण किया, सौन्दर्यगर्विता नागराजपुत्री पार्वती वसन्त पुष्पाभरणको धारण किये हुए अपने अनिन्द्य रूपसे भोले-भाले शिवजीके हृदयपर प्रभाव जमानेके लिये सज-धजके साथ चल पड़ी। कामने वाण चला दिया। परन्तु महायोगी शिव तनिक भी विचलित न हुए। सच है—

"विकार हेतौ सति विक्रियन्ते
येषां न चेतांसि त एव धीराः।"

समूची योजना विफल रही।

यह भारतीय संस्कृतिका आदर्श नहीं है कि आर्य-रमणी ऐसे दुर्लभ पतिको प्राप्त करनेके लिये अपने बाह्यरूपके आकर्षणका प्रयोग करे। भारतीय-संस्कृतिमें ऐसे स्वर्गीय और सच्चे प्रेम, पतिको प्राप्त करनेके लिये सच्चे त्याग और कठोर तपकी आवश्यकता है। बाह्य आकर्षणसे होनेवाला प्रेम चिरस्थायी नहीं होता, वह बाहरी ही रहता है।

आर्य-संस्कृतिके इस महान् सत्यको कविकुल-गुरू दो श्लोकोंमें प्रकट करते हैं जो इस काव्यका वास्तविक तत्व है:—

तथा समक्षं दहता मनोभवं
पिनाकिना भग्न मनोरथा सती।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती
प्रियेषु सौभाग्य फलाहि चारुता॥
इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अनाप्यते वा कथमन्यथाद्वयं
तथा विधं प्रेम पतिश्च तादृशः॥

आखोंके सामने इसप्रकार कामदेवको भस्म होते देखकर पार्वतीकी सारी आशाएँ मिट्टीमें मिल गयीं और टूटे हुए हृदयसे अपने अनुपम सौन्दर्य-को कोसने लगीं, क्योंकि जिससुन्दरतासे अपने प्रियतमको रिझा न सकी—ऐसी सुन्दरता व्यर्थ है।

अतः उसने यह निश्चय कर लिया कि इस असफल बाह्यरूपको अब वह तप और समाधि द्वारा सफल और सुन्दर बनानेका प्रयत्न करेगी। बातभी ठीकही है, ऐसा अनुपमपति और वैसाही सच्चाप्रेम बिना तपस्याके योंही नहीं प्राप्त होसकता।

जो स्त्रियाँ प्रेमको इतना सस्ता समझती हैं उनके लिये कालिदासकी यह मार्मिक शिक्षा है। तत्कालीन भारतकी स्त्रियाँ अपने देव-दुर्लभ बाह्य-सौन्दर्यके गर्वके कारण भारतीय दाम्पत्य प्रेमके आदर्शको भूलती जारही थीं, वे प्रेमको सस्ती, सुलभ, बाजारू वस्तु समझने लगी थीं। यही कारण था कि कविकुलगुरुने इस अनुपम और सरस-कोमल काव्यरचनाद्वारा आर्यमहिलाके सच्चे आदर्शको जनताके सन्मुख उपस्थित किया था; यही कुमार सम्भवका मुख्य तत्व, ध्येय या अन्तिम और उत्तम व्यङ्ग्य है।

इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलमें भारतीय संस्कृतिके महान् गुरु कालिदासने ऐसे ही युवक और युवतीके प्रेमका दूसरी पृष्ठ भूमिकापर चित्रण किया है।

दुष्यन्तका चरित्र तत्कालीन विलासिता प्रेमी युवक राजाओं और धनिकोंका है जो भ्रमरके समान किसी अलौकिक सौन्दर्यशाली युवती-प्रसून को देखकर तत्काल उसपर मुग्ध होकर रसपान करनेके लिए सभी सम्भव प्रयत्नोंका प्रयोग कर भोली-भाली बालाओंको प्रेम पासमें बाँधकर वासनाकी तृप्ति कर लेते हैं और बादमें किसी दूसरे नव-विकसित कुसुमरसके मदसे मत्त होकर उसे भूल जाते हैं। गुप्त-कालीन भारतमें ऐसी प्रेम लीलाएँ सर्वथा सम्भव थीं। कविने इस सजीव शब्द-चित्र द्वारा ऐसे ही बाह्य सौन्दर्यके चक्करमें पड़कर आर्य-संस्कृतिक आदर्शसे भ्रष्ट होनेवाले युवकों और युवतियोंको एक मधुर और हृदयग्राही शिक्षा दी है, विशेषतः उन युवतियोंको

जो अपने भोलेपनके कारण विलासी युवकोंके धन, वैभव, ऐश्वर्य और चाटुकारितामें फँसकर अपने गुरुजनोंकी अवहेलना करके अमर्यादित हो जाती हैं। इसीलिये भारतीय संस्कृतिमें भोली-भाली युवतियोंका नियन्त्रण उनके पिता, पति और पुत्र पर रखा गया है। पिता कण्वकी अनुपस्थितिमें तपोवनके अन्दर आये हुए अपरिचित एक शिकारी राजाका शिकार बन कर यौवनके उन्मादमें उन्मत शकुन्तलाने आर्य-मर्य्यादाका उल्लंघन किया था, फलस्वरूप एक सम्राट्के प्रेमके प्रलोभनने उसे अनाथ एवं असहाय बना दिया, वह कहींकी न रही। धोखेबाज विलासी राजाने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि हम राजा लोग न जाने ऐसी-ऐसी कितनी ही प्रेमिकाओंसे सम्बन्ध रखते हैं। वास्तवमें उन्मादिनी शकुन्तलाके अपराधका यही प्रायश्चित्त भी था कि भूमि फट जाय और उसमें सर्वदाके लिये विलीन हो जाय।

धोखेबाज शिकारी राजाके तपोवन-प्रवेश और वहाँके भावदूषित वातावरणका अभास प्रथम अङ्कमें जो सुन्दरतासे तथा भाव पूर्ण व्यङ्ग्य द्वारा व्यञ्जित किया है—वह महाकविका ही कौशल है।

"हे तपस्वियो! आकर तपोवनमें प्राणियोंको बचाओ। आखेटका प्रेमी राजा दुष्यन्त पासही आ पहुँचा है। उसके घोड़ेकी टापोंसे उठी हुई और साँझकी ललाई समान लाल-लाल धूल टिड्डी दलके समान उड़कर आश्रमके उन वृक्षोंपर पड़ रही है जिनकी शाखाओंपर बल्कलके गीले वस्त्र फैलाए हुए हैं।

और देखो—"राजाके रथसे डरा हुआ यह जंगली हाथी हमारी तपस्याके लिए साक्षात् विघ्न बना हुआ हरिणोंके झुण्डको तितर-बितर करता हुआ तपोवनमें घुसा आ रहा है। इसने अपनी करारी टक्करसे एक वृक्ष उखाड़ लिया है, जिसमें उसका दाँत फँसा हुआ है। और टूटी हुई लताएँ उसके पैरोंमें उलझी हुई हैं।

राजा दुष्यन्त हाथी है, जो तपस्वीने ऋषि-कन्याओंके लिये चिरसञ्चित तपस्याका सचमुच विघ्न-स्वरूप है। महर्षि कण्वके आश्रमको उसने उखाड़ फेंका है। और उसपर उसका दाँत गड़ गया है। भोली-भाली आश्रित लताएँ—शकुन्तला, प्रियम्वदा, अनसूया—उसके पैरोंमें उलझ गयी है। कितना सुन्दर और गम्भीर व्यङ्ग्य है। इसी प्रकार कालिदासके प्रत्येक शब्दमें उपदेशके साथ-साथ व्यङ्ग्य आदिकी अनेक विशेषताएँ हैं जिनसे वे विश्वके महाकवि कहे जाते हैं।

अस्तु! सारांश यह कि शृङ्गारके महाकवि कहे जानेवाले कविकुलगुरु ने आर्यमहिलाके उस महनीय आदर्शका चित्र उपस्थित करते हुए शकुन्तलाको प्रेम-तपस्विनी बनाकर और दुष्यन्तको भी विरहाग्निमें तपाकर सच्चा सम्मिलन कराया है जो भारतीय नारीका महान् वैशिष्ट्य है।

कविका तीसरा और प्रौढ़कालीन चित्र, मेघदूत भी एक सच्चे और पवित्र प्रेमका आदर्श प्रदर्शित करता है। नवीन प्रेमीका प्रथम-प्रणयके गम्भीर प्रवाहमें कर्तव्यच्युत होजाना अधिक सम्भव है, परन्तु यह आदर्श नहीं है, प्रत्युत प्रमाद है। भारतीय संस्कृतिमें प्रमाद प्रेमका कलङ्क है। सच्चा प्रेम तो जीवनको इतने ऊँचे दिव्य स्तर पर ले जाता है, जहाँ प्रमादका स्थान ही नहीं है। यक्ष-दम्पती प्रेमोन्मादमें अपने नित्यकर्तव्यमें प्रमाद करने लगे, अपराध-स्वरूप दोनोंको दण्ड भोगना पड़ा। विरहावस्थामें कविने पति-पत्नीके सच्चे प्रेम और मनोभावोंका जो वर्णन किया है वह भारतीय दम्पतीका पवित्र आदर्श है। मेघदूतमें शृङ्गारका समुचित, शुद्ध और उत्कृष्ट वर्णन, भारतीय दम्पतीके आदर्श प्रेमका द्योतक है।

रघुवंशमें कविकुलगुरु ने आर्य्यललना-शिरोमणि सीताका चित्रण किया है। यहाँ कविने भारतीय आर्य्यमहिलाका उच्चतम आदर्श, अगाध-हृदय एवं अनन्त क्षमताका वर्णन एकवाक्यमें किया है—

सोऽहं तपः सूर्य-निविष्ट-दृष्टि
रूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि
त्वमेव भर्ता नच विप्रयोगः॥

अर्थात्—प्रसूति अनन्तर सूर्यमें आँखें गड़ाकर इसलिये तपस्या करूँगी कि जिससे आगामी जन्ममें तुम पुनः मेरे पति बनो और फिर कभी इस प्रकार वियोग न हो।

एक सम्राट्की आसन्नप्रसवा निरपराधिनी धर्मपत्नी गङ्गातटके हिंस्रजन्तुओंसे भरे भीषण जंगलमें निर्दयतापूर्वक प्रियपतिद्वारा धोखा देकर निर्वासित किये जानेपर पतिकेलिये एक आर्य-ललनाका अन्तिम सन्देश प्रत्येक भारतीय आर्य्य-ललनाके लिये महान् आदर्श है।

इस प्रकार हमारे स्वर्णयुगके स्वर्ण कविने अपने प्रत्येक शब्द चित्रमें आर्यनारीके उस उच्चतम आदर्शका सजीव चित्रण करते हुए भारतीय साहित्यकी महत्ताके साथ-साथ भारतीय-संस्कृतिके महान् पथ-प्रदर्शकका कार्य किया है। उनकी काव्य रचनाओंका यही मुख्य ध्येय था जिसमें वे सबसे अधिक सफल हुए।

उनकी प्रत्येक रचना भारतीय नर-नारीके सुखद दामात्य-जीवनका निर्माण करनेके लिए भारतीय संस्कृति और उसके आदर्शोंके साथ-साथ सुमधुर शब्दों द्वारा मन्त्र-शास्त्रका काम करती है इसीलिए ऐसे काव्यको कान्ता सम्मित उपदेश (कान्ताका उपदेश) कहा गया है।

ज्योति-भारत

ज्योति भूमि,
जय भारत देश!
ज्योति चरण धर जहाँ सभ्यता
उतरी तेजोन्मेष!
समाधिस्थ सौंदर्य्य हिमालय;
श्वेत शांति आत्मानुभूतिलय,
गंगा यमुना जल ज्योतिर्मय
हँसता जहाँ अशेष!

फूटे जहाँ ज्योतिके निर्झर
ज्ञान भक्ति गीता वंशी स्वर,
पूर्णकाम जिस चेतन रज पर
लोटे हँस लोकेश!
रक्त-स्नात मूर्छित धरती पर
बरसा अमृत ज्योति स्वर्णिमकर
दिव्य चेतनाका प्लावन भर
दो जगको आदेश!

—श्री सुमित्रानंदन पंत

हिन्दूकोड-बिल हिन्दूसंस्कृतिका घातक

श्रीमती—माननीया विद्यादेवी महोदया

प्रस्तावित हिन्दूकोड-बिलके विषयमें देशके बड़े-बड़े विचारशील व्यक्ति—स्त्री-पुरुष दोनों ही अनेक दृष्टिकोणसे अपनी-अपनी सम्मति व्यक्त कर चुके हैं। यहां केवल धार्मिक दृष्टिकोणसे ही उसपर संक्षिप्त विचार किया जायगा।

हिन्दू-संस्कृतिकी अपनी कुछ विशेषता है; वही विशेषता उसका प्राण है। जैसे बिना प्राणके शरीर कुछ ही देरमें सड़ने लग जाता है, और सड़-गलकर मिट्टीमें मिल जाता है, वैसे ही यदि हिन्दू-संस्कृतिकी वह विशेषता मिटा दी जाय, तो हिन्दूजातिका अस्तित्व ही मिट जाएगा, इसमें सन्देह नहीं है। इसकी वह विशेषता यही है कि हिन्दुओंके जीवनके प्रत्येक क्रिया-कलाप, आचार-व्यवहार और चेष्टाओंके साथ धर्मका अविच्छिन्न सम्बन्ध है एवं उसकी नींव आध्यात्मिकतामें है। अन्यान्य पाश्चात्य देशोंकी तरह केवल Eat drink and be marry 'खाओ, पीओ और मौज करो' इतना ही हमारे जीवन का लक्ष्य तथा उद्देश्य नहीं है। उदाहरणार्थ हिन्दुओंका विवाह ही ले लिजिये। यहां विवाह केवल इन्द्रियोंके सुख-भोगका साधन नहीं, किन्तु एक प्रधान धार्मिक संस्कार है। उसका लक्ष्य दम्पतीकी आध्यात्मिक उन्नति और सन्तान-की उत्पत्तिके द्वारा पितरोंको तृप्ति तथा सम्वर्द्धन है। इस संस्कारके द्वारा स्त्री-पुरुष एक पवित्र सूत्र-में सदाके लिये बँध जाते हैं। वैदिक मन्त्रोंद्वारा, देवता, अग्नि, ब्राह्मण तथा उपस्थित बन्धु-बान्धव एवं जन-समुदायके सामने एक दूसरेको शरीर, मन, प्राण सब सदाके लिये अर्पण कर देते हैं। इसी कारण यहां विवाह-विच्छेदकी कोई कल्पना भी सम्भव नहीं है। इसी संस्कार-जनित परम्प-रागत संस्कृतिके कारण इस महान् देशको अनेक सती देवियोंने पवित्र किया है और आज भी कर रही हैं; जिनका नाम लेकर हिन्दूसमाज अपनेको गौरवान्वित और पवित्र समझता है। यहांकी आर्य-ललनाएँ एक पुरुषको केवल इसी जन्मके लिये नहीं. किन्तु अगले जन्म तथा परलोक तकके लिये एक ही बार पतिरूपसे वरण करती हैं; अतएव वे आर्यदेवियाँ विवाह विच्छेद (तलाक) अथवा विधवा विवाहकी बात स्वप्नमें भी कभी सोच नहीं सकती हैं। और ऐमी बातोंको सुनना अपना अपमान समझती हैं। आजकल जो स्त्रियां ऐसी बात कहती तथा इसके लिये आन्दोलन करती हैं, वे अनार्य-संस्कृतिमें पाली-पोसी गयी अनार्य स्त्रियां है, इनकी संख्या कोटि-कोटि आर्य-देवियोंकी तुलनामें अत्यन्त ही नगण्य है।

इसी प्रकार हिन्दूओंका उत्तराधिकार तथा सम्पत्तिमें अधिकारका विचारभी धर्मके सम्बन्धसे ही किया गया है। हिन्दूजाति परलोकमें विश्वास करती है, मृत्युके बाद आत्माका लोकान्तर गमन तथा मृतात्माके दुःख-सुखका भोग आदि हमारे शास्त्रोंसे सिद्ध है। अतः श्राद्ध-तर्पण आदिके द्वारा मृतात्माको शान्ति-सुख पहुंचानेके जो अधिकारी होते हैं, उन्हींको मृतात्माद्वारा अधिकृत सम्पत्तिमें अधिकार शास्त्रकारोंने दिया है, जिनको उसके श्राद्ध-तर्पणका अधिकार नहीं है, उनको सम्पत्तिमें भी अधिकार नहीं है। इसी सिद्धान्तके अनुसार कन्याका पिताकी सम्पत्तिमें अधिकार नहीं है, क्योंकि कन्या विवाह हो जानेपर अन्य गोत्रमें चली जाती है, इस कारण उसको पिता-माताका श्राद्ध-पिण्डदानादिमें अधिकार नहीं रहता है। हिन्दू संस्कृतिमें परलोकगत आत्माकी शान्ति तथा उन्नतिके लिये श्राद्ध-तर्पणका विशेष महत्त्व है।

अर्जुन ने गीतामें कहा ही है—

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्यच ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रियाः ॥

अर्थात् कुलमें उत्पन्न सङ्कर प्रजा कुलनाशकों-के नरकका ही कारण बनती है। उनके पितर श्राद्ध तर्पण आदि क्रियाओंके लुप्त हो जानेसे पतित हो जाते हैं।

श्राद्धादि पितृकार्यमें केवल स्वगोत्र वालोंका ही अधिकार माना गया है। दत्तक पुत्रके विषय-में भी यही सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। जैसा पहले कहा गया है, कि हिन्दुओंके जीवनके प्रत्येक कार्योंके साथ धर्मका सम्बन्ध है; उनमें विवाह और मृत्यु इनका प्रभाव बहुव्यापक होनेसे इन दोनोंके सम्बन्धमें शास्त्रकारोंने बहुत सूक्ष्म और गहरा विचार किया है।

प्रस्तावित हिन्दूकोड-बिल जो इस समय केन्द्रीय धारासभामें विचाराधीन हैं, उसमें अस-वर्ण-विवाह, स्वगोत्र-विवाह, बिधवा-विवाह, विवाह-विच्छेद (तलाक), कन्याका पिताकी सम्पत्तिमें अधिकार, दत्तक-विधान आदि ऐसे विषयोंका समावेश है कि, थोड़ेसे पश्चिमी सभ्यता-से विकृत मस्तिष्कवाले लोगोंके दुराग्रहसे यदि यह बिल पास होगया तो विवाहकी पवित्रता नष्ट हो जायगी, वर्णसंकरी सन्तान उत्पन्न होगी। पितरों-का श्राद्ध-तर्पण आदि समाप्त होजायगा। और हमारी सभी प्राचीन कुलपरम्परा, कुलधर्म, जाति-धर्म सब नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगे। अब तक जो हिन्दू समाजमें गृहस्थ जीवनकी पवित्रता और सुख-शान्ति तथा सुव्यवस्था चली आरही है, सभी नष्ट हो जायगी। इस प्रकार हिन्दू समाज और हिन्दू संस्कृतिका अस्तित्व ही मिटा देनेका यह उद्योग होरहा है।

हिन्दूधर्मपर पहले भी बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ और संकट आये हैं, किन्तु हिन्दुओंने प्राणोंकी बाजी लगाकर उनका सामना किया, बड़ेसे बड़ा संग्राम किया, बड़ेसे बड़ा बलिदान किया परन्तु अपने प्राणोंसे प्रिय धर्म एवं संस्कृति को नष्ट नहीं होने दिया। वही हिन्दूधर्म आज पुनः संकट में हैं। हिन्दूकोड-बिल हिन्दूधर्म तथा हिन्दू-संस्कृतिके नाशके लिये केन्द्रीय धारासभामें विचाराधीन है। अतः प्रत्येक हिन्दू नर-नारीको प्राणपणसे इसका तबतक विरोध करते रहना चाहिये, जबतक सरकार इसे वापस न ले ले।

विचारकी बात है कि केवल हिन्दूके लिए ही यह कोड क्यों बनाया जारहा है, मुसलमानोंके लिये क्यों नहीं; इसलिये कि, सरकार जानती है कि, मुसलमान संगठित है; उनके धर्ममें हस्तक्षेप करनेसे वे अविलम्ब लड़ने-मरनेको तैयार हो जायँगे, इस कारण सरकार उनके धर्ममें हस्तक्षेप करनेका साहस नहीं करती। हिन्दू जिनकी संख्या तीस करोड़ है, उन्हींके लिये बिल बनाया जारहा है। इसलिये कि वे असंठित और अज्ञानमें पड़े हैं, उनको पता भी नहीं है, कि उनपर यह कौनसी विपत्ति ढाही जारही है अतः हम हिन्दुओंको यदि अपना अस्तित्व संसारमें बनाए रहना है, यदि हमें अपने पूर्वजोंके गौरव और संस्कृतिकी रक्षा करनी है, यदि ससारके सामने अपना मस्तक ऊँचा रखना है, तो हिन्दू समाजका कोढ़-रूप यह हिन्दूकोड-बिलका तीव्र विरोध करना चाहिये और सरकारको विवश करना चाहिये कि, वह हिन्दूकोड जैसा हिन्दूसंस्कृति तथा हिन्दू-धर्मका घातक बिल बनानेका दुःसाहस कभी न करे।

इस हिन्दूकोड बिलका प्रस्ताव बृटिश-शासनके समय हुआ था। अंगरेजोंने भेदनीतिके सहारे ही इतने दिनों तक इस देशपर शासन किया। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानोंको लड़ाया, सवर्ण-हिन्दू और अन्त्यजको लड़ाकर हिन्दुओंको ही छिन्न-भिन्नकर दुर्बल बनाया। इतनेसे भी उन्हें संतोष नहीं हुआ, अतः उन्होंने हिन्दू संस्कृति, हिन्दूधर्म तथा हमारी प्राचीन परम्पराको

नष्ट-भ्रष्ट करने, पति-पत्नी, माता-पुत्र, भाई-बहिन आदिको परस्परमें लड़कर हिन्दूसमाजका सर्वनाश करनेके उद्देश्यसे हिन्दूकोड बिल बनानेका प्रस्ताव किया था। ईश्वरीय अनुकम्पासे वे अंगरेज शासक इसी बीचमें चले गये और देश स्वतन्त्र हुआ। अब देशका शासन-सूत्र उन महान् व्यक्तियोंके हाथमें हैं, जिन्होंने देशकी स्वतन्त्रताके लिये कठिन तप और त्याग किया था। उनके लिये जनताका बड़ा आदर और प्रेम भी है। उचित तो यही था, कि देशके स्वतन्त्र होते ही यह प्रस्तावित कोडबिल रद्द कर दिया जाता। परन्तु बड़े खेदकी बात है, कि देशव्यापी विरोध होते हुए भी जनतन्त्र कहानेवाली सरकार धर्म-निरपेक्षताकी घोषणा करके भी उसे पास करनेपर तुली हुई है। अतः यह धर्मघाती बिल जबतक रद्द नहीं होजाय, इसका घोर विरोध करते ही रहना चाहिये।

आह्वान !

प्रभु तुम एक बार आ जाओ।
काम क्रोध मद मोह लोमसे हमें बचाओ॥
जीवन नैया डूब रही है प्रभु तुम केवट बन जाओ।
शून्य गगनमें प्रभु तुम एक झलक दिखला जाओ॥

❋ ❋ ❋ ❋

जीवन का विश्वास नहीं है प्रभु तुम अब आ जाओ।
इन नयनोंको तृप्त करो प्रभु तुम दर्शन दे जाओ॥
पड़ी हुई हूँ घोर भँवरमें डूब रही हूँ मुझे बचाओ।
जीवन नभके प्राङ्गणमें तुम चाँद-सितारे बन जाओ॥

❋ ❋ ❋ ❋

इस माया की भूल भुलैया में भूलीको पथ दिखला जाओ।
जगती में फिर एक बार सुख-शान्ति स्थापित कर जाओ॥
इस कंटकमय जीवनके प्रभु तुम पथ-प्रदर्शक बन जाओ।
'चन्दा' कहती प्रभु तुम एक बार बस आ जाओ!

—कुमारी चन्द्रकान्ती पाठक

स्वतन्त्रता दिवसके अभिनन्दनमें

जिसके एक-एक रजकणपर जगत् निछावर सारा।
शत-शत स्वर्गोंसे भी बढ़कर भारत देश हमारा॥

जिसके गौरवका साक्षी है गगनस्पर्शी उच्च हिमाचल।
जिसका पावन-विमल-धवल-यश गातीं गंगा-यमुना कलकल॥
अंकित भला करेगा उसको क्या इतिहास बिचारा।
जिसके एक-एक रजकणपर जगत् निछावर सारा॥

कुशल कृतीकी आदिकल्पनाका जो चिरविकास लीलास्थल।
निर्निमेष लखरहा मुग्ध-सा नभतल जिसका रचनाकौशल॥
ऐसी सृष्टि अनोखी ऐसा देश हमारा न्यारा।
जिसके एक-एक रजकणपर जगत् निछावर सारा॥

अपने कोमल कलित करोंसे प्रकृति स्वयं नित जिसे सजाती।
जहाँ छओं ऋतुयें क्रम-क्रमसे अपनी नव-नव कला दिखातीं॥
चेतनकी तो बात कहें क्या—जडतकको जो प्यारा।
शत-शत स्वर्गोंसे भी बढ़कर भारत देश हमारा॥

मधु अतीतके स्मृतिपट पर हाँ अंकित जिसकी अमर कहानी।
पैदा जिसने किये अनेकों यती-तपस्वी त्यागी-ज्ञानी॥
प्रकटे प्रथम अजिरमें जिसके सूर्य-चन्द्र-ध्रुवतारा।
शत-शत स्वर्गोंसे भी बढ़कर भारत देश हमारा॥

पालन किया अन्ततक जिसने आत्मवचन सर्वस्व गँवाकर।
करके विजय स्वर्णकी लंका फिर जिसने कर दिया निछावर॥
ऐसे चरम चरणचिह्नोंसे चित्रित देश हमारा।
जिसके एक-एक रजकणपर जगत् निछावर सारा॥

अरुणा प्राचीमें जिसकी वह ऊँची शुभ्र ध्वजा फहराती।
उषा सुनहली जहाँ प्रात नित पावन सामगान मृदुगाती॥
करती पूत कलेवर जिसका स्वर्गङ्गाकी धारा।
शत-शत स्वर्गोंसे भी बढ़कर भारत देश हमारा॥

—श्री मोहन बैरागी

तक्षशिला

श्री प्रभातकुमार पाण्डेय

आजसे हजारों वर्ष पहले तक्षशिला-नगरी भारतवर्षकी विशाल और समृद्ध नगरी थी। हम लोग इसे यहाँके महान् विद्यापीठके कारण जानते हैं, इसकी ख्याति और वैभवका यह प्रमुख कारण भी था, परन्तु साथ ही यह आर्थिक आदि दृष्टिसे भी समृद्ध थी। भारतसे मध्य-पश्चिम एशिया को जानेवाले राजपथके किनारे बसी होनेसे एक समय यह प्रमुख व्यापारिक-केन्द्र थी। इसके महत्वको तत्कालीन भारतीय और विदेशी राज-नीतिज्ञ अच्छी तरह समझते थे, यह इसपर होनेवाले आक्रमणोंको देखनेसे पता चलता है।

वर्तमान पश्चिमी पंजाबके रावलपिण्डी नगरसे २० मील दूर वायव्यकोणमें यह बसाई गई थी। इसके आस-पास पर्वतश्रेणियाँ हैं। पास ही 'हारों' नामक नदी इस प्रदेशको उर्वरा बनाती बहती है।

संस्कृत और प्राकृतके साहित्यमें तक्षशिला-सम्बन्धी अनेक वर्णन मिलते हैं। वाल्मीकि रामायणसे पता चलता है कि दशरथ-पुत्र श्रीराम-चन्द्रके छोटे भाई श्रीभरतने अपने पुत्र कुमार तक्षके नामसे इसे बसाया। (रामयण, उ. कां० १०१, श्लो० १०-१६) महाभारत (आदि पर्व, अ० ३, श्लो० २०) में लिखा है कि परीक्षितके पुत्र जनमेजयने अपने पिताकी मृत्युका बदला लेनेके लिये इसी भूमिमें नागयज्ञ किया था। महर्षि पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें भी (४-३-९३,) तक्षशिलाका उल्लेख किया है।

इसी प्रकार बृहत्संहिता, कथासरित्सागर और बृहत्कथामञ्जरीमें इस सम्बन्धके वर्णन मिलते हैं।

बौद्ध साहित्यमें विशेषतः जातक ग्रन्थोंमें भी तक्षशिलाका वर्णन मिलता है। विनयपिटकमें लिखा है कि तक्षशिलाके दिशा प्रमुख (दिगन्त प्रसिद्ध) वैद्यके पास एक विद्यार्थी अध्ययन करने आया। उसने उसके पास ७ वर्ष रह कर अध्ययन किया, बादमें परीक्षा लेनेकी इच्छासे गुरुने शिष्यसे कहा—विद्यालयके चारों ओर जाकर अभैष्य (चिकित्साके लिए अनुपयुक्त बनस्पति आदि) लाओ। शिष्यने आकर कहा, मुझे कुछ भी अभैष्य नहीं मिला। अर्थात् प्रत्येक वस्तु अपने गुणों और अनुपानके द्वारा सेवन करनेसे अनुपयुक्त नहीं हो सकती। तब गुरुजीने कहा, तुम्हारी जीविकाके लिए इतना अध्ययन पर्याप्त है।

दिव्यावदानके अनुसार सम्राट् बिन्दुसारके समय यहाँ विद्रोह उठ खड़ा हुआ, जिसे दबानेके लिए सम्राट्ने अपने पुत्र अशोकको भेजा। अशोकके समय भी यहाँ विद्रोह उठा, इसे दबानेके लिये उन्होंने युवराज कुणालको यहाँ भेजा जब युवराज तक्षशिलामें थे, रानी तिष्यरक्षिताने कपट-लेख भेजकर उनके कमल-नेत्र निकलवा लिये थे।

शत्रुञ्जय-महात्म्य, प्रभावकचरित आदि जैन ग्रन्थोंमें भी तक्षशिलाके विस्तृत और ऐतिहासिक वर्णन मिलते हैं।

गवेषकोंका मत है कि वाल्मीकि रामायणकी रचना ईशवीय सम्वत् गणनासे प्रायः २५०० वर्ष पूर्व हुई। इसके अनुसार अनुमानसे तक्षशिला नगरी-का निर्माण-काल भी प्रायः यही आता है। महाभारत काल (ईशवीय सम्वत्से २५० वर्ष पूर्व) तथा बौद्ध-काल (ई० ५ वीं सदी तक) में तक्षशिला, गान्धारजनपदकी राजधानी रही। मगधके नन्दोंके समय भी यह पूर्ण स्वतन्त्र थी। कुछ दिनों तक

इस पर ईरानियोंका आधिपत्य अवश्य रहा। जब सिकन्दर महान् (ई० पू० ४ थी सदी) ने भारतपर आक्रमण किया तब यहाँके शासक आम्भि थे। उन्होंने सिकन्दरसे सन्धि करली। इसके बाद शीघ्र ही सम्राट् चंद्रगुप्तमौर्यने इसे अपने साम्राज्यमें मिला लिया। इसके बाद यहाँ यूनानी, शक, पह्लव और कुषाण क्रमशः आधिपत्य करते रहे। ई० ५वीं सदीमें चन्द्रगुप्त द्वितीयने यहाँ तक अपना राज्यविस्तार किया, परन्तु दुर्दान्त हूणोंने आक्रमण कर इसे अपने अधिकारमें ले लिया। सम्भवतः विभिन्न आक्रमणोंके अप्रत्यक्ष प्रभावके फलस्वरूप ५ वीं सदीके अन्तमें भारतकी यह समृद्ध और प्रमुख शिक्षा-स्थली नष्ट हो गई।

मध्य-पश्चिम एशियाके साथ व्यापार करनेके मार्गके किनारे बसी होनेके कारण यह नगरी आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न रही, पर इसका उत्कर्ष बढ़ानेका श्रेय, एकमात्र यहाँकी विद्यापीठको था। यह विद्यालय ई० पू० ७ वीं सदीसे ही भारतका मान्य शिक्षाकेन्द्र हो गया था। इसकी ख्याति सुदूर प्रदेशों तक फैली हुई थी।

यद्यपि इस विद्यालयको उस समय विश्व विद्यालय नहीं कहा जाता था, तथापि विश्व-विद्यालय शब्दका आजकल जो अर्थ लिया जाता है, वह इस विद्यालयमें निहित था। यहाँ वेद-वेदाङ्ग षड्दर्शन, जैन व बौद्ध दर्शनकी शिक्षाके साथ व ललितकला, राजनीति, तथा आयुर्वेदकी भी शिक्षा दी जाती थी। यहाँके अध्यापक अपने अपने विषयके अच्छे विद्वान् होते थे। डॉ० हर्नलेका मत है कि—आयुर्वेदके प्रवर्त्तक पुनर्वसु आत्रेय यहींपर मुख्याध्यापक थे।

यहाँ अध्ययन करनेके लिये विभिन्न प्रदेशोंसे हजारों विद्यार्थी आते थे धनुर्वेद और राजनीतिके अध्ययनके लिये समीपवर्ती प्रदेशोंसे बहुतसे राजकुमार भी आते थे। यहाँके स्नातकोंमें पाणिनि, वर्ष, उपवर्ष, कत्यायन, पिंगल, चरक, नागार्जुन व चाणक्य जैसे प्रतिभाशाली आचार्य हुए, जिनके एक-एक ग्रन्थोंको आज भी संस्कृत साहित्यकी अपूर्व निधि माना जाता है। इनमेंसे कुछने यहाँ रह कर अध्यापन भी किया। कुछ बौद्ध स्नातक विदेशोंमें भारतीय संस्कृतिका प्रचार करने लगे।

विभिन्न आक्रमणोंका समयानुकूल प्रभाव यहाँ की शिक्षा-प्रणालीपर पड़ा। ईरानियोंके आधिपत्यके समय ब्राह्मीका स्थान खरोष्ठीने ले लिया। सिकन्दरके आक्रमणसे यहाँ यूनानी गणित और ज्योतिषका अध्ययन होने लगा। मौर्यकालमें पौरस्त्योंका पाश्चात्योंके साथ सम्बन्ध बढ़ा, जिसके फलस्वरूप यहाँ दोनोंके ज्ञान-विज्ञानका तुलानात्मक अध्ययन चल पड़ा। इसी तरह शक-हूण आदि आक्रामकोंके प्रभावसे यहाँकी शिक्षा-प्रणाली प्रभावित होती रही।

आज तक्षशिलाके नामसे कुछ खण्डहर अवशिष्ट हैं, जो हमारे प्रचीन गौरवकी हमें याद दिलाते हैं और सम्भवतः समय-चक्रकी गति-विधिका ज्ञान भी कराते हैं। तक्षशिला स्टेशनसे आधा मील दूरीपर उत्तर-पश्चिमकी ओर तक्षशिला-सङ्ग्रहालय है, जहाँ तक्षशिला तथा उसके समीपवर्ती प्रदेशोंसे पायी हुई वस्तुओंका सङ्ग्रह है। इनमें बोधिसत्वकी मूर्ति, चित्र, भिक्षुओं, विद्यार्थियों तथा साधारण लोगोंके उपयोगमें लाई जाने वाली वस्तु, मुद्रा तथा आभूषण आदि हैं।

सङ्ग्रहालयसे दो मील दूर पूर्वकी ओर धर्म-राजिका नामक स्तूप दर्शनीय है। इसे सम्भवतः अशोकने बनवाया है। यहाँसे डेढ़ मील दूर नैॠत्य कोणमें कलावन-विहारके अवशेष मिले है। तक्षशिलामें यों तो बहुतसे स्तूप हैं, पर महत्त्वपूर्ण है—कुणाल स्तूप, जिसे सम्राट् अशोकने अपने प्रिय-पुत्र अशोककी स्मृतिमें बनवाया था।

भारतकी वर्तमान शासन-प्रणाली

श्री पंडित दुर्गाप्रसाद शास्त्री, अजमेर

राज्य-व्यवस्थाका उद्देश्य समाजकी रक्षा करना है। रक्षित समाज ही उन्नत और आदर्श-रूप होता है, समाजकी रक्षा भीतरी और बाहरी दो प्रकारसे होती है। भीतरी रक्षा समाजके दुष्टों, नीचों, आततायियों, व्यभिचारियों, रिश्वतखोरों और भ्रष्टाचार फैलानेवालोंसे की जाती है और बाहरकी रक्षा बाहरी शत्रुओंसे। जिस देश और समाजकी सुव्यवस्था इस प्रकार होती है वही देश समुन्नत और शक्तिशाली कहलाता है।

हम यह देख रहे हैं कि संसारके सभी देशोंमें दो प्रकारके मनुष्य पाये जाते हैं। एक—विद्वान् और दूसरे—मूर्ख। विद्वानोंके लिये राज्य शासनकी आवश्यकता अधिक नहीं होती, क्योंकि विद्वान् लोग कभी शारीरिक शासन या दण्डसे काबूमें नहीं आते। ये लोग तो कानूनके दब-दबेसे ही दबे रहते हैं। परन्तु राज्यशासन मूर्ख, उद्दण्ड, कामी, अनाचारी, पतित और अत्याचारियोंके लिये अत्यन्त आवश्यक है कि जिनके पापकर्मोंको सभी लोग देखते और सुनते है, उनके दमनकी नितान्त आवश्यकता होती है जहाँकी राज्य व्यवस्था अपनी ढुल-मुल नीतिके कारण दुष्टों और राक्षसोंका दमन नहीं कर सकती, वह स्वयं नष्ट हो कर उस देशको भी नष्ट कर देती है।

मनु कहते हैं कि "जिस राजाके राज्यमें चोर, व्यभिचारी, रिशवतखोर, राजाज्ञाका उलंघन करनेवाले पुरुष नहीं होते, वही राज्य-व्यवथा देशके कल्याणका कारण बनती है।" आर्यराज्यका यह काल्पनिक आदर्श नहीं है, प्रत्युत राजा अश्वपति कहते हैं कि "मेरे राज्यमें न कोई चोर है, न कायर; न मद्यपान करनेवाले हैं न अग्निहोत्र न करनेवाले; न मूर्ख हैं न व्यभिचारी; और न कोई असत्यवादी ही है।" यथार्थमे यही राज्यशासन-प्रणालीका उद्देश्य है और यथार्थ शासनका आदर्श है। इसी प्रकारके शासनमें शत्रुओं और नीचकर्म करनेवाले दुष्ट मनुष्योंको प्रश्रय नहीं मिल सकता। परन्तु आज राजनीतिके क्षेत्रमें मनुष्यता सर्वथा नष्ट होगई है। आज राजनीतिको सफलता उसमें देखी जाती है कि—वह कितना सत्य प्रतीत होनेवाला झूठ बोल सकता है। यथार्थको छिपाकर कितने समय तक झूठको प्रबल बना सकता है। राजनीतिक भाषामें ऐसे ही लोगोंको कूटनीतिज्ञ कहा जाता है। आज इस संसारमें नृशंसता खुलकर राज्य कर रही है, राजनैतिक सम्पत्ति बढ़ानेके लिये शराब, वैश्यालओं, शृङ्गारिक पदार्थों, और भौतिक भोग-बिलासोंके साधन जुटानेवालोंको प्रोत्साहन दिया जारहा है।

आज तक भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें महात्मा गांधीजी सर्वप्रथम व्यक्ति माने जाते थे—जिन्हों-ने राजनीतिकके कोरे झूठ-विद्वेश-दग़ाबाजी-छल-कपट-हिंसाको छोड़कर सत्य और न्यायाचरणकी रक्षाकी, उन्होंने प्राचीनताको भुलाया हुआ—सत्य और अहिंसाका जो सफल और व्यावहारिक प्रयोग सहस्रों वर्षोंके पश्चात् पुनः इस देशपर किया, उसकेद्वारा इस दुनियांके सामने नवीन मानवीय अध्याय खोल दिया है।

लेकिन आज जब हम समाचार पत्रोंमें आये दिन यह पढ़ते हैं कि महात्माजीके अनुयायियों द्वारा ली गयी देशके शासनकी बागडोर अनेक स्थानोंमें ऐसे लोगोंके हाथों सौंपी गयी है—जिनको राजनीतिका अनुभव ही नहीं था—

हुकूमतका नशा इन नये खिलाड़ियों पर सवार हो गया है– इस कारण जनताके कष्टोंपर ये लोग कुछ ध्यान ही नहीं देते। नामवरीके प्रलोभनमें आवश्यकतासे अधिक समय बिताते हैं। एक संघके मन्त्रिमण्डलके बारेमें एक पत्रकारने तो यहाँ तक लिखा है कि इनका अनुभव दाल रोटी तक ही सीमित है, यहाँपर अवसर वादियोंका ही अधिक बोलवाला है और अधिकांश जनताको इनपर कोई विश्वास नहीं है. पचास साठ रुपये वेतन पानेवालोंको दो-दो हजारकी मोटी मोटी तनख्वाहें लेकर चोरबाजारी और घूमखोरीका नग्न ताण्डव कर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें भारतको राम राज्य बनानेवाली महात्माजीकी स्वर्गस्थ आत्मा-को कितना दुःख होता होगा, उसकी कल्पना भी नहींकी जा सकती।

जयपुर कांग्रेस अधिवेशनके एक दर्शकने लिखा है कि इस अवसरपर धनपति और उनके परिवार एकसे एक रेशमी वस्त्रोंसे सुसज्जित इस गांधी नगरमें अपना प्रदर्शन कर रहे थे और कह, रहे थे कि लोग यदि आज खादी पहिने हुये हैं तो उनकी आत्मा कोई शुद्ध नहीं होगई है उनमें इस खादीसे सच्चरित्रताने घर नहीं कर लिया है— खादीकी आड़में वे लोग सरकारी मंत्रियोंकी विशिष्ट कृपाके भाजन सरलतासे बन जाते हैं। आज राष्ट्रकी नारी सामूहिक दृष्टिसे अपनी दृष्टि उसी मर्य्यादा-रेखा तक फेंकती है, जहांतक कि उनका पति सुगमतासे रुपया अर्जित करता रहता है। उसने कुछ मन्त्रियोंकी पत्नियां और पुत्रियोंको भी देखा, जो कलतक चने-चवेनी पर पलनेवाले कुछ कर्मठनेता आज अपनी सन्तानोंको इस सज-धज सजावट और फैशनके साथ रखते हैं वे करोड़ों दुःखित भारतवासियोंकी पुकार कैसे सुन सकेंगे, इसलिये जिन राज्योंमें शान्ति नहीं? सुख नहीं –मनुष्योंके प्रति दया नहीं—परस्पर प्रेम और सहानुभूति नहीं, उन राज्योंसे तो किसी रेतीले मैदानमें बालू खाकर रहना अच्छा है। संक्षेपमें यही अवस्था आजके भारत और उसकी शासन-प्रणालीकी होरही है।

गृहस्थाश्रम

सब अङ्गोंसे पूर्ण गृहस्थाश्रम यह सोहत।
परमात्माका शान्ति-निकेतन मुनि-मन मोहत॥
युवा-युवति, नर-नारि, वृद्ध-गुरु, बालक भी हैं।
सभी आश्रमोंका आश्रय, पशुपालक भी हैं॥
दया-दान-करुणा-क्षमा, पौरुषका सुविकास है।
भक्ति-ज्ञान-वैराग्ययुत कर्मयोग-आवास है॥

—श्रीमती ललितादेवी,

सम्पादकीय

धार्मिक और साँस्कृतिक दृष्टिसे—

स्वतन्त्र भारतके दो वर्ष

१५ अगस्त ४९ को हमारे भारतको स्वतन्त्र हुए दो वर्ष समाप्त हो गये। सर्वप्रथम स्वतन्त्र भारतकी कल्पना करने और उसका विचार कर उसे सक्रिय रूपमें प्रयुक्त करके स्वतन्त्र भारतकी सुदृढ़ नींवके निर्माण करनेका श्रेय महापुरुष सर्वश्री— गोखले, लोकमान्य तिलक, मदनमोहन मालवीय और मोतीलालनेहरू प्रभृति जिन महात्माओंको है, क्या धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें उनके यही विचार और यही संकल्प रहे होंगे— जो कि हमारे विगत दो वर्षोंके स्वतंन्त्र भारतमें हुई है ? अथवा भविष्यके लिये भी इस विषयको लेकर जो-जो योजनाएं बन रही हैं ? आज उन महापुरुषोंकी आत्मा भारतके धार्मिक और सांस्कृतिक ह्रासको देखकर क्या कह रही होगी ? क्या कह रही होगी उन शहीदोंकी आत्मा जिन्होने अपने देशकी स्वतंत्रताकी लड़ाईमें एकमात्र इसी उद्देश्यसे भाग लिया था। और क्या कह रही होगी उनकी आत्मा जो केवल कुर्सी या पदके प्रलोमनमें न आकर अनेक बार जेल जाकर और अपना सब कुछ देशके नामपर लुटाकर आज कहींके नहीं रह गये हैं।

हम जब विचार करते हैं कि भारत तो अब स्वतन्त्र है, लेकिन उसमें आज जो हमारे भारतीय सनातनधर्मका–हमारी अमूल्य भारतीय सम्पत्तिका– अकथनीय या अकाल्पनिक ह्रास हो रहा है उसे देखकर बरबस हृदय रो पड़ता है। आज भी हमारी राष्ट्रीय सरकारद्वारा भारतीय संस्कृतिका तिरस्कार कर, उसके स्थानपर जिस विदेशी संस्कृतिका पालन-पोषण और संरक्षण हो रहा है, वह हमारे लिए—स्वतन्त्र भारतके प्रत्येक मानवके लिए—महती लज्जा और परम संकोचका विषय है।

यद्यपि धर्म और राजनीतिमें उतनाही अन्तर है जितना '३६' के दो अङ्कोंमें, किन्तु दोनोंका परिस्परिक सम्बन्ध भी उतनाही है कि एक दूसरेके बिना पूर्ण नहीं कहा जा सकता। लेकिन आजके स्वतन्त्र भारतमें धर्म और संस्कृति नामक कोई पदार्थ ही नहीं; जो कुछ है, सभी कुछ एकमात्र राजनीति। यही तो एक चाल है! जब तक धर्मको राजनीतिके दायरेमें नहीं बाँधा जायगा, तब तक सरकार उस-पर अपना एकाधिपत्य नहीं रख सकती, बिना ऐसा किये प्रत्येक व्यक्ति अपने धार्मिक और सांस्कृतिक विषयोंमें स्वतन्त्र रहेगा, जो हमारी सरकारको सर्वथा अनभीष्ट है।

यहाँ हम स्पष्ट कहेंगे कि यही एक हमारी भारतीय नेताओंकी सब से बड़ी राजनीतिक अनभिज्ञता है। संसार-प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ अंग्रेजोंने सैकड़ों वर्षों तक भारतपर शासन किया, भारतकी प्रत्येक धमनीका रक्त भली भाँति चूसा। यहाँ तक चूसा कि आज भारतमें कुछ सोचने और विचार करनेकी तक शक्ति न रही! लेकिन उन्होंने भी विक्टोरिया महारानी द्वारा दी गयी भारतकी धार्मिक स्वतन्त्रतापर हस्तक्षेप करनेका विचार भी नहीं किया। जिस धर्मप्राण भारतका रहस्य विक्टोरिया समझ सकी थी और समझ सके थे उसके बादके अन्य अंग्रेज-शासक। लेकिन दुःख है कि आज हमारे भारतीय शासक ही उसे समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहे! भारतीय स्वतंन्त्रताके साथ हिन्दू-धर्मपर अनेकों आक्रमण आरम्भ हुए, जहाँ

हिन्दु-समाजके लिए प्रत्यक्ष कलंक-रूप 'हिन्दू कोडबिल' जैसे प्रस्तावोंको प्रश्रय देकर एक विचारणीय विषय बनाया गया, जिसके स्वीकृत होजानेपर निस्सन्देह यह कहा जासकता है कि रहा-सहा हिन्दूधर्म भी कानूनोंके सबल आघातों द्वारा एक दिन सर्वथा लोप हो जा सकता है !

एक ओर तो हिन्दूत्वका विघातक हिंन्दूकोड ही प्रबल है, लेकिन इतना ही नहीं, अछूतोद्धार, मन्दिर प्रवेश जैसे अनेकों प्रस्ताव पास हुए और कार्यान्वित किये गये। अनेक प्रसिद्ध मन्दिरोंमें राजकीय सहायता और प्रभाव द्वारा अछूतोंका प्रवेश कराया गया !

निश्चित है कि जिन उपायोंसे हमारी सरकार एकताकी बात सोच रही है, वेही उपाय निकट भविष्यके भारतमें अंतःकलहके कारण बनेंगे। अभी तो हमारे भारतके अधिकतर अछूत अपने-अपने धर्म और जातिमें विश्वास रखते है, इसीलिये वे उपरोक्त नियम या इस प्रकारके अनेक विधान बन जानेपर भी अविचलित और शान्त बैठे हैं। जिस दिन वे इस शान्ति और धार्मिक विश्वासको खो बैठेंगे, उसीदिन भारतमें अन्तःकलहकी चिनगारी दावाग्निके समान आग भड़काकर सभीको भस्मसात् कर देगी। एक जाति दूसरी जातिके लिये, या एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके लिये 'गोडसे'के रूपमें आयगा।

आज गो-बध या गौ-ह्रास समस्त भारतके ह्रासका कारण बना हुआ है, इस बातको प्रायः सभी समझने लगे हैं। जिसके परिणाम-स्वरूप कुछ नगरोंकी म्युनिसिपालिटियोंने अपने-अपने क्षेत्रोंमें गो-वध बन्द करा दिया है, लेकिन दुखःका विषय है कि अभी तक प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा-सभाओंमें गो-बध विषयक प्रश्न अनेक बार उठाए जानेपर भी स्थगित कर दिया है, क्योंकि सरकारकी दृष्टिमें यह विषय महत्वपूर्ण धार्मिक और राजनीतिक होता हुआ भी विशुद्ध साम्प्रदायिक हो जाता है।

आज भारतमें जितनी भी प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ उठ रही हैं—सभी एक-से-एक अनीश्वर वादी हैं, इसलिये इसके बाद भी हमारे सनातन भारतका भविष्य अन्कारमय-सा ही प्रतीत होरहा है। यदि कुछ अंशमें भारतीयताका आदर्श लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं तो हिन्दूमहासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। लेकिन इनका रास्ता भी काटोंसे खाली नहीं है। क्योंकि सरकार जिस समय चाहे इन्हें साम्प्रदायिक संस्था कहकर प्रतिवन्धित या नियन्त्रित कर सकती है। जैसा कि दोनोंपर अभी बीत चुकी है। हाँ, इस प्रकारकी गतिविधिको देख कर एक बातकी प्रशंसा हम अवश्य करेंगे—जो इस सरकारके लिए असम्भव-सी थी—साँस्कृतिक दृष्टिसे महत्वपूर्ण है, वह है—भारतीय डाक-विभागका टिकट-परिवर्तन। जो प्रायः सभी भारतीय संस्कृतिके किसी-न-किसी रूपमें प्रतीक हैं, बस।

संक्षेपमें स्वतन्त्र भारतके इन दो वर्षोंमें हिन्दू-भारतके प्राण सनातनधर्म और जगत्पवित्र भारतीय संस्कृतिकी उत्तरोत्तर उन्नतिके विपरीत ह्रास हो हुआ है। सभी पहलुओंद्वारा विचार करनेपर भी हिन्दू-भारतके हितका कोई भी विषय आशा और उत्साहके साथ उल्लेखनीय नहीं है। अब भविष्य देखना है।

राष्ट्रभाषा हिन्दीका विरोध

राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें विधान-परिषद्को परामर्श देनेवाली मसविदा-समितिकी अबतककी जो कार्यवाही हुई है—उससे स्पष्ट है कि हिन्दीकी आकाल्पनिक उपेक्षा की जा रही है। इस उपेक्षाके कारण हैं—दक्षिण भारत और बंगालके कुछ इने-गिने नगण्य-से सदस्य। दक्षिण भारतके महाराष्ट्रीय और पूर्वी पंजाबके सदस्योंने भी हिन्दीको ही मत दिया है। फिर भी मुट्ठी भर दक्षिण-भारत और बंगालके सदस्यों द्वारा प्रबल अड़ंगा लगा दिया गया है यद्यपि उक्त सदस्योंके इस अड़ंगेका प्रभाव तब तक नहीं पड़ सकता

जबतक हिन्दीके समर्थक बहुसंख्यक सदस्योंके अतिरिक्त माननीय श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन, पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सेठ गोविन्ददास आदि अनेक दिग्गज महापुरुष उसमें हैं। लेकिन भारतीय जनताके प्रतिनिधि इन महापुरुषोंके रहते हुए भी आज इस अकिञ्चित्कर हिन्दीके विरोधको विशेष महत्व दिया जा रहा है, इसका कारण राष्ट्रके प्रमुख और इस जनतन्त्र कहानेवाली सरकारमें भी कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं वा समर्थ केन्द्रीय सरकारके कुछ प्रमुख सदस्य हैं। जो पहलेसे हिन्दी राष्ट्रभाषा-विरोधी रहे हैं और आज भी हिन्दीके प्रति जिनकी धारणा ज्यों-की-त्यों बनी है।

दक्षिण भारतीयों द्वारा हिन्दीपर अडंगा लगानेका कारण यह है कि—केन्द्रीय सरकारकी नौकरियोंमें लगे हुए ६०) से ४००० तक वेतन पानेवाले अधिकतर कर्मचारी दक्षिण भारतीय ही हैं। अतः वे अपने प्रान्तीयों और अपने सम्बन्धियोंके हितोंकी रक्षाके लिए अभी कमसे कम ५ वर्षोंतक इस प्रश्नको टालना चाहते हैं और उन्हें यह विश्वास है कि यदि ५ वर्षों तक हिन्दी राष्ट्रभाषा न होगी तो फिर इसका प्रश्न ही टल सकता है। उधर उद्योग-विभागमें उसके अधिकारियोंने सर्वत्र अपने दलविशेषकी ही भरमार कर रखी है अतः वे भी उनकी नौकरियोंकी सुरक्षाके लिये हिन्दी राष्ट्रभाषाका प्रश्न कमसे कम १५ वर्षों तकके लिये टरकाना चाहते हैं। (किन्तु यह सुध किसीको नहीं है कि सन ५१ में क्या होगा?)

हमारे समझमें तो ये दोनों प्रान्तीयोंका अडंगा लगाया जाना कोई दूरदर्शिता नहीं है। ऐसे-ऐसे छोटे-छोटे स्वार्थोंकी सुरक्षाके लिये इतने महत्वपूर्ण और व्यापक प्रश्नको खटाईमें डाल देना प्रत्येक भारतीयके दुर्भाग्यका द्योतक होगा। उचित तो यह था कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारीको हिन्दी सीखनेका आदेश नियत समय तकके लिये दे दिया जाता, इसमें कौन-सी राष्ट्रकी बुराई होती कि जो हिन्दी न सीखता उसे हटा दिया जाता? यदि इसीप्रकार आज पुरानी और घिसी हुई मशीनरीके ये अँग्रेजी-दाँ पुर्जे निकाल दिये जायँ तो बहुत-कुछ राष्ट्रकी हालत सुधर सकती है। लेकिन यह भी तब होता जब कि राष्ट्रके हाई कमान हिन्दीके समर्थक होते। हम भारतके प्रधान उन व्यक्तियोंसे ही पूछते हैं जो कि पदे-पदे अन्ताराष्ट्रोंको दिखाने के लिये छोटी-छोटी बातोंमें भी आदर्शवादी बनते हैं—वेड़ियों द्वारा लगी हुई कालिखके समान उस पराधीनताकी निशानी अँग्रेजीकी रक्षा करते रहना और अभी भी उसे वही स्थान दिये रहना भारतके लिये लज्जाका विषय न होगा? अस्तु, फिर भी हम अपने उन माननीय सदस्योंपर विश्वास रखते हैं, जो कि प्राणपणसे राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि नागरीको राष्ट्रमें समुचित पद दिलानेके लिये कृतसंकल्प हैं। भारतके उन सपूतोंके रहते हमारी मातृभाषाका यह प्रश्न खटाईमें नहीं पड़ सकता।

साहित्य-सेवा

सत् पथ दिखलाती ज्ञानको है बढ़ाती,
उचित. अनुचितोंमें भेदको है बताती;
इस सम अति मीठी ना सुधा है न मेवा।
सुख अतिशय देती सत्य-साहित्य-सेवा॥

श्रीमद्भागवत

(सटीक)

एकादशस्कन्धे

प्रथमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः ।
भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥१॥
ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुता सपत्नै-
र्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ।
कृत्वा निमित्त मितरेतरतः समेतान्
हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥२॥
भूभार राज पृतना यदुभिर्निरस्य
गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ।
मन्येऽवनेर्ननुगतोऽप्यगतं हि भारं
यद्यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥

श्री शुकदेव जीने (राजापरीक्षितसे) कहा—हे राजन्! बलरामजी तथा अन्य यदुवंशियोंसे युक्त श्रीकृष्णचन्द्रने दैत्योंका वध कराया और भीषण संग्राम कराकर पृथ्वीका बोझ उतार दिया ॥ १ ॥ कपटके साथ जुवा खेलाकर तथा द्रोपदीके केश और वस्त्र आदि खींचकर तथा अन्यान्य अपमानों द्वारा शत्रुदलसे जो पाण्डव क्रुद्ध करा दिये गये थे उन्हीं पाण्डवोंको निमित्त बनाकर युद्ध करनेके लिए आए हुए दोनों दलोंके राजाओंका संहारकर भगवान्ने पृथ्वीका भार उतारा ॥२॥ अपनी भुजाओंके बलसे रक्षित पाण्डवोंद्वारा पृथ्वीकी भारके समान दूसरे राजाओंकी सेनाओंका संहार कराकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा—यद्यपि पृथ्वीका भार कम होगया है, फिर भी मैं इसे भार रहित नहीं कह सकता हूं, क्योंकि अभी तक असह्य यादव वंश तो ज्यों-का त्यों बना हुआ

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्म-
त्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ।
अन्तः कलिं यदुकुलस्य निधाय वेणु-
स्तम्भस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमिधाम ॥४॥
एवं व्यवसितो राजन्सत्य सङ्कल्प ईश्वरः ।
शाप व्याजेन विप्राणां संजह्रे स्वकुलं विभुः ॥५॥
स्वमूर्त्यालोकलावण्य निर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् ।
गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥६॥
आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ।
तमोऽनया तरिष्यन्तीप्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥७॥

है ॥ ३ ॥ मेरे आश्रित और वैभव शाली इस यदुवंशका दमन अन्य किसीके द्वारा किसी प्रकार नहीं हो सकता, अतएव बाँसके जंगलमें उत्पन्न आगकी तरह परस्पर इनमें अन्तःकलह उत्पन्नकर मैं शान्तिपूर्वक अपने धामको जाता हूँ ॥ ४ ॥ हे राजन्! सत्यसङ्कल्प करनेवाले और सर्वशक्तिमान् ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इस प्रकारके निश्चयसे ब्राह्मणोंके शापका बहाना बनाकर अपने (यादव) कुलका नाश किया ॥ ५ ॥ समस्त संसारकी सुन्दरताका तिरस्कार करनेवाली अपनी मूर्तिद्वारा लोगोंके चक्षुओं, अपने दिव्य उपदेशोंके स्मरण करनेवाले चित्तोंको, अपने आधीन करके तथा निज चरण चिह्नोंद्वारा उन दर्शन करनेवालोंकी अन्यान्य क्रियाओंको रोककर तथा अपनी अद्भुत कीर्तिको इसलोकमें इस विचारसे विस्तृत कर कि —"इसके द्वारा मनुष्य सहसा अज्ञान-सागरको तर जायँगे"—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र

राजोवाच—

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम्।
विप्रशापः कथमभूद्वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥८॥
यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम!
कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व मे ॥९॥

श्रीशुक उवाच—

विभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसन्निवेशं
कर्माचरन्भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः।
आस्थाय धाम रममाण उदार कीर्तिः
संहर्तुमैच्छतकुलं स्थित कृत्यशेषः ॥१०॥

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि
गायञ्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा।
कालात्मना निवसता यदुदेव गेहे
पिण्डारकं सुमगमन्मुनयो विसृष्टाः ॥११॥

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः।
कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥१२॥

क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः।
उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥ १३ ॥

ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवती सुतम्।
एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥१४॥

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात् प्रब्रूतामोघदर्शनाः।
प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किंस्वित्सञ्जनयिष्यति ॥१५॥

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप।
जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुल नाशनम् ॥१६॥

तच्छ्रुत्वा तेऽति संत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम्।

अपने धामको चल दिये ॥ ६-७ ॥ राजा परीक्षितने पूछा—हे भगवन्! जो (यादव) ब्राह्मणोंके परम भक्त, उदार-हृदय और नित्य गुरुजनोंकी सेवामें रत रहते थे तथा जिनका मन एकमात्र-कृष्णमें ही लगा रहता था ऐसे यादवोंको ब्राह्मणोंने शाप क्यों दिया? ॥ ८ ॥ हे द्विजोत्तम! वह शाप जिसलिए हुआ, जैसा था और उन यादवोंमें पारस्परिक फूट कैसे हुई? ये सभी सन्दर्भ मुझसे कहिए ॥ ९ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा—हे राजन्! सुन्दर-सुन्दर सामग्रियोंसे युक्त शरीर धारी तथा पूर्ण मनोरथ हो जानेपर भी लोक में विविध माङ्गलिक कर्म करते, साथ ही श्रीद्वारकापुरीमें विहार करते हुए उदार कीर्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने यदुकुल-संहारकी इच्छा की, क्योंकि अब शेष एक यही कार्य रह गया था ॥ १० ॥ जो अपना पुण्य-गाना गाते हुए संसारके सभी पापोंको नाश करनेवाले हैं ऐसे विविध पुण्यप्रद और मंगलमय कृत्यकरके जब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ श्रीवसुदेवजीके घरमें (निज-कुल-संहारक) कालरूपसे रहने लगे, उस समय विश्वामित्र, असित कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ट और नारद आदि मुनिजन भगवान्से आज्ञा प्राप्तकर पिण्डारक नामके स्थानमें रहने लगे ॥११-१२॥ किसी समय क्रीडा करते हुए यदुवंशके कुछ चंचल राजकुमारोंने स्त्रियोचित वस्त्राभूषणोंसे युक्त जाम्बवतीके पुत्र साम्बका स्त्रीवेश बनाकर बनाकर उन मुनिगणोंके पास जा अत्यन्त विनय पूर्वक पूछा—"ब्राह्मण-वृन्द! यह कृष्णनयना रमणी गर्भवती है और आप लोगोंसे कुछ पूछना चाहती है, किन्तु स्वयं पूछनेमें लज्जित हो रही है; इसलिए हे अमोघ दर्शनों वाले मुनिवृन्द! यह बाला अब प्रसवोन्मुखी है, अतः आप बताइये कि इससे पुत्रकी उत्पत्ति होगी या पुत्रीकी।" ॥ १३, १४, १५, ॥ हे राजन्! उनके इस प्रकारके छलसे क्रुद्ध होकर मुनीश्वरोंने शाप दिया—"रे मूढ़ बालको! यह स्त्री तुम्हारे कुलका संहार करनेवाला एक मूसल उत्पन्न करेगी।" ॥ १६ ॥ यह सुनकर भयभीत होकर उन राज-

साम्बस्य दद्दशुस्तस्मिन्मुसलं खल्वयस्मयम् ॥१७॥
किं कृतं मन्दभाग्यैर्नः किंवदिष्यन्ति नो जनाः।
इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥१८॥
तच्चोपनीय सदसि परिम्लान मुखश्रियः।
राज्ञ आवेदयाञ्चक्रुः सर्वयादव सन्निधौ ॥१९॥
श्रुत्वामोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप।
विस्मिता भय सन्त्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः॥२०॥
तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः।
समुद्र सलिले प्रास्यल्लोहं चास्यवशेषितम् ॥२१॥
कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः।
उह्यमानानि वेलायाँ लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥२२॥
मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेर्नान्यैः सहार्णवे।
तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥२३॥
भगवाञ्ज्ञात सर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा।
कर्तुंनैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥२४॥

श्रीमद्भगवते महापुराणे एकादशस्कन्धे-
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

कुमारोंने तुरन्त साम्बका पेट खोला तो उसके पेटमें वस्तुतः एक लोहेका मूसल मिला॥ ७॥ फिर "हम मन्दभाग्योंने यह क्या किया, लोग हमें क्या कहेंगे" इस प्रकारकी चिन्तासे चिन्तित हो, उस मूसलको लेकर सब घरोंको गये ॥ १८॥ इसके बाद वे राजकुमार अपनी मलीन मुखकान्तिको धारण किए हुए उस मूसलको लेकर राजसभामें गए और सभी यादवोंके समक्ष उसका सारा वृत्तान्त राजा उग्रसेनको सुनाया ॥ १९ ॥ तद-नन्तर हे राजन्! ब्राह्मणोंके व्यर्थ न होनेवाले उस शापको सुनकर सभी द्वारकावासी विस्मित और भयाकुल हो गये ॥ २० ॥ यदुराज उग्रसेनने उस मूसलके लोहेका चूरा कराकर और शेष टुकड़ोंको भी समुद्रमें फेंकवा दिया ॥ २॥ लोहेके टुकड़ोंको तो कोई मछली निगल गयी और चूरा तरङ्गोंकी थपेड़ोंसे समुद्रतटपर लग गया, जिससे वहाँ 'एरका' नामके वृक्ष उग गये ॥ २२ ॥ मछुवेने उस मछलीको अन्य मछलियोंके साथ जालमें फँसा लिया और उसके पेटमें जो लोहेका टुकड़ा था उसे व्याधने अपनी वाणकी नोकमें लगा लिया ॥ २३ ॥ इस वृत्तान्तको जानकर भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रने उस शापको लौटा देनेमें समर्थ होते भी हुए भी अन्यथा करना तो नहीं ही चाहा, प्रत्युत उसका समर्थन भी किया ॥ २४ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराणके एकादशस्कन्धका
प्रथम अध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः।

श्रीशुक उवाच—
गोविन्दभुजगुप्तायाँ द्वारवत्यां कुरूद्वह।
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः॥१॥
को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम्।
न भजेत्सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥ २ ॥
तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम्।
अर्चितं सुख मासीनमभिवाद्येनमब्रवीत् ॥३॥

दूसरा अध्याय।

श्री शुकदेवजीने कहा—हे कुरुकुल गौरव! देवर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी भुजाओंसे सुरक्षित द्वारकापुरीमें उनकी उपासनाकी लालसासे प्रायः सदासे ही रहते आए हैं ॥१॥ हे राजन्! सर्वत्र मृत्युसे आक्रान्त होनेपर भी कौन ऐसा इन्द्रियोंवाला प्राणी होगा जो अनेक देवताओंसे सुसेवित भग-वान्के चरण कमलोंको न भजेगा? ॥२॥ एक समय श्रीवसुदेवजी अपने घरमें आए हुए, पूजाकर लेनेपर सुख पूर्वक आसन पर बैठे हुए देवर्षि नारदजी को

वासुदेव उवाच—

भगवन् भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम्।
कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥४॥
भूतानां देवचरितं दुःखायच सुखायच।
सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम्॥५॥
भजन्ति ये यथादेवान्देवा अपि तथैव तान्।
छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीन-वत्सलाः ॥६॥
ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव।
यान्छ्रुत्वाश्रद्धया मर्त्यो मुच्यते विश्वतो भयात्॥७॥
अहं किल पुरानन्तं प्रजार्थे भुवि मुक्तिदम्।
अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देव मायया ॥८॥
यथा विचित्र व्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतोभयात्।
मुच्येम ह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥९॥

श्रीशुक उवाच—

राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता।
प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥१०॥

नारद उवाच—

सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ।
यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वंविश्वभावनान् ॥११
श्रुतोऽअनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपि हि ॥१२॥
त्वया परम कल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥१३॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
आर्षभाणांच संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥१४॥

प्रणामकर ये बातें कहने लगे ॥३॥ श्रीवसुदेवजीने कहा—भगवन्! पुत्रोंके लिए अपने माता-पिता और दीनों तथा दुखियोंके लिए भगवत्परायण महात्माओंके समान आपका आगमन सभी देहियोंके कल्याणके लिये ही होता है ॥४॥ प्राणियोंके सुख और दुःख दोनोंहीका कारण देवचरित्र होता है किन्तु आपके समान महापुरुषोंका आगमन उनके केवल सुखके लिये ही होता है ॥५॥ जो जिस देवताका भजन जैसे करता है, वह देवता भी उसको वैसा ही फल देता है; वे कर्मोंका अनुसरण छायाकी तरह करते हैं, लेकिन साधु लोग प्रकृतिसे ही दीन-दुःखियोंपर कृपा करते हैं ॥४॥ हे ब्रह्मन्! आपसे भागवत धर्मोंके सम्बन्धमें कुछ पूछना चाहता हूँ, जिनको सुनकर श्रद्धापूर्वक मनन करनेसे मनुष्य संसारके सर्वविध भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥ मैंने एकबार अपने पूर्वजन्ममें मुक्ति देनेवाले भगवान्का पूजन सन्तान-कामनासे ही किया था, मोक्ष-कामनासे नहीं ॥ ८ ॥ इसलिये, हे सुव्रत! विविध प्रकारके दुःखों और भयोंद्वारा आकुल इस संसारसे जिस प्रकार मुक्ति प्राप्त हो सके इस प्रकारका उपदेश हम आपके श्रीमुखसे सुनना चाहते हैं ॥ ९ ॥ श्री शुकदेवजी बोले—हे राजन्! चतुर वासुदेवजीद्वारा इस प्रकारका प्रश्न पूछे जाने और भगवान्के कीर्तनद्वारा उनका स्मरण करा देनेपर देवर्षि नारद प्रसन्न हो गये और बोले ॥१०॥ नारदजीने कहा—हे यादवेन्द्र! यह आपका अत्युत्तम विचार है, क्योंकि आप संसारको पवित्र करनेवाले भागवत धर्मके सम्बन्धमें पूछ रहे हैं ॥ ११ ॥ सुनने, बार-बार श्रवण करने, पढ़ने, आदर या अनुमोदन किये जानेपर यह सुन्दर धर्म विश्वके द्रोही व्यक्तियोंको भी उसी समय पवित्र कर देता है ॥ १२ ॥ जिनके नाम, जिनका स्मरण और कीर्तन भी पवित्र करने योग्य है, उन परम कल्याण स्वरूप देव नारायणका आपने आज मुझे स्मरण करा दिया है ॥ १३ ॥ यहाँपर भी महात्मा विदेह और ऋषभके पुत्रोंका संवादरूप प्राचीन इतिहासका उदाहरण देते हैं

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः ।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतःस्मृतः॥१५॥
तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया ।
अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥१६॥
तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः ।
विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥१७॥
स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् ।
उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥१८॥
तेषां नव नवद्वीप पतयोऽस्य समन्ततः ।
कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥१९॥
नवा भवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थसंशिनः ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्या विशारदाः ॥२०॥
कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ दुमिलश्चमसः करभाजनः ॥२१॥
एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् ।
आत्मनोऽव्यतिरेकेणपश्यन्तोव्यचरन्महीम्॥२२॥
अव्याहतेष्टगतयः सुर सिद्धसाध्य-
गन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ।
मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथ-
विद्याधर द्विजगवां भुवनानि कामम्॥२३॥
त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया ।
वितायमानमृषिभिरजनाभे महात्मनः ॥२४॥
तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृपः ।
यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥२५॥
विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायण परायणान् ।
प्रीतः सम्पूजयाञ्चक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥२६॥
तान्रोचमानान् स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव ।

॥१४॥ स्वायंभुवके प्रियव्रत नामके पुत्रसे आग्नीध्रका जन्म हुआ, आग्नीध्रके नाभि तथा नाभिके पुत्र ऋषभजी हुए ॥ १५ ॥ ऋषभजी वासुदेवजीके अंश थे, मोक्षधर्मको कहनेके लिये उन्होंने अवतार लिया था; उनके सौ पुत्र हुए, जो सभी वेद-पारग थे ॥ १६ ॥ उनमें सबसे बड़े और नारायणके अनन्य भक्त थे—भरतजी, जिनके नामसे यह अद्भुत भारतवर्ष विख्यात हुआ है ॥ १७ ॥ उन भरतजीने—भोगे गये हैं भोग जिसमें, ऐसी पृथ्वीको छोड़कर तपस्यापूर्वक भगवान्की उपासना करके तीन जन्मोंके पश्चात् मोक्षपद लाभ किया ॥ १८ ॥ उन पुत्रोंमेंसे नौ पुत्र इस भू-मण्डल और और नव द्वीपोंके अधिपति हो गये। शेष इक्यासी कर्मतन्त्रोंके निर्माता ब्राह्मण हो गये ॥ १९ ॥ उनमेंसे नौ महानुभाव परमार्थ तत्वका निरूपण करनेवाले मुनिवर कहलाए, जो आत्म-विद्याके परिश्रमी, दिगम्बर तथा अध्यात्म विद्यामें निपुण थे ॥ २० ॥ उनके नाम—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन—थे ॥ २१ ॥ ये सत् और असत् अपनेसे अभिन्न और भगवद्रूप समस्त संसारको देखते हुए विचरण करते थे ॥ २२ ॥ इसीप्रकार देवता. सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, नागलोकों तथा मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गायोंके स्थानोंमें अपनी अप्रतिहत गतिसे विचरते थे ॥ २३ ॥ एकबार ये अजनाभ खण्डमें (जो नाम भारतके पहले था) राजा निमिके यहाँ ऋषियोंद्वारा यज्ञ कराते समय सहसा पहुँच गये ॥ २४ ॥ उन सूर्यके समान तेजस्वियोंको देखकर हवन करते हुए यजमान राजा, ब्राह्मण और अग्नि सभी उठकर खड़े हो गये ॥ २५ ॥ महाराज विदेहने भी आसनमें आए हुए उन मुनिवरोंका सादर और यथोचित पूजन किया ॥ २६ ॥ अपने-अपने शरीरकी प्रभासे प्रजापतिके पुत्रोंके समान सुशोभित होनेवाले नव

पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥२७॥

विदेह उवाच—

मन्ये भगवतः साक्षात् पार्षदान्वो मधुद्विषः।
विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि॥२८॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥२९॥

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामि भवतोऽनघाः।
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम्॥३०॥

धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम्।
यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्मानमप्यजः॥३१॥

श्रीनारद उवाच—

एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः।
प्रतिपूज्यान्ब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम्॥३२॥

कविरुवाच—

मन्ये कुतश्चिद्भय मच्युतस्य
पादाम्बुजोपासन मत्र नित्यम्।
उद्विग्न बुद्धे रसदात्म भावा—
द्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः॥३३॥

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्म लब्धये।
अञ्जः पुसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान्॥३४॥

यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥३५॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वानुसृत स्वभावात्
करोति यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयेत्तत्॥ ३६॥

योगियोंसे राजा जनकने प्रसन्न होते हुए नम्रतापूर्वक प्रश्नकिया॥ २७॥

महात्मा विदेह बोले—हे भगवन्! मैं यह समझता हूँ कि आप लोग श्रीविष्णुभगवान्के ही गण हैं, क्योंकि विष्णुभगवान्के ही पार्षद विश्वके प्राणि-मात्र को पवित्र करनेके लिये प्रयत्न करते हैं॥२८॥ जीवको पहले यहाँ क्षणमें विनाश होनेवाला शरीर ही मिलना दुर्लभ है, इसमें भी श्रीविष्णुभगवान्के भक्तोंका दर्शन मिलना और भी दुर्लभ है॥२९॥ अतः हे निष्पाप महात्माओ! इस संसारमें अतिशय कल्याण किसमें है? क्योंकि इस संसारमें आधे क्षणके लिये भी सत्सङ्ग बहुत बड़ी धरोहर (खजाने) के समान है॥३०॥ यदि हम सुन सकनेके योग्य हों तो हमें आपलोग उन भागवत धर्मोंको सुनाइये, जिनसे प्रसन्न हो अजन्मा भगवान् स्वयं अपनेको भक्तके अर्पण कर देते हैं॥ ३१॥

श्री नारदजीने कहा—हे वसुदेवजी! निमि-द्वारा इसप्रकारके प्रश्न पूछे जानेपर उन महात्माओंने प्रसन्नतापूर्वक धन्यवाद देते हुए ऋषियों सहित बैठे हुए राजानिमिसे इस प्रकार कहा॥३२॥

कविजीने कहा—हे राजन्! मैं इस संसारमें केवल भगवान् अच्युतके चरण-कमलोंकी नित्य सेवा ही भयरहित समझता हूँ, क्योंकि असत् पदार्थमें आत्मीय भावनाके कारण जिनकी बुद्धि चञ्चल हो गयी है, उनका भी सम्पूर्ण भय नष्ट हो जाता है। ॥३३॥ अज्ञ पुरुषोंके लिये भी आत्मलाभके जो उपाय भगवान्ने बतलाये है उन्हीं को भागवत-धर्म जानो॥३४॥ हे राजन्! उन भागवत धर्मोंका आश्रयण करनेपर मनुष्य कभी भी उन्माद नहीं करता और आँख मूँदकर दौड़नेपर भी वह न फिसल सकता है न गिर सकता है॥३५॥ इसलिये शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, अहङ्कार अथवा स्वाभावानुसार जो कर्म किया जाय वह सब नारायणके लिये ही है—इस

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्या—
दीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं
भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥३७॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो
ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ।
तत्कर्म संकल्प विकल्पकं मनो
बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥३८॥

शृण्वन्सुभद्राणि रथाङ्गपाणे—
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥ ३९ ॥

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोक बाह्यः ॥४०॥

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः ॥४१॥

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतःस्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥४२॥

इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः

भावनासे समर्पणकर दिया जाय ॥३६॥ भगवानसे विमुख मनुष्यको उनकी ही मायासे उनके स्वरूपकी विस्मृति और विपरीत ज्ञान होता है, फिर अपनेसे पृथक् द्वितीय पदार्थकी सत्ताका अभिमान होनेपर उसे भयकी प्राप्ति हो जाती है; अतएव बुद्धिमान् मनुष्य अपने गुरुदेवमें ही इष्टकी भावना रखकर उस भगवान्का ही अनन्य होकर भक्तिपूर्वक भजन करे। यह वास्तविक द्वैत-प्रपंच न होनेपर भी ठीक इसी प्रकार परमार्थ रूप भासित होता है जैसे स्वप्न और मनोरथक पदार्थोंका रूप न होते हुए भी चिन्तन करनेवाली बुद्धिमें सत्यकी भाँति प्रतीत होते हैं। अतएव विचारशील मनुष्य पहले अस्थिर चित्तको रोके, तभी उसे अभयपदकी प्राप्ति हो सकेगी ॥ ३८ ॥ और लोकमें चक्रपाणि भगवान्के जन्मकर्म एवं उनकी अद्भुत लीलाओं-के आधार पर रखी गयी नामावलीका संकोच रहित होकर गान करता हुआ असङ्ग भावसे संसारमें विचरण करे ॥ ३९ ॥ इस प्रकारका व्रत करनेवाला मनुष्य अपने प्रभुपर अनुराग उत्पन्न हो जानेके अनन्तर द्रुतचित्त हो जाने-पर संसारकी उपेक्षा करता हुआ कभी ठहाका मार हँसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी उन्मत्तकी भांति नाचने लगता है ॥ ४० ॥ आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष आदि और नदियाँ, समुद्र सभी भगवान् हरिके ही शरीर हैं; इसलिये सभीको अनन्य रूप या भावसे प्रणाम करे ॥४१॥ भगवान्का भजन करनेवालेको —परमेश्वरके प्रति प्रेम, उसका स्वरूपज्ञान तथा अन्य वस्तुओंमें वैराग्य—ये तीनों कार्य एक साथ होते हैं जिस प्रकार भोजन करनेवाले व्यक्तिको प्रत्येक ग्रासके साथ-ही-साथ तुष्टि, पुष्टि और क्षुधाकी निवृत्ति एक साथ होती है ॥ ४२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार भगवान्के चरण कमलोंका अहर्निश भजन करने-वाले भक्तको भगवत्-प्रेम, विषयोंसे वैराग्य और

भवन्तिवै भागवतस्य राजं-
स्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥४३॥

राजोवाच—

अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम्,
यथा चरति यद् ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः॥४४॥

हरिरुवाच—

सर्व भूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥४५॥

ईश्वरे तदधीनेषु वालिशेषु द्विषत्सुच।
प्रेममैत्री कृपोपेक्षा यःकरोति स मध्यमः ॥४६॥

आचार्यामेव हरये पूजाँ यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः॥४७॥

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्माया मिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः॥४८॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो
जन्माप्ययक्षुद्भयतर्ष कृच्छ्रैः।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः
स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः॥ ४९ ॥

न काम कर्मबीजानां यस्य चेतसि सम्भवः।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः॥ ५० ॥

न यस्य जन्म कर्मभ्यां न वर्णाश्रम जातिभिः।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः॥५१॥

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ॥५२॥

भगवान्का स्वरूप-ज्ञान ये सभी निश्चित रूपसे होते हैं, तदनन्तर वह भक्त साक्षात् परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है॥ ४३॥

राजा निमिने कहा—अब आप भगवद्भक्त मनुष्यका वर्णन कीजिए, उसके जो धर्म हैं, मनुष्योंमें उसकी जो प्रतिक्रिया होती है, वह जिस प्रकार आचरण करता है, जो बोलता है, और जिन (विशिष्ट) लक्षणोंके कारण वह भगवान्का प्यारा होता है॥ ४४॥

हरिने कहा—जो भक्त सभी प्राणियोंमें अपनी आत्माका भगवद्भाव रूप देखता है और जो अपनी भगवतस्वरूप आत्मामें प्राणिमात्रको देखता है, वही सर्वश्रेष्ट भगवद्भक्त है॥ ४५॥ जो ईश्वरसे प्रेम, भक्तोंसे मित्रता, अज्ञानियों पर कृपा और द्वेष करनेवालोंकी उपेक्षा करता है वह मध्यम है॥ ४६॥ जो श्रद्धापूर्वक भगवान्की पूजामें ही लगा रहता है तथा जो भगवद्भक्तों या अन्य किसीकी पूजामें प्रवृत्त नहीं होता वह साधारण (प्राकृत) भक्त कहा गया है॥ ४७॥ जो इन्द्रियोंके विषयोंको ग्रहण करता हुआ भी न उनसे प्रसन्न रहता है और न उनसे द्वेष करता है, अर्थात् प्रत्येक अवस्थामें समान ही रहता है और "यह सब विष्णु-भगवान्की ही माया है" इस प्रकारकी धारणा रखता है, वह निश्चित ही श्रेष्ठ भक्त है॥ ४८॥ हरिस्मरणमें तन्मय रहनेके कारण जो देह, इन्द्रिय, प्राण, मन एवं बुद्धिके सांसारिक धर्म जन्म, मृत्यु, क्षुधा, भय, तृष्णा और परिश्रम आदिसे मोहित नहीं होता, वह श्रेष्ठ भगवद्भभक्तोंमें है॥ ४९॥ कामना और कर्मके बीजोंका प्रादुर्भाव जिसके मनमें नहीं होता जो केवल वासुदेवैक-शरण है, वह निश्चित ही भगवद्भक्तोंमें उत्तम है॥५०॥ जिसका जन्म, कर्म, वर्ण, आश्रम और जातिके कारण इस शरीरमें अहंभाव नहीं होता, वह निश्चय ही भगवान्का प्रिय होता है॥ ५१॥ शरीर अथवा द्रव्यमें जिसका "यह मेरा, यह दूसरेका" इस प्रकारका भेद-भाव न हो, जो सभीके लिये समदर्शक और शान्त चित्तवाला हो, वह निश्चित सर्वश्रेष्ठ भगवद्भभक्त है॥ ५२॥

श्री भारतधर्म-महामण्डल और वाणी-पुस्तकमाला

काशी द्वारा प्रकाशित

धार्मिक पुस्तकें

धर्म-विज्ञान

सनातनधर्मका अद्वितीय ग्रन्थ है । इसमें धर्म और आधुनिक विज्ञानके समन्वयके साथ धर्मके विविध अङ्गोंपर प्रचुर प्रकाश डाला गया है । सनातनधर्मको पूर्णरूपसे समझनेके लिए अकेली यही पुस्तक पर्याप्त है । समय-समयपर लोगोंद्वारा किये गये और की जानेवाली यथा सम्भव शंकाओंका समाधान सुन्दर भाषामें शिष्ट उत्तरों द्वारा किया गया है । इसमें वर्णित प्रमुख स्तम्भोंके विषय इस प्रकार हैं—आधुनिक विज्ञान और सनातनधर्म, देशसेवा और सनातनधर्म, स्वराज्य और सनातनधर्म, आचारमें वैज्ञानिक चमत्कार, नित्यकर्म, षोडश-संस्कार, श्राद्ध-तर्पण, शक्ति-संचय और आश्रमधर्म, सतीधर्म-रहस्य, विवाहकाल-निर्णय, वर्ण-विज्ञान और स्पृश्या-स्पृश्य विचार, उपासनातत्व और मन्त्रशास्त्र, भक्ति और योग, अवतार मीमांसा, ब्रह्म-ईश्वर-जीव-माया-तत्व, सृष्टिस्थिति, प्रलय-तत्व, परलोक और जन्मान्तर तत्व, वेद-वेदाङ्ग, दर्शन-शास्त्र, पौराणिक शंका-समाधान, गोमहिमा आदि अनेकानेक विषय विस्तृत और महत्वपूर्ण विवेचनके साथ तीन भागों में प्रकाशित हैं । साइज—डबल क्राउन अठपेजी, प्रत्येक खण्डकी लागत क्रमशः - ५)-४)-४) मात्र ।

१—ईशोपनिषद् ॥।)

२—केनोपनिषद् ॥।)

३—कठोपनिषद् ३)

उपनिषदोंकी दुरूहता किसीसे छिपी नहीं है । इनके गूढ़ रहस्योंका जैसा उद्घाटन श्रीमत् शंकर-प्रभुने अपने भाष्योंमें किया है, वह अद्वितीय है । परन्तु वह भाष्य संस्कृतमें होनेके कारण केवल हिन्दी जाननेवाले लोगोंको उसका ज्ञान प्राप्त करना सर्वथा कठिन था । अतः सरल और सुगम बनाने-के विचारसे उपनिषदोंकी ये टीकाएँ प्रस्तुतकी गयी हैं । इसमें मूल, अन्वय, मन्त्रार्थ, शांकर-भाष्य तथा भाष्यका हिन्दी अनुवाद तत्पश्चात् 'उपनिषद् सुबोधिनी, नामक सुन्दर और सरल टीकाद्वारा उनके भावोंको जन-साधारणके उपयोगी बना दिया गया है एवं अस्पष्ट स्थलोंको सुस्पष्ट और सुबोध किया गया है । यह टीका सर्वथा वैज्ञानिक और समस्त भारतीय भाषाओंमें अपने ढंगकी अनोखी हुई है । धममें श्रद्धा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको ऐसे महिमामय ग्रन्थोंका अवश्य अवलोकन करना चाहिये ।

सप्तशती गीता (दुर्गा)

यों तो इसके अनेक संस्करण अनेक स्थानोंसे प्रकाशित हुए आपको दिखायी पड़े होंगे, किन्तु यह संस्करण जो 'वाणी-पुस्तकमाला' द्वारा प्रकाशित हुआ है, सचमुच अद्वितीय है । मूल, फिर अन्वय तथा इसके बाद उसका सरल और सुन्दर हिन्दी भाषामें अनुवाद करके इसका जैसा सौन्दर्य्य बढ़ाया गया है, साथ ही यह एक ऐसी टीकाके संयुक्त है, कि पढ़ने या पाठ करनेसे माँ दुर्गाका आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक रहस्य अनायास समझमें आ जाता है । हर प्रकारकी आशङ्काओंको इस ग्रन्थका पाठ विनष्ट कर देनेवाला है । किसी भी भाषामें अबतक दुर्गा सप्तशतीका ऐसा प्रकाशन आपको उपलब्ध नहीं हुआ होगा,

दुर्गा-पाठ करनेवाले प्रत्येक विद्वान्, पण्डित और हिन्दू सद्गृहस्थको यह ग्रन्थ अपने घरमें रखकर लाभ उठाना चाहिये । अजिल्द १॥) सजिल्द १॥।=)

सती सदाचार

दाम्पत्य जीवनको सुन्दर और सरस बनानेवाली यह आदर्श पुस्तक है। अधिक कहना व्यर्थ है। इस पुस्तकको आप स्वयं पढ़ें, अपनी गृहिणीको पढ़ावें, बालक और बालिकाओंको दें। किसी भी प्रकारका संकोच नहीं। इसके अध्ययनके द्वारा गार्हस्थ्यधर्ममें सुख और सौन्दर्य्यकी वृद्धि होगी और जीवन सुनहला हो चमकने लगेगा। मूल्य ।।।) मात्र।

धर्मतत्त्व

धर्माधर्मसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक हिन्दूका आवश्यक कर्तव्य है। इस धर्मग्रंथमें तथा उसके अङ्गोंपर संक्षेपसे बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है। अतः प्रत्येक गृहस्थके लिए यह बड़ा उपयोगी ग्रन्थ है ऐसे स्कूल और कालेज तथा पाठशालाएँ, जिनमें धार्मिक शिक्षा देनेका नियम है— इस धर्मग्रन्थसे काफी लाभ उठा सकते हैं स्त्रीपुरुष, बालक बालिकाओं यानी सभी वर्गके लोगोंके लिये यह समान हितकारी है। धर्म ज्ञानकी ज्योतिको घर-घरमें जगानेके लिये यह सर्वाङ्ग सुन्दर एवं उपयोगी ग्रन्थ है। मू० १=) मात्र।

भारत-धर्म-समन्वय

सनातनधर्म पृथिवीके सब धर्ममार्गोंका कितना सुहृद् है, किस प्रकार वह किसी भी धर्मका विरोधी नहीं है, किस रूपमें और धर्मोंका सहायक है, इसका यदि ज्ञान करना हो तो इस पुस्तकको अवश्य पढ़ें। परधर्म विद्वेष दूर करने तथा सनातनधर्मके उदार स्वरूपको सबके सामने रखनेके लिए एक पूज्य महात्माके द्वारा इसका पुस्तककी रचना हुई है। इसमें धर्मका सार्वभौम रूप, धर्मकी दार्शनिक व्याख्या, साधारण धर्म, विशेषधर्म समन्वय आदि स्तम्भोंको पढ़कर आपका हृदय सनातनधर्मकी महत्तापर मुग्ध हो जायगा। सभी श्रेणीके धर्मप्रेमी विद्वानों और विद्यार्थियोंके लिये भी यह ग्रन्थ परम उपयोगी सिद्ध होगा। मू० १=) मात्र

परलोक-तत्त्व

परलोक एक ऐसा स्थान है, जहाँ मृत्युके बाद सभीका पहुँचना अनिवार्य्य है। ऐसे स्थानकी रहस्यमयी बातोंका जाननेके लिये किसके हृदयमें कौतूहल उत्पन्न नहीं होता। किन्तु अबतक कोई ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था, जो इस विषयपर पूर्ण प्रकाश डालता। इस पुस्तकके द्वारा यह कमी दूर हो गयी। थोड़ा भी हिन्दी पढ़ा लिखा मनुष्य इस पुस्तकके द्वारा उस आश्चर्य्यमय लोककी बातोंको समझ अपनी चिन्ता मिटा सकता है। मूल्य ।।।=) मात्र।

आचार-चन्द्रिका

यह पुस्तक ब्रह्मीभूत श्री १०८ श्रीस्वामी दयानन्दजी द्वारा प्रणीत है। धर्महीन पाश्चात्य शिक्षाके फलस्वरूप 'आर्य्य-जीवनमें' प्राचीन आदर्शोंका लोप-सा दिखायी पड़ता है। कोई भी बालक या बालिका धर्म शिक्षाके अभावके कारण अपना जीवन आर्य आदर्शके अनुकूल बनानेमें समर्थ नहीं है। अतः सदाचार-प्रतिपालन, ईश्वर-भक्ति, गुरुजन श्रद्धा, मातृभक्ति, सच्चरित्रता, आस्तिकता, परार्थपरता एवं ज्ञानार्जनस्पृहा उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे इस पुस्तककी रचना हुई है। पुस्तक अतीव उपयोगी है। बालक और बालिकाओंके अतिरिक्त सयाने लोगोंको भी यह पुस्तक मार्गप्रदर्शकका काम देनेवाली है मू०—।।।) मात्र।

धर्म-प्रवेशिका

सर्वसाधारणमें धर्मका प्रारम्भिक ज्ञान कराने-वाली ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं। इसमें धर्मका स्वरूप, पुण्य और पाप, धर्मके अङ्ग और उपाङ्ग, वेद और शास्त्र, इहलोक और परलोक, ईश्वर, देवता और अवतार, उपासना और पूजा, गृहस्थके कर्त्तव्य आदि शीर्षक देकर छोटे-छोटे निबन्धरूप-धर्मके प्रत्येक अङ्गपर सरल हिन्दी भाषामें ऐसा प्रकाश डाला गया है, कि एक बालक भी इसे पढ़कर हिन्दूधर्मका अच्छा ज्ञाता बन सकता है। अधिक कहना व्यर्थ है, पुस्तक देखते ही प्रकट होगा। मू० ।=) मात्र।

व्रतोत्सव कौमुदी

ऐसा कौन हिन्दू होगा जिसके घरकी महिलाएँ तथा बालिकाएँ व्रत करनेकी अभिलाषा नहीं रखती हैं। वे परम्परागत व्यवहारानुसार व्रत तो करतीं हैं किन्तु अधिकांशको इस बातका पता ही नहीं रहता कि किस व्रतके करनेकी क्या विधि है, उसे क्यों किया जाता है, उसके करनेसे क्या लाभ होता है, आदि-आदि। इस अनभिज्ञताके कारण व्रतके नियमोंके यथाविधि पालनमें त्रुटि रहती ही है। इस पुस्तकमें हिन्दू घरोंमें होने वाले प्रायः सभी व्रतोंकी विधियाँ उसके माने जानेके कारण आदिपर भलीभाँति प्रकाश डाला गया है। घर-घरमें इसका प्रचार हो, इसलिये मूल्य केवल लागत मात्र ही रख गया है। मू० ॥–) मात्र।

पूजा और प्रार्थना

इस पुस्तकमें गणेश, विष्णु, दुर्गा, काली आदि अनेक देव और देवियोंकी प्रार्थना और पूजाकी पद्धतिपर स्पष्ट प्रकाश डाला गया है। इसकी उत्तमताके विषयमें कुछ कहना सूर्यको दीपक दिखाना है। पुस्तक प्रत्येक हिन्दू गृहस्थमात्र तथा विद्यार्थियोंके कण्ठ करने योग्य है। मू० ।) मात्र।

वेदान्त-दर्शन

महर्षि वेदव्यासका यह संसार-प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका अध्ययन जिसने नहीं किया, वह दयनीय हिन्दू है। इसके सुप्रसिद्ध और सारभूत चतुःसूत्री का ऐसा सरल और सुभग भाष्य, वह भी शंकर भाष्यके अनुकूल हिन्दीमें कहीं प्रकाशित नहीं हुआ होगा। हमारा सबसे अनुरोध है, कि वे एक-एक पुस्तक अवश्य खरीदें। मू० ॥–)

गीतार्थ-चन्द्रिका

सनातनके सुप्रसिद्ध व्याख्याता ब्रह्माभूत श्री स्वामीदयानन्दजी महाराजने गीतापर यह अद्भुत टीका लिखकर अपने बुद्धि-वैभवका जो चमत्कार प्रदर्शित किया है—वर्णन नहीं किया जा सकता। इसकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इतने जटिल विषयको भी अत्यन्त सुन्दर और सरल हिन्दीमें लिखकर गूढ़ एवं गम्भीर गीताके रहस्यको स्पष्ट कर दिया है। इसमें ज्ञान, कर्म और उपासना-तीनोंका सामञ्जस्य सफलता पूर्वक किया गया है। सजिल्द—३) सादी – २॥) मात्र।

कर्म-रहस्य

यह पुस्तक अभी हालहीमें प्रकाशित हुई है। कर्मसम्बन्धी बड़ा सुन्दर विवेचन है। इसमें कर्मका स्वरूप, कर्मसे सृष्टि, कर्मके भेद, कर्मका परिणाम, कर्मसे जाति, कर्मसे आयु, कर्मसे प्रकृति, कर्मसे प्रवृत्ति, कर्मसे संस्कार, कर्मसे शक्ति, कर्मसे काल, आदि शीर्षक देकर एक पूज्य महात्मा द्वारा अनेक निबन्ध लिखे गये हैं। यह जीवन कर्ममय है या यह कहिये कि कर्महीसे जीवन है; अतः जीवन-प्राण कर्म सम्बन्धी सभी बातें मनुष्यमात्रको ही जाननी चाहिये। इस पुस्तकमें कर्मके विषयकी सभी बातोंपर पूर्ण प्रकाश डाल गया है और इसके अध्ययनके द्वारा जीवन बहुत कुछ सफल बनाया जा सकता है। मूल्यलागत मात्र ॥|=)

श्रीमद्भगवद्गीता

(प्रथम खण्ड)

यह प्रथम खण्ड प्रथम अध्यायसे नवें अध्याय तक प्रत्येक श्लोक, अन्वय, अर्थके अतिरिक्त 'तत्व बोधिनी' नामकी विस्तृत टीकाके साथ प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि आज तक गीताकी विविध टीकाएँ निकल चुकी हैं, किन्तु इसकी यह अपनी मौलिक विशेषता—गीताका अध्यात्म, अधिदैव अधिभूतके साथ त्रिविधस्वरूप वैज्ञानिक ढंगसे है जो प्रत्येक जिज्ञासुके लिए तृप्ति-दायक है। भाषा अति सुन्दर और सरल है। हिन्दीमें गीताकी यह अपूर्व पुस्तक है। मूल्य—४) मात्र। दूसरा खण्ड भी शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

आदर्श-देवियाँ

निस्सन्देह इस ग्रन्थको पढ़कर प्रत्येक महिला आदर्श-महिला या आदर्श-देवी हो सकती है। क्योंकि इस ग्रन्थमें वैदिक कालसे लेकर ऐतिहासिक काल तक जिन जिन देवियोंके चरित्र संकलित हुए हैं, जिनमें कोई आदर्श-विदुषी है, कोई आदर्शमाता है, कोई आदर्श सती है, कोई आदर्श योगिनी है, और कोई आदर्श वीराङ्गना है। अतः प्रत्येक पाठिका अपनी प्रवृत्तिके अनुसार किसी भी देवीका आदर्श ग्रहण कर सकती है और आदर्श महिला बन सकती है। लगभग ५० देवियोंके चरित्रोंका सुन्दर चयन है। ग्रन्थ दो भोगोंमें है, प्रत्येक भागका मूल्य १।=) है।

सन्यास-धर्म-पद्धति

यह ग्रन्थ सभी सम्प्रदायोंके साधुओं और सन्यासियोंके लिये परमोपयोगी और संग्रहणीय संस्कृत भाषामें है। मू० १॥) मात्र।

गोब्रत-तीर्थ-महिमा

इस पुस्तकमें गौ-माताकी महिमा एवं महत्ता समस्त हिन्दू त्योहारों तथा तीर्थोंके सम्बन्धमें सुन्दर और निबन्ध हैं। मू०॥)

तत्वबोध

(श्री शंकराचार्य रचित मूल)

भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणीके सहित। मू० ।=)

कुछ अन्य पुस्तकें

धर्माधर्म प्रश्नोत्तरी	=)
सदाचार प्रश्नोत्तरी	=)
तीर्थ और देवपूजन प्रश्नोत्तरी	=)
महिला प्रश्नोत्तरी	=)
परलोक प्रश्नोत्तरी	=)
भाभीके पत्र	।।।)
हिन्दूधर्मका स्वरूप	≡)
गायत्रीमन्त्रकी टीका	=)
कन्या-शिक्षा-सोपान	=)
दर्शनादर्श	१)
सन्यास गीता	॥)
सरल साधन प्रश्नोत्तरी	=)
श्री व्यास-शुक संवाद	।)

उपरोक्त पुस्तकोंके अतिरिक्त अनेकानेक पुस्तकें हमारे यहाँसे प्रकाशित हुई हैं, जिनका उल्लेख स्थानाभावके कारण हम यहाँ करनेमें असमर्थ हो रहे हैं। अतः सूचीपत्र मँगालिया जा सकता है।

व्यवस्थापक—**वाणीपुस्तकमाला, जगतगंज**
—बनारस (केन्द्र)

सम्पादक, मुद्रक व प्रकाशक—श्रीमदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारससे हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, काशीमें छपवाकर प्रकाशित किया।

आर्य्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला', श्री आर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सभी श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—पत्रिका प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अङ्क दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके पश्चात् तत्काल कार्य्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे जाँच करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिये। समुचित समयपर सूचना न मिलनेपर कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना पूर्ण पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखनी चाहिये, अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका उत्तरदायी न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये, यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना कार्यालयमें देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला,' जगतगञ्ज, बनारस (कैण्ट)के पतेसे आना चाहिये।

७—लेखादि कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिए पर्याप्त जगह छोड़ देनी चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताको प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने, बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख पूरे आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिए टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिए

विज्ञापनदाताओंके लिए काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	,,
,, ½ पृष्ठ	१६)	,,
,, ¼ पृष्ठ	८)	,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्द्धारित है। विज्ञापनदाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेज तक विज्ञापन छपानेवालोंको "आर्य्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास २५) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

आवश्यक सूचना

सर्वसाधारणको सूचित किया जाता है कि ठाकुर आत्माप्रसादसिंह भूतपूर्व सम्पादक तथा व्यवस्थापक "आर्यमहिला" दिनाङ्क ८-९-४९ को अपने उक्त पदोंसे पृथक् कर दिये गये हैं। अतः उनके लेन-देन सम्बन्धी किसी भी कार्यके लिये संस्था उत्तरदायी नहीं है, इसलिये जनताको उनके द्वारा किये गये 'संस्था' सम्बन्धी किसी भी व्यवहारके भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये।

व्यवस्थापक—

आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्

प्रधान कार्यालय, काशी।
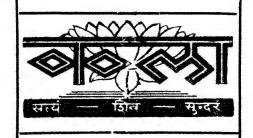
अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥

मार्गशीर्ष सं० | वर्ष ३२, संख्या ८, | नवम्बर १९५०

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुञ्ज-हारी॥

नाथ तू अनाथको अनाथ कौन मोसों?

मो समान आरत नहि आरतिहर तोसों॥

ब्रह्म तू हौं जीव, तुही ठाकुर हौं चेरो।

तात मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो॥

तोहि मोंहि नाते अनेक मानिये जो भावैं।

ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावैं॥

आत्मनिवेदन

कांग्रेस अध्यक्ष श्रीटंडनजीसे—

गत १६ अक्टूबरको इलाहाबादमें ललिता महोत्सवके उपलक्ष्यमें आयोजित सभामें भाषण करते हुए श्रीपुरुषोत्तमदास टंडनजीने स्त्रियोंको सीता-सावित्रीका आदर्श रखनेका उपदेश दिया और पुरुषोंको श्रीरामचन्द्रजीकी भाँति एकपत्नीव्रतका आदर्श रखनेकी सम्मति दी; उनका भाषण जो दैनिक भारतके २२-१०-५० के अङ्कमें प्रकाशित हुआ था, उसको यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत किया जाता है—"शिवजीकी बिना सम्मतिके सती अपने पिता दक्षके यज्ञमें चली आयी। शिवका भाग न देखकर वह पतिके अपमानके दुःखमें भस्म हो गयी। यही हमारी भारतीय संस्कृति है। जो स्त्रियाँ स्वयं अपने पतिका अपमान करती हैं, उनके लिये क्या कहें। हमारे देशका आदर्श है सतीत्व। उसमें तड़क-भड़कके लिये जगह नहीं, गम्भीरता चाहिये। भारतीय संस्कृति नहीं चाहती, हमारी महिलायें तितलीकी भाँति सज-धजकर मारी मारी घूमें। हमारे यहाँका आदर्श तो कबीर साहबने बताया है कि :—

> पतिव्रता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
> पतिव्रताके रूप पै वारो कोटि सुरूप॥
> पतिव्रता मैली भली, गले कारचकी पोत।
> सब सखियनमें यों दिखे ज्यों तारा खद्योत॥

इसलिये स्त्रियोंको सीता-सावित्रीका आदर्श रखना चाहिये।" माननीय टंडनजीका महिलाओंके लिये यह उपदेश उनके महान् व्यक्तित्वके अनुरूप ही है। और आज भी आर्यमहिलाएँ तो सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि महाभागा सतियोंके चरण-चिह्नोंका अनुसरण करनेमें ही अपना परम गौरव, सुख एवं सम्मानका अनुभव करती हैं। अभी थोड़े दिन पहले हमीरपुर ग्राममें एक हरिजनकी पुत्रीके पतिके मृत्यु होनेपर सती होनेका समाचार काशीके 'सन्मार्ग'में प्रकाशित हुआ था। पाश्चात्य शिक्षा एवं दूषित वातावरणके प्रभावसे प्रभावित कुछ महिलाएँ भले ही इस आदर्शको न मानतीं हों किन्तु ऐसी महिलाओंकी संख्या नगण्य ही है। भारतकी कोटि-कोटि महिलाओंकी तु[illegible]में इनका कोई स्थान नहीं है। [illegible]न्तु टंडनजीको विदित ही है कि, उनकी कांग्रेस [illegible]रकार हिन्दूकोड-बिल पास करनेको कटिब[illegible]। प्रधानमन्त्री नेहरूजी उसको पास कर[illegible] अपने सरकारके अस्तित्वकी बाजी लग[illegible] है। महिलाओं तथा महिला-संस्थाओंकी ओरसे इस बिलका उग्र विरोध किया गया परन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई। सहस्रों महिलाओंने दिल्लीमें इस बिलपर विचार होते समय गत दिसम्बरके महीनेमें असेम्बली भवनके सामने अपना विरोध प्रदर्शन किया तो उनपर लाठी-प्रहार कराया गया। अब तो नासिक कांग्रेसमें नेहरूजीने स्पष्ट ही कह डाला कि "यदि गणतन्त्रका अर्थ जनताकी राय मानना है, तो मैं गणतन्त्रवादी नहीं हूँ।" ऐसी स्थितिमें नेहरूजीके सामने जनताकी पुकारका कोई मूल्य ही नहीं रहा। हिन्दूकोडबिल पास किया ही जायगा। उसके पास हो[illegible]नेपर क्या

सीता-सावित्रीका आदर्श स्त्रियोंमें तथा रामका आदर्श पुरुषोंमें बना रह सकेगा? इस कोडके द्वारा तो स्त्रियोंको पातिव्रतधर्म तथा सतीत्वसे भ्रष्ट कर उनको स्वेच्छाचारिणी स्वैरिणी तथा पुरुषोंको लम्पट व्यभिचारी बनानेका साधन सुलभ किया जा रहा है। अतः स्वतः प्रश्न होता है कि, हिन्दूकोडबिलको रोकनेके लिये श्रीटंडनजीने क्या किया? श्रीटंडनजीका उत्तर हो सकता है कि, "हमारे हाथमें शासन नहीं है किन्तु शासकोंकी सम्मति दे सकता हूँ।" जैसा उन्होंने उसी दिनके भाषणके अन्य प्रसंगमें कहा भी था। परन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि, इस समय कांग्रेसदलका शासन है और सौभाग्यसे टंडनजी कांग्रेसके अध्यक्ष पदपर आसीन हैं। कांग्रेसकी नीतिका सञ्चालन उन्हींके हाथमें है। कांग्रेस अपनी सरकारको आदेश देकर हिन्दूकोडबिलको वापस लेनेको बाध्य कर सकती है। कांग्रेस सरकारको कांग्रेसका आदेश मानना ही पड़ेगा। श्रीटंडनजी निर्भीक, न्यायशील निष्पक्ष नेता हैं। यदि कांग्रेस आपके नेतृत्वमें भी ऐसा नहीं कर सकी और नेहरूजीके पदत्यागकी धमकीसे डरती ही रही तो वह केवल सरकारके प्रचार एवं चुनाव लड़नेका साधनमात्र रह जायगी और इसप्रकार अन्तमें अपना अस्तित्व भी खो बैठेगी। अतः टंडनजीसे हमारी नम्र प्रार्थना है कि वे कांग्रेस कमिटी से प्रस्ताव स्वीकृत कराकर हिन्दूकोडबिल वापस लेनेके लिये अपनी सरकारको बाध्य करें और सरकारको इस भयंकर भूलसे बचावें।

ईश्वर सरकारको सुबुद्धि दें।

देशको अन्नके विषयमें आत्मनिर्भर बनानेके लिये केन्द्रीय सरकार अनेक उपाय कर रही है, उन्हींमें एक बन्दरों एवं नीलगायोंका बध भी बड़े जोरोंसे किया जा रहा है; क्योंकि सरकारकी बुद्धिमें ये प्राणी मनुष्योंका अन्न नष्ट करते हैं। परन्तु इसका फल कुछ उल्टा ही देखा जा रहा है। सरकारी विज्ञप्तिके अनुसार अतिवृष्टि और भूकम्पके कारण पञ्जाब आसामआदि प्रदेशोंमें सरकारद्वारा सुरक्षित चार लाख टन अन्न नष्टहो गया। इन निरीह पशुओंका बध करके अन्न नहीं बचाया जा सका। अब अनावृष्टिके कारण बिहारमें दुष्काल घोषित होनेकी सम्भावना दिखायी दे रही है, जिसे स्मरण करके रोमाञ्च हो आता है। सरकारके इन पापोंका फल दैवकोप निरपराध जनताको भोगना पड़ रहा है। क्योंकि वैदिक शास्त्रके अनुसार राजा ही कालका कारण माना गया है, जैसा कि:—

> कालो वा कारणं राज्ञः
> राजा वा कालकारणम्।
> इति ते संशयो मा भूत्,
> राजा कालस्य कारणम्॥

दुर्भाग्यवश सरकारकी प्रायः सभी चेष्टाएँ ऐसी हो रही हैं, जिससे जनताका दुःख दिन दिन बढ़ता ही जा रहा है। मंगलमय ईश्वर सरकारको सुबुद्धि दें।

मृच्छकटिक।

[ले० पं० गोविन्दशास्त्री दुगवेकर]

काव्यसाहित्यमें नाटकका स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। भरतमुनिने तो इसका एक स्वतन्त्र शास्त्र ही बना डाला है। इसीसे संस्कृत नाटक जैसे शास्त्रशुद्ध लिखे गये है, वैसी संसारकी किसी भाषामें देख नहीं पड़ते। भरतने अपने शास्त्रमें मनोविज्ञानका अच्छा विश्लेषण किया है और रूपकका वही प्राण है। संस्कृत नाटकोंमें 'मृच्छकटिक' सबसे प्राचीन है। यद्यपि यह बौद्धकालमें लिखा गया है, तथापि इसपर वर्णाश्रमधर्मकी अच्छी छाप पड़ी है। उसी नाटकका कथानक संक्षेपमें पाठकोंको भेट किया जाता है। उज्जैनमें जब पालक राजा राज्य करता था, उस समयकी घटना है और इसके लेखकका नाम है शूद्रक।

पालकके समयमें अवन्तिका (उज्जैन) वैभवके शिखरपर पहुँच गयी थी। नाटकका नायक है चारुदत्त और नायिका है बसन्तसेना। चारुदत्त एक बड़ा धनी-मानी ब्राह्मण है और बसन्तसेना है एक वेश्या। दोनोमें बड़ा प्रेम था। बसन्तसेना चारुदत्तपर अनुरक्त थी। बसन्तसेनाका रूपलावण्य अद्भुत था। उस जैसी सुन्दरी और साहित्य-संगीतमें कुशल उस समय मालवमण्डलमें कोई स्त्री नहीं थी। उसका यौवन, उसके सौन्दर्यको अधिक देदीप्यमान कर रहा था और उसकी कीर्ति सब ओर फैल रही थी।

राजाका शकार नामक एक मूर्ख, विषयी और लम्पट शालक था, जिसे रानीके अनुरोधसे राज्यमें एक उच्च पद मिल गया था। राजशालक होनेसे उससे सभी डरा करते थे। वह दन्त्य 'स'-कारका उच्चारण नहीं कर सकता था। 'स'के स्थानमें तालब्य 'श' का उच्चारण करता था। इसीसे उसका शकार नाम पड़ गया था। वास्तविक नाम क्या था, पता नहीं। उसकी कुदृष्टि बसन्तसेनापर पड़ी, तो उसे फँसानेका वह कुचक्र रचने लगा। बसन्तसेना उससे तिरस्कार करती थी और वह अपने पदका दुरुपयोग कर रहा था।

चारुदत्त बड़ा धार्मिक और दानी था। उसकी सब सम्पत्ति दानधर्ममें व्यय हो चुकी थी और वह दरिद्र बन गया था। परन्तु उसके प्रति बसन्तसेनाका अनुराग कम नहीं हुआ था और उसके बाल मित्र मैत्रेयने सम्पत्तिकी तरह विपत्तिमें भी उसका साथ नहीं छोड़ा था। एक दिन वैश्वदेव-बलिहरण कर जब वह काकबलि देने अपने द्वारपर आया, तो क्या देखता है कि, याचक लोग इसके घरके पहले के घरमें जाते और बादके घरमें जाते ; परन्तु इसका घर इस कारण छोड़ देते हैं कि, इसके पास अब धरा ही क्या है, जो दान करे। चारुदत्तकी आँखोंमे आँसू भर आये। मैत्रेय पूछता है,—"मित्र, आँखोंसे आँसू क्यो बहाते हो? बताओ, तुम्हें मरण पसन्द है, या दरिद्रता?" चारुदत्त उत्तर देता है,—"सुहृद्! दरिद्रतासे तो मरण ही कहीं अधिक अच्छा है। जब दान करनेकी शक्ति नहीं, तब जीकर ही क्या करूँगा?" वैश्वदेव-बलिकर्म करने और दानधर्ममें प्रबल आस्था रखनेसे चारुदत्तकी वर्णाश्रमधर्मसम्बन्धी श्रद्धा निखर पड़ती है।

बसन्तसेनाने चारुदत्तकी अकिंचनता देख, अपने अलंकारोंका एक जोड़ उसके पास धरोहरके रूपमें रख दिया। उसने यह सोचा कि, काम पड़ने पर ये अलङ्कार इसके काम आ जायँगे। चारुदत्तकी पत्नी धूता भी बड़ी उदार, पतिव्रता और पतिके मनोवृत्तानुसार चलनेवाली थी। चारुदत्त जब कोई अलङ्कार बनवाता, तब एक नहीं, धूता और बसन्तसेनाके लिये दो बनवाता और दोनों एकसे बनते। धूताके सब अलङ्कार बिक चुके थे; परन्तु वह जोड़ बच रहा था, जो बसन्तसेनाने धरोहरके रूपमें भेजा था।

बसन्तसेनाकी रदनिका नामक एक दासी थी। उसपर शर्विलक नामक एक डाकू आसक्त था। उसने जब रदनिकासे प्रेम प्रस्ताव किया, तब उसने कहा कि, मैं क्रीतदासी हूँ। जितने मूल्यमें मैं खरीदी गयी हूँ, उतनी रकम तुम चुकती कर दो, तो मैं मालकिनसे छुट्टी पा सकूँगी। शर्विलक राजी हो गया और रकम जुटानेके फेरमें पड़ गया। इधर चारुदत्त बसन्तसेनाकी धरोहर छातीसे लगाये रहता था और सोते समय मैत्रेयको सौंपकर तब सोता था। मैत्रेय भी बड़ी सावधानीसे उसे सम्हालता था। एक रात्रिमें अधिक समयतक गान बजाना होनेके कारण चारुदत्त और मैत्रेयको गाढ़ी नींद आ गयी। वे निश्चिन्त होकर सो गये।

शर्विलकने किसी धनीके घरमें सेंध मारनेका निश्चय किया। उसे रदनिकाके लिये रकम जुटानी थी। चारुदत्तकी हवेली सबसे बड़ी और मनोहर होनेके कारण उसीमें आधी रातके समयमें सेंध लगानेपर उद्यत हुआ। वह सोचने लगा कि, किस आकृतिकी सेंध लगायी जाय, जिससे इष्टसिद्धि शीघ्र हो? बहुत सोचकर घड़ेके आकारकी उसने सेंध लगायी। उसके मतानुसार घड़ेके आकारकी सेंध लगानेसे जो धनकी प्राप्ति होती है, उससे सुन्दरी स्त्रीका लाभ होता है। यही वह चाहता भी था। इससे प्रतीत होता है कि, उस समय चौर्यविद्याका भी एक शास्त्र बन गया था।

सेंध लगाकर जब वह कोठेपर गया, तो क्या देखता है कि, कमरेमें चारों ओर तानपूरे, मृदङ्ग, दिलरुबा, बीन आदि बाजे रक्खे हुए हैं और दो पुरुष बेखबर सोये हुए हैं। उसे बड़ी निराशा हुई कि इन गवैये-बजवैयोके यहाँ मुझे क्या मिलना है? वह निराश होकर लौटने ही वाला था कि, इतनेमें मैत्रेय स्वप्नमें बरबराने लगा,—"मित्र! मुझे बहुत नींद आ रही है। अतः अपनी इस धरोहरको सम्हालो, मैं सोता हूँ।" मैत्रेयने अलङ्कारोंका डिब्बा देनेको हाथ बढ़ाया, तो शर्विलकने आगे बढ़कर वह ले लिया और अपनी राह ली।

प्रातःकाल होते ही वह बसन्तसेनाकी हवेलीमें पहुँचा और उसे वह डिब्बा देकर रदनिकाकी माँग करने लगा। बसन्तसेना अपने अलङ्कारोंको देखकर अकचका गयी और समझ गयी कि, यह चारुदत्तके वहाँसे चुरा लाया है। डाकू है, इसका यही काम है। यह सोचकर कुछ बोली नहीं और यह जानकर कि, रदनिकासे इसका सच्चा प्रेम है और रदनिका भी इसे चाहती है, अपने व्ययसे बड़े ठाटसे दोनोंका विवाह कर दिया।

इधर मैत्रेय और चारुदत्त प्रातःकाल जागे, तो डिब्बा न पाकर बड़े घबड़ाये। मैत्रेय कहता है

कि, उसने डिब्बा मुझे दिया और मुझे तो मिला नहीं। थोड़ी देरमें सेंध लगनेका जब उसे समाचार मिला, तब वह जान गया कि, डिब्बा चोर ले गये। परन्तु अपनी चोरीका कलङ्क कैसे धोया जाय? बसन्तसेना यही समझेगी कि, दरिद्र होनेके कारण मैं उसके अलङ्कार बेचकर खा गया। उसको चिन्तित देखकर और चिन्ताका कारण जानकर पतिव्रता धूताने विनीतभावसे निवेदन किया,—नाथ! ऐसे चिन्तित क्यों हो रहे हैं? बसन्तसेनाके अलङ्कारोंके समान ही मेरा जोड़ मेरे पास है। वह बसन्तसेनाके पास यह कहकर भेज दें कि, इस समय पहरा चौकीका प्रबन्ध न होनेसे मेरा घर सुरक्षित नहीं है। शकारकी अयोग्यतासे नगरमें डाँके पड़ रहे हैं, अतः आपकी धरोहर लौटा रहा हूँ। इसे सम्हाल लीजिये। पत्नीके इस व्यवहारसे चारुदत्त लज्जित तो हुआ, परन्तु उसके आनन्दका भी ठिकाना नहीं रहा। धूताके कहे अनुसार चारुदत्तने उसके अलङ्कार बसन्तसेनाके पास भेज दिये। जब वे अलङ्कार बसन्तसेनाके हाथ आये, तब उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह पहचान गयी कि, ये अलङ्कार धूताके हैं, क्योंकि वैसेही उसके अलङ्कार उसके पास पहुँच चुके थे।

इस घटनाका रहस्य जाननेके लिये वह तुरन्त चारुदत्तके घर गयी। उस समय आँगनमें चारुदत्तका ५-६ वर्षका बालक खेल रहा था। वह सोनेकी गाड़ीके लिये हठ ठाने था और दाई मिट्टीकी गाड़ी दिखाकर उसे समझा रही थी। बालक अबतक सोनेकी गाड़ीसे खेलता था, मिट्टीकी गाड़ीसे क्यों माने? बसन्तसेना यह देखकर रो पड़ी। उसने बालकको छातीसे चिपका लिया और इसप्रकार समझा-बुझाकर कि, चलो मुन्ना! मैं दूँगी तुम्हें सोनेकी गाड़ी। वह उसे अपने साथ ले गयी। अन्दर जानेपर चोरीका भेद खुला, तब अन्तःपुरमें जाकर धूताके चरणोंमें गिर पड़ी और प्रेम-गद्गद कण्ठसे बोली,—देवी! तुम धन्य हो। तुमने आज आर्य-महिलाओंका मुख उज्ज्वल किया है। तुम्हारे जैसी गृहलक्ष्मियोंने ही आर्योंकी मर्यादाका गौरव बढ़ाया है। मेरे अलंकार मेरे पास पहुँच गये हैं। आप अपने अलङ्कार स्वीकार करें। इस दासीका यही निवेदन है कि, जब आपको धनकी आवश्यकता हो तब सेविकाके यहाँसे मँगा लिया करें। आखिर मेरे पास जो कुछ है, वह सब आपके यहाँसे ही तो आया है? उसकी सच्ची स्वामिनी आप ही हैं। संकोच किस बातका? इस दासोकी यह प्रार्थना आप अवश्य स्वीकार करें। अभी मुन्नाको मैं अपने साथ लिये जाती हूँ। थोड़ी देरमें लौट आवेगा। मेरा भी तो उसपर कुछ अधिकार है? "वह आपका ही है" कहकर धूता चुप हो गयी।

नाटकमें एक घटनासे बसन्तसेनाके आधारपर वैभवका कविने बड़ी कुशलतासे दिग्दर्शन कराया है। एक दिन बसन्तसेनाका हाथी छूटकर नगरमें उत्पात मचा रहा था और किसी प्रकार काबूमें नहीं आता था। अनेक महावतों और भालदारोंके उद्योगसे वह फिर बाँधा जा सका। इस प्रसङ्गसे कविने बसन्तसेनाके सातचौक वाले भव्य प्रासादका जो वर्णन किया है, उसके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि, वैसा प्रासाद विरले ही राजा-महाराजाके हो सकते हैं। जब नगरकी एक वेश्याके रत्नस्तम्भवाले सुन्दर भवन थे, तब वहाँके राजप्रासाद कैसे होंगे, इसकी कल्पना ही करते बनती है। बसन्तसेनाके द्वारपर

हाथी झूमा करते थे। उसका यह वैभव चारुदत्तके धनसे हुआ था। चारुदत्त दानशूर था, धार्मिक था। जब वह एक वेश्याको इतना धन दे सकता था, तब उसने योग्य पात्रोंको कितना दान दिया होगा और वह कितना धनसम्पन्न रहा होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

इधर शकारके जब सब प्रयत्न विफल हुए और बसन्तसेना वशीभूत नहीं हो सकी, तब उसने उसकी हत्या करनेका निश्चय किया। साथ ही उस हत्याका अपराध चारुदत्तपर लादकर उसे भी प्राणदण्ड देनेका षड्यन्त्र रचा। जिससे प्रेमी-प्रेमिका दोनों संसारसे उठ जायंगे। 'रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी'। बन्सी और बन्सीधर दोनों उसकी आँखमें खटक रहे थे।

बसन्तसेनाके लिये प्रतिदिन चारुदत्तकी गाड़ी आया करती और उसीमें चढ़कर वह सन्ध्यासमय चारुदत्तके घर जाया करती थी। एक दिन शकारने चारुदत्तकी गाड़ी मंगनी मँगवा ली। बसन्तसेनाके बधके लिये एक सोतेके पासका जङ्गल स्थिर किया और वहाँ अपने कुटिल संगी-साथियोंसहित पहलेसे जा डटा। अपने कोचवानको आज्ञा दी कि, उसी स्थानमें वह बसन्तसेनाको ले आवे। प्रतिदिनकी तरह आज भी बसन्तसेनाके यहाँ चारुदत्तकी गाड़ी पहुँची। विश्वास और नित्यके अभ्यासके अनुसार बसन्तसेना गाड़ीमें निःशङ्क होकर चढ़ी। उसे क्या पता कि, वह बधस्तम्भकी ओर ले जायी जा रही है और आज उसका बध होगा, कोचवानने उसे उसी स्थानमें पहुँचा दिया, जहाँ चाण्डाल चोकड़ी उसके बधके लिये प्रस्तुत होकर उत्कण्ठासे उसकी मार्ग प्रतीक्षा कर रही थी। उसके पहुँचते ही सब दुर्वृत्त प्रसन्नतासे उछल पड़े और बोले,—राजशालक! शिकार तो आ गया। अब बताइये कि, किस शस्त्रसे इसका बध किया जाय? शकारने उत्तर दिया,— मालतीके फूलके लिये शस्त्रका क्या प्रयोजन है? वह तो अंगुलियोंसे मींज दिया जा सकता है। मैं गला दबाकर उसका बध करूँगा। इसी बहानेसे उसके कोमल शरीरके स्पर्शका सुख मुझे प्राप्त हो जायगा।

गाड़ीका पर्दा हटाकर बसंतसेना उतरी, तो वहाँका दृश्य देखकर भौंचक्की हो गयी। सामने शकारको देखकर वह यह तो समझ गयी कि, यह इसीका कुचक्र है, मुझे धोखा दिया गया है; परन्तु यह नहीं जान सकी कि, मेरे बधका आयोजन किया गया है। वह अधिक सोचने भी नहीं पायी कि, शकारके साथियोंने उसे झपटकर भूमिपर गिरा दिया और वह चिल्ला न सके, इसलिये उसके मुँहमें चिथड़े ठूंस दिये। शकार स्वयं उसकी छातीपर चढ़ बैठा और उसका गला दबाने लगा। थोड़े ही समयमें बसन्तसेना बेसुध हो गयी। तब उसके मुँहसे चिथड़े निकाल कर शकार उससे पूछता है,—"तू मरी या नहीं? अब तुझे बचानेवाला वह ब्राह्मण चारुदत्त कहाँ है? जा, सीधी यमराजके घर चली जा। राजशालकका अपमान करनेका क्या फल होता है, यह अच्छी तरह समझ ले"। सबने देखा कि, वह निश्चेष्ट हो गयी है, तब उसे छोड़ दिया और उसपर पेड़ोंकी हरीपत्तियाँ ताप दीं; जिससे किसीको पता न लगे। यह दिव्य पुरुषार्थ कर चारुदत्तकी ही गाड़ीसे सब लोग वहाँसे चल दिये।

रातभर बसन्तसेना वहाँ वैसी ही बेसुध पड़ी रही। पौ फटनेपर नित्यके नियमानुसार पासकी

एक कुटियामें रहनेवाला एक बौद्ध संन्यासी वहाँ आया और सोतेमें स्नानकर उसने अपना उत्तरीय उसी पत्तियोंके ढेरपर सुखानेके लिये फैला दिया। प्रातःकालकी जीवनदायिनी बयार और हरी पत्तियों तथा गीले कपड़ेकी ठण्ढक पाकर बसन्तसेनाके शरीर-में प्राणोंका सञ्चार हुआ। संन्यासी अपने आह्निक-कर्ममें लगा था। इतनेमें क्या देखता है कि, पत्तियोंका ढेर तितर-बितर हो गया है और उसमेंसे एक सुन्दरी स्त्री प्रादुर्भूत हुई है। बसन्तसेना उठकर बैठ गयी थी और चारों ओर अकचकी-सी देख रही थी। उसकी बड़ी बड़ी आँखोंकी चमक और शरीरके लावण्यको देखकर पहले तो वह घब-ड़ाया और समझने लगा कि, यह कोई दैवीचम-त्कार है; परन्तु जब वह पास आया और उसे बसन्तसेनाने प्रणाम किया, तब वह समझ गया कि यह देवी नहीं, मानुषी ही है और घटना चक्रसे यहाँ आ गयी है। बातचीतमें सब भेद खुल गया। बसन्तसेनाने संन्यासीको अपनी सब राम कहानी कह सुनायी और प्रार्थना की कि,—"पिताजी, कृपाकर मुझे घर पहुँचा दें।" उसकी करुण कहानी सुन-कर दयालु संन्यासीको बहुत दुःख हुआ। उसने आश्वासन दिया कि, "बेटी! तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हें सावधानीसे सुरक्षितरूपसे घर पहुँचा दूँगा।"

इधर महलमें लौटकर शकारने घोषणा करा दी कि, दरिद्र होनेसे धन-लोभके कारण नगरकी सर्वो-त्तम वेश्या बसन्तसेनाको घातक चारुदत्तने जानसे मार डाला है। वेश्या लापता है। चारुदत्त पकड़ा गया। तुरन्त न्यायालयमें उसका विचार हुआ और आज्ञा हुई कि, प्रातःकाल ही उसे सूलीपर चढ़ा दिया जाय। तदनुसार उस समयकी प्रथाके अनु-सार चारुदत्तको लाल कपड़े पहनाये गये। उसके गलेमें लाल फूलोंकी मालाएँ पहनायी गयीं और लाल तिलक काढ़ा गया। उसका जलूस निकाला गया और उसके अपराधका डंका पीटा गया। चारुदत्त-ने न्यायकी बहुत दोहाई दी; परन्तु शकारके शासन-में सुनने वाला कौन था? चारुदत्त नगरके बाहर बध-स्थानमें लाया गया। अब उसे सूलीपर चढ़ाया ही जा रहा था कि, भीड़को चिरता हुआ एक युवती सुन्दरी स्त्रीको साथ लेकर एक भव्य संन्यासी वहाँ आ पहुँचा और बोला,—"महाराजा पालकके राजमें यह कैसा भयंकर अन्याय हो रहा है? अकारण यह घोर ब्रह्महत्या क्यों की जा रही है? छोड़ो, इस निरपराध ब्राह्मणको छोड़ो। प्रणयिनी यह बसन्त-सेना जीवित है। चारुदत्तकी दानशूरताके पुण्यसे ही इसकी प्राणरक्षा भगवान्‌ने की है। नमो बुद्धाय, वास्तवमें इसका हत्यारा तो वह राजशालक है, जो एक निरपराध ब्राह्मणका बध देखनेके लिये बड़ी प्रसन्नता-के साथ यहाँ आया है। ब्राह्मणके लिये निर्माण की हुई सूलीपर न्यायतः वही चढ़ाया जाना चाहिये"। बसन्तसेनाको देखते ही शकार काठ हो गया। उसके सब हौसले पस्त हुए, सब षड्यन्त्र विफल हुए, वह भीड़मेंसे ऐसा भागा कि, फिर उसने उस राज्यमें मुँह नहीं दिखाया। किसी कविने ठीक कहा है कि, "जाको राखे साइयाँ, मार न सकिहैं कोइ"। इसके अतिरिक्त श्रुतिका यह वचन भी मिथ्या नहीं हो सकता कि, "सत्यमेव जयते नानृतम्"। अनृत (मिथ्या) की नहीं, किन्तु सत्यकी ही विजय होती है। परन्तु सत्यके पक्षपातियोंको प्राणान्तिक कष्ट भी भोगने पड़ते हैं, यह चारुदत्त-बसन्तसेनाके उदाहरणसे सिद्ध हो गया है।

चारुदत्त श्रीमान् था, दानधर्मके कारण दरिद्र हो गया था। उसके बच्चे सोने-चाँदीके खिलौनोंसे खेलते थे, उन्हें मिट्टीके खिलौनोंसे खेलनेके लिये विवश किया जाता है। बच्चा मिट्टीकी गाड़ीसे खेलना नहीं चाहता और सोनेकी गाड़ीके लिये हठ करता है। इसीसे इस नाटकका नाम कविने "मृच्छकटिक" - 'मिट्टीकी गाड़ीवाला' नाटक रक्खा है, जो बहुत ही मार्मिक है। नाटकमें जहाँतहाँ बौद्ध समयमें भी लोग सनातनधर्मकी कैसी संघटित होकर आचारके साथ रक्षा कर रहे थे, इसकी झलक देख पड़ती है। भाषा ऐसी प्राञ्जल, सरल, हृदयग्राही और प्रसादपूर्ण है कि, वैसी किसी संस्कृत नाटकमें देख नहीं पड़ती। इस नाटकसे तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितिपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। संस्कृत काव्य-साहित्यकी यह अपूर्व सम्पत्ति हमारे लिये गौरवकी वस्तु है। संस्कृतके महाकवियोंने प्रायः ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक ही लिखे हैं; परन्तु जगत्की सब भाषाओंमें यही पहला सामाजिक नाटक है और यही इसकी विशेषता है।*

* मृच्छकटिक नाटककी नायिका एक वेश्या होनेसे महाकवि शूद्रककी सदभिरुचिके सम्बन्धमें कुछ लोग, सन्देह करने लगते हैं; परन्तु इसमें कविवरने कोई अपराध नहीं किया है। बसन्तसेना कोई बाजारू वेश्या नहीं, किन्तु एक आदर्श नर्तकी है और पुराणप्रसिद्ध गण्डकीकी तरह एक श्रेणीकी पतिव्रता ही कही जा सकती है। चारुदत्तके प्रति उसकी अनन्यताको देखकर चारुदत्तकी पत्नी धूता भी उसपर मुग्ध थी और उसका आदर करती थी। वह आदर्श रमणी न होती, तो सती धूता उसके साथ आत्मीयताका व्यवहार न करती। वह एक कलाकार और सच्ची प्रणयिनी थी। वेश्याओंमें जो स्वाभाविक दुर्गुण होते हैं, उनमें उसमें कोई दुर्गुण नहीं था। कविने कहीं सम्भोग-शृङ्गारका आश्रय नहीं लिया है, जो वेश्याके सम्बन्धमें अनिवार्य था। सम्भोग-शृङ्गारका वर्णन काव्यदोष माना गया है और उस दोषसे कवि बाल बाल बच गया है।

पालकका राजत्वकाल डेढ़-दो हजार वर्ष पूर्वके आसपास माना गया है। उस समय हमारा देश कैसा वैभवसम्पन्न था और बौद्धोंका प्रभाव प्रबलतर होनेपर भी वर्णाश्रमधर्मकी पालकके राजत्वकालमें कैसी सुरक्षा हो रही थी, यही दिखानेका कविका उद्देश्य है। उस समयके राजाओंके महलों और वैभवकी तो बात ही क्या वेश्याओंके जड़ाऊ कामके खम्भोंवाले महलोंका वर्णनको पढ़कर चकित हो जाना पड़ता है। तत्कालीन परिस्थितिका इसीसे पता चल जाता है कि, वेश्याओंके द्वारपर भी 'मदगलितकपोल' हाथी बँधे रहते थे। अतिदरिद्र होनेपर भी चारुदत्त पंचमहायज्ञ आदि नित्यकर्म निबाहता जाता था। वह अपने लिये दुःखी नहीं था। वह इसलिये दुःखी था कि, याचकोंको देनेके लिये उसके पास कुछ नहीं बच रहा था। बसन्तसेनाके साथ उसका सम्बन्ध विलासी कामुकों जैसा नहीं था। शिष्टाचार और लोकमर्यादापर उसने लंपटोंकी तरह तिलाञ्जलि नहीं दी थी। देशके समृद्ध और वैभवसम्पन्न होनेपर दानशूर धनी ब्राह्मण भी यदि उत्तम कलाकारोंका यथोचित आदर करें, तो इसमें नाक सिकोड़नेकी क्या बात है।

पतिव्रता कौन है ?

जो स्त्री पुत्रकी अपेक्षा सौगुने स्नेहसे पतिकी आराधना करती है, राजाके समान उसका भय मानती है और पतिको भगवान्‌का स्वरूप समझती है, वह पतिव्रता है। जो गृहकार्य करनेमें दासी, रमण-कालमें वेश्या तथा भोजनके समय माताके समान आचरण करती है और जो विपत्तिमें स्वामीको उचित सलाह देकर मन्त्रीका कार्य करती है, वही स्त्री पतिव्रता मानी गयी है। जो मन, वाणी, शरीर और कर्मद्वारा कभी भी पतिकी आज्ञाका, उल्लंघन नहीं करती तथा पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये। जिस जिस शय्यापर पति शयन करते हैं, वहाँ-वहाँ जो प्रतिदिन यत्नपूर्वक उनकी पूजा करती है, पतिके प्रति कभी जिसके मनमें डाह नहीं पैदा होती, कृपणता नहीं आती और जो मान भी नहीं करती, पतिकी ओरसे आदर मिले या अनादर—दोनोंमें जिसकी समान बुद्धि रहती है, ऐसी स्त्रीको पतिव्रता कहते हैं। जो साध्वी स्त्री सुन्दरवेषधारी परपुरुषको देखकर उसे भ्राता, पिता अथवा पुत्र मानती है वह भी पतिव्रता है।

पालकके राजत्वकालमें विशेषता यह है कि, उसका राज्य सर्वबाधाविनिर्मुक्त था। उसके राज्यमें कभी विद्रोह, अशान्ति या अकालके लक्षण नहीं दिखाई पड़े। सब माण्डलिक सामन्त आदि उसके आज्ञाधीन थे। और कभी किसीसे उसे लड़ाई-झगड़ा नहीं करना पड़ा। सब प्रजा परम आनन्दका अनुभव करती थी और राजाको देवताकी तरह मानती थी।

राजसभामें खलमण्डलकी कमी नहीं रहती। यही देखकर महाराजा भर्तृहरीने उनके हृदयमें चुभने वाले सात काँटोंमें खलको भी एक काँटा बताया है। वे काँटे इसप्रकार हैं :—

दिनमें मलिन चन्द्रमा, युवती—जिसका योवन बीता हो।
सुन्दर पुरुष निरक्षर, सरवर—पंकज कुलसे रीता हो॥
स्वामी अर्थपरायण, सज्जन—दुर्गतिमें दिन काटे हैं।
राजसभामें खलगण, हियमें चुभते सातों काँटे हैं॥

शकार खलमण्डलीका अधिनायक था। उसने चारुदत और बसन्तसेनाको बहुत सताया, परन्तु धर्मका अवलम्बन किये रहनेसे अन्तमें सत्यकी विजय हुई और चारुदत्तके प्राण बच गये।

संस्कृतमें ही नहीं, जगत्‌की भाषाओंमें यही पहला सामाजिक नाटक होनेपर भी इसको इतिहासका आधार है और इसमें तत्कालीन परिस्थितिपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यह जैसा मौलिक है, वैसा उपादेय भी है। हमारे भूतकालीन वैभवकी इसमें झलक मिलती है। इसके अनेक गुणोंको देखते हुए केवल बसन्तसेनाके सम्बन्धसे ही भावुकोंको चिहुँकना नहीं चाहिये।

श्रीभगवद्गीता

हिन्दी पद्यानुवाद

श्रीमोहन वैरागी

[गताङ्कसे आगे]

(१०)

भीष्म सुरक्षित सैन्य हमारी बल-विक्रममें अतुल अगण्य।
तथा भीमद्वारा संरक्षित पाण्डव-सेना निपट नगण्य॥

(११)

यथायोग्य अपने पदपर दृढ़ रहकर सतत सतर्क सचेष्ट।
रणमें भीष्म पितामहकी सब मिलकर रक्षा करें यथेष्ट॥

(१२)

दुर्योधनके हर्षहेतु तब किया भीष्मने शंखनिनाद।
उसके भीषण भैरव रवसे हुआ कौरवोंको आह्लाद॥

(१३)

शंखनाद जब हुआ भीष्मका सहसा बजे सभी रणवाद्य।
एक साथ भेरी-मृदङ्गका हुआ समरमें तुमुल निनाद॥

(१४)

बैठे श्वेत अश्वके रथपर तब गोविन्द धनञ्जयवीर।
अपने अनुपम शंख बजाकर करने लगे नाद गम्भीर॥

(१५)

पाञ्चजन्यसे हृषीकेशने किया समरमें भीषण घोष।
देवदत्तद्वारा अर्जुनने प्रकटित किया शत्रुपर रोष॥

(१६)

पौण्ड्रशंखसे रुद्रभीमने किया समरमें महानिनाद।
तथा युधिष्ठिर धर्मराजने किया अनन्तविजयसे नाद॥

(क्रमशः)

कर्ममीमांसादर्शन ।

[गताङ्कसे आगे]

अब अवतार सम्बन्धसे भारतखण्डकी महिमा कहते हैं :—

भगवान्‌के अवतारकी आविर्भाव भूमि है ॥ १३२ ॥

अवतारविज्ञानकी दृढ़ताके लिये अवतार महिमाके प्रसङ्गसे अवतारकी आविर्भाव-भूमिका महत्त्व कहा जाता है। कर्मके सम्बन्धसे ब्रह्माण्डमें जम्बुद्वीप श्रेष्ठ है। जम्बुद्वीमें नौ वर्ष हैं। उनमें भारतवर्ष (मृत्युलोक) श्रेष्ठ है और भारतवर्षमें भारत-खण्ड (हिन्दुस्थान) श्रेष्ठ है। यह शास्त्रोंसे सिद्ध है कि, आदि मानवसृष्टि इसी भारतखण्डके काश्मीरप्रान्त-की देविका नदीके तटपर हुई थी और भारतखण्डकी छहों ऋतुओंके वैभवसे परिपूर्ण है। यहाँकी भूमि चातुर्वर्ण्यसे युक्त है। अर्थात यहाँ ब्राह्मणभूमि, क्षत्रियभूमि, वैश्यभूमि और शूद्रभूमि चारों प्रकार-की भूमियाँ देखनेमें आती हैं और सृष्टिके सब प्राकृतिक वैभव यहाँ उपलब्ध हैं। दूसरी ओर सृष्टिके आदिमें और प्रत्येक सत्ययुगके प्रारम्भमें वेद यहाँके ऋषियोंके अन्तःकरणमें शब्दशः सुनाई देते हैं। वेदसम्मत सब शास्त्र यहीं प्रकट हुए और प्रकट होते हैं। अन्तर्जगत्‌की ज्ञान-प्राप्तिके लिये सातों दर्शन, चारों योगसाधन-प्रणालियाँ और धर्माधर्म-निर्णायक शास्त्रसमूह इसी पवित्र भूमिमें प्रकट होते हैं। यही कारण है कि, श्रीभगवान्‌के अवतारोंकी यही आविर्भाव-भूमि है। यह पुराणादि शास्त्रोंसे भी सिद्ध है ॥ १३२ ॥

अब आठवीं कला कहते हैं :—

पूर्ण होनेसे योग और भक्तिपूर्ण उपासना आठवीं है ॥ १३३ ॥

जगदीश्वरके निकट पहुँचनेके उपायोंको उपासना कहते हैं। उपासनाका शरीर है योग और प्राण है भक्ति। जितने प्रकारकी योग-साधन-प्रणालियाँ हैं और जितने प्रकारके भक्तिके भेद हैं, वे सब आर्य-धर्ममें पाये जाते हैं। दोनों प्रणालियाँ पूर्ण होनेके कारण अन्य धर्मावलम्बी भी उनसे लाभ उठा सकते हैं। वह सर्वाङ्गपूर्ण है ॥ १३३ ॥

इसकी उपयोगिता बताते हैं :—

सबकी अनुकरणीय है ॥ १३४ ॥

आर्योंकी उपासनाप्रणाली योग और भक्ति इन दोनों अङ्गोंसे पूर्ण होनेके कारण सबका हित करने-वाली और सर्वांगपूर्ण है। इसके अङ्ग और उपाङ्ग पृथ्वीके सब धर्मोंके सहायक हुए हैं। उन्होंने इसके अङ्गोंको अपने धर्मोंमें यथासम्भव सन्निविष्ट किया है ॥ १३४ ॥

अब नवीं कलाके विषयमें कहते हैं :—

शक्तिविश्वाससे पीठपूजा नववीं है ॥ १३५ ॥

आर्यजाति भगवच्छक्तिपर विश्वास करती है। इस कारण आर्यधर्मकी नववीं कला पीठपूजा है।

भगवदवताराविर्भावभूमिः ॥ १३२ ॥

योगभक्तिद्वयाङ्गोपासनाष्टमी पूर्णत्वात् ॥ १३३ ॥

अनुकृतेयम् सर्वैः ॥ १३४ ॥

नवमी पीठपूजा शक्तिविश्वासात् ॥ १३५ ॥

आर्यलोग पत्थर, मिट्टी आदिकी पूजा नहीं करते; किन्तु दैवीपीठमें सर्वव्यापक भगवान्की पूजा करते हैं। सर्वशक्तिमान् भगवान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टिलीलामें सर्वत्र विराजमान हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें उनके प्रतिनिधिरूपसे सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्मा, स्थितिकर्त्ता भगवान् विष्णु और संहारकर्त्ता भगवान् शिव अलग अलग विराजमान रहते हैं। इसीप्रकार उनके अंशरूपसे अपने अपने ब्रह्माण्डमें अपने अपने अलग काम करनेके लिये अनेक देव-देवियाँ विद्यमान रहती हैं, वे यथायोग्य स्थानमें, यदि पीठ बने, तो वहीं आविर्भूत हो जाती हैं। इन सब दैवीकार्योंकी निष्पत्तिके लिये ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघ अर्थात् अर्यमाआदि नित्यपितृगण जो एक प्रकारके देवता ही हैं,—कर्मके नियन्ता और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंका लेखा रखकर तदनुसार फल देनेवाले यमधर्मराज, जगत्‌में ज्योति फैलानेवाले भगवान् सूर्यदेव आदि सब देवपदधारी, जहाँ उनका पीठ बन जाय, वहाँ आविर्भूत हुआ करते हैं।

इस सृष्टिलीलामें दो शक्तियाँ निरन्तर कार्य करती रहती हैं,—एक आकर्षणशक्ति और दूसरी विकर्षण शक्ति। दोनों शक्तियोंका जहाँ समन्वय होता है, वहीं पीठ बन जाता है। उदाहरणरूपसे कहा जाता है कि, दो लड़कियाँ एक दूसरीका हाथ पकड़कर जब गोलघुमरी खेलती हैं, तब उनके चक्करमें एक केन्द्र बन जाता है और वे गिरती नहीं। परन्तु यदि उनका हाथ छूट जाय, तो वे इधर उधर जा गिरेंगी और उनके हाथ-पैर टूट जायँगे। इसी तरह आकर्षण-विकर्षण शक्तियोंका जहाँ समन्वय होता है, वहीं पीठ बन जाता है और पीठमें दैवी-शक्तिका आविर्भाव हो जाता है। ग्रह-नक्षत्रादि भी इन्हीं शक्तियोंके कारण अपनी अपनी कक्षाओंमें रहकर घूमा करते हैं। टेबलरेपिङ्ग और सर्किल जैसी क्रियाओंमें भी इसप्रकारका पीठ बन जाता है। इसको तो भौतिक परलोक विज्ञानवेत्ता भी स्वीकार करने लगे हैं। ऐसी क्रियाओंमें जब पीठ बन जाता है, तब जड़ पदार्थ भी चेतन पदार्थकी तरह कार्य करने लग जाते हैं। यह पीठ कहीं कहीं स्वाभाविक बना रहता है। जैसे—शालिग्रामशिला, बाणशिव-लिंग, अपराजिता पुष्प आदि। ऐसे पदार्थोंमें आप ही आप पीठ बना रहता है। जब चाहे, तब उनमें पूजा की जा सकती है। इनमें आवाहन-विसर्जनकी आवश्यकता नहीं होती। आर्यजाति भगवच्छक्तिपर विश्वास करती है। वह पीठमें श्रीभग-वान्की पूजा करती हैं। इसीसे आर्यधर्मकी नववीं कला पीठपूजा कही गयी है॥ १२५॥

अब हेतुसहित मूर्तिपूजाका समर्थन करते हैं:—

प्रतीकका आश्रय करती है॥ १२६॥

दैवीशक्तिके द्वारा पीठका आविर्भाव होता है। यही कारण है कि, आर्यजातिमें मूर्तिआदि पीठोंकी उपासना-प्रणाली प्रचलित है। श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने श्रीमुखसे स्पष्ट कहा है कि, अव्यक्त अर्थात् निराकारकी उपासना बड़ी कठिन है। साकार उपासनाके लिये आर्यशास्त्रोंमें अनेक प्रकार-के प्रतीकोंके अवलम्बनकी सहायता लेनेकी आज्ञा दी है। नानाप्रकारके पाषाण, धातु आदिसे

निर्मित मूर्त्ति, स्थण्डिल, चित्र, भित्तिरेखा, यंत्र, जलकुम्भ, अग्नि आदि प्रतीकके अवलम्बनसे मनकी धारणा बनानेमें बड़ी सहायता होती है। इसका विज्ञान वेद, पुराण और तन्त्रादि शास्त्रोंमें बहुत विस्तारसे पाया जाता है ॥ १३६ ॥

अब दशवीं कलाका वर्णन करते हैं :—

पञ्चकोश सम्पर्कसे शुद्धाशुद्धि स्पर्शास्पर्श विवेक दसवीं कला है ॥ १३७ ॥

शुद्धाशुद्धि-विवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक आर्यधर्मकी दसवीं कला है। आर्यजाति सर्वदा पञ्चकोषोंका विचार रखती है। आत्मा पञ्चकोषोंसे ढँका रहता है। उन पाँचों कोषोंकी शुद्धिके लिये दैवीराज्यसे सम्बन्ध स्थापनद्वारा शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शके विवेकका साधन आर्यजाति किया करती है। इसका विस्तृत विवेचन इसी अध्यायमें पहले आ चुका है ॥ १३७ ॥

अब इसका फल बताते हैं :—

दैवानुकम्पाशालिनी है ॥ १३८ ॥

तात्पर्य यह है कि, इस धर्मके पालनसे आर्यजाति दैवानुकम्पाशालिनी है। शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शका सदा विचार रहनेसे आर्यजातिको अधिभूतशुद्धि, अधिदैवशुद्धि और अध्यात्मशुद्धि इन तीनों शुद्धियोंका अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसा होनेसे दैवीशृंखलाके व्यवस्थापक देवताओंको अपनी शृंखलाके बाँधनेमें बड़ी सहायता मिलती है। इसकारण आर्यजाति दैवानुकम्पाशालिनी हो जाती है ॥ १३८ ॥

धर्मकी ग्यारहवीं कला बताते हैं :—

परस्पर सम्बन्धसे यज्ञ-महायज्ञ ग्यारहवीं है ॥ १३९ ॥

यज्ञ और महायज्ञपर विश्वास रखना आर्यधर्मकी ग्यारहवीं कला है। क्योंकि यज्ञके द्वारा देवता और मनुष्योंमें परस्पर सहायताका सम्बन्ध स्थापन हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है :—

"परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।"

अर्थात् एक दूसरेकी सहायता कर उत्तम कल्याणको प्राप्त करो। भगवान्‌की कृपा प्राप्त करके जिस धर्माङ्गके साधनद्वारा दैवीराज्यका संवर्द्धन किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं। यज्ञ और महायज्ञमें भेद यह है कि, जो यज्ञ सम्बन्धी धर्मकार्य किसी व्यक्तिके कल्याणके लिये किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं और जो यज्ञसम्बन्धी धर्मकार्य जाति और जगत्‌के कल्याणके लिये किया जाता है, उसको महायज्ञ कहते हैं ॥ १३९ ॥

इसका फल बताया जाता है :—

धर्मप्राण है ॥ १४० ॥

आध्यात्मिक उन्नतिशील आर्यजातिका जीवन यज्ञमय होनेसे वह धर्मप्राण है। आर्यजातिके शारीरिक, वाचनिक, मानसिक और बौद्धिक सब कार्य धर्ममूलक होते हैं और उनका जीवन यज्ञमय होता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि, आर्यजातिके प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करनेकी शास्त्राज्ञा है। ऐसी जातिका धर्मप्राण होना स्वाभाविक ही है ॥ १४० ॥

शुद्धयशुद्धिस्पृश्यास्पृश्यविवेको दशमी पञ्चकोषसम्पर्कात् ॥ १३७ ॥ दैवानुकम्पाशालिनी ॥ १३८ ॥

यज्ञमहायज्ञावेकादशी परस्परसम्बन्धात् ॥ १३९ ॥ धर्मं प्राणा ॥ १४० ॥

अब बारहवीं कला बताते हैं :—

नित्य होनेसे वेदशास्त्रपर विश्वास बारहवीं है ॥ १४१ ॥

वेद और शास्त्रोंपर विश्वास करना आर्यधर्मकी बारहवीं कला है। क्योंकि वेद और शास्त्र नित्य हैं और भगवत्प्रेरित हैं ॥ १४१ ॥

वेदशास्त्र नित्य कैसे हैं, बताते हैं :—

शब्दरूपसे वेद और भावरूपसे शास्त्र नित्य हैं ॥ १४२ ॥

वेद शब्दरूपसे नित्य है और अन्यान्य शास्त्र भावरूपसे नित्य है। वेदकी शब्दराशि ज्योंकीत्यों सुनाई देती है और अन्यान्य शास्त्र ऋषि-मुनियोंके अन्तःकरणमें भावरूपसे प्रकट होते हैं और वे फिर उन्हें अपने शब्दोंमें प्रकट करते हैं। वैदिक विज्ञानका यह सिद्धान्त है कि, वेदके शब्द बदलते नहीं हैं। वे नित्यरूपसे ब्रह्मलोकमें रहते हैं और इस मृत्युलोकमें मनुष्योंके कर्मानुसार समय समयपर उनका आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है।

जड़ विज्ञानसे अब यह तो सिद्ध हो ही गया है कि, शब्द सर्वव्यापक आकाशमें नित्य रहते हैं और जहाँ रेडियो-यन्त्र होता है, वहाँ उसके द्वारा प्रकट हो जाते हैं। इसीतरह-ब्रह्मलोकमें नित्य रूपसे रहनेवाले वेद चतुर्युग बीत जानेपर सत्ययुगके आरम्भमें संयमशील उन्नत अन्तःकरणके ऋषियोंके अन्तःकरणमें ज्योंकेत्यों प्रकाशित हो जाते हैं, उन्हें सुनाई देने लगते हैं। इसीसे वेदको श्रुति कहते हैं। शास्त्र, जिनको स्मृति कहते हैं, वे भी समय समयपर भावरूपसे प्रशान्त और योगयुक्त ऋषि-मुनियोंके अन्तःकरणमें प्रकाशित होते हैं और फिर वे (ऋषिमुनि) अपने शब्दोंमें उन्हें जगत्में प्रकट करते हैं। यही वेद और शास्त्रोंके नित्य होनेका रहस्य है ॥ १४२ ॥

अब धर्मकी तेरहवीं कला बताते हैं :—

बीजाङ्कुरके समान संस्कार-कर्म-श्रद्धा तेरहवीं है ॥ १४३ ॥

संस्कारों और कर्मोंपर श्रद्धा करना आर्यधर्मकी तेरहवीं कला है। कर्म और संस्कार ये दोनों बीज और अंकुरके समान हैं। संस्कार कर्मका बीज है और कर्म उसका अंकुर है। वेदके इस कर्ममीमांसादर्शनमें संस्कारके नाना भेद, संस्कारजन्य ऊर्द्ध्वगति और अधोगति, वैदिक संस्कारोंका रहस्य, कर्मका अलौकिक विज्ञान और उसके जैव, ऐश और सहज भेद, यह सब विस्तृतरूपसे अन्यत्र वर्णित है ॥ १४३ ॥

इसका फल बताते हैं :—

चतुर्वर्ग फलप्रदा है ॥ १४४ ॥

कर्म और संस्कारोंपर श्रद्धा होनेसे आर्यधर्मकी उक्त तेरहवीं कला आर्यजातिको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गको प्राप्त कराती है। काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष इन चारोंके अन्तर्गत समस्त अभ्युदय और निःश्रेयस आ जाता है। यदि संस्कार और कर्म दोनों यथाधिकार प्राप्त किये जायँ, तो

वेदशास्त्रविश्वासो द्वादशी नित्यत्वात् ॥ १४१ ॥

प्रथमः शब्दरूपत्वाद् भावरूपत्वाद् द्वितीयम् ॥ १४२ ॥

संस्कारकर्मश्रद्धा त्रयोदशी बीजाङ्कुरवत् ॥ १४३ ॥

चतुर्वर्गफलप्रदा ॥ १४४ ॥

जीवको सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यही इस सूत्रका तात्पर्य है ॥ १४४ ॥

अब चौदहवीं कला कहते हैं :—

अभ्युदय निमित्तक आवागमन-चक्र जन्मान्तरवाद-विश्वास चौदहवीं है ॥ १४५ ॥

जीवके निरन्तर अभ्युदयका कारण होनेसे आवागमनचक्र और जन्मान्तरवादपर विश्वास करना आर्यधर्मकी चौदहवीं कला है। जीव जबसे उत्पन्न होता है और जबसे वह सहजपिण्डके चतुर्विध भूतसंघसे आगे बढ़कर मानवपिण्डमें पहुँचता है, तबसे वह आवागमन-चक्रमें निरन्तर घूमता रहता है। आवागमन-चक्रका तात्पर्य यह है कि, जीव जन्मता है, मरता है, प्रेतलोक, नरकलोक, स्वर्गलोक आदिमें जाता है और फिर मृत्युलोकमें आ जाता है। फिर इसीप्रकार जाता है और फिर मृत्युलोकमें लौट आता है, इसीको आवागमन-चक्र कहते हैं। जन्मान्तरवादका अर्थ स्पष्ट ही है। इसी आवागमन-चक्र और जन्मान्तरके कारण जीव प्रथम अवस्थामें अभ्युदय और अन्तिम अवस्थामें निःश्रेयस प्राप्त कर लेता है। यही धर्मकी चौदहवीं कला है ॥ १४५ ॥

इस विज्ञानको पुष्ट करते हैं :—

विवाह दाय श्राद्ध तर्पणके चतुर्व्यूहसे सुरक्षित है ॥ १४६ ॥

जन्मान्तरवाद और आवागमन-चक्रकी सुरक्षाके लिये विवाह संस्कार, दायभाग व्यवस्था, श्राद्धकर्म और तर्पणकर्म, ये चार व्यूह बने हुए हैं। इन व्यूहोंसे आर्यजातिका जन्म-मृत्यु और आवागमन-चक्र सुरक्षित रहता है। आवागमन-चक्रमें भ्रमायमान जीवकी सहायताके लिये श्राद्धकर्म, तर्पणकर्म, और दायभाग-व्यवस्था दृढ़तापूर्वक अवलम्बनीय है। क्योंकि ये परलोकगामी जीवके सहायक हैं। सृष्टिकार्यमें विवाह-संस्कार सबसे महत्त्वका है। आर्यलोग इसकी पवित्रता सदा बनाये रहते हैं। इसी कारण रजस्वला होनेसे पहले कन्याके चित्तको विवाहसंस्कारसे सुरक्षित और पवित्र रखते हैं और वर-कन्याका सम्बन्ध उभयलोकव्यापी अर्थात् जन्मान्तरव्यापी किया जाता है। दायभाग अर्थात् सम्पत्तिका जो विभाजन किया जाता है, वह भी परलोकगत आत्माओंको जिनके द्वारा सहायता मिलती है, उन्हींको सम्पत्ति देनेकी शास्त्र आज्ञा देता है, औरोंको नहीं। इस कार्यकी सुसिद्धिके लिये दो विधियाँ शास्त्रोंने बतायी हैं, एक विस्तृत और दूसरी सुलभ। उनमें श्राद्धकर्म विस्तृत है और तर्पणकर्म सुलभ। इसप्रकारसे पूर्वकथित सिद्धान्त चतुर्व्यूह-द्वारा पुष्ट किया गया है ॥ १४६ ॥

अब धर्मकी पन्द्रहवीं कला कहते हैं :—

सर्वशक्तिमत्तासे सगुण-निर्गुण-उपासना पन्द्रहवीं है ॥ १४७ ॥

श्रीपरमात्माकी निर्गुण और सगुणरूपमें उपासनाकी व्यवस्था आर्यधर्मकी पन्द्रहवीं कला है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। उनके लिये असम्भव कुछ नहीं है। वे निर्गुण और निराकार होनेपर भी भक्तोंके कल्याणार्थ सगुण और साकाररूप भी धारण कर सकते हैं ॥ १४७ ॥

आवागमनचक्र-जन्मान्तरवाद-विश्वासश्चतुर्दश्यभ्युदयनिमित्तत्वात् ॥ १४५ ॥

विवाहदायश्राद्धतर्पणचतुर्व्यूहसुरक्षिता ॥ १४६ ॥ सगुणनिर्गुणोपासना पञ्चदशी सर्वशक्तिमत्त्वात् ॥ १४७ ॥

इसका कारण कहते हैं :—

अधिकारीभेदसे व्यवस्था ॥ १४८ ॥

आर्यधर्ममें उपासनाके लिये अधिकारीभेदकी व्यवस्था रक्खी गयी है। जैसा जिसका अधिकार हो वैसा ही उसके लिये उपासनाकी व्यवस्था की गयी है। इसीसे इस धर्ममें निम्नसे निम्न भूत-प्रेतादिकी उपासनासे लेकर सर्वोच्च निर्गुणब्रह्मोपासना तककी विधि है। सब श्रेणीके उपासक निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक भगवद्भावकी धारणा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसीसे आर्यधर्ममें सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारकी उपासनाओंकी व्यवस्था है। क्योंकि श्रीभगवान् सगुण हैं और निर्गुण भी हैं, साकार हैं और निराकार भी हैं ॥ १४८ ॥

अब आर्यधर्मकी सोलहवीं कला बताते हैं :—

पूर्ण होनेसे कैवल्याधिगम सोलहवीं है ॥ १४९ ॥

जीवकी क्रमोन्नतिका अन्तिम पद कैवल्यकी प्राप्ति है। अपने अपने ढंगपर और अपने अपने अधिकारके अनुसार सब वैदिक-दर्शनोंने मुक्तिका स्वरूप दिखाया है। जीवके अभ्युदयके अधिकार अनेक हो सकते हैं; परन्तु उसकी अन्तिम सीमा कैवल्य है। मुक्तिका अधिकार केवल आर्यधर्ममें ही निर्णीत किया गया और उसी पदपर पहुँचकर जीव कृतकृत्य हो जाता है। इसीसे इसका आर्यधर्मकी सोलहवीं कलाके रूपमें निर्देश किया है ॥ १४९ ॥

आर्यधर्मका महत्त्व बताते हैं :—

आर्यजाति जगद्गुरु है ॥ १५० ॥

आर्यधर्म इसप्रकार सोलह कलाओंसे पूर्ण होनेके कारण आर्यजाति जगद्गुरु है। आर्यजातिके जगद्गुरुत्वके सम्बन्धमें मनुभगवान् आज्ञा करते हैं :—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

अर्थात् इसी देशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे पृथ्वीके सब मनुष्योंको अपने अपने चरित्रकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। इसीतरह पृथ्वीकी सब सभ्य-जातियोंके विद्वान् पुरुषोंने एकमत होकर स्वीकार किया है कि, प्राचीन आर्यगण ही जगत्के गुरु थे। उपर्युक्त मनुभगवान्की आज्ञामें ब्राह्मणशब्द इसलिये आया है कि, तपः स्वाध्यायनिरत, त्यागशील और समस्त जगत्का मंगलसाधन करनेके लिये जीवनधारण करनेवाले ब्राह्मणोंके महत्त्वसे ही आर्यजातिका महत्त्व है ॥ १५० ॥

अब आर्यजातिके जीवनका महत्त्व बताकर अपने सिद्धान्तकी पुष्टि करते हैं :—

जीवन यज्ञमय है ॥ १५१ ॥

यज्ञ और महायज्ञका लक्षण और महत्त्व इस दर्शनमें कई जगह बताया गया है। आर्यजातिके अतिरिक्त पृथ्वीकी किसी जातिमें इसप्रकारका यज्ञमय जीवन देखनेमें नहीं आता ॥ १५१ ॥

अधिकारिभेदाद् व्यवस्था ॥ १४८ ॥
कैवल्याधिगमः षोडशी पूर्णत्वात् ॥ १४९ ॥
जगद्गुरुत्वमार्यजातेः ॥ १५० ॥
यज्ञमयजीवनञ्च ॥ १५१ ॥

यज्ञकी विशेष महिमा कह रहे हैं :—

यज्ञके साथ प्रजाकी सृष्टि होती है ॥ १५२ ॥

जब धर्म और यज्ञ पर्यायवाचक शब्द हैं, तब यज्ञके साथ प्रजाकी सृष्टि होती है, यह स्वतः सिद्ध है। जब धर्मके द्वारा जगत्‌की सुरक्षा होती है, धर्म ही स्थितिका मूल है और धर्मके द्वारा ही सब जीवगण क्रमशः निःश्रेयसकी ओर अग्रसर होते हैं, तो धर्म-रूपी यज्ञके साथ प्रजाकी सृष्टि भी होती है। यदि ऐसा न हो, तो प्रजाकी रक्षा और क्रमोन्नति हो ही नहीं सकती। जो प्रजाकी स्थितिका मूल है, जिसके द्वारा सृष्टिकी रक्षा होती है और जिसके द्वारा प्रजा अभ्युदय और निःश्रेयसको प्राप्त करती है वह प्राकृतिक नियम तथा भगवत्‌शक्तिरूपी धर्म सृष्टिके साथ उत्पन्न होता है, यह मानना ही पड़ेगा। इस विषयमें स्मृतिशास्त्रमें कहा है :—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजापतिने यज्ञके साथ प्रजाओं-को उत्पन्न करके कहा कि, इस यज्ञके द्वारा तुमलोग क्रमशः आत्मोन्नतिलाभ करो, यह तुमलोगोंको अभीष्ट भोगप्रद हो ॥ १५२ ॥

और भी कह रहे हैं :—

प्रजा और देवतामें परस्पर सम्बर्द्धन होता है ॥ १५३ ॥

इस विषयमें गीतोपनिषद्‌में कहा है :—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥

इस यज्ञके द्वारा तुम लोग देवताओंका सम्वर्द्धन करो और वे देवतागण भी तुम्हें सम्बर्द्धित करें। इसप्रकारसे परस्पर सम्वर्द्धित होकर परम कल्याण प्राप्त करोगे। देवतागण यज्ञद्वारा सम्बर्द्धित होकर तुम लोगोंको अभीष्ट भोग-प्रदान करेंगे, इस कारण उन लोगोंका दिया हुआ द्रव्य उन्हें न देकर जो भोग करते हैं, वे चोर हैं।

यज्ञका और भी महत्त्व यह है कि, जब धर्मरूपी यज्ञ सृष्टिको धारण करता है, उसके क्रमाभ्युदय का कारण है और वह सृष्टिसंरक्षण तथा अभ्युदय-कार्य देवताओंके द्वारा हुआ करता है, क्योंकि कर्म जड़ है, बिना चेतन चालकके कर्मसे फलोत्पत्ति नहीं हो सकती है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि, यज्ञ और देवताओंका परस्पर सम्बन्ध है। दूसरी ओर धर्मोत्पन्न कर्मकी यथावत् सुव्य-वस्था तथा उससे यथायोग्य फल-प्रदान देवताओंका कार्य है और यज्ञके द्वारा उनके कार्यमें पूर्ण सहा-यता मिलती है, क्योंकि यज्ञरूपी धर्म विश्वधारक है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि, देवतागण यज्ञसे सम्बर्द्धित होते हैं। बिना यज्ञके सृष्टिकी रक्षा जैसे नहीं हो सकती, बिना यज्ञके जीवगण अभ्युदय और निःश्रेयसको नहीं प्राप्त कर सकते, वैसे ही बिना यज्ञके देवतागण अपने जीवनका कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकते हैं। जब जीवन और जीविकाका सम्बन्ध यज्ञके साथ एवं यज्ञका सम्बन्ध देवताओंके साथ है,

---

सहयज्ञा प्रजासृष्टिः ॥ १५२ ॥
प्रजादेवयोरन्योऽन्यं सम्बर्द्धनम् ॥ १५३ ॥

तो यह भी सिद्ध हुआ कि, यज्ञके द्वारा देवतागण सम्बर्द्धित होकर पुष्ट और तुष्ट होते हैं, तो उनके बदलेमें वे अवश्य ही प्रजाको पुष्ट और तुष्ट करते रहते हैं। क्योंकि यह उनका स्वाभाविक कर्त्तव्य है ॥१५३॥

विज्ञानकी पुष्टि कर रहे हैं :—

साम्राज्यके समान समझना चाहिये ॥१५४॥

पूज्यपाद महर्षि सूत्रकार इस विज्ञानकी पुष्टिके लिये उदाहरण दे रहे हैं कि, जिसप्रकार किसी साम्राज्यमें साम्राज्य तथा प्रजाका सम्बन्ध रहता है, उसी प्रकार मनुष्य तथा देवताओंका सम्बन्ध है। जिसप्रकार राजाके द्वारा प्रजा सुरक्षित होती है, उसी प्रकार देवताओंके द्वारा मनुष्यादिकी सृष्टि सुरक्षित होती है। दूसरी ओर जिस प्रकार प्रजा ही राजाको धनबल, जनबलआदिद्वारा पुष्ट और योग्य बनाती है, उसी प्रकार मनुष्यगण धर्मसाधनद्वारा दैवराज्यको पुष्ट, तुष्ट और समृद्धिशाली करते हैं। बिना प्रजाकी योग्यताके राजाका कल्याण नहीं और बिना राजाके प्रजाका कल्याण नहीं हो सकता। ठीक उसी प्रकार बिना मनुष्यसमाजके धार्मिक हुए दैवराज्य पुष्ट नहीं हो सकता और बिना दैवराज्यकी पुष्टि और तुष्टिके मृत्युलोकका अभ्युदय असम्भव है। प्रजा यदि निरंकुश, राजाकी विरोधी और असन्तुष्ट हो, तो राजाका किसी प्रकारसे कल्याण नहीं हो सकता, उसीप्रकार राजा यदि स्वार्थपर, प्रजा-हित-विमुख, असंयमी, प्रजावात्सल्यहीन हो, तो ऐसे राजाकी प्रजा कदापि अभ्युदयको प्राप्त नहीं हो सकती है। ठीक उसीप्रकार मनुष्यलोकमें यदि धर्मानुष्ठान नष्ट हो जाय, तो देवलोक निर्बल और कर्त्तव्यशिथिल हो जाता है और उस समय आसुरी बल बढ़ जाता है। दूसरी ओर यदि देवतागण दुर्बल होकर कर्त्तव्य-विमुख हो जायँ तो, मृत्युलोकमें सब प्रकारका ताप और अशान्ति बढ़कर प्रजा क्लेशित हो जाती है। इस उदाहरणसे पूर्वकथित उदाहरणकी पूर्णतया पुष्टि होती है ॥ १५४ ॥

अब कर्मके फलानुसन्धानकारी भेद कहे जाते हैं :—

शुभ और अशुभरूपसे कर्म द्विविध है ॥ १५५ ॥

जहाँ क्रिया है, वहाँ प्रतिक्रिया अवश्य होगी। हाथ उठाना-रूप क्रिया जब हुई, तो हाथ गिराना रूप प्रतिक्रिया अवश्य होगी। वही प्रतिक्रिया ही कर्मसे फलोत्पन्न करती है। एक मनुष्य यदि किसी दूसरे मनुष्यका हनन करे, तो उसके कर्मकी परिपाक-अवस्थामें जन्मान्तरमें जो प्रतिक्रिया होगी, उससे उस मारनेवाले व्यक्तिका दूसरे जन्मका शरीर उस मृत व्यक्तिके दूसरे जन्मके शरीर द्वारा मारा जायगा। अथवा यदि कर्मका रूपान्तर हुआ, तो मारनेवाला व्यक्ति अल्पायु होगा। इसी उदाहरणके अनुसार समझना उचित है कि, प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया-अवस्थामें फलकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसी कारण स्मृतिशास्त्रने कहा है :—

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"।
किये कर्मका शुभाशुभ फल अवश्य मिलता है।

क्रमशः

साम्राज्यवत् ॥ १५४ ॥

द्विविधं कर्म शुभमशुभं च ॥ १५५ ॥

सीता

[ले० महेश्वरप्रसाद]

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

सीता और सती एक ही बात है। चाहे सीता कहिये, चाहे सती कहिये। सीतामें सती और सतीमें सीता स्पष्टतः परिलक्षित हो रही है। सीता और सतीका परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। सीतामें सतीकी झाँकी पायी जाती है और सतीमें सीताकी। सीता सतीकी स्थूल मूर्ति है। सीता नाम ही ऐसा है जो सती नाममें जाकर घुल-मिल जाता है। पता नहीं लगता कि सीता कि सती। सीता और सतीका मिलता-जुलता नाम यदा-कदा भ्रममें डाल देता है। पहचानना कठिन है कि, सीता है कि सती है। मानो सीता नाम लेते ही सतीत्वकी अभिव्यक्ति हो जाती है। सीता नाममें ही सतीत्वके समस्त गुण केन्द्रीभूत कर दिये गये हैं। अपनी विशेषताओंके कारण सीता नाम विशेषण बन गया है। लोकमें प्रचलित है कि, अमुक सीता है। इसप्रकार नारीत्व, स्त्रीत्व, पातिव्रत्य, पत्नीत्व और सतीत्वका सारा सार खींचकर सीता नाममें ही रख दिया गया है। सीताका नाम लेते ही सीताका चित्र आँखोंके सामने उपस्थित हो जाता है। यही तो है सीताका नाम।

सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।

प्रारम्भसे ही सीताका विलक्षण चरित्र समुपस्थित हो जाता है। प्रथम तो यही विलक्षण बात है कि, सीता 'जनकाभोत्पतिर्वसुधातलात्'। हाँ, उसका लालन-पालन होता है 'अनासक्त गेही' योगी राजाके गृहमें। सीताको पाकर जनक जनक हो जाते हैं और सुनयना जननी हो जाती है। सीताके बचपनका लाड़-प्यार बहुमूल्य है। थोड़ेमें इतना ही कहा जा सकता है कि, पृथ्वीकी पुत्री पृथ्वीपर पैर नहीं रखती, पृथ्वीपर पैर रखनेका उसे अवसर नहीं मिलता। लेकिन एकदिन अचानक सुनयना आज्ञा देती हैं शंकरजीके पिनाकका स्थान साफ कर देने की। सीता उस कठोर पिनाकको स्वभावतः उठा लेती हैं और पूजा-स्थानको परम दिव्य बना डालती हैं। माता-पिता इस अलौकिक कृत्यको देखकर दंग रह जाते हैं। अन्तमें धनुष-यज्ञ होता है। सीताका स्वयम्बर और रामसे व्याह। सीता जनकपुरसे अयोध्या आती है। अयोध्यामें ससुर दशरथ और पति राम। इसके अतिरिक्त तीन देवर, तीन बहनें और तीन सासें। एक बृहत् परिवार सामने आ जाता है। तिसपर 'फूलत-फलत' विधाता भी वाम हो जाता है—रामका वनवास। राम समझाते हैं, वनका दुःख। सीता नत होकर नूपुरोंके सहारे मौन-व्यथा व्यक्त करती है। पुनः रामसे खुले शब्दोंमें अनुरोध करती है।

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि चिन्वन्ती कुशकण्टकान्॥

इतना ही क्यों? सीता कहती हैं कि, वे कुश-कण्टक भी रामके सहवाससे उसे 'तूलाजिनसमस्पर्शी' लगेंगे और वायु-प्रेरित धूलिके कण 'प्रसन्नमिव

चन्दनम्' प्रतीत होंगे। लेकिन ज्योंही 'पलंग-पीठ तजि गोद हिंडोरामें' झूलनेवाली सीता अयोध्यासे बाहर होती हैं कि, 'पुट सुखि गये मधुराधर वै'। सहसा इस दृश्यको देखकर रामकी आँखें बरस पड़ती हैं और सीता बढ़ती हैं आगे बनके कठोर-पथमें। मार्गमें स्त्रियाँ पूछतीं हैं 'साँवरो सो सखि रावरो को है?' सीता कहती है—'गोरे देवर श्याम उन्हींके ज्येष्ठ हैं।' पुनः बड़े कायदेके साथ—'तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाय कछू मुसुकाय चली!' और 'खंजन मंजु तिरीछे नैननि; निज पति कहेहु तिन्हहिं सिय सैननि।' ऐसी सीताके लिये मरते दमतक दशरथको कसक रह जाती है—'फिरइत होइ प्रान अवलम्बा।' यदि सीता लौट आती तो शायद दशरथ मरते नहीं। उधर विदेह जनक तो चित्रकूट-में जाकर सीताको छोड़ते नहीं—

लीन्हि लाइ उर जनक जानकी।
पाहुनि पावन प्रेम प्रानकी॥
पुत्रि! पवित्र किए कुल दोऊ।
सुजस धवल जग कह सब कोऊ॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे।
तें किए साधु समाज घनेरे॥

सीता प्रेमकी और प्राणकी पाहुनी हैं। उसकी कीर्ति अक्षुण्ण है, उज्ज्वल है। गङ्गाकी तरह उसकी कीर्ति पवित्र यश फैला हुआ है। विशेषता तो यह है कि, गङ्गाका सुयश हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गा-सागरतक ही सीमित है और सीतका पावन यश जगत्‌के अनेक भागोंमें अनेक संत पुरुषोंद्वारा नित्य-ही गाया जा रहा है। सीता दोनों कुलोंके लिये धर्म-ज्योति हैं। उसने मैके और ससुराल दोनों कुलोंको अपने धवल सुयशसे पवित्र कर दिया है। अस्तु, असह्य शोकसे मुक्ति पानेकी चाहसे सीता रामके साथ वन आती हैं। चित्रकूटकी एकान्त वनस्थलीमें सीता थके हुए रामके श्यामल शरीरके 'अमल-विन्दु-मय' मोतियोंको अपने आँचलसे बटोरती हैं। लेकिन यह सुख कै दिन मिलता है! रावण शीघ्र ही सीता-को चुरा ले जाता है। रामके विरहसे 'अशोकमें सशोका, सीताकी कारुणिक दशा तो तनिक देखिये:—

चेष्टमानामथाविष्टां पन्नगेन्द्रवधूमिव।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना॥
पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव॥

इसप्रकार शुक्लपक्षकी प्रथम तिथिकी चन्द्ररेखाकी भाँति सीता दुर्बल और क्षीण हो रही हैं। वह उपवास कर रही हैं। अश्रु-प्रवाह कर रही हैं और दीर्घनिःश्वास ले रही हैं। पृथ्वीपर सोती हैं और रावण-वधके लिये नाना प्रकारकी तपस्या करती हैं। जैसे मृणालिनी पङ्कमें लिप्त हो जाती है वैसे सीता विरहमें मलिन होती जा रही हैं। संकल्प-हय-संयुक्त मनोरथ-के रथपर चढ़ वह निरन्तर रामके समीप पहुँच रही हैं। क्यों न? रामका ध्यान ही तो 'कपाट' है। तिसपर वह हनुमानसे पूछती हैं—'कबहुँ कपि! राघव आवहिंगे?' इधर रावण 'एकबार बिलोकु मम ओरा' का हठ पकड़े बैठा है। मगर क्या मजाल कि सीता उसकी ओर फूटी नजरोंसे भी झाँक लें। रावणके बहुत अनुनय-विनय करनेपर 'तृन धरि ओट कहति बैदेही'—

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा॥

उपधाया भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम्।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥

राक्षसियाँ सीताको नानाप्रकारकी धमकियाँ देती हैं। सीता तनिक भी डरती नहीं। अपने सिद्धान्तपर अटल रहती हैं। सच है—'ना मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति'। अशोक भी सीताके लिये अंगार बरसा रहे हैं। येनकेनप्रकारेण सीता 'मास दिवस'की अवधि तै करती हैं कि, राम लंका आते हैं और उसका उद्धार हो जाता है। राम सीताका उद्धार करते हैं मगर अपनाते नहीं। ऊपरसे वह कठोर वचन बोलते हैं। सीता शिवकी भाँति उस काल-कूटको पी लेती हैं। पुनः रामसे कहती हैं—'यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो।' अतएव—'मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्त्तते'। लेकिन परिणाम कुछ भी नहीं निकलता। सीता तब विकल होकर लक्ष्मणसे चिता तैयार करनेको कहती हैं। लक्ष्मण चिता तैयार करते हैं और चिता स्वयं धधक उठती है। अग्निकी प्रदक्षिणा करके सीता उस धधकती हुई चितामें कूद पड़ती हैं। सभी साश्चर्य 'हुताशन मध्य सबासन सीता'को देखते हैं। फिर देखते हैं कि, जिसप्रकार जनकने जनकपुरमें रामको सीता दी थी, उसीप्रकार अग्निदेव लंकामें पुनः निष्कलंक सीताको रामको सौंप रहे हैं। यह 'दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि'। सीता अयोध्या आती हैं। अयोध्यामें 'यद्यपि गृहसेवक-सेवकिनी' हैं लेकिन सीता स्वयं—

निजकर गृह परिचरजा करई।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥
जेहि बिधि कृपासिन्धु सुखमानइ।
सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासुगृह माहीं।
सेवइ सबन्हि मानमद नाहीं ॥

परिणाम यह निकलता है कि, सीता निर्वासित की जाती हैं महज धोबीके कथनपर। निर्वासनका सम्वाद लक्ष्मण जंगलमें उसे सुनाते हैं। सीता इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न सद्वृत्त रामका आदेश सुनकर श्रीहीन हो जाती हैं, पृथ्वीपर गिर पड़ती हैं। लेकिन रामके लिये कुछ अपशब्द नहीं कहतीं। यही कहती हैं, हे वत्स! तुम चिरजीवी महाराजसे कहना कि, आपके सम्मुख मैं अपने विशुद्ध अग्निकी परीक्षा दे चुकी थी; फिर भी लोकापवादके भयसे आपने जो मुझे त्यागा है, क्या यह कार्य आपके प्रख्यात वंशके गौरवके अनुकूल हुआ है? फिर भी सूर्यसे यही अनुरोध है कि, जन्मान्तरमें मुझे आप भर्त्तारूपमें प्राप्त हों। लव-कुशके जन्मोपरान्त सीता अपनेको भागीरथीमें छिपा देना चाहती हैं। मगर वह सौभाग्य कहाँ? अन्तमें राम नैमिषारण्यमें शम्बूक-वधके पश्चात् आते हैं। सीताके 'दो पग आगे ही वह धन' है लेकिन कोई राहत नहीं। वेदवती सीतासे रामको निर्दयी कहती है। सीता कहती हैं कि उन्होंने उसे शरीरसे त्यागा है, हृदयसे नहीं। इसकी अपील स्वयं बाल्मीकि रामसे करते हैं:—

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि जानकी ॥

लेकिन नहीं, राम क्या यह सबकुछ नहीं जानते थे। रामने लंकासे सीताका उद्धार कर दिया था। अयोध्यामें रानी बनाया था सीताको। अश्वमेधमें स्वर्णप्रतिकृति सीताकी ही प्रतिष्ठित हुई। शम्बूक वधके समय पञ्चवटीमें राम सीताकी स्मृतिमें रोने ही के लिये गये। फिर भी [illegible], [illegible],

लोक-व्यवस्था आदिका जटिल प्रश्न, जिसे सीता स्वयं जानती हीं या। दूसरे पिताकी आयुका भोग। अतः ऐसे समयमें सीताने 'माधवी देवीसे' भरी सभामें अपना मार्ग ही माँगना उचित समझा। बस क्या था। पृथ्वीसे एक दिव्य सिंहासन निकलता है और सीता उसपर चढ़कर पृथ्वीमें प्रवेश कर जाती है :—

जयति श्री जानकी भानुकुल भानुकी,
प्राणप्रिय वल्लभा तरणि रूपे।
राम आनन्द चैतन्य हरन निग्रहा
शक्ति आह्लादिनी साररूपे॥
जयति चितचरणचिन्तनि जेहि ध्वस्त
दृष्टि काम भय क्रोधमद मोह माया।
रुद्रविधि विष्णु सुर सिद्ध वंदितपदे
जयति सर्वेश्वरी राम जाया॥

माताकी महिमा

जगद्गुरु भगवान् व्यासने बृहद्धर्म पुराणमें माताकी अद्भुद महिमा गायी है, वही यहाँ उद्धृत किया जाता है, जिससे हिन्दुधर्ममें माताका कितना महत्तम स्थान है इसका दर्शन होता है। भगवान् व्यासजी जाबालीसे कहते हैं—धर्मज्ञपुत्र माता और पिता दोनोंको एक साथ देखनेपर प्रथम माताको प्रणाम करे, पश्चात् पितारूप गुरुको प्रणाम करे। माता, धरित्री जननी, दयार्द्रहृदया, शिवा, त्रिभुवनश्रेष्ठा, देवी, निर्दोषी, सर्वदुःखहा, परमाराधनीया, दया, शान्ति, क्षमा, धृति, स्वाहा, स्वधा, गौरी, पद्मा, विजया, जया एवं दुःखहन्त्री, माताके ही ये इक्कीश नाम हैं। जो मनुष्य इन नामोंको सुनता-सुनाता है, वह सब दुःखोंसे विमुक्त हो जाता है। महान्से महान् दुःखोंसे पीड़ित होनेपर भी भगवती माताकी दर्शनकर मनुष्यको जो आनन्द मिलता है, उसको क्या वचनद्वारा व्यक्त किया जा सकता है? किसी परमधर्मज्ञ व्याधने केवल माता-पिताकी सेवा करके तपस्वियोंके लिये भी दुर्लभ सर्वज्ञताको प्राप्तकर ली थी। अतः अतिप्रयत्नसे माता-पिताकी भक्ति करनी चाहिये। यह बात मेरे पिता शक्तिपुत्र पराशरजीने मुझसे कही थी। बृहद्धर्मपुराण, पूर्व खण्ड दूसरा अध्याय।

मातरं पितरञ्चोभौ दृष्ट्वा पुत्रस्तु धर्मवित्।
प्रणम्य मातरं पश्चात् प्रणमेत् पितरं गुरुम्॥
माता धरित्री जननी दयार्द्रहृदया शिवा।
देवी त्रिभुवनश्रेष्ठा निर्दोषा सर्वदुःखहा॥
आराधनीया परमा दया शान्तिः क्षमा धृतिः।
स्वाहा स्वधा च गौरी च पद्मा च विजया जया॥
दुःखहन्त्रीति नामानि मातुरेवैकविंशतिम्।
शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यः सर्वदुःखाद् विमुच्यते॥
दुःखैर्महद्भिदूनोपि दृष्ट्वा मातरमीश्वरीम्।
यमानन्दं लभेत् मर्त्य सकिं वाचोपपद्यते॥
सेविता पितरौ कश्चिद् व्याधः परमधर्मवित्।
लेभे सर्वज्ञतां या तु साध्यते न तपस्विभिः॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन भक्तिः कार्या तु मातरि।
पितर्यपीति चोक्तं वै पित्रा शक्तिसुतेन मे॥

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें बिलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
„ „ तीसरा पृष्ठ	२५)	„
„ „ चौथा पृष्ठ	३०)	„
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	„
„ १/२ पृष्ठ	१२)	„
„ १/४ पृष्ठ	८)	„

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

हा सरदार !

थे सचमुच सरदार सबके रहे सदा तुम आगे ।
इस कुसमयमें तुमको खोकर हम सब हुये अभागे ॥
रहे अडिग तुम अपने व्रत पर 'लौह पुरुष' कहलाये ।
जब जब तुम आये विरोधमें शत्रु हमारे भागे ॥
तुम तो हुये अमर मरकर भी हम जीवित भी हैं निर्जीव ।
कर अनुगमन चरण-चिन्होंका हम सब हों अब सबल सजीव ॥

विषय-सूची

अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

पौष सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ६, | दिसम्बर १९५०

चरन-कमल बन्दौं हरि राई ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लांघै अन्धेको सब कुछ दरसाई ॥

बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई ।

'सूरदास' स्वामी करुणामय बार बार बन्दौं तेहि पाई ॥

आत्मनिवेदन।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादसे—

श्रीनगरमें ता० १०-११-५० को वहाँके म्युनिसिपल कारपोरेशनके अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें भाषण करते हुए राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसादने Secular Democracy की व्याख्या की। आपने कहा कि, "सेकुलर डिमोक्रेसीका यह अर्थ नहीं कि, भारत अधार्मिकताको प्रोत्साहित करता है। उसका अर्थ तो यह है कि, प्रत्येक व्यक्ति अपना धर्मपालन करनेके लिये स्वतन्त्र है" इत्यादि। (अमृतबाजार पत्रिका १२ नवम्बर) राष्ट्रपतिने सेकुलर डिमोक्रेसीकी जो व्याख्या की है, क्या व्यवहारमें वह वैसा ही बरता जा रहा है? राष्ट्रपतिको विदित ही है, कि सेकुलर डिमोक्रेसी कहानेवाली शासनसत्ता हिन्दूकोडबिल बनाकर हिन्दुओंको अपना धर्मपालन करनेकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका अपहरण करने जा रही है। क्योंकि हिन्दूकोडबिल हिन्दूधर्मके मौलिक सिद्धान्तोंपर प्रत्यक्ष प्रहार है। यह हिन्दूजातिपर बलात् लादा जा रहा है और हिन्दूजातिको अपने धर्मपालनके अधिकारसे विधान बनाकर वञ्चित किया जा रहा है। हिन्दूकोडबिल यदि विधान बन गया, तो इसके द्वारा हिन्दूओंका धर्म, जातीय परम्परा, रीति-रिवाज सभी नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे। क्योंकि हिन्दुओंका धर्म हिन्दूजातिके जीवनके प्रत्येक क्रिया-कलापके साथ सम्बन्धित है। उसका विवाह गृहस्थाश्रमका सबसे प्रधान धार्मिक संस्कार है, जिसके भीतर मनुष्यकी सारी पशु-प्रवृत्तियोंके नियन्त्रणका रहस्य निहित है, इसी प्रकार उसके उत्तराधिकार-व्यवस्थामें परलोकगत आत्माकी शान्ति एवं उन्नतिका रहस्य निहित है। हिन्दूकोडबिल-द्वारा इन सबको तोड़-मरोरकर हिन्दूसमाजको विदेशीय-विजातीय साँचेमें ढालनेका प्रयत्न है। ऐसी दशामें भारत सरकारकी तथाकथित धर्म-निरपेक्षताकी क्या सार्थकता रही? हिन्दूधर्म किसी व्यक्तिकी कपोल-कल्पना नहीं, किन्तु ईश्वरीय अनादि विधान है। उसका आधार वेद है। विधान बनाकर उसका नाश करनेके उद्योगका सीधा अर्थ होता है, उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता, स्वेच्छाचारिताको आमन्त्रण देना। इस प्रकार भारत सरकार धर्मनिरपेक्षताकी आड़में अधार्मिकताको प्रोत्साहन दे रही है, यही दिखायी दे रहा है। विचारकी बात है कि, पशु-प्रवृत्तियोंकी चरितार्थताके लिये जब विधान बनाकर मार्ग प्रशस्त कर दिया जायगा तो क्यों कोई धर्म-पालनसे अपनी उद्दण्ड-उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंको रोकनेका प्रयत्न करेगा? परलोक एवं परमात्माके भयसे ही तो मनुष्य संयत, सदाचारी, सहिष्णु, सत्यव्रत सेवा-परायण बन सकता है और अपनी पशु-प्रवृत्तियोंपर विजय पा सकता है। इसी कारण यहाँके त्रिकालदर्शी महर्षियोंने हिन्दूओंके प्रत्येक आचार-व्यौहार तथा चेष्टाओंके साथ धर्मका सम्बन्ध बाँधा था और महर्षियोंके उन्हीं आदेशोंका अनुसरण करके हिन्दूजाति अपनी आध्यात्मिकतामें जगद्गुरु-पदपर प्रतिष्ठित हुई थी और पृथिवीकी समस्त मनुष्यजातिको इसने अपने ज्ञानालोकसे आलोकित किया था। आजके इस भौतिक युगमें भी यहाँके उपनिषद् एवं दर्शन-शास्त्र जगत्को आध्यात्मिक आलोक प्रदान कर

की हुई हैं। संसारमें उनकी तुलना कहीं नहीं है। अतः हमारी प्रार्थना है, कि यदि Secular Democracy का वही अर्थ है, जो हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादने की है, तो वे अपना सारा प्रभाव एवं शक्ति लगाकर भारत सरकारको अपनी ही घोषित नीतिके विरुद्ध कार्य करनेसे विरत करें और हिन्दूकोडबिल वापस लेनेको वाध्य करें।

क्या इम्प्रुभमेन्टट्रष्टके अधिकारी ध्यान देंगे ?

संतोषका विषय है कि, काशीमें भी इम्प्रुभमेन्ट ट्रष्टकी स्थापना हो गयी है। इसकी मार्च सन् १९५० तककी विवरणी हमारे पास प्रकाशनार्थ आयी है, जो आर्य-महिलाके पाठक-पाठिकाओंके अवलोकनार्थ इसी अङ्कमें प्रकाशित की जाती है। इसको देखने से विदित होता है कि, काशीके कुछ सड़कोंको सौ फीट एवं कुछको अस्सी फीट चौड़ी बनानेकी योजना है। एक नया उपनगर जिसमें वहाँ बसनेवालोंकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्तिके साधन प्रस्तुत किये जायँगे, बसानेकी भी योजना है। ट्रष्टकी इस योजनाका हम हृदयसे स्वागत करते हैं और भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें प्रार्थना करते हैं कि, यह शीघ्र कार्यान्वित हो। परन्तु सड़कोंके विषयमें अनेक बातें विचारणीय हैं, जिनपर हम ट्रष्टके अधिकारियोंका ध्यान दिलाना अपना कर्तव्य समझते हैं। यह सर्ववादिसम्मत है कि, काशी एक अति प्राचीन महान् तीर्थ है, यह कलकत्ता या बम्बई जैसा कोई बड़ा व्यापारिक केन्द्र नहीं, जहाँपर सौ फीट या ८० फीट चौड़ी सड़कोंकी आवश्यकता हो। यह तीर्थस्थान है। इसकी सुन्दरता एवं विशेषता यहाँके सुन्दर घाटोंसे है। विशेष-विशेष अवसरोंपर—जैसे चन्द्रग्रहण आदिके समय लाखों लाखों मनुष्योंका समूह गङ्गास्नानके लिये यहाँ एकत्र होता है। किन्तु इन घाटोंकी इस समय कैसी शोचनीय अवस्था है, सो इसी विवरणीमें वर्णित है; हमें खेद है कि, उन घाटोंके मरम्मत एवं पुनर्निर्माणके लिये उनके अधिकारियोंकी सहायताकी अपेक्षा की जा रही है। काशीके ये घाट अधिकांश देशी नरेशोंद्वारा बनाये गये थे। इन नरेशोंके उत्तराधिकारी ज्यों-ज्यों अंग्रेजी सभ्यता-संस्कृतिके दास बनते गये, त्यों-त्यों उनके दानधर्म बन्द होते गये और इन घाटोंकी दशा भी बिगड़ती गयी और अब तो सभी देशी राज्य सरकारके अङ्ग बना दिये गये हैं, उनके अस्तित्व ही प्रायः मिट गये हैं। अतः इन घाटोंकी मरम्मत एवं पुनर्निर्माणका कार्य सरकारका ही कर्तव्य हो गया है। इस कारण इम्प्रुभमेन्ट ट्रष्ट यदि वस्तुतः जनताका हित करना चाहता है, तो उसे अपनी सारी शक्ति और साधनोंका उपयोग काशीके घाटोंके पुनर्निर्माण एवं मरम्मतके लिये ही करना चाहिये। यहाँ सड़कोंको सौ फीट एवं अस्सी फीट चौड़ी करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। विशेषतः लहुराबीर चौमुहानीसे कलक्टरेट तककी सड़कको सौ फीट चौड़ी करना सर्वथा अनावश्यक है, वैसे ही मैदागिनसे इङ्गलिशिया लाइन जानेवाली सड़कके भी इतनी चौड़ाईकी आवश्यकता नहीं। इनपर साधारणतः कचहरी तथा रेलगाड़ियोंके समयोंपर कुछ सवारियाँ दिखायी पड़ती हैं। बाकी समय इन सड़कोंपर कोई भी भीड़ नहीं होती। दूसरी विचारणीय यह है कि, ट्रष्टकी इसी विवरणीमें ही भवनोंकी कमी स्वीकार की गयी है। ऐसे समयमें सड़कोंको चौड़ी करनेके उद्देश्यसे अनिश्चित समयके

लिये भवन-निर्माणका कार्य उन स्थानोंपर रोक रखना तथा भवनोंको गिराकर सड़क चौड़ी करना भवनकी समस्याको और भी जटिल बना देना कदापि वाञ्छनीय नहीं कहा जा सकता। हिन्दी विवरणीमें यह भी कहा गया है, कि मकानोंको गिराकर सड़क बढ़ानेका विचार नहीं है, किन्तु जब मकान स्वतः गिर जायँगे, तब सड़कोंको चौड़ा किया जायगा। ऐसे सड़कोंपर अब जो मकान—दूकान बनेंगे, उनको बनानेकी स्वीकृति सड़कोंको चौड़ी करनेके लिये जितनी भूमि अपेक्षित है, उतना छोड़कर ही दी जायगी। ट्रष्टके इस योजनासे भी जनताकी हानिके अतिरिक्त लाभ नहीं दृष्टिगोचर होता। क्योंकि इन सड़कोंपर कुछ भवन वर्ष-दोवर्ष पहले ही निर्मित हुए हैं। कमसे कम सौ वर्ष इनके स्वतः गिरनेकी सम्भावना नहीं हो सकती। इस परिस्थितिमें इतनी भूमि इतने दिन खाली छोड़ रखना जनताके जीवन-निर्वाहके प्रश्नको और भी विकट बनाना है। इन स्थानोंमें भवन या दूकान बन जानेसे सहस्रों मनुष्योंके जीवन-निर्वाह एवं आवासकी समस्या हल हो सकती है। आज जब मनुष्योंको पेट भरनेके लिये पैसे नहीं, रहनेके लिये घर नहीं है और सौ वर्ष बाद सड़क चौड़ी करनेके लिय जमीनें यों ही पड़ी रखी जाँय, वहाँ मकान-दूकान न बनने दिया जाय, इसका समर्थन जनताका कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता। अतः इम्प्रुभमेन्ट ट्रष्टके अधिकारियोंसे हमारी यह प्रार्थना है, कि रिक्त स्थानोंमें सुन्दर उपनगरोंका निर्माण एवं यहाँके घाटोंके मरम्मत एवं पुनर्निर्माणके कार्योंमें ही वे अपने सब साधनों एवं शक्तिका उपयोग करें तो जनताका यथार्थ हित होगा और इस कार्यमें उन्हें जनताका सहयोग तथा सहानुभूति भी प्राप्त होगी। क्या इम्प्रुभमेन्ट ट्रष्टके अधिकारीगण इसपर ध्यान देंगे ?

वैदिक संस्कृति और धर्मशिक्षाकी आवश्यकता

स्थानीय काशी विश्वविद्यालयके तैंतीसवें वार्षिक उपाधि वितरणोत्सवके उपलक्षमे काशीमें अनेक विशिष्ट महानुभावोंका पदार्पण हुआ था। उक्त अवसरपर पूना विश्वविद्यालयके वाइस चांसलर डा० मुकुन्दराव जयकरका जो भाषण हुआ वह बहुत बुद्धिमत्ता एवं दूरदर्शितापूर्ण है। धर्मनिरपेक्षताके विषयमें उन्होंने जो विचार प्रकट किया, उससे ऐसा अनुमान होता है, कि भारत सरकारकी रहस्यमयी धर्मनिरपेक्षता अभीतक वे भी नहीं समझ सके हैं, उन्होंने कहा, कि यदि धर्मनिरपेक्षताका अर्थ सभी धर्मों एवं संस्कृतिका पूर्ण रूपसे विनाश है, तो यह व्यर्थकी चेष्टा है। यदि धर्मनिरपेक्ष करनेसे यह मतलब हो, कि किसी धर्मविशेषको मान्यता नहीं है, तो इससे सभी सहमत रहेंगे। यदि धर्मनिरपेक्षताका यह अर्थ है, कि धर्मके आधारपर किसी व्यक्ति या वर्गको कोई विशेष सुविधा प्रदान नहीं की जायगी तो इसे भी सभी स्वीकार करेंगे। परन्तु धर्मनिरपेक्षताभी किसी हद-तक ही अच्छी है और हदके बाहर मूर्खता मात्र है आगे उन्होंने कहा कि "आज विश्वको वैदिक संस्कृति और संस्कृत-शिक्षाकी विशेष आवश्यकता है। प्राचीन वैदिक कालका भी यही लक्ष्य था कि, विश्वमें एक व्यवस्था तथा चार स्वतंत्रताएँ स्थापित हों। हमारे यहाँ भूख, कठिनाइओं, दुःख और आवश्यकताओंसे मुक्ति ही चार स्वतंत्रताएँ रही हैं। इन्हींसे छुटकारा पा जाना चार स्वतन्त्रताएँ प्राप्त करना है।" डाक्टर

विषय-सूची

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

आश्विन सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ६, | सितम्बर १९५०

भज मन चरण कँवल अविनासी ।
जेतइ दीसे धरण गगन बिच तेतई सब उठ जासी ।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे कहा लिये करवट कासी ॥
इण देहीका गरब न करना माटीमे मिल जासी ।
यो संसार चहर की बाजी साँझ पड्या उठ जासी ॥
कहा भयो है भगवा पहरयाँ घर तज भये संन्यासी ।
योगी होय जुगत नहिं जाणी उलट जनम फिर आसी ॥
अरज करूँ अबला कर जोड़े स्याम तुम्हारी दासी ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर काटो जमकी फाँसी ॥

आत्मनिवेदन।

ईश्वरसे डरो

आजका युग वैज्ञानिक युग कहा जाता है, मनुष्योंकी इन्द्रियोंकी तृप्ति एवं भोगके साधनों आराम एवं सुख-सुविधाओंके नित्य नये चमत्कार सायन्सद्वारा आविष्कृत होते रहते हैं, तबभी प्रत्यक्ष देखा यह जा रहा है, कि मनुष्योंका दुःखदुर्दैव, दरिद्रता एवं विनाश दिनानुदिन बढ़ता ही जा रहा है, नित्य नयी अप्रत्याशित आपत्तियाँ आ रही हैं, और किसीभी भौतिक शासन अथवा सायन्समें यह शक्ति नहीं कि इनसे मनुष्योंका त्राण कर सके। प्राणियोंके नाशके लिये एटमबम्बका आविष्कार तो हुआ परन्तु किसी वैज्ञानिकने अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, जलप्लावन, महामारी आदिसे मनुष्योंको बचानेके लिये अबतक कोई आविष्कार नहीं किया। भारतसरकारने "अधिक अन्न उपजाओ"की योजना बनायी, करोड़ों रुपये व्यय कर विदेशोंसे ट्रेक्टर तथा खाद मँगाये गये और लाखों एकड़ परती जमीन भी जोत डाली गयी, परन्तु फल क्या हुआ, अचानक नदियोंमें बाढ़ आ जानेसे उत्तर-प्रदेश, बिहार तथा पञ्जाबके हजारों गाँव बह गये, खेती नष्ट हो गयी, और सरकारकी सारी योजना मिट्टीमें मिल गयी। सरकारके भरसक प्रयत्न करने पर भी बिहार तथा मद्रासमें भूखमरीसे मनुष्य कालके गालमें जा रहे हैं। रेल उलटनेकी दुर्घटनाएँ तो आज एक साधारण-सी बात हो गयी है, जिनमें सैकड़ों निरीह प्राणियोंका संहार हो रहा है, जिसे स्मरण करके हृदय काँप उठता है। गत १५ अगस्तको जब सारे भारतमें स्वतन्त्रताका आनन्द मनाया जा रहा था, आसाममें मानों मनुष्योंके पापपुञ्जसे भीत हो पृथिवी माता काँप उठीं, सैकड़ों प्राणियोंकी बलि हो गयी, हजारों सुन्दर-सुन्दर अट्टालिकाएँ धूलीमें मिल गयीं, करोड़ोंकी सम्पत्तिपर पानी फिर गया। हुआ क्या? पृथिवी माता केवल कुछ पलके लिये काँप उठी थी! क्या संसारकी किसी शासनसत्तामें यह क्षमता है, जो इनसे प्राणियोंको बचा सके? विवश हो उत्तर यहीं देना होगा कि नहीं। अब प्रश्न यह होता है कि आये दिन ऐसे नित्य नये उत्पात हो ही क्यों रहे हैं? आस्तिक सूक्ष्मविचारशील व्यक्तिके लिये इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि केवल इस दृश्यमान भौतिक जगत्का ही नहीं किन्तु स्थूल-सूक्ष्म निखिल विश्वब्रह्माण्डका एकमात्र नियन्ता, सब शासकोंका शासक कोई ईश्वर है, जो मनुष्योंके दानवी राक्षसी कुकृत्योंसे कुपित हो उठा है। उसीके प्रकोपसे ये सारे प्राकृतिक उत्पात हो रहे हैं और सब दुःख-दरिद्रता, दीनता, हीनता छा गयी है। उस जगन्नियन्ता ईश्वरसे डरो जिसके लिये श्रुति कहती है—"महद्भयं वज्रमुद्यतम्"—कठोपनिषद्। विश्वास करो कि तुम जिस कर्मको बहुत लुक छिपकर करते हो, और समझते हो कि तुमको कोई नहीं देख रहा है, उसको तुम्हारे ही अन्तरमें बैठा हुआ वह सर्वशासक ईश्वर देखता रहता है। उससे तुम्हारा कोई भी कर्म छिपा नहीं रह सकता है। और उसका दण्डविधान अव्यर्थ होता है। अतः उस सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी सब शासकोंका भी शासक ईश्वरसे डरो, तभी कल्याण होगा।

गृहदेवियोंका सम्मान करो।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दूसंस्कृतिमें स्त्रियोंको जितना सम्मान तथा गौरव दिया गया है उतना संसारके किसी सभ्य-समाजमें नहीं दिया गया है। आर्यऋषियोंने स्त्रियोंका मौलिक स्वरूप ठीक-ठीक समझा था, और उसके अनुरूप उन्होंने स्त्रियोंको अतुलनीय गौरव प्रदान किया था। वेद, पुराण, इतिहास एवं स्मृतियोंमें इस विषयके भूरि-भूरि प्रमाण भरे पड़े हैं। केवल शास्त्रोंमें ही नहीं किन्तु व्यवहारमें भी उनका वही सम्मान था और वैदिककालसे लेकर विदेशी शासनके पहले तक उनकी वही मर्यादा तथा सम्मान बना रहा। जब तक यहाँ स्त्रियोंका वैसा सम्मान था, वे वस्तुतः गृहसम्राज्ञी या गृहस्वामिनीके पदपर आसीन थीं, तब तक यह भारतदेश सबप्रकारके सुख-समृद्धि-सम्पन्न था और स्त्रियोंने बड़ी योग्यता तथा कौशल-से पुरुषोंके प्रत्येक कार्यमें हाथ बटाया। यद्यपि अपना घर ही उनका साम्राज्य था, तब भी समय पड़नेपर उन्होंने राजकार्यका सञ्चालन भी किया और स्वधर्म, स्वतन्त्रता तथा सम्मान-रक्षाके लिये रणचण्डीका प्रचण्डरूप धारणकर कभी रणरङ्गमें भी उतर पड़ीं, एवं मानवरूपधारी दानवोंके दाँत खट्टे किये। चित्तौर और झाँसीके अमिट इतिहास इसके उज्ज्वल उदाहरण हैं। कालचक्रने पलटा खाया, भारत परतन्त्र हो गया। सैकड़ों वर्षोंकी दासताने उसको अपना स्वरूप ही भूला डाला और जैसे भारत अपनी अन्य विशेषताओंको भूल गया, वैसे ही वह अपनी गृहदेवियोंका सम्मान करना भी प्रायः भूल सा गया। फलतः स्त्रियाँ भी अपने पूर्व-गौरवान्वित पदको भूल गयीं। वर्तमान समयमें हमारे देशमें स्त्रियोंकी दशा बड़ी दयनीय तथा शोचनीय हो गयी है। प्राचीन गौरवकी बात अब प्रायः शास्त्रोंमें ही रही है, व्यवहारमें नहींके समान है। पुत्र माताकी महिमा नहीं समझता और कितने ही पुरुष अपनी सती साध्वी स्त्रीका परित्याग कर देते हैं, कितने ही उनपर अमानुषिक अत्याचार करते हैं। समाजके कलङ्करूप ऐसे पुरुषोंको समाज द्वारा कठोर दण्डकी व्यवस्था होनी चाहिये। और स्त्रियोंको पुनः उनके गृहस्वामिनीके पदपर प्रतिष्ठित करना चाहिये, तभी भारत पुनः अपना जगद्गुरु-पद प्राप्त कर सकेगा। पुरुषोंको सदा स्मरण रखना चाहिये कि जिसप्रकार स्त्रियोंकी आदर्श भगवती सीता हैं, वैसेही पुरुषोंके आदर्श एकपत्नीव्रत भगवान् रामचन्द्र हैं। भगवान् रामचन्द्र जैसे आदर्श राजा थे, वैसेही वे आदर्श पतिभी थे। एक नीच धोबीकी बात गुप्तचरद्वारा सुनकर प्रजारञ्जनके लिये उन्होंने अपनी प्राणप्रिया सती साध्वी सम्राज्ञी सीताका त्याग तो कर दिया परन्तु दूसरी पत्नी ग्रहण करने की उन्होंने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की। अतः यदि सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और आनन्द चाहते हो, तो भगवान् रामचन्द्रको अपना आदर्श बनाओ, अपनी गृहदेवियोंको सच्ची गृहस्वामिनी बनाओ, उनका उचित आदर सम्मान करो। देखो, भगवान् मनु क्या कहते हैं—

> पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
> पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
> जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।
> तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः॥
> तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनासनैः।
> भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कार्येषूत्सवेषु च॥

तात्पर्य यह है कि अपना उत्तम कल्याण चाहनेवाले पिता, भाई, पति, देवर आदिको कन्या, बहिन, पत्नी, भौजाई आदिका उचित आदर सम्मान करना चाहिये और उनको वस्त्राभूषणसे सदा प्रसन्न रखना चाहिये। जिस घरमें स्त्रियाँ शापती रहती हैं, वह घर शीघ्रही नष्ट हो जाता है। इस कारण अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको भोजन, वस्त्र और अलङ्कार आदिके द्वारा सदा इनकी पूजा करनी चाहिये। अतः भगवान् मनुका यह परमकल्याणमय उपदेश सदा मनमें रखो और अपनी माताओं, बहिनों, बेटियों एवं धर्मपत्नियोंका उचित आदर सम्मान करो।

तुलसीदलका महत्त्व तथा स्तुति।

(संकलित)

देवताओंके सेनापति श्रीकार्तिकेयजीने एकबार अपने पिता महादेवसे पूछा कि, भगवन्! ऐसा कौनसा वृक्ष है, जिसका पत्ता और फूलभी भोग-मोक्ष प्रदान करनेवाला है? आप सर्वज्ञ हैं, इस विषयमें आपही जानते हैं। महादेवजीने कहा—बेटा! सब प्रकारके पत्तो और फूलोंकी अपेक्षा तुलसीही श्रेष्ठ मानी गयी है। वह परम मंगलमयी, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय तथा 'वैष्णवी' नाम धारण करनेवाली है। वह सम्पूर्ण लोकमें श्रेष्ठ, शुभ तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। भगवान् विष्णुने प्राचीनकालमें समस्त लोकोंका हित करनेके लिये तुलसीका वृक्ष बोया था। तुलसीके पत्ते और पुष्प सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित है। जैसे भगवान् विष्णुको लक्ष्मी और मैं दोनों प्रिय हैं, उसीप्रकार यह तुलसी-देवी भी परमप्रिय हैं। हम तीनोंके सिवा कोई चौथा ऐसा नहीं जान पड़ता, जो भगवान्को इतना प्रिय हो। तुलसीदलके बिना दूसरे-दूसरे फूलों पत्तों चन्दन आदिके लेपोंसे भगवान् श्रीविष्णुको उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी तुलसीदल चढ़ानेसे। जिसने तुलसीदलके द्वारा पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रतिदिन भगवान् श्रीविष्णुका पूजन किया है, उसने दान, होम, यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिये। तुलसीदलसे भगवान्की पूजा कर लेनेपर कान्ति, सुख, भोगसामग्री, यशोलक्ष्मी, श्रेष्ठकुल, शील, पत्नी, पुत्र, कन्या, धन, राज्य, आरोग्य, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, तन्त्र और संहिता—सब कुछ मैं करतलगत समझता हूँ। जैसे पुण्यसलिला भागीरथी, गंगा मुक्ति प्रदान करनेवाली है, उसीप्रकार भगवती तुलसीभी कल्याण करनेवाली है। हे पुत्र! यदि मञ्जरीयुक्त तुलसीपत्रोंके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की जाय तो उसके पुण्यफलका वर्णन करना असम्भव है। जहाँ तुलसीका वन है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णका सान्निध्य है। वहीं ब्रह्मा और लक्ष्मीजी भी सम्पूर्ण देवताओंके साथ निवास करती हैं। इसलिये अपने निकटवर्ती स्थानमें तुलसीदेवीको रोपकर उनकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। तुलसीके निकट जो स्तोत्र-मन्त्र आदिका जप किया जाता है, वह सब अनन्तगुण फलप्रद होता है।

प्रेत, पिशाच, कुष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, भूत और दैत्य आदि सब तुलसीके वृक्षसे दूर भागते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा पाप और खोटे विचारसे उत्पन्न होनेवाले रोग—ये सब तुलसीवृक्षके समीप नष्ट हो जाते हैं। जिससे श्रीभगवान्‌की पूजाके लिये तुलसीका बगीचा लगा रक्खा है, उसने उत्तम, दक्षिणाओंसे युक्त सौ यज्ञोंका विधिवत् अनुष्ठान पूर्ण कर लिया है। जो श्रीभगवान्‌की प्रतिमाओं तथा शालिग्राम शिलाओं पर चढ़े हुये तुलसीदलको प्रसादके रूपमें ग्रहण करता है, वह श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो श्रीहरिकी पूजा करके उन्हें निवेदन किये हुए तुलसी-दलको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह पापसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। कलियुगमें तुलसीका पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करनेसे वह पापको जलाती और स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है। जो तुलसीके पूजन आदिका दूसरोंको उपदेश देता और स्वयं भी आचरण करता है, वह भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिके परमधामको प्राप्त होता है। जो वस्तु भगवान् विष्णुको प्रिय जान पड़ती है, वह मुझे भी अत्यन्त प्रिय है। श्राद्ध और यज्ञ आदि कार्योंमें तुलसीका एक पत्ता भी महान् पुण्य प्रदान करनेवाला है। जिसने तुलसीकी सेवा की है, उसने गुरु ब्राह्मण, देवता और तीर्थ—सबका भलीभाँति सेवन कर लिया। इसलिये षडानन! तुम तुलसीका सेवन करो। जो शिखामें तुलसी स्थापित करके प्राणोंका परित्याग करता है, वह पापराशिसे मुक्त हो जाता है। राजसूय आदि यज्ञ; भाँति भाँतिके व्रत तथा संयमके द्वारा धीर पुरुष जिस गतिको प्राप्त करता है, वही उसे तुलसीकी सेवासे मिल जाती है। तुलसीके एक पत्रसे श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य वैष्णवत्वको प्राप्त होता है। उसके लिये अन्यान्य शास्त्रोंके विस्तारकी क्या आवश्यकता है! जिसने तुलसीकी शाखा तथा कोमल पत्तियोंसे भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की है, वह कभी माताका दूध नहीं पीता—उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कोमल तुलसीदलोंके द्वारा प्रतिदिन श्री-हरिकी पूजा करके मनुष्य अपनी सैकड़ों और हजारों पीढ़ियों तार सकता है। तात! ये मैंने तुमसे तुलसीके प्रधान गुण बतलायें हैं। सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो बहुत अधिक समय लगने पर भी नहीं हो सकता।

इस तरह भगवान् शंकरने स्वयं तुलसीकी इतनी महिमा गायी है। खेदकी बात है कि आजकल नव-शिक्षित लोगोंके घरोंसे तुलसीजीकी चबूतरा बनाने-की प्राचीन रीति उठती जा रही है। इन लोगोंको अपने शास्त्रोंपर श्रद्धा-विश्वास नहीं रहा है। उनके गुरु तो अंगरेज बन गये हैं। परन्तु अंग्रेज वैज्ञानिक लोग भी कहते हैं कि तुलसीमें अनेक प्रकारके रोगके कीटाणुओंको नष्ट करनेकी शक्ति है।

तुलसीकी स्तुतिके सम्बन्धमें शतानन्दने अपने शिष्योंसे कहा है कि तुलसीका नामोच्चारण करने पर असुरोंका दर्प दलन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसके दर्शनमात्रसे करोड़ों गो-दानका फल होता है, उस तुलसीका पूजन और वन्दन लोग क्यों न करें! कलियुगके संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें शालग्राम-शिलाका पूजन सम्पन्न करनेके लिये प्रति-दिन तुलसीका वृक्ष भूतलपर लहलहाता रहता है।

जो कलियुगमें भगवान् श्रीकेशवकी पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, उनपर यदि यमराज अपने किङ्करों सहित रुष्ट हो जाँय तो भी वे उनका क्या कर सकते हैं! 'तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणी! मैं भगवान्की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीअङ्गोंसे उत्पन्न होनेवाले पतों और मञ्जरियों द्वारा मैं सदाही जिस प्रकार श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, वैसा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी! तुम कलि-मलका नाश करनेवाली हो।' इस भावके मन्त्रोंसे जो तुलसी-दलोंको चुनकर उनसे भगवान् वासुदेवका पूजन करता है, उसकी पूजाका करोड़ों गुना फल होता है।

देवेश्वरी! बड़े बड़े देवता भी तुम्हारे प्रभावका गायन करते हैं। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, पातालनिवासी साक्षात् नागराज शेष तथा सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते; केवल भगवान् श्रीविष्णु ही तुम्हारी महिमाको पूर्णरूपसे जानते हैं। जिस समय क्षीर-समुद्रके मन्थनका उद्योग प्रारम्भ हुआ था, उस समय श्रीविष्णुके आनन्दांशसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ था। पूर्वकालमें श्रीहरिने तुम्हें अपने मस्तक-पर धारण किया था। देवि! उस समय श्रीविष्णुके शरीरका सम्पर्क पाकर तुम परम पवित्र हो गई थीं। तुलसी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे अङ्गमें उत्पन्न पत्रों द्वारा जिस प्रकार श्रीहरिकी पूजा कर सकूँ, ऐसी कृपा करो, जिससे मैं निर्विघ्नतापूर्वक परम गतिको प्राप्त होऊँ। साक्षात् श्रीकृष्णने तुम्हें गोमती-तटपर लगाया और बढ़ाया था। वृन्दावनमें विचरते समय उन्होंने सम्पूर्ण जगत् और गोपियोंके हितके लिये तुलसीका सेवन किया। जगत्प्रिया तुलसी! पूर्वकालमें वसिष्ठजीके कथनानुसार श्रीरामचन्द्रजीने भी राक्षसोंका वध करनेके उद्देश्यसे सरयूके तटपर तुम्हें लगाया था। तुलसीदेवी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीसे वियोग हो जाने पर भी अशोकवाटिकामें रहते हुये जनक-किशोरी सीताने तुम्हारा ही ध्यान किया था, जिससे उन्हें पुनः अपने प्रियतम का समागम प्राप्त हुआ। पूर्वकालमें हिमालय-पर्वतपर भगवान् शङ्करकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीने तुम्हें लगाया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये तुम्हारा सेवन किया था। तुलसीदेवी! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण देवाङ्गनाओं और किन्नरोंने भी दुःस्वप्नका नाश करनेके लिये नन्दनवनमें तुम्हारा सेवन किया था। देवि! तुम्हें मेरा नमस्कार है। धर्मारण्य गयामें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हित-साधनकी इच्छासे परम-पवित्र तुलसीका वृक्ष लगाया तथा लक्ष्मण और सीताने भी बड़ी भक्तिके साथ उसे पोसा था। जिस प्रकार शास्त्रोंमें गङ्गाजीको त्रिभुवनव्यापिनी कहा गया है, उसी प्रकार तुलसीदेवी भी सम्पूर्ण चराचर जगत्में दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीका ग्रहण करके मनुष्य पातकोंसे मुक्त हो जाता है और तो और मुनीश्वरो! तुलसीके सेवनसे ब्रह्महत्याभी दूर हो जाती है। तुलसीके पत्तेसे टपका हुआ जल जो अपने सिरपर धारण करता है, उसे गङ्गास्नान और दस गो-दानका फल प्राप्त होता है। देवि! मुझपर प्रसन्न होओ। देवेश्वरि! हरिप्रिये! मुझपर प्रसन्न हो जाओ। क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुई तुलसीदेवि! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके जो इस तुलसी-स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् श्रीविष्णु उसके

बत्तीस अपराध क्षमा करते हैं। बाल्यावस्था, कुमारावस्था, जवानी और बुढ़ापे में जितने पाप किये होते हैं, वे सब तुलसी-स्तोत्रके पाठसे नष्ट हो जाते हैं। तुलसीके स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर भगवान् सुख और अभ्युदय प्रदान रकते हैं। जिस घरमें तुलसीका स्तोत्र लिखा हुआ विद्यमान रहता है, उसका कभी अशुभ नहीं होता, उसका सबकुछ मङ्गलमय होता है, किञ्चित् भी अमङ्गल नहीं होता। उसके लिये सदा सुकाल रहता है। वह घर प्रचुर धन-धान्यसे भरा रहता है। तुलसी-स्तोत्रका पाठ करनेवाले मनुष्यके हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुके प्रति अविचल भक्ति होती है। तथा उसका वैष्णवोंसे कभी वियोग नहीं होता। इतना ही नहीं, उसकी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं प्रवृत्त होती। जो द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके तुलसीस्तोत्रका पाठ करता है, उसे करोड़ों तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है।

सती सुकला।

कहानी

(ले० श्रीमती सुन्दरी देवी)

काशी नामकी एक बहुत बड़ी पुरी है, जो गङ्गाके तटपर बसी होनेके कारण बहुत सुन्दर दिखाई देती है। उसमें एक वैश्य रहते थे, उनका नाम कृकल था। उनकी पत्नी परमसाध्वी तथा उत्तम-व्रतका पालन करनेवाली थी, उसका नाम सुकला था। वह सदा धर्माचरणमें रत और पतिव्रता थी। सुकलाके अङ्ग पवित्र थे। वह सुयोग्य पुत्रोंकी जननी, सुन्दरी, मङ्गलमयी, सत्यवादिनी, शुभा और शुद्ध स्वभाववाली थी। उसकी आकृति देखनेमें बड़ी मनोहर थी। व्रतोंका पालन करना उसे अत्यन्त प्रिय था। इस प्रकार वह अनेक गुणोंसे युक्त थी। वे वैश्य भी उत्तम वक्ता, धर्मज्ञ, विवेकसम्पन्न और गुणी थे। वैदिक तथा पौराणिक धर्मोंके श्रवणमें उनकी बड़ी लगन थी। उन्होंने तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें यह बात सुनी थी कि तीर्थोंका सेवन बहुत पुण्यदायक है, वहाँ जानेसे पुण्यके साथही मनुष्यका कल्याण भी होता है। इस बात पर उनके हृदयमें बड़ी निष्ठा थी, दैवशरा ब्राह्मणों और व्यापारियोंका साथ भी मिल गया। इससे वे तीर्थयात्राके लिये तैयार हो गये। उन्हें जाते देख उनकी पतिव्रता पत्नी सुकला पतिके स्नेहसे मुग्ध होकर बोली—

प्राणनाथ ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, अतः आपके साथ रहकर पुण्य करनेका मेरा अधिकार है। मैं आपके मार्गपर चलती हूँ। इस सद्भावके कारण मैं आपको अपनेसे अलग नहीं कर सकती। आपकी छायाका आश्रय लेकर मैं पातिव्रत्य के उत्तम-व्रतका पालन करूँगी, जो नारियोंके पापका नाशक और उन्हें सद्गति प्रदान करनेवाला है। जो स्त्री पतिपरायण होती है, वह संसारमें पुण्यमयी कहलाती है। युवतियोंके लिये पतिके सिवा दूसरा कोई ऐसा तीर्थ नहीं है, जो इस लोकमें सुखद और परलोकमें स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। साधु-श्रेष्ठ ! स्वामीके दाहिने चरणोंको प्रयाग समझिये और बाँयेंको पुष्कर। जो स्त्री ऐसा

मानती है तथा इसी भावके अनुसार पतिके चरणो-दकसे स्नान करती है, उसे उन तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्त्रियोंके लिये पतिके चरणोदकका अभिषेक प्रयाग और पुष्करतीर्थमें स्नान करनेके समान है। पति समस्त तीर्थोंके समान है। पति सम्पूर्ण धर्मों-का स्वरूप है। यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले पुरुषोंको यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पतिकी पूजा करके तत्कालप्राप्त कर लेती है। अतः प्रियतम ! मैं भी आपकी सेवा करती हुई तीर्थोंमें चलूँगी और आपकी ही छायाका अनुसरण करती हुई लौट आऊँगी।

कृकलने अपनी पत्नीके रूप, शील, गुण, भक्ति और सुकुमारता को देखकर बारबार उसपर विचार किया कि—'यदि मैं अपनी पत्नीको साथ ले लूँ तो मैं तो अत्यन्त दुःखदायी दुर्गम मार्गपर भी चल सकूँगा, किन्तु वहाँ सर्दी और धूपके कारण इस कोमलाङ्गीकी क्या दशा होगी ? रास्तेमें कठोर पत्थरोंसे ठोकर खाकर इसके कोमल चरणोंको बड़ी पीड़ा होगी। उस अवस्थामें इसका चलना असम्भव हो जायेगा। भूख-प्याससे जब इसके शरीरको कष्ट पहुँचेगा तो न जाने इसकी क्या दशा होगी ! यह मुझको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है तथा नित्य-निरन्तर मेरे गार्हस्थ्यधर्मका यही एकमात्र सहारा और आधार है। यदि मेरी यह प्राणप्यारी पत्नी मर गयी तो मेरा तो नाश ही हो जायगा। यही तो मेरे जीवनका अवलम्बन है, यही मेरे प्राणोंकी अधीश्वरी है। अतः मैं इसे तीर्थोंमें नहीं ले जाऊँगा, अकेले ही यात्रा करूँगा।'

ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—मैं तुम्हारा कभी त्याग नहीं करूँगा। और उससे बिना कहे ही वे चुपकेसे साथियोंके साथ चले गये। महाभाग कृकल बड़े पुण्यात्मा थे, उनके चले जानेपर सुन्दरी सुकला देवाराधनाकी बेलामें पुण्यमय प्रभात-के समय जब सोकर उठी, तब उसने अपने स्वामीको घरमें नहीं देखा। फिर तो वह घबड़ाकर उठ बैठी और अत्यन्त शोकातुर होकर रोने लगी। वह साध्वी अपने पतिके साथियोंके पास जा-जाकर पूछने लगी—'महाभागगण ! आपलोग मेरे बन्धु हैं, मेरे प्राण-नाथ कृकल मुझे छोड़कर कहीं चले गये हैं ; यदि आपने उन्हें देखा हो तो बताइये। जिन महात्मा-ओंने मेरे पुण्यात्मा स्वामीको देखा हो, वे मुझे बतानेकी कृपा करे।' उसकी करुणाभरी बात सुनकर जानकार लोगोंने उससे इसप्रकार कहा—'शुभे ! तुम्हारे स्वामी कृकल धार्मिक यात्राके प्रसंग से तीर्थसेवनके लिये गये हैं। तुम घबड़ाओ मत, शोक मत करो, भद्रे ! वे बड़े-बड़े तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके शीघ्रही तुम्हारे पास लौट आयेंगे।'

महात्मा कृकलके बन्धुओंके द्वारा इसप्रकार विश्वास दिलाये जानेपर सती सुकला पुनः अपने घर चली आयी और करुण स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगी। वह पतिपरायणा साध्वी नारी थी। उसने यह निश्चय कर लिया कि 'जबतक मेरे स्वामी लौटकर घर नहीं आयेंगे, तबतक मैं भूमिपर चटाई बिछाकर सोऊँगी। घी, तेल और दूध-दही नहीं खाऊँगी। पान और नमकका भी त्याग कर दूँगी। गुड़ आदि वस्तुओंको भी छोड़ दूँगी। जब तक मेरे स्वामीका यहाँ पुनः आगमन नहीं होगा, तबतक एक समय भोजन करूँगी अथवा उपवास करके रह जाऊँगी।'

इसप्रकार कठिन व्रत लेकर सुकला बड़े दुःखसे

मिल बिताने लगी। उसने एक वेणी धारण करना आरम्भकर दिया। एक ही अंगियासे वह अपने शरीरको ढकने लगी। उसका वेष मलिन हो गया। वह एक ही मलिन वस्त्र धारण करके रहती और अत्यन्त दुःखित हो लम्बी साँस खींचती हुई अपने स्वामीके विरहमें व्याकुल रहा करती थी। विरहाग्निसे दग्ध होनेके कारण उसका शरीर काला पड़ गया। उसपर मैल जम गया। इस तरह कठिन आचारका पालन करनेसे वह अत्यन्त दुबली हो गयी। निरन्तर पतिके लिये व्याकुल रहने लगी। दिन-रात रोती रहती थी। रातको उसे कभी नींद नहीं आती थी और न भूख ही लगती थी।

सुकलाकी यह अवस्था देख उसकी सहेलियोंने आकर पूछा—'सखी सुकला! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो गयी है? सुमुखि! हमें अपने दुःखका कारण बताओ।'

सुकला बोली—सखियों! मेरे धर्मपरायण स्वामी मुझे छोड़कर धर्मोपार्जन करने गये हैं। मैं निर्दोष, साध्वी, सदाचारपरायण और पतिव्रता हूँ। फिर भी मेरे प्राणाधार मेरा त्याग करके तीर्थ-यात्रा कर रहे हैं; इसीसे मैं दुःखी हूँ। उनके विरहकी अग्निसे मैं दिनरात जला करती हूँ। सखी! प्राण-त्याग देना अच्छा है, किन्तु प्राणाधार स्वामीका त्यागना कदापि अच्छा नहीं है। प्रतिदिनकी यह दारुण वियोग-वेदना अब मुझसे नहीं सहा जाता। सखियों! यही मेरे दुःखका कारण है। मेरे स्वामी-के विरहसे ही मैं कष्ट पा रही हूँ।

सखियोंने कहा—बहिन! तुम्हारे पति तीर्थ-यात्राके लिये गये हैं। यात्रा पूरी होनेपर वे घर लौट आयेंगे। तुम व्यर्थ ही इतना शोक कर रही हो। वृथा ही अपने शरीरको सुखा रही हो। अकारण ही भोगोंका परित्याग कर रही हो। अरी! मौजसे खाओ-पीयो, क्यों कष्ट उठाती हो। कौन किसका स्वामी, कौन किसके पुत्र और कौन किसके सगे-सम्बन्धी हैं? संसारमें कोई किसीका नहीं है। किसी-के साथ भी नित्य सम्बन्ध नहीं है। सखी! खाना-पीना और मौज उड़ाना, यही संसारका फल है। मनुष्यके मर जानेपर कौन इस फलका उपभोग करता है और कौन उसे देखने आता है।

सुकला बोली—सखियों! तुमलोगोंने जो बात कही है, वह वेदोंको मान्य नहीं है। जो नारी अपने स्वामीसे पृथक् होकर अकेली रहती है उसे पापिनी समझा जाता है। श्रेष्ठपुरुष उसका आदर नहीं करते। वेदोंमें सदा यही बात देखी गयी है कि, पतिके साथ नारीका सम्बन्ध पुण्यके संसर्गसे ही होता है, और किसी कारणसे नहीं। अतः स्त्रीको अपने पतिके साथ रहनेमें ही शोभा, सम्मान और गौरव है। शास्त्रोंका वचन है कि पति ही सदा नारियोंके लिये तीर्थ है। इसलिये स्त्रीको उचित है वह सच्चे भावसे पतिसेवामें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा पतिका ही आवाहन करे और सदा पतिका ही पूजन करे। पति स्त्रीका दक्षिण अङ्ग है, उसका वामपार्श्व ही पत्नीके लिये महान् तीर्थ है। गृहस्थ नारी पतिके वामभागमें बैठकर जो दान-पुण्य और यज्ञ करती है, उसका बहुत बड़ा फल बताया गया है, काशीकी गङ्गा, पुष्करतीर्थ, द्वारकापुरी, उज्जैन तथा केदार-नामसे प्रसिद्ध महादेवजीके तीर्थमें स्नानकरनेसे भी वैसा फल नहीं मिल सकता। यदि स्त्री अपने पतिको साथ लिये बिना ही कोई यज्ञ करती है, तो

उसे उसका फल नहीं मिलता। पतिव्रता स्त्री उत्तम सुख, पुत्रका सौभाग्य, स्नान, पान, वस्त्र, आभूषण, सौभाग्य, रूप, तेज, फल, यश, कीर्ति और उत्तमगुण प्राप्त करती है। पतिकी प्रसन्नतासे उसे सब कुछ मिल जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो स्त्री पतिके रहते हुये उसकी सेवाको छोड़कर दूसरे किसी धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका वह कार्य निष्फल होता है तथा लोकमें वह व्यभिचारिणी कही जाती है। नारियोंका यौवन, रूप और जन्म—सब कुछ पतिके लिये होते हैं; इस भूमण्डलमें नारीकी प्रत्येक वस्तु उसके पतिकी आवश्यकता-पूर्तिका ही साधन है। जब स्त्री पतिहीन हो जाती है, तब उसे भूतलपर सुख, रूप, यश, कीर्ति और पुत्र कहाँ मिलते हैं। वह तो संसारमें परम दुर्भाग्य और महान् दुःख भोगती है। पापका भोग ही उसके हिस्सेमें पड़ता है। उसे सदा दुःखमय आचारका पालन करना पड़ता है। पतिके संतुष्ट रहनेपर समस्त देवता स्त्रीसे संतुष्ट रहते हैं। ऋषि और मनुष्यभी प्रसन्न रहते हैं। पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओंसहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थ एवं पुण्य है। पतिके बाहर चले जानेपर यदि स्त्री शृङ्गार करती है तो उसका रूप, वर्ण—सब कुछ भाररूप हो जाता है। पृथ्वीपर लोग उसे देखकर कहते हैं कि यह निश्चय ही व्यभिचारिणी है। इसलिये किसी भी पत्नीको अपने सनातनधर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।

सती सुकलाके इसप्रकार समझानेपर उसकी सखियोंने भी उसका अनुमोदन किया। इसप्रकार उपरोक्त कठिन नियमोंका पालन करती हुई सुकला अपने दिन बड़े दुःखसे काटने लगी। कुछ महीनों बाद एकपत्नीव्रत धर्मात्मा कृकल सकुशल तीर्थयात्रासे लौटकर आ गये और अपनी पत्नीकी पतिनिष्ठा देख उन्होंने अपनेको धन्य माना। बिना कहे चले जानेका कारण बतलाकर कृकलने अपनी साध्वी पत्नीको आश्वासन दिया और दोनों आनन्दपूर्वक अपने धर्मका आचरण करने लगे।

मनुष्यरूपमें देवता

शास्त्रोंमें देवताओंके लक्षण इसप्रकार कहा है कि—जो द्विज, देवता, अतिथि, गुरु, साधु और तपस्वियोंके पूजनमें संलग्न रहनेवाला, नित्य तपस्यापरायण, धर्मशास्त्र एवं नीतिमें स्थित, क्षमाशील, क्रोधजयी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, लोभहीन, प्रिय बोलनेवाला, शान्त, धर्मशास्त्रप्रेमी, दयालु, लोकप्रिय, मिष्टभाषी, वाणीपर अधिकार रखनेवाला, सब कार्योंमें दक्ष, गुणवान्, महाबली, साक्षर विद्वान्, आत्मविद्या आदिके लिये उपयोगी कार्योंमें संलग्न, घी और गायके दूध-दही आदिमें तथा निरामिष भोजनमें रुचि रखनेवाला, अतिथिको दान देने और पार्वण आदि कर्मोंमें प्रवृत्ति रखनेवाला है, जिसका समय स्नान-दान आदि शुभकर्म, व्रत, यज्ञ, देवपूजन तथा स्वाध्याय आदिमें ही व्यतीत होता है, कोई भी दिन व्यर्थ नहीं जाने पाता, वही मनुष्य देवता है। यही मनुष्योंका सनातन सदाचार है। श्रेष्ठमुनियोंने मानवोंका आचरण देवताओंके ही समान बतलाया है।

कर्ममीमांसादर्शन।

[गताङ्कसे आगे]

इस विज्ञानको स्पष्ट कर रहे हैं—

चेतन और जड़से सम्बद्ध है ॥ ९० ॥

स्थावर-जङ्गमात्मक सृष्टिसे उनका यथाक्रम सम्बन्ध है। एक जड़राज्यव्यापी और दूसरा चेतन-राज्यव्यापी है। इन दोनों कर्मप्रवाहोंमेंसे जो कर्मप्रवाह जड़से चेतन आत्माकी ओर प्रवाहित होता रहता है, वह चेतनराज्यव्यापी प्रवाह है। वह प्रवाह जड़ परमाणुसे चलकर चिज्जड़ग्रन्थि उत्पन्न करता हुआ चौरासी लक्ष योनियोंमें जीवका भ्रमण कराकर उसे मानवपिण्डमें पहुँचा देता है, और पुनः आवागमनकी नाना अवस्थाओंमें घूमाकर परमात्मारूपी स्वस्वरूपपारावारमें पहुँचा देता है। दूसरा प्रवाह चेतनसे जड़की ओर प्रवाहित रहता है, जो यावत् अनात्मा कहलानेवाली सृष्टिका कारण बनता है। जीवभूतके अतिरिक्त यावत् सृष्टि इस प्रवाहके अन्तर्गत है। कभी कभी जीवगण भी इस प्रवाहके चक्रमें पड़कर दण्डार्ह होकर नीचे उतर जाते हैं, परन्तु वह उतरना केवल सामयिक होता है। यथा—यमलार्जुनका वृक्ष होना, भरतका मृग होना इत्यादि। नहींतो वस्तुतः इस प्रवाहका सम्बन्ध केवल जड़-जगत्से ही रहता है। कमके चेतन-प्रवाहमें जीवका जीवत्व तथा दैवी सहायता दोनों ही सहायक रहते हैं। दूसरे जड़प्रवाहमें केवल देवतागण ही सहायक रहते हैं। वे देवता नदी, पर्वत, पञ्चभूत, धातु-रत्नादिकके अधिष्ठातृदेव कहाते हैं। इस प्रकारसे कर्म दो प्रवाहोंमें प्रवाहित होकर विराट्रूपधारी परमात्माके देहको अभिषिक्त करते रहते हैं। ॥९०॥

अब और भी भेद कह रहे हैं—

प्रथम द्विविध है ॥ ९१ ॥

जीवमय जो प्रथम प्रवाह है, उस प्रवाहकी दो शाखाएँ हैं। जिसप्रकार शाखानदियाँ मिलकर एक बड़ी नदी बन जाती है, जैसी गङ्गा और यमुना मिलकर गङ्गा प्रबलता धारण करती है, उसी उदाहरणके अनुसार जीवमयी यह धारा दो शाखाओंमें प्रवाहित होकर अन्तमें एकही रूपको धारण करके ब्रह्मसमुद्रमें लय हो जाती है ॥ ९१ ॥

इस विज्ञानको स्पष्ट कर रहे हैं—

एक प्राकृतिक और दूसरा स्वतन्त्र है ॥९२॥

इन दोनों शाखाओंका रहस्य स्पष्ट करनेके लिये महर्षि-सूत्रकारने इस सूत्रका आविर्भाव किया है। सहजकर्मसे सम्बन्ध रखने वाली प्राकृतिक जीवधारा और जैवकर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली स्वाधीन जीव-धारा इसप्रकारके दो भेद माने गये हैं। प्राकृतिक जीवधारा उद्भिद् आदिमें प्रकट होकर मनुष्यत्व-प्राप्तिमें पूर्ण गुप्त हो जाती है और पुनः वह जीवन्मुक्तमें प्रकट होती है और स्वाधीनधारा मनुष्यपिण्ड और दैवपिण्डमें प्रकट होकर आवागमनचक्रमें घूमती हुई पुनः मुक्तिभूमिमें जाकर उसी सहजधारामें लय हो जाती है। वस्तुतः ये दोनों शाखाएँ जीवमय प्रवाहका ही अङ्ग हैं ॥ ९२ ॥

चेतनजडसम्बद्धो ॥ ९० ॥ द्विविधः प्रथमः ॥ ९१ ॥ प्राकृतिक एकः स्वतन्त्रोऽपरः ॥ ९२ ॥

दोनोंका कार्य्य कहा जाता है—

वे दोनों मुक्ति और बन्धनके निमित्त हैं ॥९३॥

इन दोनोंमेंसे स्वाधीन जीवधारा बन्धनका कारण और प्राकृतिक जीवधारा मुक्तिका कारण होती है। जीव जब क्रमशः अपने पञ्चकोषोंकी पूर्णता सम्पादन करता हुआ मनुष्यत्व प्राप्त करता है, तब वह अपने पिण्डका अधीश्वर बन जाता है। इस स्वाधीनताको लाभ करके वह अपनी नवीन वासनाद्वारा नवीन-कर्म संग्रह करता हुआ आवागमनचक्रको स्थायी रखता है। सुतरां यह धारा बन्धनका कारण बनती है और जो दूसरी धारा है, जो प्राकृतिक नियमके अनुसार स्वाभाविक रूपसे प्रवाहित होती है, वह आवागमनचक्रका भेदन करनेवाली है और वह मुक्तिकी कारण है। जिसप्रकार तरलतरङ्गिणी पतितपावनी गङ्गा वस्तुमात्रको अपने प्रवाहमें प्रवाहित करके महार्णवमें पहुँचा देती है और यदि कोई वस्तु बीचमें उस नदीके घोर आवर्त्तमें फँस जाय, तो भी वह कालान्तरमें उस पदार्थको उस आवर्त्तसे निकलते ही पुनः सरलगतिसे वारिधि तक पहुँचा देती है। इसी उदाहरणके अनुसार यह प्राकृतिक कर्मधारा प्रथम अवस्थामें उद्भिज्जादि जीवोंकी क्रमोन्नति कराती हुई मनुष्ययोनितक पहुँचा देती है और वहाँ उस जीवके आवागमनचक्ररूपी आवर्त्तमें फँस जानेपर भी कालान्तरमें पुनः उसकी मुक्तिका कारण बनती है ॥ ९३ ॥

प्रथमका विशेष परिचय दे रहे हैं—

पहला सरलताके कारण देवरक्षित है ॥९४॥

चैतनप्रवाहके दो भेद हैं। प्राकृतिक और स्वतन्त्र। उन दोनोंमेंसे प्राकृतिक अतिसरल होनेसे वह सर्वथा देवरक्षित है। "दैवीमीमांसा" दर्शनमें यह विस्तारित रूपसे सिद्ध हुआ है कि, सहजपिण्डमें प्रत्येक योनिकी सम्हाल करनेवाले अलग अलग देवता हैं। दूसरी ओर जब वह प्रवाह गुप्त अवस्थासे जीवन्मुक्त दशामें पुनः प्रकट होता है, तो जीवन्मुक्त दशामें भी वह प्रवाह देवताओंके द्वारा सुरक्षित हो जाता है। जीवन्मुक्त महापुरुषमें वासनाजाल छिन्न हो जानेसे उनमें स्वकीय इच्छाद्वारा कोई कर्म होता ही नहीं। वे जगत्कल्याणार्थ जो कार्य करते हैं, सो दैवी इच्छाके वशीभूत होकर ही करते हैं। इस स्थलपर शंकासमाधानके लिये कहा जाता है कि, उनमें जो प्रारब्धसंस्कारके वेग हैं, उनको वैसे ही समझना चाहिये, जैसे स्वेदज-अण्डजादि जीव अपनी अपनी प्रकृतिके वश होकर भोगमें प्रवृत्त रहते हैं। जैसे अज्ञानके वशीभूत होकर मनुष्येतर जीव कर्म करते हैं, वैसे ही स्वरूपमें स्थित जीवन्मुक्तगण जैववासनासे सर्वथा रहित होकर प्रारब्धके वेगसे कर्म कर लेते हैं। इस दशामें देवताओंकी सहायता स्वतःसिद्ध है, क्योंकि जड़कर्मके चालक देवतागण हैं। दूसरी ओर जो ईशकोटिके जीवन्मुक्त यदि जगत्कल्याणमें रत होकर क्रियमाणकर्मशीलवत् प्रतीत हों, तो यही समझना उचित है कि, वे दैवीक्रियानिष्पत्तिके लिये भगवत्प्रेरित होकर ऐसा कर रहे हैं ॥ ९४ ॥

दूसरेका विशेष परिचय दे रहे हैं—

मुक्तिबन्धननिमित्ते ॥ ९३ ॥

आद्यो देवरक्षितः सारल्यात् ॥ ९४ ॥

वैपरीत्यके कारण दूसरा विभूतिद्वारा सुरक्षित होता है ॥ ९५ ॥

सकाम होनेसे बहुशाखायुक्त स्वाधीन प्रवाहमें जैवकर्मका अनन्त विस्तार होनेके कारण उसके संरक्षणमें देवताओंकी सहायता रहती है; क्योंकि देवता कर्मके संचालक और कर्मफलदाता हैं। तथापि मनुष्यपिण्डमें ही उत्पन्न भगवद्विभूतियोंके द्वारा उसकी सदसद्व्यवस्था हुआ करती है। प्राकृतिक प्रवाह जिसप्रकार एकरसयुक्त है, यह स्वाधीन प्रवाह इसप्रकार नहीं है। जीवकी वासना देवीमाहात्म्यमें कथित रक्तबीजके सदृश विस्तारकारी होनेके कारण वह बहुशाखासे युक्त है और अनन्त है। कर्म जड़ होनेके कारण प्रेरकत्व और कर्मफलदातृत्वके विचारसे सर्व अवस्थामें गौणरूपसे दैवी सहायता होनेपर भी स्वाधीन प्रवाहमें विभूतियोंकी सहायताकी प्रधानता है; क्योंकि इसमें जैववासनाका प्राधान्य रहनेके कारण और दैवीसहायताकी गौणता रहनेके कारण मनुष्यलोकमें ही उत्पन्न विभूतियोंके द्वारा ही इसका संरक्षण आवश्यक है। साधारण मनुष्यसे इतर चतुर्विध भूतसङ्घमें तथा आगे पहुँचकर जीवन्मुक्तोंमें केवल प्रकृतिका वेग ही कर्म कराता है, इस कारण वहाँ प्रवाहमें सारल्य है। परन्तु स्वाधीन प्रवाहमें प्रत्येक जीव अपनी स्वाधीनतासे सदसत् संस्कार संग्रह करता है और वासनाजालको बढ़ाता रहता है इस कारण बहुशाखासे युक्त होनेसे वह विपरीत भावापन्न अर्थात् जटिल है। मनुष्यके स्वाधीनताका अवलम्बन करनेसे देवताओंकी दृष्टि गौण हो जाती है और उस प्रवाहको सुधारनेके विषयमें उनकी उपेक्षा रहती है। सुतरां ऐसी दशामें सर्वशक्तिमान् सर्वहितमें निरत ईश्वरकी इच्छाके अनुसार उनके जगत्‌हितकारी नियमको अवलम्बन करके गृहपति, समाजपति, गुरु, आचार्य्य, राजा आदि विभूतिद्वारा वह प्रवाह सुरक्षित रहता है। इसीकारण मनुष्यसमाजमें राजानुशासन, शब्दानुशासन और योगानुशासनरूपी त्रिविध अनुशासनकी आवश्यकता रहती है ॥ ९५ ॥

विज्ञानको स्पष्ट कर रहे हैं—

कर्म जड़ होनेके कारण दैवापेक्ष्य है ॥ ९६ ॥

पहले कर्मके तीन विभाग, तदनन्तर जैवकर्मकी दो श्रेणियाँ और उनमें दैवी सहायताकी मुख्यता और गौणताका विचार इत्यादि देखकर जिज्ञासुके हृदयमें नाना प्रकारकी शंकाएँ हो सकती हैं; उन सब शंकाओंको दूर करनेके लिये पूज्यपाद महर्षि सूत्रकार कह रहे हैं कि, दैवी सहायताकी कहीं मुख्यता और कहीं गौणताका विचार रहनेपर भी सिद्धान्ततः सब कर्मके मूलमें दैवी सहायताकी आवश्यकता रहती है। वस्तुतः कर्म जड़होनेके कारण उसके मूलमें चेतनसत्ताकी आवश्यकता है। जो दार्शनिक यह युक्ति देते हैं कि, चेतनकी सहायताके बिना कर्म कार्य्यकारी होता है, उनकी यह युक्ति भ्रमात्मक है। जड़पदार्थ अथवा जड़शक्ति बिना चेतनकी सहायताके नियमितरूपसे कार्य्यकारी नहीं हो सकती। क्योंकि जड़की शृंखला बिना चेतनके संसाधित नहीं हो सकती है। उदाहरणके रूपमें समझ सकते हैं कि, कोई जड़शक्ति यद्यपि अपने आप कार्य्यकारी

विभूत्या रक्षितोऽपरो वैपरीत्यात् ॥ ९५ ॥

तद्दैवापेक्ष्यं जड़त्वात् ॥ ९६ ॥

होती हुई दिखायी देती है, यथा,—चुम्बककी लोहाकर्षण शक्ति, आतसी कंचकी अग्निप्रदायिका शक्ति, मेघकी वज्रनिपातकी शक्ति इत्यादि, तथापि ये सब शक्तियाँ क्रियाशील होनेपर भी जबतक उनके मूलमें कोई बुद्धिजीवी चेतनशक्ति न हो, तबतक उनसे शृंखलाबद्ध कार्य्य कदापि नहीं होगा। और व्यवस्था तथा शृंखला न रहनेसे उनके उपयोगका कुछभी मूल्य नहीं हो सकता है। अतः लौकिक जड़शक्ति जब बुद्धिजीवी मनुष्यद्वारा चालित हो, अलौकिक समष्टिजड़शक्ति जब अलौकिक देवता आदि द्वारा चालित हो, तभी उनका सदुपयोग हो सकता है। इसी उदाहरणके अनुसार यह मानना ही पड़ेगा कि, जड़शक्तिसम्पन्न कर्म जबतक चेतनशक्तिसम्पन्न देवतागण अथवा सर्वशक्तिके आधार सगुणब्रह्मके द्वारा चालित न हो, तबतक उसका सदुपयोग असम्भव है। अतः यह सिद्ध हुआ कि कर्म जड़ होनेसे वह चेतनकी सहायताकी अपेक्षा रखता है ॥ ६६ ॥

सहजकर्मके सम्बन्धसे कह रहे हैं—

सहज कर्म प्रकृतिके अधीन है ॥ ९७ ॥

सहजकर्मका विस्तारित स्वरूप पहले कहा गया है। वस्तुतः प्रकृतिके त्रिगुणतरङ्गके सहजात होनेके कारण इसका नाम सहजकर्म है। सब सहजकर्म प्रकृतिसहजात हैं, तो वे प्रकृतिके अधीन हैं यह स्वतःसिद्ध है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, सहजकर्मसे चिज्जड़ग्रन्थिसे उत्पन्न जीव अपने आपही उद्भिज्जसे स्वेदजादिमें होता हुआ मनुष्ययोनि तक पहुँच जाता है। सहजकर्मकी इस गतिका और कोई विशेष जीवेप्सित कारण नहीं है; केवल प्रकृतिकी स्वाभाविक गतिसे अपने आपही ऐसा होता है। प्रकृति तरङ्गायित होकर जब तमकी ओर से सत्त्वकी ओर चलती है, तब यह क्रिया स्वतः होती जाती है ॥ ६७ ॥

पूर्वप्रसङ्गसे इसका फल कह रहे हैं—

इस कारण देव साहाय्यापेक्ष्य है ॥ ९८ ॥

सहजकर्म जब सम्पूर्णरूपसे प्रकृतिके अधीन है और उसकी क्रियाके साथ जैववासनाका कोई सम्बन्ध नहीं है, तो यही मानना पड़ेगा कि, वह सम्पूर्णरूपसे देवताओंकी सहायताकी अपेक्षा रखता है। जब कर्ममात्र ही जड़ होनेसे कोई न कोई चेतनशक्तिकी अपेक्षा कर्मको रहती है और जब यह प्रमाणित हुआ है कि, सहजकर्मके साथ जैववासनाका कोई भी सम्बन्ध नहीं है तो यह मानना पड़ेगा कि, देवताओंकी सहायता सहजकर्मकी फलोत्पत्तिमें अवश्य रहना सम्भव है। कर्मके संचालित करनेमें या तो पूर्णावयव जीवरूपी मनुष्यकी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्तिकी अपेक्षा रहती है अथवा देवताओंकी इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्तिकी अपेक्षा रहती है और जब यह सिद्ध हुआ कि, सहजकर्ममें मनुष्य-इच्छाकी कोई अपेक्षा नहीं है, तो अवश्य ही वह दैवीसहायता सापेक्ष्य है, यह मानना ही पड़ेगा ॥ ६८ ॥

अब जैवकर्मके सम्बन्धसे कह रहे हैं—

जैव जीवके अधीन है ॥ ९९ ॥

जैवकर्मके मूलमें पूर्णावयव जीवकी इच्छाशक्ति कार्य्यकारिणी है इस कारण वह जीवके अधीन है,

सहजमायत्तं प्रकृतेः ॥ ९७ ॥ तस्माद्देवसाहाय्यमपेक्ष्यम् ॥ ९८ ॥ जैवं जीवनिघ्नम् ॥ ९९ ॥

ऐसा मानना पड़ेगा। मनुष्यका चाहे प्रारब्ध-संस्कार हो, चाहे क्रियमाण-संस्कार हो और चाहे संचितसंस्कार हो, सभी मनुष्य-वासना-सम्भूत हैं और उस संस्काररूपी बीजका वृक्षरूपी जैवकर्म भी मनुष्य-वासना-सम्भूत है, यह मानना पड़ेगा। अतः जैवकर्म जीवेच्छाके अधीन है, यह सिद्ध हुआ ॥ ९९ ॥

प्रसंगसे इसका दैवसम्बन्ध दिखाया जा रहा है—

इसकारण देवताओंका अर्द्ध-साहाय्यापेक्षी है ॥ १०० ॥

सहजकर्मके साथ जिसप्रकार देवताओंकी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति दोनोंकी अपेक्षा रहती है, जैवकर्ममें वैसा नहीं होता है। जैवकर्ममें केवल देवताओंकी क्रियाशक्तिकी सहायता अपेक्षित होनेसे उसमें देवताओंकी आधी सहायताकी अपेक्षा है, ऐसा कहना पड़ेगा। जैवकर्मका जब संस्कार संग्रह होता है, वह अवश्यही जैववासनासे होता है। इसकारण उसमें जीवकी इच्छाशक्तिका सम्बन्ध होनेसे जैव-कर्ममें जीवका सम्बन्ध अवश्य आधा है, यह सिद्ध है। दूसरी ओर जब कर्मके फलदाता देवतागण हैं, तो यह भी सिद्ध हुआ कि, देवताओंकी क्रियाशक्ति उसमें अपेक्षित है अतः देवताओंका आधा सम्बन्ध जैवकर्मके साथ रहता है ॥ १०० ॥

अब स्थूलप्रपंचमें कर्मका सम्बन्ध दिखा रहे हैं—

कर्मके द्वारा स्थूलसम्बन्धयुक्त आकर्षण और विकर्षणशक्ति उत्पन्न होती है ॥ १०१ ॥

कर्मके प्रभावसे ही स्थूलप्रपंचमें आकर्षण और विकर्षणशक्तिका आविर्भाव होता है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुसे लेकर बृहत्से बृहत् ग्रह उपग्रह पर्य्यन्त सबमें जो आकर्षण विकर्षण शक्ति है, वह कर्म-जनित है। स्थूलप्रपंचके सब स्थानोंमें दो शक्तियाँ प्रत्यक्ष विद्यमान हैं। उनसे तीन अवस्थाएँ बनती हैं। एक आकर्षणकी अवस्था, दूसरी विकर्षणकी अवस्था और तीसरी दोनोंके समन्वयकी अवस्था। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, बालुके परमाणु परस्परमें आकर्षित होकर कंकर या पत्थर बनता है। यह बननेकी अवस्था आकर्षणकी अवस्था है। जब उनमें नोना लगकर परमाणु अलग अलग हो जाते हैं, तब विकर्षणकी दशा होती है और बीचकी दशामें जब आकर्षण और विकर्षणका समन्वय रहता है, वही स्थितिकी अवस्था तीसरी है। ये दोनों शक्तियाँ और ये तीनों अवस्थाएँ सब समष्टि और व्यष्टिकर्म-जनित हैं ॥ १०१ ॥

प्रसंगसे इन दोनों शक्तियोंका गुणके साथ सम्बन्ध दिखाया जाता है—

दोनों रजस्तमोमूलक हैं ॥ १०२ ॥

इस त्रिगुणात्मक प्रपञ्चका सब अंग-उपांग त्रिगुणसे रहित नहीं है। जब संसार प्रपंचकी मूल-कारण मूलप्रकृति त्रिगुणात्मिका है, तो उससे उत्पन्न सब प्रपञ्च भी त्रिगुणात्मक हैं। उसी प्राकृतिक नियमके अनुसार आकर्षण विकर्षण दोनों शक्तियोंमेंसे आकर्षण रजोगुण-सम्भूत और विकर्षण तमोगुण-सम्भूत है, ऐसा समझना चाहिये। प्रपंच-की तीनों अवस्थाएँ देखनेसे ऐसा ही सिद्ध होता है।

अतस्तदर्द्धम् ॥ १०० ॥ कर्मणाकर्षणविकर्षणे स्थूलसम्बद्धे ॥ १०१ ॥ रजस्तमोमूलकमुभयम् ॥ १०२ ॥

जब परमाणु परमाणु परस्परमें आकर्षित होते हैं, वही भगवान् ब्रह्माका सृष्टि-कार्य्य है, वह अवश्य ही रजोगुणजनित है। जब दोनों शक्तियाँ बराबरकी रहती हैं, उसी दशामें भगवान् विष्णुका स्थितिकार्य्य समझने योग्य है। स्थिति-अवस्था अवश्य ही सत्त्वगुणात्मक है और तीसरी अवस्था वह है, जब परमाणुओंमें विकर्षण होकर परमाणु अलग अलग हो जाते हैं, यह भगवान् रुद्रका कार्य्य तथा तमोगुणात्मक है। सुतरां, आकर्षणशक्ति राजसिक और विकर्षणशक्ति तामसिक है ॥ १०२ ॥

अब सूक्ष्मप्रपंचमें उसका सम्बन्ध दिखाया जा रहा है—

सूक्ष्ममें रागद्वेष है ॥ १०३ ॥

जैसे स्थूल प्रपंचमें आकर्षण विकर्षण है, वैसेही सूक्ष्म प्रपंचमें रागद्वेष है। वृत्तिराज्यमें रागजनित सब वृत्तियाँ रजोगुणसम्भूत हैं और द्वेषजनित सब वृत्तियाँ तमोगुणसम्भूत हैं। बहिर्जगत्में जैसा आकर्षण विकर्षण शक्तियाँ हैं, अन्तर्जगत्में भी ठीक वैसी ही रागद्वेषजनित वृत्तियाँ हैं। देखने में भी ऐसा ही आता है कि, रागमें एकका दूसरेमें आकर्षण है और द्वेषमें एकका दूसरेसे विकर्षण है। मित्रोंके परस्परमें राग रहनेसे एक दूसरेकी सब बातें खिंचती हुई होती हैं और उपादेय लगती हैं। उसी प्रकार शत्रुओंमें द्वेष रहनेसे एक दूसरेकी सब बातें चित्तको धक्का देनेवाली होती हैं और हेय प्रतीत होती हैं ॥ १०३ ॥

उसका प्रधान फल कहा जाता है—

वे सृष्टि और लयमूलक हैं ॥ १०४ ॥

चाहे अन्तर्जगत्में हो, चाहे बहिर्जगत्में हो, इन दोनों शक्तियोंमें एक सृष्टिके लिये है और दूसरी लयके लिये है। बहिर्जगत्में आकर्षण सृष्टिके लिये है और अन्तर्जगत्में राग सृष्टिके लिये है, दूसरी ओर बहिर्जगत्में विकर्षण प्रलयके लिये है और अन्तर्जगत्में द्वेष लयके लिये है। सृष्टि और लयके मूलमें सर्वस्थानोंमें और सर्व अवस्थाओंमें यही मूल-तत्त्व विद्यमान है। स्थूलजगत्में परमाणुसे लेकर ग्रह उपग्रह पर्यन्तमें जब आकर्षण क्रिया होती है तब सृष्टि उत्पन्न होती है और जब विकर्षणक्रिया होती है, तब प्रलय हो जाता है। सृष्टि होतेसमय परमाणु परमाणु खिंचकर, पंचतत्त्वात्मक नाना प्रकारकी स्थूल सृष्टि बनाते हैं। ग्रह-उपग्रह आदि भी ऐसे ही बनते हैं। ब्रह्माण्डका प्रलय होते समय अथवा प्रस्तर, लौह आदि स्थूलपदार्थोंका लय होते समय परस्परमें मिले हुए परमाणु अलग अलग हो जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि, स्थूल प्रपञ्चमें आकर्षण सृष्टिका कारण है और विकर्षण प्रलयका कारण है। उसी प्रकार अन्तर्जगत्में विचार करनेसे पाया जायगा कि, राग सृष्टिका हेतु है और द्वेष प्रलयका हेतु है। रागके कारण ही प्रवृत्ति होती है, रागके कारण ही पिता, पुत्र, पति, स्त्री आदिका सम्बन्ध स्थित रहताहै रागके कारण ही स्त्री-पुरुषजनित सृष्टि उत्पन्न होती है। सिद्धान्त यह है कि, राग प्रवृत्तिका हेतु है और प्रवृत्ति सृष्टिका हेतु है। उसी प्रकार द्वेषके कारण प्रवृत्तिसे अरुचि होती है, द्वेषके कारण ही विषयसे साधकको वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्यसे मुक्तिका द्वार उद्घाटित

सूक्ष्मसम्बद्धौ रागद्वेषौ ॥ १०३ ॥

सर्गविसर्गनिमित्तम् ॥ १०४ ॥

होता है। अब विषयोंमें द्वेषसे प्रवृत्तिका नाश होकर निवृत्तिका उदय होता है और निवृत्तिसे विषयका त्याग होकर लयक्रियाकी सार्थकता होती है। सुतरां यह मानना ही पड़ेगा कि, इन दोनों शक्तियोंमेंसे एक सृष्टिकी हेतु है और दूसरो लयकी हेतु है ॥१०४॥

प्रसंगसे सृष्टि और लयका नैसर्गिकत्व सिद्ध किया जाता है—

अतः सृष्टि और लय स्वाभाविकहैं ॥१०५॥

जब ब्रह्मप्रकृति त्रिगुणात्मिका है और जब प्रकृतिके रज और तमके द्वारा ही पूर्वकथित द्विविध शक्तियोंका उदय होकर सृष्टि और लयकी क्रिया संसाधित होती है, तो यह स्वतःसिद्ध है कि, सृष्टि और लय स्वाभाविक हैं। जब ब्रह्म नित्य है, उसकी प्रकृति भी नित्य है, जब प्रकृति नित्य है, तो प्रकृतिके तीन गुण भी नित्य हैं, और जब तीन गुण स्वाभाविक और नित्य हैं, तो उन तीन गुणोंमेंसे रज और तमकी क्रिया भी स्वाभाविक होगी। अतः रजोगुणकी सृष्टिक्रिया और तमोगुणकी लयक्रिया भी स्वाभाविक है, इसमें सन्देह नहीं ॥१०५॥

अब सत्त्वगुणके उदयका विज्ञान कह रहे हैं—

दोनोंकी समतामें सत्त्वगुणका उदय होता है ॥१०६॥

जब रजोगुण और तमोगुणका समन्वय रहता है, तब सत्त्वगुणका उदय होता है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, जब बहिर्जगत्में आकर्षण और विकर्षणशक्तिका समान अधिकार रहता है, अर्थात् न आकर्षणशक्ति अधिक बढ़ने पाती है, न विकर्षणशक्ति अधिक बढ़ने पाती है, ऐसी दशामें सत्त्वगुणका उदय होता है और यही जगत्की स्थिति-अवस्था है। स्थूलजगत्में आकर्षण-विकर्षणादि एक दूसरेको आकर्षणभी करते हैं और धक्का भी देते हैं। क्योंकि ये दोनों शक्तियाँ स्वाभाविक हैं। परन्तु जबतक आकर्षणशक्ति और विकर्षणशक्ति इन दोनोंमें से कोई भी अधिक बढ़ने नहीं पाती और बराबर रहती है, तबतक ग्रह-उपग्रहगण अपनी अपनी कक्षामें वर्त्तमान रहते हैं और यही स्थितिकी अवस्था है। इसीप्रकार अन्तर्जगत्में जब राग और द्वेषका समन्वय रहता है, तभी वह सत्त्वगुणकी अवस्था है और वही विश्वधारक धर्मका पूर्णाधिकार है ॥ १०६ ॥

उसका फल कहा जाता है—

अतः स्थितिमूलक है ॥ १०७ ॥

रजोगुणसे सृष्टि, तमोगुणसे लय और सत्त्वगुणसे स्थिति हुआ करती है। अतः जब यह सिद्ध हुआ कि, उभयशक्तियोंके समन्वयसे ही सत्त्वगुणका उदय होता है, तो यह भी सिद्ध हुआ कि, उभयशक्तियोंकी साम्यावस्थासे ही स्थिति होती है। रज और तम इन द्विविध शक्तियोंके समन्वयसे ही सात्त्विकशक्ति प्रकट होती है और वही सात्त्विकशक्ति बहिर्जगत् और अन्तर्जगत्, स्थूल और सूक्ष्म तथा ब्रह्माण्ड और पिण्ड सब स्थानोंमें स्थिति उत्पन्न करती है ॥ १०७ ॥

प्रसंगसे धर्मके साथ उसका सम्बन्ध दिखाया जाता है—

तावतो नैसर्गिकौ ॥ १०५ ॥ उभयसाम्ये सत्त्वम् ॥ १०६ ॥ स्थितिमूलमतः ॥ १०७ ॥

वह धर्मकी प्रतिष्ठाका स्थान है ॥ १०८ ॥

यह पहले ही सिद्ध हो चुका है कि, सत्त्वगुण-वर्द्धक यावत् क्रियाही धर्म कहाती है। सत्त्वगुणकी क्रमाभिवृद्धि ही धर्मका मूल है। अतः जब उभय-शक्तियोंके समन्वयसे ही सत्त्वगुणका उदय होता है तो, यह मानना ही पड़ेगा कि, यह अवस्था ही धर्मकी प्रतिष्ठाका स्थान है। जहाँ जहाँ रज-तम-मूलक उभयविध शक्तियोंका समन्वय होता है, वहीं धर्मका उदय बना रहता है। यद्यपि राजसिकधर्म और तामसिकधर्मभी मुख्य और गौण विचारसे कहे जाते हैं, परन्तु वह अधिकार त्रिगुणविचारसे निर्णय किया जाता है; अर्थात् सत्त्वमूलक धर्मके ही वे तीनों अवान्तर भेद हैं। वस्तुतः धर्मकी प्रतिष्ठाका स्थान पूर्वकथित द्विविध शक्तियोंके समन्वयसे उत्पन्न सत्त्वगुण ही है ॥ १०८ ॥

दूसरा सम्बन्ध दिखाया जा रहा है—

वह विद्याका क्षेत्र है ॥१०९ ॥

विद्याका स्वरूप पहलेही भलीभाँति कहा गया है। विद्या जब ज्ञानजननी है और विद्या जब सत्त्वगुणमयी है, तो विद्याका क्षेत्र रज और तमकी शक्तियोंके समन्वयसे उत्पन्न शुद्धसत्त्व ही होगा, इसमें सन्देह ही क्या है। साधकमें जितना सत्त्व-गुणका अधिकार बढ़ता जायगा, उतनी ही उसमें विद्यादेवीकी ज्योति विकसित होती जायगी। सत्त्वगुणको बढ़ाना ही विद्यादेवीकी कृपा प्राप्त करना है। सत्त्वगुणकी अभिवृद्धिके साथ ही साथ मल, विक्षेप और आवरणका नाश होकर वह क्षेत्र विद्यादेवीके अधिष्ठानके उपयोगी बन जाता है ॥ १०९ ॥

और भी सम्बन्ध दिखाया जा रहा है—

कैवल्यकारण भी है ॥ ११० ॥

रज और तमके समन्वयसे उन दोनोंको अभिभूत करके जब सत्त्वगुणकी प्रतिष्ठा होती है, वही सत्त्व-गुणकी प्रतिष्ठाकी अवस्था जैसी धर्मप्रकाशक है और जैसा विद्याका क्षेत्र है, उसीप्रकार वह कैवल्यप्राप्तिका कारण भी है। रज और तमको दूर करके जितना जितना सत्त्वगुण मुमुक्षुमें बढ़ता जाता है, उतना ही वह अधिकसे अधिक धर्मात्मा होता हुआ आत्मज्ञान-की अभिवृद्धि करता हुआ ज्ञानजननी-विद्याकी कृपा प्राप्त करता है और क्रमशः तत्त्वज्ञानकी उन्नति करता हुआ कैवल्यपदका अधिकारी बन जाता है। अतः पूर्वकथित स्थिति कैवल्यका भी कारण है ॥ ११० ॥

(क्रमशः)

भावी

राजतिलक टल गया वहाँ थी बदी खाक जङ्गलकी।
बिखरी श्री छप्पर फटकर मिल गई विभूति महल की ॥
आशा-आशा बुझे प्राण था सपना किन्तु सफल है।
भावी तेरे खेल अनोखे कौन जानता कलकी ॥

मोहन वैरागी

प्रतिष्ठास्थानं धर्मस्य ॥ १०८ ॥ विद्याक्षेत्रम् ॥ १०९ ॥ कैवल्यकारणं च ॥ ११० ॥

महापरिषद् सम्वाद

आर्यमहिला-महाविद्यालयमें गत १५ अगस्तको प्रातःकाल १०॥ बजे नगरपालिकाके अध्यक्ष और काशीके नामाङ्कित रईस श्रीमान् राय गोविन्दचन्दकी अध्यक्षतामें बड़े समारोहके साथ स्वतन्त्रतादिवस मनाया गया। कार्यक्रम भगवत्प्रार्थनासे प्रारम्भ हुआ। छात्राओंके ललित संगीत, नृत्य, वाद्य आदि के अनन्तर अध्यक्षने अपने भाषणमें महात्मा गान्धीको श्रद्धाञ्जलि अर्पित की, जिनके नेतृत्वमें देश स्वतन्त्र हुआ। उपस्थित विशिष्ट व्यक्तियोंमें श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढनढनिया, श्रीमान् सेठ नन्दलाल भुवालका, श्रीमङ्गलाप्रसाद सिंह, सेठ शिवकुमार भुवालका, पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा, श्रीमान् पं० रामशंकरजी वैद्य, लाला बालादीन आदिके नाम उल्लेखनीय है। छात्राओं द्वारा "वन्दे मातरम्" गानके बाद उत्सव समाप्त हुआ।

श्री आर्यमहिला-महाविद्यालय इन्टरकालेजमें गत ४ सितम्बरको श्रीकृष्णजन्माष्टमीका महापर्व छात्राओंने बड़े उत्साहके साथ मनाया। इस अवसर हिन्दूजगत्के हृदयसम्राट् पूज्यपाद श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराजका पदार्पण हुआ था। वैदिक पण्डितोंद्वारा श्रीमहाराजका विधिवत् पूजन हुआ। अनन्तर मङ्गलाचरणसे कार्यारम्भ हुआ। छात्राओं द्वारा 'कालियदमन' 'विप्रपत्नीपर कृपा आदि अभिनय तथा राधाकृष्णनृत्य एवं मीराके भजन बड़े मनोहारी थे। अन्तमें पूज्यपाद श्रीकरपात्रीजी महाराजका प्रवचन हुआ।

श्री महाराजने कहा कि भगन्नाम स्मरण करते हुए स्वधर्ममें निष्ठा, अधर्मसे निवृत्ति, परस्पर सद्भावना हो तो व्यष्टि समष्टि सबका कल्याण होता है। भगवान् धर्मकी रक्षा एवं अधर्माभ्युत्थान मिटानेके लिए निर्गुण निराकार भगवान् व्रजेन्द्रनन्दके रूपमें अवतार लेते हैं। जैसे किसी भी व्यवहारके लिए प्रखर प्रकाश आवश्यक है वैसे ही सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्ताराष्ट्रीय व्यवहार चलाने, लौकिक, पारलौकिक अभ्युत्थान एवं उनके साधनोंमें ज्ञानके लिए भी शास्त्र अपेक्षित होता है। संसारमें अपने मातापिताका परिज्ञान प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाणसे नहीं किन्तु शब्दप्रमाणसे ही होता है। अनुमान प्रमाणमें पशु बन्दर आदि भी चतुर हैं। रोटी देखकर प्रवृत्त होना और दण्डा देखकर भागना वह भी जानता है। जो प्रत्यक्षानुमानाश्रिता मतिकी गतितक ही तत्त्व मानते हैं उनकी गणना बानरोंसे अधिक नहीं की जा सकती। किसी भी कार्यके औचित्य-अनौचित्यको समझनेके लिए काम-क्रोध-लोभादिका वेग रोकना एवं बुद्धिकी शान्तता अपेक्षित होती है। वेगको रोकनेका एकमात्र साधन धर्म है। इसलिए गीताकारने कर्त्तव्यका निर्णय शास्त्रद्वारा सम्पादन करना बतलाया है। धार्मिक व्यवस्थाकी रक्षाके लिये ही भगवान्का अवतार होता है। मात्स्य न्यायकी दुरवस्था दूर करनेके लिए शासन अपेक्षित होता है। जबसे नियम्य तभीसे नियामक और तभीसे नियन्त्रणका विधान होना चाहिये। इसीलिये अनादिजीवजगत्के कल्याणके लिए अनादि परमात्माका विधानभी अनादि होना चाहिये। वही परमेश्वरीय विधान वेद है। भाई-बहनकी शादीके औचित्य-अनौचित्यका निर्णय प्रत्यक्षानुमानके

आधारपर नहीं किया जा सकता। वह तो शास्त्र-द्वारा ही जाना जा सकता है। धर्मकी रक्षाके लिए भगवान्‌का अवतार होनेपर उनकी बड़ी रोचक लीला होती है। सिनेमा आदि उसकी सोलहवीं कला भी नहीं हो सकते। विधि-निषेध साधनमें होता है, फलमें नहीं। भगवान् कृष्ण फल हैं, साधन नहीं। समाजवादी या धर्मनिरपेक्षतावादी लोग रोटी-कपड़ेकी व्यवस्था कर लेनेमें ही अपनी इति-कर्तव्यताकी समाप्ति मानते हैं पर वह भी उचित न हो सकी। गोचर-भूमि जोती गयी अन्न उत्पादनके लिए तो दैवी कोप ऊपरसे आ गया। बिना धार्मिक व्यवस्थाके सबकी रक्षाकी गारण्टी केवल लौकिक साधनोंके ऊपर देना शास्त्रज्ञोंकी दृष्टिमें इससे बढ़कर मूर्खता और कोई नहीं। जिन लोगोंने समाचार-पत्र, रेडियो आदिके समाचारका गम्भीर अध्ययन किया है, वे समझते हैं इधर हिटलरके समान शक्ति-संग्रह करने वाला विजयपर विजय प्राप्त करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं हुआ। परन्तु प्रकृति विरोधके कारण उसका भी घोर पतन हुआ। लोग कहते हैं कि भारत दिनरात मरने जीनेकी चिन्तामें रहता, इसे इस लोककी चिन्ता ही नहीं रहती, किन्तु बात ऐसी नहीं है। शास्त्रोंने कहा है कि विद्या और अर्थका सञ्चय अपनेको अजर अमर समझकर करना चाहिये। प्रतिदिन कमाना प्रतिदिन खाना यह कोई अच्छी स्थिति नहीं। स्वस्थताका सुख स्वस्थ प्राणीको अनुभूत नहीं होता किन्तु बीमार होनेपर बीमारी निवृत्त होनेपर अनुभूत होता है। अतः रोग पैदाकर रोगनिवृत्ति द्वारा स्वस्थताका आनन्द लेना भारतीय पद्धति नहीं। किन्तु भारतीय पद्धति तो वह है कि एकबार इतना कमाया जाय कि फिर कमाना न पड़े। अर्थका गौण प्रयोजन भोग, मुख्य प्रयोजन धर्म एवं धर्मका गौण प्रयोजन अर्थ एवं मुख्य फल भगवत्प्राप्ति है। इसीतरह कामका भी अन्तिम तात्पर्य भगवत्प्राप्ति है। भगवल्लीलाका चिन्तन भवरोगका औषध होते हुये भी अत्यन्त मधुर है। पिता एवं आचार्य-पुत्र एवं शिष्यको पवित्र नहीं बना सकता। केवल माता ही पुत्रको योग्य एवं पवित्र बना सकती है। स्त्रियोंको पुरुषोंकी बराबरीका दर्जा देना उनका अपमान करना है पतन करना है। पिताकी अपेक्षा हजार गुना बड़ा दर्जा माताका मनुने बताया है। भारतमें १६, १७ करोड़ पुरुषोंने तलवार बन्दूक चलाकर यदि कोई चमत्कार पूर्ण कार्य नहीं किया तो दो चार करोड़ स्त्रियाँ ही बन्दूक चलाकर क्या कर, लेंगी? वे तो घरकी चहारदिवारीके भीतर रहकर एक हरिश्चन्द्र रामचन्द्र जैसा पुत्र पैदा कर दें तो देशका मुख उज्वल कर सकती हैं। यह शास्त्रोंका सिद्धान्त है। यदि बुद्धि शास्त्रानुसारिणी होंगी तो उसीसे माताएँ पतिव्रता होंगी, धर्मकी रक्षा अधर्मकी निवृत्ति होगी, देश एवं विश्वका कल्याण होगा।

अनन्तर भगवान्‌की पूजा आरती और प्रसाद वितरणके पश्चात् समारोह समाप्त हुआ। विद्यालयका हाल नर-नारियोंसे इतना भरा था, कि पीछे आने-वाले सैकड़ों व्यक्तियोंको बाहर ही खड़े रहना पड़ा उपस्थित विशिष्ट सज्जनोंमें लखनऊ विक्रमाजीत-काटनमिलके श्रीमान् रणजीत सिंह जी, श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढनढनिया, श्रीमान् सेठ नन्दलाल झुवालका, श्रीमान् जी० डी० माथुर, बा० देवी नारायणजी आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका विना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीखतक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ़ करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५) प्रतिमास
„ „ तीसरा पृष्ठ	२५) „
„ „ चौथा पृष्ठ	३०) „
साधारण पूरा पृष्ठ	२०) „
„ १/२ पृष्ठ	१२) „
„ १/४ पृष्ठ	८) „

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

वाणी-पुस्तकमाला

का

अद्वितीय दार्शनिक प्रकाशन

श्रीभगवद्गीता

गीता-तत्त्व-बोधिनी टीका-सहित

(दो भागोंमें सम्पूर्ण)

लोकप्रसिद्ध श्रीभगवद्गीताके गूढ़ दार्शनिक तत्त्वोंको अत्यन्त सरलतासे समझनेके लिये गीता-तत्त्व-बोधिनी टीकासे बढ़कर अभीतक गीताकी कोई दूसरी टीका प्रकाशित नहीं हुई है।

पूज्यपाद श्री १९०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजके वचनामृतद्वारा गीताके गूढ़ रहस्योंको समझनेके लिये गीताको प्रस्तुत टीका एक अनुपम साधन है। अवश्य अध्ययन कीजिये और आध्यात्मिक आनन्द तथा शांति प्राप्त कीजिये। साथ ही ऐसे अमूल्य ग्रन्थरत्नके संग्रहद्वारा अपनी पुस्तकालयकी शोभा बढ़ाइये। आज ही एक प्रतिका आर्डर भेजिये। अन्यथा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; थोड़ी प्रतियाँ ही छपी हैं।

मूल्य सम्पूर्ण प्रतिका ७॥)

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक

श्रीवाणी-पुस्तकमाला

महामंडल भवन

जगतगञ्ज, बनारस कैन्ट।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

मुद्रक :—श्री कालाचाँद चटर्जी, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की सचित्र मासिक मुखपत्रिका

कार्तिक सं० २००७ | वर्ष ३२, सख्या ७, | अक्टूबर १९५०

ऐसी मूढ़ता या मनकी ।

परिहरि राम भगति सुरसरिता
आसकरत ओसकनकी ।

धूम समूहनिरिखि चातकज्यों
तृषित जनि मतिधनकी ।

नहि तहँ सीतलता न वारि पुनि
हानि होत लोचनकी ।

ज्यों गज-काँच विलोकि सेन जड़
छाँह आपने तनकी ।

टूटत अति आतुर अहार बस
छति बिसारि आननकी ।

कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि
जानत हौं गति मनकी ।

तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुःख
करहु लाज निज पनकी ।

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी एम. ए., बी. टी.

विषय-सूची

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

कार्तिक सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ७, | अक्टूबर १९५०

देवि ! प्रपन्नार्तिहरे ! प्रसीद,

प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।

प्रसीद विश्वेश्वरि ! पाहि विश्वं

त्वमीश्वरी देवि ! चराचरस्य ॥

शरणागतके दुःखको दूर करनेवाली ! देवि ! तुम प्रसन्न हो, निखिलविश्वकी जननी ! तुम प्रसन्न हो । चराचर जगत्की एकमात्र ईश्वरी, तुम विश्वपर प्रसन्न हो और उसकी रक्षा करो ।

आत्म-निवेदन

रचयामास वानरम्

बृटिश शासनने हिन्दू-कोडबिलका जन्म दिया था। जबसे इसका सूत्रपात हुआ, तबसे सभी श्रेणीकी हिन्दूजनता इसका विरोध करती आ रही है। सरकारी रिपोर्टमें ही इसका उल्लेख है, कि इस बिलका जितना विरोध हुआ, अब तक किसी बिलका उतना नहीं हुआ। बृटिशशासनको जिस किसी साधनसे अपने स्वार्थोंकी सिद्धि करनी थी, उसने इसके लिये भेदनीतिको अपना शस्त्र बनाया, जिन्ना-अम्बेदकरकी सृष्टि की और हिन्दुओंके साथ लड़नेके लिये अखाड़ेमें उतार दिया। उसके पापोंका घड़ा भर गया और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि वह भारतको अपनी मुट्ठीमें नहीं रख सका, उसे यहाँसे जाना पड़ा; जाते-जाते भी हिन्दुस्तानकी छातीपर पाकिस्तान बनाकर ही गया जिससे दोनों परस्पर लड़ते रहे और भारत कभी बलशाली राष्ट्र न बन सके। उसी बृटिश शासन-प्रसूत यह हिन्दूकोडबिल धारासभाके नवम्बरके अधिवेशनमें पुनः उपस्थापित होने जा रहा है। स्वतन्त्र भारतके सूत्रधारोंको उचित था कि, बृटिश शासन-प्रसूत इस हिन्दकोड-बिलको रद्दीकी टोकरीमें फेंक देने और हिन्दू जनताके साथ न्याय करके उसका विश्वासभाजन बनते, परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। हमारे प्रधान-मंत्रीने अपने सरकारके अस्तित्वकी बाजी लगाकर उसे पास करनेकी ठान ली है। समाज-सुधारके नामपर वैदिक हिन्दूधर्मके आधारभूत सिद्धान्तोंपर हिन्दूकोडद्वारा कुठाराघात करनेका कुचक्र चल रहा है। कुछ मनचले पुरुष और तलाककी तितिलियाँ इसका समर्थन भी कर रही हैं। वैदिक विवाह-संस्कार, वर्णाश्रमव्यवस्था, सतीत्व-संस्कार जो हजारों हजारों वर्षोंसे अनुभूत और परीक्षित हो चुके हैं और जिनके कारण हिन्दूजाति अनेक प्रचण्ड प्रहारोंको सहकर आज भी अपने स्वरूपमें जीवित है, उनके स्थानपर सुधारके नामपर पाश्चात्य देशोंकी निन्दनीय कन्ट्रैक्टका विवाह तलाकप्रथाआदि लानेका प्रयत्न ठीक ऐसा ही है जैसा "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्"।

सती देवियाँ चेतें

इतिहास इसका साक्षी है कि, जब जब भारत-पर बड़े-बड़े संकट आये, धर्म, संस्कृति और स्वतन्त्रता खतरेमें पड़ी, तब-तब यहाँके संतों एवं सतियोंने अपनी तपस्या, त्याग एवं बलिदानके बलसे इसकी रक्षा की। यही कारण है कि, शताब्दियोंसे अनेक आक्रमण एवं प्रहारोंको सहकर पवित्र हिन्दूसंस्कृति एवं हिन्दूधर्म अबतक जीवित है। भगवान् बुद्ध सन्त थे, भगवान् आदि शङ्कराचार्य सन्त थे, भट्टपाद कुमारिल सन्त थे, समर्थ रामदास सन्त थे, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नानक आदि दसों गुरु, और स्वामी दयानन्द आदि सब सन्त ही थे। इसीप्रकार महारानी पद्मिनी, महारानी कर्मावती, महारानी वीरा, महाराणाप्रताप की रानी, जवाहर बाई, साध्वी किरणदेवी, कर्मदेवी कमलावती, कर्णवती, महारानी लक्ष्मीबाई आदि सतियाँ थीं। ऐसे सन्त और सतियाँ न हुई होती तो भारत आज भारत न होता। हिन्दूसंस्कृति और हिन्दूका नाम-निशान नहीं होता। इन सन्तों एवं

सतियोंकी परम पवित्र विमल कृतियाँ आज भी भारतको भारतीयताका पाठ पढ़ा रही हैं। इसमें भी विशेषता तो सतियोंकी ही है, क्योंकि इन सन्त महापुरुषोंको जाननेवाली, इनको अपने अङ्कमें खिलानेवाली और अपने पवित्र दूधके साथ साथ इनके हृदयोंमें त्याग, तप, बलिदान, शूरता-वीरता आदिके भावोंको भरनेवाली ये सती देवियाँ ही हैं। आज देशपर गम्भीर संकट है, सतीत्व, सदाचार, संस्कृति, और धर्म संकटमें है। अब वह समय आ गया है, जब अपने सतीत्व, सम्मान, मर्यादा आदिकी रक्षा हमें स्वयं करनी होगी। अतः अपने प्राचीन परम्परा एवं गौरव को स्मरणकर सतियाँ चेतें और अपने कर्त्तव्यका पालनकर भारतको सर्वनाशसे बचावें। अंगुलियोंपर गिनी जानेवाली तलाककी तितिलियाँ आज सतियोंके प्राचीन पवित्र गौरवको कलङ्कित करनेको कटिबद्ध हैं।

क्या स्त्री-पुरुष समान हो सकते हैं ?

ले० :—श्रीमती सुन्दरीदेवी एम. ए. बी. टी.

आजकल स्त्री एवं पुरुषके समानताका आन्दोलन बड़े जोरोंसे चल रहा है। अतः यह प्रश्न होता है क्या स्त्री और पुरुष समान हो सकते हैं ? इस विषयमें पश्चिमी देशके विचारशील विद्वानोंने भी स्त्री-प्रकृति और पुरुष-प्रकृतिमें मौलिक भेद निर्णय किये हैं यथा :—

These are deep-seated, essential differences, the result of ages of evolution between boy-nature and girl-nature both physically and psychically. These manifest physically in height, weight, blood corpuscles, brain volume, grain structure, and as only recently discovered, in ductless glands—a study of these latter showing, how intimate and delicate is the interaction between our mental life and our bodily functions. [An up-to-date and impartial summing up of the main sex differences is to be found in Dr Heilbroom's 'The opposite Sexes' published by Methuen]. In the course of evolution the male of the species has had occasion to develop his cerebrospinal nervous system more while the female has developed her sympathetic nervous system more specially. Women excel in the subjective, instinctive, intuitional aspectes of human life, while men on the other hand are objective, rational, abstract and analytical. Man is Apollonian. He is interested in form, in abstract thought, Woman is Dionysian. She is rooted in nature, in the elemental and life-giving. Hence Natures' working is through this law of human Bipolarity; for a division of labour between the sexes is part of the scheme of evolution. Hence has been left the age-long need of woman by man and of man by woman, the search for this self-complimen-

tary opposite. Hence the right social ideal is that, which aims at helping the sexes to complement and aid each other. (Dr. Meyrick Booth's Woman and Society. George Allan and Unwin Ltd.)

शत शत वर्षतक क्रमोन्नतिके फलसे स्त्रीप्रकृति और पुरुषप्रकृतिमें स्थूल, सूक्ष्म दोनों ही भावोंमें गम्भीर मार्मिक पार्थक्य हो जाता है। स्थूलरूपसे यह पार्थक्य शरीरकी ऊँचाई, वजन, रक्तके कीट, मस्तिष्कका आकार, मस्तिष्कका गठन और नल-विहीन पेशीके रूपमें प्रकट होता है और इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि शारीरिक भेदके अनुसार मनोवृत्तिमें किस किस प्रकारके भेद हुआ करते हैं। (डा० हिलब्रूनकी पुस्तकमें स्त्री-पुरुषभेदके और भी अनेक वर्णन मिलते हैं। उन्नतिके क्रममें पुरुषको मस्तिष्क और मेरुदण्डसम्बन्धीय स्नायुओंको उन्नत करनेका विशेष मौका मिलता है। मनुष्यजीवनके जिन अंशोंमें मन तथा मानसिक-वृत्तियाँ और नैसर्गिक बुद्धि विचारहीन भावोंका सम्बन्ध है उन सभीमें स्त्रियाँ अधिक निपुण होती हैं, दूसरी ओर जिन अंशोंमें बुद्धि, विचार प्रत्यक्ष व्यवहार या वस्तुविश्लेषणका सम्बन्ध है उनपर पुरुषोंका विशेष अधिकार रहता है। बुद्धिके प्रेरक सूर्यकी प्रकृति मनुष्यकी है, वह बुद्धिजीवी, प्रत्यक्षदर्शी, विचार-प्रधान जीव है, किन्तु स्त्रीमें मायाका भाव अधिक है, बल्कि स्त्रीप्रकृतिकी जड़में ही मायाशक्ति है। वह मनोवृत्ति तथा नैसर्गिकभाव प्रधान जीव है। प्रकृति-का क्रमोन्नतिकार्य इन दोनों विपरीत केन्द्रोंको लक्ष्य करके इनमें श्रमविभागद्वारा सम्पादित होता है। यही कारण है कि परस्परमें पूर्णता लानेके लिये अनादिकालसे पुरुषको स्त्रीकी चाह और स्त्रीको पुरुषकी चाह रहती है। अतः यथार्थ सामाजिक आदर्श वही कहलावेगा जिसमें स्त्री और पुरुष अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार उन्नति लाभ कर सके और विवाह-सूत्रमें बद्ध होकर पारस्परिक श्रम-विभाग तथा सहायता द्वारा पूर्णताको प्राप्त कर सके।

(डा० मेरिक बुथ)

इसी विचारधाराको अनुभव करके अन्यान्य-वैज्ञानिकोंने और भी विचार किया है। यथा :—

As the Sun, the great manifestation of day, typified the creative force, the positive male element, so the Moon, signifying the supernal feminine principle ranked equally with the forms in talismanic popularity.

(Artie Mae Blackburn–The Alchemy of precious stones—Kalpaka).

The mind has two poles, a nagative and a positive. The emotional side is the negative and the intellectual side is the positive. Likewise the body has two poles The right hand is positive and left negative in all right handed pole.

(The Nature and cultivation of Personal Magnetism.

by Dr. Sheldon Leavitt Kalpaka).

सूर्यशक्ति 'पजिटिभ' (सम) पुरुष शक्ति है जिसके द्वारा सृष्टिको शक्ति प्राप्त होती है, चन्द्रमें 'नेगेटिभ' (विषम) स्त्रीशक्ति है जिसका उपयोग यन्त्रधारणमें बहुधा किया जाता है। (आर्टिमी ब्लेक बर्न)।

अन्तःकरण दो परिधियाँ हैं, एक पजिटिभ और नेगेटिभ। मनका अंश नेगेटिभ और बुद्धिका अंश पजिटिभ है। इसीप्रकार शरीरकी भी दो परिधियाँ हैं, उसमें दाहिना भाग पजिटिभ और बाम भाग निगेटिभ है।

(डा० शेलडन लिभिट)

It is a significant coincidence that the lunar month exactly tallies with woman's Catamenia form menses to menses.

(The Sacrament of Marriage Ceremony)

चन्द्रमाके साथ स्त्रीप्रकृतिकी स्वाभाविक एकता होनेके कारण ही स्त्रियोंका ऋतुधर्म चन्द्रमासके हिसाबसे हुआ करता है। और भी :—

Man and woman evolved on divergent lines from the original impregnated ovum, differing in their metabolic ratio as more katabolic impressions can be studied in the anatomical, physiological and even psychological differences of the male and the female. The costal prominence of men and the pelvic superiority of woman, the great muscular activity of man and the less of it in woman, and the grander masculine cerebrations in the one and the deeper retentivity and application to details in the other are respectively among the famous illustrations of the three sets sexual demorphism, (Cf. Ernest Haekal's Evolution of Man and Havelock Ellis' Man and Woman).

उत्पत्तिके समयसे ही स्त्री और पुरुषकी प्रकृतिमें भेद हैं, पुरुषमें 'कैटाबलिक' और स्त्रीमें 'एनाबलिक' भाव अधिक है। शरीरका गठन, शारीरिक क्रिया, मानसिकभाव, सभीमें यह पार्थक्य प्रकट हुआ करता है। अस्थि-पञ्जरकी विशेषता पुरुषमें और गर्भाशयकि विशेषता स्त्रीमें है। मज्जा और पेशियोंकी क्रिया पुरुषमें अधिक और स्त्रीमें कम है। मस्तिष्क तथा बुद्धि सम्बन्धीय क्रिया पुरुषमें अधिक और धारण तथा छानबीनकी क्रिया स्त्रीमें अधिक है। इस प्रकारसे प्रारम्भसे ही नरनारी भेद बनाया गया है।

(अर्नेष्ट हेकेल और हैभ्लक इलिस)

और भी :—

Consequent upon primary sexual dimorphism and causing it numerous results as secondary characteristics, there are also many important mental and temperamental peculiarities in man and differently in woman, constituting the final list of psychic differences between him and her and serving to bring them together on a moral and mental basis. Greater cerebral variability and appreciation generalisations with lesser attentions to the details of things are masculine. Greater memory and appreciations of details and lesser cerebration are truly feminine. Courage, impetuosity and knocking about in the world for ideals or otherwise are in line with the katabolic nature of man. Greater patience, endurance and sacrifice mark the anabolic nature of the female sex. The maintenance of this

fundamental difference is indispensable for the evolution of species.

(Ernest Haekal)

Variation and preservation are two important functions of evolution being incongruous, they remain divided between man and woman with comparative preponderance. In view of the further possibilities of evolutions, a union between them has been therefore made the sinequa non for the propagation of species.

(A. A. Phillip)

प्रारम्भसे हो दोनों लिङ्गोंके भेद तथा उसीके अनुसार लक्षण भेद होनेसे स्त्री-पुरुषोंके अन्तःकरण और मनोवृत्तियोंमें बहुत कुछ भेद हो जाते हैं। और इसी भेदके कारण ही विवाह सम्बन्धके द्वारा दोनों मिलकर परस्परकी पूर्णता सम्पादन करते हैं। मस्तिष्क सम्बन्धीय अनेक विषयोंमें लगे रहना और अधिक छान-बीनमें न पड़कर मौलिक सिद्धान्तों-पर दृष्टि रखना पुरुष प्रकृतिके लक्षण हैं। अधिक स्मरणशक्ति, अधिक छानबीन और मस्तिष्कसे काम कम लेना स्त्रीप्रकृतिके लक्षण हैं। साहस, उद्यम, जोशके साथ भिड़जाना, लक्ष्यसिद्धिके लिये सर्वत्र विचरण—ये सब पुरुषके 'वैटाबलिक' प्रकृतिके अनुकूल कार्य हैं। अधिक धैर्य्य, सहनशीलता और त्याग तथा समर्पणभाव ये सब स्त्रीजातिकी 'एनवलिक' प्रकृतिके अनुकूल कार्य है। सृष्टिप्रवाह-की क्रमोन्नतिके लिये इस मौलिक भेदकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है।

(अर्नेष्ट हेकेल)

अनेकरूपता और रक्षा क्रमविकासके ये दो आवश्यक कार्य हैं। इनमें एक दूसरेसे पृथक होनेके कारण, एक पुरुषमें दूसरा स्त्रीमें अधिकताके साथ बना रहता है। क्रमविकाशनकी सम्भावनापर विचार करके सृष्टिप्रवाहके विस्तारार्थ विवाहके द्वारा इन दोनोंका मेल करा दिया जाता है।

(ए. ए. फिलिप)

नरनारियोंकी प्रकृतिमें इसप्रकार स्वाभाविक भेदकी दशामें भी यदि कहींपर नरके गुण नारीमें और नारीके गुण नरमें देखनेमें आ जाय तो इस विषयमें कैसा सिद्धान्त करना चाहिये इसपर प्रसिद्ध विद्वान् हर्वर्ट स्पेन्सरने कहा है—

The most serious error usually made in drawing these comparisons (i. e. between the minds of man and woman) is that of overlooking the limit of moral mental power. Either sex, under special stimulations is capable of manifesting powers ordinarily shown only by the other; but we are not to consider the deviations so caused as affording proper measures. Thus to take an extreme case, mammae of men will, under special excitation, yield milks there are various cases of gynaecomatsy on record and in famines infants whose mothers have died have thus been saved. But this ability to yield milk, which, when excited, must be at the cost of masculine strength, we do not count among masculine attributes.

Similarly, under special discipline,

the feminine intellect will yield products higher than the intellects of most men can yield. But we are not to count this productivity as truly feminine, if it entails decreased fulfilment of the maternal functions. Only that mental energy is normally feminine which can co-exist with the production and nursing of the due numbers of healthy children.

स्त्री और पुरुषकी मानसिक शक्तिके विषयमें तुलना करते समय प्रायः यह भारी गलती हो जाती है कि, उनकी मानसिक शक्ति साधारणतः कहाँ है इसे हम देखना भूल जाते हैं। किसी खास उत्तेजनाके वशीभूत होकर इनमें से एक दूसरेके अधिकारकी शक्तिको प्रकट कर सकता है किन्तु ऐसे असाधारण कारणसे शक्तिकी ठीक परीक्षा नहीं होती है। एक असाधारण कारणका दृष्टान्त यह है कि खास उत्तेजनाको पाकर पुरुषके स्तनसे भी दूध निकल आवेगा। स्त्रीजाति-सुलभ गुणोंका इस प्रकार विकाश और भी अनेक मौके पर देखा गया है, जिससे दुर्भिक्षके दिनोंमें मातृहीन शिशुकी प्राणरक्षा हो सकी है। किन्तु इस प्रकार उत्तेजनावश दूध देनेकी शक्तिको पुरुषकी स्वाभाविक शक्ति हम नहीं कह सकते, बल्कि पुरुषशक्तिको नष्ट करके यह स्त्रीजाति-सुलभ शक्ति उसमें आ गई, यही कहना चाहिये। ठीक इसी प्रकारसे खास प्रलयके द्वारा किसी समय किसी स्त्रीकी बुद्धि पुरुषसे भी अधिक विभूतिका विकास कर सकती है, किन्तु यदि ऐसे विकासमें किसी प्रकार मातृगुणका अपचय हो तो इसे यथार्थ स्त्री-बुद्धि विकाश नहीं कहना चाहिये। स्त्रीजातिकी उतनी ही मनोवृत्ति तथा बुद्धिवृत्ति स्वाभाविक है, जिसके रहनेसे सन्तानोत्पादन और सन्तानके पालनमें किसी प्रकारका विघ्न न हो।

स्त्री-पुरुषके शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक मौलिक भेदके विषयमें यहाँ तक पश्चिमी विचारशील विद्वानोंके विचार दिये गये हैं। हमारे ऋषि-मुनियोंने तो सहस्रों वर्ष पहले इन दोनोंके मौलिक भेद तथा उनके प्रकृति-प्रवृत्तिके अनुसार अलग-अलग कर्तव्य बतला रखा है। भगवान् मनुजीने तो सृष्टिके समयकी बात इन शब्दोंमें कही है—

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥

तात्पर्य यह है कि सृष्टिके समय परमात्माने अपनेको दो भागोंमें विभक्त किया और आधेमें नारी आधेमें पुरुष बन गये। उसी नारीमें परमात्माने विराटकी सृष्टि की।

इसमें कौन किस भागमें है, इसका वर्णन भी देवी भागवतमें है, यथा :—

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूवभह।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पमान स्मृतः।

अर्थात् सृष्टिकी इच्छा करके परमात्मा दो भागमें, विभक्त हो गये, वामभाग स्त्री और दक्षिणभाग पुरुष हुआ। इन प्रमाणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, सृष्टिकालके प्रारम्भसे ही स्त्री-पुरुष अलग-अलग उत्पन्न हुए हैं और इनके कर्तव्य भी अलग-अलग हैं। सृष्टिकार्यमें परमात्माकी शक्ति प्रकृतिकी ही प्रधानता है, परमात्मा केवल द्रष्टा मात्र है, जैसा गीतामें :— "मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स चराचरम्" अर्थात् मेरी अध्यक्षतामें प्रकृति चर अचर जगतको प्रसव करती है।

समस्त जगत्की स्त्रियाँ उसी जगन्माताकी अंशरूपिणी हैं, अतः इनके भीतर मातृत्व ही कूट-कूट कर भरा है। ये भावुकता, दया, स्नेह करुणाकी मूर्ति हैं। पुरुषोंमें विचारशक्तिकी प्रधानता है। अतः सन्तानका लालन-पालन, गृहकार्यका सुन्दर सञ्चालन जैसा स्त्रियाँ कर सकती हैं, पुरुष कदापि नहीं कर सकता। कहते भी हैं "गृहिणी गृहमुच्यते" गृहिणी ही गृह हैं। इसका मौलिक कारण यही है कि ये कार्य उनके स्वभाव तथा प्रकृति प्रदत्त है। कोई कोई स्त्री किसी विशेष अवस्थामें पुरुषके कार्य भी कर लेती हैं, वह उसका असाधारण अधिकार है, साधारण नहीं। परन्तु इसका यह कदापि तात्पर्य नहीं है कि स्त्री पुरुषसे हीन है। जहाँ तक सम्मानका सम्बन्ध है, वहाँ तो "पितुः दशगुणा माता गौरवेणाऽतिरिच्यते" और विद्या अध्ययनके समय भी "मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव" आदिकी शिक्षा साथ साथ चलती थी। परन्तु स्त्री-पुरुषोंके प्रकृति-प्रवृत्ति एवं संस्कार एवं शक्तिमें मौलिक भेद होनेके कारण दोनोंको एकही साँचेमें नहीं ढाला जा सकता। जो अल्पदर्शी स्त्री-पुरुषोंको समान करना चाहते हैं, वे भारी भूल करते हैं और मूलमें ही भूल रहनेसे उनको सफलता भी मिलना सम्भव नहीं। परन्तु इस प्रकारकी अनधिकार चेष्टासे समाजको वे बड़ी भारी क्षति पहुँचाते हैं। क्योंकि जो स्त्री पुरुष बननेकी चेष्टा करती है, वह प्रकृति विरुद्ध होनेसे पुरुष तो बन नहीं सकती, अधिकन्तु अपने स्त्रीसुलभ सुन्दर मधुर गुणोंको भी खो बैठती है। पूर्णमातृत्व एवं गृहिणीत्व का विकास करना ही उनकी पूर्णता और यथार्थ उन्नति है। अब पाठक स्वयं सोचें कि स्त्री-पुरुष क्या समान हो सकते हैं?

भक्त जयदेव और पद्मावती

भक्तश्रेष्ठ जयदेव एक प्रसिद्ध भगवद्भक्त हो गये हैं। ये संस्कृतके प्रगाढ़ पण्डित थे इनका 'गीत गोविन्द' नामक संस्कृतका एक अपूर्व ग्रन्थ है, जो भक्तिरसका अपूर्व रसास्वाद कराता है। जगन्नाथ पुरीमें सुदेव नामसे विख्यात भगवद्भक्त ब्राह्मण थे, उन्होंने भगवान्के स्वप्नमें आदेश पाकर अपनी पद्मावती नामकी कन्याका विवाह श्रीजयदेवके साथ करा दिया था, जैसे जयदेव भगवान्के परमभक्त थे, वैसे ही उनकी पत्नी पद्मावती परम सती साध्वी एवं भगवद्भक्त थी। कुछ दिनों बाद भक्त जयदेव गौड़देशके राजा लक्ष्मणसेनके आग्रहसे उन्हींके पास रहने लगे थे। भगवत्कथा कीर्तनमें ही दोनोंका दिन कटता था। पद्मावती अन्तःपुरमें रानीके पास जाया-आया करती थी, वहाँ वे रानीके साथ सत्सङ्ग एवं भगवच्चर्चा किया करती थी। उन्होंने एक दिन सती स्त्रियोंके प्रसङ्गमें रानीसे कह दिया कि, सती स्त्रीका एकमात्र गति एवं परमपूज्य इष्टदेव तो उसका पतिही है। सती स्त्री अपने प्रिय पतिके वियोगको एक क्षणके लिये भी सहन नहीं करती है। पतिके वियोग सुनते ही उसका प्राणान्त हो जाता है।

पद्मावतीके ये बातें सुनकर रानीके मनमें कुछ ईर्षाका भाव जागृत हो गया। उसने पद्मावतीकी परीक्षा लेनेको मन ही मन ठान लिया। वह ऐसे अवसरकी प्रतीक्षामें थी। श्रीजयदेव राजाके साथही

रहते और यदा-कदा राजाके साथ बाहर भी जाया करते थे। एकदिन जब श्रीजयदेव राजाके साथ बाहर गये थे, रानीने अपना उद्देश्य पूरा करनेका निश्चय किया और अपनी मुख-मुद्रा बड़ी गम्भीर और दुःखित बनाकर पद्मावतीसे कहा कि "आह! श्री जयदेव तो वनमें सिंहके शिकार हुए।" इतना सुनते ही पद्मावती अचेत होकर पृथिवीपर गिर पड़ी और उसके प्राण-पखेरु उसी क्षण उड़ गये। रानीने जब देखा कि पद्मावती अब जीवित नहीं तब तो बड़ी व्याकुल हो उठी और सोचने लगी कि जयदेवजी हमें क्या कहेंगे, उनको मैं कौन मुँह दिखाऊँगी। बार बार यही सोचकर वह उद्विग्न हो अपनेको धिक्कार रही थी, इसी समय श्री भक्तराज जयदेव आ गये और उन्होंने अपनी प्रिय पत्नीको निर्जीव पड़ा देखा। परन्तु वे अधीर नहीं हुए, उनको भगवान्की कृपापर दृढ़ विश्वास था किन्तु रानीको बहुत लज्जित एवं दुःखित देखकर कहा कि, आप दुःख न करें और उन्होंने गद्-गद् हृदयसे भगवान्से प्रार्थना करनी प्रारम्भ की। कुछ ही समय बाद पद्मावती उठकर बैठ गयी, जैसा कोई सोकर उठा हो।

इसके कुछ समय बाद श्रीजयदेव राजाकी आज्ञा लेकर पद्मावतीके साथ अपने ग्राम केन्दुविल्व लौट आये और दोनों अनन्यभक्तिके साथ भगवान्की सेवा-पूजामें आनन्दसे अपना समय काटने लगे। एक दिन वे गीतगोविन्दके पद लिख रहे थे। उसमें :—

स्मर गरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनम्—इसके आगेका वाक्य ठीक बैठता नहीं था, देर हो गयी थी, भोजनका समय हो गया, इसी समय पद्मावतीने भोजनके लिये प्रार्थना की। अतः इस पदको असम्पूर्ण ही छोड़कर श्रीजयदेव स्नान करने चले गये। पद्मावती उनकी प्रतीक्षामें बैठी ही थी, इतनेमें श्री जयदेवको वापस आये देख पद्मावती उठ खड़ी हुई। जयदेवने गीतगोविन्दकी पोथी माँगी। पद्मावतीने आश्चर्यसे पूछा कि अभी तो आप स्नान करने गये थे, मार्गसे ही कैसे लौट आये? पद्मावती भगवान्की माया कैसे जान सकती थी। उत्तर मिला कि मार्गमें जाते हुए अन्तिम चरणका स्मरण हो आया, अतः लौट आया हूँ। पद्मावतीने पोथी, लेखनी, स्याही सब लाकर दे दी, जयदेवरूप भगवान्ने "देहि पदपल्लवमुदारम्" लिखकर पदकी पूर्ति कर दी। उसके बाद वहीं स्नान करके भोजन किया और विश्रामके काजसे शयनगृहमें, लेटने चले गये। इधर पद्मावती अपने इष्टदेव पतिदेवके भोजन कर चुकने पर उसी थालमें भोजन करने बैठ गयी। अब श्री जयदेव स्नान करके घर लौटे और अपनी पत्नीको भोजन करते देख आश्चर्यमें डूब गये। क्योंकि इससे पहले कभी भी पद्मावतीने उनसे पहले भोजन नहीं किया था। श्रीजयदेवने आश्चर्य-चकित होकर पद्मावतीसे पूछा—"पद्मे! यह क्या? इससे पहले तुमने कभी भी मेरे पहले भोजन नहीं किया था"। पद्मावतीके आश्चर्यका पार नहीं रहा, उसने कहा "स्वामिन्! आप यह क्या कह रहे हैं? अभी तो आपने अपने गीतगोविन्दके एक पदके अन्तिम चरणकी पूर्ति करके स्नान-भोजन किया और सोने गये।" श्री जयदेव भगवान्की लीला समझ गये।

श्री जयदेव अपने शयनागारमें गये, वहाँ कोई भी नहीं था। पुनः उन्होंने पोथी खोलकर देखी तो उनके विस्मयका ठिकाना नहीं रहा। वे प्रेमानन्दसे

पुलकित हो उठे, उनके दोनों आँखोंसे प्रेमकी अश्रुधारा बह चली, वे प्रेम-गद्‌गद स्वरसे पद्मावतीके भाग्यकी बार बार सराहना करने लगे और कहने लगे, साध्वी! तुम धन्य हो, भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रने तुमको दर्शन दिया। मुझ अभागेको उन्होंने इस योग्य नहीं समझा। इस प्रकार भगवत्प्रेममें विभोर बार-बार विलाप करने लगे। भगवान्‌ने उनकी भक्तिको तीव्र करनेके लिये ही यह लीला की थी।

कुछ वर्षों बाद श्री जयदेव अपनी सती-साध्वी पत्नी पद्मावतीको साथ लेकर वृन्दावन चले गये। वहाँ कलुषनाशिनी कालिन्दीमें स्नान तथा कृष्ण-लीलाचिन्तन करते हुए दोनोंने अपने नश्वर पार्थिव शरीरका त्याग कर इष्टदेवके लोकको प्रस्थान किया। ऐसे दम्पती अपना अपने कुलका तथा सारे संसारका उद्धार करनेमें समर्थ होते हैं।

श्रीभगवद्‌गीता

हिन्दी पद्यानुवाद

श्री मोहन वैरागी

धृतराष्ट्रने कहा

(१)

कुरुक्षेत्रकी पुण्यभूमिमें रणकी इच्छासे एकत्र।
सञ्जय कहो किया क्या सबने मेरे तथा पाण्डुके पुत्र॥

सञ्जयने कहा

(२)

निरख व्यूह पाण्डव-सेनाका राजा दुर्योधन साश्चर्य।
पहुँच निकट आचार्य द्रोणके बोले लखिये हे गुरुवर्य॥

(३)

पाण्डवकी सेना विशाल यह खड़ी समरमें व्यूहाकार।
सज्जित द्रुपदपुत्रद्वारा जो शिष्य आपका विज्ञ अपार॥

(४)

इस सेनामें भीमार्जुनके तुल्य धनुर्धर योद्धा वीर।
अगणित महारथी हैं सात्यकि द्रुपद विराट श्रेष्ठ रणधीर।

(५)

धृष्टकेतु नृप चेकितान ये काशिराज अतुलित बलवान ।
पुरुजित् कुन्तिभोज नरपुङ्गव युधामन्यु रणशूर महान ॥

(६)

शैब्य उत्तमौजा ये योद्धा वीर द्रौपदीसुत सौभद्र ।
कितने अन्य महान शूर हैं उनको आप समझ लें भद्र ॥

(७)

अपनी सेनामें विशिष्ट जो वीर और नायक बलवान ।
उन सबको भी आप जान लें कहता हूँ सुनिये श्रीमान ॥

(८)

शूरशिरोमणि आप महात्मा भीष्म अजेय कर्ण कृपवीर ।
महारथी अश्वत्थामा हैं सौमदत्ति जयद्रथ रणधीर ॥

(९)

वीरविकर्ण आदि योद्धा सब कितने अन्य बलिष्ठ महान ।
नाना शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित जिन्हें न रणमें प्रिय हैं प्राण ॥

[क्रमशः]

एक

घट-घटमें बस वही एक है
उसी एकमें व्याप्त अनेक ।
तुझमें मुझमें इसमें उसमें
सबमें वही झलकता एक ॥
भाँति-भाँतिके रङ्ग रूप हैं
अलग अलग सबकी अनुभूति ।
भिन्न-भिन्न हैं भाव पदोंके
किन्तु एक है लयकी टेक ॥

मोहन वैरागी

कर्ममीमांसादर्शन ।

[गताङ्कसे आगे]

प्रकृत विषयका पुनः अनुसरण कर रहे हैं—

कर्मके द्वारा सृष्टि, स्थिति और लय होता है ॥ १११ ॥

यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि रजोगुणसे सृष्टि होती है, सत्त्वगुणसे स्थिति होती है और तमोगुणसे लय होता है, और इन तीनों गुणोंके अधिष्ठाता यथाक्रम ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं; परन्तु कर्म ही तीनों क्रियाओंका मूल है। यह पहिले ही सिद्ध हो चुका है कि, प्रकृतिके स्पन्दनसे कर्मकी उत्पत्ति है और प्राकृतिक-स्पन्दनसे त्रिगुणके कारण स्वतः ही होता है। दूसरी ओर सृष्टि, स्थिति, लय, ये तीनों क्रियाएँ हैं। इस कारण सृष्टि, स्थिति, लयरूपी फल कर्मसे ही साक्षात् सम्बन्ध रखते हैं। सबसे बड़ा विचारने योग्य विषय यह है कि, सृष्टिस्थितिलय-रूपी फल पूर्वसंस्कारके अनुसार ही होता है। जिस-प्रकार पिण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके मूलमें प्रारब्ध संस्काररूपी कर्मबीज रहते हैं, उसीप्रकार ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लय भी ब्रह्माण्डके समष्टिप्रारब्धके अनुकूल होते हैं। अतः यह सिद्ध हुआ कि, कर्मको ही सृष्टिस्थितिलयका कारण कह सकते हैं ॥ १११ ॥

प्रसंगतः सिद्धान्त कह रहे हैं—

अतः वह ब्रह्म है ॥ ११२ ॥

जब कार्य्यब्रह्मरूपी सृष्टिप्रपञ्चका रूपान्तरसे कर्म कारण है, तो वही ब्रह्मरूप है। श्रीभगवान्ने गीतोपनिषद्में कहा है—

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

अक्षररूप निर्गुणब्रह्मसे प्रकृतिकी उत्पत्ति होती है। वह ब्रह्मका ही स्वरूप है और ब्रह्मप्रकृतिसे कर्मकी उत्पत्ति होती है। इस कारण सर्वव्यापक ब्रह्म यज्ञमें प्रतिष्ठित है, इनमें सन्देह नहीं। वस्तुतः जब ब्रह्ममें और ब्रह्मप्रकृतिमें भेद नहीं है और ब्रह्मप्रकृति और कर्ममें भेद नहीं है, तो कर्म ही ब्रह्मरूप है, यही सिद्धान्त है ॥ ११२ ॥

अब विशेषकर्मका वर्णन कर रहे हैं—

सुकौशलपूर्ण कर्मको यज्ञ कहते हैं ॥ ११३ ॥

यज्ञके लक्षणके विषय में स्मृतिकारोंने यों कहा है—

एवं यज्ञस्तथा धर्म उभौ पर्यायवाचकौ।
कथितौ वेदनिष्णातैः शास्त्रज्ञैः शास्त्रविस्तरे ॥

शास्त्रके जाननेवाले जो वेदनिष्णात जन हैं, वे यज्ञ तथा धर्म पर्यायवाचक शब्द हैं, ऐसा कहते हैं।

गाँठका लगना कर्म है और गाँठका खोलना भी कर्म है। गाँठके लगानेमें डोरी उलझ जाती है और गाँठके खोलनेमें डोरी सुलझ जाती है। डोरी उलझते समय भी हाथका हिलावरूपी कर्म होता है और गाँठके सुलझते समय भी हाथका हिलाना रूपी कर्म हुआ करता है। दोनों ही कर्म हैं। भेद इतना ही है कि, उलझानेका कर्म सुकौशलपूर्ण नहीं है और सुलझानेका कर्म सुकौशलपूर्ण है। इसी प्रकार जीवकी निरङ्कुशतासे जो कर्म होता है, वह सुकौशल-

कर्मणैव सृष्टिस्थित्यन्ताः ॥ १११ ॥ तदतो ब्रह्म ॥ ११२ ॥ यज्ञः कर्म सुकौशलम् ॥ ११३ ॥

पूर्ण नहीं होनेसे अधर्म होता है और उससे आवागमनरूपी बन्धन उलझता जाता है। जो वेद, शास्त्र, गुरु और विवेकके अनुसार कार्य्य होता है, वही सुकौशलपूर्ण कार्य्य है। उससे आवागमनरूपी बन्धन सुलझ जाता है। वही धर्म है और वही सुकौशलपूर्ण कार्य्य यज्ञ कहाता है। केवल शक्तिविचारसे उसको धर्म कहते हैं और क्रियाके विचारसे यज्ञ कहते हैं। शास्त्रोक्त यज्ञ बहुत प्रकारके होते हैं। यथा—दानयज्ञ, तपोयज्ञ, वैदिकयज्ञ, स्मार्तयज्ञ, उपासनायज्ञ, योगयज्ञ, ज्ञानयज्ञ इत्यादि ॥ ११३ ॥

अब महायज्ञका लक्षण कह रहे हैं :—

समष्टिसम्बन्धसे महायज्ञ होता है ॥ ११४ ॥

यज्ञका लक्षण सुनकर जिज्ञासुको स्वतः शंका हो सकती है कि, यज्ञ और महायज्ञमें क्या भेद है। इस कारण पूज्यपादमहर्षिसूत्रकारने इस सूत्रका आविर्भाव किया है। यज्ञके साथ जो 'महा'शब्द प्रयुक्त होता है, वह केवल महिमावाचक या निरर्थक नहीं है। जीवके व्यष्टिगत अभ्युदय और निःश्रेयसप्रद जो सुकौशलपूर्ण कर्म हैं, वे तो यज्ञ कहाते हैं और समष्टिजीवोंके अभ्युदय निःश्रेयसके अर्थ अथवा ब्रह्माण्डके कल्याणार्थ जो सुकौशल कर्मरूपी धर्मसाधन किया जाता है, उसको महायज्ञ कहते हैं। साधारण मनुष्यमें जब तक स्वार्थ अधिक होता है, तब तक उसके अन्तःकरणमें महायज्ञकी महिमाको स्थान नहीं प्राप्त होता। जितनी जितनी साधकमें स्वार्थपरता घटती जाती है और उसके चित्तकी उदारता बढ़ती जाती है, उतना उतना वह महायज्ञका अधिकारी बनता जाता है। जैसा कि, शास्त्रोंमें कहा है :—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

इस वचनका तात्पर्य्य यह है कि, यह अपना है, यह पराया है, इस प्रकारके विचारकरनेवाले लघुचेता पुरुष होते हैं और उदार-चरितवालोंके लिये वसुधा ही कुटुम्ब है।

ऐसे उदारचित्त महापुरुष ही महायज्ञकी महिमा ठीक ठीक समझ सकते हैं तथा उसके अधिकारी हैं। जैवस्वार्थसे रहित परोपकारभावसे युक्त, समष्टि-अभ्युदयसहायक और भगवत्कार्य्यरूप होनेसे ऐसे धर्मकार्यको महायज्ञ कहते हैं ॥ ११४ ॥

इसका अधिकार वर्णन कर रहे हैं :—

चतुर्थाश्रममें भी यह उदारताके साथ अनुष्ठान करने योग्य है ॥ ११५ ॥

उदार-अन्तःकरणयुक्त व्यक्ति ही महायज्ञका अधिकारी होता है, यह पहले कह चुके हैं। गृहस्थादि आश्रममें उदारताके अभ्यासके लिये महायज्ञसाधनका अनुष्ठान विहित है। चतुर्थाश्रमी संन्यासियोंके लिये भी महायज्ञका अनुष्ठान विहित है। क्योंकि महायज्ञ उदारतायुक्त है। चतुर्थाश्रममें कर्मका त्याग विहित है और वहाँ यज्ञादि साधनकी आवश्यकता नहीं रहती। यहाँतक कि, चतुर्थाश्रममें सबप्रकारके यज्ञोंका त्याग कहा गया है; परन्तु महायज्ञका साधन इतना उन्नत है कि, चतुर्थाश्रमियोंके लिये वह कल्याणप्रद होनेसे रूपान्तरमें जगत्-कल्याणके कर्मरूपसे उसका साधन करना उचित है। चतुर्थाश्रममें निवृत्तिकी चरितार्थता होती है तथा चतुर्थाश्रमीका अन्तःकरण भगवद्भावापन्न

समष्टिसम्बन्धान्महायज्ञः ॥ ११४ ॥

उदारमनुष्ठेयस्तुर्य्येऽप्येषः ॥ ११५ ॥

रहता है। ऐसी उन्नत दशामें उदारताकी पराकाष्ठा-प्राप्तिके लिये महायज्ञका अनुष्ठान विहित है। इसी कारण चतुर्थाश्रमधारी तत्त्वज्ञानी महापुरुषगण भी लोकहितकर कार्यमें रत दिखाई पड़ते हैं। उनका जगत्कल्याणकारी व्रत, उनकी जगत्की आध्यात्मिक उन्नतिकी चिन्ता, उनका कर्मयोग, उनका ग्रन्थप्रणयन, उनका जिज्ञासुओंको उपदेशदान आदि महायज्ञका ही परिचायक है॥ ११५॥

और भी कह रहे हैं :—

इस कारण वह महीयान् है॥ ११६॥

केवल उदारचरित महापुरुषगण ही महायज्ञके पूर्णाधिकारी हैं। तुरीयाश्रम, जिसमें कर्मका सम्पूर्णरूपसे त्याग करना पड़ता है, उस दशामें भी महायज्ञ करनेकी आज्ञा है। यह सब महायज्ञकी महिमाका ही प्रमाण है। गृहस्थाश्रममें भी पञ्चमहायज्ञरूपसे इसकी शिक्षा प्रारम्भ होती है और पञ्चमहायज्ञका यहाँ तक महत्त्व रक्खा गया है कि, गृहस्थ यदि पञ्चमहायज्ञ न करे, तो बड़े भारी दोषका भागी होता है। यह सब महायज्ञकी महिमाका ही सूचक है। ज्ञानके अधिदैव ऋषियोंके सम्वर्द्धनके निमित्त वेद और शास्त्रके मननको ब्रह्मयज्ञ, कर्मचालक देवताओंके सम्वर्द्धनके निमित्त हवनको देवयज्ञ, आधिभौतिक सृष्टिके संरक्षक पितरोंके सम्वर्द्धनके निमित्त श्राद्ध-तर्पणादिके द्वारा पितृयज्ञ, सम्पूर्ण प्राणियोंके संरक्षक नाना नैमित्तिक देवताओंके सम्वर्द्धन और उनके द्वारा उक्त प्राणियोंकी मंगल-कामनाके अर्थ भूतबलि आदि भूतयज्ञ और सम्पूर्ण मानवसमाजके निकट कृतज्ञता प्रदर्शनके निमित्त आश्रममें आये हुये आचाण्डाल कोई हो, उसको नारायणबुद्धिसे भोजन करानेको नृयज्ञ कहते हैं, शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके प्रमाण मिलते हैं। यथा :—

पाठो होमश्चातिथीनां सपर्य्या तर्पणं बलिः।
एते पञ्चमहायज्ञा ब्रह्मयज्ञादिनामकाः॥
दिव्यो भौमस्तथा पैत्रो मानुषो ब्राह्म एव च।
एते पञ्चमहायज्ञा ब्रह्मणा निर्मिताः पुरा॥

पढ़ना-पढ़ाना, हवन, अतिथिकी पूजा, श्राद्ध और बलि ये पञ्चमहायज्ञ कहे जाते हैं। यज्ञसम्बन्धीय कार्य, भूतबलि आदि सम्बन्धीय कार्य श्राद्धादि, अतिथियोंकी सेवा और वेदका पढ़ना-पढ़ाना ये पञ्चमहायज्ञ ब्रह्माने पहिले ही बनाये हैं॥ ११६॥

उन दोनोंका साक्षात् फल कहा जाता है :—

उन दोनोंसे अभ्युदय और निःश्रेयस होता है॥ ११७॥

साधारणरूपसे विचार करनेपर यही सिद्धान्त होगा कि, यज्ञके द्वारा अभ्युदय और महायज्ञके द्वारा निःश्रेयस होता है। जब व्यक्तिगत धर्मसाधनमात्रको ही यज्ञ कहते हैं, तो उसके द्वारा जीवको अभ्युदय अवश्यम्भावी है। दूसरी ओर महायज्ञ-साधनमें जब व्यक्तिगत जैवस्वार्थ नहीं रहता है और अपना व्यक्तिगत स्वार्थ छोड़कर केवल जगत्-कल्याणबुद्धिसे ही महायज्ञका साधन करना होता है, तो यह भी स्वतःसिद्ध है कि ऐसे साधन द्वारा निःश्रेयसपद लाभ होना अवश्यम्भावित है। जीवका अहङ्कारजनित स्वार्थबुद्धि ही जब उसके बन्धनकी मौलिक कारण है और महायज्ञमें उसका सम्बन्ध

महीयांस्ततोऽसौ॥ ११६॥

ताभ्यामभ्युदयनिःश्रेयसे॥ ११७॥

नहीं रहता है, तो महायज्ञ निःश्रेयसप्रद होगा, इसमें सन्देह ही क्या है! अब जिज्ञासुओंके हृदयमें यदि यह शंका हो कि, क्या यज्ञसमूह केवल अभ्युदयप्रद ही हैं? उनसे क्या निःश्रेयस नहीं होता है? धर्ममात्र ही अभ्युदय और निःश्रेयसप्रद है, इस सिद्धान्तकी चरितार्थता कैसे होगी? ऐसी शंकाओंके समाधानमें श्रीगीतोपनिषद्के वचन दिये जाते हैं। यथा :—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥
तस्मादसक्तः सततं कार्य्यं कर्म्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

यथार्थ कर्मके अतिरिक्त कर्म करनेसे वह जीव बन्धनयुक्त होता है। इस कारण हे कौन्तेय! यथार्थ कर्म निष्काम होकर करो। अतएव तुम फलासक्तिशून्य होकर सर्वदा कर्त्तव्य कर्मका अनुष्ठान करो। क्योंकि अनासक्त होकर कर्मका अनुष्ठान करनेसे पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है।

तात्पर्य यह है कि, जिसप्रकार महायज्ञसे निःश्रेयसकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार यज्ञसे भी निःश्रेयसकी प्राप्ति हो सकती है; परन्तु साधारणरूपसे नहीं। निष्काम होकर केवल यजनके लिये ही यदि यज्ञ किया जाय, उसमें फलकी अभिसन्धि न रहे, तभी वह यज्ञ महायज्ञकी फल रूपी मुक्ति प्रदान करता है; नहीं तो केवल अभ्युदय देता है॥ ११७॥

प्रसंगके अनुसार अभ्युदय और निःश्रेयसका पूर्ण अधिकार देनेवाले आर्यधर्मका पूर्णचन्द्रकी उपमा से विवेचन किया जाता है :—

आर्यधर्म पूर्णचन्द्रमाकी तरह षोड़श कलाओं-से पूर्ण है॥ ११८॥

अर्थ स्पष्ट है। उन कलाओंमें से पहली कला बताते हैं :—

व्यापक होनेसे पहली सदाचार है॥ ११९॥

पूर्वोक्त सोलह कलाओंमें से पहली कला सदाचार है; क्योंकि वह व्यापक है॥ ११६॥

अब उसका महत्त्व बताते हैं :—

अतः आर्यसंस्कृतिका महत्त्व है॥१२०॥

यही कारण है कि, आर्यसंस्कृतिका इतना महत्त्व है। शारीरिक व्यापार यदि धर्मानुकूल हो तो वह सदाचार कहाता है। मनुष्य कर्म किये बिना नहीं रह सकता। मनुष्य मन, बुद्धि, वचन और शारीरिक व्यापार इस प्रकार चार प्रकारके कर्म करता है। वे कर्म धर्ममूलक होते हैं और अधर्ममूलक भी। अतः धर्मवर्धक जो शारीरिक व्यापार हैं, वही सदाचार है॥ १२०॥

अब हेतुसहित दूसरी कला बताते हैं—

दूसरी कला सद्विचार है। आर्यजातिके शिखा-सूत्र धारण करनेसे॥ १२१॥

सनातनधर्मकी दूसरी कला सद्विचार है। इसका तात्पर्य यह है कि जिसप्रकार धार्मिक व्यक्ति अपनी शारीरिक चेष्टाओंको धर्मानुकूल बनावें तो सदाचारी कहाता है; उसीप्रकार वह अपने विचारोंको जब

षोडशकल आर्यधर्मः पूर्णचन्द्रवत्॥११८॥
तत्र प्रथमः सदाचारो व्यापकत्वात्॥११९॥
अतः आर्यसंस्कृतेर्महत्त्वम्॥ १२०॥
सद्विचारो द्वितीयार्यजातेः शिखासूत्रधारित्वात्॥ १२१॥

धर्मानुकूल बनाता है, तब वह सद्विचारवान् कहाता है। भगवान् ने स्वयं श्रीमुखसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है :—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अर्थात् मनको बुद्धिसे अर्थात् विवेकसे युक्तकर जीवको ऊपर उठावे। उस जीवका इन्द्रियोंसे युक्त मन नीचेकी ओर गिरता है, उसे गिरने न दें। इसका तात्पर्य यह है कि, सदा विवेकयुक्त रहे और इन्द्रियवत् मनको नीचे न गिरने दे। क्योंकि अविवेकी मन जीवका शत्रु है और विवेकयुक्त मन जीवका मित्र है। यही सद्विचारका तात्पर्य है। आर्यजातिकी सब चेष्टाएँ विवेकसे युक्त रहती हैं। इसीसे सद्विचारवान् व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। शिखा और सूत्र इसका द्योतक है।

आर्यजाति शिखा-सूत्रधारी है। सिरपर ब्रह्मरन्ध्रके स्थानमें गायके खुरके बराबर जो केशोंका पुञ्ज बढ़ाया जाता है, उसे शिखा कहते हैं। वामस्कंधसे लेकर दक्षिणबाहुके नीचे कटिपर्यन्त यथाशास्त्र लटकता हुआ उपनयनके समयमें धारण किया जानेवाला परमपवित्र, विलक्षण प्रभावका उत्पादक, पूर्ण आयु देनेवाला यथाविधि निर्माण किया हुआ, ब्रह्मादि नवदेवताओंका आश्रयस्वरूप, और द्विजका चिह्नस्वरूप जो उपवीत होता है, वही सूत्र या यज्ञसूत्र कहाता है। वर्णाश्रमधर्मको माननेवाली आर्यजाति शिखा और सूत्र धारण करती है, इसीसे आर्यधर्मकी दूसरी कला सद्विचार कही गयी है॥ १२१॥

अब शिखासूत्रका फल बताते हैं :—

शिखा देवमन्दिरका सूचक है, यज्ञसूत्र त्रिभावशुद्धिका सूचक है॥ १२२॥

शिखाके कारण आर्यजातिका उत्तमाङ्ग (सिर) देवमन्दिर समझा जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता जिसमें निवास करते हैं, उसको शिखा कहते हैं। वह मनुष्यकी बुद्धिको प्रखर करती है, इस कारण आर्योंका वह विशेष चिह्न है। जिसप्रकार देवमन्दिरका शिखर होता है, उसीप्रकार देवताओंके निवासस्थान आर्योंके शरीररूपी मन्दिरका शिखर शिखा है। शास्त्रमें शिखाबन्धनका मन्त्र इसप्रकार है :—

ब्रह्मवाणीसहस्रेण शिववाणीशतेन च।
विष्णुनामसहस्रेण शिखाबन्धं करोम्यहम्॥

ब्रह्माके सहस्रनामोंसे, शिवके सौ नामोंसे, और विष्णुके सहस्रनामोंसे मैं शिखाबन्धन करता हूँ। शिखाके मूलमें सब देवता निवास करते हैं। अतः आर्योंकी शिखा देवमन्दिरका परिचायिका है। त्रिभावशुद्धिका द्योतक आर्योंका यज्ञोपवीत है। अध्यात्मशुद्धि, अधिदैवशुद्धि और अधिभूतशुद्धिको स्मरण रखनेके लिये यज्ञमय जीवन व्यतीत करनेवाली आर्यजाति तीनखण्डोंका यज्ञसूत्र धारण करती है॥ १२२॥

अब कारण सहित तीसरी कला बताते हैं :—

पूर्ण होनेसे वर्णधर्म तीसरी है॥ १२३॥

आर्यधर्मकी तीसरी कला वर्णधर्म है। इसीलिये आर्यजाति त्रिविध भावशुद्धिसे पूर्ण है॥ १२३॥

शिखा देवमन्दिरस्य सूत्रं त्रिभावशुद्धेः॥ १२२॥ वर्णधर्मस्तृतीयतस्तत्पूर्णो॥ १२३॥

इस तीसरी कलाके महत्त्वके विषयमें कहते हैं :—

चिरजीविनी है ॥ १२४ ॥

वर्णधर्मके कारण आर्यजातिमें रजोवीर्यकी शुद्धि बनी रहती है, इसकारण आर्यजाति चिरजीविनी है। सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर अबतक आर्यजाति विद्यमान है; परन्तु दूसरी अनेकों जातियाँ उत्पन्न हुई और कालकवलित हो गयीं। इसका एकमात्र कारण आर्योंका वर्णधर्म ही है ॥ १२४ ॥

अब उपपत्तिसहित चौथी कला बताते हैं :—

नारीधर्मसे पूर्णहोनेसे सतीत्व चौथी है ॥ १२५ ॥

सतीत्वधर्म आर्यधर्मकी चौथी कला है। क्योंकि आर्यमहिलाएँ नारीधर्मसे पूर्ण होती हैं। नारीधर्मकी पूर्णता सतीत्वधर्मसे सिद्ध होती है। जिस जातिमें नारियाँ सतीधर्मकी तपस्यासे सुशोभित होती हैं, उसी मनुष्यजातिकी महिलाओंकी जगत्में महिमा होती है। आर्यनारियोंमें सतीत्वकी पूर्णता चिरदिनसे देखनेमें आती है ॥ १२५ ॥

अब आर्यमहिलाओंके महत्त्वके विषयमें कहते हैं :—

इसीसे त्रिलोकपावनी है ॥ १२६ ॥

सतीत्वके कारण ही आर्यमहिलाएँ त्रिलोकको पवित्र करनेवाली होती हैं। सतीत्वकी पूर्णता जैसी आर्यमहिलाओंमें देख पड़ती है, वैसी किसी भी जातिमें नहीं देख पड़ती। सतीत्वधर्मके कारण ही आर्यमहिलाएँ त्रिलोकमें पूजित होती हैं। ऊर्द्ध्वलोक अर्थात् स्वर्गादिलोक, अधोलोक अर्थात् पातालादि लोक और मध्यलोक अर्थात् भारतवर्षरूपी मृत्युलोक तीनोंका इतिवृत्त पुराणादिमें पाठ करनेसे यही सिद्ध होता है कि, सतीत्वकी महिमा सब लोकोंमें समानरूप से मानी जाती है ॥ १२६ ॥

अब आर्यधर्मरूपी चन्द्रमाकी पाँचवीं कला बताते हैं :—

प्रवृत्ति-निवृत्तिकी पूर्णतासे आश्रमधर्म पाँचवीं है ॥ १२७ ॥

आर्यधर्मकी पाँचवीं कला आश्रमधर्म है। वह प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म दोनोंसे पूर्ण है। ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवृत्ति सिखायी जाती है। गृहस्थाश्रममें शास्त्रोक्त प्रवृत्ति करायी जाती है, वानप्रस्थाश्रममें निवृत्ति सिखायी जाती है और संन्यासाश्रममें पूर्णनिवृत्ति करायी जाती है। अतः प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म दोनोंसे पूर्ण होनेके कारण आश्रमधर्मकी महिमा है और वह आर्यधर्मरूपी चन्द्रमाकी पाँचवीं कला मानी गयी है ॥ १२७ ॥

अब आश्रमधर्मका फल बताते हैं :—

जीवन्मुक्तिका उदय होता है ॥ १२८ ॥

प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्मकी पूर्णता होनेमे आश्रमधर्ममें जीवन्मुक्तिका उदय होता है। जिस संस्कृतिमें प्रवृत्तिधर्म और निवृत्तिधर्म दोनोंकी पूर्णता है, वही संस्कृति क्रमाभिव्यक्तिके अधिकारोंसे पूर्ण कही जा सकती है। मनुष्यकी क्रमाभिव्यक्तिकी पूर्णता ही जीवन्मुक्तिपद है, इस अभ्युदयका क्रम जैसा आश्रमधर्ममें बाँधा गया है, वैसा अन्यत्र नहीं देख पड़ता। संन्यासधर्म निवृत्तिधर्मका अन्तिम

चिरजीविनी ॥ १२४ ॥ चतुर्थी सतीत्वं नार्याः पूर्णत्वात् ॥ १२५ ॥ अतस्त्रिलोकपावनी ॥ १२६ ॥
पञ्चम्याश्रमधर्मः प्रवृत्ति-निवृत्तिपूर्णत्वात् ॥ १२७ ॥ जीवन्मुक्तिप्रादुर्भावः ॥ १२८ ॥

अधिकार है। उसमें यथाक्रम चार सीढ़ियाँ बाँधी गयी हैं। यथा,—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। परमहंस अवस्था ही जीवन्मुक्तिपद है, श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार जो सांख्य और योग दोनोंका समान अधिकार बताया है, वही—चाहे किसी आश्रमका मनुष्य हो—कर्मयोगके द्वारा जीवन्मुक्तिपद प्राप्त कर सकता है। उधर संन्यासधर्मका जो क्रम है, वह ऊपर बताया ही गया है। अतः सुकौशलपूर्ण कर्मके द्वारा हो अथवा ज्ञानार्जनके द्वारा हो, आर्यजातिमें ही आश्रमधर्मके अवलम्बनसे जीवन्मुक्तिपदकी प्राप्ति सम्भव है ॥ १२८ ॥

अब छठीं कलाका वर्णन करते हैं :—

आस्तिक होनेसे दैवजगत्को शरण ली जाती है ॥ १२९ ॥

दैवजगत् और उसके नाना देवपदधारियों पर विश्वास करना ही आस्तिकताका मूल है। स्थूलजगतका चालक और रक्षक दैवजगत् ही होता है। अतः दैवजगत्की शरण लेना आर्यधर्मकी छठीं कला कही गयी है ॥ १२९ ॥

इस कलाके महत्त्वके विषयमें कहते हैं :—

त्रिविध संघका अनुग्रह होता है ॥ १३० ॥

यही कारण है कि, आर्यजातिपर देवसंघ, ऋषिसंघ और पितृसंघ तीनोंका अनुग्रह रहता है। शास्त्रोंमें इन त्रिविध संघोंके देवपदधारियोंका वर्णन है। आस्तिकताके कारण ही आर्यजातिपर उनकी कृपा बनी रहती है। विशाल दैवीजगत्का एक-सहस्रांश भी हमारा मृत्युलोक नहीं है। इसके चौदह भुवन हैं। उनके प्रधान देवपदधारी तीन हैं। उनके अधीन तैंतीस मुख्यपदधारी देवता हैं तथा ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघ हैं, जो प्रत्येक मन्वन्तरमें बदल जाते हैं,—वे और अन्य अनेक देवपदधारी हैं। आर्यजातिके आस्तिक होनेसे अर्थात् उनपर श्रद्धा और विश्वास होनेसे उनपर तीनों संघोंकी कृपा बनी रहती है ॥ १३० ॥

अब धर्मकी सातवीं कला कही जाती है :—

धर्मसामञ्जस्यके लिये अवतारनिष्ठा सातवीं है ॥ १३१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है :—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

हे अर्जुन! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्मका प्रभाव बढ़ जाता है, तब तब मैं अवतार धारण करता हूँ। साधु सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका विनाश करने तथा धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा करनेके लिये मैं प्रत्येक युगमें अवतीर्ण होता हूँ। अवतार ऋषियोंके होते हैं, देवताओंके होते हैं और भगवान्के होते हैं। भगवदवतार कलाभेदसे कई प्रकारके होते हैं। भगवदवतारमें दो शक्तियाँ कार्य करती हैं। एक वह शक्ति, जिस केन्द्रमें भगवान्का अवतार होता है, उसके पूर्वजन्मके कर्मानुसार उसके प्रारब्धकी शक्ति और दूसरी, भगवदवतारका जिस प्रयोजनसे आविर्भाव हुआ है, उसके अनुसार भगवच्छक्ति। श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने श्रीमुखसे कहा है

षष्ठी दैवजगच्छरणमास्तिकत्वात् ॥१२९॥ त्रिविधसंघानुग्रहः ॥१३०॥ सप्तम्यवतारनिष्ठा धर्मसामञ्जस्यात् ॥१३१॥

कि, हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे कितने ही जन्म हो चुके हैं। उन सबको तुम नहीं जानते, परन्तु मैं जानता हूँ। इस भगवद्वचनसे पहिली शक्तिकी सिद्धि हो रही है और भगवच्छक्तिकी सिद्धिके विषय में श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीकी व्रजलीला, द्वारका-की लीला और महाभारतकी लीला आदि प्रमाण हैं। श्रीभगवान्का शिशुकालमें पड़े पड़े स्वाभाविक रूपसे हाथ-पैर हिलाते हुए शकड़ेको आध्मातसे उलट देना, उखलीमें पैरकी टेक देकर यमलार्जुन वृक्षोंको उखाड़ फेकना, कानी अंगुलीपर गोवर्धनपर्वतको उठाकर व्रजमण्डलकी रक्षा करना, महारास रचकर गोपियों-को मोहित करना, ये सब मानवी कार्य नही; किन्तु भगवच्छक्तिके ही निदर्शक हैं। दो छोटे छोटे कुमारों—श्रीकृष्णचन्द्र और बलरामका मथुरामें जाकर पहाड़ जैसे कुबलया नामक मस्तहाथीके दाँतों तोड़कर मार डालना, मल्लोंमें अजेय मुष्टिक और चाणूरको मार गिराना और कंस जैसे महापराक्रान्त सम्राट्का भरी सभामें सिर उतार लेना मनुष्यका कार्य नहीं हो सकता। यह भगवच्छक्तिका ही परिचायक है। भगवान्भी अपनी बनायी हुई कर्मशृंखलामें बँधे रहते हैं। जरासन्धका उत्पात जब बहुत बढ़ गया, तब यह जानकर कि, वह अपना वध्य नहीं, भीमसेनका बध्य है, देवकुलकी रक्षा करनेके लिये उन्होंने पश्चिमी समुद्रमें एक नया विस्तृत टापू निर्माण किया, जिसमें लाखों करोड़ों मनुष्योंकी बस्ती बसाई गयी और द्वारका नामक नयी नगरी प्रतिष्ठित कर वहीं मथुरासे हटाकर अपनी राजधानी स्थापित की, सोलह सहस्र स्त्रियोंसे विवाह कर उतने ही रूपोंसे वे उनके साथ रहने लगे, क्या ये सब कार्य पौरुषेय कहे जा सकते हैं? भगवच्छक्ति-के ही ये द्योतक हैं। लीलासंवरणका समय आनेपर सब यादवोंको आपसमें लड़ाकर कुलका नाश हो जानेपर स्वयं निजधाममें चले गये। उनके जानेकी घटनाका अद्भुत रहस्य भी विचार करने योग्य है। कई करोड़ वर्ष पहले जब रामावतार हुआ था, तब भगवान् रामचन्द्रने पेड़की आड़में छिपकर बालीपर बाण चलाकर उसको मारा था। उसी बालीकी आत्मा भीलके रूपमें आयी और उसके बाणसे श्रीभगवान्ने लीला सम्वरण की। शंका समाधान के लिए कहा जा सकता है कि, अवतारके दो तरहके कर्म होते हैं, जैसा ऊपर कहा गया है, एक तो उनके पूर्वजन्मार्जित कर्म और दूसरे, अवतार सम्बन्धी कर्म। यह अवतार सम्बन्धी कर्म है, व्यक्तिगत कर्म नहीं है। क्योंकि रामावतारके कर्मका फल उन्हें इस अवतारमें भोगना पड़ा। यह व्यक्ति-गत कर्म हो नहीं सकता। श्रीभगवान् राम और श्रीभगवान् कृष्ण दोनों समान अधिकारके अवतार हैं। इसकारण समान स्तरके अवतारोंमें ऐसा हो सकता है। श्रीभगवान् कृष्णके शरीरके अन्तका समय आ गया और उधर बालीका ऋण चुकानेका समय भी आ गया था। इसीसे बालीने भीलके रूपमें आकर अपना बदला चुकाया और भगवान् निज-धाममें पधार गये। दर्शनशास्त्र सिद्ध करता है कि, भगवान्की सोलह कलाओंके विकाशके अनुसार यह हिसाब बाँधा गया है कि उद्भिज्जसे लेकर चतुर्विध-भूतसंघमें यथाक्रम चार कलाओंका विकास होता है। उसके बाद असभ्य और सभ्य मनुष्योंमें आगेकी चार कलाओंका विकास होता है और तदनन्तर नौ कलाओंसे सोलह कलाओंतकका विकास भगवद-वतारोंमें होता है, जिनकी अनेक श्रेणियाँ हैं। श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र सोलह कलाओंसे युक्त पूर्ण अवतार थे। इसका वर्णन महाभारतमें करके भगवान् व्यासदेवने जगत्को धन्य किया है धर्मके सामञ्जस्यके लिये ही भगवान्के अवतार हुआ करते हैं। भगदवतारोंके ऊपर बनाये हुये विज्ञानके अनु-सार आर्यजाति भगवदवतारोंपर निष्ठा रखती है। इसीसे अवतार-निष्ठा आर्यधर्मकी सातवीं कला कही गयी है॥ १३१॥ [क्रमशः]

महापरिषद्-सम्वाद

श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की प्रबन्ध-समितिकी बैठक ता० ७-१०-५० को विद्यालय-भवनमें पं० रामशंकरजी वैद्यकी अध्यक्षतामें हुई थी। उसमें मासिक हिसाबकी स्वीकृतिके पश्चात् निम्नांकित मन्तव्य स्वीकृत हुए—

मन्तव्य संख्या ४—निश्चय हुआ कि विद्यालयके 'बस' खरीदनेके लिये यूनाइटेड कमर्शियलबैंक, बनारससे पच्चीस हज़ार रुपये फिक्सड डिपाजिटकी जमानतपर चौदह हज़ार रुपया एक वर्षके लिये ऋण लिया जाय और इस सम्बन्धकी कार्यवाही करनेका अधिकार श्रीमती विद्यादेवी प्रधान मंत्रिणीको दिया जाता है।

मं० सं० ५—निश्चय हुआ कि आर्यमहिलामहाविद्यालयको चौदह हज़ार रुपया 'बस' खरीदनेके लिये ऋण दिया जाय तथा सरकारी सहायता एवं फोर्ड बसकी बिक्रीसे यह रकम वापस लेकर बैंकका ऋण चुकता कर दिया जाय।

मं० सं० ६—शिक्षाविभागके २-२६/६/५० के बैटेर मैनेजमेंट कमिटी रिपोर्टके अनुसार प्रबन्ध-समिति बनानेके विषयके दोनों पत्र पढ़े गये, इस विषयमें यह समिति ता० १७-१०-५० की बैठकमें स्वीकृत प्रस्ताव नं० ४ को पुनः दोहराती है और शिक्षाविभागसे यह अनुरोध करती है कि यदि ऐसा करना ही अभीष्ट है तो जिन शिक्षा-संस्थाओंका प्रबन्ध ठीक नहीं है केवल उनपर यह योजना लागू की जाय। जिन शिक्षा-संस्थाओंका संचालन सुचारु रूपसे हो रहा है उनके कार्यमें इस प्रकारका अनावश्यक, अनुचित और अपमानजनक हस्तक्षेप करके शिक्षाके सार्वजनिक हितमें बाधा पहुँचाना कदापि वांछनीय नहीं है।

मं० सं० ७—प्रिंसिपलकी रिपोर्टसे विदित हुआ कि इस समय कई अध्यापिकाओंके अवकाश लेनेके कारण विद्यालयके अध्यापन-कार्यमें बड़ी बाधा हो रही है। अतः निश्चय हुआ कि निम्न अध्यापिकाओंकी निम्नलिखित वेतनपर अस्थायी नियुक्ति की जाय।

(क) श्री कौशल्याकुमारी बेरी बी० ए० बी० टी० २४-१०-५० से ३०-४-५१ तक के लिये मासिक वृत्ति १२०)।

(ख) श्री उमा बनर्जी एच० एस० २४-१०-५० से ३०-४-५१ तक मासिक वेतन ५०)।

(ग) श्री विजनमुकर्जी एच० एस० १६-६-५० से ३०-४-५१ तक मासिक वेतन ५०)।

मं० सं० ८—श्रीविश्वनाथसिंह, विद्यालयके क्लर्कका त्यागपत्र श्रीमती प्रिंसिपलकी रिपोर्टके साथ उपस्थापित हुआ जिससे विदित हुआ कि उन्होंने एक महीनेका नोटिस तो दिया परन्तु नोटिसके अनुसार पूरा एक महीना कार्य नहीं किया। अतः निश्चय हुआ कि नोटिसके समयमें जितना दिन उन्होंने काम नहीं किया है, उतने दिन नोटिसके बदले वेतन जमा किया जाय, शेष वेतन यदि कुछ शेष बचा रहे तो उनको दे दिया जाय।

मं० सं० ९—श्रीमती विद्यादेवीजी संचालिकाको अधिकार दिया जाता है कि विद्यालयके लेखकके रिक्त स्थानकेलिये जो प्रार्थनापत्र आये हैं, उन प्रार्थि-

योंमेंसे जिनको उपयुक्त समझें, उनको ३०-४-५१ तकके लिये नियुक्त कर लें।

मं० सं० १०—श्रीमती स्नेहलतादेवी सहायक सुपरिन्टेन्डेन्टका त्यागपत्र ता० १-१०-५० का उपस्थापित हुआ और स्वीकृत हुआ।

मं० सं० ११—श्रीमती कमलादेवीका प्रार्थनापत्र उपस्थापित हुआ कि ता० २-१०-५० से १५-५-५१ तकके लिये उनकी अस्थायी नियुक्ति सहायक सुपरिन्टेन्डेन्टके पदपर भोजनके साथ २५) मासिक पारिश्रमिक पर की जाय।

मं० सं० १२—श्रीमती रामदुलारी बर्माका प्रार्थनापत्र ता० २३-८-५० का तथा २२-६-५० का उपस्थापित हुआ। निश्चय हुआ कि उनको तीन महीनेकी प्रीविलेज लीव एवं बाकी बिना वेतनका अवकाश दिया जाय।

मं० सं० १३—प्रिंसिपलकी रिपोर्टसे ज्ञात हुआ है कि पुराने हालकी छतकी दशा चिन्ताजनक है, उसके धरन टूट गये हैं और इञ्जिनियरकी रायमें वह किसी भी समय गिर सकता है। अतः निश्चय हुआ कि इस सम्बन्धमें खर्चेका एस्टीमेट लिया जाय और शिक्षाविभागकी शीघ्र ग्रांट देनेके लिये लिखा जाय।

मं० सं० १४—पन्ना ड्राइवरका काम बहुत ही असन्तोषजनक है। अतः निश्चय हुआ कि उनको १०-१०-५० से कार्यसे पृथक् (डिसमिस) किया जाय और उस दिन तकका उसका पावना चुकता दे दिया जाय।

मं० सं० १५—श्री नानकचन्द चोपड़ाका वेतन-वृद्धि सम्बन्धी प्रार्थनापत्र २५-८-५० का उपस्थापित हुआ। निश्चय हुआ कि इसमें शिक्षाविभागकी स्वीकृति नहीं है, अतः समिति इस विषयमें विवश है।

सभापति महोदयको धन्यवाद देनेके अनन्तर सभाकी कार्यवाही समाप्ति हुई।

आर्यमहिला-महाविद्यालय दुर्गापूजाके अवकाशके बाद २४-१०-५० को खुल गया है और अध्यापनका कार्य पूर्ववत् प्रारम्भ हो गया है। विद्यालयके लिये बस खरीद ली गयी है। आशा है कि बहुत शीघ्र उसकी बाडी बनकर तैयार हो जायगी और कन्याओंके यातायातमें विशेष सुविधा हो जायगी।

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डर द्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें बिलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट अक्षरोंमें रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	,,
,, १/२ पृष्ठ	१२)	,,
,, १/४ पृष्ठ	८)	,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

मुद्रक :—श्री कालाचाँद चटर्जी, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌की सचित्र मासिक मुखपत्रिका

भाद्रपद सं २००७ | वर्ष ३२, संख्या ५, | अगस्त १९५०

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी, एम. ए., बी. टी.

हरि बिन कौन दरिद्र हरै।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि
जिय मिलन न हरि बिसरै ॥
और मित्र ऐसे समया महें
कत पहिचान करै।
बिपत परे कुसलात
न बूझै बात नहीं अचरै ॥
उठके मिले तन्दुल हम
दीने मोहन बचन फुरै।
'सूरदास' स्वामी की महिमा
टारी बिधि न टरै ॥

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूल त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

भाद्र सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ५, | अगस्त १९५०

मन रे परसि हरिके चरण ।

सुभग शीतल कँवल कोमल त्रिविध ज्वाला हरण ।

जिन चरण प्रहलाद परसे इन्द्रपदवी धरण ॥

जिन चरण ब्रह्माण्ड भेट्यो नख सिखां श्रीधरण ।

जिन चरण कालीनाग नाथ्यो गोप-लीला करण ॥

जिन चरण गोबरधन धारयो गर्व मघवा हरण ।

दासि मीरा लाल गिरधर अगम तारन तरन ॥

आत्मनिवेदन

[श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी]

आगामी भाद्रकृष्ण अष्टमीके दिन समस्त भारतखण्डमें बड़ी श्रद्धा एवं भक्तिके साथ भगवान् कृष्णचन्द्रका जन्मोत्सव मनाया जायगा। इसी भाद्रकृष्ण अष्टमीके शुभदिन रोहिणी नक्षत्रमें अर्द्धरात्रिके समय बारह बजे जब काले काले बादल मड़रा रहे थे रिम-झिम रिम-झिम वर्षा हो रही थी, चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था, इसीतरह मनुष्योंके हृदयमें भी घोर अन्धकार एवं निराशा छा रही थी, कंसके त्राससे साधु-जन त्रस्त हो रहे थे. ऐसे समय पूर्णावतार कृष्णचन्द्रका उदय हुआ—संसार आलोकित अनुप्राणित और प्रकाशित हुआ था। भगवान्ने अपने मधुर वंशीनिनादसे भक्तोंको अभय दिया, साधुओंका त्राण किया और धर्मद्वेषी असुरोंका संहार करके धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा की, एवं मनुष्यमात्रके मार्गप्रदर्शनके लिये गीताका संदेश सुनाया। जन्माष्टमी प्रतिवर्ष हृदयपटलपर उनके इन महान् पुण्य-कृतियोंको नवीन करती है। इसीलिये इस देशमें अवतारों एवं महापुरुषोंकी जयन्ती मनानेकी पुरानी प्रथा चली आती है।

इसमें सन्देह नहीं कि वही श्रद्धा-भक्तिके साथ हम प्रतिवर्ष भगवान् कृष्णकी जयन्ती-रूपसे यह महापर्व मनाते हैं, उपवास और उत्सव करते हैं, परन्तु प्रश्न यह होता है कि भगवान्के गीताकथित संदेशका हम कितने अंशोंमें पालन करते हैं ? उत्तर यही होगा, कि उसे हम सर्वथा भूले हुए हैं। क्योंकि गीताके प्रायः प्रत्येक प्रसङ्गमें भगवान्ने अपने अपने कर्तव्य-पालनका उपदेश दिया है और अन्तमें यहाँतक भी कहा है कि :—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥

अर्थात् अपने-अपने कर्तव्य कर्मोंमें निरत रहकर ही मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है, अपने कर्ममें निरत रहकर कैसे सिद्धि प्राप्त करता है, सो सुनो। जिससे प्राणियोंकी प्रवृत्ति और जिससे सारा विश्व परिव्याप्त है, अपने कर्मद्वारा उस परमात्माकी पूजा करके मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। यह मङ्गलमय उपदेश भगवान् कृष्णका है, जो आबालवृद्ध, स्त्री, पुरुष, सबके लिये समानरूपसे हितकारी है। परन्तु आज भारतको एकही संक्रामक लगा हुआ है, जिससे प्रायः सभी आक्रान्त है, वह यही कि कोई भी अपना कर्तव्य पालन नहीं करना चाहता, न अपना उत्तरदायित्वका अनुभव ही करता है। आलस्य, प्रमाद, जड़ता, स्वार्थपरता, ईर्ष्या, द्वेषका त्यागकर यदि भगवान्के उपरोक्त उपदेशको सदा स्मरण रखकर सभी अपने-अपने कर्तव्य कर्मका सच्चाईके साथ पालन करने लग जाँय तो आजके सारे दुःख, दारिद्र्य, दैन्य, रोग, शोक, ताप सब स्वतः दूर भागेंगे और स्वतःही हमें नन्द-नन्दन आनन्दकन्द भगवान् कृष्णचन्द्रकी कृपा प्राप्त होगी; तभी हमारा यह पर्व मनाना भी सार्थक होगा।

वन-महोत्सव तथा हिन्दू संस्कृति।

विश्वकी सबसे प्राचीन संस्कृति आर्यसंस्कृतिमें वृक्ष लगाने तथा कूप-वापी, तालाब बनानेकी बड़ी महिमा है। पुराणोंके पृष्ठके पृष्ठ इनकी महिमासे

भरे पड़े हैं। इन सबका उद्देश्य यही है कि इन सब जीव-हितकारी महत्कार्योंमें लोगोंकी प्रवृत्ति बढ़े, उनकी अभिरुचि इस ओर जाग्रत रहे। प्राचीन-कालमें हमारे त्रिकालदर्शी महर्षिगण, तपस्वी ब्राह्मणगण एवं वाणप्रस्थी गृहस्थगण वृक्षबहुल वनोंमें ही निवास करते थे; कन्द-मूल-फलोंका आहार करते थे और आध्यात्मिक चिन्तनके ज्ञानालोकसे समस्त विश्वको आलोकित किया करते थे। उन अरण्योंमें समाधिस्थ अन्तःकरण ऋषियों द्वारा प्राप्त होनेके कारण उपनिषदोंको आरण्यक भी कहते हैं। उन महातपा महर्षियोंके तपःप्रभाव एवं अध्यात्मचिन्तनके प्रभावसे सारे देशका वायुमण्डल एवं वातावरण ऐसा बना हुआ होता था कि चक्रवर्ती सम्राट्गण भी पुत्रके राज्यशासनके उपयोगी होते राज्य-शासनका भार उसे सौंपकर स्वयं परमात्माकी प्राप्तिकी इच्छासे इन्हीं अरण्योंमें चले जाया करते थे और अपना अन्तिम शेषजीवन भगवत्-भजनमें व्यतीत किया करते थे। बड़ी-बड़ी शिक्षा-संस्थाएँ भी इन्हीं अरण्योंमें तपोधन ब्राह्मणों द्वारा सञ्चालित हुआ करती थीं। कालचक्रके अपरिहार्य नियमके अनुसार आर्य-जातिका वह स्वर्णयुग समाप्त हो गया और अधःपतन प्रारम्भ होने लगा, अरण्योंका महत्व लोग भूलने लगे एवं विदेशी शासनके प्रभावसे आर्यजाति अपने स्वरूपको भूलने लगी। धीरे-धीरे अधःपतित होते-होते वह पतनकी इस सीमातक पहुँच गयी कि उसे अपनी पवित्र प्राचीन संस्कृति अपना विश्व-कल्याणकारी धर्म, अपनी परम्परा सबमें दोष दिखाई देता है; अपनी प्रत्येक वस्तुसे घृणा होती है, पाश्चात्योंकी नकल करनेमें आत्म-सम्मान एवं गौरवका अनुभव होता है। परन्तु समयने पुनः पलटा खाया। सर्वशक्तिमान् भगवान्की कृपासे विदेशी शासनका अन्त हुआ और अब कुछ लोगोंका ध्यान भारतीय संस्कृतिकी महत्ताकी ओर आकर्षित होनेके कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे हैं। भारतसरकारके खाद्यमन्त्री श्रीकन्हैयालाल मुन्शीकी प्रेरणासे जुलाईके प्रथम सप्ताहमें सारे देशमें वन-महोत्सव बड़े उत्साहसे मनाया गया। इस उपलक्षमें देशमें लाखों वृक्ष लगाये गये; यह बड़े सन्तोषका विषय है। श्रीमुन्शी का यह भी कहना है कि देशमें खाद्यान्नकी कमी है, अतः सप्ताहमें एकदिन प्रति सोमवार शाक-फल आदिसे निर्वाह किया जाय। इस प्रसङ्गमें यह कहना अनुचित नहीं होगा कि, आर्यसंस्कृतिमें व्रत-उपवासकी भी महिमा कम नहीं है, एवं इस संस्कृतिमें विश्वास रखनेवाले बहुसंख्यक लोग एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, अष्टमी, प्रदोष, रविवार, सोमवार, मङ्गलवार आदि अनेक व्रतोंके उपलक्षमें एकाहार, फलाहार, अनाहार-रूपसे महीनेमें आठ-दस उपवास करते ही हैं। परन्तु जो पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृतिके पोषक हैं, उन्होंने तो चारबार भोजनकी प्रथा विदेशियोंसे सीखी है, उनकी सभ्यता-में व्रत-उपवासका कोई भी स्थान नहीं है। अतः यदि प्राचीन भारतीय हिन्दूसंस्कृतिका अच्छी तरहसे पुनः प्रचार किया जाय, तो पुनः व्रत-उपवासपर लोगोंका विश्वास बढ़ेगा। इससे अन्न एवं स्वास्थ्य दोनोंकी रक्षा होगी। यदि हमारे शासकवृन्द शान्त मस्तिष्कसे सोचेंगे तो वे इसी निश्चयपर पहुँचेंगे कि हिन्दूसंस्कृतिमें ही समस्त मनुष्य-जातिका कल्याण निहित है और वह भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालोंमें समान रूपसे हितकारी है।

सत्यका प्रकाश

[ले० श्रीमान् पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर]

यह कालका प्रभाव ही समझना चाहिये कि, इस समय भारतीय आर्यसन्तान आत्मविस्मृत हो गयी है, अपने आपको भूल गयी है और विदेशी चश्मेसे अपने देश, जाति, धर्म, आचार और व्यवस्थाओंको देखने लगी है। जब कोई जाति किसी दूसरी जातिपर शासन करने लगती है, तब उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि, शासित जातिको आत्म-विस्मृत करा दिया जाय। वह अपनी रीति-नीति, परम्परा, आचार-व्यवहार आदिको ही न समझने लगे और शासक जातिकी सभी बातोंको आदर्श मान ले। इस नीतिसे शासित जातिको अपनी सब बातें हीन प्रतीत होने लगती हैं और शासकोंकी सब बातें अनुकरणीय जान पड़ती हैं। भारतवासी आर्यसन्तानकी कई शताब्दियोंकी पराधीनतासे यही अवस्था हो रही है। अपने सम्मान और आर्य-गौरवको भूलकर वह परमुखापेक्षी हो गयी है। अंगरेजीकी पढ़ाईसे सब बातोंमें हम अंग्रेजोंका अनुकरण करने लगे हैं और उसीको सभ्यताकी चरमसीमा समझ बैठे हैं। अंग्रेजी पढ़ाईका सबसे बड़ा दोष यह है कि, मनुष्यमें अवास्तव अहंकार हो जाता है और अहंकारसे विमूढ़ हो जानेपर वे यह जाननेमें भी असमर्थ हो जाते हैं कि, वास्तवमें सभ्यता या संस्कृति क्या वस्तु है। अंग्रेजी अनुकरणका परिणाम यह हुआ कि, हम अंग्रेज तो बन ही नहीं सके, अंग्रेज बन जाना अस्वाभाविक और असम्भव ही था, किन्तु अपने समाज, धर्म, व्यवस्था आदिका घोर अज्ञान छा जानेसे अपना आर्यत्व भी खो बैठे। श्रीभगवान्की कृपासे अब ऐसा समय आ गया है कि—'बीती ताहि बिसारदे, आगेकी सुध ले'।

कहा जाता है कि, अब स्वराज्य हो गया है। स्वराज्य हुआ है, तो अच्छा ही हुआ है; परन्तु प्रश्न यह उठता है कि, किसका राज्य हुआ है? जबतक हम 'स्व' शब्दको अच्छी तरह नहीं समझ लेंगे, तबतक यथार्थ स्वराज्यकी कल्पना करना हास्यास्पद ही समझा जायगा। 'स्व'का ज्ञान हो जानेपर ही स्वराज्यकी रूपरेखा निश्चित की जा सकती है। पहले यह जान लेना आवश्यक है कि, हम हैं कौन? हमारा लक्ष्य क्या है? हमारी परम्परा क्या है? हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिये और अपना राज्य हो जानेपर हमें किस रीति-नीतिको अपनाना चाहिये, जिससे हम जियें और अन्य मानवसमाजोंको भी जीनेकी गुञ्जाइश रखें। पृथ्वीकी जितनी मनुष्य-जातियाँ हैं, उनमें आर्यजाति सबसे पुरानी है और इसकी संस्कृति भी अतिप्राचीन है, यह तो पश्चिमी विद्वान् भी स्वीकार करते हैं। इतने दीर्घकालतक अनेक आक्रमणों और आघातोंको सहकर यह जीवित रह सकी है, इसके कारणोंको जान लेना भी आवश्यक है। इसकी संस्कृतिमें ऐसी चिरजीवित्व-की कौनसी बातें हैं कि, संसारकी कितनी जातियाँ उठीं, बढ़ीं, उत्कर्षको प्राप्त हुईं और अन्तमें अनन्त-कालके गर्भमें समा गयीं; परन्तु यह ज्यों-की-त्यों बनी हुई है? उन बातोंको जानकर, यदि उनमें कुछ मलिनता आ गयी हो, तो उसे दूर कर, उन्हें फिर अपना लें और तदनुसार शासन-व्यवस्थाको निश्चित

करें, तभी स्वराज्यप्राप्तिसे हम पुलकित हो सकते हैं। अन्यथा 'सब हँसे, तो हम भी हँस दिये' यही कहावत चरितार्थ होगी। अंग्रेजोंके हट जानेसे ही हम यह नहीं कह सकते कि, हमारा राज्य—स्वराज्य हो गया। यह तो एक घटनाचक्र है, जो घूमाही करता है। उससे लाभ उठाकर हम अपनेको समझकर अपनी सब बातोंको जब सम्हाल लेंगे, तभी यथार्थरूपमें स्वराज्य प्राप्त करनेका आनन्द मनानेके अधिकारी होंगे। हम अपने आपकी जबतक उपेक्षा करते रहेंगे, तबतक 'स्वराज्य'शब्दसे उल्लसित हो जाना व्यर्थ है। 'मन मोदक नहिं भूख बुझावहिं'।

यद्यपि इस समय अंग्रेज अफ़सरोंके स्थानपर हिन्दुस्थानी अफसर आ गये हैं, परन्तु शासन-व्यवस्थाका वही पुराना ढाँचा बना हुआ है। विशेषता यह अवश्य हुई है कि, हमारी सामाजिक व्यवस्थामें जहाँ हस्तक्षेप करनेकी उलझनमें अंग्रेज नहीं पड़ते थे, वहाँ वर्तमान शासक अधिकारके बलपर उस व्यवस्थाको तोड़-ताड़ डालनेके लिये डण्डा लेकर पीछे पड़ गये हैं। इसका कारण यह है कि, वर्तमान शासनके सूत्र जिनके हाथमें है, वे अंग्रेज़ी-शिक्षासम्पन्न हैं, पश्चिमी सांचेमें ढले हुए हैं और भारतको भी पश्चिमी रंगमें रंगनेपर तुल गये हैं। परन्तु भारत कभी भी योरप नहीं हो सकता, यहाँकी जलवायु, प्रकृति, परिस्थिति आदि सभी योरपसे भिन्न है। भारत भारत ही रहेगा और अनादिकालसे जैसा यह जगद्गुरु रहा है, वैसाही रहेगा तथा अपनी आध्यात्मिकताकी देन संसारभरके मानव-समाजको देता रहेगा। इसीसे जगत्का मङ्गल होना सम्भव है।

इस समय जिन लोगोंके हाथमें शासनकी बागडोर है, वे विद्वान् हैं, इतिहासवेत्ता हैं, राजनीतिज्ञ हैं, प्रभावशाली हैं और कर्तृत्वसम्पन्न हैं, इसमें सन्देह नहीं; फिर भी वे आर्यधर्म और आर्यसंस्कृतिसे उदासीन ही नहीं, घृणा भी करते हैं, डरते हैं और उसे नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते हैं, इसका कारण क्या है? हमारी समझमें इसके कारण निम्नलिखित हो सकते है :—

प्रथमतो आर्यसंस्कृतिका उन्होंने अध्ययन ही नहीं किया है। उन्होंने वेद और शास्त्रोंका अच्छी तरह अध्ययन किया होता और उनकी भाषाओंको तथा उनके लक्षणोंको जानकर आर्यसंस्कृतिको ठीक तरहसे समझनेका प्रयत्न करते, तो अपनी भ्रान्त धारणाको जान जाते। जो आर्यशास्त्रोंका सरसरी तौरसे कभी कदाचित् अवलोकन करते भी हैं, तो अंग्रेजीके माध्यमसे। अंग्रेजी भ्रान्त भाषान्तरोंसे महर्षियोंके गूढ़ दार्शनिक विषय जाने नहीं जा सकते। और उनको जाने बिना आर्यसंस्कृतिका ज्ञान हो नहीं सकता। अन्ततः आर्यसंस्कृतिका अज्ञानही प्रथम कारण है। दूसरा कारण है,—दैवी-जगत् और उसकी शृंखलाको न जानना। तीसरा कारण है,—जीवपिण्ड कितने प्रकारका है और उसमें परिणाम कैसे होता है, इसको न समझना। चौथा कारण है,—आर्योंके संकल्पमें ब्रह्माण्डरूपी देश और कल्प, मन्वन्तर आदि कालका जो उल्लेख किया जाता है, उसका रहस्य न समझना। पाँचवाँ कारण है,—दैवीसृष्टि और मानवीसृष्टिकी पृथकताको न जानना। छठा कारण है,—सतीत्वका महत्त्व तथा इस सम्बन्धसे सदाचार और कदाचारके विज्ञानको न जानना। और सातवाँ कारण है,—अवतारचरित्रोंको न समझना। आर्यसंस्कृति इन्हीं

सूक्ष्म बातों पर अवलम्बित है और इनको हृदयङ्गम किये बिना आर्यसंस्कृति और आर्यधर्मका स्वरूप जाना नहीं जा सकता। जो दूरदर्शी नेता इन बातोंको समझनेका प्रयत्न करेंगे, उनसे जातिनाशकारी भयंकर भूल हो नहीं सकती। उन्हींकी सहायताके लिये यह लेख लिखनेका प्रयत्न किया जा रहा है, जिससे गुरुतर प्रमाद और पापसे बचें और यथार्थ स्वराज्यका वे उपभोग कर सकें।

संसारकी मनुष्यजातिकी संस्कृतिको यदि दो भागोंमें विभक्त किया जाय, तो एक होगी आर्यसंस्कृति और दूसरी अनार्यसंस्कृति। दोनोंका लक्ष्य नितान्त भिन्न है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन विषयोंका इन्द्रियों द्वारा भोग करनेके लिये ही अनार्यसंस्कृतिमें सबप्रकारके शारीरिक, वाचनिक, मानसिक और बौद्धिक कर्म किये जाते हैं। आर्यसंस्कृतिमें चाहे किसी प्रकारका कर्म हो, आध्यात्मिकता और धर्मकी अभिवृद्धि ही उसका लक्ष्य होता है। आर्यलोग भी इन्द्रिय-विषयोंको ग्रहण करते हैं, वे भी मनुष्य ही हैं; परन्तु वे आत्मोन्मुख होकर उनको ईश्वरके चरणोंमें अर्पण करके करते हैं। इसीसे वे बन्धनसे बच जाते हैं। निष्कामभावसे ईश्वरार्पण-बुद्धि रखकर जो कर्म किये जाते हैं, उनसे बन्धन नहीं होता। भगवान्‌की आज्ञा है :—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

अर्थात् हे अर्जुन! तुम जो कुछ करो, खाओ, हवन करो, दान करो या तप करो, वह मुझे अर्पण कर दिया करो। इसी आज्ञाके अनुसार आर्यसंस्कृतिमें नित्यके उठने-बैठने, चलने-फिरने, सोने-जागने, वस्त्र-पहनने, भोजन करने आदि व्यवहारोंके आदि तथा अन्तमें भगवत्स्मरण करनेकी विधि है। किसी अवस्थामें भगवान्‌को न भूलना और उन्हींके आज्ञाधीन होकर सब कर्तव्योंका पालन करना आर्यसंस्कृतिका पहला लक्षण है।

आर्यसंस्कृतिको अच्छी तरह जाननेके लिये दैवी-जगत् और उसकी शृङ्खलाको जान लेना आवश्यक है। आर्यजाति ईश्वर और परलोकको माननेवाली आस्तिक जाति है। आर्योंके दर्शनशास्त्रने यह सिद्ध कर दिया है कि, इस स्थूल मृत्युलोककी व्यवस्था और सञ्चालन सूक्ष्म दैवीलोक द्वारा होता है। सर्वशक्तिमान् भगवान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कार्य करते रहते हैं। हम जिस ब्रह्माण्डमें रहते हैं, उसका स्वरूप जान लेनेसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी कल्पना की जा सकती है। हमारा यह ब्रह्माण्ड चौदह लोकोंमें विभक्त है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सात ऊपरके लोक हैं और अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल ये सात नीचेके लोक हैं। ऊपरके लोकोंमें देवताओं और उन्नत आत्माओंका तथा नीचेके लोकोंमें असुरोंका निवास है। भूः और भुवः ये दो लोक भौमस्वर्ग कहाते हैं इसीमें सब ग्रह-नक्षत्र और सूर्यलोक है। उसके अन्तमें ध्रुवलोक है, जो रातमें एकही स्थानमें उत्तर दिशामें दिखायी देता है। उसकी उत्तरमें माहेन्द्रस्वर्ग है, जिसको स्वर्लोक भी कहते हैं। उसकी उत्तरमें प्राजापत्य-स्वर्ग है, जो महर्लोक कहाता है। उसकी उत्तरके जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ब्राह्मस्वर्गके नामसे प्रसिद्ध हैं। उक्त सात लोकोंमेंसे भूर्लोक सातद्वीपोंमें

विभक्त है। उनमेंसे सबसे छोटे द्वीपको जम्बुद्वीप कहते हैं। सातों द्वीप जलसे नहीं, किन्तु विभिन्न वातावरणसे घिरे हुए हैं। जम्बुद्वीपमें ही सुमेरु-पर्वत ऊपरतक गया है। मानवी शरीरके मेरुदण्डकी तरह वह ब्रह्माण्डका मेरुदण्ड है। वह दैवीपर्वत है। जम्बुद्वीपके अन्तर्गत ही दक्षिणदिशामें श्रीभगवान् यमधर्मराजकी राजधानी है, जो साधारण लोगोंके लिये स्वर्गलोक है। इसीके निकट नरकलोक है, जो अपराधियोंको दण्ड देनेके लिये कारागार-स्वरूप है। जीव जो कर्म करता है, चाहे मनसे, बुद्धिसे, शरीरसे या वाणीसे उसका संस्कार भगवान् यमधर्मराजके यहाँ पहुँच कर अङ्कित हो जाता है। उसीके अनुसार जीवको पाप या पुण्यका फल भोगना पड़ता है। उदाहरण रेडियो-यन्त्र है। पृथ्वीके किसी कोनेका कोई शब्द जिसप्रकार इस यन्त्रमें प्रकाशित हो जाता है, उसीप्रकार मनुष्यके चित्ता-काशके संस्कार ब्रह्माण्डके चिदाकाशमें अंकित हो जाते हैं।

जैसे देवलोकके राजा देवराज इन्द्र हैं, वैसे असुर-लोकके राजा असुरराज होते हैं, जो अपनी अपनी शृङ्खलाकी रक्षा किया करते हैं। देवता कभी असुर-लोकके पानेकी इच्छा नहीं करते; क्योंकि वे आसुरी सुखके लोक हैं, जो देवलोकके सुखके विपरीत हैं। परन्तु असुर प्रायः देवलोक पर आक्रमण करते रहते हैं। इसीसे देवासुर-संग्राम हुआ करता है।

पूर्वकथित जम्बुद्वीपमें नौ वर्ष हैं। उनमें से एक भारतवर्ष है, जिनको दुनियाँ कहते हैं। यह मृत्युलोक है, जो इस ब्रह्माण्डके हजारवें हिस्सेसे भी कम है, इसीमें माताके गर्भसे जीव उत्पन्न होता है। शेष-वर्ष देवलोक हैं। देवलोकके साथ मृत्युलोकका ऐसा सम्बन्ध है कि, यहांके जीव अपने पाप-पुण्यका फल भोगनेके लिये शरीरान्त होनेपर नरक या स्वर्गमें जाते हैं और भोग शेष हो जानेपर फिर यहीं आ जाते हैं और फिर नये संस्कार ग्रहण करने लगते हैं। इसी आने-जानेके क्रमको आवागमन-चक्र कहते हैं। इस मृत्युलोकमें जिसका कुल ठीक रहता है, उसीके कुलमें लौटा हुआ जीव जन्मग्रहण करता है और कुल ठीक न रहनेपर दूसरे कुलमें चला जाता है। इसीसे कुलको ठीक रखनेकी शास्त्राज्ञा है और हिन्दू-लोगोंमें कुलीनताका महत्त्व माना गया है। देवताओं-के हाथमें समस्त विश्वका प्रबन्ध साधारण तौरपर रहता है। जब देवता हार जाते हैं, तब कुछ दिन गड़बड़ रहती है; परन्तु जब वे जीत जाते हैं तब सब प्रबन्ध पूर्ववत् हो जाता है। सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा सृष्टिकार्यका नेतृत्व करते हैं। भगवान् विष्णु स्थितिकार्यका नेतृत्व करते हैं और भगवान् शिव लयकार्य तथा जीवको मुक्ति प्रदान करनेके कार्यका नेतृत्व करते हैं। क्योंकि निर्वाणमुक्ति, जो सामीप्य, सारूप्य आदि मुक्तियोंसे परे हैं और जिसमें जीवके स्थूल, सूक्ष्म तथा कारणशरीरका भी लय हो जाता है, वह एक आत्यन्तिक प्रलय ही है। यह कार्य भगवान् शिवके अधीन है। इसी तरह प्रत्येक ब्रह्माण्डमें सर्वशक्तिमान्, अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक भगवान्‌के प्रतिनिधिरूपसे उक्त तीनों देवताओंका पृथक् पृथक् नियन्त्रण रहता है।

हमारे इस ब्रह्माण्डमें उन त्रिमूर्त्तियोंके अधीन द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, अष्टवसु और दो और देवता, जिनके नाम प्रत्येक मन्वन्तरमें अलग अलग होते हैं, ये ही तैंतीस उच्चपदधारी देवता हैं और उनके अधीन छोटे पदधारी अनेक देवता हैं। इनके

नियामक देवता ऋषि कहाते हैं, जैसे सप्तऋषि आदि ये भी प्रत्येक मन्वन्तरमें बदल जाते हैं। कर्मके चलानेवाले और शुभाशुभ फल देनेवाले जो देवता हैं, वे ही ऊपर कहे हुए तैंतीस उच्चपदधारी देवता हैं। स्थूलशरीरके निर्माण करनेवाले और सम्हालनेवाले देवता अर्यमा, अग्निष्वात्ता आदि नित्य-पितृगण कहाते हैं। माताके गर्भमें रजोवीर्यकी सहायतासे जीवके कर्मानुसार वे ही पितृगण शरीर बनाते हैं। इसी प्रकार उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुजोंके चलानेवाले अनेक देवता हैं। इसप्रकार दैवीराज्यकी शृंखला बहुत विस्तृत और चमत्कारपूर्ण है। साधनके द्वारा इन सब देवताओं-को प्रत्यक्ष भी किया जा सकता है। इसके उपाय दर्शनशास्त्र और तन्त्रशास्त्रमें अच्छी तरह बताये गये हैं, जिनकी कल्पना आजकलके विद्वन्मन्य लोग कर नहीं सकते।

दैवीजगत् और उसकी शृंखलाको समझ लेनेके साथही साथ यह भी जान लेना चाहिये कि, जीव-पिण्डकी कितनी श्रेणियाँ होती है और कैसे कैसे उनके परिणाम हुआ करते है। दर्शनशास्त्रोंने जीवपिण्ड-की तीन श्रेणियाँ की हैं, १—देवपिण्ड, जो मनुष्योंके पिण्डसे विलक्षण होता है। असुर, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, ब्राह्मस्वर्गके पिण्ड, प्राजापत्य-स्वर्गके पिण्ड, भूः भुवः और स्वः लोकके पिण्ड, प्रेतलोकके जीवोंके पिण्ड, नरकलोकके जीवोंके पिण्ड, ये सब देवपिण्डके अन्तर्गत है। २—भारतवर्षरूपी जो हमारा मृत्यु-लोक है, जहाँ मातृगर्भसे जीवोंका जन्म होता है, उसमे उत्पन्न होने वाला मानव-पिण्ड कहाता है। इन उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुजोंके जो पिण्ड है, वे सब सहजपिण्ड हैं। सहजपिण्ड सबसे पहले पृथ्वी और जल इन दोनोंके मलसे उत्पन्न होता है; जैसे—काई आदि। क्रमशः वह जीव क्रमाभिव्यक्ति (इवोल्यूशन प्रिन्सिपल) के नियमानुसार अनेक घास, ओषधि, लता, गुल्म, वृक्षआदि रूपोंमें आगे बढ़ता हुआ पीपल, वटआदि महान् वृक्षोंके पिण्डोंमें पहुँच जाता है। तदुपरान्त इसी नियमानुसार वह उद्भिज्जजातिसे स्वेदजजातिके जीवपिण्डमें पहुँच जाता है। स्वेदजजातिके जीवोंके अनेक भेद हैं। जीवशरीरमें उत्पन्न होनेवाले रोग-उत्पन्नकारी स्वेदजजीव और रोगोंका नाश करनेवाले स्वेदज-जीव, इस प्रकारके अनेक कीटाणु हैं, जो साधारण दृष्टिसे दिखायी नहीं देते, किन्तु यन्त्रके द्वारा जलमें, स्थलमें सर्वत्र दिखायी देते हैं। इसप्रकार जीव उद्भिज्जसे स्वेदज सृष्टिमें जाकर फिर उत्पन्न होता हुआ अण्डज-योनिमें पहुँच जाता है। सर्प, पक्षी, पतङ्ग आदि अण्डज-योनिके जीव प्रसिद्ध ही हैं, जिनके लाखों भेद हैं। उद्भिज्जमें केवल अन्नमय-कोशका विकास होता है। इसीसे वृक्षकी डार काटकर दूसरी ओर लगा देनेसे वह वृक्ष बन जाती है। स्वेदजोंमें अन्नमय और प्राणमय दोनों कोशोंका विकास होता है। इसीसे उनमें रोग उत्पन्न करने, रोग नाश करने आदिका प्रभाव देख पड़ता है। अण्डजयोनिमें अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशका विकास होता है। इसीसे देखा जाता है कि, कबूतर चिट्ठीरसाका काम करता है। फिर जब जीव आगे बढ़कर जरायुज योनिमें पहुँच जाता है, तब उसमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञान-मयकोशका विकास हो जाता है। इसीसे हाथी, घोड़ा, गाय, कुत्ता आदिमें बुद्धिका कार्य देख पड़ता है तदनन्तर जब अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय

और आनन्दमयकोषके विकासका समय आता है, तब वह मानवपिण्डमें पहुँच जाता है और उसके आनन्दके द्योतक हास्यका विकास होता है। चतुर्विध-भूतसंघके सहजपिण्डको छोड़कर जीव जब पञ्चकोशोंसे पूर्ण मानवपिण्डमें पहुँचता है, तब वह तीन योनियों अर्थात् द्वारोंसे होकर आता है। १—वानरयोनि, २—सिंहयोनि और ३—गौयोनि। पहले वह असभ्य मानवश्रेणीमें जन्मता है। फिर असभ्यसे सभ्य, अनार्यसे आर्य, अज्ञानीसे ज्ञानी होता हुआ तथा आवागमन-चक्रमें घूमता हुआ क्रमशः काम, अर्थ, धर्म और मोक्षके अधिकारी एवम् प्रथम प्रवृत्ति तथा फिर निवृत्तिके अधिकारोंको प्राप्त करता है। यही जीवपिण्डकी क्रमाभिव्यक्तिका क्रम है और यही जीवपिण्डका परिणाम है। आर्योंको छोड़कर ऐसा स्वानुभव पृथ्वीकी किसी जातिने नहीं किया है और यह भी आर्यसंस्कृतिकी एक विशेषता है।

कोई भी व्यवस्था या कृति यदि देश-कालको न समझकर की जाय, तो वह विफल हो जाती है। इसीसे बुद्धिमान् लोग देश और कालका बहुत विचार रखते हैं। अतः पहले यह विचार लेना चाहिये कि, देश और काल है क्या वस्तु? प्राचीन आर्यलोगोंने देश और कालका स्वरूप जान लिया था, इसीका कारण प्रत्येक धर्मकार्यके सङ्कल्पमें वे देश और कालको दृष्टिके सामने रक्खा करते थे। आर्यगण चतुर्दशभुवनमय देशको अपना देश मानते थे। इन भुवनोंका विवरण पहले किया गया है। प्राचीनकालमें इन भुवनोंका ऐसा परस्पर सम्बन्ध था कि, इस मृत्युलोकके मानवपिण्डधारी जीव स्वर्गादिलोकोंमें जाया करते थे और वहाँके देवपिण्डधारी यहाँ आया करते थे। महाभारतका समय पाँचहजार वर्षसे कुछ ही ऊपर है। उस महान् प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थसे विदित होता है कि महाभारतके समयतक देवपिण्डधारी देवताओंका यहाँ आना और यहाँके मानवपिण्डधारी मनुष्योंका वहाँ जाना चलता रहता था। देवर्षि नारद और महर्षि दुर्वासा देवपिण्डधारी थे। उनका सर्वत्र पहुँचना रामायण और पुराणादि शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। महर्षि दुर्वासाके उपदिष्ट मन्त्रसे आकृष्ट होकर भगवान् सूर्यदेव, भगवान् यमधर्मराज, भगवान् वायुदेव और भगवान् इन्द्रदेवने मृत्युलोकमें आकर मानवपिण्ड धारणकर कुन्तीदेवीमें गर्भाधान किया था। देवताओंके लिये एक पिण्डसे दूसरे पिण्डमें चले जाना सुगम है और देवताओंकी कृपासे मानवपिण्ड भी देवपिण्डमें परिणत हो सकता है। महावीर अर्जुन इसी शरीरसे स्वर्ग गये थे और वहाँ बहुत कुछ कार्य भी किया था; परन्तु इस शरीरके परमाणु बदलकर वे देवशरीरमें परिणत हुये थे। इसी तरह परमाणु परिवर्तन कर धर्मराज युधिष्ठिर भी स्वर्गमें पहुँचे थे। राजा दुर्योधनका स्थूलशरीर यद्यपि यहीं पड़ा रहा, तथापि उनके सूक्ष्मशरीरके असुरलोकमें पहुचने और उपदेश पानेका प्रमाणभी पाया जाता है। मानवोंका स्वर्गादि लोकोंमें जाना और देवताओं तथा असुरोंका यहाँ आना महाभारत-कालके अनन्तर भी हुआ करता था। बाइबिलमें लिखा है कि, महात्मा ईसाका जन्म बिना पिताके हुआ था। कुरानशरीफसे पता चलता है कि महात्मा महम्मदके समयमें देवपिण्डधारी फ़रिश्तोंका और असुरोंका यहाँ आना-जाना होता था। इन्हीं प्रमाणोंसे आर्यगण चतुर्दश भुवनोंको अपना देश समझते थे।

कालके विषयमें भी आर्योंकी धारणा अति महान् है। आर्यशास्त्रोंके हिसाबसे ४ लाख ३२ हज़ार मानववर्षोंका कलियुग, उससे दुगना द्वापर, उससे दुगुना त्रेता और उससे दुगुना सत्ययुग होता है। इन चारोंका मिलकर महायुग कहाता है और ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प अर्थात् श्री ब्रह्माजीका एक अहोरात्र होता है। इस प्रकार ब्रह्माजीके १०० वर्ष होने पर उनकी आयु समाप्त होकर वे ब्रह्मीभूत हो जाते और उनके पदपर दूसरे ब्रह्मा आ जाते हैं। ब्रह्माकी आयुके १०० वर्षोंमें श्रीविष्णु भगवान्‌का एक अहोरात्र होता है और विष्णुके १०० वर्षोंमें श्री भगवान् शिवजीका एक अहोरात्र होता है। परन्तु शिवजीके १० करोड़ निमेषोंमें श्री जगदम्बाकी एकही त्रुटि होती है। प्रत्येक मन्वन्तरमें यद्यपि इन्द्रादि देवपदधारी देवता, ज्ञानके परिचालक ऋषि और स्थूलशरीरके संचालक नित्यपितृगण बदल जाते हैं, किन्तु सम्पूर्ण प्रलय नहीं होता, खण्डप्रलय होता है और भूः भुवः स्वः इन तीनों लोकोंकी शृङ्खला और सभ्यतामें अन्तर पड़ जाता है, परन्तु श्रीजगदम्बाकी एक त्रुटिमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका प्रलय हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, महेशके प्रकट होनेसे पहले प्राकृतिक सृष्टि होती है और उसमें ब्रह्माण्डके उपादानरूपी परमाणुपुञ्जोंको एकत्र करनेमें समय लगता है। इसीतरह जीवोंका प्रलय करके शिवजीके ब्रह्मीभूत हो जानेपर उनके बिखरनेमें भी समय लगता है। सृष्टि और प्रलयके सब कार्य जिस समयमें हों, उस समयको ब्रह्माण्डकी आयु कह सकते हैं। हर एक ब्रह्माण्डके एक एक ब्रह्मा, विष्णु, महेश होते हैं और वे अपने अपने १०० वर्ष बीतनेपर ब्रह्मीभूत हो जाते और उनके स्थानों पर नये त्रिदेव आ जाते हैं।

इस विवरणके अनुसार आर्य-महर्षियोंको कालकी विशालताका जैसा पता लगा था, वैसा उसकी सूक्ष्मताका भी पता लगा था। वर्तमान कालके मापमें सेकेण्डसे सूक्ष्मकालका माप करनेकी गुञ्जाइश नहीं है। परन्तु आर्ष हिसाबसे १०० त्रुटिका १ पर, ३० परका १ निमेष, १८ निमेषकी एक काष्ठा, २० काष्ठाकी एक कला, ३ कलाकी एक घटिका, २ घटिकाका १ क्षण और ३० क्षणका १ अहोरात्र होता है। कालकी इतनी सूक्ष्मता संसारकी किसी जातिने नहीं जानी है। जो आधुनिक विद्वान् कल्पनाके आधारपर ब्रह्माण्डकी आयु जाननेका प्रयत्न करते हैं, वे यदि आर्योंके देश-काल-ज्ञानका अध्ययन करें, तो उन्हें वास्तविकता ज्ञात हो जायगी और भ्रान्त नहीं होना पड़ेगा।

श्रद्धा और विश्वासके उठ जानेसे आजकलके वैज्ञानिक दैवीसृष्टि और मानवी सृष्टिके अन्तरको हृदयङ्गम नहीं कर सकते। दैवीसृष्टिकी तुलनामें मानवी सृष्टि बहुतही छोटी वस्तु है। मानवपिण्ड केवल मृत्युलोकमें ही उत्पन्न होता है और उसकी शक्ति बहुत सीमित रहती है। देवपिण्डमें दैवीशक्तिका प्राधान्य रहनेसे जन्मसे ही उसमें पूर्णता आ जाती है और उसकी शक्ति अमोघ रहती है। साधारण मनुष्य अपनी साधारणबुद्धिसे दैवीसृष्टिका स्वरूप समझ नहीं सकते, इसीसे अपने पूर्वजों पर नाना निर्मूल आक्षेप किया करते हैं। इस पापसे बचनेके लिये उन्हें आर्यशास्त्रोंके द्वारा दैवीसृष्टि और मानवीसृष्टिका रहस्य समझ लेना चाहिये। आजकल युरोप और अमेरिकाके कुछ खोजी विद्वान्

टेबल, रेपिंग, प्लैंचेट, सरकल आदि क्रियाओंके द्वारा देवताओंसे सम्बन्ध स्थापन करनेका प्रयत्न करते हैं; परन्तु क्षुद्र प्रेतोंसे ही उनका सम्बन्ध स्थापन होता है, उन्नत देवताओंसे नहीं। जीवपिण्डकी श्रेणियाँ और उनके परिणाम पहले बताये जा चुके हैं। यहाँ यह देखना है कि, मानवपिण्डकी देवपिण्डसे कितनी पृथक्ता है और देवपिण्डकी शक्ति कितनी महान् है। देवपिण्डधारी बड़े बड़े देवता यदि चाहें, तो मानव-पिण्ड धारणकर मनुष्यलोकमें बड़े बड़े आश्चर्य-जनक कार्य कर सकते हैं। वे सिद्धमन्त्रोंसे आकृष्ट होकर मानवपिण्ड धारणकर मानव-पिण्डधारिणी स्त्रीके गर्भाधान कर सकते हैं। महर्षि दुर्वासाके सिद्धमन्त्र द्वारा आकृष्ट होकर देवताओंके द्वारा गर्भाधान होनेसे वीरवर कर्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, धनुर्धर अर्जुन आदिकी उत्पत्ति हुई थी।

देवपिण्डधारियोंमें ऐसी विलक्षण शक्ति होती है कि, वे मानवपिण्डधारियोंके परमाणुओंमें परिवर्तन कर उनको देवपिण्डधारियोंमें परिणत करके देवलोकमें ले जाते हैं। महाराजा दशरथ इसीतरह असुरोंको दबानेके लिये देवलोकमें गये थे। वीरवर अर्जुनने देवलोकमें जाकर इन्द्रसे बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त की थी। महाराजा युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग गये थे। जिसप्रकार देवपिण्डधारी मानवपिण्डकी स्त्रियोंमें गर्भधारण कर सकते हैं, उसीप्रकार देवाङ्गनाओंके द्वारा मानवपिण्डधारी पुरुषोंके संयोगसे सृष्टि उत्पन्न हो सकती है। शकुन्तलाकी उत्पत्ति इसी तरह हुई थी। महाराजा शान्तनुने गङ्गादेवीके द्वारा आठ पुत्र उत्पन्न किये थे। पितामह भीष्मदेव उनमेंसे आठवें थे। महर्षि पराशर और सत्यवती दोनों देवपिण्डधारी थे। उनसे व्यासदेवने जन्मग्रहण किया था। देवपिण्डधारियोंमें विशेषता यह होती है कि, उनकी सन्तति पूर्णावयव होती है। व्यास-देव भी पूर्णावयव थे और उनकी स्थिति अब भी है। इसीसे उन्होंने श्रीशङ्कराचार्यको दर्शन दिये थे। महारानी द्रौपदी भी देवपिण्डधारिणी थीं और हवनकुण्डसे उत्पन्न हुई थीं। इसीसे पाँच पति होनेपर भी वे सतीत्वधर्मकी रक्षा कर सकीं। अब भी यदि कोई देवताओंको प्रत्यक्ष करना चाहें, तो यथायोग्य प्रयत्न करनेसे सफलकाम हो सकते हैं।

आजकलके विद्वानोंको अवतार-चरित्रोंमें विश्वास न होनेसे इतिहासको कल्पनाकी दृष्टिसे देखते हैं। श्रीभगवान् गीतामें अर्जुनसे कहते हैं,—अर्जुन ! तुम्हारे और मेरे कितने ही जन्म हो चुके हैं, उनको तुम नहीं जानते; परन्तु मैं जानता हूँ। इसका रहस्य यह है कि, भगवान् विष्णुके पूर्णावतार थे। इसकारण वे भूत-भविष्य सब जानते थे और पूर्ण-दैवीशक्तिसम्पन्न थे। उनके लिये असाध्य कुछ नहीं था। यह उनकी ब्रजकी बाललीलाओंसे ही सिद्ध है। नन्हींसी अवस्थामें शकटासुर, अघासुर, बकासुर, पूतनाआदिको मारना, कालियनागको नाथना, गोवर्धन-पर्वतको अंगुलीपर उठाना आदि कार्य अवतारी महामानवके अतिरिक्त कोई कर नहीं सकता।

किशोरलीलामें कुबड़ीको सुन्दरी बना देना, कुवलयाके दाँत तोड़ना, मुष्टिक-चाणूरको मार गिराना और कंसका सिर उतार लेना पूर्णावतारी पुरुषके लिये ही सम्भव था। जिसके जैसे कर्मसंस्कार होते हैं, उनकी मर्यादाका पालन पुरुषोत्तमको करना ही पड़ता है। इसीसे अपनी इच्छाशक्तिसे पश्चिमी सागरमें द्वारकानगरी निर्माण कर वहाँ

यादवोंको बसाया और जरासन्धके अत्याचारोंसे उनकी रक्षा की। जरासन्धको स्वयं न मारकर आगे चलकर भीमसेनसे उसे मरवाया; क्योंकि भगवान्‌के हाथोंसे उसकी मृत्यु बदी नहीं थी। सोलह सहस्र रानियोंको उतने ही रूप धारणकर सन्तुष्ट किया करते थे; क्योंकि वे योगेश्वर थे। उनके लिये असम्भव क्या था? फिर भी राजसूययज्ञके समय ब्राह्मण-पुत्रको जिलानेसे उनका ब्रह्मचर्य सिद्ध हो चुका था। इसी तरह अपने गुरु सन्दीपिनी ऋषिके पुत्रको भी यमलोकसे लौटा लाये थे। लौकिक चरित्रमें भी उनका सुदामाके साथ किया हुआ व्यवहार लोकोत्तर है। गजेन्द्रमोक्ष और द्रौपदीकी लज्जा-रक्षाका उनका कार्य किसके हृदयमें श्रद्धाका सञ्चार नहीं करता!

भगवान् श्रीकृष्णका अवतार-चरित त्रिविध भावोंसे परिपूर्ण है। उनकी व्रजलीला अधिदैव-भावसे अलंकृत है। द्वारकाकी लीला अधिभूत-भावसे सुमण्डित है और वेदकी सारस्वरूपा गीता-का प्रकाशन उनके आध्यात्मिक भावसे ओतप्रोत है। भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र आदिसे अन्ततक अति-विचित्रतासे पूर्ण है। उसमें कर्मका स्वरूप विशद-रूपसे प्रकट हुआ है। भगवान् रामचन्द्रका चरित्र मर्यादा पुरुषोत्तमका चरित्र है। आदर्श धार्मिक मनुष्य कैसा होना चाहिये, आदर्श धार्मिक राजा कैसा होना चाहिये, आदर्श धार्मिक सद्‌गृहस्थ कैसा होना चाहिये, श्रीरामचरितमें उसकी मर्यादाकी पराकाष्ठा हुई है। श्रीरामचरित्रमें मन्त्रशक्तिके चमत्कार विशेषरूपसे देख पड़ते हैं। महर्षि विश्वामित्रसे उन्हें बला और अतिबला विद्या प्राप्त हुई थी, जिनके प्रभावसे भूख-प्यास नहीं लगती थी। एक बाणसे मारीचको दक्षिणभारतमें उन्होंने फेक दिया था और इन्द्रपुत्र जयन्तको एक तिनकेसे तीनों लोकोंमें दौड़ाया था। जटायुके सम्बन्धकी उनकी कृतज्ञता सिद्ध ही है। उस समयके मन्त्रपूत शस्त्रास्त्रों और विमान आदिके वर्णनोंको पढ़कर लोग उनकी आजकलके ऐरोप्लेन, ऐटम बमके साथ तुलना करते हैं; परन्तु यह उनका भ्रम है। मन्त्रशक्तिके प्रभावका अज्ञान है। प्राचीन मन्त्रशक्तिपूर्ण अस्त्र आजकलके भौतिक अस्त्रोंकी तरह अकारण सृष्टिका नाश नहीं करते थे, किन्तु जिसपर वे चलाये जाते थे, उसीका संहार कर या अपना नियोजित कार्य कर पुनः प्रेरकके पास लौट आते थे, वह शक्ति ऐटम बम जैसे आधु-निक अस्त्रोंमें कहा है?

आर्यगण कितने प्रकारकी पुस्तकें और उनकी कितने प्रकारकी भाषाएँ मानते थे, इसके न जाननेसे भी प्राचीन वेदशास्त्रोंके सम्बन्धमें आजकलके विद्वान् भ्रममें पड़ जाते और अपने आर्यपूर्वजों पर नाना-प्रकारके निर्मूल आक्षेप कर बैठते हैं। यदि उन्हें वास्तविकता जाननेकी इच्छा हो, तो उन्हें जानना चाहिये कि, आर्यगण पाँच प्रकारकी पुस्तकें मानते थे। वे पुस्तकें हैं,—ब्रह्माण्ड, नाद, बिन्दु, पिण्ड और अक्षरमयी। ब्रह्माण्डपुस्तक ब्रह्माण्डके अधी-श्वर ब्रह्मा विष्णु और शिवके द्वारा प्रकाशित होती है। ब्रह्माके कहे हुए शास्त्र, विष्णुके प्रतिपादित शास्त्र, शिवनिर्मित तन्त्रादि ब्रह्माण्डपुस्तकके अन्तर्गत है। नादपुस्तक वेद हैं, जो कल्पारम्भमें महर्षियोंको ज्यों-के त्यों सुनाई देते हैं। योगिगण बिन्दुमें संयमकर योगशक्तिके द्वारा जो अलौकिक शास्त्र प्रकाशित करते हैं, उसे बिन्दुपुस्तक कहते हैं और ज्ञानके अधिष्ठाता महर्षिगणके द्वारा या उनकी प्रेरणासे जो पुस्तक

प्रकाशित होती है, वह पिण्डपुस्तक है। पाँचवीं अक्षरमयी पुस्तक है, जो लिखी या छापी जाती है। यह नाशवान् है, परन्तु शेष चारों अविनाशी हैं और यथासमय उनका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है। वेदोंमें सत्त्व, रज, तम ये त्रिगुण और अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये त्रिभाव समान-रूपसे विद्यमान होनेसे उनमें ज्ञानकी पूर्णता है, वे अभ्रान्त और नित्य हैं।

इसीतरह वेद और शास्त्रोंकी भाषाएँ तीन हैं,—समाधिभाषा, लौकिक-भाषा, और परकीयभाषा। वेदों, इतिहास-पुराणों और तन्त्रादिशास्त्रोंमें प्रायः लौकिक अर्थात् रहस्यमयी भाषाका ही प्रयोग हुआ है और वह श्रीभगवान्का भी प्रिय है। प्राण, इन्द्रिय और मनोमय शब्दब्रह्म अतिदुर्बोध और समुद्रकी तरह अपार है, गम्भीर और दुस्तर है। अतः रहस्यमयी लौकिक भाषाका बड़ा महत्त्व है; जैसे,—श्रीमद्भागवतकी रासलीला। गाथा-गुम्फित परकीय-भाषामें तो अतिविचित्रता होती है। जहाँ जैसी आवश्यकता होती है, वहाँ वैसा उसका उपयोग होता है। परस्परविरोधी दो घटनाओंमेंसे दोनों सत्य होनेपर भी कल्पान्तरके तारतम्यसे चरित्रोंमें अन्तर देख पड़ता है; जैसे,—श्रीमद्भागवतका और देवीभागवतका शुकदेवका चरित्र। समाधिभाषामें ऐसा अनन्तर नहीं देख पड़ता : क्योंकि समाधिगम्य विषय एकही तरहका होता है। जैसे,—आत्माका स्वरूप, प्रकृतिका स्वरूप, सृष्टि और लयका क्रम इत्यादि। वेद, पुराण, तन्त्रआदिकी समाधिभाषा एकही तरहकी होनेपर भी लौकिकभाषाका रहस्य-मय वर्णन और परकीयभाषाका गाथा-गुम्फित वर्णन एकसा न होनेसे उसके पढ़ने-सुनने और मनन करनेवाले इस रहस्यके न जानने वाले भूलभुलैयामें पड़ जाते और अण्डबण्ड आक्षेप करने लगते हैं। यदि वे सुयोग्य गुरुदेव अथवा आचार्यसे भाषाज्ञान प्राप्त कर लें, तो अपने पूर्वजोंके प्रति जो अपराध कर रहे हैं, उस पापसे बच जायँगे। यदि विदेशी ग्रन्थकारोंकी बातोंपर अन्धविश्वाससे निर्भर न रहकर वे अपने प्राचीन आर्षसाहित्यका ध्यानपूर्वक अध्ययन करें, तो उक्त सब बातें सत्यके रूपमें आइनेकी तरह उनकी आँखोंके सामने आ जायँगी। इस अध्ययनमें श्रीमहामण्डलद्वारा प्रकाशित 'निर्मूल आक्षेपोंका उत्तर', 'अन्तःकरणविज्ञान', 'स्त्री-पुरुषविज्ञान', 'हिन्दूधर्मका स्वरूप', 'सरणी' आदि पुस्तिकाएँ सहायक हो सकती हैं। श्रीभग-वान्के चरणकमलोंमें यही प्रार्थना है कि, हमारे देशके चिन्ताशील स्त्री-पुरुषोंको ऐसी बुद्धि प्रदान करें, जिससे उनके भ्रम दूर होकर उनको सत्यका प्रकाश देख पड़े।

परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका अवतार क्यों होता है ?

(लेखक :—भक्त रामशरणदासजी पिलखुवा)

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी आ रही है। कौन ऐसा भारतीय हिन्दू है कि जो श्रीकृष्णजन्माष्टमीका नाम सुनतेही प्रसन्न न हो जाता हो, गद्गद् न हो जाता हो। ३० करोड़ हिन्दुओंके हृदयसर्वस्व जीवनाधार प्रभु श्रीकृष्ण आजके ही दिन श्रीदेवकीजी की परमपवित्र कोखसे प्रकट हुए थे। जो ब्रह्म बड़े बड़े योगियोंके, ज्ञानियोंके, ध्यानियोंके, त्यागियोंके, तपस्वियोंके, ध्यानमें भी नहीं आते वही ब्रह्म आजके दिन इस परमपवित्र भारतकी गलीगली घूमने, खेलने, कूदने, हँसनेके लिये प्रकट हुये थे। आज अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक जगन्नियन्ता साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् निराकारसे साकार हो सनातनवर्णाश्रमधर्म, हिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये, गौ-ब्राह्मणों, साधु-सन्तों, वेदशास्त्रों, मन्दिरोंकी रक्षाके लिये अवतीर्ण हुये थे। धन्य है इस भारतमाताको, सनातनधर्मको, श्रीवसुदेव-देवकीको श्रीनन्दबाबा और श्रीयशोदा मईयाको।

क्या श्रीकृष्ण काल्पनिक हैं ?

आजकलके कुछ मनचले मनुष्य कहते हैं कि श्रीकृष्ण काल्पनिक हैं, कुछ कहते हैं कि श्रीकृष्ण योगी हैं, कुछ कहते हैं कि श्रीकृष्ण मनुष्य हैं। लेकिन ऐसा कहनेवाले सभी घोर पाप करते हैं। श्रीकृष्ण ब्रह्मको साधारण मनुष्य मानना या नहीं हुये हैं ऐसा मानना श्रीकृष्णका घोर अपमान करना है। कुछ मनुष्य बड़े जोर-शोरसे प्रचार करते देखे जा रहे हैं और कहते देखे जा रहे हैं कि जब देशके सुप्रसिद्ध नेता गाँधीजीने अनासक्तियोगमें श्रीकृष्णको काल्पनिक लिखा है तो श्रीकृष्णको मानना मूर्खता है। हम तो यह डंकेकी चोट घोषणाकर कहनेको तैयार हैं कि एक गाँधीजी नहीं, करोड़ों गाँधीजी भी मिलकर कहें कि श्रीकृष्ण काल्पनिक हैं, श्रीकृष्ण नहीं हुये हैं तो भी उनकी यह मूर्खतापूर्ण बात कदापि मान्य नहीं है। करोड़ों उल्लू और चमगादड़ोंके जब यह कहनेपर कि हमें दिनमें सूर्य नहीं दीखता इसलिये सूर्य है ही नहीं, तो सूर्य कहीं नहीं चला जाता, सूर्य बराबर रहता है। इसीप्रकार देशके चाहे कितनेही बड़ेसे बड़े नेता और उनके अनुयायी मिलकर कहें कि श्रीकृष्ण नहीं हुये हैं तो उनकी इस तुच्छ बातका क्या मूल्य है ? कुछ पाश्चात्यसभ्यताके रंगमें रँगे बाबुओंका कहना है कि क्राईस्ट (ईसा) को ही श्रीकृष्ण कहने लगे हैं, क्राईस्टका नाम ही दूसरा श्रीकृष्ण है, अलग श्रीकृष्ण कोई नहीं हुये। श्रीकृष्णको काल्पनिक मानना या क्राईस्टको ही श्रीकृष्ण मानना अपनी अज्ञानता और अपनी मूर्खताका परिचय देना है। जिन भगवान् श्रीकृष्णके होनेमें वेदशास्त्र, पुराण, महाभारत उपनिषद्, गीताभागवत प्रमाण हैं, करोड़ों ऋषि-महर्षि, जिन श्रीकृष्णका दिनरात गुणगान करते थे, करोड़ों विद्वान् जिन श्रीकृष्ण की कथा कह अपनेको सौभाग्यशाली समझते थे, करोड़ों भक्त जिन श्रीकृष्णका कीर्तनकर भवसागरसे पार हो गये, समस्त हिन्दुओंके ही नहीं समस्त जीवमात्रके जो श्रीकृष्ण जीवनाधार हैं, आज भी ३० करोड़ हिन्दू

जिन श्रीकृष्णको नित्य स्मरणकर श्रद्धासे सर झुकाते हैं, लाखों श्रीस्वामीरामतीर्थ और विवेकानंदजीके अंग्रेज शिष्य केलिफोर्नियाँमें श्रीकृष्णमन्दिर बना श्रीकृष्णपूजनकर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं, जिन श्रीकृष्णके व्रजके रजमें आज भी बडेसे बड़े पापियोंको क्षणमात्रमें मुक्तिप्रदान करनेकी शक्ति विद्यमान है, महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेव जिन श्रीकृष्णके प्रेममें विभोर हो 'हा श्रीकृष्ण हा श्रीकृष्ण' कह प्रेमसे रोया करते थे और १६ वर्ष तक निरन्तर जिन श्रीकृष्णके लिये गम्भीर गुफामें बैठे रोते रहे थे, जिन श्रीकृष्णके लिये श्रीसंत सूरदासजीने अपने हाथों अपने नेत्र फोड़ डाले और लाखों पद श्रीकृष्णकी लीलाके बनाये, जिन श्रीकृष्णके लिये राजारानी श्रीमीराबाई ने जहरका प्याला पीया, जिन श्रीकृष्णके लिये नरसीमेहताने अपना सर्वस्व लुटा दिया, जिन श्रीकृष्णका नाम लेकर, संत तुकाराम, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, नामदेव प्रेममें विभोर हो जाते थे, जिन श्रीकृष्णके लिये बड़े बड़े राजाओंने अपना राजपाट त्याग जंगलोंका रास्ता पकड़ा, श्रीकृष्णके लिये लाखोंने अपना सर्वस्व न्यौछावर किया, जिन श्रीकृष्णका हर समय हाथमें वीणा लिये श्रीनारदजी गुणगान करते घूमा करते हैं, जिन श्रीकृष्णको साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मान भगवान् श्रीवेदव्यासने पुराणोंमें जिनका वर्णन किया, जिन श्रीकृष्णका गुणगान करनेमें श्री अवधूत शिरोमणि श्रीशुकदेवजी महाराजने अपनेको धन्य धन्य माना, जिन श्रीकृष्णकी सृष्टिरचयिता साक्षात् ब्रह्माजी चारमुखोंसे और भगवान् शेषनाग हजार मुखोंसे स्तुति करते नहीं थकते, जिन श्रीकृष्णकी कथा सुन महाराजा परीक्षित भवसागरसे पार हो गये, जिन श्रीकृष्णके ध्यानमें भगवान् जगद्गुरु शङ्कराचार्यजी हर समय मग्न रहते थे, जिन श्रीकृष्णकी भक्तिका प्रचार करनेके लिये श्रीशेषावतार भगवान् श्रीरामानुजाचार्य दिनरात एक कर दिया, जिन श्रीकृष्णको बालकृष्णके रूपमें वल्लभाचार्य आजन्म लाड़ लड़ाते रहे, जिन श्रीकृष्णको निम्बार्काचार्य परमात्मा मान पूजते रहे, जिन श्रीकृष्णकी महिमासे मध्वाचार्य ग्रन्थ भरते रहे, जिन श्रीकृष्णकी भक्तिका प्रचार रामानन्दाचार्यजीने घर घर किया, जिन श्रीकृष्णके लिये साक्षात् भगवान् श्रीशङ्कर भिखारीका रूप बना व्रजकी गलियोंमें दर्शनोंकी लालसासे घूमते रहे, जिन श्रीकृष्णका कीर्तन कर सिक्खोंके दसों गुरुओंने अपनेको भाग्यशाली माना, जिन श्रीकृष्णका कीर्तन किये बिना निराकारोपासक संत कवीर दादूसे भी न रहा गया, जिन श्रीकृष्णकी भक्तिके लिये मुसलमान रसखानने अपना सब कुछ छोड़ा, जिन श्रीकृष्णके लिये मुसलमानी बेगम ताजने "हौं तो मुगलानी हिन्दुवानी ह्वै रहूँगी मैं" की घोषणा की, जिन श्रीकृष्णके प्रेममें विभोर हो मुसलमान रहीमने—

रहिमन कोऊ कहा करे ज्वारी चोर लबार।
जो पतराखन हार है माखन चाखन हार॥

कहा। जिन श्रीकृष्णकी गीतापर आजभी समस्त विश्व मोहित हो रहा है और लाखों अंग्रेज तक जिसका पाठकर शान्तिका अनुभव करते हैं, जिन श्रीकृष्णकी वंशीको सुन जड़चेतन सभी पागल जैसे बन जाते थे, जिन श्रीकृष्णको ईसाइयोंने नवी करके माना, जिन श्रीकृष्णको चीन जापानके करोड़ों बौद्धोंने स्वीकार किया, जिन श्रीकृष्णको जैनियोंने

तीर्थंकर करके माना, जिन श्रीकृष्णको आर्यसमाजियोंने महापुरुष करके माना, जिन श्रीकृष्णको मुसलमानोंने पैगम्बर करके माना, जिन श्रीकृष्णको एक बार मोहम्मद साहब हाथ जोड़ खड़े भारतकी ओर मुख किये स्मरण कर रहे थे, किसीके पूछने पर आपने उत्तर दिया—

'ननी उलफिल हिन्दे असवर उल्लोन हस्मुन काहिनुन' हिन्दुस्तानमें एक नवी गुजरे हैं कि जिनका रङ्ग साँवला था और नाम कन्हैया था। जिन श्रीकृष्णका कीर्तन करते रोकनेसे मुसलमान हरिदासने शरीरपर मार पड़ते समय कहा था—

टुकड़े टुकड़े देह हों तनसे निकले प्रान।
तब भी मुख त्याग नहीं हरिनामकी तान॥

जिन श्रीकृष्णके सम्बन्धमें अद्वैतवादी शंकराचार्य श्रीस्वामी मधुसूदन सरस्वती जी महाराजने डंकेकी चोट घोषणा करते हुए कहा—

वंशी-विभूषित-करान्नवनीरदाभात्।
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्॥
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्।
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

श्रीकृष्णसे बढ़कर कोई तत्त्व ही नहीं जाना। मुसलमान श्रीकृष्णभक्त रसखानने तो हद ही कर दी—

गावैं गुनि गनिका गन्धर्व औ
सारद सेष सबै गुन गावैं।
नाम अनन्त गनन्त गनेस ज्यों
ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध
निरन्तर जाहि समाधि लगावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ
छछियाँ भरि छाछ पै नाच नचावैं॥
सेस महेस गनेस दिनेस
सुरेसहुं जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड
अछेद अभेद सुवेद बतावैं॥
नारदसे सुक व्यास रटैं
पचिहारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

जिन श्रीकृष्णका बालब्रह्मचारी पितामह भीष्मजी महाराज बाणोंकी शय्या पर पड़े ध्यान किया करते थे, जिन श्रीकृष्णकी मन्दिरोंकी रक्षाके लिये लाखों क्षत्रियोंने प्राण दिये, जिन श्रीकृष्णको बड़े बड़े ऋषियोंने, मुनियोंने, ज्ञानियोंने, ध्यानियोंने, त्यागियोंने, तपस्वियोंने, योगियोंने, वीरोंने, भक्तोंने, सन्तोंने, गोभक्तोंने, गोरक्षकोंने, मुसलमानोंने, ईसाइयोंने, सनातनधर्मियोंने, आर्यसमाजियोंने, जैनोंने, बौद्धोंने, सिक्खोंने, पारसियोंने सभीने एकस्वरसे स्वीकार किया और भारतके प्रत्येक ग्राम ग्राममें जिन श्रीकृष्णके करोड़ों मन्दिर हैं,—हाय आज यह धूर्त पापी उन्हीं श्रीकृष्णका नाम मिटा डालना चाहते हैं, उन्हें ही काल्पनिक बताते हैं, नहीं हुआ बताते हैं, जिन धूर्तोंने हमारा हिन्दू नाम मेट हिन्दूसे हमें गैर-मुसलिम बनाया, जिन्होंने हमारे देशका नाम हिन्दुस्तानसे इण्डिया बनाया, जिन्होंने हिन्दी मेट हिन्दीकी जगह हिन्दुस्तानी भाषा गढ़ी, वही हमारे प्राणवल्लभ प्राणधन प्रभु श्रीकृष्णका नाम भी हमसे छीन लेना चाहते हैं। यदि मूर्खतावश हिन्दुओंने इनकी इस मूर्खतापूर्ण बातको मान लिया कि

श्रीकृष्ण काल्पनिक हैं तो याद रहे प्रत्येक हिन्दूको औरङ्गजेबका रूप धारण करना होगा और औरङ्गजेबकी तरह श्रीकृष्ण-मन्दिरोंको ढाहकर धूलीमें मिलाना होगा। कारण कि जब श्रीकृष्ण हुये ही नहीं तो फिर भला मन्दिरोंका क्या काम ? 'न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' न श्रीकृष्णको हुआ माना जायेगा न उनके मन्दिर बनेंगे। हिन्दुओंके इस घोर पतनपर दुनियाँ हँस रही होगी और आकाशमें बैठे महाराणा प्रताप, शिवाजी, श्रीगुरुगोविन्द सिंह जी, वन्दावीर आदि और सभी देवी देवता नौ नौ-धार आँसू बहा रहे होंगे और हमपर थूक रहे होंगे। आज किसी धार्मिक क्षत्रियका राज्य होता तो श्रीकृष्णको काल्पनिक बतलानेका कोई साहस नहीं करता। हिन्दुओंके सर्वस्व श्रीकृष्णका नाम मिटानेका षडयंत्र रचा जा रहा हो फिर भी हिन्दू बैठे-बैठे देखते रहें इससे बढ़ करके हिन्दुओंका और क्या पतन होगा ?

भगवान् श्रीकृष्णका अवतार क्यों हुआ ?

श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं इसमें तनिक भी संदेह करनेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीकृष्ण भगवान्का अवतार हमारे सनातनवर्णाश्रमधर्मकी रक्षा, गौ-ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये ही हुआ करता है। श्रीकृष्णका अवतार क्यों हुआ ? इसीलिये कि कंस आदि बड़े बड़े राक्षस सनातन-वर्णाश्रमधर्मके द्रोही थे, उन्हें मारकर धर्मकी ध्वजा फहरानेके लिये। कभी विचार किया कि कंस इतना भयंकर धर्मद्रोही राक्षस क्यों हुआ ? कंस था वर्णसंकर और वर्णसंकर कभी धर्मात्मा हो सकता नहीं। यही तो श्री अर्जुनने कहा था—

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रिया ॥

वर्णसंकर कुलघातियोंको और कुलको नरकमें ले जानेके लिये ही होता है और लोप हुई पिण्ड और जलकी क्रिया वाले इनके पितरलोग भी गिर जाते हैं।

महाराजा श्रीउग्रसेनजी महाराजकी रानी पवनरेखा थीं। एकबार वह पवनरेखा अपनी सहेलियों सहित वनमें भ्रमण करने गई हुई थीं। वह अकेली आगे बढ़ गईं और उन्हें वहाँपर एक द्रुमलिक नामक राक्षस मिल गया और उसने उन्हें अकेली देख उन्हें पकड़ लिया और उनके साथ बलात्कार किया जिससे उनके गर्भ रह गया। आगे जाकर वही कंस राक्षस पैदा हुआ और उस कंस-राक्षसने (वर्णसंकरने) समस्त देशमें त्राहि त्राहि मचा दी, खलबली मचा दी और योगयज्ञ, जपतप दानपुण्य सबकोही बन्द करनेकी ठान ली और वेदशास्त्रोंके पठन-पाठन करनेवालोंको दंड देना प्रारम्भकर दिया। हिन्दूसभ्यता संस्कृतिको जड़मूलसे नष्ट करनेका निश्चय कर लिया। बड़े बड़े ऋषि-महर्षियोंने उसे समझाया परन्तु उस वर्णसंकर धूर्त कंसके समझमें तनिक भी तो नहीं आया और सनातनधर्मकी नैया डगमगाने लगी। अन्तमें निराकार ब्रह्मको श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लेना पड़ा। और उस पापीके केश पकड़कर उसे पछाड़ना पड़ा। वह पापी कंस बच्चोंका बध करवाता था, अपने हाथों उसने अपने भानजे भानजियोंको मरवा डाला अपने बहनोई-बहिन वसुदेव-देवकीको जेलोंमें डाला, भानजे श्रीकृष्णको मारनेके लिये पूतनाको भेजा, गावोंमें आग लगवाई। आज भी जो भारतमाताके पाकिस्तान द्वारा खंड खंड

टुकड़े टुकड़े अङ्गभङ्ग हो गये हैं, करोड़ों हिन्दू मारे मारे डोल रहे हैं, लाखों बहिन बेटियाँ भगा ली गई हैं, बच्चे चीरे गये हैं, स्त्रियोंकी छातियाँ काट नंगीकर जुलूस निकाले गये हैं और गाँवके गाँव फूँककर राख कर दिये गये हैं, यह सब भी वर्णसंकर संन्तानोंकी ही काली-करतूतें हैं, और कुछ नहीं। यह हिन्दूसे बने मुसलमान क्या क्या अनर्थ नहीं कर सकते? आज जो जातपाँत तोड़कर ब्राह्मणकी लड़कीकी शादी भंगीके लड़केसे और भंगीकी लड़कीकी शादी ब्राह्मण-के लड़केसे, हिन्दूकी लड़कीकी शादी गो-भक्षक मुसलमानके लड़केसे, ब्राह्मण-कन्याकी पारसीसे, ब्राह्मण-कन्याकी वैश्यके लड़केसे की जा रही हैं और की गई हैं इनसे जो वर्णसंकर कंस पैदा होंगे वह क्या देशके अन्दर सुख शान्ति फैलाएगे? नहीं नहीं, त्रिकालमें भी नहीं, कदापि भी नहीं, वह तो देशमें प्रलय जैसा दृश्य उपस्थित करेंगे और घोर उपद्रव मचायेंगे। यह सब नये नये कंस धर्मकर्म वेद-शास्त्र सबको ही मेटने पर तुल जायेंगे और आज कुछ तुल भी गये हैं। आज जो साधुओंको जेलोंमें डाला जा रहा है, वर्णाश्रमधर्मका विध्वंस किया जा रहा है, छूआछूत जातपाँतको मिटाया जा रहा है मन्दिरोंकी मर्यादायें नष्ट की जा रही हैं, हिन्दूकोड-बिल तलाकबिलद्वारा हिन्दूधर्म जड़मूलसे समाप्त किया जा रहा है, हिन्दूललनायें गुण्डोंके घरोंमें पड़ी खूनके आँसू बहा रही हैं यह सब घोर अनर्थ हो रहा है इस घोर अनर्थको दूर करनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ था। बस, अब यही कहना है कि अपने वर्णाश्रमधर्म जातपाँत छूआछूत धर्मकर्म, वेदशास्त्र, सबको मानो, भूलकर भी मत छोड़ो और इनसबकी प्राण देकर भी रक्षा करो। जातपाँत तोड़कर शादी भूलकर भी मत करो, विधवाविवाहका नाम भूलकर भी मत लो, नहीं तो वर्णसंकर संतान होंगी और घर-घरमें कंस पैदा हो जायेंगे और समस्तदेशमें अशान्ति पैदा कर देंगे। पिण्डदान, श्राद्ध, तर्पण पूजापाठ सब बन्द हो जायेंगे। जिस धर्मकी रक्षाके लिये भगवान् श्री-कृष्णका अवतार हुआ आज हमारा परम कर्तव्य है कि हम उस धर्मकी रक्षाके लिये कटिबद्ध हो जायँ इसीसे प्रभु श्यामसुन्दर हमसे प्रसन्न होंगे और इसीमें हमारा कल्याण है।

बोलो भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!

बोलो सनातनधर्मकी जय !!

काल

घास-फूसकी पर्णकुटीको
राग-रङ्गसे भरे महल को।
दीन हीन असहाय अबलको
दिग्विजयी सम्राट् सबलको ॥
लीप रहा है काल सभीको
मलिन धूलिके गहरे रँगसे।
फिरती कूँची आज किसीपर
और किसीपर चलती कलको ॥

धूलि

हाड-माँसका कलित कलेवर
पत्थरका विशाल प्रासाद।
हृदय-हृदय की लगन लालसा
जीवनका विषाद उन्माद ॥
तेरे एक-एक मृदुकणमें
अङ्कित है सबका इतिहास।
कर लेती अपना तू सबको
अहो धूलि दो दिनके बाद ॥

मोहन वैरागी

कर्ममीमांसादर्शन।

[गताङ्कसे आगे]

अब दूसरी आवश्यकता कही जाती है—

त्रिविध शुद्धिको भी आवश्यकता है ॥ ७३ ॥

अधोगामीस्रोतसम्पन्न जैवकर्मकी अधोगामिनी-गतिको रोककर उसकी नियमित क्रमोन्नत गतिको स्थायी रखनेके लिये जिसप्रकार वर्णाश्रमधर्म और अधिकार-भेदकी आवश्यकता है, उसीप्रकार त्रिविध शुद्धिकी भी आवश्यकता है। मनुष्यकी नियमित क्रमोन्नतिमें तीन प्रकारकी बाधा होती है, एक स्थूल-शरीरकी बाधा, दूसरी सूक्ष्मशरीरकी बाधा, तीसरी कारणशरीरकी बाधा। इन्हीं तीनोंके सम्बन्धसे शारीरिक पवित्रता, मानसिक पवित्रता और बुद्धिकी पवित्रता ये तीन पवित्रताएँ मानी गई हैं। इसी सम्बन्धसे आधिभौतिक शुद्धिद्वारा मलका नाश, आधिदैविक शुद्धिद्वारा विक्षेपका नाश और आध्या-त्मिक शुद्धिद्वारा आवरणका नाश होना माना गया है। युगपत् ये तीनों जबतक न हों, तबतक जीवकी स्थायी और नियमित क्रमोन्नति नहीं हो सकती है। यही कारण है कि वेद एक साथही तीनों काण्डोंके साधनोंका उपदेश देते हैं। कर्मकाण्डके साधनोंसे आधिभौतिक शुद्धि, उपासनाकाण्डके साधनोंसे आधिदैविक शुद्धि और ज्ञानकाण्डके साधनोंसे आध्यात्मिक शुद्धि हुआ करती है, सुतरां इन तीनों शुद्धियोंकी भी विशेष आवश्यकता जैवकर्मके द्वारा नियमित उन्नति करनेकेलिये अवश्य रहती है ॥ ७३ ॥

अब तीसरेकी स्वाभाविक गतिका वर्णन कर रहे हैं—

ऐश उभयवाही है ॥ ७४ ॥

तीनों श्रेणियोंके कर्मोंमेंसे ऐशकर्म की विशेषता प्रतिपादनके लिये कहा जाता है कि, ऐशकर्मकी स्वाभाविक गति दोनों ओर प्रवाहित होती है। जब जीव नीचेकी ओर गिरता है, तौ भी ऐशकर्मकी सहायता लेनी पड़ती है और ऊपरकी ओर चढ़ता है तौ भी ऐशकर्मकी सहायता लेनी पड़ती है। जीव जब मनुष्ययोनिसे असत्-भोगकी प्राप्तिके लिये प्रेतलोक वा नरकलोकमें जाता है अथवा एक जन्मके लिये तिर्य्यग्योनिमें पहुँचता है तौभी देवतालोगही उसको पहुँचाते हैं। उसीप्रकार मनुष्य जब सत्कर्मके भोगके निमित्त पितृलोकमें जाता है, देवलोकमें जाता है अथवा असुरलोकमें जाता है तौभी उसको देवताओंकी सहायता निबन्धन ऐशकर्मकी सहायता लेनी पड़ती है। इस विज्ञानको और तरहसे भी समझ सकते हैं कि सहजकर्म केवल ऊर्द्ध्वगामी है, उसीप्रकार जैवकर्मको केवल निम्नगामी कह सकते हैं जैसे कि पहले सिद्ध हो चुका है कि वर्णाश्रमधर्म अधिकार-भेद और त्रिविध शुद्धिके द्वारा उसकी अधोगामिनी गतिको रोक देना पड़ता है। इस कारण ये दोनों एकदेशीय हैं। एककी गति ऊर्द्ध्व है, एककी गति निम्न है; परन्तु ऐशकर्मकी गति उभय ओर

शुद्धित्रैविध्यञ्च ॥ ७३ ॥ ऐशमुभयवाहि ॥ ७४ ॥

प्रवाहिणी है क्योंकि वह ऊपर जाते समय भी सहायक होता है और नीचे जाते समय भी सहायक होता है। यह मानना ही पड़ेगा कि ऐशकर्मकी व्यापकता सबसे अधिक है और उसकी गति सर्वतोन्मुखिनी है॥ ७४॥

इसी प्रसङ्गसे ऐशकर्मका महत्त्व प्रतिपादन किया जाता है—

इस कारण वह अलौकिक और विचित्र है॥ ७५॥

सहजकर्म और जैवकर्म अपने अपने अधिकारके अनुसार विस्तृत और अतिशक्तिशाली होने पर भी वे दोनों ही अपने अपने ढङ्गके एकदेशीय हैं और प्रत्यक्ष रूपसे समझमें भी आते हैं। परन्तु ऐशकर्म पूर्वकथित विज्ञानके अनुसार सर्वतोमुखीन-शक्ति-सम्पन्न तथा सर्वसहायक होनेके कारण उसको विचित्र शक्तियुक्त कह सकते हैं और अलौकिक भी कह सकते हैं। उसमें सर्वतोमुखीन शक्ति होनेसे वह विचित्र है और उसकी शक्ति गुप्तरहस्यपूर्ण होनेसे वह अलौकिक है॥ ७५॥

प्रसंगसे अब कर्मबीजसंग्रहका स्थान निर्णय किया जाता है—

चित्ताकाश, चिदाकाश और महाकाश रूपसे संस्कार स्थान त्रिविध है॥ ७६॥

कर्मका श्रेणीविभाग तथा उनका पृथक् पृथक् स्वरूप वर्णन करके अब पूज्यपाद महर्षि सूत्रकार कर्मका संग्रह बीजरूपमें कहाँ कहाँ रहता है, सो कह रहे हैं। कर्मरूपी वह वृक्ष जब संस्काररूपी बट-बीजके रूपको धारण करता है, तो उस अवस्थामें कारणरूपमें उस कर्मके रहनेका स्थान त्रिविध है, यथा—चित्ताकाश, चिदाकाश और महाकाश। मनुष्यके अन्तःकरणके आकाशको चित्ताकाश कहते हैं, एक ब्रह्माण्डके समष्टि अन्तःकरणके आकाशको चिदाकाश कहते हैं, अर्थात् पिण्डके आकाशको चित्ताकाश और ब्रह्माण्डके आकाशको चिदाकाश कहते हैं और अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डव्यापी आकाशको महाकाश कहते हैं। इस विज्ञानको दूसरे प्रकारसे भी समझ सकते हैं कि आधिभौतिक सृष्टिसे सम्बन्धयुक्त चित्ताकाश है, आधिदैविक सृष्टिसे सम्बन्धयुक्त चिदाकाश है और आध्यात्मिक सृष्टिसे सम्बन्धयुक्त महाकाश है जिन तीनों सृष्टिप्रकरणोंका वर्णन दैवीमीमांसा अर्थात् मध्यमीमांसा-दर्शनशास्त्रमें अच्छी तरहसे किया गया है॥ ७६॥

तीनोंका यथायोग्य सम्बन्ध बताया जाता है।

तीनोंका तीनोंसे सम्बन्ध है॥ ७७॥

जीव जो कुछ कर्म जन्मजन्मान्तरमें करता है, उसके बीजरूप संस्कार जब संगृहीत होते हैं, तब वे तीनश्रेणीके कहाते हैं। यथा:—प्रारब्धसंस्कार, सञ्चित-संस्कार और क्रियमाण संस्कार। एक जन्म लेनेसे पूर्व उस जन्मरूपी वृक्षके लिये जितने संस्कार-राशि बीज होते हैं वे ही प्रारब्ध संस्कार कहाते हैं। जो कुछ नवीन कर्म जीव करता रहता है, और

अतो विचित्रमलौकिकञ्च॥ ७५॥ संस्कारस्थानं त्रिविधं चित्ताकाशं चिदाकाशं महाकाशञ्च॥ ७६॥

त्रयाणां त्रिभिः सम्बन्धः॥ ७७॥

उसके जो बीज संग्रह होते हैं, सो क्रियमाण संस्कार कहाते हैं और जीवके अनन्त-कोटि जन्मोंके जो अनन्त संस्कारराशि हैं, और जिन बीजोंको अङ्कुरित होनेकी बारी अभी नहीं आई है, उनको सञ्चित संस्कार कहते हैं। वस्तुतः प्रारब्ध-संस्कारके साथ प्रधान सम्बन्ध चित्ताकाशका, क्रियमाण संस्कारका प्रधान सम्बन्ध चिदाकाशके साथ और सञ्चित-संस्कारोंका प्रधान सम्बन्ध महाकाशके साथ माना गया है। यद्यपि तीनों आकाश ही एक हैं और पहले दोनों महाकाशके अङ्गरूप हैं; जिस प्रकार घटाकाश, मठाकाश और महाकाश अर्थात् घड़ेका आकाश, गृहका आकाश और बाहरका आकाश तीनों एकही है; केवल उपाधिभेदसे अलग अलग प्रतीत होते हैं। तीनों आकाश एक होनेपर भी और कर्मके बीजरूपी संस्कार सब एक ही ढंगके होनेपर भी उन संस्कारोंके अङ्कुरित होनेके अवसरके अनुसार उनके स्थानोंका इस प्रकारसे विभाग किया गया है। ये तीनों एक ही आकाशके स्तरविशेष हैं। जैसे घटाकाशमें भी महाकाश है और मठाकाशमें भी महाकाश है, परन्तु घटाकाशका स्तर सबसे नीचे हैं, मठाकाशका स्तर उससे ऊपर है और महाकाशका स्तर सर्वव्यापक है। उसी स्तरके तारतम्यसे उनमें बिखरे हुए संस्कारराशिकी अङ्कुरोत्पत्तिरूपी शक्तिका भी तारतम्य हुआ करता है। इसीसे इन तीनोंकी स्वतन्त्र सत्ता स्थिर हुई है और कर्मबीजोंको भी तीन भागमें विभक्त किया गया है ॥ ७७ ॥

तीसरेका स्वरूप कहा जाता है—

आदि अन्त रहित होनेके कारण तृतीय एक तथा नित्य है ॥ ७८ ॥

तीसरा अर्थात् महाकाश जो श्रीभगवान्‌के विराट् देहके साथ सम्बन्ध रखता है, इस कारण वह आदि और अन्तरहित है। क्योंकि श्रीभगवान्‌का विराट् स्वरूप भी आदि-अन्तरहित है। अतः महाकाश भी विराट्रूपधारी श्रीभगवान्‌के सदृश एक और नित्यरूपसे विराजमान है। जैसे एक ब्रह्माण्डमें अनेक पिण्ड उत्पन्न होते हैं और लयको प्राप्त होते रहते हैं, उसीप्रकार महाकाशसे सम्बन्धयुक्त श्रीभगवान्‌के विराट् देहमें अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और लय होते रहते हैं। परन्तु श्रीभगवान्‌के विराट् देहसे सम्बन्ध-युक्त वह महाकाश सदा एकही रूपमें विराजमान रहता है ॥ ७८ ॥

अब अन्य दोनोंका स्वरूप कह रहे हैं—

अपर दोनों सादि सान्त हैं ॥ ७९ ॥

पिण्ड और ब्रह्माण्डसे सम्बन्धयुक्त जो चित्ताकाश और चिदाकाश हैं, वे दोनों सादिसान्त हैं। जिस प्रकार प्रत्येक पिण्डका आदि-अन्त है, उसीप्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्डका आदि और अन्त है। इस कारण उन दोनोंसे सम्बन्धयुक्त जो दो आकाश हैं, वे अवश्यही सादि सान्त होंगे। जिस प्रकार घटके नष्ट होनेसे घटाकाश और मठके नष्ट होनेसे मठाकाश नष्ट हो जाते हैं क्योंकि उपाधिके नष्ट होनेसे वे दोनों महाकाशमें मिल जाते हैं, उसीप्रकार यह सिद्ध हुआ कि चित्ताकाश और चिदाकाश ये दोनों सादि सान्त हैं। एक पिण्डस्थ जीव यदि मुक्त हो

तृतीयं नित्यमेकमनाद्यनन्तत्वात् ॥ ७८ ॥ अपरे सादिसान्ते ॥ ७९ ॥

जाय तो उसका बन्धनकेन्द्र नष्ट हो जानेसे कर्मबीज-संस्कारके रक्षोपयोगी उस पिण्डका आकाश भी ब्रह्माण्डके आकाशमें मिल जायगा, इसीप्रकार एक ब्रह्माण्डके महाप्रलय होनेपर एक ब्रह्माण्डका आकाश भी महाकाशमें मिल जायगा। यह शङ्का हो सकती है कि, कर्मके बीजरूपी संस्कारसमूह कहाँ चले जाते हैं और किसप्रकार चले जाते हैं? इस-प्रकारकी शंकाओंका समाधान यह है कि, जो जीव मुक्त हो जाता है और उसके पिण्डके पञ्चभूत, प्रकृति-के यथायोग्य स्थानमें विलीन हो जाते हैं तथा उसका चित्ताकाश अपने केन्द्रको छोड़कर चिदाकाशमें लीन हो जाता है तो स्वतःही उस जीवकेन्द्रके साथ सम्बन्धयुक्त जितने कर्मबीज थे, वे अपने आपही ब्रह्माण्डके केन्द्रको पकड़कर ब्रह्माण्ड-प्रकृतिका आश्रय करते हुए ब्रह्माण्डके चिदाकाशमें स्थान प्राप्त हो, उस ब्रह्माण्डकी भावी फलोत्पत्तिमें सहायक होते हैं। उसीप्रकार एक ब्रह्माण्ड जब महाप्रलयके गर्भमें लीन होता है तो उस ब्रह्माण्डके पञ्चभूतसमूह चाहे किसीके मतमें परमाणुरूपको धारण करते हैं, चाहे किसीके मतमें अपने कारणमें लय होते हैं। परन्तु यह तो निश्चित ही है कि, ब्रह्माण्ड किसी न किसी रूपमें मूलप्रकृतिके अङ्गमें प्रवेश कर जाता है और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहता है, तो उस ब्रह्माण्डका कर्मबीज-धारक चिदाकाश अपने अस्तित्वको छोड़कर महाकाशमें विलीन हो जाता है। जब पुनः ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है, तो "यथा-पूर्वमकल्पयत्" इस श्रुत्युक्त-विज्ञानके अनुसार हुआ करती है यह निश्चित है, तो यह भी मानना पड़ेगा कि, वे समष्टि-कर्मबीज कहीं-न-कहीं अवश्य रहा करते हैं। वे उस समय महाप्रलयमें जहाँ रहते हैं, आकाशके सर्वव्यापक अनादि अनन्त उसी स्तरको महाकाश कहते हैं। इसप्रकार मान लेने पर उस-प्रकारकी कोई शंकायें रह ही नहीं सकती हैं। अब दूसरी श्रेणीकी शंका यह हो सकती है कि, जीवके साथ क्रियमाण और सञ्चित-संस्कारोंका क्या कुछ सम्बन्ध रहता ही नहीं? यदि रहता है, तो उस जीवकेन्द्रके रहते समय वे कैसे रहते हैं और नष्ट होते समय वे किस अवस्थाको प्राप्त होते हैं? इत्यादि शंकाओंके समाधानके लिये निम्नलिखित विज्ञान समझने योग्य है। महाकाशमें जिसप्रकार चित्ताकाश और चिदाकाशका समावेश है, जैसे कि, व्यापक आकाशमें मठाकाश और घटाकाशका समा-वेश रहता है, उसीप्रकार चित्ताकाशमें और चिदा-काशमें भी चित्ताकाश, चिदाकाश और महाकाश इन तीनोंका सम्बन्ध विद्यमान है, केवल तीनोंका स्तर स्वतन्त्र स्वतन्त्र है। जीवके चित्ताकाशके साथ प्रारब्धसंस्कारका प्रधान सम्बन्ध रहता है, क्योंकि वे सब अङ्कुरित दशामें रहते हैं; तथापि क्रियमाण संस्कार और सञ्चित संस्कारभी गौणरूपसे रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो जीवको क्रियमाण संस्कारकी स्मृति कैसे रहती है, क्योंकि स्मृतिका सम्बन्ध तो जीवके चित्ताकाशसे रहता है। अतः जीवके क्रिय-माण संस्कार चिदाकाशके स्तरमें पहुँच जानेपर भी वे स्मृतिको अवलम्बन करके गौणरूपसे चित्ताकाशसे भी सम्बन्धयुक्त रहते हैं। जन्मान्तर होते समय वे क्रियमाण संस्काररूपको धारण किये हुए कर्मबीज जैसा अवसर हो, कुछ तो चित्ताकाशमें आकर प्रारब्ध बन जाते हैं और कुछ महाकाशके स्तरमें जाकर सञ्चित बन जाते हैं। अवश्य जीवकेन्द्र मुक्ति-दशामें नष्ट होनेसे उससे गौणरूपसे सम्बन्धयुक्त

चाहे क्रियमाण संस्कार हो, चाहे सञ्चित संस्कार हो, सभी मूल प्रकृतिका आश्रय करके महाकाशमें स्थान प्राप्त करते हैं और समयान्तरमें ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके कारण बनते हैं। सञ्चित संस्कारके साथ भी गौण सम्बन्ध चित्ताकाशसे रहता है। क्योंकि जीवके जो जन्मान्तरमें प्रारब्ध संस्कार बनते हैं, वे अधिकतर सञ्चित संस्कारसे आकर्षित होकर बनते हैं ॥ ७९ ॥

दोनोंके नाशका उपाय बताया जाता है—

संस्कारके प्रणाशसे उनका नाश होता है ॥ ८० ॥

वस्तुतः समष्टि और व्यष्टिरूपसे ब्रह्माण्ड और पिण्डके सम्बन्धसे जो कर्मबीजसंस्कारद्वारा फलोत्पत्ति होती है, सो चित्ताकाश और चिदाकाश इन दोनोंमें ही उन बीजोंका संग्रह रहता है। क्योंकि महाकाश तो विश्रान्ति और लयस्थान है। इस कारण इन दोनोंके नाशके विषयमें स्वतःही प्रश्न हो सकता है; सो कहा जाता है कि यदि किसी कारणसे संस्कारोंका सम्पूर्णरूपसे नाश कर दिया जाय तो इन दोनों आकाशोंका भी नाश हो सकता है। कर्मराज्यका आदि और अन्त समझनेके लिये कर्मबीजका आश्रयरूप चित्ताकाश और चिदाकाशका आदि अन्त अवश्य ही समझना उचित है। जैसे गाँठके बाँधनेमें और गाँठके खोलनेमें भी हाथकी क्रिया एकसी ही होती है, परन्तु एक क्रियासे गाँठ बँध जाता है और एकसे खुल जाता है उसीप्रकार कर्मको सुकौशलसे रहित होकर करनेसे जीव बन्धन-दशाको प्राप्त होता रहता है और कर्मको सुकौशल पूर्ण क्रियाके साथ सुसम्पन्न करनेसे बन्धनसे मुक्त हो सकता है। अतः जिन सुकौशलपूर्ण क्रियाओंके द्वारा कर्मबीज संस्कारका नाश हो सकता है, उन्हींके द्वारा इन दोनों आकाशोंका भी हान हो सकता है। जब वासना-नाश और तत्त्वज्ञानादि प्राप्त करनेके उपयोगी साधन-समूहकी सहायतासे साधक संस्कारका हान कर लेता है तो उस मुक्तात्मासे सम्बन्धयुक्त इन दोनों आकाशोंका भी विलय हो जाता है। कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्डके साधनोंकी सहायतासे साधक जब आत्मज्ञान-लाभ करके निःसङ्ग और निष्क्रिय हो जाता है, उस समय वासनामय, मनोनाश और आत्मज्ञानके द्वारा उस पिण्डका जैवकेन्द्र नष्ट हो जाता है; जब जैवकेन्द्र नष्ट होता है तो उसके द्वारा आकृष्ट क्रियमाण और सञ्चित कर्मबीजसंस्कार-समूह उस केन्द्रसे स्वतःही अलग होकर ब्रह्मप्रकृति जो सबका लयस्थान है, उसको आश्रय करते हैं। ऐसा होनेपर उस जैवकेन्द्रके सम्बन्धसे जो चित्ताकाश और चिदाकाशका स्वरूप बना हुआ था, यह स्वतः ही हानको प्राप्त हो जाता है ॥ ८० ॥

विज्ञानको और भी स्पष्ट कर रहे हैं—

संस्कारके अन्तमें क्रियाका अवसान होनेसे ॥ ८१ ॥

जब संस्कार कर्मका बीज है तो संस्कारके नाशसे कर्मका नाश होना स्वतःसिद्ध है। जिसप्रकार किसी वृक्षविशेषके बीजका यदि पृथ्वीभरसे नाश कर दिया जाय और ऐसा उपाय किया जाय कि, पुनः बीजसंग्रह ही न होने पावे तो ऐसी दशामें संसार-भरसे उस जातिके वृक्षका हान हो जायगा। इसी

संस्कारप्रणाशात्तन्नाशः ॥ ८० ॥ तदन्ते क्रियावसानात् ॥ ८१ ॥

उदाहरणके अनुसार समझना उचित है कि, किसी सुकौशलपूर्ण साधनद्वारा यदि कर्मबीज संस्कारोंका नाश कर दिया जाय, तो कर्मका नाश स्वतः हो जायगा ॥ ८१ ॥

प्रसङ्गतः जीव किससे सम्बद्ध है, सो कहा जाता है—

शरीरत्रय सम्बद्ध जीव होता है ॥ ८२ ॥

कर्माधीन जीव तीन शरीरोंके साथ सम्बन्धयुक्त रहता है। उन शरीरोंका नाम कारणशरीर, सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर है। जीवसृष्टिकी पूर्व्वावस्थामें जो प्रथम चिज्जड़ग्रन्थि उत्पन्न होती है, वही कारणशरीर है। चौबीस तत्त्वोंमेंसे स्थूल पञ्चभूतोंके अतिरिक्त अन्य तत्त्वोंका बना हुआ सूक्ष्मशरीर कहाता है। ये दोनों शरीर आवागमनचक्रमें जन्मान्तर प्राप्त होते रहते हैं और स्थूलशरीर जो मृत्युके समय यहाँ पड़ा रहता है, वह पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंसे बनता है और उसमें उन तत्त्वोंकी वैसी ही शृंखला रहती है, जैसा कि, जिस लोकमें रहना चाहिये। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, प्रेतलोकका स्थूलशरीर वायुतत्त्वप्रधान होता है, स्वर्गलोकका स्थूलशरीर अग्नितत्त्वप्रधान होता है, मृत्युलोकका स्थूलशरीर पृथ्वीतत्त्व-प्रधान होता है इत्यादि। इस शरीरविज्ञानको अन्य प्रकारसे भी समझ सकते हैं कि, पञ्चकोषोंमेंसे आनन्दमयकोषको कारणशरीर, विज्ञानमय, मनोमय और प्राणमयकोषको सूक्ष्मशरीर और अन्नमयकोषको स्थूलशरीर कहा जा सकता है। इन्हीं तीनों शरीरोंसे सम्बद्धित होकर जीव सृष्टिप्रवाहमें कर्मके वेगसे प्रवाहित रहता है ॥ ८२ ॥

अब तीनों शरीर किससे सम्बन्धयुक्त हैं सो कहा जाता है—

इसकारण वह त्रिभावसे सम्बन्धयुक्त है ॥ ८३ ॥

पूर्वकथित तीनों शरीर सृष्टिके तीनों भावोंसे यथाक्रम सम्बद्ध हैं। जिसप्रकार सृष्टिके सब पदार्थ त्रिभावात्मक हैं, उसी नैसर्गिक नियमके अनुसार ये तीनों शरीरका भी त्रिभावात्मक होना स्वतःसिद्ध है। शरीर तीन हैं। इसकारण कारणशरीर अध्यात्म, सूक्ष्मशरीर अधिदैव और स्थूलशरीरका अधिभूत होना सिद्ध होता है। स्थूलशरीर जीवके लोकान्तरित होते समय जहाँका तहाँ रह जाता है, इसकारण भौतिकसम्बन्धकी विशेषताके हेतु उसका आधिभौतिक होना निश्चित है। सूक्ष्मशरीरके आश्रयसे दैवकार्य सम्पादित होते हैं, इसकारण उसका अधिदैव होना भी युक्तियुक्त है और कारण-शरीर सबका कारण होनेसे अध्यात्म है ॥ ८३ ॥

कर्मके प्रसङ्गसे सृष्टिका विस्तार कहा जाता है—

कर्मके द्वारा त्रिभावात्मक सृष्टि होती है ॥ ८४ ॥

सृष्टिका कारण कर्म है। उस कर्मके द्वारा सृष्टि त्रिभावात्मक होकर प्रकट होती है। इसीकारण

जीवः शरीरत्रयसम्बद्धः ॥ ८२ ॥ त्रिभावसम्बद्धं तदतः ॥ ८३ ॥ कर्मणा त्रिभावात्मिका सृष्टिः ॥ ८४ ॥

सृष्टिके सब पदार्थ त्रिभावात्मक हैं और सृष्टि आध्यात्मिकी अथवा आधिदैवकी अथवा आधिभौतिकी होती है। पांचभौतिक दृश्यके जिस अंशमें चित्सत्ताकी प्रधानता है, जहाँ प्रकाश और ज्ञानका सम्बन्ध है, वह आध्यात्मिक कहावेगा। जहाँ क्रियाशीलता है, जिसके द्वारा देवतागण अपने कर्तव्यमें तत्पर होते हैं, सृष्टिका वह अंश अधिदैव कहाता है और जहाँ स्थूलत्व, जड़त्व, अज्ञान आदिका सम्बन्ध है, वह अंश अधिभूत कहावेगा ॥ ८४ ॥

प्रसङ्गसे कहा जाता है—

इसकारण कर्मके द्वारा उसके अधिष्ठाताओंका सम्बर्द्धन होता है ॥ ८५ ॥

कर्मही दृश्यप्रपञ्चका कारण है। कर्मसे ही सृष्टि, स्थिति और लय होते हैं। अतः कर्मके द्वारा त्रिभावात्मक क्रमोन्नति कैसे सम्भव है सो कहा जाता है। सृष्टिका अध्यात्मविभाग, अधिदैवविभाग और अधिभूत-विभाग इन तीनों विभागोंके चालक यथाक्रम ऋषि, देवता और पितृगण हैं। सगुणब्रह्मरूपी त्रिमूर्तिके प्रतिनिधिरूपसे ऋषिगण अध्यात्मराज्य, देवतागण अधिदैवराज्य और पितृगण स्थूल अधिभूतराज्यका सञ्चालन, संरक्षण और सम्बर्द्धन किया करते हैं। कर्मके द्वारा ये तीनों श्रेणीके देवता प्रसन्न होकर साधकके त्रिविध उन्नति तो करते ही हैं, अधिकन्तु वे सम्बर्धित होकर ब्रह्माण्डके अपने अपने अधिकारमात्रकी उन्नति करते हैं। इसी नियमके अनुसार कर्मका प्रभाव इन अधिदैवोंके सम्बन्धसे जगत्की उन्नतिका कारण बनता है ॥ ८५ ॥

किस किस कर्मके द्वारा कौन कौन तृप्त होता है, सो कहा जाता है—

अपने सम्बन्धके कर्मद्वारा वे तृप्त होते हैं ॥ ८६ ॥

सृष्टिप्रपञ्चके ज्ञानसम्बन्धी विभागके सञ्चालक और व्यवस्थापक ऋषिगण, क्रिया और कर्मफलकी व्यवस्था करनेवाले देवतागण, और स्थूलशरीर आदि विषयोंके व्यवस्थापक पितृगण हैं। इसकारण ज्ञानसम्बन्धीय कर्मद्वारा ऋषिगण, यज्ञादिद्वारा देवतागण और श्राद्धादिद्वारा पितृगण तृप्त होते हैं। इसप्रकारसे तृप्तिलाभ करके अपने अपने अधिकारके अनुसार जगत्की उन्नति करनेमें समर्थ होते हैं। वस्तुतः ज्ञान और विद्या आदिके अभिवर्द्धनके लिये जितने शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कार्य्य हैं, वे सबही ऋषिगणके सम्बर्द्धनके कारण ही बनते हैं। उसीप्रकार याग-यज्ञादि और सदाचारसे लेकर वर्णाश्रमधर्मआदि तक जितने साधारण और विशेष धर्मके क्रियासिद्धांश हैं, उनके द्वारा देवतागण सम्बर्धित होते हैं। उसीप्रकार पितृयज्ञ, पितृपूजा, श्राद्धतर्पणादिके द्वारा पितृगण सम्वर्द्धित होते हैं। उनके सम्बर्द्धनसे तत्तत् सम्बन्धीय-भावराज्योंके अधिकारोंकी यथाक्रम उन्नति होती है। अतः साधक यथायोग्य कर्मके अनुष्ठान द्वारा सब प्रकारकी उन्नति करनेमें समर्थ होता है ॥ ८६ ॥

प्रसङ्गसे कहा जाता है—

तेन तत्तदधिष्ठातृसम्बर्द्धनम् ॥ ८५ ॥

तत्सम्बन्धकर्मणा तत्तुष्टिः ॥ ८६ ॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें वे भिन्न भिन्न हैं ॥८७॥

चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड जो नाना पिण्डोंसे समन्वित है, उसके संरक्षण और सञ्चालनके लिये प्रत्येक ब्रह्माण्डमें पृथक् पृथक् ऋषिगण, पृथक् पृथक् देवतागण और पृथक् पृथक् पितृगण नियुक्त रहते हैं। वस्तुतः ये तीनों श्रेणीके देवता सगुणब्रह्मरूपी त्रिमूर्तिके प्रतिनिधिरूप हैं। वस्तुतः ये तीनों पदाधिकार अलग अलग कर्मके अनुसार ही निश्चित रहते हैं और इनके पदोंमें हेरफेर भी होता है। यथा एक वनके देवता अथवा नदीके देवता हैं, जब तक उस वन या नदीका अस्तित्व बना रहेगा, तब तक उस देवताका नैमित्तिक पदभी बना रहेगा। उसीप्रकार इन्द्र, वरुणादि पद नित्य होनेपर भी उन पदोंके अधिष्ठाताओंकी उन्नति और अवनति होनाभी सम्भव है। पितृगणका सम्बन्ध मनुष्ययोनिसे प्रारम्भ होता है। मृत्युलोकसे सम्बन्धयुक्त पितृगण पितृलोक में वास करते हैं। पितृलोक, धर्मराज-यमके अधिकारके अन्तर्गत है। देवलोकके पितृगण ऊपरके लोकों में वास करते हैं। ऋषिगणका अधिकार अनेक प्रकारका है और उनका वास सब सूक्ष्मलोकोंमें है। इस मृत्युलोकमें ऋषि और देवताके अवतार भी होते हैं ॥ ८७ ॥

उनका अधिकार बताया जाता है—

समष्टि और व्यष्टिमें उनका सम्बन्ध है ॥८८॥

देवताओंका सम्बन्ध सर्वत्र विद्यमान है। क्योंकि सूक्ष्म दैवजगत् सबका मूल है और जड़कर्म चेतन-देवताओंके द्वारा चालित होता है। क्या चतुर्विध भूतसङ्घके उद्भिज, स्वेदजादि योनियाँ, क्या नदी, पर्वत, समुद्रादि स्थूलभूत सम्बन्धी विभूति, क्या सुवर्ण लोहादि धातुपुञ्ज, चाहे स्थावर सृष्टि हो चाहे जङ्गमसृष्टि हो, चाहे स्थूल मृत्युलोक हो, चाहे सूक्ष्म दैवलोक हो, वस्तुतः व्यष्टि-पिण्ड और समष्टि ब्रह्माण्ड सर्वत्र ही दैवीशक्तिका सम्बन्ध है। कर्मकी शक्तिसे ही सब चालित और सुरक्षित हैं। कर्म जड़ है, जड़ शक्तिके मूलमें चेतन-शक्तिका रहना निश्चित है। इस कारण कर्मकी सत्ताके सम्बन्धसे देवताओंका अस्तित्व और समष्टि तथा व्यष्टिमें सर्वत्र देवताओंका साक्षात् अथवा परोक्ष सम्बन्ध विद्यमान ही है ॥८८॥

अब कर्मप्रवाहकी विशेष विशेष गतियोंका वर्णन कर रहे हैं—

अनुलोम विलोमभेदसे कर्मप्रवाह द्विविध है ॥ ८९ ॥

कर्मकी गतिको प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त कर सकते है। उसमें एकको अनुलोम और दूसरेको प्रतिलोम कह सकते हैं। द्वैतप्रपञ्चमें जो गति आत्माकी ओर चलती रहती है, वह अनुलोम गति है और कर्मकी जो गति आत्मासे नीचे अनात्माकी ओर चलती रहती है, वह गति विलोम कहाती है ॥ ८६ ॥

क्रमशः

प्रति ब्रह्माण्डं भिन्नास्ते ॥ ८७ ॥

समष्टिव्यष्ट्योः सम्बन्धस्तेषाम् ॥८८॥

द्विविधः कर्मप्रवाहोऽनुलोमविलोमभेदात् ॥ ८९ ॥

सती शैव्या

[कहानी]

श्रीमती सुन्दरीदेवी

प्राचीन समयकी बात है, मध्यदेशमें नारायणपुर नामकी अत्यन्त सुन्दर एक नगरी थी। उसमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी। उसका नाम था शैव्या। उसका पति पूर्वजन्मके पापसे कोढ़ी हो गया था। उसके शरीरमें अनेकों घाव हो गये थे, जो बराबर बहते रहते थे। शैव्या अपने ऐसे पतिकी सेवामें सदा लगी रहती थी। पतिके मनमें जो-जो इच्छा होती, उसे वह अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य पूर्ण किया करती थी। प्रतिदिन देवताकी भांति स्वामीकी पूजा करती और दोषबुद्धि त्यागकर उसके प्रति विशेष स्नेह रखती थी। एकदिन उसके पतिने सड़कसे जाती हुई एक परमसुन्दरी वेश्याको देख लिया। उसको देखते ही वह अत्यन्त मोहित हो गया। उसकी बुद्धि मोहित हो गयी और लम्बी लम्बी साँस खींचता रहा और अन्तमें बहुत ही उदास हो गया। उसको उदास देख शैव्या घरसे बाहर आयी और अपने पतिसे पूछने लगी—नाथ! आप इतना उदास क्यों हो गये? आपने लम्बी साँस क्यों खींची? प्रभो! आपको जो प्रिय हो वह कार्य मुझे बताइये। वह करने योग्य हो या न हो मैं आपके प्रिय कार्यको अवश्य पूर्ण करूँगी। एकमात्र आप ही मेरे गुरू हैं, प्रियतम हैं।'

पत्नीके इस प्रकार पूछने पर उसके पतिने कहा—'प्रिये! उस कार्यको न तुम्हीं पूर्ण कर सकती हो, न मैं हीं; अतः व्यर्थ बात करनेसे लाभ ही क्या है। शैव्याने कहा—नाथ! मुझे विश्वास है मैं आपकी इच्छा जानकर उस कार्यको अवश्य सिद्ध कर सकूँगी चाहे वह कितना ही कठिन कार्य क्यों न हो। आप मुझे आज्ञा दीजिये। जिस किसी उपाय से हो सके मुझे आपका कार्य सिद्ध करना है। यदि आपके दुष्कर कार्यको मैं यत्न करके पूर्ण कर सकूँ तो इस लोक और परलोकमें भी मेरा परम कल्याण होगा।

कोढ़ीने कहा—साध्वी! अभी-अभी इस मार्गसे एक परमसुन्दरी वेश्या जा रही थी। उसका शरीर सब ओरसे सुडौल, सुन्दर तथा मनोहर था। उसे देखकर मेरा हृदय मुग्ध हो रहा है। यदि तुम्हारी कृपासे मैं उस नवयौवनाको प्राप्त कर सकूँ तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। देवि! तुम उसे मिलाकर मेरा हित साधन करो।

पतिकी बात सुनकर पतिव्रता शैव्या बोली—प्रभो! आप थोड़ा धैर्य रखिये। मैं यथाशक्ति आपका कार्य सिद्ध करूँगी।

यह कहकर शैव्याने मन-ही-मन विचार किया तो उसे एक उपाय सूझा। उसने निश्चय किया कि उस वेश्याको सेवासे प्रसन्न करके पतिदेवकी इच्छा पूर्ण करूँगी। ऐसा निश्चय करके वह रात्रिके अन्तिम भाग—उषाकालमें उठकर गोबर और झाड़ू ले तुरन्त ही चल पड़ी। जाते समय उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता तथा उल्लास था। वेश्याके घर पहुँचकर उसने उसके आँगन और गली-कूचेमें अच्छी तरह झाड़ू लगाई, गोबरसे लीप-पोतकर

लोगोंकी दृष्टि पड़नेके भयसे वह शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट आयी। इस प्रकार लगातार तीनदिनों तक पतिव्रताने वेश्याके घरमें झाड़ देने और लीपनेका काम किया। उधर वह वेश्या अपना आँगन आदि बहुत स्वच्छ साफ सुथरा देखकर बड़ी प्रसन्न हो अपने दास-दासियोंसे पूछने लगी—आज आँगनकी इतनी बढ़िया सफाई किसने की है? सेवकोंने परस्पर विचार करके वेश्यासे कहा—भद्रे! घरकी सफाईका यह काम हमलोगोंने तो नहीं किया है। यह सुनकर वेश्याको बड़ा विस्मय हुआ। उसने बहुत देरतक इसके विषयमें विचार किया किन्तु वह कुछ समझ नहीं पायी। तब उसने निश्चय किया स्वयं इसका पता लगाऊँगी। ऐसा निश्चय कर वह रात रहते उठी और देखने लगी तो कुछ ही देर बाद उसकी दृष्टि पतिव्रता शैव्या पर पड़ी। नित्यकी तरह वह पुनः आयी थी। उस परम-साध्वी पतिव्रताको देखकर, 'हाय! हाय! आप यह क्या करती हैं? क्षमा कीजिये, रहने दीजिये'। यह कहती हुई वेश्याने उसके पैरोंपर गिर पड़ी और पुनः कहा—'पतिव्रते! आप मेरी आयु, शरीर, सम्पत्ति, यश तथा कीर्ति—इन सबका विनाश करनेके लिये ऐसी चेष्टा कर रही हैं? साध्वी! आप जो भी वस्तु माँगे उसे निश्चय दूँगी—यह बात मैं दृढ़ निश्चयके साथ कह रही हूँ। सुवर्ण, रत्न, मणि, वस्त्र तथा और भी जिस किसी वस्तुकी आपके मनमें अभिलाषा हो, उसे मांगिये।

तब पतिव्रता शैव्याने वेश्यासे कहा—मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है, तुम्हीसे कुछ काम है, यदि करो तो उसे बताऊँ। उस कार्यकी सिद्धि होनेपर ही मेरे हृदयमें सन्तोष होगा और तभी मैं यह समझूंगी कि तुमने इस समय मेरा सारा मनोरथ पूर्ण कर दिया।

वेश्या बोली—'पतिव्रते! आप जल्दी बताइये। मैं सच सच कहती हूँ, आपका अभीष्ट कार्य अवश्य करूँगी। माताजी! आप तुरन्त ही अपनी आवश्यकता बतायें और मेरी रक्षा करें।

पतिव्रताने बड़े संकोचसे वह कार्य जिसके लिये, उसका पति अधीर हो रहा था कह सुनाया। उसे सुनकर वेश्या एक क्षणतक अपने कर्तव्य और उसके पतिकी पीड़ापर कुछ विचार करती रही। दुर्गन्धयुक्त कोढ़ी मनुष्यकी बात सोचकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ। तब भी पतिव्रता शैव्याकी सेवासे उसके अन्तःकरणपर इतना प्रभाव पड़ा था कि अस्वीकार नहीं कर सकी और पतिव्रतासे इस प्रकार बोली—देवि! यदि आपके पति मेरे घर पर आवें तो मैं एकदिन उनकी इच्छा पूर्ण करूँगी।

पतिव्रताने कहा—सुन्दरी! मैं आज ही रातमें अपने पतिको लेकर तुम्हारे घरमें आऊँगी और जब वे अपने अभीष्ट वस्तुका उपभोग करके सन्तुष्ट हो जायंगे, तब पुनः उनको अपने घर ले जाऊँगी।

वेश्या बोली—महाभागे! अब शीघ्र ही अपने घरको पधारो। तुम्हारे पति आज आधी रातके समय मेरे महलमें आवें।

यह सुनकर वह पतिव्रता स्त्री अपने घर चली आई। वहाँ पहुँचकर उसने अपने पतिसे निवेदन किया—प्रभो! आपका कार्य सफल हो गया। आज रातमें आपको उसके घर जाना है।

कोढ़ी ब्राह्मण बोला—देवि! मैं कैसे उसके घर जाऊँगा, मुझसे तो चला भी नहीं जाता। फिर किस प्रकार मेरी इच्छा पूर्ण होगी?

पतिव्रता शैव्या बोली—प्राणनाथ! मैं आपको अपनी पीठपर बैठाकर उसके घर पहुँचाऊँगी और आपका मनोरथ सिद्ध हो जानेपर फिर उसी मार्गसे लौटा ले आऊँगी।

कोढ़ी ब्राह्मण अपनी अभिलाषा पूर्ण होनेकी आशासे आनन्दोत्फुल्ल हो उठा और अपनी पत्नीसे कहा—कल्याणी! तुम्हारे करनेमे ही मेरा सब कार्य सिद्ध होगा। इस समय तुमने जो काम किया है, वह दूसरी स्त्रियोंके लिये दुष्कर है।

दैववश उन्हीं दिनोंमें उस नगरमें एक धनीके घरसे चोरोंने बहुतसा धन चुरा लिया। यह बात जब राजाके कानोंमें पड़ी, तब राजाने रातमें घूमनेवाले समस्त अपने गुप्तचरोंको बुलाया और कुपित होकर आज्ञा दी कि—यदि तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा है तो आज चोरोंको पकड़कर मेरे सामने लाओ। राजाकी आज्ञा पाकर सभी गुप्तचर व्याकुल हो उठे और चोरोंको पकड़नेकी इच्छासे सब ओर चल पड़े। उस नगरके पास ही एक घना जङ्गल था, जहाँ एक वृक्षके नीचे महातेजस्वी एक मुनिवर समाधि लगाये बैठे थे। वे महर्षि अपने तपसे अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे। महान् तेजस्वी उन मुनिको देखकर दुष्ट गुप्तचरोंने आपसमें कहा—'यही चोर है। यह धूर्त तपस्वीका रूप बनाये इस जङ्गलमें निवास करता है।' यों कहकर उन पापियोंने उन मुनिश्रेष्ठको बाँध लिया। किन्तु उन कठोर स्वभाववाले मनुष्योंसे न तो उन्होंने कुछ कहा और न उनकी ओर दृष्टिपात ही किया। जब गुप्तचर उन्हें बाँधकर राजाके सामने ले गये तो राजाने कहा—आज मुझे चोर मिला है। तुम लोग इसे नगरके निकटवर्ती प्रवेशमार्गके द्वारपर ले जाओ और चोरके लिये जो नियत दण्ड है, वह इसे दो। उन्होंने उन मुनिको वहाँ ले जाकर मार्गमें गड़े हुये शूल पर चढ़ा दिया। वह शूल मुनिके गुदाद्वारसे प्रविष्ट होकर मस्तकके पार होगया। उनका सारा शरीर शूलसे बिंध गया। वे मुनिश्रेष्ठ शूलपर ही समाधिस्थ हो गये, इसी बीचमें आधीरातके घोर अन्धकारमें, जब आकाशमें घटायें घिरी हुई थीं, वह पतिव्रता शैव्या अपने कोढ़ी पतिको पीठपर बैठाकर वेश्याके घर जा रही थी। वह मुनिके निकट होकर निकली, उसे उस घोर अन्धकार रात्रिमें मुनिवर नहीं दिखाई पड़े। अतः उस कोढ़ीका शरीर मुनिके शरीरसे छू गया। कोढ़ीके संसर्गसे उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। वे कुपित होकर बोले—"जिसने इस समय मुझे गाढ़ वेदनाका अनुभव करानेवाली कष्टमय अवस्थामें पहुँचा दिया, वह सूर्योदय होते होते भस्म हो जाय"।

उक्त महात्माके इतना कहते ही कोढ़ी पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब पतिव्रताने कहा—आजसे तीन दिनोंतक सूर्यका उदय ही न हो। यह कहकर वह अपने पतिको घर ले गई और सुन्दर शैय्या पर सुला स्वयं उसे थामकर बैठी रही। उधर मुनिश्रेष्ठ उस कोढ़ीको शाप दे अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। इधर संसारमें तीन दिनोंसे सूर्यका उदय होना रुक गया। चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण त्रिलोकी व्यथित हो सब ओर हाहाकार मच गया, तब यह देख समस्त देवता इन्द्रको आगे करके पितामह ब्रह्माजीके पास गये और सूर्योदय न होनेका समाचार निवेदन करते हुये बोले—'भगवन्! सूर्यके उदय न होनेका क्या कारण है यह हमारी समझमें नहीं आता। इस समय आप जो उचित हो, करें। देवताओं की बात सुनकर भगवान्

ब्रह्माजीने पतिव्रता ब्राह्मणी और उक्त मुनिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर देवतागण विमानों-पर आरूढ़ हो प्रजापति ब्रह्माको आगे करके शीघ्र ही पृथ्वीपर उस कोढ़ी ब्राह्मणके घरके पास गये। उनके विमानोंकी कान्ति तथा मुनियोंके तेजसे पतिव्रताके घरके भीतर सैकड़ों सूर्योंका-सा प्रकाश छा गया; उस समय हंसके समान तेजस्वी विमानों द्वारा आये हुये देवताओंको पतिव्रताने देखा। वह अपने पतिके समीप बैठी हुई थी। भगवान् ब्रह्माजीने उसे सम्बो-धित करके कहा—माता! सम्पूर्ण देवताओं, ब्राह्मणों और गौआदि प्राणियोंकी जिससे मृत्यु होनेकी सम्भावना है—ऐसा कार्य तुम्हें क्योंकर पसन्द आया? सूर्योदयके विरुद्ध जो तुम्हारा क्रोध है, उसे त्याग दो।

पतिव्रता शैव्या बोली—भगवन्! एकमात्र पति ही मेरे गुरु हैं। ये मेरे लिये सम्पूर्ण लोकोंसे बढ़कर हैं। सूर्योदय होते ही मुनिके शापसे उनकी मृत्यु हो जायगी। इसी हेतु मैंने सूर्यको शाप दिया है। क्रोध, मोह, लोभ, मात्सर्य अथवा कामके वशमें होकर मैंने ऐसा नहीं किया है।

भगवान् ब्रह्माने कहा—जब एककी मृत्युसे तीनों लोकोंका हित हो रहा है, ऐसी दशामें तुम्हें बहुत अधिक पुण्य होगा।

पतिव्रता बोली—पतिका त्याग करके मुझे आपका परम कल्याणमय सत्यलोक भी नहीं चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—देवि! सूर्योदय होनेपर जब सारी त्रिलोकी स्वस्थ हो जायेगी, तब तुम्हारे पतिके भस्म हो जानेपर भी मैं तुम्हारा कल्याण साधन करूँगा। हम लोगोंके आशीर्वादसे यह कोढ़ी ब्राह्मण कामदेवके समान सुन्दर हो जायगा।

ब्रह्माजीके यह कहनेपर उस सतीने क्षणभर कुछ विचार किया; उसके बाद 'हाँ' कहकर उसने स्वीकृति दे दी। फिर तो क्या था, तत्काल सूर्य उदय हुआ और मुनिके शापसे अभिशप्त कोढ़ी ब्राह्मण राखका ढेर हो गया। पुनः उस राखके ढेरसे अतीव सुन्दररूप धारण किये हुये वह ब्राह्मण प्रगट हुआ। यह देखकर समस्त पुर-वासियोंके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही। देवतागण बड़े प्रसन्न हो गये। देवताओं-सहित भगवान् ब्रह्मा सती शैव्याको मंगलमय आशीर्वाद देकर अपने लोकोंको गये। यह है, पातिव्रत्यका प्रताप! पतिव्रता स्त्री अपने पतिव्रत-रूपी तपके प्रभावसे क्या नहीं कर सकती?

महापरिषद् सम्वाद

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणीमहापरिषद्की प्रबन्ध-समितिकी बैठक ता० २७-७-५० को अपराह्न साढ़े चार बजे धर्मरत्न श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढनढनियाकी अध्यक्षतामें विद्यालयभवनमें हुई, जिसमें मासिक हिसाब स्वीकृत हुआ तथा महापरिषद्के अन्य कार्यविभागोंके प्रबन्ध सम्वन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण मन्तव्य स्वीकृत हुए।

महापरिषद्की प्रबन्धसमितिकी बैठक पुनः ता० २३-८-५० को श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढनढनियाकी अध्यक्षतामें हुई थी, जिसमें सर्वप्रथम निम्नलिखित शोक प्रस्ताव उपस्थित सब सदस्योंने खड़े होकर स्वीकृत किये।

श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की यह प्रबन्ध समिति भारतके प्रसिद्ध उद्योगपति धर्मप्राण श्रीमान् सेठ मँगनीराम बाँगरके आकस्मिक निधनपर आन्तरिक शोक प्रगट करती है। श्रीमान् सेठजीके निधनसे सनातनधर्मी जगत्की अपूरणीय क्षति हुई है। यह समिति दिवंगत महान् आत्माकी शाश्वत शान्तिके लिये भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें प्रार्थना करती हुई उनके शोक-संतप्त परिवारके साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।

श्री आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की यह प्रबन्धसमिति श्रीमान् सेठ छोटेलाल कानोडियाकी साध्वी माताके निधनपर हार्दिक शोक प्रकट करती है और स्वर्गीय आत्माकी चिरशान्तिके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें प्रार्थना करती हुई उनके शोक संतप्त कुटुम्बके साथ आन्तरिक समवेदना प्रकट करती है। यह भी निश्चय हुआ कि इन प्रस्तावोंकी प्रतिलिपि स्वर्गीय सेठ मँगनीराम बाँगरके सुपुत्र श्रीमान् सेठ गोविन्दराम बाँगर तथा श्रीमान् सेठ छोटेलाल कानोडियाके पास पत्रके साथ भेजी जाय। अनन्तर सभाकी कार्यवाही प्रारम्भ हुई। और गत अधिवेशनकी कार्यवाही स्वीकृत होनेके पश्चात् महापरिषद् तथा महाविद्यालयके मासिक हिसाब उपस्थापित किये गये एवं स्वीकृत किये गये।

प्रिन्सिपलसे विदित हुआ कि विद्यालयकी फोर्ड वस ठीक काम नहीं दे रही है, उससे कन्याओंको आने-जानेमें असुविधा हो रही है, इसपर फोर्ड वस विक्रयकर एक नयी वस क्रय करनेकी स्वीकृति दी गयी। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत होनेके पश्चात् सभाकी कार्यवाही समाप्त हुई।

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्‌की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्‌के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीखतक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिए। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें बिलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक काल के लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापन-दाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
„ „ तीसरा पृष्ठ	२५)	„
„ „ चौथा पृष्ठ	३०)	„
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	„
„ १/२ पृष्ठ	१२)	„
„ १/४ पृष्ठ	८)	„

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

वाणी-पुस्तकमाला

का

अद्वितीय दार्शनिक प्रकाशन

श्रीभगवद्गीता

गीता-तत्त्व-बोधिनी टीका-सहित

(दो भागोंमें सम्पूर्ण)

लोकप्रसिद्ध श्रीभगवद्गीताके गूढ़ दार्शनिक तत्त्वोंको अत्यन्त सरलतासे समझनेके लिये गीता-तत्त्व-बोधिनी टीकासे बढ़कर अभीतक गीताकी कोई दूसरी टीका प्रकाशित नहीं हुई है।

पूज्यपाद श्री १००८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजके वचनामृतद्वारा गीताके गूढ़ रहस्योंको समझनेके लिये गीताकी प्रस्तुत टीका एक अनुपम साधन है। अवश्य अध्ययन कीजिये और आध्यात्मिक आनन्द तथा शान्ति प्राप्त कीजिये। साथ ही ऐसे अमूल्य ग्रन्थरत्नके संग्रहद्वारा अपनी पुस्तकालयकी शोभा बढ़ाइये। आज ही एक प्रतिका आर्डर भेजिये। अन्यथा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; थोड़ी प्रतियाँ ही छपी हैं।

मूल्य सम्पूर्ण प्रतिका ७||)

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक

श्रीवाणी-पुस्तकमाला

महामंडल भवन

जगतगंज, बनारस कैन्ट।

वाणी-पुस्तकमालाके

स्थायी ग्राहक तथा एजेन्टोंके नियम।

(१) कोई भी सज्जन एकबार केवल १) देकर इस पुस्तकमालाका स्थायी ग्राहक बन सकते हैं।

(२) स्थायी ग्राहकोंका वाणी-पुस्तकमाला तथा आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकोंपर प्रतिशत बीस रुपया कमीशन दिया जाता है।

(३) कोई भी नई पुस्तक प्रकाशित होते ही स्थायी ग्राहकोंको उसका सूचना दे दी जाती है। ग्राहकके लिखनेपर उनका पुस्तक बीस प्रतिशत कमीशन कमकर बी० पी० से भेज दी जाती है। परन्तु ग्राहकोंका मनिआर्डरद्वारा मूल्य भेजकर पुस्तकें मँगानेसे वी० पी० खर्च बचेगा।

(४) अन्य ग्राहकोंकी तरह स्थायी ग्राहकोंका भी डाकव्यय पैकिङ्ग आदि देना पड़ता है।

(५) स्थायी ग्राहकोंको अपना नाम, पूरा पता पोस्ट तथा रेलवे स्टेशन आदि साफ-साफ लिखना चाहिये।

(६) २५) रुपयेकी पुस्तकें मँगानेसे पुस्तकोंके मूल्यका एक-चौथाई अग्रिम भेजना आवश्यक होगा।

(७) कोई भी सज्जन ५०) रुपयेकी पुस्तक एक साथ खरीदनेसे इनका एजेन्ट बन सकते हैं।

(८) एजेन्टोंको २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।
मुद्रक :—श्री कालाचाँद चैटर्जी, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्‌की सचित्र मासिक मुखपत्रिका

आषाढ़ सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ३. | जून १९५०

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी, एम. ए., बी. टी.

काया हरिके काम न आई ।
भाव-भगति जहँ हरि-यश, सुनियो
तहाँ जात अलसाई ॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ,
तहाँ सुनत उठि धाई ।
चरन-कमल सुन्दर जहँ हरिको,
क्यों हूं न जात नवहि ॥
जब लगि श्याम अङ्ग नहि परसत.
आखें जोग रमाई ।
सूरदास भगवन्त भजन बिन,
विषय परमविष खाई ॥

विषय-सूची

अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूल त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

आसाढ़ सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ३. ४ | जून १९५०

भज मन चरन संकट हरन ।

सनक संकर ध्यान लावत निगम असरन सरन ।

सेस सारद कहैं नारद सन्त चिन्तत चरन ॥

पद-पराग प्रताप दुरलभ रमाको हितकरन ।

परसि गङ्गा भई पावन तिहूँ पुर उद्धरन ॥

चित्त चेतन करत अन्तःकरन तारन तरन ।

गये तरि लै नाम केते सन्त हरिपुर घरन ॥

जासु पद रज परसि गौतम नारि गति उद्धरन ।

कृष्णपद मकरन्द पावन और नहि सिर परन ॥

"सूर" प्रभु चरनार विन्दुतें मिटैं जनम रू मरन ।

जासु महिमा प्रगट कहत न थोड़ पग सिर धरन ॥

आत्मनिवेदन ।

श्रीसैयदुल्लाका सराहनीय निर्णय !

ता० २२ जून आगरेका एक सम्वाद जो स्थानीय दैनिक सन्मार्गके ता० २४ के अङ्कमें प्रकाशित हुआ है, उसके अनुसार वहाँके मजिस्ट्रेट श्री सैयदुल्लाने पाँच व्यक्तियोंको एक अदालती पञ्चायत-द्वारा नीलगायके सार्वजनिक बधके अभियोगमें दिया गया दण्ड कायम रक्खा। मजिस्ट्रेट महोदयने अपने निर्णयमें कहा कि, "यद्यपि उत्तरप्रदेशकी सरकारने नीलगायको गाय माननेसे इन्कार कर दिया है, और उसे नील घोड़ाके नामसे पुकारनेका आदेश दिया है, किंतु शताब्दियोंसे एक बृहत समुदाय इस पशुको पवित्र मानकर उसका सम्मान करता आ रहा है। वह गाय हो, या घोड़ा, उसका सार्वजनिक बध उस सम्प्रदायकी भावनाओंपर आघात पहुँचाये बिना नहीं रह सकता है।" श्री सैयदुल्ला महोदयके इस उदार तथा अनुकरणीय निर्णयका हम हृदयसे सराहना करते हैं। यदि सभी अधिकारीवर्ग इसी दृष्टिकोणको अपना लक्ष्य बनाकर शासन-कार्य एवं न्याय करें, तो साम्प्रदायिकता स्वतः निर्मूल हो सकती है। उत्तरप्रदेशीय सरकारके नीलगाय-सम्बन्धी निर्णयका आड़ लेकर उक्त मजिस्ट्रेट महाशय अनायास ही अदालती पञ्चायतके निर्णयको रद्द कर सकते थे, किन्तु एक बृहत् समुदायकी धर्मभावनाका विचार करके उन्होंने उसे कायम रक्खा। कुशल शासक सम्राट् अकबरने भी इस देशके हिन्दूओंकी धार्मिक भावनाकी रक्षाके लिये गो-बध बन्द किया था। किन्तु आज अपनी कहानेवाली जनतन्त्र सरकार हमारी धार्मिक भावनाओंको अपनी सत्ताके बलपर कुचलकर गोबध जारी रखने तथा हिन्दूकोड-बिल पास करनेपर तुली हुई है। यह बड़े दुःख तथा दुर्भाग्यकी बात है।

नैतिक शिक्षा

यद्यपि केंद्रीय शासनने विधान बनाकर शिक्षा-संस्थाओंसे धर्मशिक्षा सर्वथा उठा देनेका आयोजन किया है, तथापि उत्तरप्रदेशके शिक्षा-विभागने शिक्षा-संस्थाओंमें मारेल एजूकेशन—नैतिकशिक्षाके नामसे किसीभी रूपमें कुछ धार्मिक शिक्षाका अवसर रखा है, यह संतोषका विषय है। अभी अभी बिहारके प्रधानमन्त्रीने एक मुस्लिम हाईस्कूलके पुरस्कार-वितरणोत्सवके उपलक्ष्यमें धार्मिक शिक्षाकी अनिवार्य आवश्यकता बतलायी और यह कहा कि, सायंसकी उन्नतिके साथही हमें अपने धर्मका ज्ञान प्राप्त होना आवश्यक है इत्यादि। यह भी शुभ लक्षण है। वस्तुतः धर्महीन शिक्षासे न शारीरिक विकाश हो सकता है, न मानसिक विकाश हो सकता है, और बुद्धि सत्य-असत्य निर्णय करनेके उपयुक्त बन सकती है। सरकार यदि चाहती है कि, शिक्षा-संस्थाओंमें स्वस्थ, सच्चरित्र, सत्यवक्ता, देशभक्त, कर्तव्यनिष्ठ नागरिक-नागरिका प्रस्तुत हों, तो उनमें किसी न किसी रूपमें धार्मिक शिक्षाकी व्यवस्था करनी ही होगी। अन्यथा शिक्षा-संस्थाओंपर कोटि कोटि रुपया व्यय करके उनमें स्वेच्छाचारी, उच्छृङ्खल, इन्द्रिय-लोलुप स्वार्थी युवक-युवतियाँ तैयार होंगी जो समाजको और भी अधोगतिके गर्तमें पहुँचानेके कारण बनेंगी। और इसका सारा उत्तरदायित्व सरकारपर होगा। सौभाग्यसे अब देश स्वतन्त्र है। आवश्यकता इस बातकी है कि, शिक्षाका साँचा सर्वथा बदल दिया जाय। बालिकाओंकी शिक्षा-शैली बालकोंसे बिल्कुल भिन्न होना चाहिये। शिक्षाका आदर्श केवल पेट-पालन नहीं किन्तु उसके द्वारा शारीरिक विकाश, चरित्रगठन तथा स्वस्थ मन एवं परिमल बुद्धिका विकाश होना

चाहिये। आजकी प्रचलित शिक्षाप्रणालीमें शिक्षाके इन उद्देश्योंकी पूर्तिका कोई साधन नहीं है, क्योंकि उसमें ईश्वर-ज्ञान, धर्म-ज्ञानका कोईभी स्थान नहीं है। समय रहते सावधान होना बुद्धिमत्ताका लक्षण है।

यह लोकतन्त्र या नेहरूशाही ?

मद्रासमें ११ जूनको भारत सरकारके विधान-मन्त्री डा० अम्बेदकरने पत्रकारोंके बीच कहा कि, पार्लियामेंटके आगामी अधिवेशनमें हिन्दूकोडबिल पास हो जायेगा। अस्तु, इस हिन्दूकोडबिलका जितना विरोध हुआ या हो रहा है, इतना कभी किसी बिलका नहीं हुआ। इसके विरोधमें हजारों सभायें हो चुकीं, देशके सभी श्रेणीके स्त्री-पुरुषोंने इसका घोर विरोध किया; लाखों तार एवं विरोध-पत्र नेहरूसरकारको भेजे जा चुके। गत दिसम्बरमें जब संसदमें इसपर विचार चल रहा था, हजारोंकी संख्यामें स्त्री-पुरुषोंने इसके विरोधमें उग्र प्रदर्शन कर अपना विरोध प्रकट किया। उनपर लाठी-वर्षा की गयी। उस समय पं० नेहरूने अपनी सरकारके पदत्यागकी धमकी देकर इस काले कानूनपर विचारार्थ सदस्योंका बहुमत प्राप्त किया। जब नेहरूजीके इस धमकीकी भी कड़ी आलोचना हुई, तब नेहरूजीने इस सम्बन्धमें कान्फरेन्स बुलानेकी घोषणाकर उस समय क्षुब्ध हिन्दूजनताको शान्त किया। कान्फरेन्सका नाटक जैसा डा० अम्बेदकरने किया, वह इसी अंकमें अन्यत्र प्रकाशित है। उसे पढ़नेसे पाठकपाठिकागण उक्त कान्फरेन्सका सच्चा स्वरूप अनायास समझ सकते हैं। अब डा० अम्बेदकर महोदय अपने निश्चयके साथ कहते हैं कि, यह बिल संसदके आगामी अधिवेशनमें स्वीकृत हो जायेगा। सुनते हैं कि, संसदका अधिवेशन आगामी अगस्त या सितम्बरमें होनेवाला है। डा० अम्बेदकरका ऐसा निश्चय स्वाभाविक ही है; क्योंकि प्रधान मंत्री पं० नेहरूका सबल समर्थन उनको प्राप्त है। उनको अपनी चिरवाञ्छित अभिलाषा पूर्ण करनेका ऐसा स्वर्ण सुयोग और कब प्राप्त होगा ? अगला निर्वाचन सन्निकट है, सम्भव है कि, अगले मंत्रिमण्डलमें डा० अम्बेदकर विधान-मन्त्री नहीं रहें तो उनकी यह मनकी साध मनमें ही रह जायगी। इस कारण डा० अम्बेदकर अपनी पूरी शक्ति लगाकर इस बिलको पास कराकर ही दम लेंगे। हिंदू जनताने अपने जीवन, धन सम्मान सब कुछ बलिदान देकर कांग्रेस आन्दोलनको इस योग्य बनाया कि, आज वह शासनके सिंहासनपर आसीन हो सका, उसीका पुरस्कार यह हिन्दूकोडबिल कांग्रेस सरकार-द्वारा हिन्दूजनताको दिया जा रहा है, जिससे हिन्दुओंका सर्वस्व नाश हो जाय। डा० अम्बेदकर हिन्दूजाति तथा हिन्दूधर्मके कट्टर द्रोही हैं, यह उनकी अबतककी कृतियों एवं उनके गत मई मासमें बुद्ध-जयन्तीके उपलक्ष्यमें आयोजित दिल्लीकी एक सभामें हिन्दूधर्मके सम्बंधमें जो उन्होने विष उगला है, उसीसे स्पष्ट है। ऐसे हिंदूधर्मद्रोहीको विधानमंत्री बनाकर उसके हाथमें केवल हिंदूओंके लिये हिन्दूकोडबिल बनानेका अधिकार सौपना क्या हिन्दूजनताका घोर तिरस्कार एवं अपमान नहीं है ? उक्त सभामें जिस तरह हिन्दूधर्मकी कुत्सित निंदा डा० अम्बेदकरने की, उसीप्रकार यदि मुसलमान धर्मकी की होती, तो क्या उनको विधानमंत्री बना रखनेका यही साहस नेहरू सरकार दिखा सकती थी ? इसका निर्विवाद सर्वसम्मत उत्तर यही होगा कि "नहीं"। हिन्दू जनताने उचित मांग की, कि डा० अम्बेदकरको विधानमंत्री पदसे पृथक् किया जाय, किंतु नेहरूसरकारमें इसकी कुछ सुनवाई नहीं हुई। यह लोकतन्त्र या नेहरूशाही है ?

स्त्री-शिक्षाके विषयमें पूर्वात्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंके मत

लेखक—श्रीमती सुन्दरीबाई, एम० ए० बी० टी०

इधर सैकड़ों वर्षोंकी पराधीनतासे हमारे देशमें अज्ञानता तथा निरक्षरताका एक बहुत घना बादल-सा छा गया था। उसका स्त्री-शिक्षापर भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा और कुछ लोगोंकी तो ऐसी सम्मति हो गयी कि, कन्याओंको पढ़ाना ही बड़ा भारी पाप है। कुछ लोग जो उनसे कुछ आगे बढ़े थे, उनके विचारमें कन्याओंको इतनी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वे चिट्ठीपत्र लिख सकें तथा रामायणआदि पढ़ सकें। इन दोनों श्रेणीके लोग यह बिलकुल भूल गये कि, इस देशकी नारियाँ कितनी विदुषियाँ हो चुकी है, उन्होंने वेदका मन्त्र देखा है, ऋषि हुई हैं, बड़ी योग्यतासे राज्यशासन किया है, धर्मरक्षाके लिये युद्ध किया है और पुरुषोंके प्रत्येक कार्यमें बड़ी योग्यतासे अपना हाथ बटाया है। इसके प्रमाणमें वेद, पुराण तथा इतिहासके पृष्ठ भड़े पड़े हैं। तब भी किस आधारपर लोगोंने यह राय बनायी, यह तो वे ही लोग जानें। जब बृटिश शासन आया, तो उन्होंने शिक्षाकी अपनी शैली अपने स्वार्थसिद्धिके लिये चलायी। उनके अनुकरणमें अंगरेजी शिक्षित-लोग कन्याओंकी शिक्षाकी ओर अग्रसर हुए। फलस्वरूप अब स्त्री-शिक्षाकी अच्छी प्रगति दिखाई देती है। हजारों कन्याएँ विद्यालयोंमें पढ़ने लगी हैं और कुछ कालेजकी उच्च डिग्रियाँभी प्राप्त करने लगी हैं। यह आधुनिक शिक्षा कन्याओंके लिये कितना हितकर है, इसका उनके व्यक्तिगत जीवनपर क्या असर होगा एवं समाजपर क्या परिणाम होगा और इस आधुनिक शिक्षाका असर उन देशोंकी स्त्रियोंपर, जिनकी यहाँ नकल की जा रही है, क्या हुआ है, इस विषयमें पश्चिमी विज्ञजनोंकी सम्मति विचारणीय है। इङ्गलैंडके प्रसिद्ध डा० बूथ लिखते हैं :—

Socially life's wastage among millions :—a large army of young men and of young women eager to satisfy sex craving, but unwilling to bear the responsibilities of family life and parentage—net result bemoaned by Dr. Booth :—"What is happening to the domestic life of the Anglo-Saxon race ? It is the same tale wherever the English tongue is spoken :—more hotels, fewer homes; more divorces fewer children." Physically—the growing unfitness of the Anglo-Saxon girl for maternity on account of her increased physical exercises and outdoor sports. Say experts like Dr. Stanley Hall, author of Adolescence, Dr. Arabella Keneally authoress Feminism and Extinction and others :—"It does not at all follow that because a girl plays hockey well or because she develops a heavy muscular system she will for this reason be really healthy. Some of the worst cases of hysteria and other serious nervous disorders occur among physically powerful, sport-loving girls." According to Dr. Englemann "women who develop their muscular system highly suffer in children birth." According to a recent Vienna calculation the birth-rate amongst women predominant in athletic life in Austria was less than one-fifth of the rate amongst others of the same class who were not notably athletic. On these evidences Dr. Booth rightly warns :—

"Let those who believe that the athletic activities of our young women are going to give us a higher race, ponder these facts carefully and also ponder the useful tale told by the figures that from 1922 to 1928 the birth-rate in England has gone down by 16 per cent"

डा० बूथ साहबकी सम्मतिमें "नवीन शिक्षाके द्वारा वहाँके सामाजिक जीवनकी बड़ी अवनति हुई। वहाँपर दलके दल ऐसे स्त्री-पुरुष देखनेमें आ रहे हैं, जो काम-सम्बन्धके किये सदा लालायित रहते हैं, किन्तु सन्तान उत्पन्न कर गृहस्थाश्रम करना नहीं चाहते। जहाँ जहाँ अंग्रेजी विद्या पढ़ाई जाती है वहाँ पर सर्वत्र ही यह कथा है। होटलोंकी संख्या बढ़ रही है और गृहस्थोंके घरकी संख्या घट रही है, विवाह-विच्छेद बढ़ रहा है और सन्तानोंकी संख्या घट रही है"। सामाजिक हानिके साथही साथ शारीरिक हानि भी यथेष्ट हो रही है। जो स्त्रियाँ शिक्षाके नवीन आदर्शके अनुसार पुरुषोंकी तरह व्यायाम, खेल आदि करती हैं, उनमें 'माँ' बननेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। डाक्टर स्टैनले हाल, अरविल कनैली आदिकी सम्मति है कि—"किसी स्त्रीने पुरुषकी तरह व्यायाम करके अपनी मांसपेशी या मज्जाको मजबूत कर लिया है अथवा किसी स्त्रीको हाकी खेलना बहुत अच्छा आता है, इसके द्वारा यह नहीं समझना चाहिये कि, उसके स्वास्थ्यकी यथार्थ उन्नति हो गई। क्योंकि अपस्मार (हिस्टिरिया) तथा अन्यान्य कई एक स्नायुदौर्बल्यसम्बन्धी कठिन रोग ऐसी ही स्त्रियोंमें ही देखनेमें आते हैं जो पुरुषोंकी तरह फुटबाल, हाकी, टेनिस आदि खेलोंको खेलती रहती हैं।" डाक्टर एकलमैनकी सम्मति यह है कि ऐसी स्त्रियोंको प्रसवके समय भी बड़ा कष्ट होता है। आस्ट्रियाके अन्तर्गत वियेना नगरमें देखा गया है, कि ऐसी स्थूल व्यायामवाली स्त्रियोंकी सन्तान संख्या अन्य स्त्रियोंकी सन्तानसंख्याका पञ्चमांश भी नहीं है। इन्हीं प्रमाणोंपर डाक्टर बूथ चेतावनी देते हैं कि, जो लोग यह समझते हैं कि, नवीन शिक्षानुकूल युवतियोंके व्यायामद्वारा हमारी जाति उन्नत हो जायगी, उन्हें सावधान होकर उन विषयोंपर सोचना चाहिये और यहभी दुःखद विषय सोचना चाहिये कि सन् १९२२ से १९२८ के भीतर इङ्गलैंडमें सोलह प्रतिसैकड़ा सन्तान-उत्पत्ति कम हो गई है।" इन्हीं बातोंपर विचार कर लेडी इरविन साहेबाने अखिलभारतीय स्त्री कान्फरेंस, देहलीके व्याख्यानमें कहा था :—

In one respect, India is favoured as she comes to close quarters with a problem of which other countries have been pioneers and have made mistakes by which India, if she is wise, may profit.

"They have been slow to recognise the necessity for differentiating between the education of the boys and girls. It is of course true that they both have to live in the same world, that they both have to share it between them, but their functions in it are largely different. In many countries to-day see girls' education developing on lines which are a slavish imitation of boys' education.

"We must, therefore, do all in our power to set a different standard and to create desire in the public mind and in the girls themselves, for an education which will allow girls to develop in other lines.

"What I feel, we should aim to give them, is a practical knowledge of domestic subjects and the laws of health which will enable them to fulfil one side of their duties as wives and mothers, reinforced by the study of those subjects which will help most to widen interests and outlook."

"स्त्रीशिक्षाके विषयमें भारतवासियोंको अच्छा मौका मिला है, कि अन्य देशके लोग इसमें गलती कर रहे हैं, उससे फायदा उठावें। अन्य देशके लोग स्त्री और पुरुषको शिक्षामें क्या क्या भेद होना चाहिये, अभीतक इसको ठीक तरहसे मान नहीं सके हैं। यह बात सत्य है कि, स्त्री और पुरुष दोनों एक ही संसारके समान दायित्वके साथ निवास करते हैं, किन्तु इसमें दोनोंका कार्य बिलकुल एक दूसरेसे भिन्न है। बहुतसे देशोंमें स्त्रीशिक्षाको केवल पुरुषशिक्षाकी नकल बनाई गई है, यह ठीक नहीं है। अतः हमें प्रयत्न करना चाहिये कि, स्त्रीजातिके लिये उसकी प्रकृतिके अनुसार पृथक् आदर्श कायम किया जाय, जिससे वह अपने ही ढंगपर पूर्ण शिक्षिता बन सके। इसमें मेरा अनुभव यह है कि, उन्हें अच्छी स्त्री और अच्छी माता बनने लायक कर्त्तव्योंकी व्यावहारिक शिक्षा देनी चाहिये, जिससे पारिवारिक समस्त विषय और गार्हस्थ्य स्वास्थ्य-रक्षामूलक सब विषय उन्हें आयत्त हो सकें और साथ ही साथ ऐसे विषयोंको भी उन्हें पढ़ाना चाहिये जिससे उनका दृष्टिकोण उदार बन जाय और सामाजिक जीवनके प्रति उनकी हार्दिक सहानुभूति प्रकट हो सके।" अतः निश्चय हुआ कि 'माँ' को 'माँ' बनाने लायक शिक्षा ही आदर्श शिक्षा है। उसको पिता बनानेके लिये यत्न करना उन्मत्तता तथा अधर्म है। इससे फलसिद्धि न होकर "इतो भ्रष्टस्ततो नष्टः" हो जायेगा; क्योंकि स्त्रीको पुरुषकी तरह शिक्षा देनेका यही विषमय फल होगा कि, प्रकृतिविरुद्ध होनेसे वह पुरुषभावको कभी नहीं प्राप्त कर सकेगी, अधिकन्तु कुशिक्षाके कारण स्त्रीभावको भी खो देगी, जिससे उसके और संसारके लिये बहुत ही हानि होगी। पतिभावमें तन्मयता ही स्त्रीकी पूर्णोन्नति होनेके कारण, पुरुषके अधीन होकर ही स्त्री उन्नति कर सकती है, स्वतन्त्र होकर नहीं कर सकती है और ऐसा करना भी स्त्रीप्रकृतिसे विरुद्ध है। इसलिये मनुजीने कहा है कि :—

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्य्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम्।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे॥
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

(६म अ०)

पुरुषोंका कर्त्तव्य है कि, स्त्रियोंको सदा ही अधीन रक्खें। उन्हें स्वतन्त्रता न देवें। गृहकार्यमें प्रवृत्त करके अपने वशमें रक्खें। स्त्री कन्यावस्थामें पिताके अधीन रहती है, यौवनकालमें पतिके अधीन रहती है और वृद्धावस्थामें पुत्रके अधीन रहती है। कभी स्वतन्त्र करनेयोग्य स्त्रीजाति नहीं है। किन्तु इसके द्वारा यह नहीं समझना चाहिये कि, आर्यशास्त्रमें स्त्री-जातिको, हर तरहसे जञ्जीरमें जकड़ रखनेको ही धर्म कहा गया है, जैसा कि आजकल स्वतन्त्रतावादिगण हिन्दूसभ्यतापर दोष लगाया करते हैं।

सत्यदर्शी पश्चिमी विद्वानोंने भी इस बातकी पुष्टि की है। यथा :—

At no age should a woman be allowed to govern herself as she pleases.

(Harace Maun)

To obey is the best grace of women.

(Lewis Morris)

The superficial observer who applies his own standard to the customs of all

nations, laments with an affected philanthropy the degraded condition of the Hindu female. He particularly laments her want of liberty and call her seclusion imprisonment. From the knowledge I possess of the freedom, the respect, the happiness which Rajput women enjoy, I am by no means inclined to deplore their state as one of captivity.

(Colonel Tod)

Their state is not one of slaves to their husbands they have as much influence in their families as, I imagine, the women have in this country.

(Sir Thomas Munro)

The woman of the East are not so much in evidence as those of Europe, but their influence within the legitimate circle of their domestic relation is quite as great, their manners are as good and their morality is as high. Those who know most of the results of this freedom of women in the West may well doubt whether the accidental or fair the oriental method of treating the sex is more in accord with practical wisdom.

(Sir Lepel Griffin)

In no nation of antiquity were women held in so much esteem as amongst the Hindus.

(Prof. H. H. Wilson)

"स्त्रियोंको स्वेच्छानुसार अपनेको चलने देना कदापि उचित नहीं है।" (हरेश मैन)। "पुरुषोंकी वशम्वदा होनेमें ही स्त्रियोंकी सर्वोत्तम शोभा है।" (लिविस् मरिस)। "स्थूलदर्शी पुरुष, जो कि अपने ही आदर्शसे सब जातिकी सामाजिक रीतियोंपर विचार करते हैं, प्रायः हिंदूजातिपर कपट दया दिखलाते हुये उनकी स्त्रियोंकी हीनदशाको रोते हैं, कि उन्हें स्वतन्त्रता नहीं दी जाती और जेलखानेकी तरह उन्हें परदेमें रख दिया जाता है। किंतु राजपूत स्त्रियोंकी स्वतंत्रता, सम्मान तथा गार्हस्थ्यसुखके विषयमें मुझे जो कुछ ज्ञान है, उससे मुझे तो कभी अफसोस नहीं होता है, कि जेलखानेकी तरह बन्धनमें रक्खी जाती हैं।" (कर्नल टॉड)। "जैसा कि प्रायः कहा जाता है, हिंदूस्त्रियाँ प्रायः पराधीनकी तरह नहीं रहती हैं, क्योंकि अपने घरमें उनकी स्वतन्त्रता और प्रभुता पूरी ही है जैसा इस देशमें है।" (सर टोमस मुनरो)। "पूर्व देशकी स्त्रियाँ यूरोपकी स्त्रियोंको तरह जहाँतहाँ घूमती नहीं किंतु अपने परिवारकी मर्यादायुक्त सीमामें उनका बहुत ही प्रभाव रहता है और इसी प्रकार उनका आचरण तथा नैतिक जोवन बहुत ही उत्तम होता है। पश्चिमी स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताका भीषण परिणाम जिन्हें मालूम है वे लोग संदेह करने लगे हैं कि, वह रीति अच्छी है या पूर्वी रीति यथार्थ विचारसम्मत है।" (सर लेपेल ग्रिफिन)। "हिंदुओंमें स्त्रियोंको जितना सम्मान दिया जाता है, इतना संसारकी और किसी जातिमें नहीं दिया जाता।" (एच० एच० विलसन)।

इस प्रकार शिक्षादर्शकी प्रशंसा पश्चिमी विद्वानोंने भी की है, यथा :—

Mr. Arthur Mayhew in his 'Education of India'.

"Woman as she presents herself to Hindu imagination is the priestess of the home, watering the sacred plant

keeping the sacred fire, guarding sacrament by the purity of the food by her ablution and prayers. Her household service is an act of Bhakti (personal devotion); she goes abroad only for pilgrimage. But within the house, she is the centre of all activity not shut off in any way from the males of varying ages and generations but influencing vitally their home talk, thought and action.

"She has never been regarded as unfit for arts and accomplishments. Sanskrit literature has many examples of learned ladies and there are women poets. Does not a Sanskrit educationist draw up a list of sixty-four arts for young ladies? Did not Sankara design to argue with a woman Pandit? Sita and Droupadi, Savitry and Damayanti know how to retain love by other arts than those of the toilet and were real companions, as is the Hindu wife of to-day."

"सर आर्थर मोहीऊकी सम्मति है कि, हिंदू आदर्शके अनुसार स्त्री गृहदेवी है, वह घरके तुलसी आदि पवित्र वृक्षोंको प्रेमसे सींचती है, अग्निहोत्रकी अग्निको जलाये रखती है, स्नानसे शुद्ध होकर अन्नको भी शुद्ध रखती है, गृहकार्य उनके लिये पतिभक्तिका विलासमात्र है और बाहर उनका भ्रमण केवल तीर्थयात्राके लिये है। घरके समस्त व्यापारोंकी वह केंद्ररूपिणी है और भिन्न-भिन्न देशकालके पुरुषोंसे अलग न रहकर वह उनकी चिन्ता तथा क्रियाओंपर प्रभाव विस्तार किया करती है।"

खेदका विषय है, पश्चिमी देशोंके विचारशील विद्वान्गण यहाँकी प्राचीन स्त्रीशिक्षाशैलीका इस प्रकार मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करते हैं और अंगरेजी शिक्षित हमारे देशवासी बन्धु स्त्रियोंको पाश्चात्य ढंगकी शिक्षा देकर स्त्रीजाति तथा समाजका सर्वनाश करने जा रहे हैं।

भक्तकन्याका आदर्श

[कहानी]

बुंदेलखण्डमें बलभद्रपुर नामकी एक रियासत थी। वहाँ एक राजकुमारी पैदा हुई थी जिसका नाम था, विमलाकुमारी। विमलाको एक गुरुजी संस्कृत तथा हिन्दी पढ़ाते थे। दोपहरीको जब गुरुजी स्नान करके ठाकुरजीकी पूजा किया करते थे, तब विमला एकटक ठाकुरजीको देखा करती थी। एकदिन विमलाने कहा—

विमला—गुरुजी! ये ठाकुरजी मुझे दे दीजिये।

गुरु—तुम क्या करोगी?

विमला—पूजन किया करूँगी, बातें किया करूँगी।

गुरु—तुम अभी कन्या हो। गुड्डेगुड्डीका ब्याह खेला करोगी। फिर बड़ी हो जाओगी, तब तुम

अपनी ससुराल चली जाओगी ; ठाकुरजीकी पूजाका अवसर तुमको कभी न मिलेगा।

विमला—क्या कन्याका यही आदर्श है, गुरुजी ?

गुरु—नहीं, कन्याका आदर्श तो दूसरा ही है।

विमला—वह कौनसा ?

गुरु—माता, पिता और भ्रातासे सद्व्यवहार रखना कन्याका प्रथम आदर्श है। गुरु तथा ईश्वरकी भक्ति रखना कन्याका दूसरा आदर्श है। पति तथा पुत्रकी सेवा करना उसका अन्तिम आदर्श है।

विमला—सबसे बड़ा आदर्श कन्याके लिये कौन-सा है ?

गुरु—सबसे बड़ा आदर्श तो माता-पिता, भ्राता, गुरु-शिष्य, पति-पुत्र-पत्नी—सबके लिये एक ही है और वह है श्रीठाकुरजीकी भक्ति सीखना।

विमला—क्यों ?

गुरु—ठाकुरजी ही संसारके स्वामी हैं। हरएक जीव उनका नौकर है। जो नौकर अपने स्वामीकी सेवा नहीं करेगा, वह मेवा नहीं पायेगा। उसे कान पकड़कर निकाल दिया जायेगा।

विमला—तो ठाकुरजीकी सेवा करना सबका प्रधान आदर्श है ?

गुरु—हाँ, बेटी ! यही सबका प्रधान आदर्श है। यदि तुम ईश्वरकी भक्त बनोगी तो तुम्हारे आचरण स्वयं धार्मिक रहेंगे। ईश्वरकी छबिकी छटाका नाम धर्म है। धर्म यानी कर्त्तव्य।

विमला—तब तो गुरुजी ! मैं इसी सबसे बड़े आदर्शको मानूँगी ; बस, ये ठाकुरजी मुझे दे दो।

गुरु—नहीं। ये तो मेरे ठाकुर जी हैं।

विमला—और मेरे ठाकुरजी ?

गुरु—तुम्हारे ठाकुरजी कल आ जायेंगे।

विमला—कैसे ?

गुरु—कल सुबह मेरे साथ नर्मदाजी स्नान करने चलना। पाताल फोड़कर, नदीके द्वारा तुम्हारे ठाकुरजी आयेंगे।

गुरुजीने सोचा था कि नर्वदामें गोल-गोल पत्थर के टुकड़े पड़े रहते हैं, उन्हींमें से एक उठाकर दे दूँगा।

अपने ठाकुरजीकी प्रतीक्षामें विमलाको अपार आनन्द हुआ। प्रातः दोनों हाथीपर चढ़कर नर्वदास्नानके लिये गये। गुरुजीने जो डुबकी मारी तो एक श्वेतपत्थरकी गोलमूर्ति उनके हाथमें थी।

राजकुमारी चिल्लाई। 'हमारे ठाकुरजी आ गये।'

गुरुजीने बाहर निकलकर ठाकुरजी दे दिये।

विमलाने अपने ठाकुरजीके लिये सोनेकी संदूकची बनवाई, रेशमी कपड़े बनवाये और जवाहराती जेवर बनवाये रोज फूल और धूप-दीपके साथ पूजा करने लगी।

राजा और रानीने विमलाके उत्साहमें और भी योग दे दिया। जो-जो उससे माँगा, राजा रानी प्रसन्नतापूर्वक देने लगे। आजकलके मूढ़ माता-पिताकी तरह उन्होंने कन्याका भक्तिविलास रोका नहीं। पुत्र हो या पुत्री हरिभक्तिसे किसीको रोकना नहीं चाहिये। इससे बढ़कर कोई पाप ही नहीं है। रामप्रेम रोकना ही महापाप है। कन्या तो जीव है, पशुपक्षीतक रामसे प्रेम करते हैं।

× × ×

विमला—गुरुजी ! ठाकुरजी तो आपकी कृपासे मिल गये ; परन्तु इनका नाम क्या है ?

गुरुजीने देखा कि कन्या बहुत सीधी है। सीधेको 'सिलबिल्ला' कहते हैं ग्रामीण भाषामें।

गुरु—तुम्हारे ठाकुरजीका नाम है सिलबिल्ले ठाकुर।

विमला—सिलबिल्ले ठाकुर ?

गुरु—यह तो फारसी भाषा हो गयी। सिलबिल्ले कहो ?

विमला—सिलबिल्ले ठाकुरजी !

× × ×

एकदिन विमलाका विवाह हो गया। वह बारातके साथ ससुरालको चली। मार्गमें बारातने दोपहरी देखकर पड़ाव डाल दिया। राजकुमारीका पति पालकीके पास आया। राजकुमारीको अत्यन्त रूपवती देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।

राजकुमार—इस सोनेकी सन्दूकचीमें क्या है ?

राजकुमारी—ठाकुरजी।

राजकुमार—देखूँ।

राजकुमारीने चाबी लेकर ताला खोला। रेशमी कपड़ोंमें फूलोंकी गद्दीपर पत्थरकी एक गोल बटरिया रक्खी थी। राजकुमार हँसा। उसे नयी दुनियाँकी हैवानी हवा लगा था। ईश्वर कहाँ है और यदि है भी तो वह अजर-अमर सच्चिदानन्द व्यापक होगा और यह है नर्मदाकी बटिया। राजकुमारने कहा—'तुम बहुत सरल हो राजकुमारी।'

इतना कहकर उसने ठाकुरजी उठा लिये। वहां एक कुआँ था। हँसकर राजकुमारने उस ठाकुरजीको कुयेंमें डाल दिया और चला गया।

× × ×

ससुराल पहुँचकर राजकुमारीने भोजन करना छोड़ दिया। केवल जल पाकर रहने लगी। हरदम ठाकुरजीका ध्यान। 'हाय ! हमारे सिलबिल्ले ठाकुरजी कब मिलेंगे ?' यही चिन्ता। ससुराल वालोंने सोचा कि घरकी यादसे बहू भोजन त्याग बैठी है। एक रातको वह खिड़कीके द्वारा महलसे बाहर हो गई। भागती हुई उसी कुयेंके पास जा पहुँची, जिसमें ठाकुरजी पड़े थे।

राजकुमारी रोने लगी। उसने पुकारा—'सिलबिल्ले !' आवश्यकतासे अधिक सीधे व्यक्तिको 'सिलबिल्ला' कहा जाता है देहाती भाषामें। बहुत सम्भव है कि ईश्वर भी आवश्यकतासे अधिक सीधा व्यक्तित्व रखते हों। लिहाजा कुएँमेंसे जवाब आया—'वाह ! मुझे यहाँ छोड़ तुम कहाँ चली गयी थीं ?'

राजकुमारी—बाहर आ जाओ।

आवाज—तुम्ही यहाँ आ जाओ।

राजकुमारी कुएँमें कूद पड़ी।

× × ×

विमलाने देखा कि कुएँमें पानीकी जगह फूल-ही-फूल भरे पड़े हैं और बजाय पत्थरके साक्षात् ठाकुरजी विराजमान हैं। पीताम्बर वनमाला, मोहनमुरली, मधुर मुस्कान !

विमला—सिलबिल्ले !

ठाकुरजी—कहो सिलबिल्ली।

विमला—मैं उस ठाकुरजीके विरोधी घरमें अब न जाऊँगी।

ठाकुरजी—तो ठाकुरजीके माननेवाले घरमें चलोगी ?

विमला—नहीं, मैं तो अब तुम्हारे ही साथ रहूँगी। तुम्ही मेरे सब कुछ हो।

श्रीकृष्ण—विमले ! तुम राधारानीकी 'सरलता' से उत्पन्न हो। संसारकी समस्त स्त्रियाँ शक्तिके विविध अंगोंसे उत्पन्न हैं। आजकलके भयानक कलियुगमें तुम-सी सरलकी गुजर नहीं हो सकती। सरलको लोग बेवकूफ समझते हैं, मजा यह कि, हैं खुद बेवकूफ।

विमला—तुम्हारा घर कहाँ है ?

श्रीकृष्ण—गोलोकमें।

विमला—वह कहाँ है ?

श्रीकृष्ण—पृथ्वीके ऊपर चन्द्र, चन्द्रसे दूर सूर्य, सूर्यसे ज्योति, ज्योतिके बाद गोलोक है।

विमला—बहुत दूर है ?

श्रीकृष्ण—क्षणभरमें पहुँच चलेंगे।

इतना कहकर भगवान्ने विमलाके सिरपर

हाथ फेरा। हाथके साथही उसकी आत्मा निकल आयी।

दोनों आकाशमार्गसे चले। यहाँ अपनी एक कहानी छोड़ गये।

जिन्हके रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

[कल्याणसे]

कसक

मेरे जीकी कसक न पूछो
योंही उसे छिपो रहने दो।
अपने रोम रोमको पीड़ा
मुझे शिला बनकर सहने दो॥
तनिक हवा तक मत लगने दो
धधक उठेगी आग हृदय की।
अपनी धीमी मधुर आह में
मुझे तड़पने दो—दहने दो॥

प्यास

विषके प्याले पी पीकर मैं
बुझा रहा हूँ जी की प्यास।
अनख जगाकर नाच रहे हैं
दायें-बायें नाश विनाश॥
निकट न आना झुलस उठोगे
लगा चुका हूँ घरमें आग।
मृत्युञ्जय होकर जीवन से
करता हूँ अब तो उपहास॥

मोहन वैरागी

कर्ममीमांसादर्शन।

[पूर्वसंख्याके ३२ पृष्ठके बाद]

लोकप्रसिद्ध है। दूसरी ओर अवतारोंमें जो दैवी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्तिका प्राकट्य होता है सो तो स्वतःसिद्ध है; क्योंकि अलौकिक दैवकार्य्य सम्पादनके लिये ही अवतारों-का आविर्भाव हुआ करता है ॥४०॥

अब तीनोंमेंसे पहलेकी स्वाभाविक गतिका वर्णन कर रहे हैं—

सहज ऊद्र्ध्वगामी है ॥ ४१ ॥

सहजकर्म ब्रह्मप्रकृतिके स्व-स्वभावसे सम्बन्ध रखकर प्रकट होता है इस कारण उसकी गति सदा ऊर्द्ध्वमुखिनी रहती है। ब्रह्मप्रकृति अव्यक्तावस्था-से व्यक्तावस्था और पुनः व्यक्तावस्थासे अव्यक्ता-वस्थाको प्राप्त होती है जैसा कि श्रीभगवान्ने निज-मुखसे गीतोपनिषद्में कहा है—

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके॥
भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥

ब्रह्माका दिन होनेपर अव्यक्तसे सृष्टिका उदय होता है और रातको उसीमें सबका प्रलय हो जाता है। समस्त चराचर जीवोंका समुदाय इसी प्रकार बार बार दिनको प्रकट होता है और रातको लयप्राप्त होता है। इस विज्ञानको दूसरे प्रकारसे समझ सकते हैं, कि प्रकृति ब्रह्मसे पृथक् होकर त्रिगुणके कारण विकारको प्राप्त होती है और पुनः प्रकृतिस्थ होकर ब्रह्ममें लय हो जाती है; अर्थात् परमपुरुषके भोगके लिये प्रकृति परमपुरुषसे पृथक् होकर संसारकी सृष्टि करती है और आनन्द-विलासको उत्पन्न करती है और दूसरे क्षणमें उन सब दृश्यप्रपञ्चको अपनेमें लय करती हुई स्वयं ब्रह्ममें लीन हो जाती है। प्रकृतिके इस स्वभावके अनुसार सहजकर्मका भी स्वभाव बनता है; क्योंकि सहजकर्म प्रकृतिका सहजात है। सहजकर्म भूतभावोद्भवकर विसर्गसे जीवोत्पत्ति करता है, तब वह चिज्जड़ग्रन्थिसम्भूत जीव सहजकर्मके बलसे क्रमशः नियमितरूपसे अभ्युदयको प्राप्त होता रहता है; क्योंकि सहजकर्म प्रकृति-सहजात होनेके कारण प्रकृतिके साथही साथ व्यक्त होकर पुनः प्रकृतिको ब्रह्ममें मिलानेका कारण बनता है और प्रकृति ब्रह्मसे व्यक्त होकर पुनः ब्रह्ममें ही अव्यक्त-भाव प्राप्त होनेके लिये स्वरूपकी ओर ही अग्रसर होती रहती है और अन्तमें पुनः ब्रह्ममें ही लीन हो जाती है। इसी वैज्ञानिक सिद्धान्तके अनुसार सहजकर्म अपने आपही प्रकृतिसे उत्पन्न होकर स्वाभाविक रूपसे प्रकृतिसम्भूत भूतादिको अग्रसर करता हुआ प्रकृतिमें ही मिल जाता है इस कारण सहजकर्मकी गति सदा ऊर्ध्वमुखिनी रहती है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चार श्रेणीके पिण्डोंमें तो सहजकर्मकी ऊर्ध्वमुखिनी नियमित स्वाभाविक गति स्पष्टही प्रतीयमान होती है। क्योंकि इन योनियोंमें जीव बिना बाधाके उन्नत कर्मकी ओर अग्रसर होता ही रहता है। पुनः अनार्यत्व, चातुर्वर्ण्य, चतुरा-श्रमत्व, मनुष्यत्व, और देवत्वादिमें जो बिना बाधाके उन्नतिशील गति है सो सहज कर्मके प्रभावसे होती रहती है। सहजकर्म प्रकृति-सहजात होनेसे उसकी स्थिति सर्वत्र वर्तमान है। उसीको अवलम्बन करके जीवन्मुक्तपद मनुष्यको मिलती है और उसीको अवलम्बन करके धर्माचार्योंने कर्मकाण्डमें निष्कामयज्ञ, उपासनाकाण्डमें पराभक्ति और ज्ञानकाण्डमें ब्रह्मसद्भावका अधिकार निर्णय किया है ॥४१॥

अब दूसरेकी स्वाभाविक गतिका वर्णन कर रहे हैं—

सहजमूद्र्ध्वगम् ॥ ४१ ॥

जैवकर्म अधोगामी है ॥ ४२ ॥

सहजकर्म जिस प्रकार ऊँचे ही ऊँचे ले जाता है, क्योंकि प्रकृति सहजात है, जैवकर्म वैसा नहीं है। मनुष्ययोनिमें जीव पिण्डका ईश्वर बन जानेसे उसकी प्रकृति विकृति हो जाती है। इस कारण विकृतिसे उत्पन्न कर्म इन्द्रिय-सम्बन्धसे निम्नगामी बन जाता है। प्रस्तुतः सहजकर्म प्रकृति सहजात है और जैवकर्म विकृतिसहजात है, ऐसा कह सकते हैं। यही कारण है कि, सहजकर्म स्व-स्वरूपकी ओर नियमितरूपसे ले जाता है; परन्तु जैवकर्म जीवको फँसाये रहता है और आवागमन-चक्रमें घुमाया करता है। सहजकर्मकी गति सहज है और जैवकर्मकी गति कुटिल है। इस कारण जैवकर्म निरन्तर जटिलता प्राप्त कराता है और जीवको आसक्तिके फन्देमें डालकर गिराता रहता है ॥ ४२ ॥

प्रकृत विज्ञानके सम्बन्धमें वर्णाश्रमकी आवश्यकता दिखाई जाती है—

उसकी निवृत्तिके लिये वर्णाश्रमकी अपेक्षा है ॥ ४३ ॥

जीव सहजकर्मकी क्रमोन्नति-प्रदायिनी शक्तिके अनुसार मनुष्ययोनितक तो विना बाधाके पहुँच जाता है। मनुष्ययोनिमें पाप-पुण्यका अधिकारी बनकर जैवकर्मकी अधोगामिनी कुटिल गतिका अधिकारी होता है; तब पूर्णावयव जीवरूपी मनुष्य अपने पिण्डका अधीश्वर बनकर इन्द्रिया-सक्तिमें फँसता हुआ अपनी ऊर्ध्वगतिसे च्युत होकर नीचेकी ओर गिरता रहता है। सुतरां ऐसी दशामें उसको कोई असाधारण सहायता न मिले तो उसकी क्रमोन्नति चिरकालके लिये रुक जाती है। इस निम्नप्रवण गतिको रोककर यथा-योग्यरूपसे उसकी ऊर्ध्वमुखीन गतिको पुनः नियोजित करनेके लिये वर्णाश्रमधर्मकी सुव्यवस्था बाँधी गई है। वस्तुतः वर्णाश्रम-पालनके द्वारा आर्य्यजातिमें मनुष्य वारंवार जन्मग्रहण करके अपने उस ऊर्ध्वगामी स्रोतको स्थायी रख सकता है और जैवकर्मके द्वारा जो जटिलता हो जाती है उसको दूर कर सकता है। शास्त्रोंमें इस विज्ञानके अनुमोदनार्थ जो एक औपनिषदिक दृश्यका वर्णन श्रीभगवान् शम्भुने निजमुखसे किया है सो नीचे प्रकाशित किया जाता है—

श्यामायाः प्रकृतेर्मे स्तो द्वे रूपे परमाद्भुते।
यतः सैव जडा जीवभूता चैतन्यमय्यपि ॥
अज्ञानपूर्णरूपेण जडरूपं धरन्त्यसौ।
सृष्टिं प्रकाशयेच्छश्वन्नात्र कश्चन संशयः ॥
असौ चैतन्यपूर्णा च भूत्वा स्रोतस्विनी मम।
स्वस्वरूपात्मके नित्यं पारावारे विशत्यहो ॥
सरिन्निर्गत्य चिद्रूपा सा महाद्रेर्जडात्मकात्।
उद्भिज्जे स्वेदजे चैवमण्डजे च जरायुजे ॥
सलीलं खातरूपेऽलं प्रवहन्ती स्वधाभुजः।
मर्त्यलोकाधित्यकायां निर्बाधं व्रजति स्वयम् ॥
तस्या अधित्यकाया हि निम्नस्थाश्चैकपार्श्वतः।
उपत्यका महत्यश्च विद्यन्ते गह्वरादयः ॥
यत्र तस्याः पवित्रायास्तरङ्गिण्या जलं स्वतः।
स्थाने स्थाने वहन्नित्यं निर्गच्छति स्वभावतः ॥
अव्याहतञ्च नीरन्ध्रमविच्छिन्नं निरापदम्।
स्रोतस्तन्नितरां कृत्वा नदीधारां धरातले ॥
विधातुं सरलां सौम्यामष्टबन्धाः स्वधाभुजः।
धर्मा वर्णाश्रमा एव निर्मिता नात्र संशयः ॥
त्रिलोकपावनी दिव्या सा नदी सुगमं हितम्।
पन्थानमवलम्ब्यैव परमानन्दलब्धये ॥
मयि नित्यं प्रकुर्वाणा प्रवेशं राजतेतराम्।
नैवात्र विस्मयः कार्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ॥
रिनानिखिलास्तस्या नद्यपूर्वकम्।

जैवमधोगम् ॥ ४२ ॥ वर्णाश्रममपेक्ष्यं तन्निवृत्तये ॥ ४३ ॥

सर्वदैवावगाहन्ते लभन्तेऽभ्युदयञ्च ते ॥
उभयोस्तटयोः तस्याः समासीना महर्षयः ।
ब्रह्मध्याने सदा मग्ना यान्ति निःश्रेयसं पदम् ॥
यूयं दाढर्य्याय बन्धानां तेषाञ्चैव निरन्तरम् ।
रक्षितुं तान् प्रवर्त्तन्ते पार्श्वमेषामुपस्थिताः ॥
भवतामत्र कार्ये च विश्वमङ्गलकारके ।
सदाचारिद्विजाः सन्ति सत्यो नार्य्यः सहायिकाः ॥

मेरी प्रकृति श्यामाके दो रूप हैं, वही जड़रूपा है और वही जीवभूता चेतनमयी हैं। वही अज्ञानपूर्ण रूपधारण करके सदा सृष्टिको प्रकट करती हैं और चेतनमयी स्रोतस्विनी होकर मेरे स्व-स्वरूप पारावारमें प्रवेश करती हैं। वह चिन्मयी नदी जड़मय महापर्वतसे निकलकर प्रथम उद्भिज्ज, तदनन्तर स्वेदज, तदनन्तर अण्डज, तदनन्तर जरायुजनामधारी खादमें सरलतासे बहती हुई मनुष्यलोकरूपी अधित्यकामें पहुँचती है। उस अधित्यकाके नीचे महती उपत्यकाएँ और गह्वर आदि विद्यमान हैं, जिनमें उस पवित्र तरङ्गिणीका जल स्थान स्थानपर स्वतः ही बह जाया करता है। हे पितृगण! उस स्रोतको अप्रतिहत नीरन्ध्र और अविच्छिन्न रखकर नदीकी धारा धरातलपर सरल रखनेके लिये वर्ण और आश्रमके आठ बन्ध रक्खे गये हैं। इसी कारण वह अलौकिक त्रिलोकपावनी नदी सरल पथको अवलम्बन करके मुझमें परमानन्द-प्राप्तिके हेतु प्रवेश करती है। हे पितृगण! इसमें आपलोग विस्मित न होवें। देवतागण उस नदीमें आनन्दपूर्वक अवगाहन करके अभ्युदयको प्राप्त होते हैं और ऋषिगण उस नदीके दोनों तटोंपर समासीन तथा ब्रह्मध्यानमें मग्न होकर निःश्रेयस पदको प्राप्त होते हैं। आप लोग निरन्तर उन बन्धोंको सुदृढ़ रखनेके लिये उनके पास रहकर उनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हों और आपके इस जगन्मङ्गलकर शुभ कार्य्यमें सदाचारी ब्राह्मणगण और सती नारियाँ सहायिका हैं ॥ ४३ ॥

अब वर्णाश्रम-शृंखलाकी भित्ति कह रहे हैं—

सतीत्व उसका मूल है ॥ ४४ ॥

वर्णाश्रम-शृङ्खलाकी भित्ति और उसका विज्ञान हृदयङ्गम करनेके अभिप्रायसे सबसे प्रथम पूज्यपाद महर्षि सूत्रकार कह रहे हैं कि, यदि विचारके देखा जाय, तो यही सिद्ध होगा कि, वर्णाश्रम शृङ्खलाका मूल नारीजातिका सतीत्व है। आश्रमधर्मका मूल वर्णधर्म है और वर्णधर्मका मूल रजोवीर्य्यकी शुद्धि है, रजोवीर्य्य शुद्धिका मूल नारीजातिमें त्रिलोकपवित्रकारी सतीत्वधर्म है। गृहस्थगण चाहे कितना ही सदाचारसे रहें, पुरुषगण चाहे कितने ही संयमी हों, यदि नारीजाति अपने तपोधर्मकी रक्षा न करे तो वर्णकी शुद्धि और आश्रमकी शुद्धि दोनों नष्ट हो जायगी और दोनोंकी शृङ्खला बिगड़ जायगी। दूसरी ओर विचारनेयोग्य विषय यह है कि, पुरुषका कदाचार उसके व्यक्तित्वतक ही पहुँचता है और स्त्रीका कदाचार उसके व्यक्तित्व, उसकी सन्तति, उसका कुल, उसकी जाति और यावत् वर्णाश्रम-शृङ्खलाको भ्रष्ट कर देता है। जाति की शुद्धि के लिये तो क्षेत्रकी शुद्धि ही प्रधान है और सन्ततिकी संस्कार-शुद्धि माताकी संस्कारशुद्धिपर ही निर्भर करती है। इस कारण यह सिद्ध कि, वर्णाश्रमका मूल नारीजातिका सतीत्व है ॥ ४४ ॥

और भी कह रहे हैं—

शुद्धि इसका स्कन्ध है ॥ ४५ ॥

यदि वर्णाश्रम-व्यवस्थाको एक वृक्षके रूपकमें सजाया जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि, नारीजातिका सतीत्व जैसे उसका मूल है, वैसे ही रजोवीर्य्यकी शुद्धि उसका स्कन्धरूप है। वृक्षका स्कन्ध जिसप्रकार उसको थाम्हे रहता है, उसीप्रकार

सतीत्वमूलं तत् ॥ ४४ ॥ शुद्धिः स्कन्धः ॥ ४५ ॥

पितरोंसे प्राप्त शुद्ध वंशपरम्परागत जो वीर्य्यकी शुद्धि है और पवित्र क्षेत्ररूपसे माताके द्वारा प्राप्त जो रजकी शुद्धि है, ये ही दोनों वर्णाश्रमरूपी कल्पवृक्षके स्कन्धरूप हैं। संस्कारपादमें यह भली-भाँति सिद्ध हो चुका है कि, रज और वीर्य्यके द्वारा उभयविध संस्कारका आकर्षण होता है। इसप्रकार-से उभयविध शुद्ध संस्कारोंका परम्परासे क्रमप्राप्त आकर्षण सृष्टिकालके आदिसे होते रहनेसे वर्णा-श्रम शृङ्खलामयी आर्य्यजाति इस नाशवान् संसारमें चिरजीवी बनी रहती है, इसी कारण शुद्धि उसका स्कन्ध है ॥ ४५ ॥

और भी कहते हैं—

शृङ्खला उसकी शाखा है ॥ ४६ ॥

वर्णधर्म और आश्रमधर्म निभानेके लिये पूज्य-पाद महर्षियोंने जो नाना दार्शनिक युक्तियोंसे दृढ़ शृङ्खला बाँधी है, वही इस वृक्षकी शाखायें हैं। वृक्ष-का विस्तार और उस विस्तारका अस्तित्व जिस प्रकार शाखाओंके द्वारा सुरक्षित होता है, उसी प्रकार नाना प्रकारकी वर्णाश्रम-शृङ्खलाओंके द्वारा वर्णाश्रमका महत्त्व सुरक्षित होता है। समाज-दण्ड, राजदण्ड, शास्त्रविचार, धर्माधर्मविचार नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर भी यही शृङ्खला वर्णाश्रमकी रक्षा करती है ॥ ४६ ॥

और भी कहते हैं—

सदाचार पत्ते हैं ॥ ४७ ॥

इस कल्पद्रुमके पत्रसमूह सदाचार हैं। जैसे पत्तोंके द्वारा वृक्षका परिचय मिलता है, जैसे वृक्षके पत्तोंके द्वारा वृक्षका वृक्षत्व पूर्णताको प्राप्त होता है, उसीप्रकार वर्णोचित और आश्रमोचित सदाचार-पालनके द्वारा ब्राह्मण-क्षत्रियादि वर्ण और गार्ह-स्थ्यादि आश्रम पहचाने जाते हैं और उनकी मर्य्यादा अक्षुण्ण रहती है ॥ ४७ ॥

और भी कहते हैं—

अभ्युदय पुष्प है ॥ ४८ ॥

वृक्षोंका पुष्प जिसप्रकार फलोत्पत्तिका कारण होता है, उसी प्रकार निःश्रेयसरूपी मुक्तिफलकी प्राप्ति करानेके लिये वर्णाश्रमधर्म जीवको नियमित-रूपसे अभ्युदय देकर मुक्तिपदमें पहुँचा देता है। अभ्युदय दो प्रकारका होता है, एक लौकिक अभ्यु-दय, दूसरा पारलौकिक अभ्युदय। वर्णाश्रमधर्मके आचरणद्वारा वे दोनों अभ्युदय जीवको स्वतः प्राप्त होते जाते हैं। वर्णाश्रमशृङ्खला और वर्णाश्रम सदाचार ऐसे सुकौशलपूर्ण रीतिपर बनें हैं कि, जिनके यथाक्रम पालन करनेसे क्रमाभ्युदयका प्राप्त करना निश्चित है। दूसरी ओर पुष्पकी शोभा और सुगन्धद्वारा जैसे सर्वजनका प्रसन्नता और पुष्पनिः-सृत मधुद्वारा मनुष्यलोकसे लेकर देवलोकतककी तृप्ति होती है, उसी प्रकार वर्णाश्रमकी व्यवस्थाद्वारा ऋषि, देवता और पितरोंकी किसप्रकार प्रसन्नता होती है, सो पहले कहा गया है; इस कारण पुष्प और अभ्युदयका दृष्टान्त युक्तियुक्त है ॥ ४८ ॥

और भी कह रहे हैं—

कैवल्य फल है ॥ ४९ ॥

वर्णाश्रमधर्मके पालनसे कैवल्यरूपी फलकी प्राप्ति स्वतःही होती है। जिसप्रकार वृक्षके पुष्पसे ही फलोत्पत्ति होती है, उसीप्रकार वर्णाश्रमधर्मके पालनद्वारा अपने आपही जीवको अभ्युदय प्राप्त होते-होते अन्तमें कैवल्यकी प्राप्ति हो जाती है। जन्म-जन्मान्तरमें वर्णाश्रमधर्मके द्वारा क्रमाभ्युदय होना निश्चय है। चारों वर्णोंमें क्रमशः काम, अर्थ,

शृङ्खला शाखा ॥ ४६ ॥ सदाचारः पत्रम् ॥ ४७ ॥ पुष्पमभ्युदयः ॥ ४८ ॥ कैवल्यं फलम् ॥ ४९ ॥

धर्म और मोक्षकी चरितार्थता करनेकी सुकौशल-पूर्ण क्रिया रक्खी गयी है। उसीप्रकार चारों आश्रमोंमेंसे प्रथम दोमें प्रवृत्ति और अंतिम दोमें निवृत्तिकी चरितार्थताकी शृङ्खला बाँधो गयी है। इसप्रकारसे जीव वर्णाश्रमधर्मका पालन करता हुआ अपने आपही अन्तमें अवश्य ही कैवल्यभूमिमें पहुँच जाता है। मुक्तिके लिये उसको स्वतन्त्र उद्योग करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ॥ ४६ ॥

अब वर्णाश्रम-शृङ्खलाका दिग्दर्शन करा रहे हैं—

असवर्ण विवाह अभिभूतशुद्धिका नाशक है ॥ ५० ॥

वर्णाश्रम-शृंखलाकी भित्तिका विस्तारित स्वरूप वर्णन करके अब उसकी शृङ्खलाका विरूप दिखा रहे हैं। वर्णाश्रम-शृङ्खलामें स्ववर्णमें विवाह करना ही उसकी रक्षाका कारण होता है और असवर्ण विवाह करनेसे उसकी शुद्धि नष्ट हो जाती है। वर्णाश्रम-शृङ्खलाका प्रथम सिद्धान्त यह है कि, असवर्ण विवाह न किया जाय और स्ववर्ण विवाह किया जाय। इस संसारमें स्त्रीजातिका आकर्षण सबसे अधिक है। उस मोहमय आकर्षणके वशीभूत होकर जातिको शुद्ध रखनेवाली शृङ्खला नष्ट न होने पावे और अशुद्धताका द्वार बन्द हो जाय, जिससे आर्य्यजाति चिरजीवी हो सके। इस कारण इस सूत्रका आविर्भाव किया गया है ॥ ५० ॥

और भी कहा जाता है—

गुणपरिपन्थी भी है ॥ ५१ ॥

असवर्णविवाह दूसरे वर्णके साथ सङ्करता उत्पन्न करके वर्णकी शुद्धिका तो नाश करता ही है; परन्तु गुणोंमें भी बाधक है। भगवान् श्रीकृष्णने गीतोपनिषद्में कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

भगवान्ने जो चारों वर्णोंकी अलग-अलग सृष्टि की है, उनमें गुणविभाग भी एक कारण है। सत्त्वप्रधान ब्राह्मण, सत्त्वरजःप्रधान क्षत्रिय, रजस्तमःप्रधान वैश्य और तमोगुणप्रधान शूद्र माने गये हैं। इन तीनों गुणोंका आकर्षण रजोवीर्यके द्वारा होता है। शरीर त्रिगुणका आधार है, इस कारण रजोवीर्यकी शुद्धिके बिना त्रिगुणका तारतम्य ठीक-ठीक आकर्षित होकर स्थापित नहीं हो सकता है; अतः मानना ही पड़ेगा कि, असवर्ण विवाह गुणसंग्रहका भी बाधक है ॥ ५१ ॥

अब शृङ्खलाका दूसरा सिद्धान्त कह रहे हैं—

कौन विवाह वर्णाश्रम शृंखलाका घातक होता है, यह बतलाते हैं—

विलोमविवाह वर्णाश्रम-शृङ्खलाका घातक है ॥ ५२ ॥

वर्णाश्रमशृंखलामें अपने वर्णमें वर-कन्याका विवाह सबसे श्रेष्ठ माना गया है। यदि कारणवश अनुलोम विवाह हो जाय, अर्थात् उच्चवर्णका पुरुष अपनेसे निम्न वर्णकी कन्यासे विवाह करले, तो वह अनुलोम विवाह कहलाता है। ऐसे विवाहकी सम्मति शास्त्रकार देते हैं; परन्तु विलोम-विवाह अर्थात् निम्नवर्णका पुरुष उच्चवर्णकी कन्यासे विवाह करे, तो वह वर्णाश्रम शृङ्खलाका घातक होगा। निम्नवर्णकी स्त्रीका रज उच्चवर्णके पुरुषके वीर्यको अपवित्र नहीं कर सकता; परन्तु यदि उच्च वर्णकी स्त्रीका रज हो और निम्नवर्णके पुरुषका वीर्य हो, तो प्रजातन्तुमें आध्यात्मिक स्थितिकी हानि हो जाती है। इस कारण विलोम-सृष्टि पापवृद्धिका कारण हो जाती है। इससे पवित्र सृष्टि-शृङ्खला बिगड़ जाती है ॥ ५२ ॥

अभिभूतशुद्धिनाशकोऽसवर्णोद्वाहः ॥ ५० ॥ गुणपरिपन्थी च ॥ ५१ ॥ तत्र वर्णाश्रमशृङ्खलाविघाती विलोमः ॥ ५२ ॥

अपने सिद्धान्तकी पुष्टिके लिये और भी कह रहे हैं—

वैसा अनुलोम विवाह नहीं होता ॥ ५३ ॥

अनुलोम विवाहमें रज निम्नवर्णकी स्त्रीका होनेसे और उच्चवर्णके पुरुषका वीर्य होनेसे पुरुषका वीर्य अपवित्र न होनेके कारण वर्णाश्रमशृंखलामें विशेष बाधा नहीं होती ॥ ५३ ॥

ऐसे विवाहसे जो गौणता हो जाती है वह कहते हैं—

उनकी सृष्टि माताकी जातिकी होती है ॥ ५४ ॥

यद्यपि अनुलोम विवाहकी सृष्टि अधर्मज नहीं कही जा सकती, तथापि उसमें जो गौणता आ जाती है, वह यह है कि, ऐसे विवाहसे उत्पन्न हुई सन्तान माताकी जातिकी मानी जाती है। विलोमज सृष्टि पापजनक है। यद्यपि अनुलोमजसृष्टि पापजनक नहीं है, क्योंकि उसमें वर्णाश्रमशृंखला नहीं बिगड़ती, ऐसी सृष्टि रज-वीर्यको घातक न होनेसे वह वर्णाश्रम-शृङ्खलाका नाशकारी नहीं है, तथापि रजोवीर्यकी समानता न होनेके कारण वह सृष्टि माताकी जातिकी हो जाती है ॥ ५४ ॥

अब शृंखलाका दूसरा सिद्धान्त कह रहे हैं—

स्वगोत्रविवाह कुलका नाशक है ॥ ५५ ॥

जिस प्रकार वर्णाश्रमशृंखलाका प्रथम सिद्धान्त असवर्णविवाह न करना है, वैसे ही दूसरा सिद्धान्त स्वगोत्र विवाह न करना है। महर्षि सूत्रकार दूसरा सिद्धान्त कह रहे हैं कि, स्वगोत्र-विवाह करनेसे कुलका नाश होता है। जिस मनुष्यजाति अथवा जिस वंशमें स्वगोत्रविवाह प्रचलित है, न वह मनुष्यजाति चिरजीवी हो सकती है और न वह वंश चिरजीवी रह सकता है। स्वगोत्रमें विवाहके द्वारा कुल नष्ट हो जाता है और ऐसा शुद्धकुल नष्ट हो जानेसे शुद्धजाति नष्ट हो जाती है। लौकिक इतिहास इसका साक्षी देता है कि, जिस मनुष्यजातिमें वर्णाश्रमशृंखला नहीं है, पृथिवीमें ऐसी कोई भी मनुष्यजाति चिरजीवी नहीं है। इस नाशवान संसारमें अनेक मनुष्यजातियाँ कराल कालके गालमें पतित हो लुप्त हो गयी हैं; एकमात्र वर्णाश्रमधर्मी आर्यजाति ही चिरजीवी है। एकही गोत्रके रज और एकही गोत्रके वीर्यका संमिश्रण होना वीर्य्यके दुर्बलताका कारण है। ऐसे ही होते-होते वीर्य अपनी मौलिकता खो देगी इसी कारण स्मृतिशास्त्रमें कहा गया है कि, स्वगोत्रागमन मातृगमनके समान है ॥ ५५ ॥

और भी कह रहे हैं—

पितृकोपकर भी है ॥ ५६ ॥

स्वगोत्रविवाह केवल कुलनाशक ही नहीं है, पितरोंके कोपका भी कारण है। अर्य्यमा, अग्निष्वात्ता आदि जो नित्यपितृगण हैं, जिनका सृष्टिकार्य्यकी रक्षामें बड़ा भारी अधिकार है, ऐसे पितृगणका भी कोप स्वगोत्रविवाह करनेसे होता है। नित्यपितृगण एक श्रेणीके देवता हैं और वे आधिभौतिक जगत्‌की सुरक्षामें नियुक्त रहते हैं। स्थूलशरीर-निर्माण, स्थूलशरीरकी रक्षा उनका कार्य्य है। पितृगणके कार्य्यके भी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र नियम हैं। उन नियमोंमें बाधा होनेसे स्वगोत्रविवाहद्वारा पितृकोपकी प्राप्ति होती है ॥ ५६ ॥

नानुलोमस्तथा ॥ ५३ ॥ तज्जःसर्गो मातृजातीयः ॥ ५४ ॥ कुलोच्छेदी स्वगोत्रायः ॥ ५५ ॥
पितृकोपकरश्च ॥ ५६ ॥

अब शृंखलाका अन्य सिद्धांत कहा जाता है—

वयोधिकासे शक्तिक्षय होता है ॥ ५७ ॥

वरसे यदि कन्याकी आयु अधिक हो, तो ऐसे विवाहके द्वारा पुरुषकी शक्तिका क्षय होता है। इस कारण शास्त्रमें वयोधिका कन्यासे विवाह करना निषिद्ध है। यह पहले ही कहा गया है कि, पुरुष बीजरूप है और स्त्री भूमिरूपा है। जिस प्रकार कीटादिसम्पर्कसे खेतमें बोये जानेवाले बीजकी शक्ति नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार वयोधिका कन्यासे विवाह होनेसे पुरुषकी शक्तिका नाश हो जाता है। सृष्टिके उत्पन्नकारक बीजमें त्रिविध शक्ति रहती है, यथा—अधिभूतशक्ति, अधिदैवशक्ति और अध्यात्मशक्ति। यद्यपि तीनों शक्तिका नाश होना एकदम प्रतीत नहीं होता, परन्तु त्रिकालदर्शी महर्षियोंने यह सिद्धान्त किया है कि, इन तीनों शक्तियोंमें न्यूनता समय पाकर अवश्यही देश-काल-पात्रके अनुसार होती है। जिस कुलमें इस प्रकारका विवाह होगा, उस कुलमें अथवा उस व्यक्तिमें क्रमशः यथादेश-काल-पात्र शरीर-सम्पत्ति, संकल्प बल और आत्मबल घट जायगा ॥ ५७ ॥

अब अन्य कहा जाता है—

रजस्वलासे त्रिविध शुद्धिकी हानि होती है ॥ ५८ ॥

कन्यामे रजोदर्शन होते ही उसकी कन्यकावस्थाका नाश होकर स्त्री अवस्था प्राप्त होती है। यह प्रकृतिका स्वभाव है कि, युवकको स्त्रीकी और युवतीको पुरुषकी इच्छा होती है। यह भी प्रकृतिजन्य स्वभावसिद्ध है कि, ऋतुके समय वह इच्छा स्त्रीमें प्रबल होती है। पशु-पक्षी तकमें यह नियम देखा जाता है। सुतरां रजोदर्शन होते ही कन्यावस्थाका नाश होकर स्त्रीको युवती-अवस्था प्राप्त होती है, तो स्त्री चाहे कितनी ही संयमा हो, उसके शरीर, उसके मन और उसकी बुद्धिमें कुछ-न-कुछ परिणाम होना अवश्य सम्भव है। परिणाम चाहे थोड़ा ही हो, पर होना निश्चित है। इस कारण उस परिणामके साथ-ही-साथ त्रिविधशुद्धिकी यथायोग्य हानि होना भी सम्भव है। जब क्षेत्रमें त्रिविधशुद्धिकी हानि होगी तो, सृष्टिमें भी उसका प्रभाव पड़ना निश्चित है ॥ ५८ ॥

और भी कहा जाता है—

प्रातिभाव्यके कारण सर्वत्र सुरक्षाका आदेश है ॥ ५९ ॥

सृष्टिक्रियामें नारीजातिकी जिम्मेवरी सबसे अधिक होनेके कारण सर्वत्र और सब देशकालमें उसकी सुरक्षा करनेका आदेश है। वर्णधर्मके सम्बन्धमें रजोवीर्य्यकी शुद्धिकी रक्षा करना एकमात्र नारीजातिके ऊपर ही निर्भर है। आश्रमधर्मके सम्बन्धमें अन्य तीन आश्रमोंका आश्रय एकमात्र गृहस्थाश्रमको माना गया है, इस कारण गृहस्थाश्रम सबका ज्येष्ठाश्रम कहलाता है। ऐसे गृहस्थाश्रमका एकमात्र आश्रय नारीजाति है। उसी प्रकार प्रवृत्तिधर्मके लिये साक्षात्‌रूपसे और निवृत्तिधर्मके लिये परोक्षरूपसे नारीजाति आश्रयरूपा है। दूसरी ओर विना अभ्युदयके निःश्रेयस नहीं हो सकता और विना नारीजातिकी सहायताके अभ्युदयका मार्ग सरल होना असम्भव है। इन्हीं सब कारणोंसे मानना ही पड़ेगा कि, सृष्टिके सामञ्जस्यमें और अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी चरितार्थतामें नारीजातिका प्रातिभाव्य सबसे अधिक है। यही कारण है कि, वर्णाश्रम-शृंखलामें सब देश, काल

शक्तिक्षयो वयोऽधिकाया ॥ ५७ ॥ त्रिविधशुद्धिहन्त्री रजस्वलाया ॥ ५८ ॥ प्रातिभाव्यात् सुरक्षादेशः ॥ ५९ ॥

और पात्रमें नारीजातिकी रक्षाका आदेश है, यथा शास्त्रमें—

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥५९॥

अब अन्य शृंखलाका दिग्दर्शन कराया जाता है—

इसी तरह आर्य्यपिण्डकी विशेषता है ॥६०॥

वर्णाश्रमशृंखलाके साथ नारीजाति-सम्बन्धीय विज्ञानका दिग्दर्शन कराकर अब महर्षि सूत्रकार अन्य प्रकारकी शृङ्खलाका दिग्दर्शन करा रहे हैं और कह रहे हैं कि, जैसे वर्णाश्रम-शृङ्खलाके लिये नारीजातिका प्राधान्य है, वैसेही आर्य्यपिण्डमात्रकी विशेषता है। यद्यपि आर्य्यपिण्ड और अनार्यपिण्ड दोनों ही मानवपिण्ड हैं, परन्तु सृष्टिके आदिकालसे आर्य्यपिण्डरूपी वर्णाश्रमधर्मी मनुष्यजातिके शरीरकी विशेषता प्रसिद्ध है। क्या सभ्यताके विचारसे, क्या आचारके विचारसे, क्या सामाजिक व्यवस्थाके विचारसे, क्या धर्मज्ञानके विचारसे, क्या आध्यात्मिक लक्ष्यके विचारसे और क्या स्थायी जीवनिकाशक्तिके विचारसे, यह मानना ही पड़ेगा कि, आर्यपिण्डकी विशेषता है ॥६०॥

इसका विज्ञान कह रहे हैं—

आदिसे सुसंस्कृत होनेसे ॥६१॥

सृष्टिके आदिकालसे आर्य्यपिण्ड वैदिक संस्कारोंसे सुसंस्कृत होनेसे सृष्टिमें उसकी विशेषता मानी गयी है और वह संस्कार वर्णाश्रम शृंखला और आचारमूलक है ॥६१॥

अब अन्य शृङ्खलाका दिग्दर्शन कराया जाता है—

इसलिये सुसंस्कारका केन्द्र है ॥६२॥

आर्यपिण्ड आदिसे सुसंस्कृत होनेके कारण पूर्णावयव है। पूर्णावयव होनेके कारण अभ्युदय और निःश्रेयसके संस्कारोंको पूर्णतया ग्रहण करनेका केन्द्र बनता है। अन्तःकरण ही जीवका प्रधान यन्त्र है। जब जीव पूर्णावयव हो जाता है, तो उसका प्रधान यन्त्र भी पूर्णावयव हो जाता है। जब अन्तःकरण पूर्णावयव हो जाता है, तो अन्तःकरणके जो चार अवयव—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार हैं, वे भी पूर्णावयव हो जाते हैं। जब चारों पूर्णावयव हो जाते हैं, तो आर्यपिण्डमें सुसंस्कारग्राहक चित्तके पूर्ण हो जानेके कारण उसमें अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंके सम्बन्धके संस्कार-ग्रहणकी शक्ति स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। सृष्टिके आदिमें पूर्णावयव मनुष्य उत्पन्न होते हैं, इस कारण भगवान् ब्रह्माकी प्रथम सृष्टि परमहंसोंकी होती है। उसके बादकी सृष्टिको सुसंस्कृत रखनेके लिये वर्णाश्रम-शृंखला बाँधी जाती है। उसी समयसे संस्कृत संस्कारसमूह आर्यपिण्डमें अंकित रह जाते हैं और रज-वीर्यके द्वारा वे क्रमानुगत आकृष्ट होते रहते हैं जैसा कि, संस्कारपादमें कहा गया है ॥६२॥ [क्रमशः]

आर्यपिण्डविशेषत्वं तद्वत् ॥ ६० ॥ आदितः सुसंस्कृतत्वात् ॥ ६१ ॥ तस्मात् सुसंस्कारकेन्द्रम् ॥ ६२ ॥

दरिद्रा कहाँ रहती है ?

प्राचीन समयकी बात है, भगवान विष्णुने जब लक्ष्मीजीसे विवाह करना चाहा और अपनी इच्छा लक्ष्मीजीके सामने प्रकट की, तब भगवानकी बात सुनकर लक्ष्मीजीने कहा कि, मेरी बड़ी बहिन दरिद्रा अभी क्वारी है, जबतक मेरी बड़ी बहिनका विवाह न हो जाय, तबतक मैं कैसे विवाह कर सकती हूँ ? इसलिये पहले मेरी बड़ी बहिन दरिद्राके विवाहका प्रबन्ध आप करें तो मैं आपके साथ विवाह करूँगी ? बात बड़ी उपयुक्त थी। भगवान् विष्णुने लक्ष्मीजीकी बात मान ली, और वे स्वयं दरिद्राके योग्य वर ढूँढ़ने निकले। त्रिलोकीमें सब जगह वे ढूढ़ आये परन्तु दरिद्राके योग्य वर नहीं मिला या दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि दरिद्राको अपनी गृहिणी बनानेको कोई तैयार नहीं हुआ। भगवान् विष्णु बड़े असमञ्जसमें पड़े सोच ही रहे थे कि क्या करना चाहिये, इतनेमें महर्षि दुर्वासा भगवान्के दर्शनार्थ आ पहुँचे। भगवान विष्णुने कहा, महर्षे ! आप दरिद्रासे विवाह कर लें। इसपर महर्षि अङ्गिराने कहा कि भगवन् ! विवाहकी इच्छा तो नहीं है, मैं विरक्त हूँ, परन्तु जब आपकी आज्ञा है, तो वह मुझे सहर्ष शिरोधार्य है। इसप्रकार भगवान् विष्णुकी इच्छासे महर्षि दुर्वासा दरिद्राके साथ विवाह करनेको प्रस्तुत हो गये और दरिद्राके साथ महर्षि दुर्वासाका विवाह सम्पन्न हो गया। विवाहके पश्चात् महर्षि अपनी गृहिणी दरिद्राको साथ लेकर अपने आश्रमकी ओर चले। महर्षिके पीछे-पीछे दरिद्रा चलीं। महर्षि दुर्वासाका आश्रम समीप आ गया। महर्षिने अपने आश्रमके भीतर प्रवेश किया, परन्तु दरिद्रा बाहर ही खड़ी हो गयीं। यह देख महर्षि दुर्वासाने बड़े प्रेमसे दरिद्राको सम्बोधन करके कहा—देवि ! यही आपका आश्रम है, आप भीतर पदार्पण करें' यह सुनकर दरिद्राने कहा—महर्षे ! यह घर तो मेरे उपयुक्त नहीं है, अत. मैं इसमें प्रवेश नहीं कर सकती। महर्षिको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वे स्तम्भितसे रह गये। पुनः उन्होंने दरिद्राको सम्बोधन करके पूछा, देवि ! इस घरमें क्या कमी है ? आपके रहनेके लिये कैसा घर होना चाहिये ? दरिद्राने उत्तर दिया—भगवन् ! जो घर झाड़-बुहारकर प्रतिदिन गायके गोबरसे लीपा-पोता जाता है, उसमें मैं नहीं प्रवेश कर सकती हूँ, जहाँ प्रतिदिन वेदघोष होता है, उस घरमें मैं नहीं प्रवेश कर सकती हूँ, जहाँ प्रतिदिन ऋषि-देवता-पितरोंका पूजन होता है, उस घरमें मैं कभी नहीं रह सकती हूँ, जहाँ पुत्र-कन्या पितृ-मातृ भक्त एवं पिता-माताके आज्ञाकारी होते हैं, उस घरमें मेरा निवास नहीं हो सकता है। जिस घरमें पतिव्रता स्त्री रहती है, जहाँ एकपत्नी-व्रत पुरुष रहते हैं, जिस घरमें सती साध्वी स्त्रीका उचित आदर-सम्मान होता है, ऐसे घरोंसे मैं कोशों दूर रहती हूँ। जिस घरमें अतिथी-अभ्यागतका उचित आदर-सत्कार होता है, जहाँके लोग परस्पर प्रेमसे रहते हैं, ऐसे घरोंमें मेरा कदापि निवास नहीं होता। जिस घरमें लोग सूर्योदयतक सोये रहते हैं, जहाँ दिन उठेतक जूठे बर्तन पड़े रहते हैं, और उनपर मक्खियाँ भिन-भिनाया करती हैं, जहाँ कभी भी वेदघोष नहीं होता, जो घर कभी गायके गोबरसे लीपा नहीं जाता, ऐसे घरोंमें मैं बड़ी प्रसन्नतासे निवास करती हूँ। जहाँ ब्राह्मण तथा अतिथि-अभ्यागतका आदर-सत्कार नहीं होता है, ऐसे घरोंमें मेरा निरन्तर निवास होता है। जहाँ स्त्रियाँ दोनों हाथोंसे अपना शिर खुजलाया करती हैं, घरके दरवाजेके चौखट पर बैठती हैं, आपसमें निरन्तर कलह किया करती हैं, उस घरमें मेरा सदा निवास होता है। इत्यादि।

गृहदेवियों ! यदि आप चाहती हैं कि, आपके घरमें लक्ष्मीका वास हो, आपका घर सुख-शांति-समृद्धिपूर्ण हो, तो अपनेको तथा अपने बहु-बेटियोंको

और पति पुत्रोंको ऐसा बनाइये, जिससे आपके घरोंमें दरिद्रा नहीं आ सकें। जहाँ दरिद्राका वास होगा, वहाँसे लक्ष्मीजी स्वत: कोशों दूर रहती हैं। आजकल प्राय: गृह देवियोंके घरोंकी ऐसो ही दशा होती जा रही है, जिनमें दरिद्राका साम्राज्य बढ़ता जाता है। अत: दरिद्राके वास योग्य लक्षणोंसे अपनेको दूर रखें और जिससे आपके घरोंमें लक्ष्मोका निवास हो, उन लक्षणोंको अपनावें।

वातावरणका प्रभाव

लेखक—श्यामसुन्दर शर्मा "श्याम"

मनुष्यजीवनमें वातावरणका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। वातावरण जैसा होता है, वैसी ही प्रकृति उस वातावरणमें रहनेवाले व्यक्तिकी हो जाती है। यह एक ऐसा मार्ग है कि, जिसपर चलकर बुरेसे बुरा व्यक्ति योग्य तथा अच्छा और अच्छेसे अच्छा व्यक्ति बुरा बन जाते है। इससे लाभ उठानेके लिये मनुष्यको बाल्यावस्था ही से अपने बालक बालिकाओंको योग्य एवं सुन्दर वातावरणमें रखना चाहिये।

वंशानुक्रम स्वभाव

बालककी प्रतिभाके विकासमें वंशानुक्रमका भी बड़ा प्रभाव होता है। जन्मजात स्वभाव बहुधा पैतृक सम्पत्तिपर निर्भर रहता है। इसोको वंशानुक्रम कहते हैं। बालकको अपनी शारीरिक एवं मानसिक विशेषताएँ अपने मातापितासे मिलती है। प्राय: देखा जाता है कि, रूप, रंग शरीरकी बनावट एवं ऊँचाई आदिमें सन्तान अपने मातापिताके ही तुल्य होती है। बुद्धि, रुचि आदतें तथा चरित्र भी वंशानुक्रम से ही बहुधा अच्छे होते हैं। सदाचारी, सम्पन्न एवं बुद्धिमान् घरोंके बालक योग्य एवं सदाचारी होते हैं तथा दुराचारी एवं मन्दबुद्धिवाले मातापिताकी संतानें अकर्मण्य देखी जाती हैं।

यह विशेषरूपसे पाया जाता है कि, मातापिताके अनुभवोंका लाभ संतानको अवश्य होता है। जिस कार्यको मातापिता बड़ी कठिनाईके साथ सीखते हैं, उसीको उनकी संन्तानें सुगमतासे सीख सकती हैं। ब्राह्मणके बालकोंमें पढ़ने-लिखने एवं पूजापाठको स्वभावत: रुचि देखी जाती है। इसी प्रकार क्षत्रियोंके बालक लड़ने भिड़नेमें कुशल देखे जाते हैं और वैश्यके बालक वाणिज्यमें कुशल होते है। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिका यह कर्तव्य होना चाहिये कि, वे अनेक प्रकारकी योग्यताओंको प्राप्त करें। यदि उन्हे इस योग्यताका लाभ न भी हुआ तो उनकी सन्तानों को अवश्य होगा।

अत: किसीभी बालककी शिक्षापर विचार करते समय यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि बालकको उसीप्रकारकी शिक्षा दी जाय जो उसके स्वभाव और योग्यताके अनुकूल हो। वंशानुक्रमका प्रभाव इन दोनों बातोंपर विशेषत: पड़ता है।

वंशानुक्रम और वातावरण

जिन बालकोंको शिक्षा नही दी जाती, वे जन्मसे कितना ही प्रतिभाशाली क्यो न हों, समाजोपयोगी या प्रभावशाली व्यक्ति कदापि नहीं बन सकते। अत: यदि बालकोंको शिक्षा दी जाय तो वे उन गुणोंको प्रदर्शित करेंगे, जिनका उनके मातापितामें अभाव देखा गया हो।

यदि मातापिता अपने परिश्रमसे किसी प्रकारकी योग्यता प्राप्त कर लेते है, तो वह उनके बालकोंमें विना शिक्षाके उत्पन्न नही हो सकती, अतएव

प्रत्येक व्यक्तिको बाल्यावस्थामें ही शिक्षा पानेकी बड़ी आवश्यकता है। पैदा होनेके समय सभ्य और असभ्य दोनों ही समाजोंके बालक एकसे होते हैं किन्तु इन्हें शिक्षासे ही सुधारा जा सकता है। साथ ही वातावरणके द्वारा भी मातापिताके दुर्गुण वंशानुक्रमकी गतिके अनुसार, उसके सन्तानोंसे दूर किये जा सकते हैं। यदि दुराचारी पिताका पुत्र अच्छे वातावरणमें रखकर सदाचारी बनाया जा सकता है तो इसीप्रकार जिन बालकोंका जन्म योग्य और अच्छे कुलमें होता है किन्तु यदि वे अच्छे एवं योग्य वातावरणमें नहीं रखे जाते और उन्हें शिक्षा नहीं दी जाती तो वे कदापि योग्य एवं प्रतिभाशाली नहीं हो सकते।

अतः मातापिताकी अयोग्यताका भी ज्ञान हो जानेपर बालकोंपर शिक्षाका प्रभाव शिथिल नहीं करना चाहिये। क्योंकि अयोग्यसे अयोग्य मातापिताका बालक अच्छे वातावरणसे सुयोग्य बनाया जा सकता है।

वातावरणका महत्त्व

बालकके स्वभाव एवं प्रतिभाके विकासमें विशेष महत्त्व वातावरणका है। जिस बालकका लालन-पालन जिसप्रकारके वातावरणमें होता है, जैसी शिक्षा उसको दी जाती है, वैसेही उसके मानसिक संस्कार बन जाते हैं। अतएव बालककी मानसिक उन्नतिमें शिक्षा एवं वातावरणका प्रमुख स्थान है। बालक जिस परिस्थितिमें जन्मसे रहता है, जिस प्रकारकी शिक्षा-दीक्षा उसे दी जाती है, उसके सम्पर्कमें आनेवाले लोग उससे जिसप्रकारका व्यवहार करते हैं, इन सबका समावेश वातावरणके अन्तर्गत है। बहुधा यह भी देखा जाता है कि बुरे से बुरे घरके बालक योग्य और सुन्दर वातावरणमें पड़कर अपनी प्रतिभाको पूर्णरूपसे प्रकाशित कर पाते हैं। इसीप्रकार सदाचारी घरके बालक कुसंगति पाकर दुराचारी बन जाते हैं।

वंशानुक्रमके नियमानुसार अपने पूर्वजोंसे जितने गुण मिलते हैं, उतने ही गुण उसे सामाजिक सम्पत्तिके रूपमें अपने सम्पर्कमें रहनेवाले व्यक्तियोंसे मिलते हैं। बालकका लालनपालन जन्मसे जैसे वातावरणमें होता है वैसा ही उसका स्वभाव भी बन जाता है। यह स्वभाव बालकके जन्मजात स्वभावसे इतना अभिन्न होता है कि, पीछे यह कहना कठिन हो जाता है कि, बालकके व्यक्तित्वमें कहाँतक वंशानुक्रमका प्रभाव है और कहाँतक उसकी पैतृक या सामाजिक परम्पराका। वास्तवमें बालककी सामाजिक सम्पत्ति एक प्रकार का वातावरण ही है। इसे शिक्षाके ही द्वारा बालकोंको दिया जा सकता है।

अतः जिन बालक बालिकओंका जन्म सुयोग्य वातावरणमें होता है वे बड़े ही भाग्यशाली हैं, क्योंकि उनकी बहुतसी बहुमूल्य सामाजिक सम्पत्तियाँ सरलतासे मिल जाती हैं। वातावरण वह क्षेत्र है जिसमें प्रत्येक बालक सामाजिक सम्पत्तिका लाभ उठा सकता है और अपने आप भी समाजको स्थायी सम्पत्ति देनेयोग्य हो सकता है। अतएव यदि बालक बालिकाओंको भलीभाँति शिक्षा दी जाय और उन्हें सुयोग्य एवं अच्छे वातावरणमें रखा जाय तो इसप्रकार धीरे धीरे प्रत्येक समाजके सम्पूर्ण दोष दूर हो सकते हैं।

महापरिषद् सम्बाद।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की प्रबंध-समितिकी बैठक ता० ८-६-५० को महापरिषद्के कार्यालयमें श्रीमान् बाबू रामेश्वरलाल पोद्दारकी अध्यक्षतामें हुई। इसमें महापरिषद्का मासिक हिसाब तथा सन् १९५० का आय-व्ययका अनुमान-पत्र उपस्थापित हुआ और स्वीकृत हुआ। आर्य-महिला महाविद्यालयके रिक्त स्थानोंकी नियुक्तिके सम्बन्धमें उपसमितिके विवरणके अनुसार अध्यापक अध्यापिकाओंकी नियुक्तियाँ स्वीकृत की गयीं। तत्पश्चात् हिन्दूकोड कान्फरेन्स-सम्बन्धी श्रीमती विद्यादेवीजीकी निम्नलिखित रिपोर्ट उपस्थापित हुई।

श्रीमान् सभापति महाशय !

डा० भीमराव रामजी अम्बेदकर कानून-मन्त्री भारतसरकारके ता० ८-४-५० के आमन्त्रणपत्र पर मैं श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्की ओरसे अनियमित हिन्दूकोड कान्फरेन्स जो ता० २१, २२, २३ अप्रैल १९५० को दिल्लीमें हुआ सम्मिलित हुई थी, इस सम्मेलनमें जितने प्रतिनिधि बुलाये गये थे, उनमें प्रायः पार्लियामेन्टके वे ही सदस्य थे, जो उक्त बिलके समर्थक हैं और जो अनेकबार इसका समर्थन कर चुके हैं, पार्लियामेन्ट-के जो सदस्य उक्त बिलके विरोधी थे, उनको नहीं बुलाया था, इनके अतिरिक्त कुछ संस्थाओंके प्रति-निधि थे, जिनमें दो को छोड़कर शेष उक्त बिलके समर्थक ही थे। उक्त दो व्यक्तियोंमें एक अखिल भारतीय हिन्दूकोडविरोधी समितिके प्रतिनिधि श्रीमान् महामहोपदेशक शास्त्रार्थ-महारथि पं० माधवाचार्यजी, दूसरे काशी विद्वत्परिषद्के प्रति-निधि श्रीमान् महामहोपदेशक पं० देवनायकाचार्य जी थे। आमन्त्रणपत्रमें किसी विचारणीय विषयका उल्लेख नहीं था, अतः यह पहलेसे निश्चय नहीं किया जा सका कि, हिन्दूकोडबिलके किस अंशपर उक्त सम्मेलनमें विचार किया जायगा। सभाभवनमें पहुँचनेपर सभाकी कार्यवाहीको प्रारम्भ करते हुए डा० अम्बेदकर ने कहा कि, इस सभामें केवल छः विषयोंपर बोलनेकी स्वतन्त्रता है, वे विषय ये हैं, एकपत्नीविवाह, विवाह, विवाहविच्छेद, स्त्रीधन, पिताकी सम्पत्तिमें पुत्रकी तरह कन्याका भी अधिकार और सयुक्त कुटुम्ब, इन विषयोंपर बिलके समर्थक सज्जनोंको ही बोलनेका भरपूर समय दिया गया। विरोधियोंको अन्तमें बहुत कम समय दिया गया। और मेरे साथ तो डा० अम्बेदकरने, जो इस सम्मेलनके सभापति बन बैठे थे, बहुत ही अशिष्टता तथा अन्यायपूर्ण व्यवहार किया। प्रथमदिन एकपत्नी विवाह पर मेरा भाषण हुआ। उस दिन मैंने अपने भाषणमें कहा कि, भारतीय संस्कृति तथा धर्ममें एकपत्नीव्रत ही आदर्श तथा प्रशस्त माना गया है। इसी कारण भगवान् रामचन्द्र आदर्श माने जाते हैं। उनके राज्यमें एक धोबीके विरोध को गुप्तचरद्वारा सुनकर उन्होंने अपनी प्राणप्यारी सम्राज्ञी सीताका परित्याग कर दिया था। इस तरह रामराज्यमें राजतन्त्रके भीतर प्रजातंत्रकी चरितार्थता थी, आजका प्रजातन्त्र या डिमक्रेसी यह है कि, हमलोग वर्षोंसे चिल्ला रहे हैं कि, हिन्दू-कोडबिल हमें नहीं चाहिये, फिर भी जनतन्त्र सरकार उसे पास करने पर तुली हुई है। अस्तु, भगवान् रामचन्द्रने अपने प्रजारंजनरूप आदर्श राजधर्मकी रक्षाके लिये सीताका परित्याग कर दिया, परंतु दूसरे विवाहकी उन्होंने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की, यद्यपि उनके पिता महाराज दशरथकी तीन रानियाँ थीं। यज्ञादि जो धर्म-कार्य बिना धर्मपत्नीके नहीं सम्पन्न हो सकते थे, उनके लिये उन्होंने सीताकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाली। अतः पतिके आदर्श तो भगवान् रामचन्द्र ही हैं। परंतु शास्त्रकारोंने किसी किसी

विशेष परिस्थितिमें जैसे वंशनाशसे पिण्डआदि लुप्त होनेकी अवस्थामें पुरुषके लिये दूसरे विवाह-का विधान किया है, यही मर्यादा सुरक्षित रहनी चाहिये और यदि ऐसा क़ानून बनाना ही सरकार को अभीष्ट है, तो केवल हिन्दुओंके लिये ही क्यों, मुसलमानोंके लिये ऐसा क़ानून क्यों नहीं बनाया जाता इत्यादि। दूसरे दिन विवाह तथा विवाह-विच्छेदपर मेरा भाषण हुआ। मैंने प्रारम्भमें ही कहा कि :—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
[भगवद्गीता, अध्याय १६ श्लो० २३]

भारतके सातलाख गाँवोंमें बसनेवाली कोटि-कोटि हिन्दू-महिलाएँ धर्म तथा शास्त्रका परित्याग करके कोई इन्द्रियसुखकी इच्छा नहीं करतीं। हिन्दुओंमें विवाह एक पवित्र संस्कार है और गृहस्थाश्रमका सबसे बड़ा तथा महत्वपूर्ण संस्कार है। विशेषतः स्त्रियोंके लिये वह एक ही वैदिक संस्कार है। कर्मके बीजको संस्कार कहते हैं। जैसा संस्कार होता है, वैसा ही कर्म बनता है, जैसा कर्म होता है, वैसा ही फल उत्पन्न होता है। विवाहसंस्कारके द्वारा पति-पत्नी एकमन एकप्राण होकर अपनी उच्छृङ्खल भोगप्रवृत्तियोंको एक दूसरेमें केन्द्रीभूत करते हुए अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते हैं और गृहस्थके कर्तव्योंका सुचारुरूपसे निर्वाह करते हैं। इस पवित्र विवाहसंस्कारके द्वारा लाखों लाखों वर्षोंसे हिन्दूसमाज सुख-शान्ति-पूर्वक जीवित रहा आया है। सिविल मैरेजद्वारा शास्त्रीय विवाहकी यह पवित्रता सर्वथा नष्ट हो जायगी। इसके द्वारा प्रथम संस्कार विवाह-विच्छेदका ही पड़ेगा। जैसा संस्कार वैसा ही कर्म होगा। इमली या नीमके बीजसे आमका वृक्ष उत्पन्न नहीं किया जा सकता, न इमली या नीमके वृक्षमें आमका फल ही लगता है। अस्तु, वैदिक विवाह जो धर्मविवाह है, उसमें विवाहविच्छेदका कोई स्थान ही नहीं है। क्योंकि हिन्दूशास्त्रीय विवाह विषयभोग एवं इन्द्रियतृप्तिके लिये नहीं किन्तु आत्मसंयम के लिये है। दूसरी ओर कोटि-कोटि हिन्दूनारियाँ प्रतिदिन जप, तप, दान, व्रत, उपवास, यज्ञ, याग, देवपूजन करके केवल यही मनाया करती हैं कि, 'मैं पतिके सामने उनके चरणोंमें मरूँ।' पतिके वियोगकी कल्पना भी उनको दुःसह होती है। भारतीय स्त्रियोंने अपने इस पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे अलौकिक तथा अतुलनीय जिस महान् पद तथा गौरवको प्राप्त किया था, वे किसी भी मूल्यपर अपने उस गौरव को खोना नहीं चाहती हैं। भारतीय महानताका मापदण्ड त्याग है। सबसे अधिक त्यागी सबसे बड़ा गिना जाता है। इसी कारण यहाँ संन्यासी सबका पूज्य होता है। महात्मा गान्धी, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार वल्लभभाई पटेल आदिको जनता इसलिये आदर सम्मान देती है कि, उन्होने देशकी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिये कठिन तपस्या तथा त्याग किया है। हमारे यहाँ माता-की महिमा पितासे भी अधिक है, क्योंकि माता जो त्याग अपनी सन्तानके लिये करती है, वह पिता कभी कर ही नहीं सकता है, इत्यादि। यहाँपर डा० अम्बेदकरने पूछा कि, जिन जातियोंमे विवाह-विच्छेद प्रचलित है, उनके सम्बन्धमें आपकी क्या सम्मति है। उत्तर :—जिन छोटी जातियोंमें विवाह विच्छेदकी प्रथा प्रचलित है, वे अपनी सामाजिक रीतिके अनुसार बड़ी सरलतासे इसे कर लेती हैं। यह क़ानून बनने पर उन्हें इस कार्यके लिये न्यायालयकी शरण लेनी होगी, वकीलको सहायता लेनी होगी, धन खर्च करना होगा और महीनों न्यायालय तथा वकीलोंके यहाँ दौड़धूप करनी होगी। इस तरह उनके जो अधिकार अबतक वे काममें लाते हैं, वे भी छिन जायँगे और उनके सहज कार्यमें कष्ट तथा असुविधायें उत्पन्न हो जायँगी। अतः यह कानून उनके लिये भी वाञ्छनीय नहीं है। श्रीमती दुर्गाबाईने पूछा—यदि किसी स्त्रीका पति

मुसलमान हो जाय, तो क्या वह स्त्री भी मुसलमान हो जाय? उत्तर—नहीं, यदि पति इस प्रकार पतित हो जाय तो स्त्रीको उसका अनुवर्तन करनेका शास्त्रीय विधान नहीं है, जैसा कहा भी है :—

'अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्'

(श्रीमद्भागवत् स्क० ७, ११, २८)

अर्थात् साध्वी स्त्री सावधान, पवित्र और प्रेममयी होकर अपने अपतित पतिकी सेवा करे। अतः ऐसी स्थितिमें स्त्रीको आत्मसंयमसे जीवन बिताना चाहिये, क्योंकि विवाह एक पवित्र संस्कार है और उसका एक उद्देश्य इन्द्रिय-संयम भी है, यह पहले ही कह चुकी हूँ। श्रीमती दुर्गाबाई-के इस आक्षेप कि मैं सीताका आदर्श मानना चाहती हूँ, द्रौपदीका नहीं, के उत्तरमें मैंने कहा कि, यह बड़े हर्षका विषय है कि, आप सीताका आदर्श मानना चाहती हैं, वस्तुतः सीता ही आदर्श हैं भी, किन्तु आपके स्मरण रखनेकी बात है कि, राम-रावण युद्धके पश्चात् जब सीता सबके सामने रामचन्द्रके पास लायी गयीं, तब रामचन्द्रने कितना निष्ठुर शब्दोंमें क्रुद्ध होकर कहा कि 'तुम इतने दिन रावणके घरमें रह चुकी हो, अतः अपने सतीत्वकी परीक्षा दो, तभी तुमको स्वीकार करूँगा।' आप लोगोंकी भाषाके अनुसार रामके इस अति-निष्ठुरतापूर्ण व्यवहारसे सीताको विवाह-विच्छेद करना चाहिये था, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसके विपरीत सीताने लक्ष्मणको चिता तैयार करनेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणने आज्ञा मिलते ही चिता तैयार कर दिया। भगवती सीताने इन शब्दोंमें शपथ करके धधकती चितामें प्रवेश किया :

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नसंगे।
यदि मम पतिभावो राघवादन्यपुंसि॥
तदिह दह ममाङ्गं पावक! पावनेदं।
सुकृतदुरितभाजां त्वं हि कर्मैकसाक्षी॥

इसका फलस्वरूप भगवती सीताको अग्निदेव नहीं जला सके, सीताको लेकर वे चितासे बाहर निकले, सो सभी जानते हैं। दूसरी बार जब एक धोबीके कहनेसे रामचन्द्रने गर्भिणी सीताका परित्याग कर दिया था, उसके बाद जब पुनः परीक्षा देनेकी बात रामने कही, तब भी भगवती सीताने इसी तरहकी शपथ ली और पृथ्वीमें प्रवेश किया। पृथ्वी माताने उन्हें अपने अंकमें ले लिया। महा-भागा सती सीताने रामके इतना निष्ठुर व्यवहार करनेपर भी आपकी तरह विवाह-विच्छेदकी कभी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की, इत्यादि। इस दिनके भाषणमें श्रीमती दुर्गाबाई तथा श्रीमती रेणुका रायके अन्यान्य आक्षेपोंका भी ऐसा युक्तियुक्त उत्तर दिया गया कि, वे निरुत्तर हो गयीं। शायद इसी कारण तीसरे दिन, जो कान्फरेन्सका अन्तिम दिन था, ता० २३-४-४० को हमें बोलनेका समय ही नहीं दिया गया। इस दिनके विचारणीय विषय "पिता-की सम्पत्तिमें पुत्रके समान कन्याका भी अधिकार स्त्रीधन तथा संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा" आदि थे। इस दिन प्रतिदिनकी अपेक्षा एक घण्टा पहले ही अर्थात् प्रातःकाल नौ बजेसे ही कान्फरेन्सकी कार्यवाही प्रारम्भ हुई। प्रारम्भसे लेकर मध्याह्न बारह बजे-तक बिलके समर्थक लोगोंको ही भाषण करने दिया गया, इनके भाषण पहले दिन भी इन विषयोंपर हो चुके थे। बारह बजनेके पश्चात् उक्त दोनों पण्डित महोदयोंको थोड़ा थोड़ा समय दिया गया।

जब एक बजनेमें केवल कुछ मिनट ही बचे थे, तब सभापति डा० अम्बेदकरने बड़ी रुखाई तथा दुःशीलताके साथ उक्त तीनों महत्वपूर्ण गम्भीर विषयोंपर मुझे केवल 'हाँ' या 'ना' कहकर सम्मति देनेको कहा। इस अन्यायपूर्ण अवैध व्यवहारपर मैंने आपत्ति की, परन्तु सभापतिने वही बात पुनः दुहरायी कि, आप हाँ या ना कह दीजिये। तब पण्डितवर श्री माधवाचार्यजीने मेरा समर्थन किया और सभापतिसे मुझे समय देनेको प्रार्थना की, किन्तु उसका भी कोई असर नहीं हुआ। सभापतिने उनकी प्रार्थना भी अस्वीकृत कर दी। सभापति डा० अम्बेदकरके इस अनुचित, अन्यायपूर्ण तथा अवैध व्यवहारके विरोधमें पण्डित माधवाचार्यने सभाका त्याग कर दिया, साथही इसी विरोधमें मैंने भी सभा का त्याग किया। पं० देवनायकाचार्यजीने भी हमारा साथ दिया। इस प्रकार इन्कारमल हिन्दूकोडबिल कान्फरेंस जो कान्फरेन्स नहीं किन्तु कान्फरेन्सका अभिनयमात्र था, समाप्त हुआ। प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूकी कोडबिलसम्बन्धी अन्तिम घोषणा जिसके अनुसार यह कान्फरेन्स बुलायी गयी थी, उसमें कहा गया था, कि इस बिलको पास करनेमें शीघ्रता नहीं की जायगी, अनुकूल तथा प्रतिकूल मतवालोंकी कान्फरेन्स बुलायी जायगी और अधिकसे अधिक सहमति प्राप्त करनेके बाद बिल पास होगा। इस घोषणाके अनुसार विरुद्ध मतवालोंको अधिक बुलाना चाहिये था, परन्तु इस कान्फरेन्समें बिलके समर्थक लोगोंको ही यथेष्ट संख्यामें बुलाया गया। विरोधी मतवालोंको बुलाया ही नहीं गया। दो तीन जिनको बुलाया गया, उनको अपने विचार प्रकट करनेका पर्याप्त समय ही नहीं दिया गया; और जितना भी उन्होंने अपना पक्ष रखा, उनके विरोधका कोई समाधान नहीं किया गया, न उनके तर्कों एवं युक्तियोंका कोई उत्तर दिया गया, न समझौतेका कोई भी प्रयत्न किया गया। इस तरह डा० अम्बेदकरद्वारा आयोजित हिन्दूकोड कान्फरेन्स सर्वथा असफल रहा; साथ ही पं० नेहरूजीको घोषणा असफल हुई।

विद्यादेवी

ता० १०-५-५०

तत्पश्चात् सर्वसम्मतिसे निम्नलिखित मन्तव्य स्वीकृत हुआ—

श्रीमती विद्यादेवीजी महोदयाद्वारा प्रस्तुत हिंदूकोड कान्फरेंस सम्बन्धी विवरण पढ़ा गया। सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि, हिंदूसंस्कृतिके रक्षार्थ श्रीदेवीजीके इस शुभ प्रयत्नके लिये उन्हें धन्यवाद दिया जाय। यह समिति भारत सरकारके कानूनी सदस्य श्रीभीमराव रामजी अम्बेदकरके अन्यायपूर्ण और अनियमित व्यवहारके लिये तीव्र निंदा करती है और ऐसे कानूनी मेम्बरमें अपना घोर अविश्वास प्रकट करती है।

श्री आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की यह प्रबंध समिति डा० अम्बेदकरके उस भाषणपर जो उन्होंने गत वैशाखकी पूर्णिमाको बुद्धजयंतीके अवसरपर दिल्लीको एक आयोजित सभामें दिया था और जिसमें हिंदूधर्मकी खिल्ली उड़ाई थी अपना अत्यंत क्षोभ और रोष प्रकट करती है। इस समितिको असह्य वेदना है कि, वे भारत सरकारके धर्मनिरपेक्ष राज्यमें हिंदूधर्मके विरुद्ध

इसप्रकार विष वमन करते हैं, जिससे साम्प्रदायिकताको प्रश्रय तथा प्रोत्साहन मिलता है। अतः यह समिति भारतसरकारसे साग्रह सादर अनुरोध करती है कि, ऐसे व्यक्तिको शीघ्रातिशीघ्र पदच्युत कर दिया जाये।

यह भी निश्चय हुआ कि, उक्त दोनों प्रस्तावोंकी प्रतिलिपियाँ डा० राजेन्द्रप्रसाद सभापति, प्रधानमंत्री, पं० जवाहरलाल नेहरू, उप-प्रधानमंत्री, सरदार वल्लभभाई पटेलके पास भेजी जाय तथा प्रकाशनार्थ समाचार-पत्रोंमें भी भेजी जाय।

सभापतिको धन्यवादके अनंतर आजकी सभा-कार्यवाही समाप्त हुई।

काशीमहिला-संघ

का

कार्य-विवरण

काशीमहिला-संघकी स्थापना चैत्र कृष्ण द्वितीया सं० २००६ में हुई थी जो अखिलभारतीय महिला-संघकी काशीमें स्थापित एक शाखा है।

भारतके गौरवमय अतीतकी सीता और सावित्रीके आदर्शपर स्त्री-समाजका पुनः संगठन करना उनके अन्दर उन्हें अपने दायित्वका बोध कराना—उन्हें आदर्श गृहिणी बनाना—उनकी मानसिक नैतिक तथा शारीरिक उन्नति करना इस संघके बहुतसे उपयोगी उद्देश्योंमें कुछ एक हैं।

काशीमहिलासंघके उद्देश्यों और नियमोंको माननेवाली स्त्रीमात्र इसकी सदस्या हो सकती हैं। इस तरह एक वर्षमें इसको ७४२ सदस्यायें हुईं जिनमें ७३२ साधारण तथा १० संरक्षक सदस्यायें हैं।

साधारण सदस्यताका शुल्क १) तथा संरक्षक सदस्याका १००) निश्चित किया गया और इस तरह १६२६) रु० साधारण सदस्याओंसे तथा ८०५) रु० संरक्षक सदस्याओंसे अर्थात संघको इस मध्य से कुल आय २४३१) रु० हुई। आय और व्यय का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

संक्षिप्त वार्षिक हिसाब

सं० २००६

आय		व्यय	
चन्दा संकलित हुआ	२४३१—०—०	डाकखर्चमें जिसमें साधारण पत्रोंके अतिरिक्त हिन्दूकोड बिलके विरोधमें २००० पोस्ट-कार्ड डाकद्वारा श्री जवाहर-लाल नेहरूको भेजे गये।	७६—१४—०
चन्दादाताओंके नाम समयपर न प्राप्त होनेसे हिसाब तलबमें जमा	४७५—०—०	हिसाबकिताब तथा कार्यालयका काम सँभालने वालेको	७०—०—०
(जून १, १९५० को विवरण मिल जानेसे हिसाब बराबर होगया)		फुटकर खर्च संघके लिये चटाई आदि तथा रिक्शा भाड़ा	३६—१४—०
		सहायता परिषद्के अन्नसत्र विभागमें	५१—०—०
		महावीरदलको महिलासंघके अधिवेशन खर्च मध्ये	१००—०—०
		स्टेशनरी तथा छपाई नियमावली फार्म चिट्ठोका कागज पोस्टकार्ड आदि	१७३—१५—६
कुलआय	२४३१—०—०	कुलखर्च	५१४—११—६
हिसाब तलबमें	४७५—०—०	शेष सेंट्रलबैंकमें जमा	२३१०—०—०
	२९०६—०—०	रोकड़ बाकी कोषाध्यक्षके पास	८१—४—६
			२९०६—०—०

मदनमोहन मेहरोत्रा
हिसाब लेखक

कृष्णाबाई
महामंत्रिणी

महिलासंघकी साधारण सभा प्रत्येक सप्ताह बुधवारको वर्षभरमें प्रायः ५० बार हुई। स्त्रियोंमें स्वत्वज्ञान तथा संगठनका भाव जाग्रत किया गया और इस प्रकार संघकी उत्तरोत्तर उन्नति हुई जिसका श्रेय श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की एक-मात्र संचालिका श्रीमती विद्यादेवीजीको है।

काशीमहिला-संघका वार्षिक चुनाव।

काशीमहिला-संघका एक विशेष अधिवेशन पूर्व सूचनाके अनुसार ता० २१ जून १९५० को तारकेश्वरके मन्दिरमें सन्ध्या पाँच बजे हुआ। सङ्घकी प्रायः सभी सदस्याएँ उपस्थित थीं। भगवन्नाम-कीर्तन तथा मंगलाचरणसे कार्य प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भमें उपाध्यक्षा श्रीमती सुन्दरीबाई एम. ए. बी. टी. ने सङ्घकी गतवर्षकी संक्षिप्त कार्यविवरणी पढ़कर सुनाया। अनन्तर अध्यक्षाने अपने प्रारम्भिक भाषणमें नये विधानके अनुसार महिलाओंका अधिकार, मतदाताओंका उत्तरदायित्व तथा मतों (वोट्स) के महत्त्व उपस्थित महिलाओंको समझाया तथा भारतके भाग्यविधान एवं भावी निर्माणमें स्त्रीसमाजके महान् उत्तरदायित्वपर प्रकाश डाला। इसके अनन्तर निर्वाचन-कार्य सम्पन्न हुआ। आगामी वर्षके लिये निम्नलिखित पदाधिकारिणियों तथा प्रबन्ध-समिति की सदस्याओंका निर्वाचन हुआ।

अध्यक्षा—श्रीमती विद्यादेवीजी

उपाध्यक्षायें—श्रीमती सुन्दरीबाई, श्रीमती तारादेवी,
श्रीमती गणपतबाई, श्रीमती अनारदेवी

महामन्त्रिणी—श्रीमती कृष्णाबाई

मन्त्रिणी—श्रीमती छोटीबाई

कोषाध्यक्षा—श्रीमती गोविन्दीबाई

सदस्याएँ :—

श्रीमती भगवानीबाई
श्रीमती चम्पाबाई
श्रीमती नानीबाई
श्रीमती रुक्मिणीबाई
श्रीमती गणपतिबाई अग्रवाल
श्रीमती बासन्तीबाई
श्रीमती आनन्दीबाई
श्रीमती फागीबाई
श्रीमती सोवाबाई

अन्तमें भगवन्नाम संकीर्तनके पश्चात् सभाकी कार्यवाही समाप्त हुई।

श्री आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्-
द्वारा संस्थापित तथा सञ्चालित

श्री आर्यमहिला-महाविद्यालय, इन्टरकालेज

प्राचीनकालसे काशी समग्र भारतकी विद्याका केन्द्र रही है और अब भी वह उत्तर प्रदेशमें शिक्षाके क्षेत्रमें सभी नगरोंसे आगे बढ़ी हुई है। ऐसे पुनीत स्थानमें नैतिकशिक्षा एवं अन्य व्यवहारिक शिक्षाके द्वारा कन्याओंको उत्तम गृहिणीत्व एवं मातृत्वकी शिक्षा देनेवाले एक भी विद्यालयका न होना हमारा एक राष्ट्रीय अभाव था। इसी अभावकी पूर्तिके उद्देश्यसे एक दाताके द्वारा ट्रस्ट बनाकर दान किये हुए एक विशाल उद्यान भवनमें महापरिषद्द्वारा आर्यमहिलामहाविद्यालयका संचालन होता है। इसका सम्पूर्ण प्रबन्ध प्रतिष्ठित महिलाओंके द्वारा ही हो रहा है और होगा। प्रत्येक कक्षामें पाठ्यक्रमके साथ स्त्री-उपयोगी कलाओंकी उत्तम शिक्षा दी जाती है। निर्धन श्रमशील छात्राओंको छात्री-सहायता-कोषसे यथायोग्य सहायता दी जाती है, शहरमें रहनेवाली लड़कियोंको घरसे लानेके लिये लारीका भी प्रबन्ध है। इस वर्षका परीक्षाफल हाईस्कूल तथा इन्टरमिडियटका ८० प्रतिशत हुआ। लड़कियोंके लिये छात्रावासमें रहनेका भी उत्तम प्रबन्ध है।

ग्रीष्मावकाशके बाद विद्यालय ८ जुलाईको खुल गया। जिन लड़कियोंको भरती होना हो, उन्हें प्रार्थना-पत्र मुख्य अध्यापिकाके नाम भेजना चाहिये। विद्यालयमें गान, वाद्यविद्या, सिलाई, गृहकार्य, भोजनआदि बनानेमें निपुणता, स्त्रियोपयोगी विषयोंकी शिक्षा आदिपर विशेष ध्यान दिया जाता है। बोर्डिङ्गमें धर्म-शिक्षा और धर्म-साधनका नियमित प्रबन्ध रक्खा गया है।

संचालिका-श्रीआर्यमहिला-महाविद्यालय, पिशाचमोचनतीर्थ, बनारस शहर।

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीखतक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिये। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायेगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापनदाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्नभाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
„ „ तीसरा पृष्ठ	२५)	„
„ „ चौथा पृष्ठ	३०)	„
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	„
„ १/२ पृष्ठ	१२)	„
„ १/४ पृष्ठ	८)	„

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

मुद्रक :—श्री कालाचाँद चटर्जी, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्की सचित्र मासिक मुखपत्रिका

आर्य-महिला

श्रावण सं २००७ | वर्ष ३२ संख्या ४ | जुलाई १९५०

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी. एम. ए., बी. टी.

कर मन प्रभुसे प्रीति ।

ऐसो समय बहुरि नहिं पैहो जैहैं अवसर बीत ।

तन सुन्दर छबि देख न भूलो यह बालूकी भीत ।

सुख-सम्पति सपनेकी बतियाँ जैसे तृणपर शीत ।

जाही करम परमपद पावे, सोई करम कर मीत ।

शरण आये सो सबहीं उबारे यही प्रभुकी रीति ।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो चलिहौ भयदल जीत ।

अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूल त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

श्रावण सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या ४ | जुलाई १९५०

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।

जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो निमक हरामी ॥

भरि भरि उदर विषय को धावौ जैसे सूकर ग्रामी ।

हरि-जन छाड़ि हरी विमुखन की निसि दिन करत गुलामी ॥

पापी कौन बड़ो है मो ते सब पतितन में नामी ।

'सूर' पतित को ठौर कहाँ है सुनिये श्रीपति स्वामी ॥

आत्मनिवेदन

लज्जास्पद कौन ?

हमारे सामने भारतीय महिला सम्मेलनकी मुख पत्रिका जूनमासकी "रोशनी" है, इसमें श्री उर्मिला "नारी का दुर्बलता या दुर्भाग्य !" शीर्षक लेखमें लिखती है—"हिन्दू नारीकी दुर्बलता कहिये या दुर्भाग्य—परन्तु ऐसी कोई चीज उसके साथ अवश्य जोड़ दी गयी है, जिसके कारण नारीके कीना जीवन हो गया है, वह कितनी ही सुन्दर हो, कितनी ही सुशील हो तथा सेवामयी हो ; फिर भी उसकी दासता अमर रही है।" तभी तो माँ और बेटी, सास-बहूतक परस्पर एक दूसरे की राय बनी हुई है और भरसक उक्त कानूनके विरोधमें प्रदर्शन करनेसे नहीं चुकती। यहाँकी असेम्बली भवनके सामने तो सत्याग्रह करने पहुँच गयी और भी अनेक प्रकारके अप्रिय और लज्जाजनक व्यवहार ऐसे कर डाले, जिनका उल्लेख करनेमें लज्जा आती है।" आगे चलकर और भी अनेक बातें उन्होंने लिख डाली हैं। जिसको पाण्डुरोग हो जाता है, उसे सबकुछ पीला-पीला ही दिखायी देता है, उसी प्रकार पाश्चात्य रंगमें रंगी श्री उर्मिला मेहताकी दशा हो रही है। इसी कारण अपनी जातीयता, अपनी प्राचीन पवित्र संस्कृति, अपना गौरव अपने पवित्र पातिव्रत्यधर्म और आत्मसम्मानकी रक्षाके लिये असेम्बली भवनके सामने हिन्दूकोडबिलके विरुद्ध प्रदर्शन करनेवाली आर्यदेवियोंके व्यवहारपर उनको लज्जा आती है। कैसी हास्यास्पद बात है ? वे पवित्र भारतभूमिमें हिन्दूपरिवारमें जन्म लेकर अपनी पवित्र संस्कृति और परम्पराको तिलाञ्जली दे अनार्य असंस्कृत पाश्चात्योंका उच्छिष्ट खाने एवं अन्धानुकरण कर हिन्दूकोडबिलके द्वारा तलाक विधवा-विवाह असवर्ण-विवाहकी माँग करती हैं, तब भी उनको अपने आपसे लज्जा नहीं आती, यह देख किस विचारशील व्यक्तिको आश्चर्य नहीं होगा ? भारतीय आर्यदेवियोंके सामने तो सती सीता, सावित्री, दमयन्ती, अनसूया, लोपामुद्राआदि महाभागाओंका उज्ज्वल आदर्श है, जिन्होंने अपने तप-त्याग, आत्मसंयम और पातिव्रत्यके प्रभावसे कालको भी अपने अधीन किया था, सबके शासक यमको भी अपने वशमें किया था। इनको अपना आदर्श माननेवाली हिन्दूदेवियाँ हिन्दूकोडबिलका समर्थन क्यों कर कर सकती हैं ? श्रीमती उर्मिला मेहताके सामने तो धनके लिये कुमारी कन्याओंसे वेश्यावृत्ति करानेवाली, नित्य नये नये पतियोंको वरण करनेवाली एवं केवल आर्थिक अधिकारके लिये पुरुषोंके साथ स्पर्धा करनेवाली पश्चिमी स्त्रियोंका आदर्श है। उनको अपनी भारतीय संस्कृतिका जो, संसारमें सबसे महान् तथा बेजोड़ है, उसका न ज्ञान है, न आत्मसम्मान है, न आत्मगौरव है, वे जिन स्त्रियोंका अन्धानुकरणमें ही अपना परम गौरव मानती हैं, उन्हीं देशोंके विद्वानोंने हिन्दूस्त्रियोंका निम्नलिखित चित्र चित्रण किया है—

"The person of a Hindu woman is sacred. She can not be touched in

public by a man even with the ends of the fingers. How abject soever may be her condition, she is never addressed by anybody, not excepting the persons of the highest rank, but under the respectful name of Mother."

(Father Abbe Dubois.)

हिन्दूजाति अपनी स्त्रियोंके शरीरको पवित्र मानती है। प्रकाश्य स्थानमें अङ्गुलियोंके अग्रभागसे भी कोई उन्हें स्पर्श नहीं कर सकता। कितनी ही हीन दशा उनकी क्यों न हो, बड़े बड़े आदमी भी उन्हें 'माता' कहकर ही सम्बोधन करते हैं।

(फादर अब्बे ड्यूबो)

"The ideal which the wife makes for herself, the manner in which she understands duty and life, contains the fate of the community. Her faith becomes the star of the conjugalship and her love the animating principle that fashions the future of all belonging to her. Woman is the salvation or destruction of the family. She carries the destinies in the folds of her mantle"

(Amiel)

स्त्री और माता अपने लिये जिसप्रकार आदर्शको रखती हैं, जिस तरहसे वे अपने जीवन और कर्त्तव्यको समझती हैं, उससे समग्र जातिका भाग्य निर्णय होता है। उनका विश्वास दाम्पत्यप्रेमका उज्ज्वल तारा है, उनका प्रेम उनके आत्मीयजनोंके जीवनमें प्राणशक्तिका सञ्चारक है। स्त्री ही गृहस्थ जीवनमें उद्धार या नाशकाका कारण है। गृहस्थके समग्र भाग्यको मानो वह अपने उत्तरीय वसनमें (ओढ़नीमें) बाँधे ही फिरती है। (एमियेल)

"Perfect daughters, wives and mothers, after the severely disciplined, self-sacrificing Hindu ideal, remaining modestly at home, as the proper share of their duties, unknown beyond their families, and seeking in the happiness of their husbands the amaranthene crown of a woman's truest glory."

(Sir George Birdwood in the Asiatic Quarterly Review)

त्यागमय, संयमपूर्ण हिन्दू आदर्शके अनुसार उनकी स्त्रियाँ आदर्श कन्या, आदर्श सती और आदर्श माता होती हैं। वे मर्यादा और शीलताके साथ गृहकार्यको करती हुई उसी अन्तःपुरमें प्रच्छन्न रहा करती हैं, सन्तानोंके सुखमें ही उनका सर्वोत्तम सुख है और पतिके प्रति पूजा तथा श्रद्धाभाव-प्रदर्शनमें ही उनकी चिर अमर महिमा है।

(सर जार्ज बर्डउड)

अब श्री उर्मिला स्वयं ही शान्ति एवं धैर्यसे सोचें कि, लज्जास्पद कौन हैं ?

अपने सम्राज्ञी पदको कदापि नहीं छोड़ें।

हिन्दूकोडबिलके समर्थक स्त्रियाँ तथा पुरुष स्त्रियोंके साथ बड़ी दया एवं सहानुभूति दिखाते हुए कहते हैं कि, हिन्दू स्त्रियोंपर बड़ा अत्याचार है, उनको पैरोंकी जूती बनाकर रखा जाता है, कन्याओंको दूधकी मक्खीकी तरह घरसे निकाल दिया जाता है,

विधवाओंको दासी बनाकर रखा जाता है, वे भरण-पोषणके लिये परतन्त्र रहती हैं इत्यादि। ऐसा कहने वालोंको या तो हिन्दूसंस्कृतिका ज्ञान नहीं है, या वे पश्चिमी सभ्यताके चाक-चिक्यमें ऐसे आत्म-विस्मृत हो गये हैं कि, उनको हिन्दूसंस्कृतिकी अमूल्य निधियाँ दिखायी नहीं देती हैं। वस्तुतः हिन्दूनारी हिन्दूपरिवारकी सम्राज्ञी है, जैसा श्रुति कहती है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव।
सम्राज्ञी श्वश्रवां भव॥
ननान्दरि सम्राज्ञी भव।
सम्राज्ञी अधि-देवृषु॥

यह मन्त्र विवाहके अनन्तर पढ़ा जाता है और वधूको आशीर्वाद दिया जाता है कि, "तुम अपने श्वशुर, सास, ननद, देवरआदि सबकी सम्राज्ञी बनो।" इसप्रकार विवाह कर कन्या अपने पतिगृहकी सम्राज्ञी बनाकर भेजी जाती है। अपनी प्रियपुत्रीको ऐसे घरमें दें, जहाँ वह सम्राज्ञी बन सके, पिता, माता, भाई अपनी शक्ति एवं धन ही केवल खर्च नहीं देते, अधिकन्तु ऋण लेकर भी व्यय कर देते हैं। आज भी ऐसे उदाहरण कम नहीं देखनेमें आते हैं।

सत्य तो यह है कि, भारतीय हिन्दूसंस्कृतिमें नारीका जो उच्चतम स्थान है, वह संसारमें अन्यत्र कहीं भी नहीं है। यहाँतो प्रत्येक अवस्थामें स्त्रीकी पूजा होती है। अब भी नवरात्रोंमें कुमारिओंकी विधिवत पूजा होती देखी जाती है। विशेष अवसरोंपर सौभाग्यवती नारियोंकी दुर्गारूपमें पूजाकी जाती है। हिन्दुविधवाओंको संन्यासिओंकी तरह पूज्या समझनेकी रीति है। भगवान् मनुने तो यहाँतक कहा है कि—

प्रजनार्थां महाभागा पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

अर्थात् सन्तानप्रसव करनेके कारण महाभाग्यवती पूजाके योग्य एवं गृहको उज्ज्वल करनेवाली स्त्री एवं लक्ष्मीमें कोई भी भेद नहीं है।

दक्षसंहितामें भी कहा है—
अनुकूला न वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियम्वदा।
आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी॥

जो स्त्री पतिके अनुकूल चलती है, कटुवचन नहीं बोलती, गृहकार्योंमें दक्षा है, पतिपरायणा तथा मधुरभाषिणी है, वह मानवी नहीं देवी है।

स्मरण रखना चाहिये कि, आर्यनारियोंके अलौकिक त्याग-तप, आत्मसंयम, पवित्रता सेवा-परायणता, कार्यकुशलता, मधुरताआदि स्वर्गीय गुणावलियोंके लिये ही वे सम्राज्ञी आदि महान् पद-पर प्रतिष्ठित हुई थी। वे अपने प्रेम, तप-त्याग तथा सेवा-परायणतामे सबकी सम्राज्ञी बन सकती है। अनार्यजुष्ट हिन्दूकोडबिलका समर्थन करनेवाली स्त्रियाँ तो कहींकी भी नहीं है। इस कारण आर्य-देवियाँ इनके बहकावेमें आकर अपने सम्राज्ञी पद-को कदापि न छोड़े।

आर्यसंस्कृतिमें गुरुपूजा

(लेखिका—श्रीमती विद्यादेवीजी)

भारतीय संस्कृतिमें गुरुका एक अलौकिक अद्वितीय स्थान है और गुरुदेवकी बड़ी महिमा है। आध्यात्मिक जगत्में गुरुका पद सबसे बड़ा एवं महान् माना गया है। इस समय उसका प्रचलित-रूप चाहे जैसा भी हो किन्तु उसका शास्त्रीय स्वरूप कुछ और ही है। इस समय तो समयके प्रभावसे सभी वस्तुका स्वरूप विकृत होकर कुछका कुछ हो गया है।

व्यवहारमें देखा जाता है, कि किसी लौकिक सामान्य विषयका ज्ञानभी बिना किसी जाननेवाले-की सहायतासे नहीं होता है। उदाहरणार्थ एक छोटे बालकको लीजिये। छोटा बालक जबसे बोलना सीखता है, तभीसे जो कुछ वह देखता-सुनता है, उसके सम्बन्धमें उसको जाननेकी इच्छा जाग्रत होती है। जितना अधिक बुद्धिमान् बालक होता है, उसकी जिज्ञासा भी उतनी तीव्र तथा सूक्ष्म हुआ करती है। अपनी माता, पिता, भ्राता तथा अन्य सम्बन्धियोंसे जो कुछ वह देखता-सुनता है, उसके सम्बन्धमें यह क्या है, वह ऐसा क्यों है, यह ऐसा कैसे होता है, इत्यादि नानाप्रकारके प्रश्न किया करता है और उन प्रश्नोंके उत्तरसे उसे सभी लौकिक विषयोंका क्रमशः ज्ञान प्राप्त होता जाता है। जब उसे विद्याध्ययनकी अवस्था प्राप्त होती है, तब उसे शिक्षककी आवश्यकता होती है। शिक्षककी सहायतासे ही उसको अक्षर ज्ञानसे लेकर नाना प्रकारके विषयोंका ज्ञान प्राप्त होता है। इसी नियमसे मनुष्यको सभी लौकिक विषयोंका प्रथम ज्ञान प्राप्त होता है। पीछे अनुभवद्वारा उसका प्रत्यक्षभी किया जाता है। जब लौकिक स्थूल जगत्की जानकारीके लिये शिक्षककी अपेक्षा होती है; तब अन्तर्जगत् एवं आत्मा-अनात्मा जैसे सूक्ष्म विषय जो इन्द्रियोंके गोचर ही नहीं हैं, उनको जाननेके लिये उन विषयोंके विशेषज्ञ पथदर्शककी आवश्यकता सर्ववादि-सम्मत और स्वाभाविक ही है।

अनेक जन्मोंके पुण्यकर्मोंसे अन्तःकरण जितना जितना परिमार्जित होकर शुद्ध होता है, उतना-उतना उसमें अन्तर्जगत् और आत्मा-अनात्माके विषयमें जाननेकी इच्छा जाग्रत होती है। वस्तुतः मनुष्यजीवनका सबसे बड़ा लाभ आत्मलाभ है, उसको न जानना सबसे बड़ी हानि है, यथा श्रुति—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। केनोपनिषद्।

अर्थात् यदि इस मानवशरीरमें ब्रह्मको जान लिया जाय तो सब प्रकार कल्याण है, यदि नहीं जाना जाय तो महान् विनाश है, इत्यादि। अतः जो मनुष्य दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर आत्माको प्राप्तिके लिये यत्नवान् नहीं होता, उसको शास्त्रोंने आत्मघाती कहा है। श्रीभगवान् भागवतमें कहते हैं—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं,
सर्वं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।

मायानुकूलेन नभस्वतेरितं,
पुमान् भवाब्धिं न तरेत स आत्महा ॥

अर्थात् यह मनुष्यशरीर अत्यन्त दुर्लभ है, संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह सुदृढ़ नौका है, गुरु इसके कर्णधार हैं, तथा अनुकूल वायुरूप मेरेद्वारा प्रेरित होकर यह नौका पार लग जाती है। ऐसा मनुष्य शरीर पाकर जो संसार-समुद्रसे पार नहीं होता, वह आत्मघाती है। और भी भागवतमें—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते,
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत् न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥

अर्थात यह मनुष्य-शरीर अनित्य होनेपर भी बहुजन्मोंके बाद मिलता है, अतः इस दुर्लभ मानव-शरीरको पाकर बुद्धिमानको चाहिये, कि जबतक मृत्यु इसे न घेर ले, तबतक शीघ्र ही अपने निः-श्रेयसप्राप्तिका उपाय कर ले, विषय तो सब योनियोंमें ही प्राप्त होते हैं।

वस्तुतः बात भी ऐसी ही है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ज्ञान और सुखेच्छा ये तीनों गुणोंकी स्वाभाविक छः वृत्तियाँ मनुष्य तथा मनुष्येतर सभी जीवोंमें समान हैं। मनुष्य तथा मनुष्येतर पशु, पक्षी तीर्यक् सभी योनियोंके जीवोंमें इन छः वृत्तियों-की क्रिया देखी जाती है। मनुष्य भोजन करता है, अन्य सभी देहधारी भोजन करते हैं, मनुष्य सोता है, अन्य सभी प्राणी सोते हैं। मनुष्यको भय लगता है, अन्य सभी देहधारियोंको भी अपने प्राणों तथा क्लेशका भय होता है। मनुष्य संतान उत्पन्न करता है, अन्य सभी शरीरधारी प्राणी संतान उत्पन्न करते ही हैं। अपने सुखदुःखका ज्ञान जैसा मनुष्योंको होता है, मनुष्येतर सब जीवोंको भी इस प्रकारका ज्ञान होता है। मनुष्यमें सुखकी चाह जैसी होती है, दूसरे प्राणियोंमें भी वैसी ही है; दुःख कोई भी नहीं चाहता है। इस प्रकार विचार कर देखा जाय तो इन चेष्टाओंमें मनुष्य एवं पशुआदि अन्य जीवोंमें कोई भी भेद नहीं है। अन्तर इतना अवश्य है कि, मनुष्ययोनिके पहलेकी योनियोंके जीव पूर्णावयव नहीं है, अतः वे अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार ही चेष्टा करते हैं, जैसे पशुओंमें व्याघ्र तथा सिंह मांसाहारी है, उसे घास खिलाया जाय तो कभी नहीं खायेगा। इसी प्रकार गाय बकरी आदि मांसाहारी नहीं हैं; इनको घासकी जगह मांस दिया जाय तो कभी नहीं खायेंगे। पशुआदि जीव केवल ऋतुके समय अपनी प्रकृतिके अनुसार केवल सृष्टि-विस्तारके लिये कामचेष्टा करते हैं, अन्य समय नहीं। इस कारण वे पापभागी नहीं होते हैं, न उनकी अवनति ही होती है। वे तो प्राकृतिक नियमके अनुसार उत्तरोत्तर ऊपरकी योनियोंमें उन्नति करते रहते हैं। इसप्रकार बिना रोक-टोक वे मनुष्ययोनिमें पहुँच जाते हैं। मनुष्ययोनिमें आते ही उनकी यह अबाधगति रुक जाती है, क्योंकि यहाँ अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँचों कोशोंका पूर्णविकाश हो जानेसे मनुष्य पूर्णावयव प्राणी बन जाता है। अतः वह अपने इन्द्रियोंसे मनमाना आहार-विहार करने लगता है, अपनी प्रकृतिपर बलात्कार कर अनियमित

असंयमित विषय सेवन करना प्रारम्भ कर देता है और इसप्रकार पापका सञ्चय करता है। फलतः प्रकृति उसे नीचे गिरा देती है। इसी प्राकृतिक नियमसे मनुष्य शुभकर्मोंके सञ्चयसे ऊपरके उच्च लोकोंमें भी जाता है और पापोंके कारण मनुष्य तथा देवयोनिसे भी पशु-पक्षी स्थावर तथा तिर्यक्-योनिमें भी चला जाता है। इसके अनेक उदाहरण पुराणोंमें मिलते हैं; जैसे कुवेरके पुत्र नलकुवर तथा मणिग्रीवका नारदके शापसे यमलार्जुनका वृक्ष बन जाना, जिसका उद्धार भगवान् कृष्णद्वारा हुआ था। राजा नहुषका ऋषियोंके शापसे सर्प बन जाना, इत्यादि। अतएव मानव शरीर पाकर यदि प्राणी केवल विषय-विषके सेवन तथा इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही अपने जीवनकी सार्थकता समझें तो यह कहना अतिशयोक्ति नहीं, कि वह पशुआदिसे भी निकृष्ट है। इसी कारण भगवान् आदि शंकराचार्यने भी कहा है—

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं
तथापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यः स्वात्ममुक्त्यै न यतेत मूढधीः
स आत्महा स्वं विनिहन्त्यसद् ग्रहात्॥

अर्थात् किसीप्रकार दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर उसमें भी पुरुष होकर एवं वेदादिशास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर भी जो आत्माकी मुक्तिके लिये यत्नवान् नहीं होता है, वह स्वयं अपनी हत्या करता है, अतः आत्मघाती है।

अतः मनुष्य जीवनका सबसे बड़ा महान् लाभ आत्मलाभ ही है, जैसा भगवान् कृष्णने भगवद्-गीतामें कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

अर्थात् जिसको पाकर दूसरे किसी लाभको उससे अधिक नहीं समझता है और जिसमें प्रतिष्ठित हो जानेपर अतिगुरुतर दुःखमें भी विचलित नहीं होता है। अतः ऐसा लाभ जिसे पाकर कुछ भी पाना अवशिष्ट नहीं रहे, सब कुछ पा लिया जाय और जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, वियोग, भयआदि सारे दुःखोंकी सदाके लिये समाप्ति हो जाय, ऐसा अद्भुत परमलाभ आत्म-लाभ, जिन आत्मदर्शी ब्रह्मनिष्ठ महापुरुषके द्वारा हो, उन्हींको शास्त्रोंने गुरु कहा है। बिना गुरुके उस परमतत्त्व आत्माका ज्ञान नहीं हो सकता है। श्री भगवद्गीतामें भगवानने कहा है—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

अर्थात् बारम्बार प्रणाम, प्रश्न एवं सेवाके द्वारा उसको जानो। प्रणाम एवं सेवासे प्रसन्न होकर तत्त्वदर्शी महापुरुष तुम्हे उस ज्ञानका उपदेश करेंगे। श्रीमद्भागवतमें भी भगवान्ने निज मुखसे कहा है—

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान्।
अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत॥
तावत् परिचरेद् भक्तः श्रद्धावान् अनसूयकः।
यावद् ब्रह्म विजानीत मामेव गुरुमादृतः॥

अर्थात् जिस धीर पुरुषको दुःखबहुल कामादि भोगोंसे वैराग्य हो गया हो, और मेरे धर्ममें जिज्ञासा नहीं हुई हो, वह किसी मुनिश्रेष्ठका गुरुरूपसे शरण ले और उन गुरुदेवको मेरा ही

स्वरूप समझकर बड़ी श्रद्धाभक्तिसे उनकी तबतक सेवा करता रहे, जबतक ब्रह्मको न जान ले।

और भी श्रुति कहती है—

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

मुण्डकोपनिषद्

अर्थात् कर्मसे प्राप्त होनेवाले लोकोंकी परीक्षा-कर ब्राह्मण वैराग्यको प्राप्त हो जाय। किये जाने-वाले सकाम कार्योंसे कर्मसे अतीत परमात्मा नहीं प्राप्त हो सकते हैं। अतः उसको जाननेके लिये वह हाथोंमें समिधा लेकर नम्रताके साथ गुरुके पास ही जाय। तात्पर्य यह है कि गुरुके सिवाय उसको जाननेका अन्य कोई उपाय नहीं है।

सांसारिक जितने प्रकारके सम्बन्ध हैं, उन सब-में माता-पिताका सम्बन्ध सबसे महान् है और उनकी महिमा सर्वोपरि है, परन्तु गुरुका स्थान तो इनसे भी महत्तम और इनकी महिमा लोकोत्तर है। इसका कारण स्पष्ट ही है, कि पिता-माता जन्म देते हैं, पालनपोषण एवं रक्षा करते हैं, सब प्रकार-के लौकिक सुखोंको देते हैं; परन्तु गुरुदेवकी कृपासे ऐसी वस्तु मिलती हैं, जिसको पा लेनेसे बारबार जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, ताप सारी दुःख-दरिद्रता सदाके लिये शांत हो जाती है। मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और उसको कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता, उसका कोई कर्तव्य ही अवशिष्ट रहता है। इसी कारण गुरुदेवकी इतनी महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है। यहाँतक कि गुरु और भगवान्में कोई भी भेद नहीं है; गुरु साक्षात् परमात्मा ही हैं। गुरुमें मनुष्यबुद्धि रखनेवाला नरकगामी होता है। श्रीभगवान्ने भागवतमें स्वयं कहा है—

"यदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम्"
"आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्"

अर्थात् गुरुको मेरा ही स्वरूप समझकर उपासना करे। आचार्य अर्थात् गुरुको मेरा ही रूप समझे, और कदापि उनकी अवज्ञा नहीं करे।

श्रुति भी कहती है—

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात् जिसकी भगवान्में परमभक्ति है, और जैसी भगवान्में है, वैसी ही भक्ति गुरुमें भी है, उसी महात्मामें उपनिषद्कथित तत्त्व प्रकाशित होते हैं।

इस प्रकार देखा जाता है, कि आर्यसंस्कृतिमें साक्षात परमात्माके स्वरूपमें गुरुकी पूजा होती है एवं गुरुपूजाका एकमात्र लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है।

हिन्दूकोडबिल और कांग्रेससरकार

(कुछदिन पूर्व डा० अम्बेदकरने मद्रासमें कहा था कि, पार्लामेन्टके अगले अधिवेशनमें हिन्दूकोड-बिल कानून बन जायगा। इस सम्बन्धसे अमृत-बाजारपत्रिकाके अनुभवी सम्पादकने ता० १५ जूनकी उक्त पत्रिकाके अग्रलेखमें जो अपना गम्भीर विचार प्रकट किया है, उससे हिन्दूकोड एवं नेहरू-सरकारके अनेक विषयोंपर प्रकाश पड़ता है, अतः उसका हिन्दी अनुवाद हम अपने पाठक-पाठिकाओं-के अध्ययनार्थ यहाँ ज्यों-का-त्यों प्रकाशित करती हैं —सम्पादिका)।

डा० अम्बेदकरने मद्रासमें कहा है कि हिन्दू-कोडबिल पार्लामेण्टके अगले अधिवेशन में कानून बन जायगा। जो इस बिलके विरोधी हैं जिनकी संख्या असंख्य है—ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण स्थानसे इसप्रकारकी घोषणा सुनकर अवाक् हो जायेंगे क्योंकि उन सबोंने अपनेको इस विश्वासमें भुला रक्खा था कि नेहरूसरकारको सद्बुद्धि आ जायगी और बिल सदाके लिये समाप्त कर दिया जायगा। अभी हालहीमें प्रधानमन्त्रीने अपने कुछ भाषणोंमें सम्मिलित उत्तरदायित्वकी चर्चा की है और कांग्रेस-के प्रति अपना विशेष उत्तरदायित्व बतलाया है। इण्डोनेशिया जानेके पूर्व ट्रिवेनड्रमकी एक सार्वजनिक सभामें उन्होंने कहा कि मैं सरकारमें इस मौलिक सिद्धान्तपर हूँ कि कांग्रेस संगठनने मुझे वहाँ बिठाया है। यदि कांग्रेसकी कार्यकारिणी अथवा अखिलभारतीय कांग्रेसकमेटी मुझसे कल बाहर चले आनेको कहे तो मुझे उसी समय बाहर आ गया समझिये। किंतु पं० नेहरूसे कांग्रेस-कार्यकारिणी अथवा अखिलभारतीय-कांग्रेस कमेटी कोई भी सरकारसे बाहर आनेको कहे इसकी लेश संभावना नहीं है। किन्तु अत्यन्त नम्रताके साथ यह पूछा जा सकता है कि कांग्रेसकी कार्य-कारिणी अथवा अखिलभारतीय कांग्रेसकमेटीने क्या हिन्दूकोडबिलका कभी भी समर्थन किया, अथवा पं० नेहरूको उसे आगे बढ़ानेका अधिकार सौंपा है?

क्या कांग्रेस हिन्दूकोडबिलपर चुनाव लड़नेमें तैयार है? कांग्रेसके सभापति श्री डा० पट्टाभी-सीतारमैय्या बिलके घोर विरोधी विख्यात हैं। श्री डा० राजेन्द्रप्रसादने जो इस समय भारतीय जनतन्त्रके सभापतिके महान् पदको शोभित कर रहे हैं, कहा है कि हिन्दूकोडबिलने जनसाधारणकी उस परिमाणमें स्वीकारोक्ति नहीं प्राप्ति की है जो सर-कारको उसे आगे बढ़ानेमें अधिकृत करे। श्रीराज-गोपालाचारी जिनकी बिलपर प्रदान की हुई सम्मति जनताका हरएक वर्ग सम्मानित करेगा अर्थपूर्ण ढङ्गसे विमौन हैं। कांग्रेसक्षेत्रमें भी हम बिलके सम्बन्धमें कोई प्रोत्साहन नहीं दृष्टिगत कर सके।

प्रत्युत पं० नेहरूकी इस घोषणाने कि, वे हिन्दू-कोडबिलको सरकारपर विश्वासका विषय बनायेंगे, कांग्रेससंसदोंमें आश्चर्य और किंकर्तव्यविमूढ़ताका भाव पैदा किया क्योंकि वे जानते हैं कि यदि बिल कानून बन गया तो ६ महीने बाद जब उनका निर्वाचकोंसे सामना होगा उन्हें बहुत कुछ उसकी

कैफियत देनी पड़ेगी। डा० राजेन्द्रप्रसादभी बिलकुल ठीक कहते हैं। बिलने जनसाधारणकी स्वीकृति नहीं प्राप्ति की है। लाखों मनुष्योंने तो इस बिलके सम्बन्धमें कुछ सुना तक नहीं, यद्यपि अपेक्षाकृत उनका जीवन इससे कम प्रभावित न होगा। समाचारपत्रोंके पत्रस्तंभोंपर एक दृष्टि डालनेसे यह प्रकट हो जायगा कि बिलके एक समर्थकके विरुद्ध इसके दस विरोधी हैं।

किन्तु प्रधानमंत्री तो इसपर जी-जानसे लगे हैं और डा० अम्बेदकर जो हिन्दूधर्म और संस्कृतिके अटल शत्रु हैं इस बिलको एक अमोघ अस्त्र समझते हैं जिसके द्वारा हिन्दू रीति और परम्परा पर जिससे हिन्दूसंस्कृति बनी है घातक प्रहार किया जा सके। इन दोनोंको किसी प्रकार रास्तेपर नहीं लाया जा सकता। डा० अम्बेदकर तो हिन्दू-समाजसे अलग हो गये हैं। फिरभी वे हिन्दू-विचारोंको चैनसे नहीं रहने देते।

जैसा हम इन स्तम्भोंमें पहलेही प्रकट कर चुके हैं कि असाधारण सभामें हुये विवादके फलस्वरूप बिलमें कोई विशेष संशोधन नहीं हुआ।

बिलकी सबसे अधिक विवादग्रस्त धारा उत्तराधिकारसे सम्बन्ध रखती है।

ऐसा सुना गया है कि, एक सदस्यने उक्तअनियमित हिंदूकोड सभामें यह प्रस्ताव रक्खा कि कुमारी अपने पिताके परिवारमें हिस्सेदार हो किन्तु विवाहित कन्याको उसमें कुछभी न मिले प्रत्युत वह अपने पतिके परिवारमें पत्नीके नाते पूर्णरूपसे हिस्सेदार हो और वही भाग प्राप्त करे जो उसका पति या पुत्र पानेका अधिकारी है। हमें यह भी मालूम हुआ कि उक्त प्रस्ताव नितान्त अव्यवहारिक जान पड़ा क्योंकि इससे कानूनमें बहुत बड़ी उलझन उत्पन्न हो जायेगी। किन्तु क्या पुत्रीका (कुमारी या विवाहित) पिताकी सम्पत्तिमें अधिकारिणी होना कानूनमें उलझन नहीं उत्पन्न कर देगी अथवा क्या हिन्दू परिवारमें असीम कटुता नहीं पैदा करेगी?

ऐसा जान पड़ता है कि अनियमित सभाने उत्तराधिकार सम्बन्धी धाराओंको बिलकुल अछूता ही छोड़ रक्खा। हमें यह भी मालूम हुआ है कि असाधारण सभामें घोर कट्टरपंथियोंके अतिरिक्त एक विवाहकी प्रथाके चालू करनेके पक्षमें बहुमत था। यदि एकविवाह-प्रथा हिन्दुओंके लिये हितकर है तो हमें पूर्ण विश्वास है कि वह मुसलमानोंके लिये भी कल्याण-जनक होगी। फिर वह सरकार जो अपनेको उच्चस्वरसे धर्मनिरपेक्ष घोषित करती है, एकविवाह-प्रथाको लादनेके लिये केवल एकही सम्प्रदाय क्यों चुना है? हमारे प्रधानमंत्री इण्डोनेशियामें भी धर्मनिरपेक्ष शासनका ढोलशाला कर रहे हैं। हिंन्दूकोड-बिल हमारी सम्मतिमें धर्मनिरपेक्ष शासनकी जड़ पर सीधे कुठाराघात करता है।

होचियों सरकारने अभी हालमें अपने ६ निर्णय प्रचारित किये हैं जो बुद्ध, ईसाई और मुसलमान सम्प्रदायोंपर बराबर लागू हैं। चानकी कम्यूनिस्ट सरकारने बहुपत्नी-प्रथा तथा वेश्यागमनका एक आज्ञा प्रचारित करके अवरोध किया है जो सभी सम्प्रदायों पर एकसी लागू है। हमारी सरकार धर्मनिरपेक्षताकी बातें तो बड़े ऊँचे स्वरसे

करती है किंतु सामाजिक सुधारके अपने मनचाहे विचार केवल एकही सम्प्रदायके लिये सुरक्षित रखली है। यदि नेहरू सरकारमें एकविवाह-प्रथा समस्त सम्प्रदायोंपर चालू करनेका साहस न हो तो उन्हें हिन्दूकोडबिलका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। धर्मनिरपेक्षिता तथा धार्मिक पक्ष-पात एक साथ नहीं चल सकते।

दरद

फिर न जगाओ सिहर उठेगा
पका हुआ है हृदय घावसे।
सूख गया सब स्रोत सरस हा
घड़ी घड़ी के अश्रु-स्रावसे॥
भरते भरते आह निरन्तर
नरम कलेजा गया चटक-सा।
दरद बिचारा कहीं सिमटकर
सोता है अब अलस भावसे॥

पंखुड़ियाँ

छू मत देना बिखर जायेंगी
ये सूखी पंखुड़ियाँ।
जब तब उनमें लख लेता हूँ
अपनी ओझल घड़ियाँ॥
कितने पैने शूलोंसे हा
बिंध बिंध इनका जीवन।
रूप-गन्ध-रस हीन हुआ अब
टूटी सब मृदु कड़ियाँ॥

मोहन वैरागी

कर्ममीमांसादर्शन ।

[गताङ्कसे आगे]

और भी कहा जाता है—

इस कारण तीनों आकाशके साथ उसका सम्बन्ध है ॥६३॥

पिण्डके आकाशको चित्ताकाश, ब्रह्माण्डके आकाशको चिदाकाश और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके आधारभूत आकाशको महाकाश कहते हैं। जीव जब पञ्चकोषकी पूर्णतासे पूर्णावयव हो जाता है और उसमें सुसंस्कार-संग्रहका पूर्ण अधिकार हो जाता है, तो स्वतः ही त्रिविध आकाशसे उसका सम्बन्ध हो जाता है। यही कारण है कि, योग-युक्त अन्तःकरण व्यापकताको धारण करता है और यही कारण है कि, एक पिण्डसे दूसरे पिण्डका हाल और एक लोकसे लोकान्तरका हाल जान सकता है। योगिराजकी तो बात ही क्या, समाहित अन्तःकरण-की सहायतासे श्राद्ध-क्रियाद्वारा लोकान्तरमें जीवकी तृप्ति होती है और उपासक अपने उपासनालोकमें अपने इष्टदेवके साथ सम्बन्ध स्थापन कर सकता है। उसी प्रकार योगयुक्त ज्योतिष-शास्त्रवेत्ताओंने अपने ब्रह्माण्डसे अतिरिक्त अनेक नक्षत्र और राशिआदिका पता लगाकर उसका आविष्कार किया था, ये सब त्रिविध आकाशके साथ सम्बन्ध-स्थापनके साधारण उदाहरण हैं ॥६३॥

और भी कहा जाता है—

इस कारण शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शका अधिकारी है ॥ ६४ ॥

मनुष्यके पूर्णावयव होकर विशेष अधिकार प्राप्त करनेका उदाहरण पूज्यपाद महर्षि सूत्रकार दे रहे हैं। मनुष्यपिण्ड जब पञ्चकोषकी पूर्णतासे पूर्णावयव हो जाता है, उसी पूर्णावयव होनेके कारण पञ्चकोषके विभिन्न-विभिन्न अधिकारोंके साथ उसमें शुद्धिप्राप्ति और अशुद्धिप्राप्ति एवं स्पर्शास्पर्शसे शुभाशुभप्राप्तिका अधिकार हो जाता है। इन पाँचों कोषोंमें शुद्धाशुद्ध और स्पर्शा-स्पर्शका अच्छा और बुरा परिणाम हुआ करता है। अन्नमयकोषके बुरे परिणामको दर्शनशास्त्रमें मल कहते हैं। प्राणमयकोषके बुरे परिणामको विकार कहते हैं। मनोमयकोषके बुरे परिणामको विक्षेप कहते हैं। विज्ञानमयकोषके बुरे परिणामको आवरण कहते हैं और आनन्दमय-कोषके बुरे परिणामको अस्मिता कहते हैं। जब जीवमें पूर्णता होती है, तो पाँचों कोषमें अच्छा और बुरा परिणाम होने लगता है। शुद्धिसे अच्छा परिणाम होता है और अशुद्धिसे बुरा परिणाम होता है। इस जीव-की पूर्णावयवकी दशामें स्वाभाविक रूपसे उसमें जड़ताकी कमी होने और चेतनताका अधिकार बढ़ जानेसे उसके पाँचों कोषही विशेष शक्ति-सम्पन्न हो जाते हैं। तब नानाप्रकारसे पूर्णावयव जीवरूपी मनुष्य स्पर्शके दोष-गुण और शुद्धाशुद्धके अधिकार अलग-अलग रूपसे पञ्चकोषोंके द्वारा संग्रह करनेमें समर्थ होता है। यही कारण है कि, पूर्णज्ञानमय वेद और वेदसम्मत शास्त्रसमूह शुद्धा-शुद्ध विवेक और स्पर्शास्पर्श-विवेककी आज्ञा हाथ उठाकर देते हैं ॥ ६४ ॥

त्रिविधाऽऽकाशसम्बन्धश्च ॥६३॥ शुद्धाशुद्धस्पर्शास्पर्शाधिकारि ॥ ६४ ॥

प्रथम प्रमाण देते हैं—

विण्मूत्रादिसे प्रथम ॥६५॥

शुद्धाशुद्ध-विचार और स्पर्शास्पर्श-विचार अन्नमयकोषकी प्रधानतासे कैसे हो सकता है, उसके लिये एक उदाहरणसे औदाहरणका रहस्य समझाया जाता है। विष्ठा-मूत्रादिके सम्बन्धसे स्थूलशरीरका अशुद्ध होना और स्थूल शरीरमें स्पर्श-दोषका पहुँचना जैसे सम्भव है, वैसे जल-मृत्तिका आदि द्वारा उस स्पर्शदोष और अशुद्धताका नाश होना भी सिद्ध है। इस प्रकारसे अन्नमयकोषके स्पर्शास्पर्श और शुद्धाशुद्धका रहस्य समझना उचित है। वेद और शास्त्रोंमें शुद्धाशुद्ध विवेक और स्पर्शास्पर्श-विवेकका जो बहुधा वर्णन है, वह सभी अन्नमयकोष अर्थात् स्थूलशरीरके सम्बन्धसे नहीं है। जिन जिन शुद्ध पदार्थोंका इसप्रकारका सम्बन्ध स्थूलशरीरके सम्बन्धसे हो सकता है, उसके विज्ञानका दिग्दर्शन इस उदाहरणसे कराया गया है। मल अन्नमयकोषके बुरे परिणामको कहते हैं, यह दार्शनिक शब्द मल उस बुरी शक्तिको कहते हैं जो शरीरमें जड़ता और तमोगुणको बढ़ाती है। अशुद्ध पदार्थोंके छूने और लग जानेसे शरीरमें मलशक्ति बढ़ जाती है और शुद्धिसे मलशक्ति घट जाती है। इसी प्रसंगमें इतना कहना आवश्यकीय है कि, शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेकके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें जितना विचार किया है, उसके मूलमें त्रिगुणविचार और अधिदैवविचारका बड़ा सम्बन्ध रक्खा गया है। अधिदैवविचारका उदाहरण गङ्गाजल आदि समझना उचित है और गुणविचारका उदाहरण मधु, पलाण्डु, गोमूत्र, गोमय आदि समझने योग्य है। मधु हिंसासे प्राप्त होनेपर भी सत्त्वगुण वर्धक होनेसे पवित्र माना गया है। उसीप्रकार पलाण्डु मूल होनेपर भी तमोगुणवर्धक होनेसे अपवित्र माना गया है। इसीप्रकार गोमय आदि गौका मलमूत्र होनेपर भी इसके सत्त्वगुणके प्रभवासे वह सर्वथा पवित्र माना गया है। इस प्रकारसे पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षिगणने दैवराज्यके सम्बन्धको देखकर और सत्त्व-रज-तम इन तीनों गुणोंको देखकर दार्शनिक दृष्टिसे शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेकका मौलिकसिद्धान्त निश्चय किया है। वह सिद्धान्तसमूह काल्पनिक नहीं है, गम्भीर दार्शनिक भित्तिपर स्थित है ॥ ६५ ॥

दूसरा प्रमाण दिया जाता है—

शवादिस्पर्शसे द्वितीय ॥ ६६ ॥

शवआदि स्पर्शके द्वारा जो स्पर्शदोष और अशुद्धता शास्त्रोंमें कही गयी है, वह साक्षात्रूपसे प्राणमयकोषके सम्बन्धसे कही गयी है। उसीप्रकार शवादिस्पर्शके अनन्तर धातु और अग्नि-स्पर्श द्वारा उस दोषका हान कहा गया है, सो भी उसी प्राणमयकोषके सम्बन्धसे निर्णीत हुआ है। जीव जब लोकान्तरको जाता है, तो प्राणमयकोष ही अन्य कोषोंको लेकर निकल जाता है। उस अवस्थामें शवमेंसे प्राणशक्तिका एकबारही अभाव हो जाता है। इस कारण प्राणरहित शव दूसरे व्यक्तिके प्राणमयकोषकी शक्ति-विशेषको खैंच लेनेका यथा देश-काल-पात्र-सामर्थ्य प्राप्त करता है। ऐसी दशामें शवके स्पर्श-

विण्मूत्रादिभिः प्रथमः ॥ ६५ ॥

शवादिभिर्द्वितीयः ॥ ६६ ॥

कारी व्यक्तिकी रूपान्तरसे प्राणशक्तिके क्षयकी सम्भावना हो सकती है। उसीके बचावके लिये शास्त्रोंमें शवके स्पर्श करनेसे स्पर्शदोष और अशुद्धताका उल्लेख है। इसी कारणसे स्वजातिद्वारा शव-वहनकी विधि है और इसीकारण शव-स्पर्शके अनन्तर नानाप्रकारसे पवित्र होनेकी विधि है। प्राणमयकोषके सम्बन्धका ही कारण है कि, राजरोगीके शवको प्रायश्चित्तादि द्वारा संस्कृत करके वहन करनेकी विधि भी पाई जाती है। पुराणोंमें इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि महाशक्तिशाली पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके प्राणहीन विग्रह-को स्पर्श करते ही भक्त अर्जुनकी सब शक्ति उस शवमें खिंच गयी थी। इसी उदाहरणसे औदाहरण समझना उचित है कि, बहुतसे शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक प्रधानतः प्राणमयकोषके सम्बन्धसे निश्चित किये गये हैं। दूसरी ओर बहुत-से शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेक अवस्थान्तर होनेसे कई कोषोंके साथ साक्षात्सम्बन्धयुक्त हो जाते हैं। विज्ञानको स्पष्ट करनेके लिये एक उदा-हरण दिया जाता है। अन्नादि खाद्यपदार्थका शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक अव-स्थान्तरसे मनोमयकोष और विज्ञानमयकोषसे भी सम्बन्धयुक्त माने जाते हैं; परन्तु प्राणमयकोष-के साथ भी उसका सम्बन्ध है। सुवर्ण, रौप्य, कांसा, मृत्तिका आदिका शुद्धाशुद्ध विवेक भी इसी प्राणविज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। म्लेच्छादि और अन्त्यजादिके स्पर्शसे दूषित अन्न अपना फल प्राणमयकोषमें प्रथम प्रारम्भ करता है। स्पर्शकारीके प्राणकी आकर्षण-विकर्षण शक्ति अन्नको दूषित कर देती है और वह अन्न उदरस्थ होनेपर वही शक्ति ग्रहणकारीके प्राणको दूषित करती है। वही अन्न यदि पापीका हो तो मनोमयकोषको दूषित करके वीर्य्यमें पहुँचकर शुद्धसृष्टिका बाधक होता है; क्योंकि मन, वायु और वीर्य, तीनोंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। उसी अन्नदोषके विषयमें पितामह भीष्मने प्रमाण करके दिखाया था कि, आसुरी सम्पत्तिके व्यक्तिका अन्नग्रहण करनेसे विज्ञानमयकोष तक मलिन हो जाता है। यही कारण था कि पौत्रवधूको सभामें घृणितरूपसे लाञ्छित होते देखकर भी वे मौन रहे। इससे स्पष्ट हुआ कि, अन्नदोषसे विज्ञानमयकोषतक मलिन होकर बुद्धितकमें विकार उत्पन्न हो सकता है। प्राणमयकोषके सम्बन्धसे शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्श विवेककी व्यवस्था अधिक व्यापक है। उपासनाके दिव्यदेशसमूहमें उपासना-पीठके सम्बन्धसे जो स्पर्शास्पर्श और शुद्धाशुद्ध-विचार वर्णाश्रमशृङ्खलामें माना गया है, वह सब प्राणमय-कोषके सम्बन्धसे ही माना गया है। सब देव-मन्दिरोंमें आर्य्य, अनार्य्य उन्नत और अवनत वर्ण-के मनुष्यके समानरूपसे प्रवेश नहीं करनेका जो सिद्धान्त है, वह भी प्राणमयकोषके सम्बन्धसे ही है। शूद्र-प्रतिष्ठित दिव्य देवमूर्त्ति आदिको ब्राह्मणके लिये प्रणाम करनेका जो निषेध है, सन्यासीके लिये प्रत्येक पीठको केवल स्पर्श करनेकी जो विधि पाई जाती है, उसका कारण भी यही विज्ञान है। शूद्र-द्वारा प्रतिष्ठित देवविग्रह पीठादिमें शूद्रसंस्कार-शक्ति अवश्य निहित रहती है। प्रत्येक देवस्थानमें प्रस्तरादि निर्मित मूर्त्तिकी पूजा नहीं होती, उसमें प्राणमयकोषद्वारा स्थापित देवपीठकी पूजा होती है। वह देवपीठ शूद्र अन्तःकरणके संस्कारसे संस्कृत हो

तो उसको यदि शुद्ध ब्राह्मण प्रणाम करे, तो ब्राह्मण-की क्षति नहीं है, उस देवपीठकी प्राणशक्तिकी क्षति होगी। इसी उदाहरणसे अन्य औदाहरणसमूह समझना उचित है। यही कारण है कि, भगवान्‌की पूजामें सबका अधिकार होनेपर भी देवमन्दिर-प्रवेश आदिमें ब्राह्मणादि जातिभेद, उपासना-सम्प्रदाय-भेद और स्पर्शास्पर्श-विचारभेद माना गया है। जब किसी पीठमें प्राणप्रतिष्ठा की जाती है, तो देवताको उपासक पहले अपने शरीरमें लाकर तब पीठमें उनका स्थापन करता है। इस कारणसे भी पीठमें स्थापनकर्त्ताका संस्कार आदि विद्यमान रहता है। अतः जिस पीठमें स्पर्शास्पर्शकी जैसी मर्यादा है उसमें हानि पहुँचनेसे उस पीठकी शक्ति-में हानि हो जाती है। यही कारण है कि देव-मन्दिरोंमें स्पर्शास्पर्शविवेक अधिक रखा गया है। इस प्रकारसे वर्णाश्रमश्रृङ्खला-मूलक शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्श-विवेकका अधिकार और उसका विज्ञान अति गम्भीररहस्यपूर्ण है ॥ ६६ ॥

अब तीसरा प्रमाण दिया जाता है।

अशौचादिसे तृतीय ॥ ६७ ॥

ग्रहणाशौच, जननाशौच, मरणाशौच आदि तथा उसका शुद्धिविचार सब मनोमयकोषसे साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाले हैं, जिसके विज्ञानका मनन करने पर मनोमयकोषके साथ सम्बन्ध रखनेवाला शुद्धाशुद्ध-विज्ञान सरल हो जाता है। सूर्य्यके साथ पृथ्वीका और चन्द्रके साथ पृथ्वीका जो आकर्षण-विकर्षण-शक्तिका सम्बन्ध है, उनसे ज्योतिः तथा प्राणशक्ति आदिका जो सम्बन्ध है, उसको जड़पदार्थवादी भी स्वीकार करते हैं। और दैवीशक्तिको माननेवाले आस्तिक जन तो बहुत कुछ मानते हैं। सूर्य्य-ग्रहणके समय चन्द्रमाके बीचमें आ जानेसे और चन्द्रग्रहणके समय पृथ्वीके मध्यमें आ जानेसे उस स्वाभाविक शक्तिके आने-जानेमें उस समयके लिये पूर्ण बाधा आ जाती है। ऐसे दैवदुर्विपाकके समय इसलोकवासियोंके अन्तः-करणमें बड़ा भारी परिणाम होना स्वभावसिद्ध है। इस परिणामके द्वारा स्पर्शास्पर्श-विवेक और शुद्धाशुद्धिविवेकका शास्त्रानुसार विचार भी विज्ञानानुमोदित है। उसीप्रकार जननाशौच और मरणाशौचका विज्ञान भी अतिरहस्यसे पूर्ण है। वर्णाश्रमश्रृङ्खलाके अनुसार जिस कुलका रजोवीर्य शुद्ध है, उसकी तो बात ही क्या है, क्योंकि उसके साथ नित्यपितरोंका बहुत कुछ प्रतिभाव्य स्थापित हो जाता है; साधारण कुलोंमें भी उस कुलकी परलोकगामी आत्माएँ और उस कुलमें आनेवाली आत्माएँ वासना-जालसे उस कुलके साथ विजड़ित रहती हैं। उस वासना-जालके कारण और मोह-सम्बन्धसे आकर्षण और विकर्षणशक्तिके कारण नित्यपितरोंकी प्रेरणासे उस कुलके सब व्यक्तियोंके चित्तपर संयोग-वियोगका प्रभाव पड़ता है। इसमें अधिदैव कारण रहनेसे यह प्रभाव अलक्षित-रूपसे ही पड़ता है। इसी प्रभावके विचारसे जननाशौच और मरणाशौचका शुद्धाशुद्धि-विवेक निर्णीत हुआ है। इन शुद्धाशुद्धि और स्पर्शास्पर्श-विवेकोंके साथ जप-दानादि विधि और ब्रह्मचर्यव्रत आदिका जो सम्बन्ध रक्खा गया है, उसका भी यही कारण है ॥ ६७ ॥

अशौचादिभिस्तृतीयः ॥ ६७ ॥

अब चौथा प्रमाण दिया जाता है—

संसर्गादिसे चतुर्थ ॥ ६८ ॥

संसर्गसे जो सत् असत् प्रभाव पड़ता है, वह साक्षात्‌रूपसे विज्ञानमयकोषपर पड़ता है। इसी कारण वेद और वेदसम्मत शास्त्रोंमें संसर्गसम्बन्धीय स्पर्शास्पर्श और शुद्धाशुद्ध-विवेक इसी विज्ञानपर निश्चित किया है। ईश्वरको न माननेवाले नास्तिकके गृहमें नहीं जाना, उसका संसर्ग नहीं करना, आचारहीन अनार्य मनुष्य और इन्द्रिय-सेवा-परायण म्लेच्छादि तथा दुराचारी और वेश्या आदिके ससर्गका निषेध जो शास्त्रोंमें कहा है और उनका प्रायश्चित्तादिका जो विधान किया है, उसी-प्रकार तीर्थ-दर्शन, देव-दर्शन, साधु-दर्शन और शुद्ध तथा पुण्यात्मा-संसर्ग आदिकी जो महिमा शास्त्रोंमें कही गयी है, सो इसी विज्ञानसे अनुमोदित है। इस प्रकारके अशुभ और शुभ संसर्गके द्वारा एकाधारमें प्राणमयकोष, मनोमयकोष और विज्ञानमयकोष प्रभावित हो जाता है। उनके निकटस्थ वातावरणसे और उस वातावरणकी आकर्षण-विकर्षणशक्तिसे प्राणमयकोष प्रभावित होता है। उनके हाव-भाव, आचार-विचारादिका प्रभाव मनोमयकोषपर पड़ता है और उनके कथनोपकथन और भाव आदिका प्रभाव विज्ञानमयकोषको प्रभावित करता है। इसी कारण संसर्गदोष और संसर्गगुणजनित शुद्धाशुद्धि और स्पर्शास्पर्श-विवेककी आज्ञा और उसका प्रायश्चित्तादि शास्त्रोंमें वर्णित है। इसी प्रकारसे इसी गम्भीर दार्शनिक युक्तिको अवलम्बन करके ईश्वरनिन्दक व्यक्तियोंके स्थानमें और इन्द्रिय-परायण म्लेच्छ आदिकी वासभूमिमें जानेका निषेध शास्त्रमें किया गया है। इसप्रकारसे वर्णाश्रम-शृंखलाके अनुसार अनेक शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्श-विवेक विज्ञानमयकोषमें कार्यकारी होनेसे माने गये हैं। वेद और शास्त्रोंमें शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्श-निर्णयके विवेक-सिद्धांत जो आर्य्यजातिके अभ्युदय और निःश्रेयसके लक्ष्यसे किये गये हैं, वे सब इसीप्रकार पञ्चकोषपर पड़नेवाली सूक्ष्मशक्तियोंको योगदृष्टिसे अलौकिक प्रत्यक्ष करके पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने निर्णय किये हैं। वे सब सिद्धान्त गभीर विज्ञानानुमोदित हैं और लौकिक बुद्धिसे समझे न जानेपर भी उपेक्षा करने योग्य नहीं हैं॥ ६८ ॥

अब पाँचवाँ प्रमाण दिया जाता है—

सदसत्‌के द्वारा पाँचवाँ ॥ ६९ ॥

शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेक वर्णाश्रम-शृङ्खलाका मौलिक सिद्धान्त है। जीवका अभ्युदय और निःश्रेयस उसका लक्ष्य है और मनुष्यमें अस्वाभाविक संस्कारका ह्रास करके स्वाभाविक संस्कारका अधिकारवृद्धि करना उसका रहस्य है। पहले पादोंमें यह सिद्ध हो चुका है कि जीव धर्म-साधन द्वारा पहली अवस्थामें अभ्युदय और अन्तिम अवस्थामें निःश्रेयस प्राप्त करके कृतकृत्य होता है। पहले यह भी सिद्ध हो चुका है कि, वर्णाश्रमधर्मके आचारोंके पालन द्वारा आर्यजातिमें स्वतःही प्रवृत्तिका निरोध और निवृत्तिका पोषण

होता हुआ जितना ही उसमें जीव-बन्धनकारी अस्वाभाविक संस्कारका ह्रास और एक अद्वितीय स्वाभाविक संस्कारकी अभिवृद्धि होती जाती है, उतना ही वह मुक्तिकी ओर अग्रसर होता जाता है। मनुष्यके अभ्युदय और निःश्रेयसके मार्गको सरल रखनेके लिये शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेक एक अत्युत्तम शृङ्खला है और यह भी सिद्ध हो चुका है कि, किस प्रकार पञ्चकोषोंकी शुद्धिकी रक्षा द्वारा यथाक्रम मल, विकार, विक्षेप, आवरण और अस्मिता ये पाँचों बढ़ने नहीं पाते हैं। जिन-जिन क्रियाओंसे अशुद्धता होकर आत्माका आवरण बढ़ता जाता हो, जिनके स्पर्शद्वारा वह आवरण घनीभूत हो वह क्रिया सर्वथा विचारपूर्वक अभ्युदय और निःश्रेयस प्रार्थीके लिये त्याज्य है। यह क्रिया स्थूलशरीरसे लेकर सूक्ष्मशरीर और कारणशरीरपर्य्यन्त प्रभाव उत्पन्न करती है। अतः शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेकका रहस्य यही है कि, पूर्वकथित मल, विकार, विक्षेप, आवरण और अस्मिता बढ़ने न पावे। शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेककी शुद्ध और अशुद्ध क्रिया पूर्णावयव जीवरूपी मनुष्यके अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष और विज्ञानमयकोषपर कैसा प्रभाव उत्पन्न करती है, उसका सामान्य दिग्दर्शन पहले सूत्रोंमें आ चुका है। अब इस सूत्रमें आनन्दमयकोषपर साक्षातरूपसे कैसी क्रियाओंका प्रभाव पड़ता है, सो कहा जाता है। सत् ब्रह्म और असत् माया है, सत् आत्मा और असत् अनात्मा है, सत् शरीरस्थ कूटस्थ और असत् इन्द्रिय एवं उसके विषय हैं। सत् जगदात्मा जगदीश्वर और असत् दृष्ट तथा अदृष्ट भोग्यपदार्थ हैं। सत् उपास्य इष्टदेव और असत् जगत् है। सत्का राज्य प्रत्याहारसे लेकर समाधिपर्य्यन्त है और असत्का राज्य द्रष्टा-दृश्यसम्बन्ध करनेवाली त्रिपुटिका सभी विषय है। अतः जिन-जिन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक क्रियाओंके द्वारा पूर्वलिखित सत्का सङ्ग होता है, उसके द्वारा आनन्दमयकोष निर्मल होता है और उसमें अस्मिता बढ़ने नहीं पाती है और पूर्वकथित असत् विषयोंके सङ्गद्वारा आनन्दमयकोष क्रमशः मलिनताको प्राप्त होता रहता है। इस गहन विषयको समझनेके लिये और दार्शनिक मतभेद निराकरणके लिये यह समझा जाय कि सत् अनुगामी और सत्से युक्त सब क्रियाएँ सत् कहाती हैं और ऐसी क्रियाओंसे पञ्चकोष पवित्र हो जाते हैं। मुनिगण इस प्रकार उन्नत शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्श-विवेक द्वारा आनन्दमयकोषको पवित्र रखते हैं और असत्से अपवित्रता आ जाने पर सत्को स्पर्श करके पवित्र होते हैं ॥ ६९ ॥

प्रसङ्गसे पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया जाता है—

परस्पर सम्बन्धयुक्त भी हैं ॥ ७० ॥

वर्णाश्रम-शृंखला और सदाचारका लक्ष्य जीवका अभ्युदय और निःश्रेयसप्राप्ति करना है। नियमितरूपसे सत्त्वगुण-वृद्धि करते रहना और आत्माको आवरण-करनेवाले पाँचों कोषोंको क्रमशः शुद्ध रखते हुए आत्मज्ञानका उदय करना उसका उद्देश्य है। पाँचोंकोषोंमें मलिनता न बढ़ने पावे, यही शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेकका मौलिक रहस्य है। यद्यपि कुछ शुद्धाशुद्धविवेक और

अन्योऽन्यसम्बद्धाश्च ॥ ७० ॥

स्पर्शास्पर्शविवेक आनन्दमयकोषके विचारसे, कुछ विज्ञानमयकोषके विचारसे, कुछ मनोमयकोषके विचारसे, कुछ प्राणमयकोषके विचारसे और कुछ अन्नमयकोषके विचारसे निर्णीत हुए हैं, परन्तु वेद और शास्त्रोंमें उनका अलग-अलग अधिकार नहीं दिखाया गया। इसका प्रधान कारण यह है कि, ये पाँचोंकोष परस्परमें दृढ़रूपसे गुम्फित रहनेके कारण एककी शुद्धि और मालिन्यका प्रभाव थोड़ा-बहुत सबपर पड़ा करता है। एक शरीरको अथवा प्राणको मलिन करनेवाला अशुद्ध पदार्थ अथवा अस्पृश्य विषय तत् तत्कोषको अशुद्ध करता हुआ न्यूनाधिकरूपसे सब कोषोंमें अपना प्रभाव डालता रहता है। एक कोषसे वह शुद्ध अथवा अशुद्धकारिणी क्रिया प्रारम्भ होनेपर भी सब कोषोंको न्यूनाधिक रूपसे प्रभावित करती है; क्योंकि सब कोष परस्पर-सम्बन्धयुक्त हैं ॥७०॥

और भी कहते हैं—

सब त्रिविध भी है ॥ ७१ ॥

शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्श-विवेकके विषयमें विचारभेद तथा अधिकार-भेद पाया जाता है। देश-भेदके अनुसार भी इन दोनोंका अनेक पार्थक्य देखनेमें आता है। वर्ण-भेद, आश्रम-भेद, स्त्री-पुरुषभेद, बालक-वृद्धादिभेदसे भी स्पर्शास्पर्श-विवेककी व्यवस्था शास्त्रोंमें पायी जाती है। आचार्योंके मतमें भी अनेक भेद देखनेमें आते हैं। सम्प्रदाय आदिके भेदसे भी भेद प्रतीति होती है। इसकारण जिज्ञासुओंके शंका समाधानके अर्थ कहा जाता है कि, त्रिगुणभेदके अनुसार विभिन्न अधिकार-भेदके कारण शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्श-विवेक तथा प्रायश्चित्तादिके विषयमें मतभेद पाया जाता है; परन्तु यह निश्चित सिद्धान्त है कि, अशुद्धता और स्पर्शदोषका प्रभाव जिस कोषसे प्रारम्भ होता है, उसी कोषकी शक्तिको लक्ष्यमें रखकर शुद्धिके निमित्त प्रायश्चित्तका विधान सर्वथा उपादेय समझा जायगा। साथ ही साथ यह भी मानना पड़ेगा कि अधिदैव शक्तियुक्त गोदान और गंगा-स्नानादि पुण्यकार्य सर्ववादि-सम्मत माने जानेका कारण भी यही है कि, उनमें अधिदैव-शक्तिकी प्रधानताके कारण त्रिगुण-भेदसे सब अधिकारियोंके लिये वह समानरूपसे हितकर है। ये पञ्चकोषके अधिकार परस्परमें गुम्फित रहनेके कारण वर्णाश्रमशृङ्खलाके शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शविवेकमें बहुत विचित्रता आ जाती है। यही कारण है कि अन्नकोषका प्रभाव प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय-कोषतकको प्रभावित करता है। इसीविचारसे प्रायश्चित्तका भी निर्णय होना चाहिये। इसमें देश काल-पात्रका विचार अवश्य ही रहेगा, जैसे कि, जितना अन्तःकरण परिमार्जित होगा उतना ही प्रभाव अधिक होगा और दूसरी ओर यह भी है कि यदि व्यक्ति आत्मज्ञानी हो तो उस प्रभावको वह ज्ञानके द्वारा भस्मीभूत भी कर सकता है। प्रायश्चित्तनिर्णयके विषयमें इसी विज्ञानका अनुसरण करना उचित है कि, जिस कोषके साथ जिस दोषका प्राधान्य है, उसीको सम्मुख रखकर व्यवस्था देनी उचित है। इस प्रकारसे वर्णाश्रमशृङ्खलाका सहायक शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक अति दृढ़ दार्शनिक भित्तिपर स्थित होनेसे उसकी

त्रिविधश्च ॥ ७१ ॥

व्यवस्था परम मंगलकर है और उसके अनुसार आचारका पालन करनेसे तथा विचारके द्वारा प्रायश्चित्तादिकी व्यवस्था रखनेसे आर्य्यजाति और आर्य्यपिण्डके अभ्युदय और निःश्रेयसका मार्ग सरल बना रहता है॥ ७१॥

उसी सम्बन्धमे दूसरी आवश्यकता दिखाई जाती है

अधिकारभेदकी आवश्यकता है॥ ७२॥

जिसप्रकार जैवकर्मके अधोगामी स्रोतको रोकनेके लिये वर्ण और आश्रमधर्मकी अत्यन्त उपकारिता इस दर्शनशास्त्रके पूर्वसूत्रोंके विज्ञानमे सिद्ध हुई है, उसीप्रकार जैवकर्मके अधोगामी स्रोतसे जीवको बचाकर उसकी क्रमोन्नतिका मार्ग निश्चित करनेके लिये अधिकारभेदकी भी परमावश्यकता है। मनुष्य अपने पिण्डका अधीश्वर होकर निरङ्कुश हो जाता है। पूर्णावयव होनेसे वह इन्द्रियसम्बन्धमें अत्याचारी तथा प्राकृतिक नियमके विरुद्धाचरण करनेमें समर्थ होकर अपनी प्रकृतिको नीचेकी ओर गिराता रहता है इसी कारण उसको आवागमनचक्रमें बारबार घूमना पड़ता है। उस समय वह अवश्य फल देने योग्य धर्मका आश्रय बिना लिये अपनी क्रमोन्नतिकी सुरक्षा कदापि नहीं कर सकता है। अतः ऐसी दशामें जो जीव जैसा अधिकारी है, उसको उसी अधिकारके अनुसार धर्मसाधन बताया जाय, तभी उसकी उन्नतिका नियम रहना निश्चित होता है। अन्यथा नियमित उन्नति नहीं होती है। अत्यन्त विषयासक्त, कर्मसङ्गी और मलसे ग्रसित व्यक्तिको सकाम कर्मकाण्डका उपदेश हितकर होगा और उससे उसकी उन्नतिका होना निश्चित हो सकता है; उसीप्रकार विषयवैराग्यसम्पन्न, शास्त्रचर्चामें रुचि-रखनेवाला परन्तु आवरणदोषसे दूषित व्यक्तिके लिये ज्ञानकाण्ड नियमित उन्नतिकर हो सकता है। ऐसे ही अन्य उदाहरण समझे जायँ कि, नारीको तपोमूलक धर्माचरण और पुरुषको यज्ञमूलक धर्माचरणका उपदेश देनेसे उभयकी उन्नतिका मार्ग सरल रहेगा, अन्यथा जटिल हो जायगा। गृहस्थको प्रवृत्तिधर्मका उपदेश देनेसे और संन्यासीको निवृत्तिधर्मका उपदेश देनेसे तब क्रमोन्नतिका मार्ग सरल रहेगा अन्यथा जटिल हो जायगा। इसप्रकारके उदाहरणसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि, विभिन्न विभिन्न प्रकारके अधिकारियोंको उनके यथायोग्य अधिकारके अनुसार उपदेश बिना दिये जीवकी क्रमोन्नतिका मार्ग कदापि सरल नहीं हो सकता है। अधिकन्तु बुद्धिभेद होनेसे हानि हो सकती है, यथा—अज्ञानीको यदि राजयोगका उपदेश दिया जाय और साधनचतुष्टयसे रहित व्यक्तिको यदि वेदान्तका मनन और निदिध्यासन बताया जाय. इसीप्रकार तत्त्वज्ञानी शिष्यका यदि बहिःपूजा और मन्त्रयोगके साधनोंमें ही फँसाकर रखनेका यत्न किया जाय, तो दोनों प्रकारके शिष्योंकी नियमित क्रमोन्नतिमें ही बाधा नहीं होगी किन्तु उनकी अवनति होना सम्भव है। संसारमें जितने धर्ममार्ग प्रचलित हैं, उनमें अधिकार भेदका क्रम न होनेसे ही वे असम्पूर्ण समझे जाते हैं और सनातन आर्यधर्ममें अधिकारभेदकी शृंखला पूर्णरूपसे विद्यमान रहनेसे ही यह नित्यसिद्ध वैदिकधर्म सब अङ्गोंसे पूर्ण माना जाता है। सुतरां यह सिद्ध हुआ कि जैवकर्ममें यदि अधिकारभेदका विचार रक्खा जायगा तभी साधककी क्रमोन्नति होना निश्चित रह सकता है॥ ७२॥ क्रमशः

अधिकारभेदः ॥ ७२ ॥

'प्रेम-परिणय' या गन्धर्व-विवाह।

लेo श्री पंo किशोरीदास वाजपेयी।

'आर्य-महिला'के पिछले अङ्कमें श्री गोविन्द शास्त्री दुगवेकरका एक लेख विवाह-सम्बन्धी छपा है, बहुत अच्छा, तर्कपूर्ण और अनुभव-उपोद्वेलित। उस लेखके प्रत्येक अंशका समर्थन हम करते हैं। परन्तु वैसे विवाह पाश्चात्य देशोंकी नकलपर इस देशमें नहीं आये हैं। इस देशमें बहुत पहले, वैसे विवाह प्रचलित थे। मनुजीने भी इसका निर्देश किया है; पर ऐसे विवाहोंको अत्यन्त हीनकोटिका बताया है।

शकुन्तलोपाख्यान।

ऐसा जान पड़ता है कि इस तरहके विवाहोंका कटु फल अत्यन्त बीभत्सरूपमें देखकर ही समाजकी आँखें खुली होंगी और तब आर्यविवाहकी पद्धति सबने स्वीकार की होगी। वैसे विवाहोंका ही चित्र शकुन्तलोपाख्यानमें उतारा गया है। दुर्वासा ऋषिके शापकी बात तो कवि-कल्पनाभर है। बहुत दिन बाद शापकी कल्पना की गयी। असली बात तो यह है कि दुष्यन्तने अकेलेमें शकुन्तलाको धोखा दिया और सब्जबाग दिखाये कि तुझे सब रानियोंके ऊपर स्थान मिलेगा, इत्यादि। उसने अपनी कामुकताको प्रेमका नाम दिया और ऐसी चाटुकारिता की, जैसी कि शोहदे लोग ऐसे समय किया करते हैं। अनुभवहीन शकुन्तला बहकावेमें आ गयी। उसने कण्वके आगमनकी भी प्रतीक्षा न की। गन्धर्व-विवाहमें लग्न-मुहूर्त आदि कुछ होती ही नहीं है, न विधि-विधान! बस, एकान्तमें विवाह हो गया। इसका पता कण्वको तब चला, जब प्रकृतिने बताया। तब औषध आदिके द्वारा अपराध गोपनकी चाल न थी। तब ऋषिने शकुन्तलाको दुष्यन्तके पास भेजा; किन्तु वहाँ वह तिरस्कृत हुई। दुष्यन्त जैसे धूर्त इधर-उधर मुँह काला करके भी समाजमें अपना मुख उज्ज्वल रखते हैं। सो शकुन्तलाके पहुँचनेपर उसने फटकार दिया—"निकाल बाहर करो इसे! न जाने कहाँसे कुलटा आ गयी! पता नहीं कौन है और कहाँसे पाप-पङ्कमें डूब आयी है। चली है मेरे सिर थोपने। रानी बनना चाहती है चुड़ैल! धक्का देकर बाहर निकालो बदमाशको!

निकाल दी गयी। चारा भी क्या था? कौन गवाह था कि ब्याह हुआ है कि नहीं! बेचारी रोती-कलपती वापस आयी। अपने कर्मोंका फल पाया। मनुष्य कभी अपनी गलती पर सोचता भी है। बहुत दिन बाद दुष्यन्तने शकुन्तलाको स्वीकार कर लिया, सो भी पुत्र भरतकी तेजस्विता पर मुग्ध होकर!

यद्यपि आजकलके गन्धर्व-विवाहोंमें गवाह, बरातियों-घरातियोंके रूपमें नहीं होते; पर अदा-लतमें सब कार्रवाई पक्की हो जाती है। किन्तु इससे क्या? जिसे तोड़ना ही है, वह तोड़ेगा ही। जहाँ ऐसे प्रेम-परिणाम या गन्धर्व-विवाह होते हैं, वहाँ तलाकोका कितना जोर है, आप पढ़ते रहते हैं। यह भी दाम्पत्य-जीवन है क्या? जो सम्बन्ध एकमात्र काम-वासनाको लेकर ही हुआ है, जहाँ धर्म-भावनाका एकान्त अभाव है, वहाँ और हो भी क्या सकता है?

हमारे देशने यही सब छीछालेदर देखकर गन्धर्व-विवाहकी पद्धति उड़ा दी थी। अब भी कोई विचारवान् उसका समर्थक नहीं। मनचले लोगोंकी बात दूसरी है; सो ऐसे लोग कम ज्यादा सभी समाजोंमें सदा रहते हैं और रहेंगे ही। फिर वे पछताते भी हैं।

बहिनका आदर्श

[कहानी कल्याण से]

मेरठमें दो भाई रहते थे। बड़े भाईका नाम था रामनारायण और छोटेका नाम था जयनारायण। एक बहिन थी—नाम था प्रेमा। रामनारायण जमींदारीका काम करते थे। माता-पिता मर चुके थे। जयनारायणको उन्होंने पढ़ा-लिखाकर एम० ए०, एल-एल० बी० करा दिया। वे वकालत करने लगे।

सबसे छोटी बहिन प्रेमा जब विवाह योग्य हुई तो दोनों भाई उसके लिये वरकी खोज करने लगे। रामनारायण थे पुराने विचारोंके सनातनधर्मी, वे प्रेमाके लिये सनातनधर्मी घर-वर खोजने लगे। जयनारायणको नयी दुनियाँ की हवा लगी थी। वे तलाश करने लगे सुधारक घर और वर। इसी बातको लेकर दोनों भाइयोंमें अनबन हो गयी। जयनारायणने वह घर छोड़ दिया। अपनी स्त्रीको लेकर दूसरे मुहालमें रहने लगे। रामनारायणने प्रेमाका विवाह एक सनातनधर्मी युवकके साथ कर दिया। जयनारायण न तो विवाहमें शामिल हुये और न उन्होंने एक पैसा खर्च किया। दोनो भाइयोंमें बोल चाल तक बन्द हो गयी थी।

× × ×

सावनके दिन थे। प्रेमा अपने ससुरालसे वापस आगई थी। एक दिन शामके समय प्रेमा एक नीमके वृक्षपर झूला झूल रही थी। किसी कार्यवश उधरसे जयनारायणबाबू जा रहे थे। जयनारायणकी तरफ प्रेमाकी पीठ थी। उन्होंने बहिनको देख लिया, परन्तु प्रेमाने उनको नहीं देखा था। वकील बाबूने सुना—प्रेमा सावन गा रही थी—

चन्दनकी पटुली, रेशमकी डोरी,
कदमकी शाखा पातली !
श्रीजयनारायण हैं मेरे भैया,
जिनकी बहिन मैं लाड़ली !

वकील बाबूने सोचा—'हैं ! जिस बहिनको मैं भूल गया था, वह मुझे याद किये है। जिसके नामसे मुझे घृणा थी, वह मेरे नामको प्रेमसे स्मरण कर रही है।'

यह ज़रा-सी बात जयनारायण बाबूको खटकने लगी। उनकी सारी शत्रुता हवा हो गयी। बहिन और भाईके लिये वे तड़पने लगे। हर समय चिन्तामें रहने लगे। खाना-पीना छूट-सा गया। एक दिन जुकाम बिगड़ गया और चारपाई पर पड़ रहे।

एक सप्ताह बाद प्रेमाने सुना कि जयनारायण बहुत बीमार हैं। वह डरते-डरते बड़े भाईके कमरेमें गई और बोली—

प्रेमा—बड़े भैया! छोटे भैया बहुत बीमार हैं।

राम०—सुना तो मैंने भी है।

प्रेमा—आप देखने नहीं गये?

राम०—नहीं।

प्रेमा—क्यों? जिनको आपने पुत्रसमान मानकर खिलाया-पिलाया और लिखाया-पढ़ाया, उनको देखनेभी नहीं गये।

राम०—वह बुलाता तो चला जाता।

प्रेमा—यदि न बुलायें?

राम०—तो नहीं जाऊँगा।

प्रेमा—मैं चली जाऊँ—देख आऊँ?

राम०—जिसने तुम्हारे विवाहमें कदम नहीं मारा, तुम बिना बुलाये उसके घर कदम रखने जाओगी? मान-अपमानका भी विचार नहीं है?

प्रेमा—मान-अपमान बार-बार आया-जाया करता है। भैया बार-बार नहीं मिलता।

प्रेमा रोने लगी।

राम०—रोती क्यों हो? मैं मना नहीं करता। परन्तु मैं खुद नहीं जाऊँगा। लो, अभी गाड़ी मँगाये देता हूँ।

नौकर गया और एक घोड़ागाड़ी किराये कर लाया। प्रेमा बैठ गयी। [illegible] [illegible] गया। वह वकील साहबका घर जानता था।

कमरेमें पहुँचकर प्रेमाने देखा कि पलंगपर छोटे भाई बेहोश पड़े हैं। एक तरफ उनकी स्त्री खड़ी है और दूसरी तरफ एक डाक्टर खड़ा है।

डाक्टर—केस होपलेस! मगर घबड़ाना नहीं चाहिये।

वकील बाबूकी स्त्रीका नाम था-रमा। वह बोली—

रमा—होपलेस? फिर भी न घबड़ाऊँ? इसके क्या मानी?

डाक्टर—एक उपाय भी है।

रमा—वह क्या?

डाक्टर—इनके शरीरका खून सूख गया है।

रमा—जी हाँ! शरीरका ढाँचामात्र रह गया है।

डाक्टर—नसें खुलकर दिखाई दे रही हैं।

रमा—खाते-पीते कुछ नहीं। कभी थोड़ी-सी चाय लेते हैं।

डाक्टर—क्या कभी कुछ कहते भी हैं?

रमा—कुछ नहीं। कभी कभी कह उठते हैं—'जिनकी मैं लाड़ली!'

डाक्टर—इसका क्या मतलब?

रमा—मैं नहीं जानती।

डाक्टर—'आई सी' यही सन्निपातका लक्षण है।

रमा—कौन सा उपाय बतला रहे थे, डाक्टर साहब! मेरे पास जो कुछ है—सब ले लीजिये; परन्तु इनके प्राण बचा दीजिये।

डाक्टर—प्राण बचाना परमात्माका काम है! डाक्टरका काम है कोशिश करना। वकील साहब खुद मेरे दोस्त हैं। मैं आपसे कुछ भी लेना नहीं चाहता।

रमा—उपाय बतलाइये।

डाक्टर—उपाय कठिन है। बहुत कठिन है।

रमा—कठिनसे कठिन उपाय भी सरल हो जाता है।

डाक्टर—एक छटाँक शुद्ध खून चाहिये।

रमा—क्या कीजियेगा?

डाक्टर—वकीलसाहबके शरीरमें प्रवेश करा दूँगा। बस, फिर ठीक हो जायेगा।

रमा—मेरे शरीरसे रक्त निकाल लीजिये।

डाक्टर—आप पहले तो गर्भवती हैं और दूसरे आप कृश हैं। गर्भवतीका खून लेना ठीक नहीं। कहीं आप भी बीमार पड़ गयीं, तो और भी परेशानी होगी।

'मैं मोटी हूँ—मेरा खून लीजिये!' प्रेमाने आगे बढ़कर डाक्टरसे कहा।

डाक्टर—तुम कौन हो?

प्रेमा—वकीलसाहबकी छोटी बहिन।

डाक्टर—आप मोटी हैं। बहिन हैं इसलिये खूनमें सजातीयता भी है। और खून साफ, शुद्ध तथा लाभप्रद भी है।

रमा—आप रहने दीजिये।

प्रेमा—क्यों भावज?

रमा—आपके विवाहमें हमलोग शामिल नहीं हुये थे।

प्रेमा—तो क्या हुआ?

रमा—आपको हमलोगोंसे घृणा नहीं है?

प्रेमा—नहीं।

रमा—क्यों?

प्रेमा—बहिनका आदर्श यह नहीं है कि वह किसी भूलके कारण अपने भाईसे घृणा करे। भाई चाहे कैसा ही हो—वह भाईही है।

रमा—वास्तवमें हमलोगोंसे भूल हो गयी।

प्रेमा—भूल तो फिर दुरुस्त हो सकती है। भाई कहाँ मिलेगा? वह भाई जिसके लिये भगवान् रामतक रोये थे।

'मिलई न जगत सहोदर भ्राता!'

भाईसाहब बने रहेंगे तो मुझे मान भी दे सकते हैं, धन भी दे सकते हैं। या कुछ भी न दें—फिर भी वे मेरे भाई हैं। देना-लेना दूसरी चीज, प्रेम दूसरी चीज।

डाक्टर—आप खुशीसे अपना खून दे रही है?

प्रेमा—निःस्वार्थ तथा हार्दिक प्रसन्नताके साथ।

डाक्टर—एक छटाँक खून?

प्रेमा—एक छटाँक—एक पाव—या जितने खूनसे भाईको आराम हो जाये।

डाक्टर—शावाश! बहिन हो तो ऐसी!

प्रेमा—किस जगहका खून लीजियेगा?

डाक्टर—हाथों का खून अच्छा होता है। लेकिन शायद आपको हाथोंके खूनसे तकलीफ हो। इसलिये पैरोंका खून डाल दिया जायेगा।

प्रेमा—पैरका खून! भाईके शरीरमें!

डाक्टर—तो फिर?

प्रेमा—मेरे कलेजेका खून लेकर मेरे भाईके कलेजेमें डाल दो, डाक्टर साहब!

डाक्टर—शावाश! बलिहारी है इस त्यागकी!

प्रेमा—देर मत कीजिये।

डाक्टर—आपकी दोनों बाहोंकी नससे खून लिया जायेगा।

प्रेमा—चाहे जिस अंगको काट डालिये।

डाक्टरने दोनों बाहोंसे एक छटाँक खून

निकाला। प्रेमाने 'उफ़'तक न किया। वकील-साहबके शरीरमें वह खून प्रवेश करा दिया गया।

× × ×

एक सप्ताहमें ही जयनारायणबाबू स्वस्थ हो गये। वे रामनारायणके कमरेमें आये। प्रेमा भी वहीं बैठी थी।

जयनारायणने आकर रामनारायणके चरणों-पर अपना सिर रख दिया और रोने लगे। रामनारायणने उनको उठाया और छातीसे लगा लिया। रामनारायणकी आँखें भी बरस रहीं थीं।

जय०—भाई साहब! मेरी भूल क्षमा कीजिये। मैंने सुधारके भूतको विदा कर दिया है।

राम०—क्षमा किया।

जय०—मुझे फिर अपने घरमें रहनेकी आज्ञा दीजिये।

राम०—आज्ञा क्या देना, मकान तुम्हारा है। तुम्हीं चले गये थे। मैंने कब कहा था कि मकानसे निकल जाओ।

जय०—नहीं, आपने नहीं कहा था। आप पिताजीके समान हैं। आपने मुझे लिखाया-पढ़ाया और योग्य बनाया है।

राम०—आज ही आ जाओ।

जय०—प्रेमा बहिन!

प्रेमा—भैया।

जय०—मेरी हिम्मत नहीं पड़ती जो तुम्हारी नजरसे अपनी नजर मिलाऊँ।

'सम्मुख होइ न सकत मन मोरा!'

प्रेमा—क्यों?

जय०—मैं भाईका आदर्श भूल गया, परन्तु तुम बहिनका नहीं भूली।

प्रेमा—हिन्दू संस्कृतिके अनुसार बहिनका जो आदर्श है, उसीका पालन मैंने किया है। अपना कर्त्तव्य पालन किया है। इसमें यदि कोई तारीफ है तो मेरी नहीं—हिन्दू-संस्कृतिकी तारीफ है।

× × ×

दूसरे दिन जयनारायणबाबू इसी घरमें आ गये। तीन महीने बाद प्रेमाका द्विरागमन हुआ। वकीलसाहबने रुपये खर्च किये। बहिनको जेवर और कपड़े अलग दिये। बहनोईके चरण स्पर्श किये। घंटेभर उनसे बातचीत करके उनके दिलका मैल भी धो डाला।

सच है—बहिनके प्रेमकी थाह नहीं है।

महात्मा कौन?

स्वयं अमानी होकर दूसरोंको मान देता है, वह महात्मा है, जो जीवमात्रका अकारण हितकारी है, कभी किसीकी हिंसा नहीं करता है, वह महात्मा है, जो दूसरोंके बड़ेसे बड़ा अपराधको क्षमा कर सकता है, वह महात्मा है। जिसकी इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि अपने अधीन है, वह महात्मा है। परोपकार जिसका स्वभाव है, जो विरोधीसे भी प्रेम तथा स्नेह करता है, वह महात्मा है। इन्द्रियोंके उत्तम भोग उपस्थित रहनेपर भी जिसका मन विकृत नहीं होता है, वह महात्मा है। जिसके लिये सारा संसार अपना कुटुम्ब है, वह महात्मा है।

आर्य्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की मुखपत्रिका है। भारतीय संस्कृतिका प्रचार, महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इनका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीखतक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिये। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५ किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६ सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस. कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९ क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१० लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायेगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापनदाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्नभाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
„ „ तीसरा पृष्ठ	२५)	„
„ „ चौथा पृष्ठ	३०)	„
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	„
„ १/२ पृष्ठ	१२)	„
„ १/४ पृष्ठ	८)	„

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

क्रोड़पत्र

क्रोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

प्रकाशक—श्री मदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारस कैंट।

मुद्रक :—श्री कालाचाँद चटर्जी, कमला प्रेस, गोदौलिया, बनारस।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्‌की सचित्र मासिक मुखपत्रिका

फाल्गुन-चैत्र २००६ ❀ वर्ष—३१, संख्या ११-१२ ❀ फरवरी-मार्च १९५०

प्रधान सम्पादिका :—
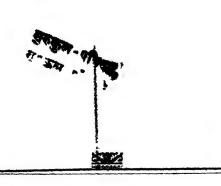
श्रीमती सुन्दरी देवी, एम. ए., बी. टी.

कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर गौरं शिवं,
सुकर सच्चिदानन्द कन्दं।
सिद्ध सनकादि योगीन्द्र वृन्दारका,
विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविन्दं ॥
ब्रह्मकुल वल्लभं सुलभमति दुर्लभं,
विकट वेशं विभुं वेद पारं।
नौमि करुणाकरं गरल गंगाधरं
निर्मलं निर्गुणं निर्विकारं ॥

विषय-सूची

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

फाल्गुन-चैत्र, सं० २००७ | वर्ष ३१, संख्या ११-१२ | फरवरी-मार्च, १९५०

लोकनाथं शोक - शूल - निर्मूलिनं,

शूलिनं मोह - तम - भूरि भानुम् ।

काल - कालं कलातीतमजरं हरं,

कठिन - कलिकाल - कानन - कृशानुम् ॥

तमझमज्ञान - पाथोधि - घट - संभवं,

सर्वगं सर्व - सौभाग्य - मूलम् ।

प्रचुर - भव - भंजनं प्रणत - जन - रंजनं,

दास 'तुलसी' शरण - सानुकूलम् ॥

हिन्दू-संस्कृतिमें विवाहका आदर्श ।

(ले० श्रीमती विद्यादेवीजी महोदया)

पृथ्वीकी अन्य सब जातियोंसे हिन्दू जातिकी अपनी कुछ विशेषता है। इस विशेषताकी आधार-शिला इसकी अध्यात्मिकतामें निहित है। हमारे त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंने मनुष्यके वैयक्तिक और सामुहिक जीवनका सच्चा सुख, सच्ची शान्ति और सच्चे आनन्दका तत्त्व अपनी दिव्य दृष्टिसे देख लिया था, इस कारण उन्होंने हिन्दू-जातिके प्रत्येक क्रिया-कलाप, आचार-व्यवहार, एवं प्रत्येक चेष्टाओंको आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे कुछ नियमोंद्वारा नियन्त्रित कर दिया था। इसी कारण हिन्दूजातिकी सामान्यसे सामान्य क्रिया-में भी धर्माधर्मका सम्बन्ध बान्धा गया है। हमारा सोना, उठना, स्नान-भोजन करना, हँसना-बोलना, मल-मूत्रत्याग करनाआदि सभी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक चेष्टाओंको धर्मद्वारा इस प्रकारसे नियन्त्रित किया गया है कि, इनको करते हुए हम जिस दशामें हैं, उससे नीचे न गिरें और ऐहलौकिक स्वास्थ्य, सुख-शान्ति और दीर्घायु प्राप्त करते हुए पारलौकिक अभ्युदय तथा सुख शान्तिको भी प्राप्त कर सकें, एवं अन्तमे अपनी आध्यात्मिक उन्नतिद्वारा पूर्णता प्राप्त कर जीवोंके परम प्रिय सखा सुहृद् भगवान्के मङ्गल-मय चरणोंका भी दर्शन कर कृतकृत्य हो सकें। हमारे सब वेद, पुराण और धर्मशास्त्रोंका सारा प्रयास मनुष्य जीवनके इसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये हैं। हिन्दूजाति इन्हीं शास्त्रीय नियमोंसे नियन्त्रित परम्परागत संस्कार-जनित संस्कृतिसे करोड़ों-अरबों वर्षोंसे जीवित चली आ रही है। समय समयके अनेक उथल-पुथलके झंझावात एवं विदेशीय आक्रमण उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके, आज भी वह अपने स्वरूपमें विद्यमान है। यों तो जैसे मनुष्यके व्यक्तिगत जीवनमें उत्थान-पतन, विपत्ति-सम्पत्ति आया-जाया करती है, उसी प्रकार जातीय तथा राष्ट्रीय जीवनमें उत्थान-पतन प्राकृतिक नियमसे स्वतः हुआ करता है। क्योंकि संसारकी कोई वस्तु सदा एकसी नहीं रहती न रह ही सकती है। इसी नियमसे किसी समय हिन्दूजाति समस्त पृथ्वीका शासन करती थी, इधर सैकड़ों वर्षोंसे पराधीन रहीं, अब पुनः भगवान्की कृपासे उसकी बाहरी परतन्त्रताकी जंजीर तो टूट गयी है, परन्तु अभी उसकी मानसिक तथा बौद्धिक परतन्त्रता दूर नहीं हुई, क्योंकि हिन्दूओंका एक समूह विदेशीय भाषा, विदेशीय रहन-सहन एवं विदेशीय तथा विजातीय आदर्शका स्वप्न देखता है। उसका हृदय विदेशी है। अस्तु, जिसका आधार ही असत्य है, वह वस्तु कभी स्थायी नहीं हो सकती, जैसा भगवान्ने गीतामें कहा ही है—

नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः ।

अर्थात् असत्का भाव नहीं होता और सत्का कभी अभाव नहीं होता। इसी सिद्धान्तके अनुसार पृथ्वीको सबसे प्राचीन हिन्दूजाति आज भी विद्यमान है, क्योंकि हिन्दूसंस्कृति सत्यपर अवलम्बित है, जहाँ अन्य कितनी ही जातियाँ काल-कवलित हो चुकीं, उनका पृथ्वीपर नाम-निशान भी नहीं रहा।

हिन्दूसंस्कृतिमें विवाह प्रवृत्तिका एक सबसे बड़ा संस्कार है; और उसका कुछ विशेष लक्ष्य भी है। पृथ्वीकी अन्यान्य जातियोंमें विवाह केवल इन्द्रियोंकी तृप्ति और भोगका साधन मात्र है क्योंकि उनके जीवनका लक्ष्य केवल Eat drink

and be marry खाओ, पीओ, मौज करो" है। उनकी संस्कृति उनको यही सीखाती है। हमारी हिन्दूसंस्कृतिमें विवाहका क्या लक्ष्य या आदर्श है, यही यहां विचारणीय विषय है।

मीमांसा-शास्त्रसे सिद्ध है कि सृष्टिके प्रारम्भसे ही स्त्रीधारा एवं पुरुषधारा ये दो स्वतन्त्र धाराएँ चलीं यथा कर्ममीमांसा दर्शनमें—

"द्वे धारे स्वयन्त्र रूपत्वात्" धर्मपाद सूत्र ५५ भगवान् मनुने भी कहा है—

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषो भवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥

अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें परमात्माने अपनेको दो भागोंमें विभिक्त किया, आधेमें पुरुष और आधेमें नारी हो गये।

भगवान्‌ने भगवद्‌गीतामें भी कहा है।

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्धयनादी उभावपि।

अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनोंको अनादि जानो।

इन दोनोंमें कौन भाग पुरुष और कौनसा भाग स्त्री बना, इस विषयमें भी देवीभागवतमें कहा है, यथा—

स्वेच्छामयः स्वेच्छया द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः॥

स्वेच्छामय भगवान् स्वेच्छासे दो रूप हो गये, वामभागके अंशसे स्त्री और दक्षिण भागके अंशसे पुरुष बने।

इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि, सृष्टिके प्रारम्भसे ही स्त्री तथा पुरुषधारा, ये दो धाराएँ पृथक-पृथक चलीं। वे ही दोनों उद्‌भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुजयोनियोंमें स्त्री एवं पुरुषके रूपमें आगे बढ़ती बढ़ती मनुष्य योनिमें पहुंचती हैं। इन दोनोंके सहयोगसे ही सृष्टिका विस्तार होता आया। इसी कारण सृष्टिके प्रत्येक स्तरमें स्त्री और पुरुष-शक्ति विद्यमान है। स्वेदज, अण्डज तथा जरायुजयोनियोंमें स्त्री-पुरुष-धारा प्रत्यक्ष ही है, उद्भिज्ज अर्थात् वृक्षादिमें भी ये दोनों धाराएँ हैं। किसी-किसी उद्भिज्जमें दोनों अलग अलग है; किसी-किसीमें एक ही वृक्षमें वे दोनों शक्तियाँ है। इनके स्त्री-पराग एवं पुंपरागका सम्मिलन भ्रमरोंद्वारा या वायुद्वारा होकर इनकी सृष्टि आगे बढ़ती है। ये ही दोनों शक्तियाँ जड़ राज्यमें भी देखी जाती हैं, जैसे विद्युत शक्तिमें आकर्षणशक्ति Nagative और विकर्षण शक्ति Pasitive ये दोनों विद्यमान हैं, ये दोनों शक्तियाँ अलग अलग रहनेसे कार्यकारिणी नहीं होतीं किन्तु दोनोंको मिला देनेसे पंखे चलते हैं, बत्ती जलती है तथा और अनेक अद्‌भुत कार्य सम्पन्न होते हैं। मीमांसाशास्त्रका यह भी सिद्धान्त है कि, ये दोनों धाराएँ जबसे प्रारम्भ हुई मनुष्य-योनितक बराबर अलग अलग चली आयी हैं। मनुष्ययोनिमें आनेपर भी साधारण क्रममें ऐसा नहीं होता कि, स्त्री पुरुष हो जाय, अथवा पुरुष स्त्री बन जाय। साथ ही यह भी विज्ञान-सिद्ध और प्रत्यक्ष भी देखा जाता है कि, विना दोनोंके सहयोगके सृष्टिका कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता है। दोनों अलग अलग रहकर कुछ भी नहीं कर पाते। जैसा मूलमें देखा जाता है कि, परम पुरुष परमात्मा विना अपनी शक्तिके निष्क्रिय बन जाते हैं। उनका सारा ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य उनकी शक्ति प्रकृतिके कारण ही है। विना शक्तिके वे कुछ भी कर सकनेमें असमर्थ हैं। गीतामें भगवान्‌ने इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है यथा—

"प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।"
"प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।"

इसी प्रकार उनकी शक्ति भी विना भगवान्‌के सान्निध्यके जड़ हो जाती है। वह जो कुछ संसारका सृजन करती है, वह परमपुरुष परमात्माकी अध्यक्षतामें उन्हींके लिये करती हैं यथा भगवान्‌ने कहा ही है—

"मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्॥"

अर्थात् "मेरी अध्यक्षतामें प्रकृति चराचर जगत्को उत्पन्न करती है।" इस प्रकार यही देखा जाता है कि, परम पुरुष परमात्मा विना अपनी प्रकृतिके निष्क्रिय 'शव' बन जाते हैं और उनकी शक्तिरूपिणी प्रकृति भी विना उनके अधिष्ठानके कार्यकारिणी नहीं होती, क्योंकि वह जड़ है, अतः ईश्वरकी ईश्वरता उनकी शक्तिपर अवलम्बित है और शक्तिकी तो सत्ता ही शक्तिमान्पर अवलम्बित है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि, दोनों एक दूसरेके पूरक हैं। दर्शन-शास्त्रका यह भी सिद्धान्त है कि, स्त्री-धारा पुरुषधारामयी होकर ही कैवल्यकी अधिकारिणी होती है यथा—

"स्त्री धारा पुंधारामयी कैवल्याधिकारिणी।"
(कर्ममीमांसा दर्शन धर्मपाद सूत्र ५६)

मनुष्ययोनिमें आनेतक ये दोनों धाराएं नियमितरूपसे प्राकृतिक नियमसे क्रमशः आगे बढ़ती रहती हैं, क्योंकि मनुष्य-योनिके पहलेके योनियोंके जीव अपने शारीरिक, मानसिक, और बौद्धिक असम्पूर्णताके कारण असमर्थ रहते हैं, अतः वे प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन नहीं कर पाते हैं, इस कारण उनकी क्रमोन्नति अबाधितरूपसे होती रहती है; उसी क्रमोन्नतिके क्रमसे वे मनुष्ययोनिमें पहुंच जाते है। मनुष्ययोनिमें पहुंच कर दोनों पूर्णावयव स्त्री तथा पुरुष बन जाते है। यहां उनके अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमयकोषोंका पूर्ण विकास हो जाता है, साथ ही उनको प्राकृतिक नियमोंपर बलात्कार करनेकी शक्ति भी आ जाती है; अतः यहां प्रकृतिके नियमोंका उल्लङ्घन कर अनर्गल अनियन्त्रितरूपसे विषयोंका भोग और मनमाना आहार-विहार करनेसे इनकी अधोगति होने लगती है। विवाहका प्रथम उद्देश्य स्त्रीधाराको पुरुषधारामें मिलाकर उसे मुक्तिकी अधिकारिणी बनाना, तथा दोनोंकी अनर्गल अनियन्त्रित पशु-प्रवृत्तियों नियन्त्रित कर दोनोंकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, ऐहलौकिक, पारलौकिक, तथा आध्यात्मिक उन्नति करना और दोनोंके मधुर समन्वयसे दोनोंकी पूर्णता एवं सांसारिक सुख-शान्ति प्राप्त कराना है। इस विवाह-संस्कारके द्वारा स्त्री और पुरुष दोनों अपनी-अपनी अनर्गल भोग-प्रवृत्तियोंको एक दूसरेमें केन्द्रीभूत एवं नियन्त्रित कर आत्मसंयम और आत्मत्यागके अभ्यासद्वारा परस्परके आध्यात्मिक उन्नतिमें सहायक बनते हैं। इसीलिये स्त्रीके लिये एक पातिव्रत्य और पुरुषके लिये भी एक-पत्नी व्रतधर्म ही प्रशस्त एवं आदर्श है।

विवाहका दूसरा प्रधान उद्देश्य उत्तम धार्मिक सन्तानकी उत्पत्तिद्वारा पितृऋणसे उऋण होना तथा प्रजातन्तुकी रक्षा करना है। यह केवल पुरुष-जातिके लिये है। पुरुष-जातिके ऊपर देवऋण, ऋषिऋण, तथा पितृऋण, ये तीन ऋण हैं, यथा भगवान् मनुजीने कहा है—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनोमोक्षे निवेशयेत्"

अर्थात् तीनों ऋणोंको शोध कर मनको मोक्षमें लगाना चाहिये।

अधीत्य त्रिविधान् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥

अर्थात् वेद-वेदाङ्गोंके स्वाध्यायसे ऋषिऋण, यज्ञोंके अनुष्ठानसे देवऋण और धर्मानुकूल पुत्रोंत्पादनद्वारा पितृऋणसे उऋण होकर मोक्षमें मन लगावे। इन्हीं उद्देश्योंसे भगवती श्रुति भी कहती है—प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। अर्थात् प्रजातन्तु विच्छिन्न मत करो। इत्यादि।

विवाहका तीसरा उद्देश्य स्त्री एवं पुरुषके मधुर पवित्र समन्वय तथा सामञ्जस्यद्वारा पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवनकी सुव्यवस्था एवं सुख-स्वास्थ्य-शान्तिकी रक्षा करना है। विवाहके इन तीनों प्रधान उद्देश्योंमें प्रथम

उद्देश्य दोनोंके लिये समान है; दूसरा केवल पुरुष-के लिये है और तीसरा व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र तीनोंके लिये है।

जैसा कि, ऊपर कहा गया है, स्त्री एवं पुरुष-जातिमें मौलिक भेद होनेसे दोनोंकी प्रकृति और प्रवृत्तिमें भी मौलिक भेद है। जैसे मूल प्रकृति परम पुरुषके अधीन है, उसी प्रकार उसकी अंशभूता स्त्री-जातिका पुरुष-जातिके अधीन रहनेका स्वभाव है, वह कभी स्वतन्त्र नहीं रह सकती। इसी कारण स्त्रीजातिके लिये पातिव्रत्यधर्मका विधान है, जो उसकी प्रकृति और प्रवृत्तिके अनुकूल भी है, और यही स्त्री-जातिके लिये सीधा सरल सुरक्षित उन्नतिका मार्ग है। इसी कारण भगवान् मनुने स्त्री-जातिकी स्वतन्त्रताका निषेध किया है। लोक-व्यवहारमें भी देखा जाता है कि, जो स्त्रियाँ उच्छृङ्खल होकर अपने पिता, भ्राता, पति, पुत्रआदि स्वजनोंका संरक्षण नहीं मानतीं, या जिनका ऐसा कोई संरक्षक नहीं है, वे अनुचित-रूपसे किसी अन्य पुरुषका नियन्त्रण मानती ही है और विपथगामिनी हो जाया करती है, क्योंकि स्वतन्त्र रहना उसका स्वभाव ही नही है। हजारोंमें कोई एक स्त्री ऐसी होती है, जो स्वतन्त्र रहकर भी अच्छी तरह अपना जीवन निर्वाह करती है, प्राचीन कालमें भी कुछ देवियाँ ऐसी हुई है, परन्तु यह साधारण नियम नहीं, अपवाद मात्र है। विवाहरूपी पवित्र संस्कारके द्वारा स्त्री अपनी स्वाभाविक प्रकृति, प्रवृत्ति और अधिकारके अनुकूल पति-तन्मयताद्वारा अपनी आध्यात्मिक उन्नति करती है और पुरुष अपनी उच्छृङ्खल पशु-प्रवृत्तिओंको धर्मानुकूल नियोजित कर देव-ऋण, ऋषिऋण तथा पितृऋकसे मुक्त होकर अन्तमें निःश्रेयसका अधिकारी बन जाता है। विवाह-संस्कारके समय कन्या जिन प्रतिज्ञाओंके साथ वरको आत्मसमर्पण करती है और वर उसे स्वीकार करता है, उनसे भी इन्हीं सिद्धान्तोंकी पुष्टि होती है, यथा—

तीर्थव्रतोद्यापनयज्ञदानं
मया सह त्वं यदि किन्नु कुर्याः।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद वाक्यं प्रथमं कुमारी॥
हव्यप्रदानैरमरान्पितॄंश्च
कव्यप्रदानैर्यदि पूजयेथाः।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं द्वितीयम्॥
कुटुम्बरक्षाभरणे यदि त्वं
कुर्याः पशूनां परिपालनञ्च।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं तृतीयम्॥
आयव्ययौ धान्यधनादिकानां
पृष्ट्वा निवेशं च गृहे निदध्याः।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं चतुर्थम्॥
देवालयारामतडागकूप-
वापी विदध्या यदि पूजयेथाः।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं च पञ्चमम्॥
देशान्तरे वा स्वपुरान्तरे वा
यदा विदध्याः क्रयविक्रयौ त्वम्।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं च षष्ठम्॥
न सेवनीया परपारकीया
त्वया भवोद्भाविनी कामिनीति।
वामाङ्गमायामि तदा त्वदीयं
जगाद कन्या वचनं च सप्तमम्॥

अर्थात् तीर्थ, व्रतोद्यापन, यज्ञ, दान, हव्यदान-

द्वारा देवताओंका पूजन, कव्यदानद्वारा पितरोंका पूजन, कुटुम्बकी रक्षा एवं पालन, पशु-पालन, आय-व्ययआदिकी व्यवस्था, देवालय, बाग, तड़ाग, कूप, वापी आदि बनवाना, स्वदेश या परदेशमें क्रय-विक्रय जो कुछ तुम करोगे, सबमें मैं तुम्हारी सदा वामाङ्गिनी रहूंगी। तुम कभी परकीया स्त्रीका सेवन नहीं करोगे। इत्यादि और भी—

धनं धान्यं च मिष्टान्नं व्यञ्जनाद्यं च यद् गृहे।
मदधीनं च कर्तव्यं वधूराद्ये पदे वदेत्॥
कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा ते मञ्जुभाषिणी।
दुःखे धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये साऽब्रवीद् वचः॥
पतिभक्ति रता नित्यं क्रीडिष्यामि त्वया सह।
त्वदन्यं न नरं मंस्ये तृतीये साऽब्रवीदियम्॥
लालयामि च केशान्तं गन्धमाल्यानुलेपनैः।
काञ्चनैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीये सा पदे वदेत्॥
आर्ते आर्ता भविष्यामि सुख-दुःख विभागिनी।
तवाज्ञां पालयिष्यामि पञ्चमे सा पदे वदेत्॥
यज्ञे होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह।
धर्मार्थकामकार्येषु वधूः षष्ठे पदे वदेत्॥
अत्रांशे साक्षिनो देवा मनोभाव प्रवोधिनः।
वञ्चनं न करिष्यामि सप्तमे सा पदे वदेत्॥

वधू कहती है कि, धन-धान्य-मिष्टान्नआदि जो कुछ घरमें है, सब मेरे अधीन रहेगा। मैं सदा मधुरभाषिणि, कुटुम्बकी रक्षाकरनेवाली, दुःखमें धीर और सुखमें प्रसन्न रहूंगी। पतिपरायणा होकर तुम्हारे ही साथ विहार करूंगी, तुम्हारे सिवाय अन्य किसी पुरुषको पुरुष ही नहीं समझूंगी। गन्ध, माला, लेपन, भूषणआदिसे तुम्हें प्रसन्न करूंगी। मैं सदा तुम्हारे दुःखमे दुःखिनी सुखमे सुखिनी हो तुम्हारी आज्ञाका पालन करूंगी। यज्ञ, दान, होम तथा अन्य सभी धर्म, अर्थ, कामके साधक कार्योंमें सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। मेरी इन प्रतिज्ञाओंमें अन्तर्यामी देवतागण साक्षी रहें, मैं कभी तुम्हारी वञ्चना नहीं करूँगी। इत्यादि प्रतिज्ञाएँ सप्तपदी गमनके समय वधू करती है, अनन्तर वर उनको इन शब्दोंमें स्वीकार करता है—

ओं ममव्रते ते हृदयं दधामि
मम चित्तमनु चित्तं तेऽस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व
प्रजापतिष्ट्वा वियुनक्तु मह्यम्॥
मदीयचित्तानुगतं च चित्तं
सदा ममाज्ञा परिपालनं च।
पतिव्रता धर्मपरायणा त्वं
कुर्याः सदा सर्वमिमं प्रयत्नम्॥

अर्थात् अपना हृदय मेरे काममें लगाओ अपना चित्त मेरे चित्तके अनुरूप करो. मेरे मनमें अपना मन मिलाकर मेरे वचनकी सेवा करो। प्रजापति तुम्हें मुझे प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त करें। तुम पतिव्रता, धर्मपरायणा सदा मद्‌गतचित्ता, मेरी आज्ञाकारिणी और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य करनेमें तत्पर रहो।

इस प्रकार विवाहरूपी पवित्र संस्कार-सूत्रमें वर-वधूको आबद्ध कर दोनोके उच्छृङ्खल अनर्गल भोग-प्रवृत्तियोंको संयमित और नियन्त्रित किया जाता है तथा दोनोंको धर्मानुकूल काम-अर्थका सेवन तथा धर्मार्जनमें प्रवृत्त किया जाता है। वस्तुतः पति-पत्नीमें पवित्र प्रेम तथा एकात्मतासे ही गार्हस्थ्य जीवनकी सुख-शान्ति, उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति और दोनोंकी आध्यात्मिक उन्नति होती है। पति-पत्नीमें अटूट प्रेम दोनोंकी प्रकृति-प्रवृत्तियोंके मेलसे ही सम्भव है; इसी कारण हमारे धर्माचार्योंने विवाहके पहले वर-वधूके लक्षण, कुल, शील, वय, जाति तथा जन्मपत्र मिलाना आदि अनेक विषयोंपर विचार करनेका विधान किया है। इन्हीं कारणोंसे हमारे यहां असवर्ण विवाह, स्वगोत्र विवाह वरसे अधिक वयवाली

कन्यासे विवाहआदि धर्म-विरुद्ध होनेसे वर्जित है यथा महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है—

अविलुप्तब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥

अर्थात् ब्रह्मचारी गृहस्थ होनेके लिये अपने अनुरूप अपनेसे भिन्नगोत्रीया अपनेसे अल्पवयस्का तथा जिसका पहले किसीके साथ विवाह न हुआ हो, ऐसी कन्याके साथ विवाह करे। स्मृतिशास्त्रोंमें आठ प्रकारके विवाहोंका वर्णन पाया जाता है, यथा मनुस्मृतिमें —

ब्राह्मो दैवस्तथैवाऽऽर्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाऽष्टमोऽधमः ॥

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर और पैशाच, ये आठ प्रकारके विवाह होते हैं। इनके लक्षणोंके विषयमें मनुजीने कहा है कि, कन्याको वस्त्र-अलङ्कारादिसे सुसज्जित कर विद्वान् शीलवान् वरको बुला कर कन्या-दान करनेका नाम ब्राह्मविवाह है। यज्ञमें यज्ञकर्ता ऋत्विक्को वस्त्र-अलङ्कारादिसे सुसज्जित कन्याका दान करना दैव-विवाह है। यज्ञादि धर्मकार्यके लिये वरसे एक या एक जोड़ा बैल या गौ लेकर विधिपूर्वक कन्यादान करनेको आर्षविवाह कहते है। "तुम दोनों मिलकर गृहस्थधर्मका आचरण करना" ऐसा कहकर विधिवत् वरकी पूजा करके कन्या-दान करना प्राजापत्य विवाह कहाता है। अपनी इच्छासे कन्याके कुटुम्बियोंको या कन्याको धन देकर जो कन्यासे विवाह किया जाता है, उसका नाम आसुर विवाह है। कन्या और वरके परस्पर अनुरागसे जो संयोग होता है, उसको गान्धर्व विवाह कहते हैं। कन्याके सम्बन्धियोंको मार-काट कर उनका घर तोड़ कर रोती हुई और किसी रक्षकको पुकारती हुई कन्याको बलपूर्वक हरण कर विवाह करना राक्षस विवाह है और निद्रिता, मद्यपानसे विह्वला अथवा किसी अन्य तरहसे उन्मत्ता स्त्रीके साथ एकान्तमें सम्बन्ध करके जो विवाह किया जाता है, उसको पैशाच विवाह कहा जाता है। इन आठ प्रकारके विवाहोंमेंसे केवल प्रथम चार प्रकारके विवाहोंको प्रशस्त कहा गया है। शेष चारकी निन्दा की गयी है, यथा—

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवाऽनुपूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥
इतरेषु च शिष्टेषु नृशंसाऽनृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः ॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा ।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत् ॥

अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, इन चार प्रकारके विवाहोंसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वे ब्रह्मतेजसे युक्त और शिष्टप्रिय होती है। ऐसी सन्तान सुन्दर, सात्त्विक, धनवान्, यशस्वी पर्याप्तभोग-सम्पन्न, धार्मिक होती है और सौ वर्षतक जीवित रहती है। शेष चार प्रकारके विवाहोंसे क्रूर, मिथ्यावादी, धर्म और वेदके द्वेषी पुत्र उत्पन्न होते हैं। अनिन्दित स्त्रीविवाहसे अनिन्दित सन्तान और निन्दित स्त्री-विवाहसे निन्दित सन्तान उत्पन्न होती है। अतः निन्दित विवाहोंका त्याग करना चाहिये।

इन उपर लिखित आठ प्रकारके विवाहोंमेंसे ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य केवल इन चार प्रकारके विवाहोंद्वारा विवाहके जो तीन उद्देश्य या लक्ष्य है, उनकी सिद्धि होती है, शेष गान्धर्व आसुर, राक्षस और पैशाचविवाहोके द्वारा उच्छृङ्खल, पाशव प्रवृत्तियोंकी ही वृद्धि होती है। उनसे उत्तम सन्तानकी उत्पत्ति नहीं होती, न उनसे कौटुम्बिक, सामाजिक या राष्ट्रीय जीवनके सुख-स्वास्थ एवं शान्तिकी रक्षा होती है। अतः वे

निन्दनीय तथा त्याज्य कहे गये हैं। यही हिन्दू संस्कृतिमें विवाहका आदर्श है।

यहांतक हिन्दूसंस्कृतिके अनुसार विवाहका आदर्श एवं उसका शास्त्रीय स्वरूपपर विचार किया गया, जिससे विवाहका लक्ष्य एवं आदर्श स्पष्ट हो जाता है। अब प्रसङ्गसे कुछ शङ्काएं सामने आती हैं, जैसे भगवान् कृष्णने रुकूमिनीका हरण कर विवाह किया था, अर्जुनने भी सुभद्राका हरण करके विवाह किया था। सीताका विवाह स्वयम्बरसे हुआ था। ये सब विहित विवाहोंमें नहीं हैं। इसका समाधान यह है कि, प्राचीन कालमें बड़े क्षत्रिय राजाओंमें स्वयंवरकी प्रथा पचलित थी, उसमें कन्या स्वयं अपना वर चुन लिया करती थी; अथवा कन्याका पिता उत्तम वरके चुनावके लिये वरके बल वीर्य और पौरुषकी परीक्षाके लिये ऐसा कुछ अद्भुत् कार्य रखता था, जिसे साधारण मनुष्य नहीं कर पाता था। जो उस अद्भुत कार्यको कर सकता था, उसको वह अपनी कन्याका विधिवत दान किया करता था, जैसा सीताके पिता महाराज जनकने तथा द्रौपदीके पिता महाराज द्रुपदने किया था। इसके अतिरिक्त विशेष परिस्थितिवश बलवान् क्षत्रियोंमें गान्धर्व आसुर या राक्षसादि विवाह होनेपर भी पुनः घर लाकर कन्याके साथ विधिवत् प्रशंसनीय विवाहोंकी विधियाँ भी की जाती थीं।

आजकल विवाहका जैसा ढङ्ग चलने लगा है, उससे विवाहकी पवित्रता पहले ही समाप्त हो जाती है। २५-३० वर्षकी अवस्थातक लड़कियोंको अविवाहित रखनेसे उनका हृदय पातिव्रत्य-संस्कारके उपयुक्त नहीं रह जाता है। हमारे शास्त्रोंमें विवाहका काल ऋतु-दर्शनके पहले है। इस विषयमें सभी स्मृतिकार एकमत हैं कि, कन्याका विवाह रजोदर्शनसे पहले हो जाना चाहिये। इसका कारण थोड़ा ही विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है। ऋतु होना कन्याके स्त्रीत्वकी पूर्णताका सूचक है। स्त्रीत्वकी पूर्णता होते ही कन्याकी दृष्टि पुरुषकी ओर जाना स्वाभाविक और प्रकृतिके नियमके अनुकूल ही है। अतः कन्या अपनेको स्त्रीरूपमें अनुभव करते ही पुरुषरूपमें अपने पतिको ही देखे, अन्य पुरुषपर उसकी भोग-बुद्धि उत्पन्न ही न होने पावे, इस आदर्श सतीत्वकी रक्षाके लिये रजोदर्शनसे पूर्व कन्याका विवाह कर देनेकी आज्ञा सब महर्षियोंने दी है। कन्या-कालमें कन्याका विवाह संस्कार होनेसे ही आदर्श सतीत्वकी रक्षा होनी सम्भव है, अन्यथा नहीं। विदेशीय अनुकरणसे शिक्षित समाजमें युवती विवाहकी प्रथा चलने लगी है, उससे न तो सतीत्व धर्मकी पूरी रक्षा हो सकती है, न पति-पत्नीमें वैसा आदर्श प्रेम हो सकता है और न पारिवारिक तथा सामाजिक सुख-शान्तिकी रक्षा होना सम्भव है। इसका स्वरूप कुछ-कुछ सामने आने भी लगा है।

कुछ थोड़े विदेशी तथा विजातीय सभ्यता-संस्कृतिके पक्षपाती लोगोंको छोड़कर शेष करोड़ो मनुष्य जो भारतीय संस्कृतिके पक्षपाती हैं और अपने ऋषि-मुनियोंको आज्ञाओंका अनुसरण करनेवाले हैं, उनको भी कानून बना कर विवश किया जारहा है कि, कन्याओंको युवती बनाकर विवाह करे। अतः इस अवस्थामें संस्कारकी रक्षाके लिये कन्याओंके वाग्दानकी प्राचीन प्रथा दृढ़ करनी चाहिये। अब भी देशके किसी-किसी भागमें वाग्दानकी प्रथा प्रचलित है। इस समय आपत्कालके अनुसार कन्यावस्थामें अथवा रजोदर्शनसे पूर्व यदि कन्याका विवाह न किया जा सके तो कन्याका वाग्दान करके इस पवित्र संस्कार एवं प्राचीन मर्यादाकी रक्षा करनी चाहिये।

इति शम्

प्राचीन भारतके सामाजिक जीवनमें स्त्रियोंका स्थान ।

(ले०—श्रीमती प्रियम्वदा माथुर बी० ए० सरस्वती)

[प्रस्तुत प्रबन्धकी लेखिकाने इसमें प्राचीन भारतीय समाजमें स्त्रियोंके स्थानका मनोहर एवं स्वाभाविक चित्र चित्रित किया है। इसमें दिखाया गया है कि प्राचीन भारतमें यहांकी देवियोंने जो अति गौरवान्वित महत्त्व तथा आदरका स्थान प्राप्त किया था, वह अधिकारकी लड़ाईका मोर्चा बनाकर अथवा सर्वस्व नाशकारी हिन्दूकोड बिल जैसे बिलोंकी मांग करके नहीं किन्तु अपने लोकोत्तर त्याग, तप, आत्मसंयम तथा सेवाके द्वारा प्राप्त किया था; जिन पवित्र गुणों को अपनानेसे अधिकार ठुकराने पर भी स्वतः लालायित होकर अपने पास आजाता है। अतः हम आर्यमहिला के पाठिकाओंके लिये यहां इसे 'कल्याण' से उद्धृत करते हैं] सम्पादिका ।

पाश्चात्य शिक्षा एवं प्रचारके प्रभावसे भारतमें भी आज नारीके अधिकारका आन्दोलन चल पड़ा है, पर वस्तुतः नारीका अधिकार मांगने और देनेके प्रश्नसे बहुत ऊपर है। भारतीय नारीका प्राचीन इतिहास इस विषयके लिये एक प्रोज्ज्वल प्रतीक बनकर आज भी हमारे समक्ष उपस्थित है। हम उसे किस प्रकाशमें देखते हैं, यह हमारे अपने दृष्टिकोणपर निर्भर हैं, परन्तु जीवन की सरलतायुक्त ज्ञानगम्यता कोमलतायुक्त दृढ़ता और त्यागमयी उपभोगप्रियता आदि गुण नारीका एक सर्वाङ्गसम्पूर्ण सुधा सुन्दर सरस-चित्र प्रस्तुत करते हैं, जो सर्वांशमें पूर्ण है, जिसे संसारसे कुछ लेना नहीं है। वह हमारी देवी अन्नपूर्णा है—देना ही जानती है, लेनेकी आकाङ्क्षा उसे नहीं।

वह सेवाको अपना अधिकार समझती है, इसलिये देवी है; वह त्याग करना जानती है, इसलिये साम्राज्ञी है; विश्व उसके वात्सल्यमय अञ्चलमें स्थान पा सकता है, इसलिये जगन्माता है। व्यक्ति, परिवार, समाज, देश, संसारसभीको अपना-अपना भाग मिलता है नारीसे, फिर वह सर्वस्व दान देनेवाली महिमामयी नारी सदा अपने सामने हाथ पसारे खड़े हुए इन भूलोक-वासियोंसे क्या माँगे और क्यों मांगे? प्राचीन भारतकी नारी समाजमें अपना स्थान माँगने नहीं गयी थी. मञ्चपर खड़े होकर अपने अभावोंकी माँग पेश करनेकी आवश्यकता उसे कभी प्रतीत ही नहीं हुई और न विविध संस्थाएँ स्थापित करके उसमें नारीके अधिकारोंपर वाद-विवाद करनेका उसे अवसर ही मिला। उसने अपने महत्त्वपूर्ण क्षेत्रको पहचान लिया था, जहां खड़ी होकर वह सम्पूर्ण संसारको अपनी निःस्वार्थ सेवा और त्यागके सुधा-प्रवाहसे आप्लावित कर सकी थी। नारीकी सरलता और मातृत्वका गौरव लेकर वह निर्द्वन्द्व भावमें अपने कर्तव्य लीन रहती थी। समाजमें उसका एक अलौकिक स्थान था। आजकी नारी उपभोगकी वासना लेकर समाजके समक्ष आती है अपना अधिकार माँगने विवाह-विच्छेदके नियम बनते हैं, सम्पत्तिमें नारीको अधिकार मिलता है। परन्तु समाजके लिये नारीका यह रूप अभिनन्दनीय नहीं है। उसे आज समाजमें स्थान अवश्य मिला हैं, पर वह मिला है वासनाओंकी मोहावृत प्रतिमूर्तिके रूपमें, पूजनीया स्वर्गादपि गरीयसी माताके रूपमें नहीं। और इसीके फलस्वरूप आजकी सामाजिक संस्थाएँ हैं—क्लब, कालेज तथा अन्य विविध सोसायटियाँ। अवश्य ही युगपरिवर्तनके साथ हमारे आचार-विचारमें और हमारे अभावआवश्यकताओंमें परिवर्तन होना

अनिवार्य है; परन्तु जीवनके मौलिक सिद्धान्तोंमें विभेद होना कदापि इष्ट नहीं, स्रष्टाकी रचनामें नारी और पुरुष दोनोंका ही महत्त्व है। वे एक दूसरेके पूरक हैं और इसी रूपमें उनके जीवनकी सार्थकता भी है। यदि नारी अपने क्षेत्रको तिलाञ्जलि देकर पुरुषके क्षेत्रमें अधिकार माँगने जायगी तो असफलता निश्चित ही है। यदि उस सर्वद्रष्टा यन्त्रीको नारी और पुरुषके क्षेत्रमें विभिन्नता नहीं रखनी होती तो बूढ़े ब्रह्मदेवको नारी-पुरुषकी शरीर-रचनामें इतने प्राकृतिक विभेद रखनेकी कौन सी आवश्यकता थी। नारीकी कोमलता और पुरुषका ओज गुण विशिष्टतामें समान होते हुए भी समान धर्म नहीं कहे जा सकते।

हमारी प्राचीन हिन्दू संस्कृतिमें गृहस्थ जीवनको एक यज्ञका स्वरूप दिया गया था और उस यज्ञमें स्त्री अर्धाङ्गिनीके रूपमें पुरुषको सहयोग प्रदान करती थी, जिसका अत्यन्त सौम्य रूप हमें कवि-कुलगुरू महाकवि कालिदासके शब्दोंमें यों मिलता है—

विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्॥
(रघुवंश १।५६)

निर्जन बनस्थलीमें ऋषिराज वसिष्ठ अपनी भार्या अरुन्धतीके साथ सायंकालकी होमक्रिया सम्पन्न कर रहे हैं। नारीशिक्षाका कैसा देदीप्यमान उदाहरण है? अशिक्षित नारी क्या इस प्रकार सहयोग प्रदान करनेमें समर्थ हो सकती थी? यह यज्ञका स्थूल स्वरूप था। परन्तु जब इसी यज्ञकी भावना अन्तर्मुख होजाती है, तब नारीका समस्त जीवन ही यज्ञमय होकर एक पवित्र साधनाका रूप धारण कर लेता है। भगवान् श्रीरामने यदि व्रत धारण किया था पितृ-वचन-पालनका तो सती सीताने उस यज्ञको पूर्ण करनेके लिये उनका अनुगमनकिया और अन्तमें सीता-वन-वास भी क्या सीताके पक्षमें यज्ञ ही नहीं था? प्रजापालक राम क्या सीताकी त्याग-भावनाके अभावमें रामराज्यका ऐसा सुन्दर चित्र समुपस्थित करनेमें समर्थ होते? वह उनके जीवन यज्ञकी अर्धाङ्गिनी थी। त्यागमें ही उसका गौरव था और अपने प्राप्यको कठिन तपस्या करके ही पाया था; राज्याधिकारियोंके फरियाद करके नहीं।

वस्तुतः प्राचीन भारतीय नारीके जीवनकी सफलताका रहस्य त्यागमें—तपश्चर्यामें है, उपभोगमें नहीं। जगन्माता पार्वतीकी अलौकिक साधना तपस्याकी साकार प्रतिमा बनकर नारीके आदर्शका मानो यथार्थ चित्र उपस्थित कर रही है—

सुनि बोली मुसुकाइ भवानी।
उचित कहेउ मुनिवर विज्ञानी॥
तुम्हरे जान कामु अब जारा।
अब लगि संभु रहे सविकारा॥
हमरें जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
(रामा० बा०)

उस पवित्र त्यागमय जीवनकी पवित्रताका अनुमान भी क्या आजके वातावरणमें लगाया जासकता—जहां माता पार्वती पतिकी अनुकूलतामें वासनाओंकी तृप्ति नहीं वरन् उनसे लोक हितकारी राम-कथा सुननेकी अभिलाषा रखती हैं।

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी।
बिहँसि उमा बोली प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी।
सोइ पूँछन चह सैल कुमारी॥
(रामचरितमानस)

काम उनके जीवनकी सौम्यताका विनाश करनेमें समर्थ नहीं था। उसने उनके जीवनमें यज्ञका रूप धारण किया था और फलस्वरूप

महात्मा कार्तिकेय और आदिवन्द्य गणपतिका जन्म हुआ, जिनकी गौरव-गरिमा आजतक अक्षुण्ण बनी हुई है। यही था मदन-मर्दनका रहस्य और यही थी उस अज अनवद्य महादेवकी विभूति, जिसके समक्ष अद्रिसुता अनेक जन्मोंकी तपस्याको भी यथेष्ट नहीं मानती—

जनम कोटि लगि रगर हमारी।
बरौं संभु न त रहौं कुआरी॥

यह था प्राचीन हिन्दू संस्कृतिमें नारीका पत्नीरूप जिसमें कोई प्रतिद्वन्द्विता, कोई संघर्ष नहीं है। एक अनुगामित्व धर्म है, जो मानो विश्वचक्रकी पूर्तिके निमित्त नारीद्वारा सहज स्वाभाविक रूपसे अपना लिया गया था। पतिमें प्रभुकी मूर्ति प्रतिष्ठित करके वह अपनत्वका समर्पण कर देती थी और वह आत्मनिवेदन इतना पूर्ण, इतना गंभीर, इतना व्यवस्थित होता था कि कोई परिस्थिति, कोई संकट, कोई विपद उसे उसकी स्वात्मस्थितिसे च्युत करनेमे समर्थ नहीं थी। यही उसके जीवनकी साधना थी, और इसी साधनका आश्रय लेकर जब वह इस क्षुद्र अहंकी सीमाको लांघ जाती थी, तब प्रकृति उसके आगे शीश झुकाती थी; ब्रह्माण्डकी समस्त शक्तियां उसके अलौकिक तेजके समक्ष व्यर्थ, निष्प्रभ हो जाती थी। सृष्टि उनके इङ्गित पर नाचती थी। ऐसी स्थितिमे यदि कुष्ठरोग-पीड़ित पतिकी साध्वी स्त्री शाण्डिली सूर्यकी गति रोक दे तथा उसके प्रभावसे वह महासामर्थ्यवान् भगवान् भास्कर एक ही स्थान पर अचल हो जायँ अथवा साक्षात् यमराज यदि वचन-बद्ध होकर सावित्रीके स्वामीके जीवनको लौटा दें, तो इसमें विस्मय ही क्या?

आधुनिक युग आपत्ति कर सकता है कि ये सब सत्युगकी बातें हैं, कलियुगमें इनकी सम्भावना नहीं, राजपूतानेका स्वर्ण इतिहास आज भी विलुप्त नहीं हुआ है। चूड़ावत सरदारकी नवोढ़ा पत्नीका अपूर्व बलिदान आज भी कनकाक्षरोंमें जगमगा रहा है। नारीका सहयोग पुरुषको बन्धन नहीं मुक्तिके रूपमे मिलना चाहिये। सौंदर्यकी मूर्ति और कोमलताकी प्रतिमा वह सरदार पत्नी अपने जीवनकी इस महत्ताको मधुरतम क्षणोंमें भी विस्मृत नहीं कर सकी थी। क्षणिक सौंदर्यका क्या मूल्य है और उसका सदुपयोग किस तरह किया जा सकता है इसे वह जानती थी और फलस्वरूप मुण्डमाल सरदारके जीवनकी प्रेरणा बनकर उसे देशके प्रति अपना कर्तव्य निष्पन्न करनेमे समर्थ कर सकी। कितनी दृढ़ता थी उस कोमल हृदयमे। परन्तु ये देवियाँ देह और प्राणकी सङ्कुचित सीमाओंसे ऊपर उठी हुई थीं। इन्होंने अपने पतिसे अभिन्न सम्बन्ध स्थापित किया था एक ऐसे धरातल पर जहाँ वियोगकी सम्भावना नहीं, जहां स्थूल शरीरका विच्छेद उनकी अभेद-स्थितिमे बाधक नहीं बन सकता। ऐसे कितने ही उदाहरण हमें राजपुतानेके इतिहासमें उपलब्ध हो सकते हैं और वहांके जौहर-यज्ञने तो मानों नारीकी पवित्रताको अग्निमें तपाकर एक अत्युज्ज्वल स्थायी प्रभा प्रदान कर दी।

हां, राजपूताने के इतिहासको भी शताब्दियाँ बीत चुकी हैं, परन्तु प्रातः स्मरणीया मां शारदा और कस्तूरबा तो आधुनिक युगकी ज्योतिष्मती देवियाँ थी। वे अशिक्षिता थी, विद्यालयकी कोई उपाधि उनके पास नहीं थी, परन्तु अपने राजनीति अनुराग-सुधासे विश्वको आप्लावित करके वे माताएँ आजभी मानो भारतीय नारी आदर्शकी संरक्षा कर रही हैं। वे माताएँ समाज-में अपना स्थान खोजने नहीं गयी थी, पर समाज ही उनके वात्सल्यका भिखारी होकर उनके आंचलकी छायामें अभयदान माँगने जाता था। वासना और उसकी तृप्तिका उनके जीवनमें कोई स्थान नहीं था। महात्मागान्धी स्वीकार करते हैं कि, उनके "महात्मापन" का श्रेय उन्हें नहीं, कस्तूरबाको है। अस्तु

नारीका पत्नीरूपसे भी अधिक महत्वपूर्ण

और गौरवशाली स्वरूप है उसके मातृत्वमें। मातृत्वमें मानो पत्नीत्व पूर्णत्वको प्राप्त हो जाता था; परन्तु वह मातृत्व मोहका बन्धन बन कर सन्तानकी वास्तविक प्रगतिमें बाधक नहीं बनता था। माता कौसल्याका वात्सल्यमय कोमल हृदय यद्यपि राम-वियोगकी आशङ्कासे शतधा विदीर्ण हो रहा था, तथापि उनका मातृत्व उन सभी कोमल भावनाओंसे ऊपर रामको आदेश दे रहा था—

जौं केवल पितु आयसु ताता।
तौं जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेहु बन जाना।
तौ कानन सत अवध समाना॥

और माता सुमित्रा—

पुत्रवती युवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी।
राम बिमुख सुत तेहित जानी॥
(रामचरितमानस)

अपने तरुण, नव-विवाहित पुत्र लक्ष्मणको अग्रजानुगामी बनाकर वन-वासकी अनुमति प्रदान करती है। लक्ष्मणका त्याग सराहनीय है; परन्तु इसका श्रेय लक्ष्मणको नहीं उनकी माता सुमित्राको है, उनकी नवोढ़ा पत्नी उर्मिलाको है, जिन्होंने अनुरागकी वेलामें विरागको, संयोगके स्वर्णक्षणमें दीर्घ वियोगको अपना सौभाग्य समझ कर प्रसन्नतासे वरण कर लिया था।

हमारी पुरातन माताएँ अपनी सन्तानोंको निर्माण करती थीं, उन्हें आदर्शके साँचेमें ढालती थीं और तब उन्हींमें आदर्श यथार्थ सम्भाव्यतामें मुखरित हो उठता था। कुन्ती माताने अपने पुत्रोंको प्रेरित किया था क्षत्रिय नारीके स्तन-पानको संग्राम-भूमिमें सार्थक बनानेके लिये। माता मदालसाका वह राग—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,
संसार माया परिवर्जितोऽसि।

उसके पुत्रोंके लिये एक स्थायी प्रेरणा बन गया और इस संसारकी वास्तविकताको पहचानकर वे जीवनमुक्तकी अवस्थाको प्राप्त हुए। मदालसाका मातृत्व सफल होगया। ऐसे अनेक उदाहरण हमें हिन्दूसंस्कृतिके प्राचीन इतिहासमें मिलेंगे। वीर शिवाजीकी माता जीजाबाई और समर्थ गुरु रामदासकी पूजनीया माताके उपदेश विस्मृत नहीं किये जा सकते। क्या आजकी माता कोईभी निश्चित आदर्श लेकर अपनी सन्तानका पालन करनेमें प्रवृत्त होती है? आज भारतवर्ष दरिद्र है,—इसलिये नहीं कि उसके पास धन अथवा शस्त्रकी कमी है, वरं उस पवित्र पत्नीत्व और मातृत्वका अभाव हो गया है, जिसकी दिव्यतापर प्राचीन भारतकी समृद्ध शान्त और प्रोन्नत अवस्था आश्रित थी। आजकी भारतीय नारीमें उस आध्यात्मिक तत्वका अभाव है, जिसके एकमात्र धरातलपर जगत्की यावत् सफलताएँ निर्भर करती हैं।

पत्नीत्व और मातृत्व—यह नारीका प्रकृति-प्रदत्त क्षेत्र था, जिसमें रहकर वह एक सुदृढ़ और सुसंगठित राष्ट्रका निर्माण करती थी। समय पड़नेपर बाह्यक्षेत्रमें भी उनकी योग्यताके अपूर्व चमत्कार हमें प्राचीन इतिहासमें देखनेको मिलते हैं। महारानी दुर्गावती और लक्ष्मीबाईको जगत् विख्यात वृत्त उदाहरणके लिये उपस्थित किये जा सके हैं, और राजपूतानेके इतिहासमें तो वीराङ्गनाओंके व्यवस्थित राज्य-सञ्चालन और अपूर्वरण कौशलकी अगणित गाथाएँ छिपी पड़ी हैं। इसके अतिरिक्त गार्गी जैसी विदुषी महिलाएँ भी भारतके पुण्यक्षेत्रमें प्रादुर्भूत हुई थीं; जिन्होंने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर शास्त्रोंके पठन-पाठन और ब्रह्मानुभवमें जीवन व्यतीत कर दिया। कुछ भी हो, प्राचीन भारतीय नारीके सभी

स्वरूपोंमें एक प्रकारकी सात्विकता थी, एक सौम्यता थी, एक दिव्यत्व था, जो समाजके शिरोभागको विभूषित करता था, इस स्थानको प्राप्त करनेके लिये उसे कोई संघर्ष नहीं करना पड़ता था, वरन् अपने प्राकृतिक गुणोंकी सहज अभिव्यक्तिमें स्वभावसे ही उसे वह पुण्यपद प्राप्त था। दुःख है कि, आजकी कृत्रिम सभ्यतामें नारीके तपःपूत स्वभावको उसे माया मोहित करके बुरी तरहसे छीन लिया है। अथवा यों कहें, नारीने बाह्य संसारकी चकाचौंधसे प्रभावित होकर उसे स्वयं ही खो दिया है। अन्यथा भारतीय समाजमें नारीके स्थानके विषयमें तो दीर्घ कालीन युगोंके पहले ही महाराज मनु व्यवस्था कर गये हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

(मनु ३।५६)

—:o:—

मनोव्यथा

शक्ति नहीं गानेकी मुझमे
गा कर तुझे रिझाऊँ।
रुद्ध कंठसे मनो व्यथाको
कैसे हाय सुनाऊँ॥
जीवनके दुर्द्धष व्यूहमें
फँसा हुआ मैं बन्दी।
कालचक्रमे नाच रहा हूँ
कैसे तुझको पाऊँ॥

मोहन वैरागी

जीवन पथ

मृत्यु लिये जाती है मुझको
जीवन-पथकी ओर।
मिलता है न विराम घड़ीभर
पथका ओर न छोर॥
नित्य नये आते है सम्मुख
जटिल चढ़ाव-उतार।
पड़ती कितनी रात राहमे
होते कितने भोर॥

मोहन वैरागी

हिन्दू संस्कृति और हिन्दू कोडबिल।

(लेखिका—श्रीमती निर्मला देवी श्रीवास्तव्य)

असन्तोषका विषय है कि इस समय धारा-सभामें 'हिन्दू कोडबिल' स्वतंत्र रूपसे पास होने जारहा है; भारतकी वैदिक संस्कृति की मर्य्यादाको मिटानेवाला यह 'कोडबिल' गृहदेवियोंको बाहर निकलनेके लिये बाध्य कर रहा है कि वह इस बिलका विरोध करें जिससे केन्द्रीय सरकार इसको पास न कर सके। राष्ट्रके निर्माणमें जितना महत्वपूर्ण स्थान नारीका है उतना पुरुष वर्गका नहीं! भारतकी नारी वीराङ्गनाओंमें गिनी जा चुकी है और इतिहास इसके लिये साक्षी है! भारतकी ही नारी समय पड़ने पर विनाशिनी दुर्गा बनकर दुष्टोंका दमन करनेकी क्षमता रखती हैं; रानी दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, अनसूया आदि जो शक्ति कर्म भूमिमें दर्शा चुकी है, वह आश्चर्यान्वित करने वाली है! उन सबमे उनकी चेतना शक्ति; पातिव्रत्य एवं आदर्शवादिता की ही विकसित भारतीय संस्कृति है। अत: ऐसे आदर्शवादी देशके लिये 'हिन्दू कोडबिल' शोभा नहीं देता, जहाँ एक पति पर ही जीवन सर्वस्व निछावर कर देना कमनीयता एवं भारतीयता की जाग्रत विभूति है।

सामाजिक तथा आर्थिक जीवनमें उथल-पुथल मचानेवाला यह 'हिन्दू कोडबिल' नारी जगत्‌मे घातक कानून बनकर कुचक्र चलानेको प्रस्तुत होनेवाला है। इससे पारिवारिक सामाजिक एवं धार्मिक जीवनमें प्रतिशोधकी भावना आविर्भूत होगी। जिस शासनके सूत्रधार श्रद्धेय पंडित नेहरूजी हैं। ऐसा कानून निर्धारित करना कदापि उचित नहीं है। आज हिन्दू-संस्कृतिके उदार भावनाओंसे ही मनुष्योंको सच्चे सुखका मार्ग और सच्ची शान्ति मिल रही है। पंडितजीको हिन्दू संस्कृतिको सड़ी हुई न कहकर आदर्श संस्कृति समझना चाहिये। पाश्चात्य देशोंकी तरह विवाह विच्छेद (Divorce) कानून पास कर हिन्दूओंकी सभ्यता और संस्कृति पर कुठाराघात न करें। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि रूस, इंगलैंड, अमेरिका आदि देशोंमे तलाक बिलकी प्रथा प्रचलित है। जिसके कारण वहाँके न्यायालय हजारों नये जोड़ोंसे सुशोभित दृष्टिगोचर होते हैं। साथ ही व्यभिचार और वासनासे नर-नारी सब कर्त्तव्यहीन हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त उनके समाजमें असन्तोषकी भावना जाग्रत हो चुकी है। जगत्‌में भारतवर्ष सदासे आदर्शवादिताकी ओर आकर्षित रहा; पुरुषवर्ग मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की तरह चरित्रवान् बननेका लक्ष्य रखता था। स्त्रियां सती-सावित्री, अनसूयाकी तरह आर्यललना बननेमें अपनी मर्य्यादा समझती रहीं। भारतीय महिलायें सदासे पतिदेवको अपना आराध्यदेव मानकर पूजन करती रहीं। उसने विदेशी नारियोंकी तरह स्वावलम्बी बनना न जाना। नारीका क्षेत्र सीमित है। उसको पग-पग पर पुरुषके सहयोगकी आवश्यकता है। अत: तलाक बिल-आर्यललनाओंके लिये उपयुक्त नहीं है।

अत: हिन्दू पुरुष एवं नारी दोनोंको राम एवं सीताके आदर्शको अपनाना ही कल्याणकर है। इसीमें हमारी जातिका गौरव तथा विश्वका कल्याण है। अत: हम सबको मिलकर ऐसा प्रचण्ड विरोध करना चाहिये कि हिन्दू कोडबिल कभी पास न हो।

हिन्दू संस्कृति।

(श्रीमती कौशल्यादेवी वर्मा शान्ति)

आज हमारा भारतवर्ष स्वतन्त्र है। चिरकालसे परतन्त्रताके बन्धनोंमें जकड़ा हुआ आर्यावर्त स्वतन्त्र हुआ है, अतः प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें प्राचीन संस्कृतिको पुनः विकसित देखनेका उल्लास है। इस अवसर पर प्राचीन संस्कृति पर एक दृष्टि डालना उचितही नहीं अपितु आवश्यक भी प्रतीत होता है।

यों तो बहुतसे ऐसे प्राचीन ग्रंथ हैं जिनसे प्राचीन भारतीय संस्कृतिपर प्रकाश पड़ता है, किन्तु इसका पूर्ण चित्र रामायण ही देता है। रामायण हमें बतलाता है कि प्राचीन भारतमें स्त्रियोंका कितना महत्त्व पूर्ण स्थान था। मर्यादा पालनके प्रति कितना विशेष ध्यान दिया जाता था और पारस्परिक स्नेह कितना विशुद्ध और उत्कृष्ट था। शिक्षाभी कितनी बढ़ी चढ़ी थी।

माताका स्थान पितासे ऊँचा है और विमाता का स्थान मातासे भी ऊँचा माना गया है। इस मर्यादाका अतिक्रमण न करनेके विचारसे ही माता कौशल्याने प्राणोंसे भी प्यारे अपने एक मात्र पुत्र रामको वन जानेसे नहीं रोका। कौशल्याजी कहती हैं—

"जो केवल पितु आयसु ताता।
तो जनि जाहु जानि बड़ी माता॥
पितु मात कहेउ बन जाना।
तो कानन सत अवध समाना॥"

कर्त्तव्य निष्ठा भी उस समय कितनी प्रौढ़ थी। अपने वचनका पालन करना परम कर्त्तव्य माना जाता था। दशरथजीने अपने प्राण दे दिये किन्तु रामचन्द्रजीके बन गमनको रोकना उचित न समझा।

भाई भाईका प्रेम भी आदर्श था। क्या दुनियाँ में कहीं और भी भरत और लक्ष्मण सदृश भाई मिल सकते हैं?

कन्याओंको विवाहके समय जो शिक्षा दी जाती थी उसका वह आजन्म पालन करती थीं। यही कारण था कि घर घर में सुख और शान्तिका निवास था। उन्हें यह शिक्षा दी जाती थी कि वह किसीसे भी अभिमान न करें। घरके सब लोगों और दास दासियोंसे भी उचित वर्ताव करें। पतिकी आज्ञा मानें और उसकी इच्छानुकूल अपना जीवन व्यतीत करें। गुरुजनोंकी सेवा करें और उनको हर तरह से प्रसन्न रखें। घरके सभी कार्योंको स्वयं करें।

यह सब बातें एकांगी न थी। पुरुषोंको भी शिक्षा दी जाती थी कि वह अपनी स्त्रीका आदर सम्मान करे और उसकी सलाहसे गृहस्थी चलावें।

सास पतोहू का सम्बन्ध कितना सुखद तथा वात्सल्य पूर्ण था। आज कल की तरह कलह कहीं देखनेको भी नहीं मिलता था।

हमारी आज कलकी बहुत सी शिक्षित बहनें तितलियोंकी तरह सज्जित होकर केवल विनोदमय जीवन व्यतीत करना ही अपना अधिकार समझती हैं और घरके काम काजसे बिल्कुल दूर रहती हैं।

प्राचीन संस्कृति इसके सर्वथा विपरीत थी। स्त्रियाँ काम करनेमें अपनेको पुरुषोंसे कम नहीं समझती थी और न सुकुमारताका आश्रय लेती थी। भगवान् रामचन्द्रके यह कहने पर कि "हंस गमनि तुम नहीं बन योगू" जानकीने तत्काल उत्तर दिया—

"मैं सुकुमारि नाथ बन योगू।

तुमहि उचित तप मो कह भोगू ।।"

आदर्श पातिव्रत्य भी हमें उस समयमें मिलता है। इस धर्मके कारण ही घर स्वर्ग सा सुखमय था।

अब हम अपनी दृष्टि हिन्दू कोडबिल पर डालें। हिन्दू संस्कृति पर कितना कठोर आघात है। कहाँ तो पातिव्रत्यका इतना ऊँचा आदर्श और कहाँ मनमाना तलाक। पति और पत्नीके बीच कोई बन्धन ही नहीं। क्या स्वतन्त्रताका यही स्वरूप है?

पहेली

प्रभु आते हम यहां जगत्में

रोनेको या हँसनेको।

मुक्ति बन्धनोंसे पानेको

या जालों में फँसनेको ।।

सारा जीवन बूझा करते

निष्फल यह जटिल पहेली।

पैदा होते हम वसुधा पर

मिटनेको या बसनेको ।।

—मोहन बैरागी

स्मरणी।

१—वेद और शास्त्र।

हिन्दुमात्रको सबसे पहले यह स्मरण रखना उचित है कि, उनके वेद अपौरुषेय हैं, किसीके बनाये हुए नहीं हैं। वे ब्रह्मलोकमें नित्यरूपसे रहते हैं और प्रत्येक सत्ययुगके आरम्भमें पूज्यपाद महर्षियोंको ज्योंकेत्यों सुनायी देते हैं। उदाहरणार्थ, जिस प्रकार रेडियो यन्त्रके द्वारा हजारों कोसोंकी बातें घर बैठे सुनायी देती हैं, उसी प्रकार महर्षियोंके सिद्ध अन्तःकरण रूपी रेडियो द्वारा सत्ययुगके आरम्भमें उनको वेद ज्योंकेत्यों सुनायी देते हैं; क्योंकि उनका अन्तःकरण विश्वव्यापक हो जाता है। हमारे यहां जो पांच प्रकारकी पुस्तकें मानी गयी हैं, उनमेंसे नाद पुस्तक ही वेद हैं। शेष सब पुस्तकें भावके द्वारा नित्य कही गयी हैं। अर्थात् वेद पुस्तक ही ऐसी है, जो जैसेकेतैसे शब्दोंमें प्रकट हुई है। शेष पुस्तकें ऋषियों, सिद्धपुरुषों अथवा देवताओंके अन्तःकरणोंमें भावरूपसे प्रकट होकर उनके अपने शब्दोंमें प्रकाशित हुई हैं। इस कारण पुराणादि शास्त्रोंको भी 'स्मृति' शब्दसे अभिहित किया गया है।

२—शिखा और सूत्र।

हिन्दुमात्रको यह भी स्मरण रखना चाहिये कि, उनका स्थूल शरीर संस्कारके द्वारा देवमन्दिरके रूपमें परिणत हुआ है। हिन्दुओंकी शिखा उस मन्दिरका शिखर है, उसमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी स्थापना की जाती है। इस कारण जगत्‌की अन्यान्य जातियोंसे हिन्दुजाति कुछ विलक्षणता रखती है, सृष्टिके आदिसे अबतक ज्योंकीत्यों बनी हुई है तथा उसमें रजो-वीर्यकी शुद्धिका महत्व विद्यमान है। हिन्दुजातिमें जो द्विज है जिनका संस्कारके द्वारा पुनर्जन्म होता है, वे यज्ञोपवीत धारण करते हैं। यज्ञोपवीतमें तीन लड़ें होती हैं, वे अधिभूतशुद्धि, अधिदैवशुद्धि और आध्यात्मिकशुद्धिका द्योतक हैं। इसी त्रिविध शुद्धिकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाके रूपमें यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। शिखा-सूत्रकी मर्यादाको हिन्दुमात्रको सदा ध्यानमें रखना चाहिये।

३—गोत्र और गायत्री।

यह सदा स्मरण रखने योग्य है कि, सृष्टिके आरम्भमें जो महर्षि हुए, उन्हींके नामसे गोत्र चले हैं। आर्यजाति उन्हींकी सन्तान है। उन गोत्रोंमें जो जो महापुरुष हुए, उनके नामसे प्रवर चलते हैं। अतः प्रत्येक हिन्दुको अभिमान होना चाहिये कि, हम अमुक महर्षिकी सन्तान हैं। गोत्र-प्रवरोंकी एक पुस्तक भी महामण्डलकी ओरसे प्रकाशित हुई है। उसकी प्रतियाँ जबतक विद्यमान हैं, तबतक वे ग्रामपंचायतों, पाठशालाओं और महामण्डलकी शाखासभाओं और धार्मिक-आध्यात्मिक-संस्कृत विश्वविद्यालयके केन्द्रोंको विना मूल्य दी जायगी। जब सब प्रतियां वितरित हो जायंगी तब उसे महामण्डलकी आज्ञासे कोई भी संस्था छपवा सकती है। यह भी हिन्दुमात्रको ध्यानमें रखना चाहिये कि, संसारके जितने धर्मावलम्बी हैं, वे भगवान्‌से रोटी, कपड़ा और भौतिक वैभवकी याचना करते हैं; परन्तु एक हिन्दुजाति ही ऐसी है, जो भगवानसे बुद्धिको प्रेरणा चाहती है। इसी प्रार्थनाको गायत्री कहते हैं। गायत्री-मंत्रव्याख्या नामकी एक पुस्तिका महामण्डलने प्रकाशित की है, जो विना मूल्य दी जाती है। यदि कोई सज्जन या उपर्युक्त संस्थाएं चाहें, तो उसे छपवा कर विना मूल्य बांट सकती हैं। वेद और शास्त्रोंके अनुसार मनुष्यमें अन्तःकरण ही प्रधान वस्तु है। अन्तःकरण चार वस्तुओंसे गठित होता

है। यथा—मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। मन इन्द्रियोंका राजा है। जिस इन्द्रियका वह साथ देता है, वही इन्द्रिय काम करने लगती है। अहंकार जीवके जीवत्वको सिद्ध करता है। चित्तका धर्म स्मृति है और बुद्धि निश्चय करती है। बुद्धिका अधिकार सर्वोपरि है। यह श्रीभगवान्के चरण-कमलोंतक जीवको पहुंचा देती है। इसीसे आर्य लोग गायत्री उपासनाके द्वारा भगवान्से बुद्धिकी प्रेरणाकी प्रार्थना करते है।

४—देश और काल।

श्रीभगवान्की तरह देश और काल भी अनादि अनन्त और नित्य है। इसीसे प्रत्येक हिन्दु अपने दैनिक संकल्पमें देश और कालका उल्लेख करता है। महामण्डलके द्वारा इस विषयकी भी 'महासंकल्प' नामक पुस्तक छपी है, जो विनामूल्य दी जाती है। उसको कोई भी छपवा कर विना मूल्य वितरित कर सकता है। यद्यपि देश और काल अनादि-अनन्त हैं, तथापि उपासकगण उपासनाके लिये उनको ससीम बनाकर उपयोग करते हैं। असीम देशको उपासकगण चतुर्दश भुवनों (लोकों) में ससीम कर लेते हैं। ऊपरके सात लोक ये हैं,—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक। इसी तरह नीचेके सात लोक ये है—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल। ऊपरके सात लोकोंमें देवता और नीचेके सात लोकोंमें असुर निवास करते है। असुर भी एक प्रकारकी देवयोनि ही हैं। इनकी आपसकी लड़ाई अन्तर्जगतमें होती है और मनुष्य-लोक तथा मनुष्य-शरीरमें भी होती रहती है। इनके अवतार भी हुआ करते हैं। जैसे दुर्योधन, रावण-आदि असुरोंके और पाण्डवआदि देवताओंके अवतार थे। चौदह भुवनोंमें ऊपरके लोकोंमें भूर्लोक और भुवर्लोकको भौमस्वर्ग कहते हैं। इन्हींके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र और ग्रह-नक्षत्रादि विद्यमान है। इसीकी सीमामें भुवर्लोक है, जिसे रात्रिके समय उत्तर दिशामें हर एक मनुष्य देख सकता है। हमारा भारतवर्ष अर्थात् हमारा मृत्युलोक भी भौमस्वर्ग ही है। इस भौमस्वर्गमें नौ वर्ष हैं। उनमें हमारा भारतवर्ष ही मृत्युलोक है, जहाँ माताके गर्भसे जीव उत्पन्न होते हैं। शेष आठ वर्ष देवलोक के अन्तर्गत है। जिसे हम पृथ्वी कहते है, वही भारतवर्ष है। उसमें यह हिन्दुस्थान भारत या भारतद्वीप या भरतखण्ड कहाता है। शेष उत्तर कुरुवर्ष, केतुमालवर्ष, हिरणमयवर्ष किम्पुरुषवर्ष आदि वर्ष देवलोकके अन्तर्गत है। जो बात देशकी है, वही कालकी भी है। वेदों और गीताआदि शास्त्रोंने देशकी तरह कालके भी इसी प्रकार विभाग किये हैं। चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका एक कलियुग होता है। उससे दुगना द्वापरयुग, उससे दुगना त्रेतायुग और उससे दुगना सत्ययुग होता है। इन चारोंका समष्टिका महायुग कहाता है। सत्रह महायुगोंका एक मन्वन्तर और चौदह मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है। एक कल्पके कालमें ब्रह्माका एक दिन और उतनी ही उनकी एक रात्रि होती है। इसी हिसाबसे सौ वर्षकी ब्रह्माकी आयु होती है। उनके ब्रह्मस्वरूप हो जानेपर उनके पदपर दूसरे ब्रह्मा आ जाते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें ब्रह्मा, विष्णु, महेशके अतिरिक्त सब देवपदधारी बदल जाते और उनके स्थानमें नये देवपदधारी आ जाते हैं। ये ही दैवीजगतके पदधारीगण हमारे इस मृत्युलोकके प्रबन्धमें सहायक होते हैं। सब लोग इस बातका समझ नहीं सकते, परन्तु अन्तर्दृष्टिसम्पन्न महात्मा इसको जानते हैं।

५—कर्मकाण्डकी महत्ता।

वेदके तीन काण्ड हैं,—कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। परन्तु खेदका विषय है कि, इस कल्पके वेदकी ११८० शाखाओंमेंसे केवल सात शाखाएं ही इस समय मिलती हैं। अन्य सब शाखाएं उपलब्ध नहीं हैं। अतः पुराणआदि

शास्त्रोंसे ही तीनों काण्डोंका विषय अधिकतर जाना जा सकता है। हमारे पूर्वज महर्षियोंने धर्माधर्मके सम्बन्धमें विचार करके निश्चय किया है कि, उक्त तीनों काण्डोंमेंसे कर्मकाण्डका विस्तार बहुत है। इतना न उपासनाकाण्डका है, न ज्ञानकाण्डका इसी कारण वेदकी इतनी अधिक शाखाएँ हैं। ऋषियोंका स्मृतिशास्त्र देखें, तन्त्रशास्त्र देखें, उसमें कर्मकाण्डका ही विस्तार अधिक है। धर्मानुकूल शारीरिक व्यापारको सदाचार कहते हैं। प्रातःकाल उठनेसे लेकर रातमें सोनेतकके जो व्यापार हैं, वे सदाचारके अन्तर्गत होनेके कारण यह सब कर्मकाण्डका ही विषय है। चमत्कार यह है कि, आर्योंकी आचार-प्रणाली और कर्म-उपासना-ज्ञानकी सब क्रियाएँ अध्यात्ममूलक हैं। कोई देखना चाहे, तो बृहदारण्यकोपनिषद् देखे उससे ज्ञात होगा कि, कर्मकाण्डकी सब क्रियाओंके साथ आध्यात्मिक उन्नतिका कैसा सम्बन्ध है इस कारण कर्मकाण्डकी कोई छोटी या बड़ी क्रिया हो, उसके साथ आध्यात्मिक उन्नतिका सम्बन्ध है, यह समझकर कर्मकाण्डको स्वयं करना चाहिये. और दूसरोंसे भी कराना चाहिये। इस समय कर्मकाण्डका प्रायः लोप हो गया है और यही हिन्दुजाति, हिन्दुधर्म और हिन्दुसंस्कृतिके पतनका कारण है। कर्मकाण्डका सिलसिला बराबर जारी रहे और गृहस्थ सज्जन, पुरोहितवर्ग और ग्रामोंके मुखियाओंको इसका दिग्दर्शन करा दिया जाय, इसी लिये यह पुस्तिका प्रकाशित की गयी है।

६—विवाह और गर्भाधान।

पहले यह कहा गया है कि, आर्यजातिकी जितनी क्रियाएँ हैं, वे सब अध्यात्म-लक्ष्य-मूलक हैं। पृथ्वीकी सभी जातियोंमें विवाह अथवा स्त्री-पुरुष सम्बन्ध केवल इन्द्रियसुखभोगके लक्ष्यसे ही किया जाता है, परन्तु आर्योंका विवाह-संस्कार आध्यात्मिकलक्ष्यसे ही होता है, जिससे सन्तति उत्कृष्ट हो और आर्यजाति और संस्कृतिकी परम्परा बराबर बनी रहे। इसके लिये विवाहके उपरान्त वधूका जब रजोदर्शन हो जाय, तब गर्भाधानसंस्कार करनेकी विधि है। इस विधिमें देवता, ऋषि और पितरोंकी पूजा कर तब स्त्री-पुरुषका संयोग करनेकी रीति है। आजकलका पुरोहितवर्ग कर्मकाण्ड और शास्त्रादिका अध्ययन नहीं करता और यजमानवर्ग भी इसकी उपेक्षा करते हैं। इसीसे आजकलकी प्रजा धर्मविमुख, उच्छृङ्खल और कदाचारी हो रही है। संस्कारशुद्धि सर्वप्रथम आवश्यक है। संस्कारोंके लोपका प्रधान कारण यजमानोंकी उपेक्षा ही है। यदि वे चाहते हैं कि, हमारे कुलका गौरव अखण्ड बना रहे, तो उन्हें संस्कारोंकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये और योग्य पुरोहितोंको पुरस्कारद्वारा सम्मानित तथा अयोग्य पुरोहितोंको तिरस्कारके द्वारा तिरस्कृत कर संस्कारोंकी प्रणाली सुरक्षित रखनी चाहिये। धर्मशास्त्र और आयुर्वेदादि शारीरशास्त्रके सिद्धान्तानुसार पत्नीके रजोदर्शनसे पहिले उससे सम्भोग करना निषिद्ध है। यद्यपि आजकल संस्कारोंकी प्रणाली उठ गयी है और अधिकांश अविधिपूर्वक ही गर्भाधान किया जाता है, तथापि नव-दम्पतिको इसका अवश्य विचार रखना चाहिये कि, जिनको गर्भाधान-संस्कार करनेका सुभीता नहीं हुआ है, वे पत्नीके रजस्वला होनेके उपरान्त प्रथम संयोगके समय देवता, ऋषि और पितरोंकी कृपाप्राप्तिके लिये उनकी अभ्यर्थना कर फिर संभोग करें। गर्भाधानके समय देवताओं, ऋषियों और अर्यमादि नित्य-पितरोंकी कृपा इसलिये प्रयोजनीय होती है कि, देवताओंकी कृपासे सब प्रकारके उत्कर्षमें सन्तानको सहायता मिलती है, ऋषियोंकी कृपासे वह ज्ञान सम्पन्न होती है और नित्य-पितरोंकी कृपासे जो एक श्रेणीके देवता ही हैं—श्रेष्ठ गुणशाली और दीर्घायु होती है। यह तो प्रत्यक्ष देखा गया है कि, जिस दम्पतिको सन्तान नहीं, उसने काशीमें पिशाचमोचन तीर्थ और

गयामें पिण्डादान किया और उसे सन्तति हो गयी। यह दैवी कृपाका ही प्रभाव है। आजकल विवाहविधि ठीक तरहसे नहीं होती। पुरोहितोंका अज्ञान ही इसका कारण है। परन्तु आर्य गृहस्थ-मात्र इसका ध्यान रक्खें कि सर्वप्रथम देवताओंकी कृपा प्राप्तिके अभिप्रायसे माङ्गलिक नान्दीश्राद्ध करें। सप्तपदीकी परस्पर प्रतिज्ञाएँ करें, लाजाहोमके द्वारा गृहिणी और गृहस्थ त्रिविध वल प्राप्त करें। दृषदारोहणके द्वारा एक दूसरके प्रति दृढ़-सौहृद हों और ध्रुवदर्शनके द्वारा दोनों अटल रहें। हमारे शास्त्रकारोंने विवाह-सम्बन्ध एक जन्मके लिये ही नहीं, जन्म-जन्मान्तर के लिये भी स्थिर माना है। वह मनुष्यकृत कानूनोसे तोड़ा नहीं जा सकता। गृहस्थ इसका विचार रक्खें. तो पुरोहित-गण आपही रास्तेपर आ जायंगे।

७—पुरोहितोंका महत्त्व।

आर्यसंस्कृतिमे पुरोहितोका कितना महत्व है, इसका प्रमाण रामायणमें सूर्यवंशी नृपतियोके पुरोहित महर्षि वशिष्ठजीके उदाहरणसे मिलता है। यजमानके कल्याणका पहलेसे ही जो विचार करे, उसे पुरोहित कहते हैं। पुरोहितोके कई प्रकार होते है। जैसे—कुलपुरोहित. ग्रामपुरोहित, तीर्थ-पुरोहित आदि। सब सद्‌गृहस्थोंको इसका ध्यान रखना चाहिये कि, उनके पुरोहित कर्मकाण्ड तथा धर्मशास्त्रके ज्ञाता है या नहीं। यदि न हों, तो उनको सुयोग्य बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। इस विषयमे सहायताकी आवश्यकता हो, तो श्री-भारतधर्ममहामण्डलसे परामर्श करना चाहिये। महामण्डलसे ऐसी छोटी छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं, जो इस विषयमें सहायक हो सकती हैं। उनमें सङ्क्षेपमें सरलतासे बड़े बड़े विषयोंका विवेचन किया गया है। जैसे—हिन्दु धर्मका स्वरूप, तीर्थ-देवपूजना प्रश्नोत्तरी, धर्माधर्म-प्रश्नोत्तरी, गायत्रीमंत्रकी टोका, स्मरणी आदि।

८—संस्कारोंका महत्त्व।

शास्त्रोंमें कहा गया है कि, प्रकृतिके स्पन्दनको क्रिया कहते हैं। यह क्रिया चाहे शारीरिक हो, मानसिक हो या बौद्धिक हो, कर्म ही कहाती है। कर्मकी जो छाप अन्तःकरणपर पड़ जाती है, उसीको संस्कार कहते हैं। शास्त्रोंका सिद्धान्त है, कि घटाकाश (घड़ेके भीतरका आकाश), मठाकाश (घरके भीतरका आकाश) और महाकाश (सर्वत्र देख पड़नेवाला आकाश) एक ही है। मनुष्यचाहे सत् हो या असत्—जो कुछ कर्म करता है, उसकी छाप अन्तःकरणपर पड़ ही जाती है और अन्तःकरण सर्वव्यापक होनेसे उस पर पड़े हुए संस्कार महाकाशकी तरह यम धर्म राजके कार्यालयमें अंकित हो जाते हैं। यम-धर्म-राजके दो पदाधिकारी हैं, चित्रगुप्त और विचित्रगुप्त जो मनुष्योंके पाप-पुण्यका लेखा रखते है। उस लेखेके अनुसार ही यम धर्मराज न्याय-दान करते हैं। सत् कर्म पुण्यजनक और असत् कर्म पाप-जनक होते हैं। पुण्यसे सुख और पापसे दुःखकी प्राप्ति होती है। पुण्यवानोंको स्वर्गादि लोकोंकी और पापियोंको नरकादि लोकोंकी प्राप्ति होती है। वैदिक दर्शनशास्त्रने यह सिद्ध किया है कि, सब जीवोंके किये हुए कर्मोंके संस्कार भगवान् यम-धर्मराजके कार्यालयमे अवश्य अंकित हो जाते हैं। जैसे शब्दसमूह रेडियोयन्त्रके द्वारा सर्वत्र पहुँच जाते है वैसे जीवोंके कर्म-संस्कार भी यम-धर्म-राजके कार्यालयमें पहुँच जाते हैं।

आर्यशास्त्रोंमे वैदिक संस्कारोंकी संख्या ४२ कही गयी है और कर्मकाण्डमें उनकी पद्धतियाँ दी गयी हैं। परंतु कालप्रभावसे ४२ संस्कारोंका होना असंभव-सा हो जानेके कारण सौकर्यके विचारसे उनमेंसे प्रधान १६ आवश्यक संस्कार पूज्यपाद महर्षियोंने चुन लिये हैं। उनमेंसे गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण अन्नप्राशन, चूड़ाकरण और उपनयन ये आठ प्रवृत्तिमूलक और ब्रह्मव्रत, देवव्रत, समावर्तन,

उद्वाह, अग्न्याधान, दीक्षा, महाव्रत और संन्यास ये आठ निवृत्तिमूलक हैं। अन्यान्य वैदिक, स्मार्त, पौराणिक और तान्त्रिक संस्कार इन्हीं १६ संस्कारोंके अन्तर्भुक्त हैं।

९—भक्ति और उपासना।

भगवान्‌के प्रति प्रेमको भक्ति कहते हैं और भगवान्‌की सान्निध्यप्राप्ति उपासना कहाती है। भक्तिके विषयमें वेदके उपासनाकाण्डके दर्शन दैवीमीमांसाशास्त्रका सिद्धान्त है कि, अपनेसे छोटोंमें जो प्रीति होती है, उसको स्नेह कहते है। अपने बाराबरी वालोंमें जो प्रीति होती है, उसका प्रेम कहा है और अपनेसे बड़े लोगोके प्रति जो प्रीति होती है, वह श्रद्धा कहाती है परन्तु इन तीनोंका मोहसे सम्बन्ध है। मोहको त्यागकर श्रीभगवान्‌के प्रति जो प्रीति होती है, उसीका नाम भक्ति है। भक्ति ही उपासनाका प्राण और अष्टाङ्ग योग उसका शरीर है। दोनोंका साधन एक साथ चले, तब उपासनाकी सिद्धि होती है। एक हिन्दु धर्म ही ऐसा है कि, जिसमें निम्न स्तरसे लेकर सर्वोच्च स्तरतकके उपासकोंके अधिकार देख पड़ते है। अन्य धर्मोंमें एक ही ढङ्गकी उपासना सबके लिये बतायी गयी है। हिन्दुधर्ममें मंत्रयोगके अनुसार मूर्तिध्यान करनेकी विधि है। जैसे–गुरु ध्यान, शिव, विष्णु, जगदम्बा, सूर्य और गणेश इन पंचदेवोंके ध्यान, ओंकारका ध्यान, रामकृष्ण आदि अवतारोंके ध्यान इत्यादि। हठयोगके अनुसार ज्योतिका ध्यान किया जाता है। लययोगके अनुसार बिन्दुध्यान है और राजयोगके अनुसार निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करनेका अधिकार प्राप्त होता है। हिन्दूधर्ममें भूत-प्रेतादि क्षुद्र देवताओंकी उपासना, ऋषि, देवता और पितरोंकी उपासना, शिवोपासना विष्णु-उपासना आदिके अनेक भेद पाये जाते हैं और शक्ति उपासनाका तो बड़ा विस्तार है। निर्गुण ब्रह्मकी उपासना, जो बुद्धिपथकी सहायतासे की जाती है, वह राजयोगके अनुसार है। इस प्रकार सब तरहके अधिकारोंके उपासकोंके लिये उपासनाके अनेक भेद हैं। वैदिक दर्शनोंमेंसे योगदर्शनने तो भगवान्‌के साक्षात् दर्शन करानेका बीड़ा उठाया है। सबके मूलमें गुरु हैं और इन सब शास्त्रोंके जो ज्ञाता हैं, वे ही गुरु कहानेयोग्य हैं। गुरु बिन कौन बतावे बाट ? गुरुके बिना ज्ञानप्राप्ति नहीं हो सकती; परन्तु आजकल गुरुपरम्परा उच्छिन्न हो गयी है और योग्य गुरुओंका अभाव हो रहा है। अतः योग्य पुरुषोंका समादर कर जिससे योग्य गुरुओंकी प्राप्ति हो सके, ऐसा उद्योग करना चाहिये। पञ्च उपासनामें वर्तमान समयमें सूर्यकी उपासना सबके लिये उपयोगी और सरल है। सूर्य भगवान् प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं और इनकी उपासनासे आरोग्यकी प्राप्ति और बुद्धिकी अभिवृद्धि होती है। शारीरिक और मानसिक उन्नतिके लिये सूर्योपासनासे सुगम कोई उपासना नहीं है। यह प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। गायत्री मन्त्रोंके द्वारा जो ब्रह्मतेजकी प्रार्थना की जाती है, वह तेज सूर्य भगवान्‌में विद्यमान है। ब्रह्मा, विष्णु और महेशका ध्यान सूर्यमण्डलमे किया जाता है। भगवान्‌का ध्यान सूर्यमण्डलमें करना सुलभ भी है; क्योंकि वे प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं। इसीसे द्विजमात्रको सूर्यार्घ्यदान करनेकी शास्त्राज्ञा है और शूद्र भी और यहांतक कि, अन्त्यज भी नित्य अमंत्रक सूर्यार्घ्यदान कर सकते हैं सूर्योपासनामें सूर्यध्यान सूर्यगायत्री और द्वादशनामोच्चारपूर्वक सूर्यनमस्कार प्रधान हैं। इसकी जिन्हें आवश्यकता हो, श्रीमहामण्डल प्रधान कार्यालयमें लिखनेसे उन्हें भेज दी जा सकती है।

१०—गुरु और दीक्षा।

यों तो सब व्यावहारिक बातोंमें गुरुकी आवश्यकता होती है; परन्तु आध्यात्मराज्यमें प्रवेश करनेके लिये गुरुदेवके बिना काम ही नहीं चल सकता। जो सत्पुरुष शिष्यके समस्त अज्ञानका

नाश करे और उसका हित चाहे, वही गुरु कहा सकता है। गुरुतत्त्वको अच्छी तरह समझनेके लिये श्रीभारतधर्म-महामण्डलसे 'गुरुगीता' नामक पुस्तिका मँगाकर पढ़नी चाहिये। जो सज्जन अपनी आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हों, उनके लिये गुरुमन्त्र लेना अनिवार्य है। गुरुके द्वारा मन्त्र-ग्रहण करनेसे ही वह फलता है, अन्यथा पुस्तकसे पढ़कर मन्त्र जप करनेसे कोई फल नहीं होता। गुरु जब शिष्यको मन्त्र देता है तब श्रीसदाशिव अथवा श्रीविष्णुदेवसे प्राप्त की हुई अपनी शक्ति भी देता है, जिससे मन्त्र जाग उठता है। बिना गुरुमन्त्र ग्रहण किये मनुष्यकी सद्गति नहीं होती शिव अथवा विष्णुके रूपमें अथवा गुरुकी प्रत्यक्ष मूर्तिमें श्रीगुरुदेवका ध्यान करना चाहिये। गुरु ध्यान इसलिये किया जाता है कि, उनसे विष्णु अथवा शिवकी शक्ति प्राप्त होती है। विष्णुरूपमें अथवा शिवरूपमें उनका ध्यान इस कारण करना चाहिये कि, विष्णु भगवान् सब प्रकारका वैभव और सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति देते हैं तथा श्रीशिवजी संहारके कर्ता होनेसे निर्वाण मुक्ति प्रदान करते है। अतः अपनी आध्यात्मिक उन्नति चाहनेवाले सज्जनोंको गुरुकी शरणमें जाकर उनकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये।

११—वेद और शास्त्रोंका भाषाज्ञान।

वेदका तथा शास्त्रोंका यथार्थ ज्ञान लाभ करनेके लिये जिन बातोंकी विशेष आवश्यकता होती है, वे इस प्रकार हैं:—

अनादि और अपौरुषेय वेद और उसके भाष्यरूप स्मृति पुराणादि शास्त्रोंका यथार्थ ज्ञान-लाभ पंडितगण तभी कर सकते हैं, जब वे निम्नलिखित चार बातोंको यथार्थ रूपसे हृदयंगम कर सकें। यथा—प्रथम भाषाज्ञान, दूसरा त्रिगुणके अनुसार अधिकारज्ञान, तीसरा भावका ज्ञान और चौथा देश, काल और कर्मके रहस्यका ज्ञान। वेद और शास्त्रोंमें तीन प्रकारकी भाषाएँ काममें आती हैं। यथा—समाधिभाषा, लौकिकभाषा और परकीय-भाषा। समाधिबुद्धिसे समझनेयोग्य जो भाषा है उसको समाधिभाषा कहते हैं। जैसी कि श्रीमद्भगवद्गीता समाधिभाषासे प्रायः पूर्ण है। लौकिकभाषा उसको कहते हैं कि, जो भाषा समाधिभाषाको समझानेके लिये रूपान्तरसे विस्तारपूर्वक कही जाय। जैसा कि, लिंगपुराणमें चिन्मय लिंगकी महिमा, विष्णुभागवत और देवीभागवतमें महारासका वर्णन आदि। परकीय-भाषा उसको कहते हैं कि, जो गाथारूपसे प्रकाशित हो और जिसका समाधिभाषा और लौकिकभाषाके ज्ञानको दृढ़ करनेके लिये इतिहास-रूपसे वर्णन किया जाय। श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रोंमें त्रिगुणके लक्षण और उसके अनुसार तीन अलग-अलग अधिकार तथा अधिकारियोंका बहुत कुछ वर्णन है। उन्हीं तीन गुणोंके अनुसार तीन तरहके अधिकारी कैसे होते हैं, इसका ज्ञान शास्त्रके वक्ताओंको होना चाहिये। वेद और शास्त्रोंमें तीन तरहके भाव कहे गये हैं। यथा,—आध्यात्मभाव, अधिदैवभाव और अधिभूतभाव। इस विज्ञानके अनुसार हिन्दूशास्त्रोंमें एक एक पदार्थको तीन-तीन रूपोंमें देखनेका वर्णन पाया जाता है। जैसा कि, चक्षु इन्द्रियका अध्यात्म रूपतन्मात्रा है, उसके अधिदैव सूर्य देव हैं और उसका अधिभूत चक्षुगोलक है। इस प्रकारसे तीन भावोंका रहस्य जो शास्त्रवक्ता जानता है, वही आचार्य कहा सकता है। अनादि अनन्त देश कैसा है हमारे ब्रह्मांडका मानचित्र कैसा है, जैसे मनुष्य-शरीरके अवयव हैं, वैसे ही ब्रह्माण्डके शरीरके अवयव कैसे है, उसमें चतुर्दश भुवनोंकी स्थिति कैसी है, यह सब जाननेसे तब देशका ज्ञान होता है, केवल भूगोल-विद्यासे देश ज्ञान नहीं हो सकता। अनादि अनन्त काल क्या है, उसमें चारों युग, महायुग, मन्वन्तर, कल्प और कल्पान्तर कैसे विभाग किये जाते हैं इत्यादिका ज्ञान

होनेसे काल-ज्ञान होता है और कर्म क्या वस्तु है, कर्मकी उत्पत्ति कब होती है, कर्म प्रकृतिका कैसे सहजात है कर्मका लय कैसे और कहाँ होता है, कर्मके साधारण और विशेष भेद क्या-क्या हैं, इन सब बातोंको दार्शनिक ज्ञानकी सहायताद्वारा हृदयङ्गम कर लेनेसे कर्ममें शास्त्रका वक्ता प्रवेश करके लोक शिक्षाके उपयोगी बन सकता है। आजकलके शास्त्रवक्ता इन सब बातोंपर ध्यान नहीं देते, इस कारण उन सबके उपदेश पूर्णतया सफल नहीं होवे।

१२—लिंग और योनि पूजारहस्य।

आर्य-जातिमें लिंग और योनि-पीठको देखकर इसके रहस्यसे अनभिज्ञ और अश्रद्धालु स्वदेशी और विदेशी विद्वान् नानाप्रकारके कुत्सित आक्षेप करते हैं। उनके निवारणके लिये लिंग योनि पीठकी पूजाका रहस्य समझने योग्य है। इसके लिये सबसे पहले सनातन धर्मियोंकी संस्कृति और दार्शनिक दृष्टिका रहस्य समझ लेना आवश्यक है। भारतद्वीपकी संस्कृति तथा अन्य देशवासियोंकी संस्कृतिमें महान् अन्तर है। सनातनधर्मियोंकी संस्कृति आध्यात्मिक प्रधानता-मूलक और अन्यदेशवासियोंकी संस्कृति आधिभौतिक लक्ष्यमूलक है भारतद्वीपकी संस्कृति अन्तःशुद्धिमूलक है। अन्य देशवासियोंकी संस्कृतिके साथ अन्तः शुद्धिका सम्बन्ध नहीं रहता, केवल ऊपरके दिखावेका सम्बन्ध रहता है। सनातनधर्मियोंकी संस्कृतिमें दैवीराज्यकी प्रधानता और अन्तर दृष्टिका सम्बन्ध रखा गया है; अन्य देशवासियोंकी संस्कृतिमें दैवी-राज्यका कुछ भी सम्बन्ध न मानकर केवल बाहरी दिखावेका सम्बन्ध माना गया है। दोनों संस्कृतियोंमें दिन और रातके समान प्रभेद होनेके कारण परस्परके समझनेमें बड़ा भारी अन्तर पड़ जाता है। यही कारण है कि, सनातनधर्मी परस्त्रीका स्पर्श करना अनुचित समझते हैं और पश्चिमीगण मद्यपान करके परस्त्रीके साथ आलिंगित होकर नृत्य करना तथा परस्परका मुखचुम्बन करना अनुचित नहीं समझते हैं। इसी विरुद्ध संस्कृतिके वशवर्ती होकर अन्य देशवासी विद्वान् अथवा वर्तमान भारतके अंग्रेजी शिक्षित व्यक्ति जगत्के मूल कारण पुरुषत्व तथा नारीत्वके प्रधान चिन्होंका नाम लेते ही अपने चित्तके कलुषित संस्कारके अनुसार विचलित होकर निन्दा करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं। अतः वे बिना समझे ऐसी उपासनाको लज्जाजनक समझते हैं और इस सम्बन्धसे अनेक ऐतिहासिक मिथ्या जल्पना कल्पना किया करते हैं। सनातनधर्मी स्थूल पदार्थकी उपासना नहीं करते हैं, वे सर्वव्यापक दैवी सत्ताको एक पीठविशेषमें केन्द्रीभूत करके उस पीठके अवलम्बनमें उपासना किया करते हैं। दैवी पीठ उत्पन्न करनेके शास्त्रोंमें अनेक भेद हैं और इनके अतिरिक्त स्वाभाविक पीठ भी अनेक हैं। जल, अग्नि, देवमूर्त्ति, स्थण्डिल आदि नवीन दैवीपीठ उत्पन्न करनेके उपयुक्त पदार्थोंके उदाहरण हैं। प्राचीन नित्य पीठोंके नाम शास्त्रोंमें अनेक पाए जाते है। यथा, –१०८ पीठ और नाना प्राचीन तीर्थ आदि। दार्शनिक युक्तिसे यह सिद्ध है कि, जैसे स्त्री वैद्युतिकशक्ति और पुरुष वैद्युतिक-शक्ति दोनों वैद्युतिक शक्तियोंके संगमके बिना कोई वैद्युतिक क्रिया सम्पादित नहीं होती है, उसी प्रकार प्राणमयकोषकी आकर्षण और विकर्षण क्रियाके समन्वयसे दैवी पीठका आधार बनता है। दूसरी ओर यह सब शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि, ब्रह्म और ब्रह्मप्रकृति जब ये दोनों अलग-अलग प्रतीत होते हैं, उसी अवस्थाका नाम सगुण ब्रह्म है। इसी ब्रह्म और ब्रह्मप्रकृतिके परस्पर आलिंगित अवस्थाको ही शास्त्रोंने सर्वशक्तिमान् सगुण ईश्वर कहा है। उपनिषदोंकी साररूपी श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्ने इस विज्ञानको कई प्रकारसे वर्णन किया है। भगवान् कहते हैं कि, मैं पुरुष हूँ और योनिरूपिणी प्रकृतिमें गर्भाधान करता हूं, जिससे

सृष्टि उत्पन्न होती है। इस वैज्ञानिक विषयको हृदयङ्गम करनेके लिये पुरुषशब्द, प्रकृति शब्द, योनि शब्द, गर्भाधान शब्द आदिसे अधिक और उपयुक्त शब्द मिल ही नहीं सकते हैं और इसी प्रकार प्रकृति-पुरुषात्मक सगुण ब्रह्मकी वैज्ञानिक मूर्त्तिको उपासकके नेत्रोंके सामने लानेके लिये भग-लिंगका चिन्ह अत्यन्त उपयोगी है, इसमें सन्देह नहीं। इसी कारण योनिपीठ सहित लिंगोपासना द्वारा साधक भगवान् शिवके सान्निध्यको प्राप्त करता है और इसी कारण शिवलिंगोपासना सबके लिये समान रीतिसे हितकारी बताई गई है। कर्मकाण्डमें भी जो वैदिक कुण्ड बनाया जाता है, उसमें भी ये ही दो चिन्ह विद्यमान रहते हैं। अतः इस सगुण ब्रह्मके चिन्हका उपासनाकाण्ड और कर्मकाण्डके साथ यथास्थानमें सम्बन्धयुक्त रहना स्वाभाविक है। यह उपासना चिरकालसे प्रसिद्ध है, आधुनिक नहीं है। योनिपीठके साथ त्रिगुणात्मक मूलप्रकृति और चिन्मय लिंगके साथ पुरुषोत्तम रूपका सम्बन्ध है। अतः लौकिक स्त्री-पुरुष-सहयोगके साथ उसका सम्बन्ध नहीं हो सकता है। स्त्रीपुरुष सहयोग सृष्टिसे सम्बन्ध रखता है और सगुण ब्रह्मरूपी शिवलिंगोपासना लय अर्थात् मुक्तिका विषय है। इस लिंगोपासनासे प्रकृति-पुरुषात्मक धारणाकी सिद्धि होती है। धारणासिद्धिके बाद सगुण ब्रह्मके ध्यानकी सिद्धि साधकको प्राप्त होती है और तत्पश्चात् चिन्मय लिंगके भावके अवलम्बनसे साधक महाभाव समाधिको प्राप्त कर समाधि-भूमिमें विचरण करता है। उमा महेशकी लीलाओंका जो वर्णन पुराणोंमें है, वह अतिविचित्र है इसमें सन्देह नहीं; परन्तु वे सब वर्णन समाधि-भाषाके हैं या लौकिक भाषाके हैं अथवा वे सब वर्णन आध्यात्मिक जगत्के या आधिदैविक जगत्के हैं इसका पूरा ध्यान रखने पर ही उन चमत्कार-लीलाओंके पारावारमें साधक उन्मज्जन-निमज्जन कर सकता है। शास्त्रोंमें रहस्योंको गोपन करनेकी जो आज्ञा है वह अधिकारभेद होनेसे है। अतः वह विचारका विषय है; परन्तु यह उपासना और आचारका विषय है। इसके रहस्यसमूह अवश्य गोपनीय हैं; परन्तु जिस पीठमें उनकी उपासना होती है, वह तो स्थूल अवलम्बन है। इस कारण उसके साथ गोपनका सम्बन्ध नहीं रह सकता है। वह विषय और है और यह विषय और है। वे जगद्गुरु हैं, वे ज्ञानरूपी नेत्रसे कामदेवको दहन करनेवाले हैं, वे सृष्टिके लयकर्त्ता होनेसे मुक्ति विधाता हैं, वे अलिंगी अर्थात् रूपरहित हैं और वे दैवीजगत्में सबके पूज्य और बड़े होनेसे महादेव कहाते हैं। यही कारण है कि, सगुण ब्रह्मके ऐसे स्पष्ट चिन्ह द्वारा उनकी पूजाकी विधि बताई गई है। बाणलिंग मन्त्रशास्त्रके अनुसार नित्ययन्त्र है। शालिग्रामशिलाके समान बाणलिंगमें पीठका आवाहन विसर्जन नहीं होता है। इस कारण बाणलिंग भी नित्यपीठ कहलाता है। नित्यपीठ वह होता है, जिसमें पीठशक्ति सदा विद्यमान रहती है। इस कारण बाणलिंगके साथ पीठका चिन्ह रखा जाय या न रखा जाय, दोनों अवस्थामें ही उसमें पूजा हो सकती है।

लिंगपुराणमें लिखा है कि, शिवलिंग चिन्मय है। उसपर अनेककोटि ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। इसका पता भगवान् ब्रह्मा और भगवान् विष्णु भी नहीं लगा सके थे। ब्रह्माण्ड अनन्त हैं। एक ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु, महेश साक्षात् परमात्माके प्रतिनिधि होनेपर भी दूसरे ब्रह्माण्डका पता नहीं लगा सकते। इसी प्रकार पीठविज्ञान भी चमत्कारपूर्ण है। योनि और पीठ पर्यायवाची शब्द हैं। तंत्रोंमें, मन्त्रशास्त्रमें और पुराणादि-शास्त्रोंमें पीठका नाना प्रकारका वर्णन है, जैसा पहले कहा गया है। हिन्दु-जातिमें पति-पत्नीका गंठबन्धन किया जाता है। यह पीठस्थापनाका ही प्रकार है। इस प्रकार पीठ स्थापन होनेपर ही दम्पति कर्मकाण्ड करनेके अधिकारी होते हैं।

१३—हिन्दुओंका हिन्दुस्थान।

आर्यजातिका पुरातन और पुनीत भारतखण्ड (हिन्दुस्थान) भारतवर्ष (पृथ्वी) का उत्तमाङ्ग है। सब प्रकारकी भूमियोंकी पूर्णता, पवित्र नद-नदी और महाशक्तिशाली पर्वतों तथा सब प्रकारके चतुर्विध भूतसंघों और सब ऋतुओंका आविर्भाव होने से हिन्दुस्थानकी प्राकृतिक पूर्णता सिद्ध है। इसीसे यहांकी आदिभाषा संस्कृत सर्वाङ्गपूर्ण है। सृष्टिकी प्रथमावस्थामें ही मनुष्यको सभ्यताके उपयोगी सब शिल्प, सब विज्ञान और सब दर्शन आदि शास्त्र यहीं प्रकट हुए और उनके द्वारा हिन्दुस्थानका महत्त्व जगत्‌में स्थापित हुआ और अबतक वह महत्त्व घोषित हो रहा है। वेद और शास्त्रोंसे प्रमाणित है कि, पूर्णावयव मनुष्यसृष्टि पहले पहल काश्मीर प्रान्तकी देविका नदीके तटपर इस पवित्रभूमिमें ही हुई थी। चारों युगोंमें श्रीभगवान्‌के अवतार इसी पवित्र भूमिमें होते आये हैं और होते रहेंगे। भारतखण्डका ऐसा कोई प्रान्त नहीं है, जहां दैवी जगत्‌के पीठरूपी पवित्र तीर्थस्थान न हों। इन्हीं सब कारणोंसे हिन्दुओंका ही हिन्दुस्थान है और यही उनकी परमपवित्र धर्मभूमि और अखण्ड शक्तिसे युक्त मातृभूमि है। देशकालके प्रभावसे कभी इसके विपरीत भी हो, तो फिर समय पाकर वह अखण्ड हो जायगी, यही शास्त्रकी आज्ञा है। भगवान् श्रीव्यासदेव-रचित भागवत तीन हैं। विष्णुभागवत, देवी भागवत और अणुभागवत। हिन्दुमात्रको इनको पढ़ना चाहिये। उनमेंसे अणुभागवतमें स्पष्ट लिखा है कि, कलिके अन्तमें जब कल्कि अवतार प्रकट होगा, तब फिर सत्ययुग उपस्थित हो जायगा और उस समय, भूमि, मनुष्य, समाज-रचना आदि सब बातें दैवी प्रेरणासे बदल जायंगी।

ध्यानमें रखने की बात यह है कि, लोग हिन्दुस्थानको ही भारतवर्ष माने बैठे हैं; परन्तु यह भ्रान्त धारणा है। वास्तवमें जम्बुद्वीपमें हिरण्मयवर्ष, उत्तर कुरुवर्ष, केतुमालवर्ष आदि नौ वर्ष हैं, उनमेंसे एक भारतवर्ष है, जो दुनियां या पृथ्वी कहाता है। यहीं मातृगर्भसे जीव उत्पन्न होते हैं। अन्य आठ दैवीवर्ष अर्थात् दैवीलोक हैं। पुराणोंमें उनकी कथा भी अलौकिक है। शास्त्रोंमें हमारी इस मातृभूमिके नाम भारत, भारतखण्ड और भारतद्वीप पाये जाते हैं। यही अखण्ड हिन्दुस्थान है।

१४—सेवाभाव।

हिन्दुधर्ममें भावतत्त्वको अन्तिम तत्त्व माना है। दर्शनशास्त्रमें जितने तत्त्व माने गये हैं, उनमें भावतत्त्व सबसे उन्नत है। भावतत्त्वके परिवर्तनसे दुःख सुखमें और असत्य सत्यमें परिणत हो जाता है। पापका पुण्यमें परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ, मृत्युसे बढ़कर कोई दुःख नहीं; परन्तु धर्मभावसे अनुप्राणित होकर जो प्राणत्याग करता है, उसका वह दुःख ही सुखमय हो जाता है। किसी व्यक्तिकी प्राणरक्षाके लिये या जगत्‌के हितके लिये सची धारणासे जो असदाचरण करता है, उसका वह असत्य भी सत्यमें परिणत हो जाता है। इसी प्रकार माता, भगिनी, कन्या, अपनी स्त्री, परायी स्त्री, सभी स्त्रीजाति ही है। परन्तु भावभेदसे ही उनका अधिकार निर्णीत होता है। वेद और शास्त्रोंने यह सिद्ध कर दिया है कि, श्रीभगवान् सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, वे सत्, चित् और आनन्द भावसे युक्त हैं। अतः भावतत्त्व सर्वोन्नत है।

सेवाकार्य साधारणकार्य है। यह कार्य यदि परोपकार बुद्धिसे किया जाय, तो वही सेवाकार्य महान् फलदायक हो जाता है। रोगीकी सेवा, शिष्यके लिये गुरुसेवा, सद्‌गृहस्थोंके लिये जनसेवा, देशसेवा, अतिथिसेवा, पत्नीके लिये पतिसेवा, भक्तोंके लिये भगवत्सेवा आदि सद्भावके बलसे स्वर्गकी तो बात ही क्या, मुक्ति तकको

प्राप्त करा देती है। केवल भाव सच्चा और शुद्ध होना चाहिये। भगवान्‌ने स्वयं निजी मुखसे गीतामें कहा है कि, मुझे कुछ अपेक्षा नहीं मुझे कुछ पाना नहीं, मेरा कोई अभीष्ट नहीं; तथापि लोककल्याणके लिये मैं कर्म करता ही रहता हूँ। यह जगत्प्रसिद्ध है कि, महाभारतकालमें धर्मराजके राजसूय-यज्ञमें श्रीभगवान्‌ने ब्राह्मणोंके पैर धोनेका काम अपने ऊपर लिया था।

१५—धर्मके सोलह अंग।

धर्मका स्वरूप बड़ा व्यापक है। एक परमाणुसे लेकर समस्त विश्वब्रह्माण्डको जो धारण करता है, उसको धर्म कहते हैं। परन्तु उस व्यापक आर्य-धर्मको हमारे पूर्वज महर्षियोंने सोलह अङ्गोंमें विभक्त किया है। उनका विवरण निम्नलिखित है। १—सदाचार धर्म। धर्मानुकूल शारीरिक व्यापार-को आचार कहते हैं। महापुरुषोंके आचरण और शास्त्रोंका आचार सदाचार कहलाते हैं। २—सद्विचार धर्म। आध्यात्मिक उन्नति करानेवाला उद्र्ध्वगामी विचार ही सद्विचार है। यही विचार अभ्युदय और मोक्ष देनेवाला है। इसी धर्मकी रक्षाके लिये आर्य लोग शिखा-सूत्र धारण करते हैं। ३—वर्णधर्म। अर्थात् जन्मसे जाति मानना। इसी धर्मके आश्रयसे आर्यजाति चिरजीवी हो सकी है, क्योंकि इसमें रजोवीर्यशुद्धिकी प्रधानता है। ४—सतीधर्म। आर्य नारियोंमें सतीत्व धर्मके महत्त्वकी विशेषता है। क्योंकि इसी धर्मके पालनसे वे त्रिलोकपवित्रकारिणी और त्रिलोकवन्दिता हैं। इस प्रकारकी विशेषता जगत्‌की किसी जातिकी स्त्रियोंमें नहीं पायी जाती है। ५—आश्रमधर्म। आश्रमधर्मका महत्त्व उभकी प्रवृत्ति और निवृत्तिकी पूर्णताके कारण है। ब्रह्मचर्याश्रममें प्रवृत्ति सिखायी जाती है, गृहस्थाश्रममें शास्त्रोक्त प्रवृत्तिकी चरितार्थता होती है, वानप्रस्थाश्रममें निवृत्ति सिखायी जाती है और संन्यासाश्रममें निवृत्तिकी पूर्णता हो जाती है। आश्रमधर्मके पालनसे जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति होती है। ६—दैवजगत्‌की शरण लेना। इस धर्मका अवलम्बन करती है, इसीसे आर्यजाति आस्तिक है। यह शास्त्रसिद्ध है कि, इस स्थूल-जगत्‌का चालक और रक्षक दैवजगत् है। दैव-जगत्‌के नाना पदधारियों पर विश्वास करना आस्तिकताका मूल है। इसीसे आर्यजाति पर ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघकी कृपा बनी रहती है। ७—अवतारतत्त्वमें निष्ठा। अवतार भगवान्‌के होते हैं, देवताओंके होते हैं और असुरों-के भी। भगवान्‌के अवतार अधर्मको नष्ट करके धर्मकी स्थापनाके लिये हुआ करते हैं। देवताओंके अवतार सामयिक संकट दूर कर धर्मसामञ्जस्यके लिये होते हैं और असुरोंके अवतार अधर्मको बढ़ानेके लिये ही होते हैं। भारतखण्ड भगवान् और देवताओंके आविर्भावकी भूमि है। ८—सर्वाङ्गपूर्ण उपासनापद्धति। आर्योंकी उपासना-प्रणाली योग और भक्तिसे परिपूर्ण है। चार प्रकारकी योगप्रणाली और भक्तिप्रणालीके सब अंगोंका इसमें समावेश हो जानेसे यह सर्वाङ्गपूर्ण है। इसीके अङ्ग और उपाङ्ग पृथ्वीके सब धर्मोंके सहायक हुए हैं और यह सर्वजीवहितकारी हैं। इसीसे मनुष्यमात्रके लिये यह अनुकरणीय है। ९—पीठपूजा। आर्यजातिका विश्वास है कि, सर्व-व्यापक प्राणमयकोशमें पीठकी स्थापना होती है; क्योंकि भगवान्‌की शक्ति भी सर्वव्यापक है। दैवी शक्ति द्वारा पीठका आविर्भाव होता है, इसीसे आर्यजातिमें मूर्ति आदि पीठोंकी उपासनाप्रणाली प्रचलित है। १०—शुद्धि-अशुद्धि-स्पर्शास्पर्शविवेक। आर्यजाति पञ्चकोशोंके सम्बन्धका विचार करने-वाली है। आत्मा पञ्चकोशोंसे आच्छन्न होनेके कारण उनकी शुद्धिके लिये दैवराज्यसे सम्बन्ध स्थापन करनेके विचारसे आर्यजाति शुद्धाशुद्ध और स्पर्शास्पर्शका विवेक करती है। इसीसे उसपर भगवान्‌का अनुग्रह हुआ करता है। ११—यज्ञ और महायज्ञ साधन। यज्ञके द्वारा देवता और मनुष्योंमें परस्पर सम्बन्ध-स्थापन होता है। जिस

धर्मोंके साधनसे दैवी राज्यका संवर्द्धन होता है, उसको यज्ञ कहते हैं। यज्ञका धर्मकार्य यदि किसी व्यक्तिके लिये किया जाय, तो वह यज्ञ है और यदि जाति या जगत्‌के हितके लिये किया जाय तो वह महायज्ञ कहाता है। आध्यात्मिक उन्नतिशील आर्यजातिका जीवन यज्ञमय होनेसे ही वह धर्मप्राण है। १२—वेद और शास्त्रपर विश्वास। आर्यजाति वेद और शास्त्रको नित्य मानती है। प्रत्येक कल्पारम्भमें वेद महर्षियोंको ज्योंकेत्यों शब्दरूपमें सुनाई देते और शास्त्र उनके अन्तःकरणोंमें भावरूपसे प्रकट होते हैं। वेद शास्त्रोंमें ही सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान निहित है। १३—संस्कार और कर्मपर श्रद्धा। संस्कार और कर्म, बीज और अंकुरके समान है। संस्कारसे कर्मकी उत्पत्ति होती है और कर्मके अनुसार ही पुनः संस्कार बनते हैं। इसी श्रद्धासे आर्यजातिको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है। १४—आवागमन और जन्मान्तरवादमें विश्वास। विवाह, दायभाग, श्राद्ध और तर्पण, इस चार प्रकारकी किलेबन्दीसे आर्यजातिका जन्म-मृत्यु और परलोकगमनरूपी आवागमनचक्र सुरक्षित रहता है। आवागमनचक्रमें भटकनेवाले जीवकी सहायताके लिये श्राद्ध, तर्पण, विवाह और दायभागव्यवस्था सर्वथा परिपालनीय है। इसीसे जीवका निरन्तर अभ्युदय होता है। १५—निर्गुण और सगुण उपासनाकी व्यवस्था। श्रीभगवान् जब सर्वशक्तिमान् हैं, तब वे निर्गुण और निराकार होनेपर भी भक्तोंके कल्याणार्थ सगुण अर्थात् साकाररूप भी धारण कर सकते हैं। अधिकारिभेदसे ऐसा मानना सर्वहितकारी भी है। क्योंकि सभी उपासक निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापक भगवद्भावकी धारणा नहीं कर सकते। अतः यह मानना ही पड़ता है कि, भगवान् निर्गुण हैं और सगुण भी,—निराकार हैं और साकार भी। १६—मुक्तिप्राप्ति। आर्यधर्म सर्वाङ्गपूर्ण होनेके कारण वह मुक्तिका प्राप्ति-स्वीकार करता है। अर्थात् जीव शास्त्रोक्त साधनके द्वारा जीवनमरणके चक्रसे छूट भी सकता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो सकता है।

इसप्रकार आर्योंका धर्म सोलह कलाओंसे पूर्ण होनेके कारण आर्यजाति जगद्गुरु है। संसारकी सब सभ्यजातियोंके विद्वानोंने भी एकमतसे यह स्वीकार भी किया है कि, प्राचीन आर्यलोग ही जगत्‌के गुरु थे।

१६—भूतप्रेतविचार।

मनुष्य पूर्णावयव जीव है। इसलिये कर्म करनेमें उसे बहुत कुछ स्वतंत्रता है। उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज पशुओंको वह स्वतंत्रता नहीं है; क्योंकि वे पूर्णावयव नहीं हैं। पूर्णावयव जीव होनेसे मनुष्य जब स्थूलशरीर छोड़कर लोकान्तरमें जाता है, तब यदि वह सावधान रहे, तो उसे प्रेतलोकमें नहीं जाना पड़ता है। असावधान मनुष्य अवश्य जाता है। प्रायः देहान्तके समय मनुष्य असावधान हो ही जाता है। इसलिये हिन्दुधर्ममें मृतमनुष्यका एक वर्ष तक प्रेत-श्राद्ध करनेकी विधि है। श्राद्धादि धर्मकार्यसे मृतात्माको सहायता मिलती है और वह प्रेतयोनिसे छुटकारा पाजाता है। प्रेतकी अवस्थामें, स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध अपने पूर्वसंस्कारके अनुसार कभी कभी तीव्र वासनासे युक्त होकर उसी तरहका शरीर धारण कर लेते हैं। यदि प्रबल प्रेतात्मा हो, तो जैसा चाहे वैसा शरीर धारण कर सकते है; परन्तु वह शरीर क्षणिक होता है। मनुष्य मरते समय प्राणमय कोश, मनोमयकोश, विज्ञानमयकोश और आनन्दमय कोशको लेकर लोकान्तरमें चला जाता है, केवल अन्नमयकोश अर्थात् स्थूलशरीर यहां पड़ा रहता है। संस्कार उसके साथ रहते हैं, उनके अनुसार यदि उसकी प्रबल वासना हो, तो पञ्चमहाभूतोंके उपादानसे उसका शरीर गठित हो सकता है और सब अवस्थामें वायुके आधारपर वह अपने प्रेतशरीरके साथ रहता है। क्योंकि

प्रेतत्व अवस्थामें प्राणमयकोशही उसका एकमात्र आश्रय रहता है। इस कारण दुष्टप्रेत किसीको मार नहीं सकता; परन्तु डरा सकता है और वायुकी सहायतासे किसीको धका भी दे सकता है। यदि तीव्र वासना हो और शक्तिमान् प्रेत हो, तो वह शरीर-धारण कर दृष्टिगोचर हो सकता है, पास आ सकता है, बात भी कर सकता है। कभी कभी देखा जाता है कि, कितने ही स्त्री-पुरुष प्रेतसे पछाडे जानेके कारण बड़ा कष्ट पाते है, प्रेत इस प्रकारका आक्रमण उन्हीं नर-नारियों पर करता है, जिनकी आत्मा दुर्बल होती हैं। उनके अन्तःकरणमें वह प्रवेश कर जाता है और अपनी इच्छाके अनुसार उनसे कार्य कराता है। इसीको प्रेतावेश कहते हैं। प्रेतयोनि दुःखयोनि है। उसमें इच्छाएँ बनी रहती हैं; परन्तु उनकी पूर्ति नहीं कर सकता, इस कारण दुःख पाता है।

हिन्दुधर्ममें प्रेतत्वसे निवृत्ति पाने, प्रेतका निवारण करने, प्रेतसे रक्षा पानेके अनेक उपाय बताये गये हैं। बलवान् आत्मावाले व्यक्तिको प्रेत कष्ट नहीं दे सकता। अब अमेरिका और युरोपमें भी प्रेततत्त्वके सम्बन्धमें विशेष चर्चा होरही है। प्लंचेटसे लिखवाना, सर्कल बनाना, टेबल रेपिंगके द्वारा संकेतसे बात करना इत्यादि जो बातें वहां प्रचलित होरही हैं, वे सब इसी प्रेतलोकसे सम्बन्ध रखती हैं। प्रेतत्वकी प्राप्ति ही न हो, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भगवान्की शरणमें जाना चाहिये और प्रेतसे भय न हो, इसलिये भगवान्का नाम स्मरण करना चाहिये। भगवन्नामके उच्चारणमात्रसे प्रेत भाग जाता है।

१७—महात्माके लक्षण।

आजकल 'महात्मा' शब्द चाहे जिस पुरुषके लिये व्यवहृत होने लगा है; परन्तु मनुष्य किन लक्षणोंसे युक्त होने पर महात्मा कहला सकता है, यह जान लेना आवश्यक है। साधारण मनुष्य महात्मा हो नहीं सकता। जिस महान् व्यक्तिमें कर्मयोगके विशेष लक्षण, भक्तियोगके विशेष लक्षण और ज्ञानयोगके विशेष लक्षण स्वभावतः प्रकाशित हुए हों, वही महापुरुष 'महात्मा' पद-वाच्य हो सकता है। कर्मयोगके लक्षणोंमें परोप-कारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति, परमोपकार अर्थात् मनुष्यकी आध्यात्मिक उन्नति करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति और अहंकार तथा स्वार्थ छोड़कर, जगत्को भगवान्का स्वरूप मानकर सेवाबुद्धिसे निष्काम कर्म करनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो और जिस महापुरुषमें ये लक्षण स्वभावतः प्रकाशित हों, वही कर्मयोगी कहाता है। इसीप्रकार श्रीभगवान्के चरणोंमें जिसकी ऐकान्तिकी भक्ति हो, जो भगवान्ही सब कुछ हैं ऐसी धारणा करता हो, जो भक्तिमान् योगी निरन्तर दास्यासक्ति, सख्या-सक्ति, वात्सल्यासक्ति आदि रसोंका आस्वादन करता हुआ श्रीभगवान्का गुण गान करने और उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेकी दृढ़ निष्ठा रखता हो, वही भक्तियोगका अधिकारी है। इसी प्रकार जिस महापुरुषमें तत्त्वज्ञानका उदय होकर निम्नलिखित श्रीभगवद्गीतोक्त ज्ञानीके लक्षण स्वभावसे ही प्रकाशित हुए हों, वही ज्ञानयोगी कहा जा सकता है। वे लक्षण इस प्रकार हैं:—

अमानित्व अर्थात् अपनेको श्लाघनीय नहीं समझना, दम्भहीनता अर्थात् मैं बड़ा धार्मिक हूं, ऐसा नहीं समझना, अहिंसा अर्थात् जीवमात्रकी हत्या नहीं करना, और न किसीको दुःख या उद्वेग पहुँचाना, क्षमावान् होना, आर्जव अर्थात् सरलता बाहर-भीतरसे एक समान होना, आचार्य उपासना अर्थात् श्रीगुरुदेवकी सेवा, शौच अर्थात् अन्तःशुद्धि और बहिःशुद्धि, स्थैर्य अर्थात् शारीरिक चाञ्चल्यका त्याग, आत्मविनिग्रह अर्थात् मनका संयम, इन्द्रियोंके विषयोंसे स्वाभाविक वैराग्य, अहंकार न होना, जन्म-मृत्यु-जरा-रोग आदिमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन त्रिविध दुःखोंको स्वभावतः अनुभव करना स्त्री-पुत्र-गृह-ऐश्वर्य आदि विषयोंमें आसक्ति न होना, इष्ट

और अनिष्टमें चित्तका समभाव होना, श्रीभगवान्में अनन्य अटल भक्ति होना, एकान्तसेवी होना, जनसमूहमें जानेसे स्वाभाविक अरुचि होना, आत्मज्ञानमें स्थिरनिष्ठा और तत्त्वज्ञानकी आलोचना ये सब ज्ञानके लक्षण हैं। जिस महापुरुषमें ज्ञानकी पूर्णता होगी, उसमें ये ज्ञानके लक्षण स्वाभाविकरूपसे प्रकाशित होंगे। इसप्रकार जिस भगवत्कृपाप्राप्त महापुरुषमें पूर्वोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगके लक्षण स्वभावतः प्रकाशित हुए हों, वही महात्मा कहाने योग्य है।

१८—भ्रातृभाव।

पृथ्वीके सब धर्ममार्ग और सब देशके अधिवासियोंमें भ्रातृभाव स्थापनकी चरितार्थता जैसी वर्णाश्रमधर्मी हिन्दुओंमें वेद और शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार दिखाई पड़ती है वैसी और किसी धर्ममतमें अथवा अन्यदेशवासियोंमें न दिखाई पड़ती है और न सम्भावना है। हिन्दूशास्त्र कहता है कि उदारचरित मनुष्य वही है कि जो सारे संसारको अपना कुटुम्ब माने और किसी धर्म अथवा किसी धर्मी अथवा किसी देशवासीके लिये परायापन चित्तमें आने न दे। हिन्दूधर्मके पूज्यपाद महर्षियोंने बार बार यह कहा है कि जो धर्म अन्य किसी धर्मको बाधा दे वह सद्धर्म नहीं है, जो सब धर्मोंका अविरोधी हो वही सद्धर्म है। वेद और शास्त्रोंमें यह दृढ़ आज्ञा है कि घरमें आया हुआ अतिथि चाहे स्वधर्मी हो चाहे विधर्मी, चाहे सभ्य हो चाहे असभ्य, चाहे राजा हो चाहे दरिद्र, चाहे आर्य हो चाहे अनार्य, चाहे किसी जाति, किसी धर्म और चाहे किसी अधिकारका मनुष्य हो उसको साक्षात् ईश्वरका प्रतिनिधि समझकर उसकी ईश्वरवत् पूजा करनी चाहिये। और अतिथि-सेवाके अनन्तर जो अन्न बचे उसे पवित्र अन्न मानकर ग्रहण करना चाहिये। इन सब बातोंसे यही सिद्ध होता है कि विभिन्न धर्मियों और विभिन्न मनुष्य-जातियोंमें सच्चा भ्रातृभाव स्थापन हिन्दू जाति ही कर सकती है। हिन्दू-जातिकी प्राचीन संस्कृतिके अनुसार सब वर्णाश्रमधर्म माननेवाले, सनातन-धर्मके सिद्धान्तपर चलनेवाले सब सम्प्रदायके लोग हिन्दुस्तानके सब मुसलमानधर्मी, इसाईधर्मी, पारसीधर्मी, बौद्धधर्मी आदि सभी भाई भाई हैं। सनातनधर्मकी उदार शिक्षा प्रणाली और वर्णाश्रमधर्मकी पंचमहायज्ञ आदि साधनकी दीक्षा-प्रणाली जितनी अच्छी तरहसे प्रचलित होगी उतना ही सार्वजनिक भ्रातृभाव बद्धमूल होता रहेगा। हिन्दुस्तान सदासे भ्रातृभाव स्थापनका देश है। ऐसे हिन्दुस्तानमें सब धर्म और सब श्रेणीके मनुष्योंमें भ्रातृभाव नष्ट करनेके लिये जो व्यक्ति अथवा जो राजनैतिक शक्ति अथवा संस्था प्रयत्न करेगी वह स्वयं विपन्न होकर नष्ट हो जायगी; क्योंकि भ्रातृभावकी संस्कृति हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियोंमें स्वाभाविक है। स्वाभाविक प्रगति ईश्वरइच्छाके अनुकूल होती है। अतः ईश्वरइच्छाके विरुद्ध जो काम करेगा वह अन्तमें अवश्य गिरेगा। भ्रातृभाव भाव-राज्यका विषय है। भाव-राज्यका सम्बन्ध अन्तःकरणसे है। अन्तःकरण यदि शुद्ध पवित्र भावोंसे भावित हो, तभी वह जाति या व्यक्ति भगवान्को सबका परम पिता मानकर भगवद्भक्तिके बलसे प्रभावित होकर उदार अन्तर्दृष्टिको प्राप्त होता है और तभी सच्चे हृदयसे वह जगतको अपना कुटुम्ब मानकर मनुष्यमात्रमे भ्रातृभाव स्थापन करके अपने जीवनको धन्य कर सकता है।

१९—शुद्धाशुद्ध विवेक।

प्रायः नवशिक्षित लोग शंका किया करते हैं कि, अत्यन्त उदार मानी जानेवाली हिन्दु संस्कृतिमें पक्षपात क्यों दिखाई पड़ता है? ऐसी शंका वही कर सकते हैं जो सनातनधर्म और वर्णाश्रमधर्मके वैज्ञानिक रहस्योंको अच्छी तरह समझते नहीं हैं। वर्णाश्रमधर्मी हिन्दुओंमें और उसके सदाचारोंमें

शुद्धाशुद्ध-विवेककी व्यवस्था भी स्वाभाविक है। और दूसरी ओर हिन्दुओंका शुद्धाशुद्ध-विवेक सायन्स और दर्शनशास्त्र दोनोंके द्वारा अनुमोदित है। हिन्दुओंकी प्राचीन संस्कृति और उसके धार्मिक सदाचार यह बताते हैं कि हिन्दुओंका शुद्धाशुद्ध-विवेक उनकी प्राचीन संस्कृतिके साथ ऐसा ओतप्रोत है कि उनका शुद्धाशुद्ध विवेक जैसा कि आजकलके अविवेकी राजनैतिक लोग चाहते हैं वैसा उनमेंसे अलग हो ही नहीं सकता है। हिन्दू जातिकी माता, भगिनी, कन्या आदि प्रतिमास चार दिनके लिये अशुद्ध और अछूत हो जाती है। जो धर्मशास्त्र ही नहीं मेडिकल सायन्स आदि द्वारा भी प्रमाणित किया गया है। हिन्दू जातिके शरीरमें ही नाभीके ऊपरका अंश शुद्ध और नाभीके नीचेका अंश अशुद्ध समझा जाता है। इस कारण उनका धर्मशास्त्र आज्ञा देता है कि अगाछेसे जब नाभीके नीचेका अंश पोछा जाय तो उसी अंगोछेसे बिना उसको जलसे धोये ऊपरका अंश नहीं पोछना चाहिये। यह विषय भी काल्पनिक नहीं है बल्कि वैदिक दर्शनशास्त्रके सात्त्विक और तामसिक दोनों विभागके अनुसार धर्म और अधर्ममूलक वैदिक विज्ञानसे सिद्ध है। हिन्दुओंकी प्राचीन संस्कृति और धर्मशास्त्रके अनुसार सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय मनुष्यका शरीर ही अशुद्ध नहीं होता है बल्कि घरके खानपानके पक्व द्रव्य तक अशुद्ध हो जाते हैं। यह विषय ज्योतिषविज्ञान, राहुग्रस्त चन्द्र और सूर्यके शक्तिविज्ञानसे अच्छी तरह प्रमाणित है। इन थोड़ेसे उदाहरणोंसे दूरदर्शी विद्वान्मात्र ही समझ सकेंगे कि हिन्दुओंका स्पर्शास्पर्श-विवेक और शुद्धाशुद्धविवेक-विज्ञान उनकी अतिप्राचीन और अतिमंगलकर संस्कृतिके अनुसार स्वाभाविक है। इस कारण इन बातोंको हिन्दुस्तानके हिन्दुओंकी संस्कृतिसे निकालनेका प्रयत्न जो करते हैं वे दार्शनिक विद्वानोंके निकट हास्यास्पद होते हैं। दूसरी ओर हिन्दुओंका शुद्धाशुद्धविवेक और स्पर्शास्पर्श विवेक मनुष्यजगत्‌में भ्रातृभाव स्थापनका विरोधी नहीं हो सकता। आज दिन संसार भरमें संसारके नाशकारी जो सब ओर घोर युद्ध हो रहे हैं इस युद्धमें दोनों पक्षके लोग शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्शविवेकके माननेवाले नहीं है; यदि शुद्धाशुद्धविवेक ही भ्रातृभाव स्थापनका बाधक होता तो एक दूसरेको नष्ट करनेवाली रणदेवीका घोर नृत्य आज दिखाई नहीं पड़ना चाहिये था। हिन्दुस्तानके आचारवान् हिन्दू सद्‌गृहस्थमें जन्म लिये हुए पाश्चात्य सभ्यताके पक्षपाती सज्जनमात्र ही अपने घरकी संस्कृति पर विचार कर सकते हैं। वे देखेंगे कि हिन्दू-आचारवान् सद्‌गृहस्थोंमें हिन्दू सती पत्नी पतिके साथ नहीं खाती है वह पतिका उच्छिष्ट प्रसाद ग्रहण करना अपने धर्मानुकूल समझती है। दूसरी ओर पत्नीका उच्छिष्ट पति नहीं खाता है। हर महीनेमें पति कुछ समयके लिये अपनी स्त्रीको स्पर्श करना पाप समझता है; तो क्या पति पत्नीमें प्रेमका मधुर और पवित्र दृश्य हिन्दुस्तानके हिन्दू गृहस्थोंमें दिखाई नहीं पड़ता है? इस प्रकारसे शुद्धाशुद्ध विवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक हिन्दुओंकी प्राचीन संस्कृति और सदाचारमें कपड़ेमें धागाकी तरह ओतप्रोत है। ऐसा होनेपर भी पतिप्रेममें मग्न सीता सावित्री आदि, भ्रातृप्रेममें मग्न भरत, लक्ष्मण आदि प्रेमिका और प्रेमिकोंके अनेक उदाहरण हिन्दू इतिहासमें पाये जायँगे। अतः हिन्दुओंका शुद्धाशुद्ध-विवेक और स्पर्शास्पर्श-विवेक जगतमें भ्रातृभाव स्थापन करनेके विरोधी नहीं है और न हो सकता है।

२०—ब्राह्मणकी रक्षासे सबकी रक्षा।

परमपूज्यपाद भगवान् व्यासदेवजी ने कहा है कि सृष्टिके आदिकालमें कश्मीर प्रदेशके देविकानदीके तटपर प्रथम ब्राह्मणजाति की सृष्टि हुई थी। वैदिक विज्ञानके अनुसार प्रथम सृष्टिपूर्ण होती है। इस कारण देवलोकमें सनक

सनन्दन आदि परमहंसोंकी सृष्टि पहले हुई थी और मनुष्यलोकमें भी पहले ब्राह्मणोंकी सृष्टि हुई थी। ब्राह्मण ही पूर्णावयव और आध्यात्मिक अधिकारसे युक्त मनुष्य हैं। इसी कारण मनुसंहितामें लिखा है कि इस देशके ब्राह्मणोंके द्वारा सम्पूर्ण मनुष्य-जगतको ज्ञानकी प्राप्ति होगी। ब्राह्मण ही मनुष्यके आदिगुरु हैं। मनुष्यकी सभ्यताके लिए जिन विद्याओंकी और जिन शास्त्रोंकी आवश्यकता है उन सबको अग्रजन्मा ब्राह्मणोंने प्रकाशित किया था। इसी कारण शास्त्रों में कहा है कि चारों वर्णों और चारों आश्रमोंकी रक्षा ब्राह्मणोंके द्वाराही होती है। जिस देशमें ब्राह्मण नहीं रहते हैं या जाते हैं वह देशवासी कालान्तरमें अनार्य हो जाते हैं और अन्तमें वर्बर तथा असभ्य होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। इस कारण ब्राह्मणकी रक्षा पर ही सब कुछ निर्भर है।

ब्रह्मचिन्तन जिनका स्वभाव है, तप जिनका धन और ऐश्वर्य है, शास्त्रविचार और शास्त्रप्रचार करना जिनका नित्यकर्म है, उञ्छवृत्ति और अजगरीवृत्ति आदि द्वारा जो अपना निर्वाह करते हैं, बनवासी होकर पर्णकुटीरमें निवास करते हुए जगतका हितचिन्तन करना जो अपना कर्त्तव्य समझते हैं; ऐसे महापुरुषगण ही जगद्गुरुपदके अधिकारी हो सकते हैं। इस समय ऐसी ब्राह्मणजाति की कैसी अधः पतित दशा है वह सबके सामने प्रत्यक्ष है। ब्राह्मणजाति के पतनसे ही अन्यवर्णों और चारों आश्रमों का पतन हुआ है। जब तक ब्राह्मण-जातिकी उन्नतिका उपाय नहीं सोचा जायगा तब तक हिन्दू जातिका मंगल होना असम्भव है। कलियुगमें संघशक्तिके द्वारा सब बड़े बड़े कार्य हो सकते हैं। अतः पंचायती संघशक्तिकी प्राप्ति करने के लिये प्रबल उद्योग होना चाहिये, परन्तु यह सबको स्मरण रखना चाहिये कि ब्राह्मणजातिको उठानेका प्रयत्न किए बिना हिन्दू-जातिकी उन्नति असम्भव है। अतः इस समय सबसे पहले ब्राह्मणजाति की उन्नतिकी ओर हिन्दू राजा, हिन्दू धर्माचार्य तथा हिन्दू समाज-पतियों और नेताओंको सबसे पहले ध्यान देना उचित है।

आज दिन विद्यादानके जितने प्रतिष्ठान हैं उन सबमें धर्मशिक्षा देने का कोई भी आयोजन नहीं है। संस्कृतविद्यालयों में भी केवल भाषाज्ञान कराया जाता है. उनमें भी धार्मिकशिक्षा देनेका कोई नियम नहीं रखा गया है। कमसे कम संस्कृतपाठशालाओं महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयोंमें जिनमें ब्राह्मणके बालक ही अधिक संख्या में विद्याभ्यास करते हों, उनको कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड की साधारण योग्यता प्राप्त करनेकी व्यवस्था अवश्य रहनी चाहिये। ग्रामोंमें पौरोहित्यके व्यवसाय करनेवाले ब्राह्मणोंको कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड के छोटे छोटे ग्रन्थ अनुवाद सहित छपवा कर वितरण करना चाहिये और जो ऐसे ग्रन्थ न पढ़ते हों ऐसे ब्राह्मणोंसे पौरोहित्य कार्य नहीं लेना चाहिए। हिन्दू समाजपति और हिन्दू धर्माचार्य, तथा नेतृवृन्दोंसे निवेदन कर अयोग्य व्यक्तियोंको तिरस्कृत और योग्य व्यक्तियोंको पुरस्कृत कराकर हिन्दूसमाजका धर्मके सम्बन्धसे; सुव्यवस्थित बनानेका यत्न होना चाहिये। जो ब्राह्मण कमसे कम गायत्री न जानता हो और नियमित जप न करता हो उसके साथ शूद्रवत् वर्त्ताव करना चाहिये, चाहे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रजातियोंमे ऐसी दृढ़ व्यवस्था न हो सके; परन्तु ब्राह्मणजातिमें एक सदाचारी विद्वान् और अनुष्ठानशील ब्राह्मणश्रेणीका सम्प्रदाय अलग सुरक्षित रहना चाहिये।

शास्त्रोंमें कहा है कि कलियुगमें पंचायती रूपी संघशक्तिके द्वारा ही सब बड़े-बड़े कार्य सुसिद्ध होंगे। आजकलको पृथ्वीके सब देशोंकी मनुष्यजातिमें संघशक्ति से ही सब कार्य सम्पादित होते हैं। राजाविरहित पंचायती राजशासन प्रणालीका प्रचार जो सब देशोंमें देखने आ रहा हैं; वह पूज्यपाद महर्षियोंकी भविष्य-वाणीका यह ज्वलन्त दृष्टान्त है। हिन्दुस्तानमें तथा हिन्दू जातिमें नाना-

श्रेणियोंकी सभाओं की सृष्टि होकर अनेक प्रकार के कार्य सुसम्पन्न हो रहे हैं; इसी संघशक्तिके सिद्धान्तके अनुसार भारतसरकार भी प्रान्तीय-मंत्रिमण्डल और भारत केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की स्थापना कर रही है। इस सन्धिमें आत्मरक्षा करने के लिये हिन्दू-प्रजा और अहिन्दूप्रजा संघ-शक्तिके विभिन्न भाग निकाल रही है। जिस प्रकार व्यक्तिगत रागद्वेषसे लाभ और हानिकी सम्भावना होती है; वैसे ही पंचायतीदलसे भी समझना चाहिये। जैसे द्वेषकरनेवाला व्यक्ति शत्रुता करके क्लेश दे सकता है; वैसे ही एक पंचायती दलसे भी भयकी सम्भावना रहती है। इस पंचायतीशक्तिके आक्रमणसे आत्मरक्षा करनेके लिये वर्णाश्रमी हिन्दू जातिको भी एक विशेषदल बनाकर अपनेमें संघशक्तिकी उत्पत्ति अवश्य करनी चाहिये। हिन्दूजाति संघशक्तिके अभावसे ही जनसंख्या में सबसे अधिक होने पर भी सबसे दुर्बल दिखाई पड़ती है। अतः हिन्दू जातिमें संघ-शक्ति प्राप्त करनेका प्रबल उद्योग होना चाहिये। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि हिन्दूजातिके अभ्युदयके लिये सबसे पहले ब्राह्मणजातिका अभ्युदय करानेका प्रबल प्रयत्न सब ओरसे होना चाहिये।

परिवर्तन

(कहानी)

(विश्वनाथप्रसाद जायसवाल)

अट्टालिकाके मध्य एक सजे हुए कमरेमें बैठी हुई शीला उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी अपने मामाकी‥ वह उत्सुक थी हृदयके द्वन्द्वका साम्राज्य था वह सोच रही थी कब हाई स्कूलका परीक्षा फल निकलेगा और कब वह अपने परिश्रमके फलका रसास्वादन कर सकेगी। समय अत्यधिक व्यतीत हो चला था वह प्रतिक्षण अपने कलाई पर बंधी हुई घड़ीको देखती और पुनः प्रतीक्षा करने लगती अपने मामाकी‥‥रात्रि समाप्त हो चुकी थी ट्रेनका समय भी व्यतीत हो रहा था पर मामाका कहीं भी पता न था। शीला एका एक उठी और चल पड़ी स्टेशनकी ओर। ट्रेन घण्टे भर लेट थी शीला लौट पड़ी पुनः अपने घर और प्रतीक्षा करने लगी अपने मामाके आगमनका। रात्रिके अन्तिम प्रहर भी उसे अपनेको निन्द्रा देवीको समर्पित करना पड़ा, और वह सो गई।

× × ×

शीला शीला आवाज़ सुनते ही शीला उठ खड़ी हुई वह अव्यवस्थित थी, अलसाई हुई आँखें भी कुछ देखनेकी उत्सुकतामें इधर उधर व्यस्त थी शीलाको मामाकी वह चुप्पी असह्य मालूम पड़ रही थी आखिरी अपने धैर्यकी सीमाको छोड़कर शीला बोल पड़ी 'मामा" बताओ भी क्या' विनोदी मामा पूछ बैठे।

'परीक्षा फल' शीलाने उत्सुकता मिश्रित स्वरमें कहा। 'ओह' । यह तो मैं भूल ही गया था। तुम प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हो शीला और मामाने कहा। अपने सूटकेससे एक पत्रिका की फाईल उसे दे दी। शीलाके नाजुक हाथ पन्नोंके उलटनेमें व्यस्त हो गए। ३४३१० प्रथम श्रेणी (S Rumari) पत्रिकामें अपने फलको देखकर शीला प्रसन्न हो उठी और गिर पड़ी मामाके पैरों पर। शीलाको अपने वे दिन याद आगए जब वह गाँवमें थी और मैंसके मामा उसे यहाँ पढ़नेके लिए लाए थे। वह सोच रही

थी जब कि उसके मामाने कहा था 'बेटी' मैं तुम्हें ले तो चल रहा हूँ, पर मेरी लाज रखना और अच्छी तरह पढ़ना। वह इसी तरहसे न जाने क्या क्या सोचती रहती यदि उसके मामा उसे पैरोंसे उठा न लेते। वृद्ध मामाके भी नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छलक आये और वे बोल उठे "सुखी रहो बेटी"। शीला प्रसन्न थी उसे आज चारों तरफ नवीनता मालूम पड़ रही थी वह उत्सुक थी अपने पितासे मिलनेको ·········तारद्वारा उसने इस शुभ समाचारको पिताके पास भेज दिया और लिखा कि "मैं जल्दीसे आरही हूँ" भोजन समाप्त हो चुका था। मामा हाथ धो रहे थे। शीलाने कहा "मामा मैं घर जाऊँगी"।

'जरूर बेटी' मामाने कहा—तुम दो वर्षों से घर नहीं गई अवश्य जाओ और शीला तैयारी करने लगी घर जानेकी।

× × ×

'बाबूजी' तार? डाकियेने तारका लिफाफा शंकरलालजीके हाथमे दे दिया। तारको पाकर शंकरलालके हृदयमें तरह तरहकी भावनायें जागृत हो उठीं और संशकित हृदयसे उन्होंने लिफाफा खोला। तारमे शीलाकी उत्तीर्णताका समाचार था। शंकरलाल प्रसन्न हो उठे और समाचारको शिलाके माँको सुनानेके लिये चल पड़े।

आंगनमें शीलाकी माँ खड़ी थी हाथमें भगवान्‌की पूजाके लिए पुष्प लिए वह मन्दिरकी ओर जा रही थी, तभी शंकरलाल उसकी पुत्रीकी सफलताका समाचार सुनाने पहुँचे।

'सुना तुमने' शंकरलालने अपनी पत्नीसे कहा! 'क्या'

शीला पास हो गयी।

माँकी प्रसन्नताका पारावार न रहा वह पुलकित हो उठी, पर उसके हृदयमें एक विषादकी छाया थी और उस छायाके पड़नेसे उसका प्रसन्न मन कुछ खिन्न हो उठा। वह अपने पतिसे बोल उठी "जानते हो शीला सयानी हो गई उसके विवाहकी भी चिन्ता होनी चाहिए।" इस बातको सुनकर शंकरलालका भी हृदय व्यथित हो उठा। बेटीके विवाहकी चिन्ता उन्हे सताने लगी। अपनी गरीबीका दृश्य उनके सामने नाच उठा केवल सौ रूपयेकी क्लर्कीसे बेटीके दहेज़का कैसे प्रबन्ध हो सकता है। यह तो पारिवारिक खर्चमें ही समाप्त हो जाता है। प्रसन्नताका स्थान विषादने ग्रहण कर लिया और वे इस समस्याके समाधानका साधन ढूढ़ने लगे और पत्नी चली गई मन्दिरकी ओर शायद इस समस्याके हलके लिए भगवान्‌से प्रार्थना करने।

× × ×

शीला मामाके यहाँसे घरपर आ चुकी थी। शंकरलाल बेटीको देखकर और भी वरोंके खोजमें तत्पर हो गये पर उन्हें योग्यवर नहीं मिला। जहाँ कहीं भी जाते, केवल रूपयेकी समस्या उनके समक्ष उपस्थित हो जाती और वे उलटे पैर लौट आते उस स्थानसे।

इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गए। शंकरलालकी गरीबीने उन्हें योग्यवरकी आशासे वञ्चित कर दिया और सुन्दर सी शीलाका जीवन-सूत्र वे किसी अयोग्यके हाथ देना नहीं चाहते थे। समस्या और चिन्ताने शंकरलालके स्वास्थ्यको आधा कर दिया, पर फिर भी वे तत्पर थे दृढ़ थे योग्यवरके अन्वेषणमें।

कई मास और व्यतीत हो गये, पाँच हजार के तिलकको तय कर एक दिन शंकरलाल अपने घर आये। शरीर थका था, मस्तिष्क चिन्ता ग्रस्त था। पत्नीके साथमें अपनी टोपी देते हुए बोल उठे "तय हो गया" पत्नीके मुखपर प्रसन्नताकी एक रेखा खिंच गई और वह पूछ बैठी "कितना तिलक देना होगा"

'पाँच हजार' शंकरलालने अपने थके शरीरको आराम कुर्सीपर रखते हुए कहा।

'इतना अधिक' कहाँसे देगें। पत्नीने दबेस्वरसे पूछा। घर-खेती बेचकर। आखिर लड़कीका व्याह तो करना ही होगा वह कुवांरी तो रहेगी नहीं। शंकरलालके स्वरमें क्रोध था। पत्नी पतिको क्रोधित देख चली गई और शंकरलाल अपने बेटीके भाग्यका विचार करनेमें निमग्न हो गये।

× × ×

शीलाका व्याह सेठ हीरालालके एक मात्र सुपुत्र श्यामसे हो गया था। शीला अपने निर्धन माता पिताके घरसे बिदा होकर वैभव शाली पतिके घरमे आगई थी, पर उसे चिन्ता थी अपने पिताकी। वह प्रसन्न न थी क्योंकि वह जानती थी कि, उसके पिता और माता अब कर्जेके बोझसे बोझिल होकर चिन्तित रहेगें। वह भी सभ्य तथा शिक्षित गृहणी थी, पर पति एक बेपरवाह कामुक! शीला चिन्तित थी अपने पतिकी अवस्थासे वह संतुष्ट नहीं थी। वह उसमें परिवर्तन चाहती थी। पर लाचार थी वह सब कुछ देखनेपर चुप रह जाती पर आखिर वह भी मनुष्य थी। उसमें भी ज्ञान था, उसका भी अधिकार था, वह भी पत्नी बन कर इस घरमे आयी थी, उसे भी गृहलक्ष्मी कहलानेका सौभाग्य था, और अपने पतिको अच्छा रखना उसका कर्तव्य था। उससे अब अपने पतिका यह व्यवहार असह्य हो उठा और एक दिन

चली जाओ अपने घर।

आप यह ठीक नहीं कर रहे हैं।

तुम मेरे बीचमे बोलनेवाली कौन हो? श्यामके स्वरने उसके शरीरमें आग लगा दी। शराबके नशेमें वह अपने व्यक्तित्वको भूल चुका था। मानवताकी जगह दानवताका साम्राज्य उसके हृदयमें व्याप्त था। सभ्यता शिष्टता, लोक-लज्जा उससे दूर हो चुकी थी और वह बकता जा रहा था। पतिकी ऐसी अवस्था देखकर शीला चुप हो चुकी थी। उसने संपूर्ण स्थिति समझ ली और कमरेसे चली गई। शीलाका कमरेसे इस प्रकारसे जाना श्यामको अच्छा न लगा क्योंकि वह उससे झगड़ा करना चाहता था। पर अपने क्रोधको मनमे ही रख वह सोने चल पड़ा।

दिन इसी प्रकार बीतते जा रहे थे। श्यामकी अवस्था दिन प्रतिदिन बिगड़ती गयी वह अब शराब और वेश्याओंके पैरोंकी झनकार सुननेमे व्यस्त था। न उसे घरकी परवाह थी न बाहरकी। सेठ हीरालाल बेचैन थे पुत्रके इस व्यवहारसे। शिलाका तो सौभाग्यही समाप्त हो रहा था। वह दिन-रात रोती रहती थी उसे कोई भी इस समस्याका समाधान नहीं मिल रहा था। वह चिन्तित थी अपने पतिके इस व्यवहारसे और एक दिन वह पूछ बैठी, आप ऐसे क्यों रहते हैं।

श्याम इस प्रश्नको सुननेकी आशा न रखता था और अचानक इस प्रश्नको सुनकर वह उत्तर देनेमें असमर्थ हो गया। उसने देखा सामने शीला खड़ी है पर·· उसमें परिवर्तन था। वह पहलेवाली शीला न थी लज्जाके स्थान पर शेखी थी गालोंपर पाउडर था, ओठोंमे लाली थी कानोंमें आईरन और गलेमे लेकलेश था। हाथमें घड़ी थी और सादी साड़ीके स्थानपर शरेमो साड़ीको धारण किया था। श्याम शीलाके इस स्वरूपको देखकर ठकसा हो गया। साक्षात् सौन्दर्यमयी प्रतिमाको अपने समक्ष देखकर वह भूल गया अपनेको और शीलाके सौन्दर्यको निरखने लगा।

आप मेरी तरफ क्या देख रहे है शीलाने श्यामका ध्यान भंग कर दिया। वह लज्जित हो गया। कुछ भी नहीं। कहो क्या कहना है। एक ही साँसमे श्यामने कहा।

आप मुझसे नीचे नीचे क्यों रहते हैं ?

मैं !

जी हाँ आप। शीलाने बीच ही में कहा।

श्यामके पास कोई उत्तर न था वह मुग्ध था शीलाके इस सौन्दर्यपर।

वह हँस पड़ा और शीलाका हाथ पकड़ कर उसे अपनी ओर खींच लिया और बोल उठा--इतना क्रोध क्यों शीला ! मानवसे ही भूल होती है मैं भी गुनाह पथिक था, पर तुम्हारे परिवर्तनने मुझे बता दिया कि तुम भी……।

× × ×

महापरिषद् सम्वाद

विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ है कि, प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरुकी घोषणाके अनुसार कानून मन्त्री डाक्टर अम्बेद्र हिन्दू-कोडके विषयमें विचार-विमर्श करनेके लिये एक कन्फरेन्स शीघ्र ही बुलानेवाले हैं। महापरिषद्की चीफ सेक्रेटरी श्रीमती कृष्णा माथुरने कानून मन्त्रीको पत्र लिखकर अनुरोध किया है कि, महापरिषद्के प्रतिनिधि भी उक्त कन्फरेन्समें बुलाये जायँ जिससे उक्त कन्फरेन्सके सामने देशकी कोटि-कोटि महिलाओंकी प्रतिनिधित्व करनेवाली एकमात्र अखिल भारतीय संस्था श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्के विचार उचित रीतिसे रखे जा सकें। क्योंकि हिन्दूकोडका विरोध करनेवाली यह अखिल भारतीय एक मात्र महिलाओंकी संस्था है, जिसने गत तीस वर्षोंसे स्त्री जाति की ठोस सेवाकी है, और भारतीय हिन्दू महिलाओंका ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करती है। आशा है कि, कानून मन्त्री हमारी चीफ सेक्रेटरीके पत्रपर ध्यान देंगे और महापरिषद्के प्रतिनिधि उक्त कन्फरेन्समें अवश्य सम्मिलित किये जायंगे।

× × ×

महापरिषद्की प्रबन्ध समितिकी बैठक फाल्गुन शुक्ल ५।२००६ मंगलवार तदनुसार ता० २१।२।५० अपराह्न पांच बजे श्रीसेठ बाबूलाल ढनढनियाकी अध्यक्षतामें विद्यालय भवनमें हुई जिसमें विद्यालय तथा महापरिषद्के अन्यान्य कार्य-विभागोंके प्रबन्धके सम्बन्धमें कई महत्वपूर्ण मन्तव्य स्वीकृत हुए।

× × ×

पूर्वी बंगालके उत्पीड़ित भाई-बहिनोंकी करुण दशासे उद्विग्न होकर महापरिषद्ने १०१) की सहायता अमृतबाज़ार पत्रिकाके द्वारा भेजी, एवं आर्यमहिला महाविद्यालयकी अध्यापिकाओं तथा छात्राओंद्वारा संगृहीत ८९४।-)॥ आठ सौ चौरानबे रुपया साढ़े पांच आना राष्ट्रीय स्वयं सेवक-संघके पूर्वी बंगाल सहायता कोषमें सौ० श्रीमती सुशीला नरेन्द्र जीतसिंहके द्वारा भेजा। महापरिषद्की प्रेरणासे काशी महिलासङ्घकी सदस्याओंने परस्परमें २३०) रुपया संग्रह किया, यह २३०) रुपया अमृतबाजार पत्रिकाके पूर्वी बंगाल उत्पीड़ित सहायताकोषमें महापरिषद्द्वारा भेजा गया। इस प्रकार महापरिषद्ने पूर्वी बंगालके उत्पीड़ितोंकी सहायताके लिये कुल १२२५।-)॥ भेजा।

अपनी बात।

माँ दुर्गे !

जब देवलोकमें देवता असुरोंका भीषण संग्राम हुआ, देवतागण पराजित हुए, उनको प्रबल पराक्रमी असुरोंने अपने राज्यसे निर्वासित कर दिया; देवगण राज्य-श्री-शक्तिसे हीन होकर इधर-उधर भटकने लगे, कोई अवलम्बन नहीं रहा, तब सब ओरसे हताश-निराश होकर उन्होंने तुम्हारे अभय चरणोंकी शरण ली, तुम्हें प्राणभर कर पुकारा, तब भक्तवत्सला तुम उन्हींके तेजोंसे आविर्भूत हुई, तुमने महिषासुरको मार कर देवताओंको अभय-दान दिया, अपने प्रिय सन्तानोंकी रक्षा की। पुनः शुम्भ-निशुम्भ जब प्रबल होकर देवताओंको त्रस्त करने लगा, देवताओंको पराजित कर उन प्रचण्ड पराक्रमी असुर-बन्धुओंने देवलोक पर आधिपत्य कर लिया, तब भी देवताओंने सरल हृदय एवं भक्तिभावसे तुम्हारी ही शरण ली, कातर हृदयोंसे एकचित्त एकप्राण होकर तुम्हें बुलाया, तुमने भक्तोंकी आर्तनाद सुनते ही उनके त्राणके लिये, कौषिकी, वैष्णवी, माहेश्वरी, ब्रह्माणी चामुण्डा, शिवदूति आदि नाना रूपोंमें आविर्भूत हुई, संग्राममें अन्यायी दुराग्रही असुरोंका संहार किया देवताओंकी रक्षा की और धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा की। इस प्रकार देवलोकसे विताड़ित असुरोंने जब पृथिवीपर आकर नाना प्रकारके उत्पातोंसे सज्जनोंका उत्पीडन करना प्रारम्भ किया, प्रजा उद्विग्न हो उठी, धर्मका लोप होने लगा, रावणका साम्राज्य पृथिवीपर छा गया, तब भगवान् रामने उसे मारनेके लिये महाशक्तिरूपिणी तुम्हारी आराधना की, तुम तत्काल उनके सामने आविर्भूत होगयीं, रामको विजयका वरदान दिया। रावण मारा गया, रामराज्य स्थापित हुआ, मनुष्य-समाजने शान्ति-सुखकी श्वांस ली।

पुनः कालान्तरमें जब पृथ्वीपर दानव-दलका बल बढ़ा, मानवता त्रस्त हो उठी, सब ओर ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी" की बोलबाला थी, धर्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्रके रणाङ्गनमें कौरव एवं पाण्डव दोनों पक्षकी सेनाएँ शस्त्रसज्ज होकर खड़ी होगयीं, अब शस्त्र-प्रहार होना ही चाहता था, इसी समय भगवान् कृष्णने अर्जुनको आदेश दिया, वीरवर ! तुम युद्ध-प्रारम्भके पहले विजय-प्राप्तिके निमित्त परम कल्याणमयी जगद्धात्री रणरङ्गनी दुर्गाकी शरण जाओ और उनकी स्तुति करो। भक्त अर्जुनने यह आदेश पाते ही रथसे उतर कर अति श्रद्धा-भक्तिसे तुम्हारी स्तुति की, तुम प्रसन्न होकर वहीं आविर्भूत हुई। शरणागत भक्त अर्जुनको विजयका आश्वासन दिया। उस महासमरमें धर्मध्वंसी असुर-पक्षका संहार हुआ, देवपक्षकी विजय हुई और पुनः धर्मराज्य स्थापित हुआ; साथ-साथ जीवजगत्का दुःख दूर हुआ।

दयामयी करुणामयी अम्बे ! आज हमारी दुर्दशा तू क्यों नहीं देखती ! केवल एक स्त्री द्रौपदीके अपमानके लिये महाभारत जैसा समर हुआ था, आज लाखों स्त्रियोंकी लज्जा लूटी जा रही है, धर्म संकटमें है, फिर भी तू नहीं आती ! मां अब तो दया कर। मेरी तो प्रतिज्ञा ही है।

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरि संक्षयम्॥

कैसी हृदय हीनता !

काशीमें "बुढ़वा मंगल" नामका एक मेला बहुत वर्षोंसे होता आरहा है। इसकी विशेषता यह है कि, यह गंगाजीमें नावोंपर ही होता है। लोग नावोंको खूब सजाते हैं एवं उसमें खाने-पीने,

नाचने-गानेआदि सभी प्रकारके आमोद-प्रमोद तथा मनोरञ्जनके साधन रहते हैं। इन सजे हुए नावोंमें लोग रात्रिमें रहते हैं और मनमाना आनन्द उपभोग करते हैं। इनमें वेश्याओंके नृत्य, वाद्य एवं मद्यकी भी कमी नहीं रहती। कुछ वर्ष पहले कुछ लोगोंने इसका विरोध भी किया था, किन्तु उसका कोई फल नहीं हुआ। यद्यपि मनोरञ्जन मनुष्यके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्यके लिये एक आवश्यक विषय है, जहांतक वह धर्म एवं नैतिकताकी सीमाका पार न कर जाय एवं उपयुक्त अवसरपर भी हो। यदि एक प्रतिवेशी बन्धुके घरमें आग लग रही हो, और दूसरा प्रतिवेशी पासहीके घरमें अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ नृत्य-गानके आनन्दमें विभोर हो, तो क्या उस मनुष्य-को मनुष्य कहलाने अधिकार हो सकता है? किन्तु बड़े दुःख एवं लज्जाका विषय है कि, ऐसे मनुष्योंकी भी आजदिन समाजमें कमी नहीं है। तभी तो आज देशकी यह दयनीय दशा है। जिन दिनों पूर्वी बंगालमें सैकड़ों निरीह प्राणियोंकी निर्मम हत्याके हृदय द्रावक समाचार प्रतिदिन आरहे थे, सैकड़ों स्त्रियोंका सतीत्व बलात् नष्ट किया जा रहा था और लाखों हमारे भाई-बहिन अपने प्रिय प्राणोंको हथेलीपर रखकर अपने घर-द्वार छोड़ निराश्रय होकर भागे आ रहे थे, उन्हीं दिनों काशीमें "बुढ़वा मंगल" का मेला हो रहा था, जिन मनचले मनुष्योंने इस मेलेमें आनन्द मनाया, एवं ऐसे समयमें आमोद-प्रमोदसे मनोरञ्जन किया उनको क्या कहा जाय? क्या इस हृदय-हीनता की कोई सीमा है?

सरकार धर्मनिरपेक्षता वापस ले या हिन्दूकोडविल वापस ले।

कांग्रेस सरकारने अधिकारमें आते ही अपनेको धर्मनिरपेक्ष राज्य Secular State घोषित किया। पुनः नवनिर्मित विधानमें भी इसीको दुहराया गया। यह धर्मनिरपेक्ष राज्य हिन्दूकोडबिल जो हिन्दूधर्मपर प्रत्यक्ष प्रहार है, क्यों-कर अपने सत्ताके बलपर हिन्दूओंपर लादनेपर तुला हुआ है, यह समझमें नहीं आता है। धर्मनिरपेक्ष राज्यको किसी जातिके धर्ममें कानून बनाकर हस्तक्षेप करनेका नैतिक अधिकार कैसे हो सकता है? यदि सरकार कानूनद्वारा किसी जाति या वर्गविशेषके धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारोंमें उथल-पुथल करनेका अपना अधिकार समझती है तो उसकी धर्मनिरपेक्षता क्योंकर रह सकती है? ऐसी स्थितिमें धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित करनेकी आवश्यकता ही क्या पड़ी थी? धर्मनिरपेक्ष शासन केवल हिन्दूओंके लिये हिन्दूकोडबिल कैसे बना सकता है? इस प्रसङ्गमें हमें बंगाली भाषाकी "सोनार पाथर बाटी" की कहावत स्मरण आती है। हमारी सरकारकी हिन्दूकोड-सम्बन्धी नीतिमें इस कहावतकी ठीक चरितार्थता होती है। तात्पर्य यह है कि, बाटी यानी कटोरी या तो पत्थरकी या सोनेकी किसी एककी हो सकती है सोना एवं पत्थर दोनोंकी एक ही कटोरी नहीं हो सकती अतः जैसे यह असम्भव है, वैसे ही सेकुलर राज्यके लिये हिन्दूधर्म-सम्बन्धी हिन्दूकोडबिल बनाना नैतिक दृष्टिकोणसे सर्वथा असम्बद्ध तथा असम्भव है। अतः सरकारके सामने न्यायतः उचित दो ही मार्ग है; वह यह कि या तो सरकार हिन्दूकोड-बिल वापस लेकर अपनी घोषित धर्मनिरपेक्षताकी नीतिकी रक्षा करे, यदि नहीं तो अपनी धर्म-निरपेक्षताकी नीति वापस ले और अपनेको हिन्दूराज्य घोषित करे। यद्यपि हिन्दू समाजने धार्मिक कानून बनानेका अधिकार कभी भी शासन सत्ताको नहीं दिया था, परन्तु हिन्दुराज्य घोषित होनेपर उसे किसी रूपमें वैधानिक अधिकार हो भी सकता है। तीसरा मार्ग जो अवशेष रहता है, वह है औरंगजेबशाही या हिटलरशाही, जिसे मनमाना शासन कहना चाहिये। परन्तु हमारी सरकार तो यह भी स्वीकार नहीं करती; वह तो इसके विपरीत जनतन्त्र भी कहती है। अतएव जनतन्त्र-

सरकारके लिये भी करोड़ों हिन्दू जनताकी इच्छाके प्रतिकूल अपने सत्ताके बलसे हिन्दूकोडबिल उस पर लादना सरकारके जनतन्त्र सिद्धान्तके भी सर्वथा विपरीत है। अतः सरकारके लिये वैधानिक एवं शोभनीनय एक ही मार्ग बच रहता है, वह यही कि, वह हिन्दूकोडबिल वापस ले, या धर्म-निरपेक्षताकी नीति वापस ले।

राजा कालस्य कारणम्।

यद्यपि किसी धर्मको मानना सभ्यताका लक्षण माना जाता है, क्योंकि धर्मको छोड़ देनेपर मनुष्यमें तथा मनुष्यके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंमें आकृतिकी भिन्नताके सिवाय कोई भी भेद नहीं रह जाता है। खाना, सोना, डरना, रमना, अपने अपने सुख-सुविधाका ज्ञान रखना, और सुखको चाहना, ये छ व्यौहार जैसे मनुष्य करते हैं, वैसे ही दूसरे सब प्राणी भी करते हैं। अतः यदि मनुष्य भी केवल इन्हीं वृत्तियोंकी सेवा कर जीवन व्यतीत करता है, तो मनुष्य तथा मनुष्येतर पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गआदि जीवोंमें कोई भी अन्तर नहीं। इसी कारण मनुष्य-समाजमें किसी रूपमें किसी भी धर्मका पालन सभ्यताका लक्षण समझा जाता है। अतः संसारकी सभी सभ्य मनुष्य-जातियोंमें कोई न कोई धर्म माननेकी प्रथा प्रचलित है; और उन-उन देशोंके मनुष्य उसका पालन भी करते हैं। पोप, पैगम्बर, पादरी, जोरेस्टर आदि आदि विविध नामोंसे धर्मगुरुओंका आदर-सम्मान भी सभी देशोंमें है ही। और भारत देश तो इस दिशामें सबसे आगे रहता आया है, इसी कारण अतीतमें उसने जगद्गुरुत्वका पद प्राप्त किया था। भारतीय संस्कृतिका आत्मा धर्म है। अथवा धर्म एवं संस्कृति पर्याय-वाचक शब्द है, ऐसा भी कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं होगी। यहांका वैदिक धर्म इतना महान्, उदार और सर्वव्यापक है कि, पृथिवीके समस्त धर्म इसके प्रशस्त अङ्कमें आश्रित एवं सुरक्षित थे और हैं। किसी धर्मका विरोध उसमें स्थान नहीं पाता। हिन्दुओंके जीवनकी प्रत्येक चेष्टा एवं क्रिया-कलापके साथ धर्मका अटूट सम्बन्ध बँधा हुआ है। इसमें धर्म-विरहित विषय-भोगका कोई स्थान नहीं, वह तो केवल पशुतामात्र कहा गया है। परन्तु इस समय परिस्थिति सर्वथा विपरीत देखी जारही है। आज तो अपनेको शिक्षित एवं सभ्य समझनेवाला समुदाय धर्मके नामसे घृणा करता है। धर्म तो एक प्रकारका ढकोसला तथा अनपढ़ एवं असभ्य मूर्खोंका लक्षण समझा जाता है। मनमानी आहार-विहार या स्वेच्छाचार तथा किसी भी धर्मको न मानना entightend होनेका श्रेष्ठ लक्षण है। आज दिन-प्रतिदिन द्रुतगतिसे धार्मिकताका लोप होने लगा है। सैकड़ों वर्षोंके मुगल शासनमें भी धर्मका ऐसा ह्रास नहीं हुआ था, जैसा इस समय देखनेमें आरहा है। उस समय अपने धर्मके लिये मर-मिटनेमें हिन्दू लोग गौरव अनुभव करते थे, इसलिये धर्मकी रक्षाके लिये उन्होंने बड़ासे बड़ा त्याग एवं बलिदान भी किया था। उसके अनन्तर अंगरेजोंका शासन आया। ये लोग कूटनीतिमें कुशल थे अतः हिन्दूधर्मके शत्रु होनेपर भी उन्होंने सीधे धर्मपर प्रहार नहीं किया, किन्तु धर्मके विषयोंमें उदासीन रहनेकी अपनी बाह्य नीति अपनायी, एवं भीतरसे अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये ऐसी शिक्षा-पद्धतिका निर्माण किया, जिसमें हिन्दुओंको अपने धर्मसे, अपनी संस्कृतिसे घृणा उत्पन्न हो जाय, एवं वे स्वयं ही अपने धर्मके शत्रु बन जायँ, खान, पान, रहन-सहनमें अंगरेजोंके पूरे शिष्य बन जायँ। जैसा उन्होंने चाहा था, फल भी वैसा ही हुआ। केवल डेढ़सौ वर्षोंके शासनकालमें ही उन्होंने शिक्षित समाजको अपने साँचेमें ढाल लिया। शिक्षित समुदायको अपना धर्म, अपनी संस्कृति, अपनी वेष-भूषा रहन-सहन सबसे घृणा उत्पन्न होगयी है। यहांतक कि बहुतसे लोग अपनेको हिन्दू कहनेमें भी हीनता एवं लज्जाका

अनुभव करते हैं। सूट, बूट, सिगरेट, शराब सभ्य होनेके लक्षण हैं। ईश्वर-कृपासे अब देश स्वतन्त्र हुआ, अँगरेजी शासनका अन्त हुआ परन्तु जिन व्यक्तियोंके हाथों शासन-सूत्र आया, वे, उसी अँगरेजी सभ्यता एवं शिक्षामें सभ्य एवं शिक्षित होनेके कारण अँगरेजोंसे भी आगे निकले। शासनारूढ़ होते ही उन्होंने Secular State घोषित किया, जिसका सीधा-सीधा अर्थ धर्महीन राज्य है। हमारे प्रधान मन्त्री ईश्वरका कभी भूलसे भी नाम नहीं लेते हैं। धर्मका नाम लेना उनके राज्यमें साम्प्रदायिकता है। फल भी साथ-साथ दिखायी देरहा है। इधर कुछ वर्षोंमें जितना अनाचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार चोरी, डकैती हत्या लूटने जितना विकट रूप धारण किया है, उतना इससे पहले नहीं था; यह तो सबके सामने ही है। इतनी जल्दी इतना घोर परिवर्तन एवं नैतिक पतन जनताका क्यों होरहा है, इस रहस्यमय प्रश्नका एक ही उत्तर है, जो हमारे त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंने हजारों वर्ष पहले लिख रखा है कि "राजा कालस्य कारणम्" अर्थात् राजा कालका कारण है। तब धर्महीन राज्यकी प्रजा धर्महीन होगी ही।

मुद्रक व प्रकाशक—श्रीमदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारसने हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, काशीमें छपवाकर प्रकाशित किया।

विषय-सूची

अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा। भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥

वैशाख, ज्येष्ठ सं० २००७ | वर्ष ३२, संख्या १, २ | अप्रैल, मई १९५०

रे मन मूरख जनम गँवायो।
करि अभिमान विषय रस चाख्यो, श्याम शरण नहिं आयो।
यह संसार फूल सेमर को सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रुई उड़ि गई हाथ कछू नहिं आयो।
कहां भयो अब के मन सोचे पहिले नाहिं कमायो।
कहत सूर भगवन्त भजन बिन सिर धुनि धुनि पछतायो॥

संत सूरदास।

हिन्दू-विवाह और परदा प्रथा

(आलोचनात्मक निबन्ध)

[लेखक—गोविन्द शास्त्री दुगवेकर]

विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महापुरुष-के लेखके प्रतिवादमें लेखनी उठाना "छोटे मुँह बड़ी बात" कही जा सकती है, परन्तु गुरुजनके प्रति भी विनयपूर्वक सात्त्विक मतभेद प्रकट करना व्यवहार-शास्त्रके अनुसार कोई अपराध नहीं है। कविवरने १४ वर्ष पूर्व 'भारतवर्षीय विवाह' शीर्षक एक लेख बंगलाके सुप्रसिद्ध 'प्रवासी' मासिक पत्रमें लिखा है। प्रवासीकी पुरानी फाइलें उलटते-पुलटते वह लेख दृष्टि-गोचर हुआ और उसको पढ़नेपर चित्तमें बड़ा खेद हुआ। जिस भारतीय तत्त्वज्ञानके अवलम्बनसे कविवर विश्वविख्यात हुए, उसी तत्त्वज्ञानके आधारपर आधारित भारतीय विवाह प्रणालीको आधुनिक विदेशी विवाह-प्रणालीकी तुलनामें वे हेय समझते हैं, यह धर्मप्राण हिन्दुओंके हृदयोंमें ठेस लगने योग्य बात है।

कविवर यह तो स्वीकार करते हैं कि—"प्राचीन कालमें हिन्दूलोग व्यक्तिगत सुखके लिये विवाह नहीं करते थे; किन्तु उन्होंने एक सामाजिक कर्तव्यरूपसे विवाहकी व्यवस्था की थी। यद्यपि गान्धर्व, राक्षस, आसुर, पैशाच आदि विवाहोंको भी धर्मशास्त्र ने विवाह ही माना है; परन्तु इन विवाहोंकी निन्दा कर ब्राह्मविवाहकी ही प्रशंसा की है। ब्राह्मविवाहके अतिरिक्त अन्य प्रकारके विवाहोंमें मनुष्य अपनी व्यक्तिगत इच्छाकी प्रबलताके कारण कर्तव्याकर्तव्य-विचारको भुला देता है। ब्राह्मविवाह आधुनिक विज्ञान (Eugenics) सम्मत है। इस विवाहके फलस्वरूप उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न होनेकी सम्भावना अधिक रहती है। परस्पर प्रेम हो जानेपर हिन्दुओंका विवाह नहीं होता, इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वह प्रेमहीन होता है। सच्चा और चिरस्थायी प्रेम पाश्चात्य प्रणालीके विवाहोंमें भी सुलभ नहीं होता। अधिक अवस्था हो जानेपर स्त्री-पुरुषों की इच्छा प्रबल हो जाती है, इस कारण पहले अल्प-वयसमें ही विवाह कर दिया जाता था। हिन्दू लोग विवाहको गृहस्थका आवश्यक कर्तव्य कहते हैं सही, किन्तु विवाह करके गृहधर्मका पालन करना ही जीवनका अन्तिम उद्देश्य नहीं मानते। मुक्तिकी खोजमें गृहको त्याग देना ही उनका आदर्श था।"

यहाँतक तो ठीक है; किन्तु आगे चलकर आप कहते हैं,—"हिन्दुओंके विवाह और गार्हस्थ्य-धर्मका आदर्श प्राचीन कालके उपयोगी भले ही हो, किन्तु वर्तमान कालके उपयोगी नहीं है। क्योंकि आजकल नयी शिक्षा और नये नये मत चल पड़े हैं और अर्थाभावके कारण प्रत्येक घरकी सामाजिक परिधि संकीर्ण हो गयी है।" कविवरकी यह बात हमें ठीक नहीं जँचती। हमारी समझमें हिन्दुओंके विवाह और गार्हस्थ्य-धर्मका आदर्श चिरन्तन सत्यके आधारपर प्रतिष्ठित है। वह प्राचीन कालके जितना उपयोगी था, उतना वर्तमान कालके भी उपयोगी है। उदाहरणार्थ, वर-कन्याके अपनी इच्छाके अनुसार स्वयं चुनाव करनेकी अपेक्षा माता-पिता या अभिभावकोंके द्वारा चुने जानेकी व्यवस्था अधिक उत्कृष्ट है। इसीसे शास्त्रोंमें भी ब्राह्मविवाहकी विशेष प्रशंसा की है। यौवन-कालमें युवक-युवतियोंकी

प्रवृत्तियाँ अत्यन्त बलवती हुआ करती हैं। जो अच्छा लगता है, वही करनेका उनका आग्रह रहता है, कौन-सा मार्ग विशेष कल्याणकारक हो सकता है, इसकी विवेचना करनेकी उनको इच्छा ही नहीं होती। यौवन-कालमें संसारका अनुभव भी उनको बहुत कम होता है। युवक-युवतियाँ अपना संगी चुनते समय शारीरिक सौन्दर्य, संगीत, काव्य और सरस वार्तालाप करनेकी क्षमताको ही अधिक मूल्यवान् समझते हैं। वंशावलीके गुण-दोषोंका विचार ही नहीं करते। इससे उनके चुनावमें बहुधा भ्रम-प्रमाद हो जाया करता है। माता-पिता या अभिभावक स्वाभाविक रूपसे ही पुत्र-कन्याओंके हिताकांक्षी हुआ करते हैं। उनको संसारकी अभिज्ञता भी अधिक रहती है। यौवनोचित प्रवृत्तियाँ भी उनके कर्तव्य-निर्णयमें बाधा नहीं कर सकतीं। शारीरिक सौन्दर्यका भी वे यथोचित समादर करते हैं; परन्तु वंशावली-के गुण-दोषोंपर उनका अधिक ध्यान रहता है। इस सावधानताके कारण नव-दम्पतिको उत्तम सन्तति होने की सम्भावना अधिक रहती है। यह नहीं कहा जा सकता कि, उनसे कभी भूल होती ही नहीं; परन्तु युवक-युवतियोंके स्वयं चुनाव करनेसे जितनी भूल होगी, अभिभावकोंके चुनावसे उससे कम भूल होगी। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि, हिन्दुओंके विवाह और गार्हस्थ्य-धर्मका आदर्श प्राचीन-कालके उपयोगी था और वर्तमान कालके उपयोगी नहीं है।

"पहलेके हिन्दू वृद्धावस्थामें मोक्षप्राप्तिके लिये गृहत्यागकर देते थे, गृहस्थीकी झंझटसे छुट्टी पा जाते थे, इस कारण उनके विवाह और गार्हस्थ्य का आदर्श ठीक था। यद्यपि अब भी कितने ही सेवा-निवृत्त (पेन्शनर) लोग वृद्धावस्था में किसी तीर्थस्थानमें जाकर रहने लगते हैं; परन्तु गार्हस्थ्य त्याग कर वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करनेकी व्यवस्था उठ जाने से वर्तमान बदली हुई परिस्थितिमें गृहस्थाश्रमकी गम्भीरता बहुत बढ़ गयी है। गृहस्थी उनका पिण्ड नहीं छोड़ती। आजकल किसी बड़ी तपस्यामें लग जाना हो, तो गृह-त्याग किये बिना अन्य कोई उपाय नहीं है। आजकल की गृहस्थीने एक दलदलका रूप धारण कर लिया है।" कविवरकी इन उक्तियोंसे स्पष्ट है कि, प्राचीन लोगोंका आदर्श उन्हें पसन्द है, जो अब मलीन हो गया है। तब हमारी समझमें यह बात नहीं आ रही है कि, उसी आदर्शको अधिक उज्वल बनानेकी चेष्टा करनेके बदले हमारे विवाहके आदर्शको वे क्यों बदलना चाहते हैं। यदि हमारा आदर्श ज्यों का त्यों बना रहे, तो वर्तमान गृहस्थी की गम्भीरतासे डरनेका प्रयोजन ही नहीं रहेगा। कविवरने उस गम्भीरताका स्वरूप नहीं बतलाया है। हमें गृहस्थोंमें अब भी दाम्पत्य प्रेम, सन्तान-वात्सल्य, मातृ-पितृभक्ति आदि उत्तम गुण देख पड़ते हैं और वे उन्हें प्राचीन आदर्शसे ही प्राप्त हुए हैं। आजकल किसी महत्कार्यके सम्पादन के लिये जो गृहत्याग करते हैं, प्राचीन कालके गृहत्यागियोंकी संख्या उनसे अधिक थी। उनका आदर्श ही सर्वसाधारणसे भिन्न था। बुद्धदेव, महावीर, शङ्कराचार्य, रामानुज, चैतन्यदेव, रूप, सनातन, दयानन्द आदि महापुरुष इसी श्रेणीके थे। वर्तमान कालमें भी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रामतीर्थ, अरविन्द आदिने गृहत्याग किया था; परन्तु वह त्याग वर्तमान कालीन गार्हस्थ्यकी अनुपयोगिता देखकर उन्होंने नहीं किया था। वे प्राचीन कालमें होते, तो भी घर त्याग देते। अरविन्द तो राजनीतिक कारणसे गृहत्याग करनेको बाध्य हुए हैं। विज्ञानमें निरत होने के कारण आचार्य प्रफुल्लचन्द्र ने विवाह ही नहीं किया—ऐसे उदाहरण पश्चिमी देशों मे भी देख पड़ते हैं। इसके लिए हमारे विवाह का आदर्श दायी नहीं है। ऐसे भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिन्होंने महत्कार्य के लिए गृहत्याग करने की आवश्यकता नहीं समझी। जैसे,—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, बाल

गंगाधर तिलक, चित्तरंजन दास, गांधीजी, जगदीश चन्द्र बसु, भण्डारकर, रानाडे, गोखले, सुरेन्द्रनाथ, लाजपत राय, मालवीयजी, स्वयं कविवर आदि। वास्तवमें देखा जाय, तो हमारे विवाह और गार्हस्थ्यका आदर्श किसी बड़ी साधनाके लिये अन्तराय नहीं, किन्तु अनुकूल ही है। इस आदर्शमें जो तितिक्षा है, वह संसारके किसी विवाहके आदर्शमें नहीं देख पड़ती।

मान लीजिये कि आजकलके हिन्दूलोग अपने विवाह और गार्हस्थ्यका आदर्श बदलनेके लिये प्रस्तुत हो जायँ, कविवर उनके सामने कौन-सा नया आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं? आप फरमाते हैं,—"अब ऐसा समय आ गया है कि, हम अपने जीवन-क्रमपर नये सिरेसे विचार करें, विज्ञानको सहायता करें और विश्वके लोगोंकी चिन्ताओं और अभिज्ञताओंके साथ अपनी चिन्ताओं और अभिज्ञताओंका मेल बैठावें।" इसका तात्पर्य यह निकलता है कि, हम अपने प्राचीन आदर्शोंपर—उनके निर्दोष होनेपर भी तिलाञ्जलि दे दें, हम अपने जीवनको बिना सोचे विचारे विश्वके लोगोंके अनुकरणपर नये सांचे में ढाल दें, स्वाभाविक रहन सहनको त्यागकर तथाकथित विज्ञानकी कृत्रिम पद्धतिको अपनावें और सहस्रों वर्षोंसे सत्यकी कसौटीपर खरी उतरती आई हुई अपनी चिन्ताओं और अभिज्ञताओंको उन लोगोंकी चिन्ताओं और अभिज्ञताओंके साथ मिला दें, जिनकी चिन्ताएँ और अभिज्ञताएँ अभी प्रयोगावस्थामें—बाल्यावस्था में—हैं। अर्थात् हम अपने जीवन के उच्चस्तर से नीचे उतर आवें। कविवरके इस उपदेशको हम क्या कहें? उपदेश या विनोदी कविता? उदाहरण सहित इसपर कुछ विस्तारके साथ विचार करना उचित होगा।

पश्चिमी देशोंमें कोर्टशिप, विफल प्रणय और अवैध प्रणयोंका दौर-दौरा है। इस प्रवृत्तिसे जैसी वहाँ समाजकी हानि हुई और हो रही है, वैसी हमारे देशमें कभी नहीं हुई। आजकल जीवन संग्राम तीव्रतर हो जानेसे छोटी अवस्थामें विवाह कर देनेसे युवावस्थामें अनेक पुत्र-कन्याओंकी पलटन खड़ी हो जाती है, यह सही है; किन्तु दूसरी ओर इस परिस्थितिसे पुरुषार्थको उत्तेजना भी मिलती है और फल शुभ होता है। विवाहकी वयोमर्यादा बढ़ा देनेसे उक्त कष्ट कुछ कम हो जाता है सही, किन्तु अनेक नयी असुविधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। आजकलके जीवन-संग्रामकी तीव्रता सभी जानते हैं; परन्तु काम सब चल रहे हैं, कोई काम रुके नहीं हैं। यदि समाजमें स्त्री-पुरुषोंके विवाहकी वयोमर्यादा अनिर्दिष्ट रूपसे बढ़ा दी जायगी और विवाह करना एक धार्मिक कर्तव्य न मानकर व्यक्तिगत इच्छापर निर्भर कर दिया जायगा तो अनेक पुरुष विवाह-बन्धन में फँस जाना स्वीकार नहीं करेंगे। विवाहमें एक ओर सुख है, दूसरी ओर एक विशेष दायित्व भी है। वर्तमान आर्थिक असुविधाओंके दिनोंमें वह दायित्व और अधिक बढ़ जाता है। प्राचीन काल की ब्रह्मचर्य-साधनाके आदर्शको अब लोग भूल गये हैं। आधुनिक शिक्षाके फलस्वरूप उक्त कष्ट-कर दायित्वको स्वीकार न कर लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंककर सुख संग्रहकी चेष्टा अधिकतर देख पड़ती है। अन्ततः पुरुषोंमें विवाह करनेकी अनिच्छा बढ़ जानेसे एक ओर समाजमें दुर्नीति की वृद्धि होगी और दूसरी ओर अविवाहिता युवती कन्याओंकी संख्या बहुत बढ़ जायगी। ऐसी कन्याओंके भरण-पोषणका भार उनके माता-पिताओं पर पड़ेगा जो उन्हें अधिक संकटमें डाल देगा। यदि माता-पिता या कोई अभिभावक न रहे, तो उन कन्याओंको जीविकाके लिये विपद्-ग्रस्त होना पड़ेगा। पढ़ी-लिखी कन्याएँ अवश्य ही नौकरी कर सकेंगी; परन्तु वर्तमान आर्थिक संकट-के दिनोंमें सबको नौकरी कहाँ मिलेगी? उन्हें चाकरीके लिये दूसरोंके दरवाजे खटखटाने पर आत्मसम्मान और स्वधर्म की रक्षा करना कठिन

हो जायगा। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंके लिये यह अधिक लज्जाजनक बात होगी। इसके अतिरिक्त यह भी आशङ्का रहेगी कि, नौकरीके लिये उमेदवार होनेपर युवती स्त्रियाँ अनेक प्रकारके प्रलोभनों में भी फँस सकती हैं। इससे तो प्राचीन आदर्शके अनुसार स्त्री-पुरुषोंका यथासमय विवाह हो जाना ही समाजके लिये कल्याणकर होगा। जबकि, कविवर यह स्वीकार करते हैं,—जैसा कि, आरम्भ में कहा गया है—कि, हिन्दुओंकी विवाह-प्रणाली विज्ञान-सम्मत है और हिन्दूविवाहका लक्ष्य सुसन्तानोत्पादन है, तो अब उस विज्ञान-सम्मत लक्ष्य या प्रथाक: बदलनेका प्रयोजन ही क्या है?

हिन्दू समाजमें विवाह-बन्धनसे आबद्ध होनेपर ही स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे मिलते हैं। स्वच्छन्दतापूर्वक स्त्री-पुरुषोंका बे-रोकटोक मिलना हिन्दू प्रथाके विरुद्ध है। यह प्रथा सुसंतान उत्पन्न करनेके अनुकूल नहीं, किंतु व्यक्तिगत सुख, पारिवारिक शांति और आध्यात्मिक उन्नति की भी सहायक है। विश्वके लोगोंकी चिन्ताओं और अभिज्ञताओं (अनुभवों) से लाभ उठानेमें हिदुओंको कोई आपत्ति नहीं। पाश्चात्य देशोंमें स्वाधीन प्रणय के द्वारा विवाह होते हैं। परन्तु इस प्रथाका परिणाम देखकर इसका अनुकरण करना हिन्दूलोग पसन्द नहीं कर सकते। स्वाधोन प्रणय और स्त्रीपुरुषके स्वच्छंद मिलने-जुलनेसे वहाँ विवाहबंधन अत्यन्त शिथिल हो गया है और विवाहविच्छेदकी संख्या बहुत बढ़ गयी है। अमेरिकाके संयुक्तराष्ट्रके विवाह विच्छेद के आंकड़े देखने से ज्ञात होता है कि, प्रतिसाल विवाहोंमें एक विवाह विच्छिन्न हो जाता है। स्त्री-पुरुष फिर नये जोड़ेकी खोजमें लग जाते हैं। भारतीय सभ्यताकी तुलना में पाश्चात्य सभ्यता अभी बहुत ही नवीन है। थोड़े ही दिनोंमें वहाँकी विवाह-पद्धतिका कुफल स्पष्ट देख पड़ने लगा है और दाम्पत्य अशांतिके विषसे वहाँके समाजका शरीर जर्जरित हो गया है। परन्तु हिन्दुओं की विवाह-पद्धति सहस्रों वर्षों से चली आ रही है, तथापि अबतक ऐसा कोई उसका कुफल देख नहीं पड़ा। फिर कविवर ही हिन्दुओंकी गृहस्थीके भवनमें बड़ी बड़ी नौकाएँ डूबती हुई क्यों देख रहे हैं?

हिन्दू-विवाह प्रथापर इस प्रकार गहरा हाथ फेरकर कविवर हिन्दुओंकी परदा प्रथापर बे-तरह घबरा पड़े हैं। आप लिखते हैं,—"हिन्दूसमाजमें स्त्री-पुरुषोंको बे-रोकटोक मिलने जुलने नहीं दिया जाता, इसीसे हिन्दू समाज निर्जीव हो गया है। वीरोंकी वीरता, कर्मयोगियोंका कर्मोद्यम, कलाकारोंकी कला-कृति आदि सभ्यताकी बड़ी-बड़ी चेष्टाओंके पीछे नारी प्रकृतिकी गूढ़ प्रेरणा का गहरा हाथ रहा आया है।" अन्य देशोंके लिये यह सिद्धांत भले ही लागू होता हो भारतका इतिहास इसका समर्थन नहीं करता। प्राचीन कालके भारतीयोंने नारी जातिके गौरवकी रक्षा करनेमें असाधारण वीरता प्रकट की है। इसके उदाहरणों से राजपूतों का इतिहास समुज्वल हो रहा है। उस समय भी परदा-प्रथा विद्यमान थी; स्त्री-पुरुष स्वच्छंद होकर मिलते जुलते नहीं थे, परन्तु वीरों के वीरता प्रकट करनेमें कहीं नारीप्रकृतिकी गूढ़ प्रेरणाका हाथ नहीं देख पड़ता। सामने आकर स्त्रियाँ जबतक पुरुषको वीरताकी प्रशंसा न करें, तब तक उनमें वीरताकी स्फूर्ति ही नहीं हो सकती, यह भ्रांत धारणा है। मुसलमानों में तो परदा प्रथा हिन्दुओं से भी अधिक कठोर है; किंतु उनके इतिहासमें भी वीरोंके उदाहरणों की कमी नहीं है। पास आकर स्त्रियोंके प्रशंसा करनेसे पुरुषके चित्तमें जिस प्रकार वीरताका सञ्चार होना सम्भव है, उसी प्रकार रूप-लालसाका उद्रेक होने की भी आशंका है। गत महायुद्धके अन्तमें इङ्गलैण्डमें जो विजयोत्सव मनाया गया था, उसमें स्त्रियोंने सैनिकोंकी अत्यंत अतिरंजित प्रशंसा की थी। उसे देख-सुनकर कितने ही विदेशी अतिथियों ने लज्जासे सिर नीचे कर लिया था।

यह बात सत्य है कि, वहाँ के सुप्रसिद्ध कवि

बायरनको अच्छी कविताएँ लिखनेमें रमणियोंके द्वारा विशेष उत्साह मिला था; किन्तु यह भी उतना ही सत्य है, जिसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि, उस उत्साहके खरीदनेमें समाजको अतिरिक्त मूल्य चुकाना पड़ा था। यूरोपीय कवि समाजमें आध्यात्मिक कवि होनेके नाते गेटेकी बड़ी सुख्याति है। परंतु उसका जीवन-चरित्र पढ़नेसे पाश्चात्य समाजमें स्त्री-पुरुषके स्वच्छंद मिलने देनेकी प्रथाका कैसा कुफल होता है, उसका खाका मनश्चक्षुओंके सामने आ जाता है। वास्तविक बात यह है कि, देवभाव और पशुभाव दोनोंके मेलसे मानव प्रकृति गठित हुई है। प्रायः सभी लोगोंके अन्तरमें पशुभाव विद्यमान है। किसीमें कम, किसीमें अधिक; किसीमें स्पष्ट, किसीमें प्रसुप्त या छिपा हुआ। जो सुन्दर युवक अच्छी कविता कर सकता है या मधुर गान गा सकता है, वह यदि धर्मज्ञानसे विहीन हो, तो स्त्रियोंके साथ स्वच्छन्द होकर मिलने जुलनेका सुअवसर पाने पर उसका दुरुपयोग कर समाजका यथेष्ट सर्वनाश कर सकता है और करता भी है। अनेक युवती कुमारियाँ मन ही मन सोचने लगती हैं कि, यह सचमुच मुझसे प्रेम करता है और अवश्य मुझे व्याह लेगा। मुग्धा रमणियाँ यह भी सोच सकती हैं कि, प्रेमका अत्याचार और असहिष्णुता कुछ तो सहनी ही पड़ेगी। इसी विचार-परम्परासे आगे बढ़कर कितनी ही भोली भाली स्त्रियाँ अनीति की दलदल में फँस जाती हैं। इससे अधिक दुःखकी बात यह है कि, ऐसे क्षेत्र के पुरुष यह भी सोचा करते हैं कि, वे सौन्दर्य की चर्चा कर रहे हैं या युवतियोंके हृदयोंके मनस्तत्वका विश्लेषण करनेका सुयोग पा गये हैं। उनको इसका भी पता नहीं रहता कि, वे दूसरोंका सर्वनाश करने जाकर स्वयं आत्म-प्रवञ्चना कर रहे हैं। ऐसे लोग कला (fine arts) या सौंदर्य-चर्चाकी दोहाई देकर तथाकथित सभ्य-समाजमें केवल इन्द्रियजन्य निकृष्ट सुख और रूप-लालसाका आश्रय दिये जाते हैं। रूस के महात्मा टालस्टाय ने तो स्पष्ट शब्दोंमें बहुत ही ठीक कहा है कि,—"यूरोप के कवि, अभिनेता और चित्रकार आदि कलाकारों ने स्त्रियोंके साथ स्वच्छन्द मिलने जुलनेका सुअवसर पाकर उसका पर्याप्त दुरुपयोग किया है। शिक्षित सुन्दरी स्त्रियाँ उनकी प्रतिभाका उनके आगे समादर करने लगीं, इसीसे ऐसा आचरण करनेमें वे समर्थ हो सके। समाजमें जिनसे दुर्नीतिकी वृद्धि होती हो, घरको पवित्रता, सुख और शांति विनष्ट होती हो, उन काव्यों, नाटकों और चित्रोंको लेकर हम क्या करेंगे।

परन्तु क्या यह बात यथार्थ है कि, शिल्पकलाकी चर्चा करनेसे समाजमें दुर्नीतिका प्रचार होना अनिवार्य है? भारतके प्राचीन इतिहासपर दृष्टिपात करनेसे हमें तो यह बात सत्य नहीं जान पड़ती। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण आदि ग्रन्थोंके प्रचारसे हिन्दू समाजमें धर्मभावकी गम्भीरता और विशालता बहुत बढ़ गयी थी। छत्रपति शिवाजीको तो हिन्दुपद पातशाही स्थापन करनेकी प्रेरणा महाभारतसे ही मिली थी। जैसी साधना, वैसी ही सिद्धि मिलती है। प्राचीन भारतमें काव्य, चित्रकारी, मूर्ति-निर्माण आदिका उद्देश्य था, शिल्पकलाका प्रलोभन दिखाकर लोगोंको ईश्वराभिमुख करना। फलभी वैसा ही हुआ। पश्चिमी देशोंमें भौतिक सुखके लिये ही शिल्पकलाकी चर्चा होती है। इसी से वहाँ प्रायः धर्म और नीतिका पराभव कर शिल्पकला अपनी विजय-पताका फहरा देनेमें समर्थ होती है।

रामायण-महाभारत कालमें ही नहीं, उसके सहस्रों वर्ष पश्चात् भी भारतीय शिल्पकलामें धर्मभाव का आदर्श अक्षुण्ण बना रहा। उसका परिणाम है कि, भारतमें आसेतुहिमाचल करोड़ों रुपयोंकी लागतसे बने हुए बेजोड़ सुन्दर देवमंदिर शोभा पा रहे हैं। कालिदास भवभूति आदि कवियोंने अपने काव्योंमें आसव-पानी

ईश्वरको नायक-नायिकाओंके रूपमें सजाया और धर्मको ही श्रेष्ठ आसन दिया। कामको उन्होंने धर्मके नीचे स्थान दिया और निर्देश भी कर दिया कि, वह काम भी धर्मानुगत होना चाहिये। उनके समयमें भी स्त्री-पुरुष बे-रोकटोक मिलते-जुलते नहीं थे। फिर भी असंख्य उत्कृष्ट काव्य रचे गये और विविध शिल्पोंमें पराकाष्ठा की उन्नति हुई। कविवरकी सभ्यताका आदर्श चाहे जो हो, भारतीय सभ्यता की वस्तुएँ हैं,— उपनिषद्, दर्शन, गीता, भागवत आदि। इनमें हमें नारीप्रकृतिकी गूढ़ प्रवर्तना कहीं नहीं देख पड़ती। वर्तमान युगमें नवद्वीपसे वैष्णवधर्म का जो तरंग उठा था, उसने बंगाल, आसाम, उड़ीसाको तो प्लावित कर ही दिया था, किंतु सुदूर वृन्दावनमें युगान्तर उपस्थित कर दिया था और काव्य संगीत तथा स्थापत्य शिल्पको लयलूट कर दी थी। उसमें भी हमारी समझमें नारी-प्रकृति को कोई गूढ़ प्रवर्तना नहीं थी। भारतीय भाषा साहित्योंमें तुलसीकृत रामायण एक श्रेष्ठ सम्पत्ति मानी जाती है। इसमें अवश्य ही नारी प्रकृतिकी प्रवर्तना पायी जाती है; किन्तु वह कविवर जिस अर्थमें कहते हैं, उससे ठीक विपरीत अर्थ में थी। रमणियोंके चित्त लुभाने, उनका मनोरञ्जन करनेके लिये तुलसीदासने रामायणकी रचना नहीं की; किन्तु उनकी सहधर्मिणीने उनके ज्ञान-नेत्र खोल दिये थे और दिखा दिया था कि संसारमें सुन्दरी स्त्रियोंका प्रेम एक अत्यन्त असार वस्तु है इसी वास्तविकताके कारण भारतको ऐसे महारत्नका लाभ हुआ था। उस दिन दक्षिणेश्वर के एक निरक्षर ब्राह्मणने जो भक्तिका प्रदीप जला दिया था, उसके आलोकसे अपने हृदयमें ज्ञान की प्रभा ग्रहण कर विवेकानंदने भारतको ही नहीं, समस्त पश्चिमी जगत्‌को चकित कर दिया था। उसके पीछे भी नारी प्रकृतिकी कोई गूढ़ प्रवर्तना नहीं थी। संसारके सर्वप्रधान धर्मान्दोलन क्या सभ्यताकी बड़ी बड़ी चेष्टाओंमें नहीं आ जाते? बुद्ध, महावीर, ईसा, मूसा, शंकराचार्य, रामानुज आदि पुरुषोंकी चेष्टाओंके पीछे नारी प्रकृतिकी गूढ़ प्रवर्तनका हाथ हमें कहीं नहीं देख पड़ता। कवि-वरको देख पड़ता हो तो बात और है।

परदा प्रथाकी भरपेट निंदा कर कविवर आगे लिखते हैं,—'हमारे देशमें कामिनी-काञ्चनको द्वन्द्व-समासके सूत्रमें गूथकर प्रकारान्तरसे नारी जातिका अपमान करनेमें पुरुष कुण्ठित नहीं होते। वे नहीं जानते कि, नारी त्याग करनेका उपदेश देकर पुरुषों-को आत्महत्याके लिये प्रोत्साहन दे रहे हैं।" वस्तुतः नारी जातिका अपमान तो वे करते हैं, जो नारीको पशुप्रवृत्तिको चरितार्थ करने का एक साधन समझते हैं और चित्र अंकित कर या कविता रचकर पुरुषकी पाशवृत्तिमें इन्धन दिया करते हैं। जो आँखोंमें अञ्जन देकर यह बता देते हैं कि, तुम इस पशु-प्रवृत्तिका त्याग करो और नारीको मातृरूपमें देखने-की चेष्टा करो, वे कभी नारी जातिका अपमान कर नहीं सकते। वे तो नारीको संसारके पङ्किल आसन-से उठाकर देवीके आसन पर बैठाते है। काञ्चनके साथ कामिनीका उल्लेख करनेका कारण यह है कि, कामिनी-काञ्चनके प्रति अन्याय्य आसक्ति पुरुषकी आध्यात्मिक उन्नतिमें प्रबलतम अन्तराय स्वरूप है। ऐसी आसक्तिका त्याग करनेके उपदेशमें 'प्रकारांतर' क्या है? यह कटाक्ष कविवर कदाचित् रामकृष्ण परमहंसके प्रति कर रहे हैं। जो सर्व-त्यागी महापुरुष जगत्‌की सभी नारियोंमें प्रत्यक्ष जगन्माताकी मूर्ति निहारता हो, वह प्रकारांतरसे नारी जातिका कैसे अपमान कर सकता है? बुद्ध-देवने गोपाका, चैतन्यदेवने विष्णुप्रियाका और परमहंसदेवने शारदा देवीका त्याग कर आत्महत्या नहीं की; किंतु वे अमर हो गये। यही नहीं; जिनका उन्होंने त्याग किया, उनको भी अमर कर दिया। वे देवी भावको प्राप्त हो गयीं। गोपाके शेष जीवनमें उसका धर्मभाव पराकाष्ठाको पहुँच गया था। विष्णुप्रियाके कठोर धर्मसाधनाकी कथा पढ़कर आँखोंमें आँसू आ जाते हैं और शारदा

देवीकी पुण्य कहानी सुनकर जाना जाता है कि, अध्यात्म जगत्‌के कितने ऊँचे स्तर पर वे पहुँच गयी थीं। उन्हें जगन्मातृभावकी यथार्थ उपलब्धि हो गयी थी। मनुष्य जिस भावसे हृदयसे भावित होता है, वह वही हो जाता है। 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'। वहाँ प्रकारांतर या अपमानकी गुञ्जाइश ही कहाँ है ?

कविवरने अपने निबंधके उत्तर भागमें तो कमाल कर दिया है। आपकी सरस मुक्तावलीका नमूना इस प्रकार है :—"सभी समाजोंमें विवाह प्रथा तबसे चल पड़ी है, जबसे मानव जीवनके पार्लियामेण्टमें निरंतर 'प्राकृतिक अधिकार'के नामसे अपना कर्तृत्व जतानेकी चेष्टा करने लगा। मनुष्य-की सबसे बड़ी दुःख-दुर्गति, कठोर अपमान और असहनीय ग्लानिकी बात यदि कोई हो, तो वह स्त्री-पुरुषोंके विवाह सम्बंधकी प्रथा ही है। परंतु जो आध्यात्मिकता पर विश्वास करते हैं, वे विवाह सम्बंधको पाशविक बलके अत्याचारसे मुक्त कर प्रेमकी शक्तिको यथार्थ रूपसे जगा देने के उपायका ही अन्वेषण करेंगे। अबभी संसारकी सब विवाह प्रथाओंमें—अभ्यास और कानून के कारण—यही देख पड़ता है कि, अभी हम बर्बर युगमें ही विद्यमान हैं।" कविवरकी आध्यात्मिकताकी बलिहारी है। पाश्चात्य देशोंमें भी आजकल जो लेखक बहुत उन्नत, उदार और अग्रसर कहे जाते हैं, उनमें से कुछ लेखकोंका मत है कि, "विवाह प्रथाको उठा देना ही उचित है। क्योंकि स्त्री-पुरुषोंमें एक बार प्रेम हो जाने पर वह चिरकाल तक स्थायी रहेगा। इसका कोई भरोसा नहीं। जब परस्पर प्रेम ही नहीं, तब विवाह-बंधन बड़ा ही अनिष्टकर हो जाता है।" इसका सारांश यह हुआ कि, जिस समय जो कोई स्त्री-पुरुष एक दूसरे से प्रेम करने लगें, उसी समय उनको मिलने देना चाहिए। उनके मिलनमें किसी प्रकारकी बाधा डालने का समाजको कोई अधिकार नहीं है। सम्भवतः कविवरके विचारों पर इन्हीं लेखकोंके मतोंकी छाप पड़ी है, जिससे वे स्वाधीन प्रेम के पक्षपाती हो गये हैं और फिर भी आध्यात्मिकता की दोहाई देते हैं। 'किमाश्चर्यमतःपरम् ?' यदि पशुभावकी अभिवृद्धि ही कविवरकी आध्यात्मिकता है, तो उस आध्यात्मिकतासे बचे रहनेमें ही कुशल है। कविवरके ऐसे अनर्गल प्रलापोंको पढ़कर हृदयमें दुःख होता है, पर क्या किया जाय ? वे बड़े हैं, विश्वने उनका सम्मान किया है, उनकी प्रतिभासे भारत गौरवान्वित हुआ है, उनका व्यक्तित्व असाधारण था ; परंतु सर्वसाधारण लोगोंको भी भगवानने बुद्धि दी है। बड़ोंकी सभी बातें अनुकरणीय नहीं होतीं ; बुद्धिमान पुरुष अपनी बुद्धिको उनके हाथ बेच नहीं सकते। उनको बुद्धिकी शरणमें जाकर शास्त्रको ही प्रमाण मानना चाहिये।

जिज्ञासा

[१]

ऊपर सुदूर फैला नीला असीम नभ है।
नीचे अनन्त पृथ्वी छाया तले पड़ी है॥
आधार किन्तु किसका है मध्यमें उभय के।
ब्रह्माण्ड और नभ किस संकेतसे थमे हैं॥

[२]

किसकी प्रकाश छया-सी यह उषा सुनहली।
अस्पष्ट-सी झलकती नित व्योमके अजिरमें॥
किस दिव्य लोकका यह आलोक सूर्यमें है।
जो शुभ्र कान्त सुन्दर होती प्रभात वेला॥

[३]

आते समीरके ये झोंके मधुर कहाँसे।
बहते निकुञ्जमें हैं जो मन्द-मन्द गतिसे॥
किसका सँदेश जाकर कहते प्रसूनसे हैं।
खिल-खिल सुगन्धिसे जो ये फूल फूल उठते॥

[४]

प्यासे मिलिन्द आते मकरन्द पान करते।
होकर प्रमत्त फिर वे जब तान छेड़ते हैं।
अथवा कहीं पिकी जब करती कुहू कुहू है;
तब अर्थ कौन है उस सङ्गीतका समझता॥

[५]

आलोक शेष अपना जब छोड़कर जगत्में।
दिनके थके दिवाकर जाते चले प्रतीची॥
भरकर सुहागका तब सिन्दूर कौन सिरमें।
है भेजता भुवनमें सन्ध्या सुहागिनीको॥

[६]

क्यों श्याम-सी करुण-सी आकृति निशीथको है।
उसके विशाल उरमें वह वेदना छिपी क्या॥
होकर गभीर वदना निज केश पाश खोले।
बैठी सघन द्रुमोंके नीचे बिचारती क्या॥

[७]

अविराम एक गतसे ये झागभरे झरने।
करते निनाद झरझर होते प्रपात कबसे॥
किस हर्षसे तरङ्गित होकर उछाल भरती।
आकुल सवेग सरिता वह जा रही कहाँको॥

[८]

कल्लोल लोल ऊँचे लेता समुद्र जो ये।
उद्गार निज हृदयका किसको सुना रहा है॥
गम्भीर मौन ऊँची वे शैल श्रेणियाँ क्यों।
चिरकालसे खड़ी हैं किसकी उन्हें प्रतीक्षा॥

[९]

संसारकी सभी ये लीला विचित्र क्यों है।
किसको अपार माया सर्वत्र व्याप्त-सी है॥
शृङ्गार प्रकृति रचकर प्रति पल नवीन अपना।
किसको रिझा रही है वह कौन-सा रसिक है॥

मोहन वैरागी

हिन्दू कोडबिलद्वारा हिन्दूधर्मको जड़मूलसे समाप्त करनेका षडयंत्र

हिन्दुओं ! सावधान

(लेखक—भक्त रामशरण दास जी पिलखुवा)

आज हिन्दूजाति, हिन्दूधर्म, हिन्दू सभ्यता, हिन्दू संस्कृतिपर चारों ओरसे आक्रमणपर आक्रमण हो रहे हैं, लाखों हिन्दू ललनायें मुसलमान गुण्डोंके घरोंमें पड़ी खूनके आँसू बहा रही हैं, हिन्दूकी माता भारतमाताके खण्ड खण्ड, टुकड़े टुकड़े हो गये हैं, लाखों करोड़ों हिन्दू मारेमारे डोल रहे हैं, लाखों मठ-मंदिर ढाहकर धूलमें मिलाये जा चुके हैं, हिन्दू हिन्दू न कहलाकर गैर मुसलिम कहा जा रहा है, हिन्दी भाषाकी जगह हिन्दुस्तानी भाषाके राग अलापे जा रहे हैं, यह देखकर एक सच्चा हिन्दू रोये बिना नहीं रह सकता। यदि सर्वस्व लुटा दिखकर हिन्दू भी न रोयेगा तो और कौन रोयेगा ! आज हिन्दुओंके हृदयमें गहरे घाव हो गये हैं। उसके आँखोंके सामने मठ-मंदिर ढाहे गये हैं, बहिनें उड़ाई गईं, बच्चे काटे गये, भारतमाताके खण्ड खण्ड हुये, आज उसका कोई रक्षक नहीं, सभी भक्षक बनते जा रहे हैं। आज जिन्हें मूर्खतावश हिन्दुओंने अपना हितैषी माना, जिन्हें करोड़ोंकी थैलियाँ भेंट की, जिनके कहनेपर लाखोंको फाँसीके तखतोंपर चढ़ाया, जेलोंमें सड़ाया, गोलियोंका शिकार बनाया, अण्डमानमें हड्डियाँ गलाने भेजा और जिनकी दिनरात जय बोली और धर्म-कर्मको भूला सबका जूठा खाया-पिया, आज वही कांग्रेसी नेता हिन्दूकोडबिल तलाकबिलद्वारा हिन्दुओंके गहरे घावपर नमक छिड़कने, छूरी मारनेका कार्य कर रहे हैं और इन बिलोंकेद्वारा हिन्दूधर्मको जड़मूलसे समाप्त करने जा रहे हैं। करोड़ों हिन्दू गला फाड़ फाड़कर इन काले बिलोंका घोर विरोध कर रहे हैं, लाखों तार-चिट्ठियाँ भेजी जा चुकी हैं, हजारों विरोधमें सभायें हो चुकी हैं, पचासों डेपुटेशन मिल चुके हैं, लाखों रुपया खर्च हो चुका है, हजारों जेलोंमें जाचुके हैं परन्तु दुःख है कि इन कुम्भकर्णोंको भी मात करनेवाले नेताओं-के कानोंपर जूँ नहीं रेंगी है। हिन्दूकोडबिल तलाकबिलका विरोध बड़े २ धर्माचार्य, चारों मठों-के शंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य कर चुके हैं। स्त्रियोंने विरोध किया, पुरुषोंने विरोध किया, विद्वानोंने विरोध किया, साधुओंने विरोध किया, राजाओंने विरोध किया, रानियोंने विरोध किया, गरीबोंने विरोध किया, अमीरोंने विरोध किया, सनातन-धर्मियोंने विरोध किया, आर्यसमाजियोंने विरोध किया, जैनियोंने विरोध किया, सिक्खोंने विरोध किया, कई कांग्रेस नेताओंतकने विरोध किया परन्तु इन काले अंग्रेजोंको इसकी अभीतक परवाह नहीं; इन्हें तो अपनी राज्यशक्तिके बलपर इन्हें पास कर हिन्दूजातिको जड़मूलसे समाप्त करनेकी धुन सवार है। वह हिन्दूजातिके लिये सबसे बढ़कर मनहूस दिन था जिस दिन हिन्दूकी माता भारतमाताके पाकिस्तान स्वीकार कर खण्ड खण्ड किये गये थे और वह दिन भी सबसे बढ़कर मन-हूस दिन होगा, कि जिस दिन हिन्दूकोडबिल नेताओंके दिमागमें आया और यह बिल पास होगा। हिन्दूसभ्यता संस्कृतिको

जड़मूलसे समाप्त करनेके लिये यह बिल बनें और फिर भी हिन्दू बैठे बैठे देखते रहें, हिन्दुओंका खून न खौले, राणा शिवाका हिन्दू गर्जकर मैदानमें न आये इससे बढ़कर हिन्दुओंका और क्या पतन होगा ? वह हिन्दू एक दिन समस्त पृथ्वीपर जिसका राज्य था, वह हिन्दू जिसने अपने धर्मकी रक्षाके लिये राक्षस-राज रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, वेनका डटकर मुकाबला किया और पापियोंको धूलीमें मिलाया, वह हिन्दू जिसने करोड़ों बौद्धोंसे टक्कर ले सनातनधर्मकी पताका फहराई, वह हिन्दू जिसने ७०० वर्ष तक मुसलमान गुण्डोंसे लोहा लिया, वह हिन्दू जिसके धर्मकी रक्षाके लिये महाराणाने घासकी रोटियाँ खाईं, जिसके शिवाने जंगलोंकी खाक छानी, नन्दाका मास नोचवाया गया, दुधमुँहे बच्चोंको दीवारों में चुनवाया गया वह हिन्दू जिसके श्रीहरिसिंह नलुवाने अफगानिस्तानतकमें धावा बोल हिन्दू पताका फहराई, वह हिन्दू जिसमें पृथ्वीराज चौहान हुए हाय ! आज वहीं हिन्दू अपनी कुम्भकर्णी निद्रामें मग्न हो हिन्दूकोड बिलद्वारा अपने प्राणप्यारे हिन्दूधर्मको अपने आपही जड़मूलसे समाप्त करने जा रहा है। उससे बढ़कर मनहूस दिन और कौनसा होगा कि, जिस दिन भारतमें पतिव्रता हिन्दू-ललनायें जो परपुरुषको स्वप्नमें भी देखना पाप समझती हैं, किसी दूसरे पुरुषका हाथ न लग जाय, इसलिये लाखों क्षत्राणियाँ अपने स्वर्ण जैसे शरीरको धधकती अग्निमें झोंक चुकी हैं, आज हिन्दूकोडबिलद्वारा पतियोंको तलाक दे देकर वेश्याओंकी तरह मारी मारी फिरेंगी। वह दिन वहीं प्रलय होगा, कि जिस दिन स्वगोत्र विवाहद्वारा बहिन-भाईमें शादी होगी और दुनियाँ हिन्दुओंके इस घोर पतनको देखकर हँसेगी और स्वर्गमें बैठे राणा, शिवा, श्रीगुरुगोविन्द सिंह, नन्दावीर आदि हमारे पूर्वज, सती सीता, सावित्री, दमयन्ती, अनसूया, गाँधारी, पार्वती, शाण्डिली आदि पतिव्रता मातायें नौ नौ धार आँसू बहा रही होंगी। पितर रो रहे होंगे, देवियाँ वर्णसंकर सन्तानोंसे अपना सम्बन्ध तोड़ मुख मोड़ इन पर थूकेंगी। पता नहीं उस दिन पृथ्वी फटेगी भी या नहीं, जिस दिन हिन्दूकोडबिलद्वारा बहिन-भाईका झगड़ा होगा और बहिन अपने प्राणप्यारे नयनोंके तारे भाईको शत्रु मान उसके मकानको नीलाम करायेगी और जायदादमें हिस्सा बटायेगी और घरके बरतन भाण्डे सबपर हाथ साफ करनेकी चेष्टा करेगी। जिस दिन हिन्दू पतिव्रता ललनायें पातिव्रत-धर्मको त्याग तलाक बिलद्वारा परपुरुषोंके हाथमें हाथ डाल गोभक्षक मुसलमान, ईसाई, पारसी चाहे जिसको पति मान बाजारोंके पत्ते चाटती और सिनेमाओंकी खाक छानती हुई घूमेंगी, स्वगोत्र विवाह बिलद्वारा कुत्ते कुत्तियोंकी तरह भाई-बहिनमें शादी कर व्यभिचार होंगे, हिन्दूकोडबिलद्वारा बहिन-भाईका सदासे चला आया प्रेम नष्ट होकर दिनरात मुकदमेबाजियाँ होंगी, उस दिन मुसलमान ईसाई और यह अपने धर्मद्रोही हिन्दुस्तानी कांग्रेसी हीं हीं करके हँस रहे होंगे और राणा शिवाका हिन्दू पृथ्वी फट जाय, आकाश गिर जाय यह प्रतीक्षा कर रहा होगा। हाय ! यदि अब भी हिन्दुओंने अपनी आँखें नहीं खोलीं और शत्रु मित्रकी पहिचान नहीं की और इसी प्रकार इन धर्मद्रोहियोंको ही अपना हितैषी मानते रहे तो ऐसे बुरे दिन हिन्दुओंको देखने होंगे कि, जो उसने कभी आजतक रावण, कंस, औरङ्गजेबके समयमें भी नहीं देखे थे। हिन्दूकी माता बहिनें किसी गुण्डेके गलेमें हाथ डाले होटलोंमें पड़ी होंगी, बच्चे किसके हैं, किसीको पता नहीं होगा, बहिन भाईमें क्या फर्क है इसका ज्ञान नहीं होगा, बहिन भाईमें प्रेम कैसा होता है इसका ध्यान नहीं होगा। पति घरमें पड़ा सड़ रहा है और स्त्री अपने गोभक्षक यारके साथ बाजारोंके पत्ते चाट रही है। स्त्री बीमार है, पति नई नवेलीके साथ सैर कर रहा है। बस, होटलोंमें खायेंगे, अस्पतालोंमें मरेंगे, जो चाहे बकेंगे, बहिन भाई भी

लड़ेंगे, स्त्री पुरुषको और पुरुष स्त्रीको छोड़ छोड़ कर भागेंगे, चाहे जिसकी स्त्रीको ले भगेंगे, तलाक देंगे, नई करेंगे, हिन्दूकोडबिलद्वारा यह घोर नारकीय दृश्य उपस्थित होगें।

न छेड़ो हमें हम सताये हुए हैं।

ऐ हमारे देशके नेताओं! हमारी प्रार्थनापर ध्यान दो और हमें रुलाना, सताना, छेड़ना छोड़ दो। हमने तुम्हारे कहनेपर अपने लाखों लालोंको जेलोंमें सड़ाया है, गोलियोंका शिकार बनाया है, फाँसीके तखतोंपर चढ़ाया है, अण्डमानमें हड्डियाँ गलाने भेजा है, दर-दरका भिखारी बनाया है, भूखे रह कर करोड़ोंकी थैलियाँ भेंट की हैं, आपके जयकारे लगाते गले सुखाये हैं, घरोंसे बहिनोंको निकाल बेइज्जत कराई है, हरिजन-फंड, देसाई फंड कस्तूरबा-फंड—सभीमें दिल खोल कर रुपया दिया है और आज भी एक एक लाख रुपया हवाई जहाज, कारें, कोठियाँ यह सब हमारी गाढ़ी कमाई आप ले रहे है। आपने इनके बदलेमें हमारे विरोध करनेपर भी हमारी भारतमाताके टुकड़े २ कराये जिसके कारण लाखों बहिनें उड़ाई गईं, मठ-मंदिर ढाहे गये, करोड़ों हिन्दू मारे-काटे गये। हिन्दू ललनाओंकी छातियाँ काट नंगी कर जुलूस निकाले गये, बच्चोंके पकोड़े बनाये गये, अरबोंकी सम्पत्तियाँ छीनीं गईं। यह सब कुछ हुआ परन्तु इतने पर भी आपको संतोष नहीं है। हमें कानूनके बलपर हिन्दू नहीं कहने दिया जा रहा है। गोवध बराबर हो रहा है। अब आपसे हमारा यही कहना है कि, बस, अब 'न छेड़ो हमें हम सताये हुए हैं'; अब हिन्दूकोडबिलद्वारा हमारे गहरे घावोंपर छुरी मत चलाओ। बाज आवो अपनी इन बेजा हरकतोंसे याद रक्खो—

तुलसी आह गरीबकी कभी न खाली जाय

अत्याचारकीभी कोई हद होती है। अब हम पर ज्यादा अत्याचार न करो और हमारे धर्मपर ज्यादा हाथ साफ न करो। यह ध्यान रहे यदि आपने हमारी प्रार्थनापर ध्यान नहीं दिया और हिन्दूकोडद्वारा हिन्दूधर्मको समाप्त करनेकी छेड़छाड़ करते रहे, तो फल भयानक होगा। अब आपसे यही हमारी प्रार्थना है कि, यह हमारा प्राणप्यारा हिन्दूधर्म आप कोडद्वारा समाप्त न करें, आशा है आप हमारी प्रार्थनापर अवश्य ही ध्यान देंगे।

हिन्दूकोड कान्फरेंसका नाटक

(लेखक—गोविन्दशास्त्री दुगवेकर)

वर्तमान समयकी भारतीय राजनीति कुछ विचित्र-सी हो गयी है। भारत सरकारकी विधान-परिषद् वास्तवमें विशुद्ध राजनीतिक संस्था होनी चाहिये और अंग्रेजी राज्यमें सामाजिक और धार्मिक विषयोंमें जैसा हस्तक्षेप किया जाने लगा था, उसे रोककर केवल राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयोंपर ही उसमें विचार होना चाहता था; परन्तु उसने 'अव्यापारेषु व्यापार' करना आरम्भ किया है और सामाजिक तथा धार्मिक विषयोंमें हस्तक्षेप कर बलपूर्वक हिन्दूधर्मपर आघात करनेके लिये कमर कस ली है। उदाहरण हिन्दूकोड-बिल है। यह विषय समाजके नेताओं तथा अखिल भारतवर्षीय सनातन धर्मावलम्बियोंकी विराट् सभा श्री भारतधर्म महामण्डल जैसी संस्थाओंके विचार करनेयोग्य है। धर्मका निर्णय करनेका किसी राजनीतिक संस्थाको न अधिकार है, न हो सकता है। परन्तु परिस्थिति इससे ठीक विपरीत है। भारतीय सनातनी हिन्दुओंकी संख्या सब हिन्दुओंमें सैकड़ा ९५ है, जो अपने धर्ममें किसीका हस्तक्षेप करना सहन नहीं कर सकते। उनकी मनोभावनाओंकी अवहेलना कर वर्तमान सरकारने विधान-परिषदमें हिन्दूकोडबिल उपस्थित होने दिया और प्रधान मंत्री पं० नेहरू जीने यह धमकी दी कि, यदि यह बिल पास नहीं होगा, तो हमारा मंत्रिमण्डल इस्तीफा दे देगा। इसपर धर्मप्राण हिन्दुओंमें बड़ी खलबली मची और विरोधको आवाज चारों ओरसे आने लगी। तब प्रधान मन्त्री महोदयने यह घोषणा की कि, बिलके पास करनेमें शीघ्रता नहीं की जायगी। उभय पक्षकी सम्मतियाँ ली जायँगी और बीचका ऐसा रास्ता ढूँढ़ निकाला जायगा, जिससे दोनों पक्षोंमें समझौता हो सके। तदनुसार डा० अम्बेदकरके नेतृत्वमें दिल्लीमें इन्फार्मल हिन्दूकोडबिल कान्फरेन्स गत अप्रेलकी ता० २० को बुलाई गयी और उसमें २८ व्यक्ति निमंत्रित किये गये, जिनमेंसे २१ उपस्थित हुए थे। उनमें भी सनातन धर्मावलम्बियोंके तीन ही प्रतिनिधि थे, जो बिलके विरोधी थे, शेष सब बिलके पक्षमें थे। इस प्रकार पहलेसे किलेबन्दी कर कान्फरेन्सका कैसा नाटक खेला गया, उसका संक्षेप विवरण नीचे दिया जाता है।

कान्फरेंस जैसी इनफारमल थी, उसकी कार्यवाही भी वैसी ही अव्यवस्थित हुई। प्रतिनिधियोंको २० ता० से कान्फरेंसमें भाग लेनेके लिये निमंत्रण दिया गया था; परन्तु कान्फरेंस ता० २१ से आरम्भ हुई। सभापति स्वयं डा० अम्बेदकर थे। वास्तवमें इस कान्फरेंसका सभापति ऐसा होना चाहता था, जो दोनों पक्षोंकी बातें अच्छी तरह समझता हो और निष्पक्ष होकर निर्णय कर सके। डा० अम्बेदकर अन्य विषयमें भले ही विद्वान् हों, उनको समाजशास्त्र और धर्मशास्त्रके विशेषज्ञ माननेके लिये सनातनी हिन्दूजनता कदापि तैयार नहीं हो सकती। एक तो हिन्दू धर्मशास्त्रके विज्ञान तथा रहस्यसे वे अपरिचित हैं; दूसरे हिन्दूधर्म तथा हिन्दू जातिसे उनको विशेष विद्वेष है, जैसा कि उनके ता० २ मईके नयी दिल्लीमें बुद्धजयन्तीके भाषणसे स्पष्ट है। अब वे धर्मांतर कर बौद्धधर्मकी दीक्षा ग्रहण कर चुके हैं। ऐसे व्यक्तिके हाथमें हिन्दुओंके धर्मनिर्णयका भार सौंप देना नादानी ही नहीं, जान बूझकर हिन्दूधर्ममें ठेंच लगाकर हिन्दूजातिको अपना शत्रु बना लेना है। डाक्टर

साहबने अपने स्वभाव और सभ्यताके अनुसार ही सभापतिका कार्य सम्पन्न किया।

उपस्थित प्रतिनिधियोंको नियमानुसार पहलेसे विचारणीय विषयोंकी सूची नहीं दी गयी थी, जिससे उन विषयोंपर वे अपने विचार प्रकट कर सकें। यह भी एक पेशबन्दी थी। कान्फरेन्सका उद्घाटन करते हुए प्रारम्भिक भाषणमें आपने बताया कि, इस कान्फरेन्समें निम्नलिखित विषयोंपर विचार किया जा सकेगा :—(१) रजिस्टर्ड या धार्मिक विधिसहित विवाह, (२) विवाह-विच्छेद, (३) एक पत्नी रहते कोई पुरुष दूसरा विवाह न करे, (४) उत्तराधिकार और स्त्री धन, (५) पिताकी सम्पत्तिमें कन्याका भाग और (६) संयुक्त कुटुम्ब पद्धति। तदनुसार ता० २१ को १० बजे कान्फरेंसके आरम्भ होनेपर बिलके समर्थकोंके ही भाषण होते रहे। सनातनधर्मावलम्बियोंकी ओरसे बिलका विरोध करने वाले तीन ही प्रतिनिधि थे :—

१—अखिल भारतवर्षीय आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की ओर से—श्रीमती विद्यादेवी जी।

२—काशी विद्वत्परिषद्की ओरसे महामहोपदेशक श्री पं० देवनायकाचार्य जी।

३—अखिल भारतीय हिन्दूकोड विरोधी समितिकी ओरसे महामहोपदेशक शास्त्रार्थमहारथि श्री पं० माधवाचार्य जी।

श्रीमती विद्यादेवीजीका भाषण बड़ाही ओजस्वी और परिणाम कारक हुआ। बिलके पक्षवालोंकी सब युक्तियों और तर्कोंका उत्तर देते हुए आपने कहा,—हिन्दू समाजके आदर्श स्वरूप मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र हैं। वैसा एक पत्नीव्रती महापुरुष संसारके इतिहासमें दुर्लभ है। वनवासी होने और सीताहरण होनेपर तो अन्य स्त्रीका उन्होंने स्वप्नमें भी विचार नहीं किया, किन्तु सीता माताको त्याग देनेपर भी दूसरा विवाह न कर जानकीकी स्वर्णप्रतिमा साथ रख कर यज्ञ सम्पादित किया। हिन्दूलोग आपही बहुविवाहको पसन्द नहीं करते; किन्तु विशेष अवसरपर हिन्दू शास्त्रने दूसरा विवाह करनेकी आज्ञा दी है। जैसे,—यदि वंशके नाशका भय हो या अग्निहोत्रका उच्छेद होता हो तो आर्य पुरुष धर्मकार्यके लिये और वंशरक्षाके लिये दूसरा विवाह कर सकता है। ऐसी अवस्थामें इस बिलकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती। यदि बलपूर्वक हिन्दुओंपर यह बिल लादा जायगा तो उनके साथ घोर अन्याय किया जायगा। यह बिल हिन्दुओंके लिये अवांछनीय है।

दूसरे दिन अर्थात् ता० २२ को भी श्री देवीजीको भाषणके लिये समय देनेकी उदारता दिखायी गयी। आजका श्रीदेवीजीका भाषण बड़ा ही प्रभावशाली हुआ। विषय था विवाह तथा विवाह विच्छेद। आपने श्री भगवान्की इस आज्ञाका—

> यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
> न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

उल्लेख करते हुए कहा कि, हिन्दुओंमें विवाह एक वैदिक धार्मिक संस्कार माना जाता है। इसका महत्त्व बहुत बड़ा है। केवल विषय वासनाको चरितार्थ करना ही हिन्दू विवाहका लक्ष्य नहीं है। विवाह संस्कारके द्वारा आबद्ध होकर हिन्दू स्त्री पुरुष प्रवृत्ति-मार्गकी पूर्णता प्राप्त करते हैं और उनका सम्बन्ध जन्म-जन्मांतरतक बना रहता है। तब विवाह-विच्छेदका हिन्दूधर्ममें प्रश्न ही नहीं उपस्थित होगा। हिन्दूविवाह कोई ठीका या कंट्रेक्ट नहीं, जो चाहे जब जोड़ दिया जाय और चाहे जब तोड़ दिया जाय। हिन्दुओंके लिये यह बिल अनावश्यक ही नहीं, घातक भी है। स्वेच्छाचारिताके लिये कानून की आवश्यकता नहीं हुआ करती। अतः यह कदापि पास नहीं होना चाहिये।

आपके भाषणसे निरुत्तर हो जानेसे श्रीमती रेणुका राय और दुर्गाबाई भी असन्तुष्ट हो गयीं। वे चाहती थीं कि, श्री देवीज़ी व्यवहारतः नहीं, तो सिद्धान्ततः विवाह-विच्छेदको स्वीकार कर लें। यह पूछनेपर कि, हिन्दुओंकी जिन उपजातियोंमें

विवाह-विच्छेद होता है, क्या उसमें आप सहमत हैं ? श्री देवीजीने स्पष्ट अस्वीकार किया और कहा, जब उनके यहाँ विवाह विच्छेद होता ही है और वह सरलतासे हो जाता है उसमें इस बिलद्वारा अनेक असुविधा एवं उलझन उत्पन्न हो जायगी अतः उनके लिये भी यह वाञ्छनीय नहीं है। इस प्रकार श्री देवीजीके दोनों दिनोंके भाषण हिन्दूहृदयोंका पूर्ण प्रतिनिधित्व कर रहे थे।

दो दिनोंके विरोध-पक्षके भाषणसे डाक्टर साहबका नशा उतर गया। कोई उपाय न देखकर तीसरे दिन 'शेषं कोपेन पूरयेत्' इस न्यायके अनुसार उक्त सनातनी महिलाओंकी एकमात्र प्रतिनिधि श्रीमती विद्यादेवीको बोलनेका अवसर ही नहीं दिया गया। देवीजीसे उन्मत्त भावके साथ डा० अम्बेद-करने कहा, आप केवल हाँ या 'ना' कह सकती हैं। श्री देवीजी भला यह क्यों स्वीकार करने लगीं। उन्होंने इसपर आपत्ति की, विद्वद्वर माधवाचार्य जीने भी देवीजीका समर्थन किया और उनको समय देनेको कहा, पर उनके कहनेका भी कोई असर नहीं हुआ, अतः इस अन्याय और समस्त सनातनी महिलाओंके अपमानके विरोधमें उन्होंने सभागृहसे प्रस्थान किया। श्रीदेवीजी और पं० देवनायकाचार्यजीने भी इसी विरोधमें सभाका त्याग किया।

इस निर्लज्जता और उद्दतापूर्ण नाटकका यहीं ड्रापसीन हो जाता है। इससे बिल बनाने और उसे पास कराने वालोंकी नीयतका पता चल जाता है कि, उनमें कहाँतक सचाई है और कहाँतक उनमें निष्पक्षताका भाव है। यदि उनमें कुछ भी सचाई होती, तो समझौतेका कोई मार्ग निकल आना असम्भव नहीं था। किसी सिद्धांतके विरोधमें यदि एक ही व्यक्ति प्रतिकूल हो, तो वह सिद्धान्त ग्रहण नहीं किया जा सकता। प्रजारंजक रामचन्द्रने त्रिकालज्ञ महर्षि वशिष्ठ, वामदेव, सुमंत जैसे गुरुजनके यह कहनेपर भी कि, सीता देवी निर्दोष हैं, एक रजक प्रजाके मतभेदके कारण प्राण-प्रिया जानकीका त्याग कर दिया था। वह आदर्श हमारी सरकारके सामने है कहाँ ? इस नाटकसे एकबार एक बात और सिद्ध हो गयी कि, बहु-संख्यक हिन्दूजाति इस बिलके साथ नहीं है।

सतीधर्म

पतिकी सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पतिके सम्बन्धियोंका अनुवर्तन करना तथा पति-के नियमोंका पालन करना, ये पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म हैं। सती स्त्री झाड़ बुहार कर, लीप-पोत तथा चौका पूर कर घरको स्वच्छ तथा सुसज्जित रखे वस्त्राभूषणसे अपनेको अलंकृत रखे। पतिकी सब इच्छाओंको यथासमय पूरी करे तथा नम्रता, इन्द्रियसंयम, सत्य एवं प्रिय वचनोंद्वारा प्रेमसे पतिकी सेवा करे। पतिद्वारा जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट, भोगमें अनासक्त, कार्य-कुशल, धर्मको जाननेवाली, सत्य एवं प्रिय बोलनेवाली सावधान, पवित्र एवं प्रेममयी होकर अपने अपतित पतिकी सेवा करे।

भागवत ७।११।२५—२८।

मनुष्यके लिये कर्म ही सबकुछ है। क्योंकि मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसका फल उसको प्राप्त होता है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परमात्मा कर्मके नियमद्वारा अपने इस अनादि अनन्त सृष्टि-साम्राज्यका शासन करते हैं। इस विश्व-ब्रह्माण्डमें किसीको ऐसी शक्ति नहीं, जो स्रष्टाके इस कर्म-विधानमें कोईभी परिवर्तन कर सके। 'कर्तुम-कर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ' सर्वेश्वर स्वयं भी साधारणतः अपने बनाये हुए इस कर्मके नियममें परिवर्तन नहीं करते हैं। उस महेश्वरकी सृष्टिमें देव-दानव-मानव-स्थावर-जंगम सभी प्राणीको नाथे हुए बैलकी तरह इसी कर्मके विधानके अनुसार विवश होकर चलना ही पड़ता है। उस कर्मका अकाट्य अलंघ्य सिद्धान्त है कि, जैसा करो वैसा भोगो। यह कर्म कैसे कहाँ उत्पन्न होता है, कैसे उसका विस्तार होता है, कैसे फलकी उत्पत्ति होती है, इसका विश्लेषण करनेवाला कर्ममीमांसादर्शन है। उसका क्रिया-पाद विशेषतः इस विषयका विवेचन करता है, जो प्रत्येक मनुष्यको अवश्य जानना चाहिये। अतः आर्यमहिलाके पाठक-पाठिकाओंके लिये यहाँ क्रमशः उसे प्रकाशित किया जायगा। हमारे विज्ञपाठक इससे लाभ उठावेंगे ऐसी आशा है।

विद्यादेवी

कर्ममीमांसादर्शन।

क्रियापाद।

—:❀:—

प्राकृतिक कम्पनको क्रिया कहते हैं ॥ १ ॥

प्रकृति त्रिगुणमयी है। रजोगुणके कारण प्रकृतिका परिणाम सदा होता रहता है, वह परिणाम कभी सत्त्वसे तमकी ओर और कभी तमसे सत्त्वकी ओर स्वभावसे होता है। जैसे प्रकृतिमें त्रिगुणका होना स्वभावसिद्ध है, उसी प्रकार यह परिणाम भी स्वभावसिद्ध है। इसी स्वभावसिद्ध-स्पन्दनको क्रिया कहते हैं। इस विषयमें स्मृति-शास्त्रमें कहा है—

विबुधाः! साम्प्रतं वच्मि कर्मत्रैविध्यगोचरम्।
वैज्ञानिकं स्वरूपं वः सावधानैर्निशम्यताम् ॥
स्वभावात् प्रकृतिर्मे हि स्पन्दते परिणामिनी।
स एव स्पन्दहिल्लोलः स्वभावोत्पादितो मुहुः।
सदैवास्ते भवन् देवाः! स्वरूपे प्रतिबिम्बितः।
तस्मान्मम प्राकृतानां गुणानां परिणामतः ॥
अविद्याऽऽविर्भवेन्नूनं तरङ्गैस्तामसोन्मुखैः।
सत्त्वोन्मुखैश्च तैर्देवाः! विद्याऽऽविर्भावमेति च ॥
तदाऽविद्याप्रभावेण तरङ्गाणां मुहुर्मुहुः।
आघातप्रतिघाताभ्यां जलैः पूर्णे जलाशये ॥

प्राकृतिकः स्पन्दः क्रिया ॥ १ ॥

अगण्यवीचिसंघेषु नैकवैधवबिम्बवत् ।
चिज्जडग्रन्थिभिर्देवाः ! स्वत उत्पद्य भूरिशः ॥
जीवप्रवाहपुञ्जोऽयमनाद्यन्तो वितन्यते ।
तदैवोत्पद्य संस्कारो नूनं स्वाभाविको मम ॥
कर्मणा सहजेनैव विश्वविस्तारकारिणा ।
आविर्भावयते सृष्टिं जङ्गमस्थावरात्मिकाम् ॥

हे देवतागण ! अब मैं आपको त्रिविध कर्मका वैज्ञानिक स्वरूप बताती हूँ, सावधान होकर सुनो। मेरी प्रकृति स्वभावसे ही परिणामिनी होकर स्पन्दित होती है। हे देवगण ! वही स्वभाव-जनित स्पन्दनका हिल्लोल सदा ही स्वरूपमें वारम्वार प्रतिफलित होने लगता है ; अतः मेरी प्रकृतिके गुण-परिणामके कारण तमकी ओरके तरङ्गसे अविद्या और सत्त्वकी ओरके तरङ्गसे विद्या प्रकट अवश्य होती है। उस समय अविद्याके प्रभावसे वारम्वार तरङ्गोंके घात-प्रतिघातद्वारा जलपूर्ण जलाशयके अगणित तरंगोंमें अनेक चन्द्रविम्बके प्रकाशके समान हे देवगण ! स्वतः ही अनेक चिज्जडग्रन्थि उत्पन्न होकर अनादि अनन्त जीव-प्रवाहको विस्तार करती है। इसी समय मेरा स्वाभाविक संस्कार अवश्य उत्पन्न होकर संसार-विस्तारकारी सहज कर्मसे ही स्थावरजंगमात्मक सृष्टि प्रकट करता है ॥ १ ॥

क्रियाका नैसर्गिक हेतु क्या है सो कहा जाता है :—

शृङ्गार उसका स्वाभाविक हेतु है ॥ २ ॥

जिज्ञासुके हृदयमें यह शंका हो सकती है कि, संसारमें अहैतुक पदार्थ कुछ भी नहीं हो सकता ; इस कारण स्पन्दन-जनित कर्मका हेतु क्या है ? कर्मका बीज संस्कार है, अतः स्वाभाविक संस्कारका हेतु क्या है ? यह शंका भी इसीके अन्तर्गत हो सकती है। स्वाभाविक स्पंदन ही यदि संस्कार और कर्म दोनोंका हेतु माना जाय, तो इन दोनोंके मौलिक हेतुके विषयमें अवश्य शंका होगी। दूसरी ओर संस्कार और कर्म-जनित जो दृश्यप्रपंचरूपी संसार प्रकट होता है, उसका प्रधान हेतु क्या है ? संसार क्यों उत्पन्न होता है ? सृष्टिका मौलिक कारण क्या है ? इत्यादि नाना शंकाओंके समाधानमें पूज्यपाद महर्षि सूत्रकारने इस सूत्रका आविर्भाव किया है। इन सब शंकाओंका समाधान एक ही है कि, प्रकृति-पुरुषात्मक शृंगार इन सबोंका कारण है। यह ब्रह्मशक्ति-प्रकृति जब परमपुरुष परमात्मामें अद्वैत दशामें लीन रहती है, वही सृष्टि-संस्कार-रहित और कर्म-रहित अवस्था है। सच्चिदानन्दरूप परमपुरुष परमात्माके अद्वैत स्व-स्वरूपमें गुप्त शक्तिके समान प्रकृति उनमें लीन रहती है तथा उसकी स्वतंत्र सत्ता रहती ही नहीं। जब पराप्रकृति उनसे अलग होकर अपनी स्वतंत्रसत्ता धारण करती हुई परमपुरुषको आलिङ्गित करती है और पुरुषके इक्षणके लिये परिणामिनी होतीहै, प्रकृति-पुरुषात्मक शृंगारकी यह अवस्था ही इन सबोंका कारण है।

यथा स्मृतिमें—

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह ।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः ॥
दृष्ट्वा तां तु तया सार्द्धं रासेशो रासमण्डले ।
रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीड़ां चकार ह ॥
नानाप्रकारशृङ्गारं शृंङ्गारो मूर्तिमानिव ।
चकार सुखसम्भोगं यावद्वै ब्रह्मणो दिनम् ॥

इच्छामय भगवान्‌ने अपने शरीरको दो रूपोंमें विभक्त किया। बाम भागसे स्त्री और दक्षिण भागसे पुरुष उत्पन्न हुए। उस स्त्रीरूपी मायाको देखकर रासेश्वर सुरसिक भगवान्‌ने उसके साथ रासलीला की। मूर्तिमान् शृंङ्गारकी तरह अनेक शृङ्गारसे युक्त हो प्रकृतिके साथ सम्भोग किया। इस विज्ञानको अन्य प्रकारसे भी समझ सकते हैं कि, सत्, चित्, आनन्द इन तीनों ब्रह्मके भावोंमेंसे अस्ति और भातिके विचारसे सत् और चित् स्वयं

नैसर्गिको हेतुरस्याः शृङ्गारः ॥ २ ॥

वेदनीय हैं, परन्तु आनन्दभाव विना इन दोनोंकी सहायताके वेदनीय नहीं हो सकता है; क्योंकि विना सत्की सहायताके चित्में और चित्की सहायताके सत्में आनन्दभाव प्रकट नहीं हो सकता है। इस कारण आनन्द-विलासके लिये प्रकृति-पुरुषात्मक शृङ्गारकी आवश्यकता है। यही सृष्टि प्रपञ्चका मौलिक कारण है। तात्पर्य यह है कि, आनन्दका स्वतन्त्र अनुभव चित् और सत्की सहायतासे होनेके लिये प्रकृति और पुरुषकी स्वतन्त्र सत्ता आविर्भूत होती है। उसी अवस्थासे प्रकृति विकारको प्राप्त होकर अपनी साम्यावस्था छोड़ती हुई वैषम्यावस्था प्राप्त करके त्रिगुण-परिणामको धारण करती है। यही अवस्था संस्कार और कर्म दोनोंका मौलिक हेतु है ॥ २ ॥

उसके विस्तारका कारण कहा जाता है :—

द्वन्द्व-शक्तिके द्वारा उसका विस्तार होता है ॥३॥

अब जिज्ञासुके हृदयमें यह शंका हो सकती है कि कर्म, स्वाभाविक होनेपर भी उसका विस्तार अनन्तशाखाओंसे पूर्ण देखनेमें आता है, इसका रहस्य क्या है? इस श्रेणीकी जिज्ञासाका समाधान यह है कि, प्रथम कर्म प्रकृति पुरुषात्मक शृङ्गारसे स्वतः ही उत्पन्न होता है। उसके अनन्तर द्वन्द्व शक्तिकी सहायता होनेपर वह बहु शाखामें विस्तृत होने लगता है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, द्वन्द्वशक्ति बहिर्जगत्में रजोमूलक आकर्षण और तमोमूलक विकर्षण है और अन्तर्जगत्में वही शक्ति रजोमूलक राग और तमोमूलक द्वेष है। इन शक्तियोंके घात-प्रतिघातसे कर्मका चक्र अनिवार्यरूपसे चलता ही रहता है। स्थूल जगत्में ग्रह-उपग्रह आदिकी गति, जैव जगत्में आवागमन चक्रकी गति और मनुष्यके अन्तःकरणमें कर्मकी उत्पत्तिका अविराम प्रस्रवण इत्यादि ये सब द्वन्द्वमूलक कर्मके विस्तार-रहस्यके ही उदाहरण हैं ॥३॥

उसके विकासका रहस्य कहा जाता है :—

उसका विकास मेघोत्पत्तिकी तरह होता है। ॥४॥

मेघशून्य निर्मल आकाशमें सर्वत्र मेघोत्पत्ति हो सकती है। मेघोत्पत्ति होनेपर वही मेघ आकाशको ढक भी लेता है। उस समय आकाश न दिखाई देकर मेघ ही सर्वत्र दिखाई देता है। उसी प्रकार द्वन्द्वशक्तिका विकास स्थूल और सूक्ष्म प्रपञ्चमें सर्वत्र स्वतः ही होता है। प्राकृतिक तरंगका घात-प्रतिघात ही इसका कारण है ॥४॥

और भी कहा जाता है :—

रूप और शब्दके द्वारा उसका प्राकट्य होता है ॥५॥

जहाँ सृष्टि है, वहाँ रूप और शब्दका होना भी निश्चित है। चाहे सृष्टिकी स्थूल अवस्था हो, चाहे सूक्ष्म अवस्था अर्थात् जहाँतक दृश्य प्रपञ्च है, वहाँतक रूप और शब्दका सम्बन्ध है इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि द्रष्टा और दृश्यका सम्बन्ध तो रूपसे ही सिद्ध होता है और रूपके होनेसे नामका होना भी सिद्ध ही है, जैसा कि श्रुतिमें कहा है :—

"नामरूपे व्याकरवाणि"

मैं नामरूपसे प्रकट होता हूँ। और भी—

"सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरा
नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते।"

जो ब्रह्म नाम और रूपके द्वारा प्रकट होकर संसारमें रहता है।

"आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता।"

परमात्मा नाम और रूपके द्वारा प्रकट होता है ॥५॥

कर्मका साक्षात् फल कहा जाता है :—

द्वन्द्वशक्त्या वितानम् ॥ ३ ॥ अस्या विकासो मेघवत् ॥ ४ ॥ रूपशब्दाभ्यामसौ ॥ ५ ॥

ब्रह्माण्ड और पिण्डमें सृष्टि-स्थिति-लय उसके द्वारा होते हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्माण्डसृष्टि और पिण्डसृष्टि कर्म ही के अधीन है। एक ब्रह्माण्ड जब प्रलयके गर्भमें लय होता है, उस समय उस ब्रह्माण्डके समष्टि कर्मबीज संस्कार-राशि प्रकृतिके साथ ब्रह्ममें लीन हो जाती है। उसके अनन्तर जब उस ब्रह्माण्डकी पुनः सृष्टि होती है, तो श्रीभगवान् "यथापूर्वमकल्पयत्" इस श्रुतिवचनके अनुसार उक्त ब्रह्माण्डके पूर्व संस्कारोंमेंसे अङ्कुरित होनेयोग्य संस्कारोंको स्मरण करके उक्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि, कर्मही ब्रह्माण्ड-सृष्टिका कारण है। जैसे बीज और वृक्षमें अभेद है, वैसे संस्कार और कर्ममें अभेद है। इन दोनोंमें कर्म-अवस्थाका प्राधान्य है, क्योंकि कर्ममें स्वाधीनता है और संस्कार केवल कर्मके अनुसार ही बनता है। इस कारण ब्रह्माण्ड-सृष्टिमें कर्मको ही मूल कारण मानेंगे। दूसरी ओर पिण्डसृष्टि तो कर्मके अधीन है यह तो प्रत्यक्षसिद्ध है। "कर्माधीनं जगत् सर्वम्" इस वचनद्वारा भी इस विज्ञानकी पुष्टि होती है। यह तो पहले ही भलीभाँति सिद्ध हो चुका है कि, प्रत्येक मनुष्यके कर्मबीज संस्कारसमूह किस प्रकारसे सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्धरूपमें परिणत होते हैं और उन तीनोंमें से प्रारब्धकर्म किस प्रकारसे पिण्डको उत्पन्न करता है। सुतरां मनुष्य-पिण्ड और देवपिण्ड ये दोनों प्रारब्धकर्मसे ही उत्पन्न होते हैं। रहा सहज-पिण्ड, वह भी किस प्रकारसे स्वाभाविक संस्कार और सहज कर्मके अधीन है, सो भी संस्कार-पादमें भलीभाँति सिद्ध हो चुका है। अतः ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनोंकी उत्पत्ति सर्वथा कर्माधीन है, इसमें संदेह नहीं ॥ ६ ॥

और भी कहा जाता है :—

आकर्षण और विकर्षण भी ॥७॥

कर्मके साक्षात् फलका एक दूसरा उदाहरण दे रहे हैं कि, परमाणुसे लेकर ग्रह-उपग्रहादिमें और पिण्डसे लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त जो आकर्षण और विकर्षण-शक्ति देखी जाती है, वह भी कर्मका साक्षात् फल है। परमाणु-पुञ्ज जब परस्पर मिलते हैं तो आकर्षण शक्तिके बलसे ही मिलते हैं; वे ही परमाणु-पुञ्ज जब पृथक् हो जाते हैं, तब विकर्षण शक्तिके बलसे ही होते हैं। सृष्टिके समय परमाणु-पुञ्ज मिलते हैं और प्रलयके समय वे एक दूसरेसे पृथक् हो जाते हैं। प्रस्तर काष्ठादि साधारण पदार्थोंसे लेकर पृथिव्यादिलोकोंमें सर्वत्र यही क्रिया विद्यमान है और इस क्रियाके मूलमें कर्म विद्यमान है। इसी प्रकार अन्तर्जगत्में रागात्मिका आकर्षण-शक्ति और विद्वेषात्मिका विकर्षण-शक्तियाँ उत्पन्न होकर जो अन्तःकरणको सदा तरङ्गायित करती रहती है, ये सब क्रियायें कर्मकी असाधारण शक्तिपर ही निर्भर करती हैं। प्रस्तरादि स्थावर पदार्थोंमें सहज कर्म, ब्रह्माण्ड पिण्डात्मक सृष्टिक्रियामें एवं अन्तःकरणकी वृत्तियोंके विषयमें जैव कर्मकी शक्ति ही कार्यकारिणी होती है ॥७॥

इस सम्बन्धसे क्रियाका भेद कह रहे हैं :—

ऊर्ध्वगामिनी और अधोगामिनी है ॥८॥

अनन्तरूपधारी कर्मसाम्राज्यकी क्रियाके साधारण दो भेद हैं, एक ऊर्ध्वगामिनी क्रिया और दूसरी अधोगामिनी क्रिया है। पाप और पुण्य इन दोनों कर्म-शक्ति-जनित क्रियाओंमें पुण्यकी क्रिया ऊर्ध्वगामिनी और पापकी क्रिया अधोगामिनी होती है। जन्मान्तर-गतिकी क्रियामेंसे भुवः, स्वः, जनआदि ऊर्ध्वलोकोंमें जो गमनकी गति है, वह ऊर्ध्वगामिनी और नरक और प्रेतलोकोंकी गति

तथा सर्गस्थितिप्रत्यवहारा ब्रह्माण्डपिण्डयोः ॥ ६ ॥ आकर्षणविकर्षणे च ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वगाऽधोगा च ॥ ८ ॥

अधोगामिनी समझना उचित है। सूर्यकी उदय-गतिको ऊर्ध्वगामिनी और अस्तगतिको अधोगामिनी समझना उचित है। उसी प्रकार जीवपिण्डकी कौमार और यौवन अवस्थाको ऊर्ध्वगतिशील और वार्द्धक्यको अधोगतिशील मान सकते हैं। अन्तरराज्यमें भी अक्लिष्ट वृत्तियोंको ऊर्ध्वगतिशील और क्लिष्ट वृत्तियोंको अधोगतिशील मानेंगे। उसी प्रकार रजकी सत्त्वोन्मुख क्रियाको ऊर्ध्वगतिशील और तमोन्मुख क्रियाको अधोगतिशील स्वीकार करेंगे॥ ८॥

प्रसंगसे शंका समाधान कर रहे हैं :—

कर्म-संस्कारजन्य सृष्टि स्वाभाविक है॥ ९॥

सृष्टि क्रियाको कर्मजन्य भी कह सकते हैं, संस्कारजन्य भी कह सकते हैं, क्योंकि संस्कार कर्मका बीज है और कर्म संस्काररूपी बीजका वृक्ष है। इस कारण सृष्टिको उभयजन्य कहनेमें दोष नहीं होगा। दूसरी ओर जब त्रिगुणात्मिका होना प्रकृतिका स्वभाव है, जब कर्म स्वभावतः प्रकृति-हिल्लोलसे उत्पन्न होता है और जब स्वाभाविक संस्कार स्वतः उत्पन्न होता है जैसा कि, पूर्व अध्यायमें सिद्ध हो चुका है, तब यह मानना ही पड़ेगा कि, सृष्टिक्रिया जो कर्मसंस्कारजन्य है, वह भी प्रवाहरूपसे होनेसे स्वाभाविक है॥ ९॥

प्रकृत विज्ञानको उदाहरणसे पुष्ट किया जाता है :—

वह मकड़ीके समान और केश-लोमके समान है॥ १०॥

उदाहरण दिया जाता है कि, जिस प्रकार मकड़ी स्वप्रकृतिके वश स्वतः ही जाला बनाकर बड़ा प्रपञ्च रच लेती है और जिस प्रकार मनुष्यके शरीरमें स्वतः ही केश और लोम प्रकट होते हैं, उसी प्रकार कर्मजन्य सृष्टि-प्रपञ्च स्वतः ही प्रकट होता है॥ १०॥

प्रसंगसे कर्मके साथ शक्तिका सम्बन्ध दिखाया जाता है :—

हिमालयके ऐश्वर्यके समान शक्ति कर्मके अधीन है॥११॥

जगत्प्रसिद्ध हिमालय पर्वत सब प्रकारके ऐश्वर्योंको खान है। प्रसिद्ध और पुनीत नद-नदियाँ हिमालयसे निकली हैं, सब प्रकारके रत्नराशि, सब प्रकारके सुवर्णादि धातु तथा अन्यान्य सब खनिज पदार्थ हिमालयके गर्भमें सुगमतासे प्राप्त हैं। सब प्रकारकी वनौषधियाँ हिमालयके सुविशाल वक्षःस्थलपर उत्पन्न होती हैं। ऐसा कोई वन्य पशु नहीं है, ऐसा कोई पक्षी नहीं और ऐसा कोई उद्भिज्ज नहीं है जो हिमालयके आश्रयसे जीवित न रह सके। इस सामान्य दिग्दर्शनसे यह सिद्ध होता है कि, हिमालय सब ऐश्वर्योंकी खानि है और यह पर्वतराज प्राकृतिक शोभाका तो आकर ही है। ठीक इसी उदाहरणसे समझना उचित है कि, अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत, सभी शक्तियाँ कर्मके आश्रयसे ही उत्पन्न होती हैं। चाहे यावत् मानवी-शक्ति हो, चाहे दैवीशक्ति हो, चाहे शारीरिक शक्ति हो, चाहे मानसिक शक्ति हो, चाहे लौकिक शक्ति हो, चाहे आत्मिक शक्ति हो, चाहे ब्राह्मण-शक्ति हो, चाहे क्षत्रिय-शक्ति हो, चाहे विद्या-शक्ति हो, चाहे धन-शक्ति हो, चाहे युद्ध-शक्ति हो और चाहे बुद्धि-शक्ति हो, सब ही कर्मसे प्राप्त होती है॥ ११॥

कर्मोत्पत्तिके हेतु विज्ञानको पुष्ट कर रहे हैं :—

सत् और चित्की ओर गमनागमनसे कर्म उत्पन्न होता है॥ १२॥

आनन्द-अनुभवके अर्थ चित्से सत् और सत्से चित्की ओर जो भावतरङ्गकी गति है, वही कर्मो-

नैसर्गिकी कर्म-संस्कारजा सृष्टिः ॥९॥ ऊर्णनाभवत् केशलोमवच्च ॥१०॥ शक्तिः कर्मायत्ता हिमालयैश्वर्यवत् ॥११॥ सच्चितोर्गमागमतः कर्म ॥१२॥

त्पत्तिका कारण है, और उसीको सृष्टिका हेतु कह सकते हैं। यद्यपि कर्मोत्पत्ति तथा सृष्टिका विज्ञान पहले अच्छी तरह समझाया गया है, तथापि कर्मकी महिमाको दृढ़ करनेके अर्थ पुनः कहा जाता है कि, आनन्द बिना सत् और चित् उभयकी सहायता के अनुभव नहीं हो सकता ; इस कारण आनन्दानुभवके निमित्त सत्से चित्की और चित्से सत्की ओरके अनुभवके सम्बन्धसे जो विविध भावका स्वतन्त्र स्वतन्त्र अनुभव है, उसको कर्मकी उत्पत्तिका मौलिक कारण कह सकते हैं। समाधिस्थ योगी इस विज्ञानको समझ सकते हैं कि, प्रकृतिकी लयावस्थामें जब अद्वैतरूपमें ब्रह्मसद्भावकी दशा रहती है, उस समय सत्, चित् और आनन्द, इन तीनोंकी अद्वैत सत्ता होती है ; इस स्वरूपावस्थामें इन तीनों भावोंका पृथक् पृथक् अनुभव असम्भव है। परन्तु जब इन तीनोंका पृथक् पृथक् अनुभव होता है, उस समय चिद्भावका अनुभव और सद्भावका अनुभव अलग अलग पहले होता है। अस्ति और भाति सत् और चित्की अनुभूतिका कारण होता है। इसी दशामें अव्यक्तावस्थाको छोड़ कर ब्रह्म-प्रकृति सूक्ष्मावस्थाको धारण करती है और यही अवस्था कर्मोत्पत्तिका कारण बनती है। यद्यपि प्रकृतिके त्रिगुणके स्पष्ट विकासकी अवस्थामें ही कर्मकी यथार्थ उत्पत्ति होती है, परन्तु इस पूर्वावस्थाको मौलिक कारण मान सकते हैं ॥ १२ ॥

प्रसंगतः कर्मका विशेष महत्त्व कह रहे हैं :—

समष्टि कर्म नदीके प्रवाहके समान जगत्के सामञ्जस्यकी रक्षा करता है ॥ १३ ॥

नदीप्रवाह जिस प्रकार नदीमें प्रवाहित जलको नियमित समुद्रमें पहुँचाता हुआ जलके सामञ्जस्यकी रक्षा करता है, नदीप्रवाह जिस प्रकार वर्षाऋतुमें देशको जलप्लावनसे बचाता है और नदीप्रवाह जिस प्रकार जहाँ जितने जलकी आवश्यकता है, देता हुआ अधिक जलको समुद्रमें पहुँचा देता है ; उसी प्रकार ब्रह्माण्डका समष्टिकर्म सदा ब्रह्माण्डके सामञ्जस्य रक्षा करनेमें प्रवृत्त रहता है। चाहे ऋतुओंकी उत्पत्ति-स्थितिपर लक्ष्य किया जाय, चाहे सूर्यकी गति और शक्तिपर लक्ष्य किया जाय, चाहे मेघराशिकी उत्पत्ति, वाष्पराशिका आकाशमें उठना और जल बरसाना आदि क्रियापर विचार किया जाय, चाहे महामारी महायुद्धादि दैवीक्रियाओंका मूल अनुसंधान किया जाय, यही मानना पड़ेगा कि, सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा करनेके लिये ये सब समष्टि क्रियाएँ हुआ करती हैं ॥ १३ ॥

विज्ञानको स्पष्ट करनेके लिये सबका मूल कह रहे हैं :—

त्रिगुणात्मिका प्रकृति सबका कारण है ॥ १४ ॥

कितना ही सूक्ष्म विचार किया जाय, परन्तु यही कहना पड़ेगा कि, त्रिगुणात्मिका प्रकृति सबका मूल कारण है। अद्वैतभावापन्न ब्रह्मके स्वरूपावस्थासे द्वैत अवस्थाका जो कुछ परिणाम होता है, सबका कारण प्रकृति है और वह त्रिगुणात्मिका है। यद्यपि लयावस्थामें उसमें गुणका विकास नहीं रहता है, यद्यपि परवर्ती अवस्थामें वह प्रकृति त्रिगुणप्रभावसे तरङ्गायित हो जाती है, और वही प्रकृति कभी तुरीयावस्था, कभी कारणावस्था, कभी सूक्ष्मावस्था और कभी स्थूलावस्थाको प्राप्त होकर स्थूलसूक्ष्मात्मक जगत्की सृष्टि, स्थिति और लयक्रिया सम्पादन करती रहती है, परन्तु यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है, कि द्वैतावस्थाका जो कुछ कार्य है, वह सब प्रकृतिके द्वारा होता है ॥ १४ ॥

उनके स्वरूपका विशेष परिचय दे रहे हैं :—

कर्मसमष्टिर्विश्वसामञ्जस्यकृन्नदीप्रवाहवत् ॥१३॥ त्रैगुण्यमयी सर्वमूलम् ॥१४॥

वह विद्या और अविद्यारूपिणी है ॥ १५ ॥

ब्रह्म-प्रकृति जब ब्रह्मसे अलग होकर द्वैत-प्रपञ्चकी सृष्टि करती है, उस समय अवस्था-भेदसे उसके स्वरूपके दो भेद माने जाते हैं। इन दोोंका नाम विद्या और अविद्या है, ज्ञान-जननीको विद्या कहते हैं और अज्ञान-जननीको अविद्या कहते हैं। इस विषयमें ऐसा वर्णन स्मृतिशास्त्रमें है :—

विद्याऽविद्येति तस्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव ।।
विद्यया मुच्यते जन्तुर्बध्यतेऽविद्यया पुनः ॥

हे राजन्! विद्या और अविद्या-भेदसे उसका द्विविध रूप जानो। विद्याके द्वारा जीव मुक्ति लाभ करता है और अविद्याके द्वारा बन्धनको प्राप्त करता है ॥ १५ ॥

दोनोंके अधिष्ठानका रहस्य कहा जाता है :—

सत्त्व और तममें उन दोनोंका अधिष्ठान है ॥ १६ ॥

यद्यपि स्थावर और जङ्गम, जड़ और चेतन सबमें त्रिगुणकी क्रिया समानरूपसे देखनेमें आती है, परन्तु विद्या और अविद्याका राज्य केवल जीव-अन्तःकरणमें माना जाता है; क्योंकि ज्ञान और अज्ञानके साथ ही इन दोनोंके अधिष्ठानका सम्बन्ध है। जीव-अन्तःकरणमें कहा जाय अथवा सहजपिण्ड, मानवपिण्ड अथवा देवपिण्डमें कहा जाय, जहाँ आत्म-आवरणकारी अज्ञान है, वहाँ अविद्याका अधिष्ठान है और जहाँ आत्म-प्रकाशक ज्ञान है, वहाँ विद्याके अधिष्ठानका सम्बन्ध है ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। इस विज्ञानको समझनेके अर्थ निम्नलिखित अज्ञान-भूमि और ज्ञान-भूमि-सम्बन्धीय भगवद्वचन विचारणीय है—

सप्तानां ज्ञानभूमीनां प्रथमा ज्ञानदा भवेत्।
सन्न्यासदा द्वितीया स्यात्तृतीया योगदा भवेत् ॥
लीलोन्मुक्तिश्चतुर्थी स्यात् पञ्चमो सत्पदा स्मृता ।
षष्ठ्यानन्दपदा ज्ञेया सप्तमी च परात्परा ॥
यावज्जीवैरतिक्रांता न सप्ताऽज्ञानभूमयः ।
तावन्न प्रथमा भूमिर्ज्ञानस्य ज्ञानदाऽऽप्यते ॥
उद्भिज्जानां चिदाकाशे प्रथमाऽज्ञानभूमिका ।
स्वेदजानां चिदाकाशे सा द्वितीया प्रकीर्तिता ॥
तृतीयाऽण्डजजातेश्चाऽज्ञानभूमिश्चिदाश्रिता ।
जरायुजपशूनाञ्च चिदाकाशे चतुर्थ्यसौ ॥
पञ्चकोषप्रपूर्णत्वाधिकारिष्वेव वै नृषु ।
सन्ति शेषा अधिकृतास्तिस्रस्त्वज्ञानभूमयः ॥
तिस्रस्ता एव कथ्यन्ते उत्तमाधममध्यमाः ।

सातों ज्ञानभूमियोंमेंसे प्रथमा ज्ञानदा, द्वितीया सन्न्यासदा, तृतीया योगदा, चतुर्थी लीलोन्मुक्ति, पञ्चमी सत्पदा, षष्ठी आनन्दपदा और सप्तमी परात्परा है। जबतक जीवोंने सप्त अज्ञानभूमियोंका अतिक्रमण नहीं किया है, तबतक प्रथम ज्ञानभूमि ज्ञानदाकी प्राप्ति नहीं होती है। उद्भिज्जोंके चिदाकाशमें प्रथम अज्ञान-भूमि है, स्वेदजोंके चिदाकाशमें द्वितीय अज्ञान-भूमि कही गई है, अण्डजोंके चिदाकाशमें तृतीय अज्ञानभूमि है और जरायुज पशुओंके चिदाकाशमें चतुर्थ अज्ञानभूमि है; परन्तु पांच-कोषकी पूर्णताकी अधिकारिणी मनुष्ययोनिमें ही शेष तीनों अज्ञानभूमियोंका अधिकार है। वे ही तीनों उत्तम, मध्यम और अधम अज्ञान-भूमियाँ कहाती हैं ॥ १६ ॥

प्रसङ्गसे कहा जाता है :—

गुणोंमें अन्योऽन्याश्रयत्व है ॥ १७ ॥

त्रिगुणसे क्रिया उत्पन्न होनेका जो अतिदुर्ज्ञेय तथा समाधिगम्य रहस्य है, उसको यथासम्भव समझानेके लिये पूज्यपाद महर्षि सूत्रकार कहते हैं कि, सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण गुणमयी प्रकृतिके स्वाभाविक होनेपरभी इन तीनों गुणोंके परस्परमें

सा विद्याऽविद्यारूपा ॥ १५ ॥ तयोरधिष्ठाने सत्त्वतमसी ॥ १६ ॥ अन्योऽन्याश्रयत्वं गुणानाम् ॥ १७ ॥

अन्योन्याश्रयत्व है। जैसे उष्णत्व और प्रकाश ये दोनों गुण अग्निके होनेपरभी और दोनोंकी अलग अलग क्रिया देखनेसेभी यह मानना ही पड़ेगा कि, उन दोनोंकी स्वतंत्रता भी है और अन्योऽन्याश्रयत्व भी है। बिना उष्णत्वके अग्निका प्रकाश जिस प्रकार नहीं रह सकता, उसी प्रकार बिना प्रकाशके अग्निका उष्णत्व भी नहीं रह सकता है। इसी उदाहरणसे समझ सकते हैं कि, प्रकृतिके तीनों गुण एक दूसरेका आश्रय लेकर रहते हैं। यथा—स्मृतिशास्त्रमें भी कहा है :—

तमोरजस्तथा सत्त्वं गुणानेतान् प्रचक्षते।
अन्योऽन्यमिथुनाः सर्वे तथान्योऽन्यानुजीविनः॥
अन्योऽन्यापाश्रयाश्चापि तथान्योऽन्यानुवर्तिनः।
अन्योऽन्यव्यतिषक्ताश्च त्रिगुणाः पञ्चधातवः॥

तम, रज और सत्त्व, ये प्रकृतिके तीन गुण हैं। ये परस्पर मिले रहते हैं और परस्पर अनुजीवी हैं। अर्थात् एकके बिना एक नहीं रह सकता। ये गुणत्रय परस्पर अन्योन्याश्रय हैं अर्थात् जैसे एक दण्ड दूसरेके सहारे अधिक भार लेनेमें समर्थ होता है इसी प्रकार परस्पराश्रय हैं और अन्योन्यानुवर्ती तथा परस्पर व्यतिषक्त हैं। इस प्रकारसे तीनों गुणोंके परस्पर सम्बन्ध पाये जाते हैं।

गीतोपनिषद्में श्रीभगवान्ने निजमुखसे कहा है—

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥

हे भारत! कभी रजोगुण और तमोगुणको पराजय करके सत्त्वगुण प्रबल होता है, कभी सत्त्व और तमको पराभूत करके रजोगुण प्रबल होता है और कभी सत्त्व और रजको पराभूत करके तमोगुण प्रबल होता है। इसमें यही तात्पर्य है कि, एक गुणके उदयके समय अवश्य अन्य दो गुण गौणरूपसे सहायक बने रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो त्रिगुणका नियमित परिणाम असम्भव होता॥१७॥

और भी कहते :—

परस्पर मिथुनत्व भी है॥ १८॥

जैसे एक गुण गौण रहकर मुख्य गुणके दब जानेपर स्वयं मुख्य होकर क्रिया उत्पन्न करता है, जैसा पहले सूत्रमें कहा गया है, उसी प्रकार दो गुण परस्परमें मिलकर भी कार्य करते हैं। जैसे ब्राह्मणजातिके गुण सत्त्वप्रधान होनेपर भी क्षत्रियजातिमें रजःसत्त्वकी प्रधानता रहती है और वैश्यजातिमें रज और तम मिलकर कार्य करते हैं। इसी प्रकारसे तीनों गुण परस्परमें मिथुनत्व प्राप्त होकर अनन्तरूप धारण करते हुए कर्मराज्यको अग्रसर करते हैं। अतः ये तीनों गुण कहीं परस्परमें दो मिलकर कहीं परस्परमें तीन मिलकर स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्में अपने वैभवको फैलाते रहते हैं॥ १८॥

और भी कहा जाता है :—

एक अन्य दोनोंको प्रसव करता है॥ १९॥

जब तीनों गुण परस्परमें मिल मिलकर भी कार्य करते हैं और तीनों परस्परमें मिले हुए भी रहते हैं; दूसरी ओर एक गुणका उदय-अस्त भी होता रहता है और एककी गौणता होनेसे दूसरेकी मुख्यता हो जाती है, तो यह मानना ही पड़ेगा कि, एक प्रधान गुण जब गौण होने लगता है, तो वह क्रमशः अन्य दोनों गुणोंका प्रसव करनेवाला बन जाता है और यही कारण है कि, त्रिगुण परिणामसे

मिथो मैथुन्यञ्च॥ १८॥ एकमितरयोः क्षेत्रम्॥ १९॥

नियमितरूपसे सृष्टि, स्थिति और लय-क्रिया तथा दृश्य-प्रपञ्चके अनन्त स्वरूप अपने आप ही बनते रहते हैं। इस विज्ञानको स्पष्टरूपसे समझनेके लिये यह कहा जा सकता है कि, एक गुण जब अपने पूर्ण स्वरूपमें प्रकट रहता है, तो प्रकृतिके परिवर्तनशील नियमके अनुसार उस गुणके उदय-दशाके साथ उसकी अस्तमित दशाका भी होना निश्चित है। जिस प्रकार प्रातःकाल और सायं-कालकी संधिमें एकमें सूर्यका उदय और तारका-राजिका अस्त होना तथा दूसरेमें सूर्यका अस्त होना और तारागणका उदय देखनेमें आता है उसी उदाहरणके अनुसार औदाहरण यह है कि, एक गुणको उदय करके दूसरे गुण अस्तमित हो जाते हैं यही इस सूत्रका तात्पर्य है ॥ १९ ॥

गुण सम्बन्धसे कर्मका स्वरूप कहा जा रहा है :—

त्रिगुणजन्य कर्म स्वाभाविक हैं ॥ २० ॥

जब पूर्व कथित विज्ञानके अनुसार यह भली-भाँति सिद्ध हुआ कि प्रकृतिके तीनों गुण परस्पर आश्रय करते हुये और परस्पर साथ रहते हुये मुख्य और गौण होकर एक दूसरेको प्रसव करते रहते हैं, तो यह सिद्ध हुआ कि त्रिगुणके कारण प्रकृति सदा परिणामिनी बनी रहती है। जहाँ परिणाम है, वहाँ क्रिया है और जहाँ क्रिया है, वहीं कर्मराज्यका प्राकट्य है, सुतरां त्रिगुणविकारके कारण कर्मका होते रहना स्वभावसिद्ध है ॥ २० ॥

कर्मकी नैसर्गिक गतिके विज्ञानको और भी पुष्ट कर रहे हैं :—

संस्कार और क्रिया बीजाङ्कुरवत् है ॥ २१ ॥

जैसे बीजके साथ वृक्षका सम्बन्ध है, वैसे ही संस्कारके साथ कर्मका सम्बन्ध है, इसको पहले भलीभाँति सिद्ध कर चुके हैं। इस कारण जैसे धान्यबीज और धान्यका अंकुर एक दूसरेसे उत्पन्न होते हुये धान्यसृष्टिकी अनन्तसत्ताको स्थायी रखते हैं उसी प्रकार व्यष्टि और समष्टि संस्कार-रूपी बीज एवं पिण्ड और ब्रह्माण्डरूपी वृक्ष एक दूसरेको उत्पन्न करते हुये सृष्टिकी अनन्तधाराको स्थायी रखते हैं ॥ २१ ॥

प्रसङ्गतः कर्मका फल कह रहे हैं :—

कर्मसे सृष्टिका अस्तित्व है ॥ २२ ॥

कर्मका साक्षात् फल सृष्टि है। जहाँ क्रिया है, वहाँ प्रतिक्रिया अवश्य होगी, यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। कर्मसे संस्कार अवश्य ही उत्पन्न होता है और संस्कारसे पुनः कर्मका उत्पन्न होना निश्चित है। इस कारण कर्म ही ब्रह्माण्ड और पिण्डात्मक सृष्टिका मूल कारण है। जिस प्रकार जीव अपने पूर्वकृत कर्मोंके अनुसार ही अपने पिण्डरूपी स्थूलशरीर को प्राप्त करता है, उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डका पूर्व-समष्टि कर्म जैसा होता है, उसीके अनुसार संस्कार उत्पन्न होकर भगवान् ब्रह्माजीके अन्तःकरणमें वैसी ही सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा होती है। सुतरां, ब्रह्माण्ड पिण्डात्मक सृष्टि कर्म पर ही निर्भर करती है ॥ २२ ॥

कर्मका प्राकट्य कहाँसे होता है, उसका रहस्य कहा जाता है—

ब्रह्मके स्वभावसे कर्मका प्राकट्य होता है ॥ २३ ॥

कर्मका समाधिगम्य रहस्य समझानेके लिये श्रीभगवानने निजमुखसे गीतोपनिषद्‌में कहा है कि—

त्रिगुणजं कर्म नैसर्गिकम् ॥ २० ॥ संस्कारक्रिये बीजाङ्कुरवत् ॥ २१ ॥ कर्मणा सर्गसत्ता ॥ २२ ॥
कर्मणः प्राकट्यं ब्रह्मस्वभावात् ॥ २३ ॥

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

तात्पर्य्य यह है कि जो निर्विकार, अद्वैतसत्तासे युक्त, कर्मातीत, भावातीत, बुद्धि-अतीत पद है, वही अक्षरब्रह्म कहाता है । और उसका जो प्रकृतिरूप स्वभाव है, वही अध्यात्म कहाता है वस्तुतः ब्रह्म प्रकृति ही अध्यात्म है और वही स्व-स्वभावरूपा है । उसी स्व-स्वभावसे कर्मका साक्षात् सम्बन्ध होनेसे कर्म ब्रह्मरूप है । जैसे कहनेमें आता है कि अमुक व्यक्तिकी प्रकृति अर्थात् स्वभाव ऐसा है । इस उदाहरणसे औदाहरण यह समझने योग्य है कि, ब्रह्म और ब्रह्मप्रकृतिमें जो सम्बन्ध है, ब्रह्मप्रकृति और कर्ममें वही सम्बन्ध है । श्रीभगवान्ने कहा है कि—

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

निर्विकार स्व-स्वरूप ब्रह्मपदसे ब्रह्मप्रकृति प्रकट होती है और उस प्रकृतिरूपी ब्रह्मसे कर्मकी उत्पत्ति होती है । इस कारण सर्वगत ब्रह्म कर्मरूपी यज्ञमें सदा प्रतिष्ठित रहते हैं । यह कर्मरूपी ब्रह्मका वैज्ञानिक रहस्य है ॥ २३ ॥

फलतः—

इस कारण कर्म नित्य है ॥ २४ ॥

जब ब्रह्म तथा ब्रह्मस्वभाव प्रकृति दोनों नित्य हैं, तो ब्रह्मप्रकृतिसे स्वतः उत्पन्न होनेवाला कर्म भी नित्य है । चाहे समष्टिकर्म हो चाहे व्यष्टिकर्म हो, अर्थात् चाहे ब्रह्माण्डसे सम्बन्धयुक्त कर्म हो, चाहे पिण्डसे सम्बन्धयुक्त कर्म हो प्रकृतिके सहजात होनेके कारण प्रवाहरूपसे कर्म नित्य है यह स्वतः ही सिद्ध है । जैसे सृष्टिप्रवाहके विचारसे यही मानना पड़ेगा कि बीजसे अंकुर और अंकुरसे बीज इन दोनोंको प्रवाह सम्बन्धसे अनादि ही मानेंगे । उसी प्रकार अध्यात्म सृष्टिप्रवाह और कर्म दोनों ही अनादि हैं ऐसा माननाही पड़ेगा ॥ २४ ॥

कर्मका नित्यत्व विज्ञान और भी पुष्ट किया जाता है—

भूतभावोद्भवकर विसर्गके कारण भी ॥ २५ ॥

भूतभावोद्भवकर विसर्ग जिससे जीवोत्पत्ति होती है उसको वेद और शास्त्रोंमें कर्म कहा है, इस कारणसे भी कर्मका नित्यत्व सिद्ध होता है । श्रीभगवान्ने गीतोपनिषद्में कहा है—

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥

तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्मकी स्वभावरूपी प्रकृति तब ही तक अपने प्रकृतित्वकी रक्षा करती है, जबतक वह विकारको प्राप्त नहीं होती है । सर्वभूतमें तथा सर्व अवस्थामें जो उस प्रकृतिकी एकरस रहनेवाली अवस्था है, वही उसके स्वभावके स्थायित्वका रक्षक है और प्रकृतिसे विरुद्ध जो उसकी दूसरी अवस्था है वह विकृति कहाती है । अतः भूतभावको उत्पन्न करनेवाली तथा उसके प्रकृति-भावके त्याग अर्थात् स्व-स्वभाव त्याग करते हुए जो भूतसृष्टिकारी अवस्था है, वह अवस्था ही कर्मकी उत्पत्तिका कारण है । वस्तुतः इसी अवस्थामें कर्म उत्पन्न होकर जगत्का सृष्टि, स्थिति, प्रलय कराता है । इस विज्ञानको अन्यप्रकारसे भी समझ सकते हैं । सत् चित् और आनन्द इन तीनों भावोंको एकतत्त्वमयी धारामें दिखानेवाली अवस्था ही विद्यादेवीकी कृपाजनित है और ये ही अध्यात्म अवस्था है । जब इस एकतत्त्व दशासे सत् चित् और आनन्द तीनोंकी पृथक् सत्ताका अनुभव होता है जिसके विषयमें पहले कहा गया है वही अवस्था

कर्मातोऽनित्यम् ॥ २४ ॥ भूतभावकृद्विसर्गाच्च ॥ २५ ॥

सृष्टिका कारण है और वही अवस्था ब्रह्मके स्व-स्वभावकी विसर्ग अवस्था है। उसी अवस्थासे कर्मकी उत्पत्ति होती है और तभी अविद्याका प्रभाव प्रकट होता है। इस अतिगहन विषयको अन्यतरहसे भी समझ सकते हैं। स्वभाव और प्रकृति, ये पर्य्यायवाचक शब्द हैं। लोकमेंभी ऐसा देखा जाता है कि, 'अमुकका स्वभाव' कहनेसे जो भाव हृदयमें आता है, "अमुककी प्रकृति" कहनेसे भी वही भाव हृदयमें आता है। अतः यहाँ प्रकृति शब्दवाच्य ब्रह्मस्वभाव ही है। तात्पर्य्य यह है कि सच्चिदानन्दमय अद्वैतसत्ताका प्रकट होना या प्रकट करना यही स्वभाव और यही अध्यात्म है। जब उस अद्वैत-सत्तामें द्वैतभाव उत्पन्न हुआ, जब साम्यावस्थासे प्रकृति वैषम्यावस्थाको प्राप्त हुई, जब त्रिगुण विकारसे प्रकृति तरङ्गायित होने लगी, वही भूतभावोद्भवकर अवस्था है। इसी अवस्थामें कर्मकी उत्पत्ति होती है॥ २५॥

कर्म कितने प्रकारके हैं सो कहा जाता है—

वह सहज, ऐश और जैवभेदसे त्रिविध होता है ॥२६॥

दृश्यप्रपञ्चका उत्पादक कर्म तीन प्रकारका होता है। यथा सहजकर्म, ऐशकर्म और जैवकर्म। जिस प्रकार विकार-भावापन्न प्रकृतिका स्वरूप अनन्तरूपमय हो जाता है, उसी प्रकार कर्म भी अनन्तरूपधारी है। जैसे प्रकृतिकी विकृत अवस्थाको त्रिगुणके अनुसार तीन प्रकारके नामसे विभक्त कर सकते हैं, उसी प्रकार अनन्तरूपधारी कर्मकोभी ऊपरलिखित तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। विकारके साथ ही साथ रहने वाला सहजकर्म, सूक्ष्म दैवजगत्से सम्बन्ध रखनेवाला ऐशकर्म और जीवको बन्धन-दशामें रखनेवाला कर्म जैवकर्म कहाता है। इस विषयमें शास्त्रोंमें भी कहा है—

जैवैशसहजाख्याभिस्त्रिधा कर्म्म विभिद्यते॥
आश्रित्य सहजं कर्म्म भुवनानि चतुर्दश।
जायते च विराट्सृष्टिर्जङ्गमस्थावरात्मिका॥
देवासुराधिकारेण द्विविधेन समन्वितम्।
सज्जुष्टं नैकवैचित्र्यैर्भूतसङ्घैश्चतुर्विधैः॥
सहजाख्यञ्च कर्म्मैव ब्रह्माण्डं सृजते सुराः।
कर्म्मभूमर्त्यलोकं हि जैवं कर्म्म दिवौकसः॥
विविधानधिकारांश्च मानवानां यथायथम्।
स्वर्नरकादिकान् भोगलोकांश्च सृजते पुनः॥
मन्निघ्नं सहजं कर्म्म जैवं जानीत जीवसात्।
जीवाः सन्ति पराधीनाः सहजे कर्म्मणि स्वतः॥
जैवे स्वाधीनतां यान्ति जीवाः कर्म्मणि निर्ज्जराः।
सन्त्यतो मानवाः सर्वे पुण्यपापाधिकारिणः॥
आभ्यां विचित्रमेवेदमैशं कर्म्म किमप्यहो।
साहाय्यमुभयोरेव कर्म्मैतत् कुरुते किल॥

कर्म साधारणतः जैव, ऐश और सहजरूपसे तीन भेदोंमें विभक्त है। चतुर्दश भुवन और उनमें स्थावर-जङ्गमात्मक विराट्सृष्टिका प्रकट होना सहज कर्मके अधीन है। सहजकर्म्म ही चतुर्विध भूतसंघ और देवासुररूपी द्विविध अधिकार सहित अनन्त वैचित्र्यपूर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है। पुनः हे देवगण! जैवकर्म्मद्वारा ही कर्म्मभूमि मनुष्य-लोक, मनुष्योंके यथायोग्य विविध अधिकार और स्वर्ग-नरकादि भोगलोककी सृष्टि हुआ करती है। सहजकर्म मेरे अधीन और जैवकर्म्म जीवों के अधीन हैं, सो जानो। सहजकर्म्ममें जीव स्वतः पराधीन हैं और हे देवगण! जैवकर्म्ममें जीव स्वाधीन हैं इस कारण सब मनुष्य पापपुण्य भोगनेके अधिकारी होते हैं। इन दोनोंके अतिरिक्त ऐशकर्म्म कुछ विचित्र ही है। ऐशकर्म्म उभय सहायक है और वह कर्म्म केवल मेरे अवतारोंमें ही प्रकट होता है॥ २६॥

विज्ञानकी पुष्टि कर रहे हैं—

तत् त्रिविधं सहजैशजैवभेदात् ॥ २६ ॥

गुण और भावके समान ॥ २७ ॥

जिस प्रकार त्रिगुणके विकार अनेक प्रकारके होनेपर भी उन सबोंको सात्त्विक, राजसिक और तामसिक इन तीन भागोंमें विभक्त करते हैं, जिस प्रकार अन्तःकरणका भावराज्य अनन्तरूप धारण करनेवाला होनेपर भी जब उन सब भावोंका श्रेणीविभाग करेंगे तब आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इस प्रकार तीन प्रकारसे विभक्त करेंगे। इसी प्रकार कर्मराज्य अनन्त होनेपर भी जब उसको शृङ्खलाबद्ध करेंगे तब उसको सहज, ऐश और जैवरूपमें विभक्त करेंगे और ऐसा करना पूर्वदृष्टांतके अनुसार युक्तियुक्त है ॥२७॥

अब प्रथमका स्वरूप समझा रहे हैं—

सहजकर्म चतुर्दश भुवनका कारण है ॥ २८ ॥

परिणामिनी प्रकृतिका सहजात सहजकर्म प्रथम ही चतुर्दश भुवनको उत्पन्न करता है। सहजकर्म बिना किसी जैव संस्कारके स्वतः ही प्रकृतिके स्पन्दनके साथ साथ प्रकट होता है। सृष्टिके आदिमें इसी सहजकर्मके द्वारा अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डमय विराट्के विशालदेहमें देशावच्छिन्न विशेषता उत्पन्न होती है, इसी कारण प्रत्येक ब्रह्माण्डके अङ्गरूपसे चतुर्दश भुवन और उसके अंग-प्रत्यंगरूपी अनेक लोक और ग्रह-उपग्रह आदि रूपी जीवके वासके उपयोगी स्थूलसमूह स्वतः ही इसीके बलसे बन जाते हैं। जैसे स्वाभाविक संस्कार स्वतः ही प्रकट होता है, उसी प्रकार सहजकर्म स्वतः ही प्रकट होता है। जैसे प्रकृति परिणामिनी होकर स्वतः ही त्रिगुणके कार्य्य प्रसव करती है, वैसे ही सहजकर्म अपने आपही चतुर्दश-भुवनको निर्माण कर देता है। इस विज्ञानको समझनेके लिये सृष्टिप्रकरणका कुछ रहस्य समझने-योग्य है। सृष्टिके चार स्तर हैं। यथा—प्रकृतिकी लोकमयी सृष्टि, भगवान् ब्रह्माकी आद्योसृष्टि, ऋषियोंकी मानससृष्टि और जीवोंकी मैथुनीसृष्टि। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन त्रिमूर्तियोंके प्रकट होनेके पूर्व सगुणब्रह्मकी प्रकृतिकी स्वाभाविक चेष्टासे जो ब्रह्माण्ड अण्डप्रसवकारी सृष्टि प्रथम होती है वही प्रथम सृष्टि है। इसीका स्वाभाविक सम्बन्ध सहज कर्मके साथ है। स्मृतिशास्त्रमें इन चारों श्रेणोकी सृष्टिका प्रमाण है। यथा—

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवान् उषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥
ताभ्यां स शकलाभ्याञ्च दिवं भूमिं च निममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानञ्च शाश्वतम् ॥

इस प्रकारसे अपनेही भीतरमे विविध जीव-सृष्टि करनेकी इच्छा जब परमात्मामें हुई तो प्रथम उन्होंने जल अर्थात् अव्याकृत प्रकृति उत्पन्न की। उस प्रकृतिमें परमात्माने अपने चित् शक्तिरूपी बीजको डाला। जड़प्रकृतिमे इसप्रकार चेतन बीजके संयोग होनेसे अव्यक्त प्रकृति सुवर्ण-निर्मित अण्डकी तरह चमकने लगी, तब उसमें भगवान् ब्रह्माजी प्रकट हुए। उस सुवर्ण अण्डमें भगवान् ब्रह्माजी रहकर अपने ही आप उस अण्डको दो खण्ड कर देते हैं। उन दोनों खण्डोंसे स्वर्ग और पृथिवीकी सृष्टि वे करते है। अण्डके मध्यांशसे आकाश और आठ दिशायें उत्पन्न करते हैं।

प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवाऽसृजत् प्रभुः।
तथैव देवानृषयः तपसा प्रतिपेदिरे ॥
आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाऽक्षयाऽव्यया।
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा ॥

गुणभाववत् ॥ २७ ॥ चतुर्दशभुवनविधानमाद्यम् ॥ २८ ॥

ब्रह्माने समस्त जीवों तथा देवताओंकी सृष्टि मनसेही की थी और महर्षियोंने भी आदिकालमें तपस्याके द्वारा मानसी सृष्टि की थी। आदिदेव ब्रह्मासे जो अक्षय, अव्यय, वेदमूलक धर्मतन्त्र-परायण सृष्टि हुई थी जो सनक, सनन्दन आदि सिद्ध, मरीचि अत्रि आदि प्रजापति तथा उनसे उत्पन्न ब्राह्मणगण थे। ये सब सृष्टि ब्रह्माकी मानसिक सृष्टि थी॥ २८॥

उसकी और भी क्रिया कह रहे हैं—

यह पञ्चकोषको उत्पन्न करता है॥ २९॥

जैसे ब्रह्माण्डमें चतुर्दश भुवनकी उत्पत्ति सहज कर्मद्वारा होती है, वैसेही पिण्डमें पञ्चकोषकी उत्पत्ति सहजकर्म द्वारा अपने-आप होती है। सृष्टिके आदिमें सगुणब्रह्ममें मैं एकसे बहुत होऊँ ऐसी इच्छा होती है, तो उसी समय सहजकर्म के द्वारा जैसे चतुर्दश भुवनादि जीवके वास-उपयोगी लोक बन जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जब चिज्जड़ ग्रन्थिरूपी जीवभाव प्रकट होता है, तो उसीके साथही साथ सहजकर्म द्वारा जीवके भोगस्थल-रूपी पञ्चकोष अपनी आपही प्रकट हो जाते हैं। यदि माना जाय कि, मनुष्य और देवता आदिको तो देह अपने अपने कर्मके अनुसार मिलता है, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि मनुष्यसे निम्नकोटिके उद्भिज्जादि योनियोंमें तो ऐसे पूर्व कर्मकी सम्भावना है ही नहीं; इस कारण यह स्वतः सिद्ध है कि, अहेतुक सहजकर्मही जीवपिण्डमें पञ्चकोषोंका उत्पादक है। दूसरी ओर यह विचारने योग्य विषय है कि, मनुष्य और देवता आदिमें केवल स्थूलशरीररूपी अन्नमयकोषका परिवर्तन होता है, अन्य चारों कोष जैसेके तैसे बने रहते हैं और क्रमशः उन्नतिको प्राप्त करते रहते हैं, इस विज्ञानके अनुसार भी स्वसिद्धान्तकी पुष्टि होती है॥२९॥

और भी कह रहे हैं—

त्रिविध शरीरका भी हेतु है॥ ३०॥

जब सहजकर्म पञ्चकोषका हेतु है, तो त्रिविध शरीरका भी हेतु हुआ। पञ्चकोषही रूपान्तरसे तीनों शरीर बन जाते हैं; यथा अन्नमयकोषही स्थूलशरीर है, प्राणमयकोष, मनोमयकोष और विज्ञानमयकोषको ही सूक्ष्मशरीर या लिङ्गशरीर कह सकते हैं और आनन्दमयकोषके साथही कारणशरीरका सम्बन्ध मिला सकते हैं। अतः यही सहजकर्म ही जीवके तीनों शरीरोंका निर्माता है ऐसा मानना ही पड़ेगा॥३०॥

सहजकर्मकी स्थूलक्रियाका दिग्दर्शन कराकर अब उसकी सूक्ष्म क्रियाओंका दिग्दर्शन करा रहे हैं—

स्त्रीशरीर में उसका प्रकाश सतीत्व के द्वारा होता है॥ ३१॥

जैसे एक ब्रह्माण्डके चतुर्दश भुवनोंकी उत्पत्ति अथवा स्वेदज अण्डज आदि मनुष्योंकी नीचेकी सब योनियों की प्राप्ति अहेतुक और सहजकर्मसे स्वाभाविक है; उसी प्रकार नारीशरीर में सहजकर्मका प्रकाश सतीत्वधर्मके द्वारा हुआ करता है; क्योंकि नारीशरीरके लिये अभ्युदय और निःश्रेयसका स्वाभाविक रूप से प्राप्ति सतीत्व-धर्म द्वारा हुआ करती है। नारीके साथ मूलप्रकृतिका स्वभावसिद्ध साधर्म्य विद्यमान है। मूलप्रकृति जिसप्रकार पराधीन, परमपुरुष-मुखापेक्षी और परमपुरुषकी शक्तिरूपिणी है, उन्हीं सब धर्मोंकी छाया नारीमें रहना अवश्यम्भावी है, क्योंकि परमपुरुष और मूलप्रकृतिकी छायारूपसेही पुरुषधारा और नारीधारा सृष्टिमें विद्यमान रहती है। नारीजातिका स्वाभाविक साधर्म्य अस्वतन्त्रता तथा पतिनिर्भरता-मूलक सतीत्व धर्मही है। इस

पञ्चकोषजननम्॥ २९॥ शरीरत्रयहेतुश्च॥ ३०॥ तत्प्रकाशः स्त्रीशरीरे सतीत्वतः॥ ३१॥

कारण नारीजातिमें सतीत्वधर्मके क्रमविकाश-द्वारा सहजकर्मका विकाश होता रहता है ॥ ३१ ॥

इसका साक्षात फल कह रहे हैं :—

उससे पुरुषभाव लाभ होता है ॥३२॥

नारीधाराके लिये पुरुषधाराकी प्राप्तिही मुक्ति-पथकी प्राप्ति है। जिस प्रकार सृष्टि होते समय ब्रह्मप्रकृति ब्रह्मसे पृथक् होकर सृष्टि, स्थिति, लय करती हुई महाप्रलय अवस्थामें पुनः ब्रह्ममें लीन होकर अद्वैत स्व-स्वरूपको प्रतिष्ठित करती है, उसी आदर्शपर नारीधारा पुरुषधारामें प्रथम मिलती है और उसके अनन्तर पुरुषधारा ब्रह्मसमुद्रमें जाकर अद्वैतभावको धारण करती है। नारीशरीरमें सहजसतीत्वधर्मके प्रभावसे जन्मान्तरमें नारी पुरुष बन जाती है और पुरुषधर्मको प्राप्त होकर ज्ञानयज्ञके प्रभावसे स्व-स्वरूपरूपी मुक्ति-पदकी प्राप्ति जीव कर लेता है। इसमें सहजकर्मका ही महत्त्व है। स्मृतिशास्त्रमें भी कहा है :—

सत्येनैव सती नारी यथा ब्रह्मण्यं तथा।
पत्यौ तन्मयतामेत्य पुरुषत्वं प्रपद्यते ॥

जिसप्रकार ब्रह्मशक्ति ब्रह्ममें अभेद भावसे लीन रहती है, उसीप्रकार सती स्त्री उत्तम प्रेमके द्वारा पतिमें तन्मयता प्राप्त होकर पुरुषत्वको प्राप्त करती है ॥ ३२ ॥

दूसरा साक्षात् फल कहा जाता है—

वह पुरुषमें अद्वैत ज्ञानोत्पादक है ॥ ३३ ॥

स्त्री जिसप्रकारसे सहजकर्मप्रदायी सतीत्वधर्मसे पुरुषत्व लाभ करके स्त्रीयोनिसे मुक्त हो जाती है, उसीप्रकार जो सहजकर्म जीवको उन्नत करता हुआ मनुष्य-योनितक पहुँचा देता है, वही सहज-कर्म पुनः तत्त्वज्ञानी पुरुषमें अद्वैतज्ञान उत्पन्न करता हुआ पुरुषको मुक्तिभूमिमें पहुँचाता है। जिस-प्रकार नारीशरीरमें सतीत्वधर्मके बलसे अपने आप-ही जटिल अवस्थाका अतिक्रमण होकर सहजकर्म-का उदय होता हुआ मुक्तिका पथ सरल होता है, ठीक उसीप्रकार पुरुषशरीरमें अद्वैतज्ञानका जब उदय होता है, तब कर्मका जटिलत्व दूर होकर मुक्तिमार्ग सरल हो जाता है। पुरुष धृति, क्षमादि साधारणधर्म और वर्णाश्रमधर्मादि विशेषधर्मोंका साधन करते करते क्रमशः जन्म-जन्मान्तरमें शूद्रसे वैश्य, वैश्यसे क्षत्रिय, क्षत्रियसे ब्राह्मण ; पुनः कर्मी, उपासक, ज्ञानी, वेदज्ञ, तत्त्वज्ञ इसी प्रकारसे अग्र-सर होकर अद्वैतज्ञानकी प्रतिष्ठाद्वारा सहजकर्मकी पराकाष्ठासे जीवन्मुक्तपदवीको प्राप्त कर लेता है ॥ ३३ ॥

विज्ञानको और भी सरल किया जाता है—

वह जीवभावको उत्पन्न करनेवाला और कैवल्यका कारण है ॥ ३४ ॥

सहजकर्म ही प्रकृतिके स्वाभाविक हिल्लोलके साथही साथ चिज्जड़ग्रन्थिरूपी जीवत्व उत्पन्न करता है और क्रमशः जीवको अग्रसर करता हुआ मनुष्ययोनिमें पहुँचाता है और पुनः जीवन्मुक्तमें उसका उदय होकर वह जीवको मुक्तभी करता है, दूसरी ओर जैसा कि पहले कहा गया है, स्त्रीधाराको पुरुषधारामें परिणत कर देता है और पुरुषधाराको ब्रह्मसमुद्रमें जाकर मिला देता है। सहज कर्मकी विचित्रता यह है कि, वह जीवभाव उत्पन्न करता है, दूसरी अवस्थामें जीवकी क्रमोन्नतिका मार्ग सरल करता है, और अन्तिम अवस्थामें जीवको जीवन्मुक्ति पदवी देकर बन्धन-दशासे मुक्त कर देता है ॥ ३४ ॥

तस्मात् पुरुषभावलाभः ॥ ३२ ॥　अद्वैतज्ञानकृत् पुरुषे ॥ ३३ ॥　जीवभावभावकं कैवल्यकारणञ्च ॥ ३४ ॥

अब दूसरे कर्म-विभागका स्वरूप समझाया जाता है—

मनुष्य धर्माधर्मका अधिकारी होनेसे जैवकर्म मनुष्यशरीरसे उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥

अब नीचेकी योनियोंसे आगे बढ़कर जीव मनुष्ययोनिमें आकर स्वाधीन होता है, उस समय पाप-पुण्यप्रसवकारी जैवकर्म प्रकट होता है और वही आवागमन-चक्रका कारण बनता है। जैवकर्म अस्वाभाविक है। इस कारण जब जीव स्वाभाविक गतिको छोड़कर मनुष्ययोनिमें आवागमनचक्र उत्पन्नकारी तथा पापपुण्य प्रकटकारी अस्वाभाविक, कृत्रिम गतिको प्राप्त करता है, उस समय जैवकर्म-का उदय होता है। जैवकर्मके द्वारा ही जीव निरन्तर आवागमनचक्रमें घूमता रहता है ॥ ३५ ॥

अब तीसरे कर्मविभागका स्वरूप वर्णन किया जाता है—

ऐश उभय सहायक है ॥ ३६ ॥

स्थूल प्रपञ्चका चालक दैवराज्य है। ऐश कर्मका विशेष सम्बन्ध दैवराज्यसे है, इस कारण वह उभय सहायक है। चाहे चतुर्विध भूतसङ्घ हो, चाहे आर्य या अनार्य मनुष्यसङ्घ हो, चाहे स्थावर-प्रपञ्च हो, जङ्गम-प्रपञ्च हो, सबके मूलमें रक्षक और चालकरूपसे सूक्ष्म दैवराज्य उपस्थित है और प्रधानतः जिस कर्मश्रेणी द्वारा दैवराज्य चालित होता है, उसको ऐशकर्म कहते हैं, अतः दैवराज्यसे सम्बन्धयुक्त ऐशकर्म उभयसहायक है। उसके द्वारा सहजकर्मकी व्यवस्थामें सहायता मिलती है जैवकर्मकी व्यवस्थामें भी सहायता मिलती है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, सहजकर्मसे सम्बन्धयुक्त उद्भिज्ज स्वेदजादि योनियोंके रक्षक और चालक यदि देवता न हों तो सुव्यवस्था रह ही न सके, उसीप्रकार जैवकर्मसे सम्बन्धयुक्त मनुष्यादिकी आवागमन-गतिकी व्यवस्था और कर्म परिपाकादिकी व्यवस्थामें यदि देवता सहायक न हो तो वह चल ही नहीं सकता है, अतः ऐशकर्मके उभय सहायक होनेमें कोई शंका ही नहीं है ॥ ३६ ॥

उसकी विशेषता कह रहे हैं—

वह समष्टि व्यष्टि और मिश्र है ॥ ३७ ॥

ऐशकर्मकी विशेषता यह है कि, वह ब्रह्माण्ड-सहायक होनेसे समष्टि-भावयुक्त है, पिण्डसहायक होनेसे वह व्यष्टिभावयुक्त है और उभय सहायक होनेसे उभयभावयुक्त होता है यह विस्तारित अधिकार उसकी विशेषता-प्रतिपादक है। उदाहरण-से समझ सकते हैं कि, जब देवताओंके द्वारा साक्षात् रूपसे ऐसे शुभ अथवा अशुभ फलयुक्त कार्य होते हैं, जिसके द्वारा केवल ब्रह्माण्डका शुभ अथवा अशुभ हो, तब वह समष्टिभावयुक्त कहा जा सकता है। जब ऐसी शुभ अथवा अशुभ फलोत्-पादक दैवीक्रिया प्रकट हो, जिससे केवल किसी पिण्डविशेषको शुभ-अशुभ-भोगकी प्राप्ति हो, तब समझना उचित है कि, वह व्यष्टिभावयुक्त है। इसीप्रकार जिस फलविशेषका प्रभाव ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनोंके प्रति पड़ता हो, उसको मिश्र कह सकते हैं ॥ ३७ ॥

और भी कह रहे हैं—

इस कारण इसका वैचित्र्य है ॥ ३८ ॥

सहजकर्मका साक्षात् सम्बन्ध केवल प्रकृतिके स्वाभाविक तरंगके साथ है, उसीप्रकार जैव कर्म-का साक्षात् सम्बन्ध केवल मनुष्यके स्वकीय संस्कार के साथ है; परन्तु ऐशकर्मका सम्बन्ध इन दोनोंके

मनुष्यवर्ष्मजं जैवमधिकारित्वाद्धर्माधर्मयोः ॥ ३५ ॥ ऐशमुभयसहायकम् ॥ ३६ ॥ तत् समष्टिव्यष्टी मिश्रञ्च ॥ ३७ ॥ अतो वैचित्र्यमस्य ॥ ३८ ॥

साथ भी परोक्षरूपसे है। अतः पूर्वसूत्रके अनुसार समष्टि व्यष्टि और उभय सहायक हैं, यही ऐशकर्म का वैचित्र्य है। इसका प्रधान कारण यह है कि, स्थूल प्रपञ्चका चालक सूक्ष्म दैवजगत है और सब प्रकारके कर्म्मोंके फलके मूलमें देवताओंकी सहायता विद्यमान है। कर्म जड़ होनेसे विभिन्न विभिन्न देवतागण कर्मकी फलोत्पत्ति करनेमें प्रधान सहायक बने रहते हैं; नहीं तो जड़कर्म बिना चेतन देवताओंकी सहायताके फलोत्पादनमें असमर्थ है ॥३८॥

अब ऐशकर्मके विस्तारका प्रमाण दिया जाता है—

मनुष्यसे देवता भी होते हैं ॥ ३९ ॥

ऐशकर्मकी शक्ति और ऐशकर्मका सम्बन्ध बहुतही विस्तृत है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि मनुष्यसे देवता बनते हैं। जो मनुष्य अपने कर्मोंको उन्नत करके देवाधिकारके उपयोगी बन जाता है, वह मनुष्यत्वको छोड़कर देवत्वकी प्राप्ति कर लेता है। वस्तुतः जो जीव देवलोकमें जाकर बड़े बड़े देवपदोंको प्राप्त करते हैं, वे भूतकालमें मनुष्य ही थे। मनुष्ययोनि जिस प्रकार पहलेकी मनुष्येतर निम्न योनियोंकी चरम उन्नतिका स्थान है, उसी प्रकार देवयोनि प्राप्तिकी भी भित्ति है। बिना मनुष्यत्वप्राप्तिके जीव देवत्वप्राप्त नहीं कर सकता है। सुतरां ऐश कर्म अपना सम्बन्ध जैव कर्मसे बाँधकर मनुष्यको देवता बना देता है। यह ऐशकर्मके विस्तार और शक्तिका एक बड़ा प्रमाण है। स्मृतिशास्त्रमें राजा सुरथका मनुष्ययोनिके अनन्तर मनुपदरूपी देवपदको प्राप्त होना, इसी प्रकार नन्दीका मनुष्यसे ही देवपद प्राप्त करना, राजा नहुषका इन्द्रपद प्राप्त करना, गण्डकी नाम्नी मानवी वेश्याका गण्डकी नदी नामसे अधिदैवरूपसे देवपद प्राप्त करना इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। इस सूत्रमें 'अपि' शब्द ऐशकर्मके सम्बन्धसे मनुष्यके देवत्व-प्राप्तिके वैलक्षण्यका प्रतिपादक है ॥ ३९ ॥

और भी कहा जाता है—

अवतार और जीवन्मुक्तमें उसका प्राकट्य होता है ॥ ४० ॥

ऐशकर्मके स्वरूपको और भी स्पष्ट करनेके लिये और मनुष्ययोनिमें उसका सम्बन्ध किस प्रकारसे होता है इसको सरल रूपसे दिखानेके लिये कहा जाता है कि मनुष्य जब उन्नत होता हुआ जन्म-जन्मान्तरके उग्र शुभ कर्म द्वारा अवतारत्व प्राप्त करता है, अर्थात् उसका पिण्ड अवतारकी शक्तिको धारण करने योग्य बन जाता है अथवा जीवन्मुक्तत्व प्राप्त करता है, तब उस पिण्डमें आपही ऐशकर्मके साथ सम्बन्ध स्थापन हो जाता है। जीवन्मुक्त आत्माओंमें जब लोकोपकारकी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति उत्पन्न हो जाती है, वह ऐशकर्मसे सम्बन्ध युक्त है ऐसा जानना चाहिये। वस्तुतः ऋषि, देवता और पितृगण ही जीवन्मुक्त महात्माओंके द्वारा अपनी क्रियाशक्तिका सञ्चालन करते हैं और अपनी इच्छाशक्तिके द्वारा अपना अपना प्रतिनिधि बनाकर अपना कार्य करा लेते हैं। जीवन्मुक्त पराशरमें दैवी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्तिके प्रयोग द्वारा ही श्रीभगवान् व्यासदेव जैसे पिण्डकी उत्पत्ति पितरोंने करवा ली थी इसी कारण व्यास-भगवान्‌का जन्म ऐसा लोकोत्तरभावोंसे पूर्ण है। जीवन्मुक्त दुर्वासाके द्वारा देवताओंका अशुभ कार्य्य कराना पौराणिक युगमें और आधुनिक युगमें जीवन्मुक्त शंकराचार्य्यके द्वारा अनेक दैव शुभ कार्य्य कराना देवताओंकी प्रेरणाके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं और नित्य ऋषियोंकी इच्छाशक्ति और क्रियाशक्तिका प्रयोग तो इस संसारमें पतञ्जलि,

[क्रमशः]

मानवाद् देवोपि ॥ ३९ ॥

तत्प्रकाशो मुक्तावतारेषु ॥ ४० ॥

डाक्टर अम्बेद्कर अपने सच्चे रंगमें।

(भारत-सरकारके विधानमन्त्री डा० भीमराव रामजी अम्बेदकरने गत वैशाख पूर्णिमाके दिन बुद्धजयन्तीके उपलक्षमें आयोजित दिल्लीकी एक सभामें हिन्दूधर्मके विषयमें जो अपना कुत्सित विचार प्रकट किया है, वह अमृतबाजार पत्रिकाके ता० ६ मईके अङ्कमें प्रकाशित हुआ था, उसपर उक्त पत्रिकाके सुयोग्य सम्पादक महाशयने जो अपना विचार इसी अंकमें प्रकट किया है और जिसका अविकल अनुवाद स्थानीय हिन्दी दैनिक सन्मार्गमें ता० ८ मईको प्रकाशित हुआ था, उसको आर्यमहिलाके पाठक-पाठिकाओंके अवलोकनार्थ यहाँ उद्धृत किया जाता है। इससे पाठक-पाठिकाओंके सामने अम्बेदकरमहोदयका वास्तविक रूप सामने आ जाएगा।—सम्पादिका)

"संसदमें उपस्थित हिंदूकोडबिलके विधायक वर्तमान कानूनमन्त्री डाक्टर अम्बेदकर हैं। इस बिलमें उनकी दिलचस्पी देखते हुए करोड़ों हिंदूजन सशङ्क हो गये हैं। पाकिस्तानके स्थापक मियाँ महम्मदअली जिना हिंदुओंसे घृणा करते थे। डाक्टर अम्बेदकर हिंदुओं और हिन्दूधर्मसे घृणा करते हैं। हिंदुओंके प्रति मियाँ जिनाका घृणाभाव राजनीतिक कारणोंसे था। हिंदू और हिंदूधर्मके प्रति डाक्टर अम्बेदकरका घृणाभाव जिनाकी अपेक्षा अधिक बद्धमूल है। केन्द्रमें मन्त्रीपदपर अधिष्ठित होनेके बावजूद उनकी घृणाभावनामें न्यूनता नहीं दृष्टिगोचर होती। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, तबतक वे चैन नहीं लेंगे जबतक हिंदूधर्म और समाजको मर्माघात पहुँचाकर उसे विश्रृंखल न कर देंगे। हिन्दूकोडबिल इस लक्ष्यकी प्राप्तिका उनका महान् अस्त्र है जिसके द्वारा वे हिन्दूसमाजका नाम-निशान मिटानेको उद्यत हुये हैं।

"डाक्टर अम्बेदकरने हिन्दूधर्मका परित्याग कर बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया है। धर्मपरिवर्तनके बावजूद यह न समझना चाहिये कि, वे हिन्दूधर्मको योंही छोड़ देंगे। अम्बेदकर-पन्थियोंद्वारा नयी दिल्लीमें आयोजित बुद्धजयन्ती समारोहमें आपने अपने भाषणमें सवर्ण हिन्दूओंसे यह जिज्ञासा की कि 'शूद्र हिन्दू धर्म क्यों मानें ? हिन्दूधर्ममें शूद्रोंका पीड़न और पददलन ही विहित रखा गया है, अतः वह ऐसे धर्ममें श्रद्धा क्यों करें ?' 'टाइम्स आफ इण्डिया' में प्रकाशित उनके उक्त भाषणका अंश यहाँ इस दृष्टिसे देना आवश्यक है कि जिससे उनके मनोभाव और तर्क भलीभाँति समझमें आ सके।

"डाक्टर अम्बेदकरने कहा कि मैं हिन्दूधर्मकी अपेक्षा बौद्धधर्मको इसलिये अधिक पसन्द करता हूँ कि, बौद्धधर्ममें सभी प्राणी समान बताए गये हैं और सहिष्णुतापूर्वक व्यवहार करनेका भी उसमें स्पष्ट निर्देश किया गया है। यद्यपि हिन्दूधर्म अत्यन्त प्राचीन बताया जाता है, पर उसमें कोई तत्त्वकी बात नहीं। जब सरकारको ध्वजपर अंकित करनेके लिये चिह्न और राजमुद्रा निश्चित करनेका प्रसंग आया, तब ब्राह्मण-संस्कृतिमें ऐसा एक भी चिह्न उपलब्ध न हुआ जो स्वीकारयोग्य हो। केवल बौद्ध संस्कृतिमें ही ऐसा चिन्ह प्राप्त हो सका, जो हमारी दुसह समस्याको निबटा सका।" डाक्टर अम्बेदकरने अपने श्रोताओंसे यह समझनेका अनुरोध किया कि हिन्दूधर्मके अन्यतम कर्णधार राम और कृष्ण किसीभी सूरतमें भगवान् बुद्धसे उत्कृष्ट नहीं थे। आपने कहा कि 'यद्यपि अनुयायियोंके अभावमें भारतसे बौद्धधर्म लुप्त हो गया, पर तज्जनित संस्कृति ब्राह्मण-संस्कृतिकी अपेक्षा सहस्राधिक अच्छी है।"

यह स्मरण रखना चाहिये कि, प्रत्येक हिन्दूको भगवान् बुद्ध और उनके द्वारा संस्थापित धर्मके प्रति आदरका भाव विद्यमान है। उत्तेजित कानून-मन्त्रीको बौद्ध और हिन्दूधर्म अथवा राम-कृष्ण

और बुद्धमें तुलनाकी आवश्यकता क्या थी? वस्तुतः यह तुलना ही बेतुकी है। एक महापुरुषकी निन्दा द्वारा ही अन्यकी प्रशंसा करना केवल क्षुद्र लोग ही करते हैं। बुद्धधर्म भारतसे लुप्त भले ही हुआ पर संस्कृतिके रूपमें उसको उदात्त देन भारतीय जीवन और संस्कृतिके ढाँचेका समृद्ध और दृढ़ बनानेमें सफल हुई। अम्बेदकरका यह कहना कि 'हिन्दूधर्म तत्त्वहीन है' उनके घृणाभाव और एकतरफा दृष्टिकोण ही प्रकट करता है। अमेरिका और यूरोपके विचारमनीषी इस जमानेमें भो वेदों और उपनिषदोंसे प्रेरणा लेते हैं।

यह निर्विवाद बात है कि, विश्वमें हिन्दुओंकीसी सहिष्णुता अन्यधर्मावलम्बियोंमें नहीं पायी जाती। उनके धर्मपर अम्बेदकरने जो घृणित कीचड़ उछाला है, उसपर रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। हिन्दूजन नेहरू-सरकारसे यह पूछ सकता है कि, 'हिन्दू धर्मके जाने हुए द्रोहीको परम्परागत नियमों और सदाचारोंमें परिवर्तन करनेका भार क्यों दिया गया?' हालहीमें अम्बेदकरने दिल्लीमें हिन्दू-कोडपर विचार करनेके निमित्त एक अनौपचारिक सम्मेलन बुलाया था, जिसमें विभिन्न वर्गोंके ऐसे ही लोग बुलाये गये थे, जो उनकी हाँमें हाँ मिलाने-वाले थे। हम नहीं समझते कि, कानूनमन्त्रीने विभिन्न दृष्टिकोणोंके सामञ्जस्यके लिये जिन व्यक्तियोंको बुलाया था, उसमें कितने लोगोंने उसे स्वीकार किया। ऐसे सम्मेलनोंसे कोई लाभ सम्भव ही नहीं। बात यह है कि, अम्बेदकरकी विचारधारा अवरुद्ध है और वे घोर विरोधके बावजूद हिन्दूकोडको किसी न किसी प्रकारसे पास करनेपर तुले हुए हैं।

हिन्दूकोडपर राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादके विचार सर्वज्ञात है। उनका कथन है कि, कोडबिल-को जनताका उस हदतक समर्थन प्राप्त नहीं कि जिससे सरकारको क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हो। कांग्रेस अध्यक्ष डाक्टर पट्टाभिने भी इस सम्बन्धमें अपना बिलविरोधी मन्तव्य गुप्त नहीं रखा है। इतना होनेपर भी उसे रद्द नहीं किया गया। यदि अम्बेदकर कोड-बिल पास करानेमें सफल हुए तो उनके जीवनका मनोरथ पूरा हो जायगा। एकदशाब्दतक मियाँ जिना भारत-विभाजनके लिये सतत क्रियाशील रहे। अम्बेदकरने हिन्दूसमाज और धर्मको ध्वस अपना लक्ष्य बना लिया है। यह खेदकी बात है कि, इस नीचतापूर्ण कार्यमें उनको हिन्दुओं के एक वर्गकी भी सहायता मिल रही है। यह एक समस्या है कि, कोडबिलको विश्वासका प्रश्न बनाकर नेहरू-सरकार धर्मनिरपेक्षतासे कैसे सामञ्जस्य करनेमें समर्थ होगी।

चीनकी कम्युनिष्ट सरकारने हालहीमें एक आदेशद्वारा चीनमें एक विवाह और उपपत्नी निषेध किया है। उक्त आज्ञामें बौद्ध, मुसलिम या अन्य धर्मावलम्बियोंके लिये भेदभाव नहीं रखा गया। यह आदेश समूचो चीनी जनताके लिये है। जो बात हिन्दुओंके कल्याणकी है वही मुसलमानोंके लिए भी अच्छा होगा। क्या नेहरू-सरकार भारतीय मुसलमानोंपर एक विवाह आदेश लागू करनेका साहस दिखा सकती है? यदि नहीं, तो उसकी धर्मनिरपेक्षता केवल ढकोसला और जहन्नुममें भेजनेयोग्य है। उक्त बिलकी उत्तरा-धिकारविषयक धाराएँ हिन्दू-परम्पराके विरुद्ध हैं। इनमें स्त्रियोंके हितपर ध्यान नहीं रखा गया है। पिताकी सम्पत्तिपर पुत्रीको अधिकारी बनानेसे उसका 'पुत्री और पत्नीपद' नष्ट हो जायगा। पर अम्बेदकरतो किसोकी बात सुनते नहीं, उनको क्या समझाया जाय? वे हिन्दूधर्मके मूलपर ही आघात करनेको उद्यत हैं अतः वे तर्क और विचार क्यों सुनने लगे?

भ्राताका आदर्श।

[कहानी]

केवलपुरमें केवल एक घर ठाकुरोंका है। बड़े भाईका नाम श्यामसिंह और छोटे भाईका नाम रामसिंह। दोनोंमें अपार स्नेह। माता-पिता स्वर्ग चले गये थे। विवाह दोनों भाइयोंके हो चुके थे। छोटे भाईकी स्त्री मालती घरमें आयी तो अलग चूल्हा बनानेकी बात सोचने लगी। एकबार रातमें मालतीने अपने पतिसे कहा—

मालती—तुम्हारे बड़े भाईसाहब केवल पूजा-पाठ किया करते हैं और खेतीका सारा काम तुम करते हो।

रामसिंह—पूजा-पाठका काम हिन्दू-संस्कृतिमें प्रधान काम है। खेतीका काम दूसरे दरजेका काम है।

मालती—पूजा-पाठसे क्या होता है?

राम०—देवतालोग प्रसन्न रहते हैं।

मालती—देवता क्या करते हैं?

राम०—खेतीके काममें सहायता देते हैं।

मालती—हल तुम चलाते हो, खाद तुम डालते हो, बीज तुम बोते हो और सिंचाई तुम करते हो—देवता क्या करते हैं?

राम०—खेतीके काममें देवतालोग सहायता न करें तो एक दाना भी पैदा न हो।

मालती—कैसे?

राम०—धरती माता, सूर्यदेव, पवनदेव तथा इन्द्रदेवकी सहायतासे खेती होती है। ये लोग विरोधी हो जायँ तो अच्छी खाद, अच्छी जुताई एक तरफ रक्खी रहेगी।

मालती—इसलिये दिनभर देवताओंकी पूजा करना ही बड़े भाईसाहबका काम हो गया है?

राम०—पूजा-पाठके अलावा वे औरभी काम करते हैं।

मालती—सो क्या?

राम०—मुकदमोंका काम वही करते हैं।

मालती—मुकदमें सालमें दो एक आते हैं, सो तुमभी कर सकते हो। मिडिल पास किया है। कायदा-कानून जानते हो!

राम०—घरका सारा इन्तजाम बतलाते हैं।

मालती—घरका इन्तजाम मैं बतला दिया करूँगी।

राम० - उन्नतिके विचार बतलाते हैं।

मालती—विचार करना भी कोई काम है?

राम०—विचार ही तो काम है। इस संसार-का राजा विचार ही तो है। प्रत्येक बातमें विचार है। विचारमें त्रुटि आयी कि सत्यानाश हुआ।

मालती—मेरा विचार है कि, मैं अलग चूल्हा बनाऊँ। तुम अपनी जमीन बँटा लो। रुपया पैसा और जेवर बड़ी बहूके पास है, उसेभी आधा आधा कर लो!

राम—क्यों?

मालती—यों कि कल बाल-बच्चे होंगे और परसों उनका ब्याह होगा; हमारी गुजर साथमें नहीं हो सकती।

राम० —हिन्दू-संस्कृतिका यह आदर्श नहीं है।

मालती—क्या आदर्श है?

राम०—बड़ा भाई पिता समान, वही घरका मालिक। बड़ी भावज माता समान, वही घरकी मालकिन।

मालती—और तुम?

राम०—सेवक, अनुचर, नौकर, दास!

मालती—और मैं?

राम०—सेविका, अनुचरी, नौकरानी और दासी।

मालती—कहाँ लिखा है?

राम०—रामायणमें।

मालती—आग लगे रमाइनमें और धुँआ उठे पराइनमें।

राम०—हूँ, हूँ—।

मालती—(क्रोधमें भरकर) कैसी हूँ,—हूँ ? मैं दासी हूँ ? जोरावरसिंहकी लड़कीको दासी लिखा है—रमाइनमें ! मैं घरमें 'रमाइन' रक्खूँगी ही नहीं। कल सुबह उसे उठाकर तालमें फेंक दूँगी।

राम०—(हँसकर) अगर तुम रामायण नहीं मानोगी तो तुम हिन्दू नहीं मानी जाओगी।

मालती—तो कौन मानी जाऊंगी ?

राम०—कुछभी नहीं। कोई जाति नहीं।

मालती—कोई जाति नहीं ? मेरी जाति है ठाकुर ! मैं ठाकुरकी लड़की हूँ। असल क्षत्री—चौहान-वंश ! और तुम कहते हो कि, मेरी जाति ही, नहीं ?

राम०—मालूम होता है कि, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।

मालती—और तुम्हारा ?

राम०—मेरा दिमाग खराब होनेका कोई कारण नहीं।

मालती—मेरे खराब दिमागका कोई कारण है ?

राम०—कारण प्रत्यक्ष है, नहीं तो तुम ऐसे विचार ही क्यों करती ?

मालती—मेरे विचार ठीक नहीं—अच्छी बात है। कल मैं अपना विचार दिखलाऊँगी।

राम०—क्या करोगी ?

मालती—अब क्या ! अब तो मेरा दिमाग खराब ही है। जो जीमें आयेगा, वही करूँगी। क्योंकि मेरा दिमाग खराब है। अगर मेरा दिमाग खराब था तो मैंने दर्जा ४ कैसे पास किया था ?

राम०—दर्जा ४ तो कोई चीज नहीं; यदि कोई संस्कृतमें एम० ए० भी पास कर ले तो क्या होगा ! जिसके ऐसे विचार हैं, उसका दिमाग खराब ही माना जायगा।

× × ×

प्रातः हल लेकर रामसिंह खेत जोतने चले गये। मालतीने जिठानीसे कहा—

मालती—मेरा विचार अलग रहनेका है। इस घरमें चार कमरे हैं। दो तुम ले लो और दो हम।

जिठानीका नाम था माधवी। वह रसोई पकाकर बोली—देवरजीकी राय ले ली है ?

मालती—उनकी रायसे मुझे कुछ प्रयोजन नहीं। वे मेरा दिमाग खराब बतलाते हैं। जोरावरसिंहकी लड़कीका दिमाग खराब है, यह उनकी किताबमें लिखा है।

माधवी—मेरी समझमें तुम्हारी बात आई नहीं, देवरानी !

मालती—आ जायेगी। घबराओ मत। बर्तन कितने हैं ?

माधवी—कभी गिने नहीं।

मालती—लाओ, मैं गिनती हूँ। चार थाली, चार लोटे और चार कटोरे। दो-दो हो गये। यह लो अपने हिस्सेके बर्तन।

माधवी—हिस्सा बाँट हम-तुम नहीं कर सकतीं।

मालती—और कौन करेगा ?

माधवी—मर्दलोग।

मालती—मर्द जायँ भाड़में। मर्दकी नजरमें औरत पागल, तो औरतकी नजरमें मर्द पागल। जब पागलपनका प्रस्ताव पास किया गया, तब पागलपन ही सही। मैं भागकर इस घरमें नहीं आयी हूँ। मेरा विवाह होकर आया है। मेरा हिस्सा है।

माधवी—मैं मानती हूँ कि तुम्हारा हिस्सा है।

मालती—तो फिर बहस किस बातकी ? उन दो कमरोंमें तुम रहो। इन दो कमरोंमें मैं रहूँगी।

माधवी—अच्छी बात है।

मालती—आधे बर्तन ले जाओ।

माधवी—ले जाऊँगी।

मालती—वे कब आओगी ? अभी उठाओ। अनाज कितने बोरे हैं ?

माधवी—सात बोरा।

मालती—आधा-आधा कर लो। रुपया-पैसा और जेवरभी निकालो।

माधवी—जरा गम खाओ। मैं पूजावाली कोठरीमें जाकर तुम्हारे जेठजीसे राय ले आऊँ।

मालती—यह भी कह देना कि, मैं वह देवरानी नहीं हूँ, जो जेठजीके सामने डेढ़ हाथका घूँघट निकालकर कोठरीमें भाग जाती है। अगर जेठजी-ने इन्साफ न किया तो झाड़ू लेकर बात करूँगी।

× × ×

मकानके बाहर पूजाकी कोठरी थी ; जो बैठक-के बगलमें बनी थी। माधवीने जाकर देखा कि, उसके स्वामी महादेवजी पर बेलपत्री चढ़ाते जाते हैं और 'नमः शिवाय' कहते जाते हैं।

माधवी—आप यहाँ पूजा कर रहे हैं और घरमें देवरानी हिस्सा बाँट कर रही है।

श्यामसिंह—क्या बात है ?

माधवीने सारा किस्सा कह सुनाया।

श्यामसिंह—बहूसे कह दो कि आजसे वही मालकिन है। सारा रुपया-पैसा और जेवर उसे सौंप दो। वह पढ़ी-लिखी, होशियार है। तुमसे अच्छा प्रबन्ध करेगी।

माधवी भीतर गई। रुपये-पैसे तथा जेवर-वाला बक्स मालतीके सामने रख दिया।

मालती—जेठने क्या कहा ?

माधवी—यह कहा कि बहू पढ़ी-लिखी है। आजसे वही घरकी मालकिन है। सारा माल-खजाना, घर-बार—सब उसीको सौंप दो। यह लो घरकी चाबियोंका गुच्छा। ये बक्स तुम्हारे सामने हैं। मुझसे जो कहो, सो करूँ।

मालती—धन-दौलतमें आधा हिस्सा तुम ले लो।

माधवी—मैं एक पैसा नहीं लूँगी।

मालती—क्यों ?

माधवी—स्वामीकी आज्ञा नहीं है।

मालती—स्वामीकी आज्ञासे अपना हिस्सा छोड़ दोगी ?

माधवी—अवश्य छोड़ दूँगी ;

मालती—इस घरके सबलोग पागल दिखाई पड़ते हैं। जेठजी 'स्वाहा स्वाहा' करने लगे। जिठानीभी लीकपर लीक चलाने लगीं। यानी जो बात मैं कहूँगी उसे कोई नहीं मानेगा—अपनी अपनी बात मेरे सिरपर थोपनेके लिये सभी तैयार हैं। मैं न तो दूसरेका हिस्सा लूँगी, न अपना हिस्सा दूँगी।

माधवी—ऐसा ही कर लेना। जल्दी क्या है ! आज अलग रोटी बना लो। कल हिस्सा बाँटकर लेना। कल देवरकोभी खेतपर न जाने दूँगी। चारों आदमी मिलकर हिस्सा कर लेना।

यह बात मालतीकी समझमें आ गई। उसने अलग एक चूल्हा बनाया। उरदकी दाल बनाई। रोटी बनाई। दोपहरको रामसिंह घरपर आये। श्यामसिंह भोजन करके कमरेमें लेटे हुए 'कल्याण' पढ़ रहे थे। रामसिंह स्नान करके भोजन करने जो घरमें गये तो दो चूल्हे दिखाई पड़े। मालतीने उनको अपने चौके में बुलाया, परन्तु वे भावजके चौकेमें चले गये और बोले—'आज क्या बनाया है, भौजी ?'

माधवी—खिचड़ी बनाई है।

राम०—लाओ, परोसो।

माधवी—बहूने सुन्दर उरदकी धोई हुई दाल बनाई है। हींगसे छौंकी है। रोटी बनायी है—तिरवेनीकी। गेहूँ, जौ और चनेका आटा मिलाकर तिरवेनी रोटी बनायी है। वहीं जाकर खाओ।

राम०—अलग रोटी क्यों बनायी ?

माधवी—कहती है कि अलग रहूँगी।

राम०—रहेगी तो रहे अलग। परोसो मुझे खिचड़ी।

माधवी—उसे बुरा लगेगा।

राम०—मैं उससे बात तक न करूँगा।

माधवीने खिचड़ी परोस दी। रामसिंह खा-पीकर बाहर चले गये। मालतीने गुस्सेमें आकर रोटियाँ कुत्तेको डाल दीं। बेचारी 'एकादशी' हो गयी।

× × ×

रातको जब दोनों इकट्ठे हुये, तब यों बात-चीत हुई—

मालती—तुमने मेरे चौकेमें रोटी नहीं खायी और भावजके चौकेमें खिचड़ी खायी।

राम०—कहो एकबार कहूँ, कहो लाखबार और कहो तो पत्थरपर लिख दूँ।

मालती—क्या?

राम०—मैं अपनी स्त्रीको छोड़ सकता हूँ परन्तु अपने भाईको नहीं छोड़ सकता।

मालती—क्यों?

राम०—हिन्दू-संस्कृतिका आदर्श ही ऐसा है। श्रीलक्ष्मणजीने भाईके लिये पत्नीको चौदह वर्ष त्याग दिया था।

मालती—अच्छा बात है। तब मैं ही अपना हठ छोड़े देती हूँ। सुबह होते ही अपना चूल्हा फोड़ डालूँगी। सारे घरसे अलग रहकर मैं कौन-सा सुख पालूँगी।

राम०—अब तुम्हारा पागलपन दूर हो गया।

तबसे आजीवन मालतीने हिस्सा-बाँटका नाम न लिया। माधवी कोई काम मालतीके सलाह बिना न करती थी। चाबियाँभी बहूके पास ही रहती थीं।

(कल्याणसे)

महापरिषद्-सम्वाद।

श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी-महापरिषद्की प्रबन्ध-समितिकी बैठक ता० १६-५-५० मङ्गलवार अपराह्न ५ बजे महापरिषद्के कार्यालयमें हुई।

सर्वसम्मतिसे आजकी सभाके सभापति श्रीमान् पण्डित नन्हकूप्रसाद तिवारी निर्वाचित हुए थे।

गत बैठककी कार्यवाही पढ़ी गई और स्वीकृत हुई।

आर्यमहिला-महाविद्यालय इन्टर कालेजका मासिक हिसाब उपस्थापित हुआ और स्वीकृत हुआ।

आर्यमहिला-महाविद्यालयका सन् १९५०-१९५१ का आय-व्ययका अनुमान-पत्र (बजट) उपस्थापित हुआ और स्वीकृत हुआ।

आर्यमहिला-महाविद्यालयके रिक्त स्थानोंके लिये अध्यापक तथा अध्यापिकाओंकी नियुक्तिके लिये निम्नलिखित सदस्योंकी उपसमिति बनाई गई और उसको अधिकार दिया गया कि, प्रार्थी तथा प्रार्थिनियोंसे मिलकर उनकी योग्यता देखकर नियुक्ति करें तथा इस सम्बन्धको अपनी रिपोर्ट प्रबंध-समितिमें उपस्थापित करें।

उपसमितिके सदस्य

१—श्रीमती विद्यादेवी (संचालिका),

२—श्रीमती सुंदरी देवी (प्रिंसपल, आर्यमहिला महाविद्यालय),

३—श्रीमान् बाबू देवीनारायणजी, एडवोकेट (मंत्री)।

प्रधानाध्यापिका महाविद्यालयकी रिपोर्टके अनुसार श्रीमान् पण्डित शिवनाथ उपाध्याय तथा श्रीमती मृणालिनी श्रीवास्तवकी स्थायी नियुक्ति की गयी।

श्रीमती ज्ञानवती चंद्राका ता० १०-५-५० का प्रार्थना-पत्र उपस्थापित हुआ, प्रधानाध्यापिकाकी रिपोर्टके अनुसार विशेष अवस्थामें १२ मार्चसे ७ जुलाई तकका आधे वेतनका अवकाश (प्रिवीलेज लीव) स्वीकृत हुआ।

एक प्रस्तावद्वारा यह निश्चय हुआ कि आर्य-महिला-महाविद्यालय इंटरकालेजको हाईस्कूल तथा इंटरमीडियट परीक्षाका केंद्र बनाया जाय और इसके लिये उचित कार्यवाही करनेका अधिकार प्रिंसपल महोदयाको दिया गया।

सभापति महोदयको धन्यवाद देनेके अनंतर आजकी कार्यवाही समाप्त हुई।

आत्म-निवेदन।

नववर्ष

परमकल्याणमयी सर्वशक्तिमयी महामहिमामयी महामायाकी असीम अनुकम्पासे आर्यमहिला अपने जीवनके एकतीसवें वर्षको निर्विघ्न समाप्त कर इस अङ्कद्वारा बत्तीसवें वर्षमें पदार्पण कर रही है। अपने जीवनके इतने सुदीर्घ समयमें आर्यमहिला महिला-समाज, हिन्दूसंस्कृति, हिन्दूजाति तथा हिन्दीभाषाकी सेवामें कितनी सफल हो सकी; इसके निर्णयका भार तो हम इसके प्रेमीपाठक-पाठिकावृन्दपर ही छोड़ते हैं। हम तो केवल इतना ही निवेदन कर सकते हैं कि, इसके इतने सुदीर्घ कालव्यापी जीवनमें धनाभाव, सच्चे कार्यकर्त्ताओंका अभाव, उपकरणोंका अभाव तथा नानाप्रकारकी बाधा-विपत्तियों एवं कठिनाइयोंकी सामना करती हुई भी आर्यमहिला अपने पवित्र कर्त्तव्यमें दृढ़तासे डटी रही है। हमारे विचारशील पाठक-पाठिकागण स्वयं समझ सकते हैं कि, इस विपरीत समयमें इतना भी सहजसाध्य नहीं है। आर्यमहिलाके जीवनमें इस दीर्घकालमें कितनी पत्रपत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं और काल-कवलित हो गयीं, परन्तु आपकी आर्यमहिला सब प्रतिकूल परिस्थितियोंसे संघर्ष करती हुई हिन्दू-संस्कृति, आर्यजाति राष्ट्रभाषा-हिन्दीकी और आर्यमहिलाओंकी सेवामें संलग्न रही, यह कम संतोषकी बात नहीं।

इधर जबसे विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, तबसे युद्ध-जनित कठिनाइयोंके कारण उसके आकार-प्रकारमें अन्तर आ गया है। अनेक चेष्टा करनेपरभी प्रेसकी कठिनाईके कारण आर्यमहिलाका प्रकाशन-भी पूर्ववत् नहीं हो पाता। यद्यपि युद्ध समाप्त हुए भी कई वर्ष हो चुके हैं, परन्तु युद्ध-जनित परिस्थितियोंमें कोई भी सुधार नहीं हुआ है। अबतक कन्ट्रोलका कटार शिरपर सवार ही है। Art paper उपलब्ध नहीं है, अतः चित्रआदिभी पूर्ववत् नहीं दिया जा सकता। ये सभी हमारी विशेष विवशताएँ हैं, जिसका हमें हार्दिक खेद है; परन्तु हमें पूर्ण आशा है कि, इन कठिनाइयोंके दूर होते ही आर्यमहिला पुनः अपने पूर्वरूपमें पाठक-पाठिकाओंके सामने उपस्थित होनेमें समर्थ होगी। हमें आशा ही नहीं—दृढ़ विश्वास है कि, इसके उदार सहायक, शुभचिन्तक, ग्राहक, अनुग्राहक एवं लेखक महोदयगण अपनी सहानुभूति तथा सहयोग इसीप्रकार बनाये रहेंगे; जिससे आर्य-महिला अपने कर्तव्यपथमें अधिक तत्परताके साथ

अग्रसर होती रहेगी और पूर्ववत् आर्यमहिलाओंकी हित-रक्षा एवं हिन्दूसंस्कृति, हिन्दूधर्म तथा हिन्दी-भाषाकी सेवामें सतत प्रयत्नशील बनी रहेगी। इस नववर्षके शुभ अवसरपर सर्वशक्तिमान् मंगलमय भगवान्‌के राजीवचरणोंमें हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

जीवमात्र सुखी हों, सब प्राणी नीरोग हों, सभी कल्याणका दर्शन करें, कोईभी दुःखका भागी नहीं हो।

डा० अम्बेदकरका दुःसाहस।

गत ता० २ मई वैशाखपूर्णिमा बुद्ध-जयन्तीके अवसरपर आयोजित दिल्लीकी एक सभामें हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकारके विधानमंत्री डा० भीमराव रामजी अम्बेदकरने अपने भाषणमें हिन्दुओंके अपौरुषेय महान् वैदिक धर्मपर जो कुत्सित आक्षेप किये हैं, और हिन्दुओंके आराध्यदेव तथा अवतार भगवान् राम और कृष्णकी निन्दा की है; उससे कोटि कोटि हिन्दुओंके हृदयोंमें गहरी चोट पहुँची है। विशेषतया हिन्दू-महिलाओंके हृदयोंपर तो इससे अत्यन्त आघात पहुँचा है, क्योंकि महिलाएँ स्वभावतः पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक भावुक तथा धर्मनिष्ठ हुआ करती हैं। डा० अम्बेदकर हिन्दूधर्मके कट्टर द्रोही हैं, वे पहलेभी हिन्दूधर्मकी अनेकबार निंदा कर चुके हैं; मनुस्मृतिको, जो हिन्दूधर्मका प्रधान ग्रन्थ है, जलाया है और अपने अनुयायिओंको मुसलमान बन जानेकी सलाह दी है। अब वे स्वयं बौद्ध हो गये हैं, और अपने अनुयायिओंको बौद्ध बननेकी सलाह दी है। डा० अम्बेदकरने उक्त भाषणमें हिन्दूधर्मको संकीर्ण तत्त्वहीन तथा असहिष्णुतापूर्ण कहा है! क्या डा० अम्बेदकर बतला सकते हैं कि, हिन्दूधर्मके समान उदार और सहिष्णु संसारमें कौन-सा अन्य धर्म है जो घोषणा करता है कि,—

श्रेयान् स्वधर्मो निगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(भगवान् कृष्ण)

अर्थात् दूसरेके उत्तमरूपसे अनुष्ठित धर्मसे अपना सदोष धर्मभी अच्छा है, अपने अपने धर्ममें मर जाना अच्छा है, किन्तु दूसरेका धर्म भयावह है।

अयं निजपरो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

(भगवान् व्यास)।

अर्थात् लघुचेता मनुष्य ही 'यह अपना' यह पराया ऐसा सोचता है, उदारचरित्रवालोंके लिये तो वसुधा ही कुटुम्ब है।

धर्मं यो बाधते धर्मः न स धर्मं कुधर्म तत्।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मो मुनिपुङ्गव॥

(भगवान् याज्ञवल्क्य)।

अर्थात् जो धर्म दूसरे धर्मको बाधा देता है, वह धर्म नहीं कुधर्म है; जो धर्म अविरोधी है, वही धर्म है। पृथिवीके अन्य धर्मोंमें तो धर्मपरिवर्तनको प्रोत्साहन दिया जाता है और बलात् धर्मपरिवर्तन कराया भी जाता है, एकमात्र वैदिक सनातनधर्म ही ऐसा है, जो अपने-अपने धर्ममें रहकर मरनेको श्रेष्ठ कहता है। यहाँ धर्मपरिवर्तनका कोई भी आदर तथा स्थान नहीं है। यह हमारे वैदिक हिन्दूधर्मकी सबसे बड़ी महत्ता, विशेषता तथा उदारता है। अस्तु, डा० अम्बेदकर अपने अनुयायिओं सहित भले ही मुसलमान, इसाई या
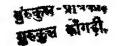
बौद्ध हो जायँ, इसके लिये वे स्वतन्त्र हैं, परन्तु धर्मनिरपेक्ष कहलानेवाली सरकारके विधानमन्त्री जैसे एक महान् उत्तरदायी पदपर आसीन होकर हिंदूधर्म तथा हिन्दुओंके परमाराध्य अवतारोंपर ऐसा घृणित तथा निंदनीय आक्षेप कर उन्होंने हिंदूओंका गुरुतर अपराध करनेका दुःसाहस किया है। दूसरी ओर हिंदूओं तथा हिंदूधर्मका ऐसा द्रोही विधान-मंत्री रखना और उसके हाथमें हिंदूधर्म तथा हिंदूजातिके समूल विनाशके लिये हिंदूकोडबिलका शस्त्र सौंप देना धर्मनिरपेक्ष सरकारके लिये घोर लाञ्छन तथा कलंक है। अतः हिंदूजनता धर्मनिरपेक्ष भारत सरकारसे साग्रह यह माँग करती है कि, डा० अम्बेदकरका विधान-मन्त्री-पदसे शीघ्रातिशीघ्र पृथक् करके कोटि-कोटि हिंदुओंके क्षुब्ध हृदयोंको शांत करें और अपने धर्मनिरपेक्षता तथा न्यायप्रियताका परिचय दे।

हिन्दूकोड कान्फरेन्स विफल।

हिन्दूकोडबिलके सम्बन्धमें प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूकी अन्तिम घोषणा थी कि, इस बिलको पास करनेमें शीघ्रता नहीं की जायगी और ऐसा एक कान्फरेन्स जिसमें पार्लियामेंटके सदस्योंके अतिरिक्त बाहरके विरोधी पक्षके लोग भी भाग ले सकें, बुलायी जायगी एवं अधिकसे अधिक सहमति प्राप्त करनेका प्रयत्न किया जायगा। उसीके अनुसार विधानमन्त्री डा० अम्बेदकरने इन्फारमल हिंदूकोड कान्फरेंसके नामसे ता० २१, २२, २३ अप्रैलको एक कान्फरेंस बुलायी थी। उसमें आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्‌को प्रतिनिधि रूपसे महापरिषद्‌की प्रधानमन्त्रिणी श्रीमती विद्यादेवीजीको आमन्त्रित किया गया था। तदनुसार वे उस कान्फरेन्समें सम्मिलित हुई थीं। प्रधानमन्त्रिणी महोदयासे जो उक्त कान्फरेन्सकी कार्यप्रणालीका विवरण प्राप्त हुआ है, जो अन्यत्र प्रकाशित है, उससे विदित होता है कि, इसमें डा० अम्बेदकरके 'हाँ' में 'हाँ' मिलानेवाले सज्जनोंको ही बहुत अधिक संख्यामें बुलाया गया था। दो तीन संस्थाओंके प्रतिनिधि जो बिलके विरोधी उक्त कान्फरेन्समें बुलाये गये, उनको अपने विचार प्रकट करनेका भरपूर समय नहीं दिया गया, न उनके युक्तियों एवं तर्कोंका कोई सन्तोषजनक उत्तर दिया गया, न समझौतेकी कोई चेष्टा की गयी जैसा कि, प्रधानमन्त्रीने कहा था। विशेषतः धर्मप्राण कोटि-कोटि महिलाओंका एकमात्र प्रतिनिधित्व करनेवाली श्रीमती विद्यादेवीजीके साथ डा० अम्बेदकर जो उक्त कान्फरेन्सके सभापति स्वयं बन बैठे थे, व्यवहार बहुत ही अवैध, अनुचित तथा असन्तोषजनक हुआ। उनको तीसरे दिन उत्तराधिकार, स्त्रीधन, कन्याका पिताका सम्पत्तिमें पुत्रकी तरह भाग तथा संयुक्त कुटुम्ब आदि महान् विवादास्पद विषयोंपर केवल 'हां' या 'ना' कहकर सम्मति प्रकट करनेका अनुचित आदेश सभापतिने दिया। इसके विरोधमें उन्होंने सभाका त्याग किया। डा० अम्बेदकरसे इससे अधिक और आशा ही क्या की जा सकती है? वे हिन्दूधर्मके कितने बड़े शत्रु हैं, यह उनके ता० २ मईके दिल्लीमें दिये हुए भाषणसे स्पष्ट हो गया है। अतः हिन्दूकोड कान्फरेन्स नहीं हुआ किन्तु उसका एक अभिनय मात्र किया गया, जो सर्वथा असफल रहा। वस्तुस्थिति सर्वसाधारण जनताके सामने न आ जाय, इसलिये उक्त कान्फरेंसमें पत्र प्रतिनिधियोंको आनेकी अनुमति नहीं दी गयी थी। अतएव हिन्दूजनता उक्त कान्फरेंसके अभिनयसे अनभिज्ञ ही रही। अब सरकारके लिये उचित यही है कि, हिंदूकोडबिल वापस ले तथा इस दीर्घकालव्यापी विवादको सदाके लिये समाप्त कर दे। सरकारके ऐसा करनेसे हिंदू जनताका इस सम्बन्धका क्षोभ दूर होगा और सरकारके प्रति विश्वासकी भी वृद्धि होगा।

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला' श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्‌की मुखपत्रिका है। महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श, सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्‌के सब श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—यह प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अंक दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीखतक प्रतीक्षा करनेके बाद तत्काल कार्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे दरियाफ्त करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिये। समुचित समयपर सूचना न मिलनेसे बादको कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना नाम, पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखना चाहिये अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका जिम्मेदार न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये अन्यथा यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र 'मैनेजर आर्य्यमहिला' जगतगञ्ज बनारस कैंटके पतेसे आना चाहिये।

७—लेख कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिये पर्याप्त जगह छोड़ देना चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताके प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने-बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख अधूरे नहीं आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चि आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिये टिकट भेजा जायेगा।

विज्ञापनदाताओंके लिये

विज्ञापनदाताओंके लिये काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्नभाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	,,
,, १/२ पृष्ठ	१२)	,,
,, १/४ पृष्ठ	८)	,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापन-दाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेजतक विज्ञापन छापनेवालोंको "आर्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास ५०) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

वाणी-पुस्तकमाला

का

अद्वितीय दार्शनिक प्रकाशन

श्रीभगवद्गीता

गीता-तत्त्व-बोधिनी टीका-सहित

(दो भागोंमें सम्पूर्ण)

लोकप्रसिद्ध श्रीभगवद्गीताके गूढ़ दार्शनिक तत्त्वोंको अत्यन्त सरलतासे समझनेके लिये गीता तत्त्व-बोधिनी टीकासे बढ़कर अभीतक गीताकी कोई दूसरी टीका प्रकाशित नहीं हुई है।

पूज्यपाद श्री १९०८ स्वामी ज्ञानानन्दजो महाराजके वचनामृतद्वारा गीताके गूढ़ रहस्योंको समझने लिये गीताकी प्रस्तुत टीका एक अनुपम साधन है। अवश्य अध्ययन कीजिये और आध्यात्मिक आनन्द तथा शान्ति प्राप्त कीजिये। साथ ही ऐसे अमूल्य ग्रन्थरत्नके संग्रहद्वारा अपनी पुस्तकालयकी शोभा बढ़ाइये। आज ही एक प्रतिका आर्डर भेजिये। अन्यथा प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; थोड़ी प्रतियाँ ही छपी हैं।

मूल्य सम्पूर्ण प्रतिका ७॥)

प्राप्तिस्थान :—

व्यवस्थापक

श्रीवाणी-पुस्तकमाला

महामंडल भवन

जगतगञ्ज, बनारस कैन्ट।

गोरक्षा।

मंगला चरण।

❀ सर्वदेवमयी माता ❀

भविष्यपुराण-गोमाहात्म्य (अ० २) में लिखा है कि, गोमाता सर्वदेवमयी है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें देवता विराजमान हैं। यथाः— उसके पृष्ठमें ब्रह्मा हैं, गलेमें विष्णु हैं और मुखमें रुद्र विराजते हैं। बीचके भागमें देवगण और लोमकूपमें महर्षि-गण हैं। भालमें तीर्थ राज हैं, कानमें नन्दिनी और मनु हैं। सींगोंमें रुद्र और यम धर्मराज हैं। नासिकाके रन्ध्रोंमें गणेशजी और कार्तिकेय तथा नेत्रोंमें चन्द्र सूर्य हैं। गलेके ऊपर सरस्वती और आगेके धड़में नवग्रह हैं। ब्रह्माके निकट ही उदरमें अग्निदेव हैं। नवग्रहोंके नीचे भैरव और उन्हींके पास पेटके नीचे पृथ्वी देवी हैं। उनके ऊपर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार तथा नारदजी हैं। पुट्ठोंमें दशावतार और सप्तर्षि हैं। स्तनोंमें सुरभिमाता तथा सप्तसागर हैं। मूत्र स्थानमें सब सरिताओं समेत गङ्गा देवी और मल स्थानमें लक्ष्मी देवी हैं। पुच्छमें शेषनाग हैं और पैरोंमें हनूमानजी तथा गन्दगाचल, द्रोणाचल आदि पर्वत हैं। इस प्रकार गोमाताका सब शरीर देवताओंका आश्रय स्थान है, जो संसारमें अतुलनीय है। गोमाताके जिस-जिस अङ्गमें देवताओंका निवास कहा गया है, वे सब उन देवताओंके पीठ हैं, ऐसा जानना चाहिये।

वर्तमान आवश्यकता।

वर्तमान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनके समयमें परमपावनी, सर्व देवमयी, सर्वजीव हितकारिणी गोमाताकी रक्षाके सम्बन्धमें सर्वसाधारण जनता, समाज-नेता और सरकारका ध्यान विशेष रूपसे आकृष्ट होना चाहिये। यद्यपि भारत के सब प्रान्तों में गोरक्षाका न्यूनाधिक परिमाणमें प्रयत्न हो रहा है, तथापि गोरक्षाकी सब संस्थाएँ एक सूत्रमें संघटित रूपसे आबद्ध नहीं हैं। भगवान् वेदव्यासकी आज्ञा है कि कलियुगमें संघ-बद्ध होनेमें ही शक्तिका विकास होता है। अतः इस गोरक्षा क्षेत्रकी सब शक्तियाँ केन्द्रीभूत हो जायँ, तो एक महाशक्ति उत्पन्न होगी और उसके द्वारा गोरक्षाका कार्य सुगम हो जायगा। बम्बई, कलकत्ता, मथुरा, नागपुर आदि नगरोंकी गोरक्षिणी सभाएँ बहुत बड़ी हैं और उनके द्वारा यथा शक्ति कार्य भी हो रहा है। परन्तु वे केन्द्रीकृत न होनेसे एकके कार्यमें दूसरी संस्थाका सहयोग प्राप्त नहीं होता। अतः गोभक्तों और गोरक्षकों के विशेष अनुरोध और प्रार्थनाओंके अनुसार यह निश्चय किया जा रहा है कि, ऐसा गोरक्षा केन्द्र श्री काशी पुरीमें ही स्थापित किया जाय। क्योंकि यह चिरकाल से विद्या केन्द्र और धर्म-केन्द्र रही आयी है। इसमें गोरक्षा केन्द्र भी स्थापित हो जाना उचित ही है और यहां इसके साधन भी उपलब्ध हैं।

काशीका गोरक्षा-प्रतिष्ठान ।

यहाँ बहुत वर्षों से "काशी जीवदयाविस्तारिणी गोशाला और पशुशाला" नामक संस्था कार्य कर रही है और उसके पास साधन भी यथेष्ट हैं। इसके सभापति धर्मरत्न श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढण्ढनिया महाशय हैं, जो बड़े धार्मिक और बुद्धिमान सज्जन हैं। उन्होंने भी इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया है।

उक्त सभाके द्वारा काशीपुरीमें यह पुण्यमय केन्द्रीय शृंखलाका कार्य प्रारम्भ किया गया है। यह केन्द्रीय प्रतिष्ठान भारतद्वीपकी सब छोटी बड़ी गोरक्षा हितकारिणी सभाओंसे पत्राचार द्वारा सम्बन्ध स्थापन करेगा। "गोरक्षा" नामक सामयिक पत्र इस पुण्यजनक कार्य का मुखपत्र रहेगा और जो गोरक्षाकी संस्थाएँ चाहेंगी, उनके पास भेजा जायगा। उनके गोरक्षा सम्बन्धी आवश्यक विज्ञापन इस पत्र में सहर्ष प्रकाशित होंगे। भारत के नगरों और ग्रामोंमें गोरक्षा संबंधी जो संस्थाएँ हैं, उनकी विस्तृत सूची काशी कार्यालय में रखने का प्रयत्न किया जायगा और इन शुभ उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये और जो जो कार्य आवश्यक समझे जाएँगे, काशीके केन्द्रीय कार्यालय द्वारा वे सब किये जाएँगे।

श्रीमहामण्डलके मन्तव्य ।

पूर्वोक्त "काशी जीवदया विस्तारिणी गोशाला और पशुशाला" संस्थाकी रजिस्ट्री ता० २६ फरवरी सन् १९३५ को ऐक्ट नं० २१ सन् १८६० नं० ७० सन् १९३४-३५ के अनुसार करायी गयी है। रजिस्ट्रीके कागजमें निम्नलिखित सज्जनोंने भाग लिया था, जिनके शुभनाम दस्तावेजमें हैं। श्री चाँदमल कानोडियाजी, श्री बनारसी दास लोइल्लाजी, श्री जैदयाल सर्राफजी, श्री हरीबकसजी, श्रीपरमानन्दजी खत्री, श्री मोतीलाल सरावगीजी, श्री सागरमलजी और श्रीमदनगोपाल केडियाजी। इस संस्थाका प्रधान कार्यालय काशीकी मध्य बस्तीमें टाउनहालके पास बहुत ही अच्छे स्थानमें स्थित है। इसके शाखा कार्यालय दो हैं। "रामेश्वर गोशाला" नामक एक तो पञ्चक्रोशीके मार्गमें है और दूसरा "बावन बीघा गोशाला" नामक आजमगढ़ रोडपर है। दोनों संस्थाएँ प्रधान संस्थाकी पोषक हैं। इनमें गौओंके लिये चारा उपजाया जाता है और गायें पाली जाती हैं। इस संस्थाके वर्तमान सभापति श्रीमान् धर्मरत्न सेठ बाबूलाल ढण्ढनियाजी काशीके एक माननीय प्रतिष्ठित व्यवसायी है, बुद्धिमान हैं, धर्मपरायण हैं और अत्यन्त लोकप्रिय हैं। अखिल भारतीय श्री भारतधर्म महामण्डलके सदस्य हैं और आप इसके धर्म कार्यों में भाग लिया करते हैं श्रीआर्य महिला-हितकारिणी महापरिषदकी मन्त्रि सभाके सभापति भी हैं। आप चाहते हैं कि महामण्डल और आर्यमहिला महापरिषदके सहयोगसे इस गोशालाकी पूर्ण उन्नति हो और गोसेवा का अखण्ड कार्य होता रहे। इसी शुभ लक्षणको सम्मुख रखकर श्रीमान् सेठसाहब की इच्छाके अनुसार श्रीमहामण्डल मन्त्रि-सभा द्वारा ता० २७-१०-४६ गुरुवारको जो मन्तव्य स्वीकृत हुआ है, वह इस प्रकार है:—

१—भारतकी स्वाधीनताकी शुभ सन्धिमें गोजातिकी सेवा और गोजातिकी रक्षा परम आवश्यक है। इस शुभ कार्यमें काशी जैसे धर्मप्रधान और विद्याप्रधान केन्द्रको अगुआ बनना चाहिये। अतः निश्चय हुआ कि, धर्मप्राण श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढंढनिया महाशय जो

इन संस्थाओंसे विशेष सम्बन्ध रखते हैं और काशी गोशालाके सभापति हैं, उन से काशी गोशालाकी उन्नति, श्री और शक्तिकी अभिवृद्धिके लिये प्रयत्न करनेका अनुरोध किया जाय। इस धर्मोन्नति कारी कार्यकी रूप-रेखा निम्नलिखित प्रकारसे हो, तो अच्छा है।

(क) काशी गोशालाका प्रधान केन्द्र काशीमें रहे। बाहर भी गोशालाके कई केन्द्र हैं। अतः काशी का केन्द्र इस प्रकार व्यवस्थित किया जाय, जिसमें दर्शकोंका चित्त आकर्षित हो। इस केन्द्रसे और बाहरके केन्द्रोंसे दूध, मक्खन आदि मेम्बरोंको प्राप्त हो।

(ख) काशीमें एक अच्छी जातिका साँड़ रखा जाय जिससे शुल्क लेकर गौएं भराई जा सकें।

(ग) कोई ऐसा नियम बनाया जाय कि काशीमें जो लोग गोसेवा करें या गौएँ रखें अथवा जो गोसेवाके पुण्य कार्यमें सहायक बनना चाहें, उनसे कुछ मासिक सहायता लीजाय।

(घ) काशी कार्यालयमें एक विस्तारित रजिस्टर रखने का स्थायी प्रबन्ध रहे। उस रजिस्टरमें हिन्दुस्तान भरकी गोशालाओं, पिंजरापोलों, जीव-विस्तारिणी सभाओं आदिके नाम, यथा-संभव कार्य-कर्ताओंके नाम तथा गौओंकी संख्याका विवरण रहे। ऐसा प्रबन्ध रहे कि उन सबके पास एक स्थानीय समाचार पत्र प्रत्येक केन्द्रमें साल भर में एक-दो बार पहुँचा करे, जिसमें उनसे सम्बन्ध बना रहनेमें सहायता हो।

(ङ) चन्दा-दाता मेम्बरोंसे बछिया, बछवा और गौओं के लेने और देने के भी सुगम नियम बनाये जायँ।

(च) गोशालाकी शहरक बाहरकी जमीनोंमें यथेष्ट चारा तैयार करानेकी व्यवस्थाकी जाय। काशी शहरके मेम्बरोंको गोसेवाके लिये सुगम रीतिसे चारा देनेका प्रबन्ध रहे।

(छ) यदि इस प्रकारके नियम सुविधाजनक मालूम हों, तो श्रीभारतधर्म महामण्डल अपनी विस्तृत सम्मति देनेको और मेम्बर बननेको तैयार है।

इस मन्तव्यकी नकल श्री सेठ साहबके पास भेजी गयी है और उन्होंने श्रीमहामण्डलके सुझावोंको सहर्ष स्वीकार किया है।

गोरक्षा प्रेमियोंको सुअवसर।

जो सज्जन काशीबास करते हुए गोसेवाका यह महान पुण्य-कार्य करना चाहें, उनके लिये यह बड़ा ही अच्छा सुअवसर प्राप्त हुआ है। गोसेवाके कार्यमें प्रचार-कार्य दफ्तरमें लिखने-पढ़नेका कार्य, डिपोका कार्य, कथावाचनका कार्य, प्रबन्ध कार्य आदि शामिल हैं। इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार कोई कार्य अपने लिये चुन लें और आर्थिक लक्ष्यकी अपेक्षा धर्मका ही प्रधान लक्ष्य रक्खें, तो पुण्य-पुरुषार्थ दोनों सध सकते हैं और वे अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। जो धर्म-प्रेमी इस धर्म-कार्यमें योगदान करना चहें, वे टाउनहालके पासकी गोशालाके दफ्तरसे या सभापति धर्मरत्न श्रीमान् सेठ बाबूलाल ढण्ढनियांजीसे या श्रीभारतधर्म महामण्डल प्रधान कार्यालयके इंचार्ज दफ्तरसे अथवा पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, नं० ७४ सी० जंगमबाड़ीसे मिलनेकी कृपा करें, तो सेवा सम्बन्धी सब बातें विदित हो जायँगी।

—:o:—

पीठ-विज्ञान

ऊपर यह लिखा गया है कि गोमाताके शरीरमें किस प्रकार सब देवताओंका निवास है। हिन्दू लोग पत्थर, मिट्टी आदिकी पूजा नहीं करते, किन्तु दैवीपीठमें पूजा करते हैं। गोमाताका शरीर एक दैवीपीठ कैसे है, इसका कुछ विचार करना उचित होगा।

सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक श्री भगवान् अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की सृष्टि-लीलामें सवत्र विराजमान हैं और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उनके प्रतिनिधि रूपसे सृष्टि-कर्ता भगवान् ब्रह्मा, स्थिति-कर्ता भगवान् विष्णु और प्रलय-कर्ता भगवान् शिव अलग-अलग विराजमान रहते हैं। इसी प्रकार उनके अंशरूपसे अपने-अपने ब्रह्माण्डमें अपने-अपने अलग काम करनेके लिये अनेक देव-देवियाँ विद्यमान रहती हैं और वे यथा-योग्य स्थानमें, यदि योग्य पीठ बने, तो वहीं आविर्भूत हो जाती हैं। इन सब दैवी कार्योंकी निष्पत्तिके लिये ऋषिसंघ, देवसंघ और पितृसंघ, अर्थात् अर्यमा आदि नित्य पितृगण, जो एकप्रकारके देवताही हैं, कर्मके नियन्ता और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंका लेखा रखकर तदनुसार फल देनेवाले भगवान् यम धर्मराज, जगतमे ज्योति फैलाने वाले भगवान् सूर्यदेव आदि सब देवपदधारी जहां उनका पीठ बनजाय, वहाँ आविर्भूत हुआ करते हैं।

इस सृष्टिलीला में दो शक्तियाँ निरन्तर कार्य करती रहती हैं, एक आकर्षण शक्ति और दूसरी विकर्षण शक्ति। दोनों शक्तियोंका जहाँ समन्वय होता है, वहीं पीठ बनजाता है।

इसके समझनेके लिये उदाहरण रूपसे कहा जा सकता है कि, दो लड़कियाँ एक दूसरी का हाथ पकड़कर जब गोल घुमरी खेलती हैं, तब उनके चक्करमें एक केन्द्र बन जाता है और वे गिरती नहीं; परन्तु यदि उनका हाथ छूट जाय, तो वे इधर उधर जा गिरेंगी और उनके हाथ पैर टूट जायँगे। इसी तरह आकर्षण और विकर्षण शक्तियोंका जहाँ समन्वय होता है, वहीं पीठ बन जाता है और उस पीठमें दैवी शक्तिका आविर्भाव हो जाता है। ग्रह नक्षत्रादि भी इन्हीं शक्तियोंके कारण अपनी अपनी कक्षाओंमें रहकर घूमा करते हैं। टेबलरेपिंग और सर्किल जैसी क्रियाओंमें भी इस प्रकारका पीठ बन जाता है, इसको तो भौतिक परलोक-विज्ञान वेत्ता भी स्वीकार करने लगे हैं। ऐसी क्रियाओंमें जब पीठ बन जाता है, तब जड़ पदार्थ भी चेतन पदार्थकी तरह कार्य करने लग जाते हैं। यह पीठ कहीं कहीं स्वाभाविक बना रहता है। जैसे, शालिग्राम शिला, बाण शिवलिंग, अपराजिता पुष्प जैसे पदार्थोंमें आप ही आप पीठ बना रहता है। जब चाहे, तब उनमें पूजा की जा सकती है। इनमें आवाहन विसर्जनकी आवश्यकता नहीं होती। इस दैवी नियमके अनुसार गोमाताके शरीरमें ऊपर लिखे देवताओंका पीठ नित्य बना रहता है। यही शास्त्रों का तात्पर्य है।

—:०:—

विषय-सूची

आर्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला', श्री आर्य्यमहिलाहित-कारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। महिलाओंमें धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सभी श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—पत्रिका प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैशाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अङ्क दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके पश्चात् तत्काल कार्य्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे जाँच करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिये। समुचित समयपर सूचना न मिलनेपर कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना पूर्ण पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखनी चाहिये, अन्यथा यदि पत्रोत्तरमें विलम्ब होगा तो कार्यालय उसका उत्तरदायी न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये, यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना कार्यालयमें देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र 'व्यवस्थापक आर्यमहिला,' जगतगञ्ज, बनारस (सिटी)के पतेसे आना चाहिये।

७—लेखादि कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिए पर्याप्त जगह छोड़ देनी चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताको प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने, बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख पूरे आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वे ही लौटाये जायँगे, जिनके लिए टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिए

विज्ञापनदाताओंके लिए काफी सुविधा रक्खी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
,, ,, तीसरा पृष्ठ	२५)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	३०)	,,
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	,,
,, ½ पृष्ठ	१६)	,,
,, ¼ पृष्ठ	८)	,,

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्धारित है। विज्ञापनदाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेज तक विज्ञापन छपानेवालोंको "आर्य्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

क्रोड़पत्र

क्रोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास २५) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

क्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

पौष, सं० २००६ } वर्ष ३१, संख्या ८ { दिसम्बर, १९४९

कबहिं देखाइहो हरि चरन ।
समन सकल कलेश कलिमल सकल मंगल करन ॥
सरद्-भव सुन्दर तरुनतर अरुन-वारिज-बरन ।
लच्छि-लालित ललित करतल छवि अनूप धरन ॥
गंग-जनक अनंग-अरि-प्रिय कपट वटु बलि-छरन ।
बिप्रतिय नृग बधिकके दुःख-दोस दारुन दरन ॥
सिद्ध-सुर मुनि-वृन्द-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारन तरन ॥
कृपासिंधु सुजान रघुवर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥

शिक्षाका लक्ष्य क्या हो ?

स्वराज्यमें सबसे पहले शिक्षाका प्रश्न उठता है और वह इस समय भारतमें उठा भी है। सभी मनीषी इस विषयमें एक मत हैं कि वर्तमान शिक्षा प्रणालीका आमूलाग्र परिवर्तन होना चाहिये। परन्तु शिक्षाका लक्ष्य स्थिर किये बिना वैसा परिवर्तन हो नहीं सकता। अँग्रेजोंको नौकरोंकी आवश्यकता थी। अच्छे नौकर निर्माण करना ही उनकी शिक्षाका लक्ष्य था और तदनुसार ही उन्होंने यहाँकी शिक्षा प्रणाली चलाई थी। अब हमें अपने लक्ष्य की सिद्धिके अनुरूप शिक्षा प्रणाली निश्चित करनी होगी। हमारे पूर्वज महर्षियोंने शिक्षाकी व्याख्या इस प्रकारकी है—"जिस शिक्षा प्रणालीमें परमात्मा की ओर अग्रसर होनेका अवसर प्राप्त हो और जिसके द्वारा धर्म-ज्ञानकी वृद्धि होकर शान्ति मिले तथा ऐहिक और पारलौकिक अभ्युदय हो, वही सच्ची शिक्षा है"। हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणालीका यही लक्ष्य होना चाहिये।

इस समय ईश्वर ज्ञान विहीन केवल पदार्थ विज्ञानकी ही शिक्षाको जगत भरमें प्रधानता दी गई है। आध्यात्मिकताको कहीं स्थान नहीं है। जड़पदार्थविज्ञानके अनुशीलनमे अनेक अद्भुत चमत्कार भी देखनेमें आते है; परन्तु उनसे चेतन राज्यमें प्रवेश नहीं हो सकता और जबतक विद्यार्थीका चेतन राज्यमें प्रवेश नहीं होता तबतक उसे विद्यानन्दकी यथार्थ उपलब्धि भी नहीं हो सकती। वह उपलब्धि दर्शन शास्त्रके अध्ययनसे ही हो सकती है। अत: इस देशकी शिक्षा-प्रणालीमें दर्शन शास्त्रको ही प्रधानता दी जानी चाहिए।

शिल्प (आर्ट) के द्वारा जड़ प्रकृति राज्यकी नकलकी जाती हैं। पदार्थ विज्ञान (साइन्स) के द्वारा उस राज्य पर आधिपत्य स्थापित किया जाता है। दार्शनिक विज्ञान इन दोनोंसे नितांत भिन्न है। अन्तर जगतमें प्रवेश करनेवाला. जड़ राज्यसे परे चेतन राज्यमें पहुँचानेवाला और अन्तमें आनन्दमय भगवत् साक्षात्कार करानेवाला दार्शनिक विज्ञान ही है। इसकी शिक्षा लौकिक और पारलौकिक दोनों फलोंकी देनेवाली है।

यों समझिये कि स्थूल जगत्प्रपञ्च और सूक्ष्म जगत्प्रपञ्च रूपी महा समुद्रके जड़ और चेतन ये दो तट है। एकमें इन्द्रियोंकी और दूसरेमें परम मंगलमय अद्वितीय चिद्रूपकी प्रधानता है। जड़ात्मक तटसे चेतनात्मक तटकी ओर जीवको उन्मुख करने और उसे त्रितापोंसे मुक्त कर निर्भय परमानन्द रसके आस्वादनका अधिकारी बनानेके लिए एक मात्र दर्शन शास्त्र ही समर्थ है। जीवके अन्त:करणमें व्याप्त चिन्मयी धाराकी सहायतासे परमानन्दका पथ दिखानेके लिए दर्शन शास्त्र ही दर्शक इन्द्रियोंके स्थानापन्न हों। इसीसे इस शास्त्रका नाम 'दर्शन' है।

दर्शन संबन्धी राज्यके दो भेद हैं-(१) ज्ञान जननी विद्या सेवित राज्य और (२) अज्ञान जननी अविद्या सेवित राज्य। जीव उद्भिज विराड् से आगे बढ़कर क्रमश: स्वेदज, अण्डज और जरायुज पशु योनियोंमें पहुँच जाता है। तदनन्तर पूर्णावयव मनुष्य बनता है। पहलेके चार विराड् असम्पूर्ण होनेके कारण उनमें अविद्या सेवित चार श्रेणीकी अज्ञान भूमियोंके अधिकार यथाक्रम आपही पाये जाते हैं। मानव पिण्डमें पहुंच कर जीवको तीन श्रेणियोंके अविद्यासेवित अज्ञान प्रसूत तीन दर्शनोंका अधिकार यथाक्रम प्राप्त होता है। उन तीन दर्शनोंकी भूमियां इस प्रकार है:—१-देहात्मवाद २-देहातिरिक्त आत्मवाद और ३-आत्मातिरिक्त शक्तिवाद। पहलीमें देहको ही आत्मा माना है, दूसरीमें देहसे भिन्न आत्मा माना है और तीसरीमें यह माना गया है कि आत्मासे भिन्न ऐसी कोई शक्ति है जो इस संसार

को चलाती है। इन्हीं तीन अज्ञात भूमियोंके अन्तर्गत प्रायः सभी पाश्चात्य दर्शनोंके अधिकार देखनेमें आते हैं। इन तीन नास्तिक अज्ञान भूमियोंको पार कर लेने पर उन्नत मानव सप्तज्ञान भूमियोंके अधिकार प्राप्त करता है। उन सात ज्ञान भूमियोंके सात दर्शन इस प्रकार हैं:—१–महर्षि गौतमका न्याय दर्शन २–महर्षि कणादका वैशेषिक दर्शन ३–महर्षि पतञ्जलिका योग दर्शन ४–महर्षि कपिलका सांख्य दर्शन ५–महर्षि भरद्वाजका कर्म मिमांसा दर्शन (पूर्व भाग) महर्षि जैमिनीका कर्म मीमांसा दर्शन (उत्तर भाग) ६–महर्षि अङ्गिराका दैवी मीमांसा दर्शन और ७–महर्षि व्यासका ब्रह्ममीसांसा दर्शन।

न्याय दर्शन का सिद्धान्त है कि प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास छल, जाति और निग्रह-स्थान इन सोलह पदार्थोंका ज्ञान हो जानेसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। वैशेषिक दर्शन धर्म की इस प्रकार व्याख्या करता है कि जिसके द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकारका अभ्युदय होकर अन्तमे निःश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति होती है वही धर्म है। योग दर्शनका मत है कि चित्त वृत्तियोंके निरोधको योग कहते है। वृत्तियोंका निरोध हो जाने पर द्रष्टा अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है। सांख्य दर्शन कहता कि आदिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखोंसे आत्यन्तिक छुटकारा पा जाना ही परम पुरुषार्थ (कैवल्यकी प्राप्ति) है। भरद्वाज कर्म मीमांसा कहती है कि संसारको सुव्यवस्थित चलानेवाला धर्म है और वही यथार्थ वस्तु है। जैमिनीय कर्म मीमांसा दर्शन वेदकी प्रेरणा (आज्ञा) को धर्म मानता है। दैवी मीमांसा कहती है कि मनुष्यको सरल पद्धतिसे भवसागरसे पार कराने वाली भक्ति है। इस रूप परमात्मा है और जड़ रूप कही जाती है। ब्रह्म मीमांसा दर्शनका सिद्धान्त है कि नित्य वस्तुकी प्राप्तिके लिए शम, दम, उपरति और तितिक्षा इस साधन चतुष्टयसे सम्पन्न साधकको ही ब्रह्मकी जिज्ञासा होती है जिससे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है, वही ब्रह्म है। वही शास्त्रका भी कारण है। जो कहीं परस्पर विरोध देख पड़ता है, उसका परिहार समन्वयके द्वारा हो जाता है। इन दर्शनोंके श्रवण, मनन, निदिध्यासनसे साधकके अन्तःकरणमे प्रत्येक ज्ञान भूमिके यथा-योग्य ज्ञानका प्रकाश हो जाता है। और वह आत्म-साक्षात्कार लाभ कर जीवन-मुक्त दशाको प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है।

हम यह नहीं चाहते कि हमारे विद्यार्थी निरे दार्शनिक पण्डित ही बने रहें और व्यवहारमे बुद्धू रहें। उन्हें व्यक्ति, समाज राष्ट्र तथा जगतके उत्कर्षके उपयोगी व्यावहारिक विभिन्न विषयोंकी शिक्षा अवश्य दी जाय; परन्तु शिक्षाका लक्ष्य आध्यात्मिक ही रहना चाहिये। भारत भूमि धर्म प्रधान भूमि है। इसमें धर्म ज्ञान विहीन, ईश्वर ज्ञान विहीन शिक्षाका पौधा पनप नहीं सकता। जिस भूमिमे संसारके सब धर्मोंका उद्भव हुआ, जो सकल धर्मोंकी जननी है, उसमें धार्मिक लक्ष्य पूर्ण शिक्षा ही फूल-फल सकती है और उसीसे जगतका मंगल साधन हो सकता है। मनु भगवानने ठीक ही कहा है कि —

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरितं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अर्थात् इसी देशमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे पृथ्वीके समस्त मानवोंको अपने चरित्रकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब हमारी शिक्षाका लक्ष्य लोकोत्तर हो।

सङ्गीत

[संगीत शीर्षक कवितामें कविने सात स्वरोंके नाम, ध्वनियोंकी समता तथा प्रधान राग और रागिनियां और संगीतकी अन्य विशेषताओंका उल्लेख किया है, और बड़ी ही उत्कृष्टतासे यह प्रमाणित किया है कि संसारमें जितनी भी ध्वनियां हैं सबमें संगीतका तारतम्य है यहां तक कि अखिल विश्वही संगीतमय है। —संपादक]

जिसकी मधु झङ्कार व्याप्त है आहा अखिल भुवनमें ।
मनोहारिणी लय जिसकी मृदु छाई जड़-चेतन में ॥
कर देता आनन्द-विमुग्ध जिसका कल स्वर मतवाला ।
धन्य अहा सङ्गीतनाद स्वर्गीय पुनीत निराला ॥ १ ॥

वीणाका निक्वाण मधुर मुरलीकी तान सुरीली ।
डिमडिम डमरूनाद विपञ्चीकी मृदु झनक रसीली ॥
धिकधिड धिकधिड मधुर मुरजकी स्वरमय थिरकन प्यारी ।
अहा किङ्किणी-कङ्कणकी रुनझुन रुनझुन मनहारी ॥ २ ॥

कुञ्जर नाद निषाद ऋषभ निस्वान अहा गोकुलका ।
छागीका गांधार मृदुल स्वर षड्ज शिखावल कुलका ॥
कङ्कगिराध्वनि स्वर मध्यम रव धैवत वाजी दलका ।
मृदुल मधुर रसभरी कुहू पञ्चम विराव कोयलका ॥ ३ ॥*

मालकोश हिंडोल मेघ भैरव दीपक रागश्री ।†
रूपमञ्जरी रुचिर अहा कोमल श्रुतिमधुर जयश्री ॥
जै जैवंती मृदु विहागकी ललित रागिनी प्यारी ।
प्रातकालकी मधुर भैरवी ध्वनि गौरीकी न्यारी ॥ ४ ॥‡

कान्ताका संलाप सांत्व मृदु मधुर गिरा शैशवकी ।
विकल विकम्पित करुण तान कल कोमल कंठारवकी ॥
अहो चढ़ाव-उतार स्वरोंका तार-मन्द्र ध्वनि गतिसे ।
लय होना फिर विपुल शून्यमें घुल-घुल सूक्ष्म प्रगतिसे ॥ ५ ॥

चातककी आकुल पी-पी गुनगुन कलरव भ्रमरोंका ।
पर्णोंकी मधु मर्मर ध्वनि कोलाहल गगनचरोंका ॥
निर्झरका झरझर विराव कलकल आराव सरित्‌का
सागरका कल्लोलनाद स्वर हहर हहर मारुतका ॥ ६ ॥

शब्दमात्रमें भरा हुआ आहा सङ्गीत मधुर है ।
स्वयम् विश्व उस महानादकी एक तान सुन्दर है ॥
सदा बरसता भूपर जिसका पावन मञ्जुल कण है ।
अन्तरिक्ष उत्थान मध्य सम पृथ्वी अवरोहण है ॥ ७ ॥

—मोहन वैरागी

---

* सात स्वर   † ६ राग   ‡ ६ रागिनी

एकाकार अप्राकृतिक है

(लेखक—गोविन्द शास्त्री दुगवेकर)

यह एक मानी हुई है कि, विजित जाति विजेत्री जातिका सब प्रकारसे अनुकरण करने लगती है। शरीर और भौतिक वैभवके साथ साथ उसका अन्तःकरणभी पराधीन हो जाता है। उसका अपना कुछ नहीं रह जाता। संसारको वह विजेताओंकी ही दृष्टिसे देखने लगती है। उनका महत्त्व उसके हृदयमें छा जाता है और अपना सब कुछ बुरा लगने लगता है। वह परिवर्तन चाहने लगती है। भारत जबसे पराधीन हुआ, तबसे भारतवासियोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति देख पड़ने लगती हैं और स्वाधीन हो जाने पर भी पराधीनताके पुराने संस्कारोंसे उनका पिण्ड नहीं छूटा है।

आजकल संसारके उन्नत कहानेवाले अधिकांश देशोंमें एकाकार करनेकी आँधी चल पड़ी है और उसका एक झोंका भारतमें भी आगया है। समाजवाद, साम्यवाद, एकतावाद, नाम कुछ भी हो, सबके मूलमें एकाकारका बीज विद्यमान है। भारतकी मनोभूमि इसके अनुकूल नहीं है—क्योंकि एकाकार अप्राकृतिक है। युरोप आदि देशोंकी नकल कर यदि यहाँ चला जायगा, तो जगद्गुरु माने जानेवाले भारतके पतनका वह कारण होजायगा।

प्राणिमात्रमें समबुद्धि रखना भारतको भी मान्य है; परन्तु शास्त्रीय दृष्टिसे। जैसे—

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

अथवा—

आत्मवत्सर्वभूतेषु वीक्ष्यन्ते धर्मबुद्धयः।

अर्थात् विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डालको भी विद्वान् लोग एकसा ही देखते हैं अथवा धर्मात्मा लोग प्राणिमात्रको अपने हो समान समझते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि, गायके खानेका चारा ब्राह्मणके आगे खानेको रखते है और ब्राह्मणके लिये पकाया हुआ अन्न कुत्तेको खिलाते हैं। उनकी समदर्शितामें मनुष्यताका नाश करनेवाली एकाकारताका बीज नहीं है। वह उन्नतम आध्यात्मिक दृष्टिकोण है।

हिन्दू दर्शनशास्त्रका सिद्धान्त है कि, इस जड़ चेतनात्मक संसारमें चिन्मय आत्मा एक ही है। वह ज्ञानस्वरूप हैं और एक अद्वितीय रूप सात्त्विक ज्ञानसे ही जाना जा सकता है। प्रकृति जड़ है। वह अज्ञानका विलास है। इस कारण प्रकृतिके रूप अनन्त हैं। प्राकृतिक स्थूल, सूक्ष्म कोई रूप क्यों न हों—उनको एकाकारमें परिणत कर देना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है। वह असम्भव है। स्थूल दृष्टिसे देखने पर भी ज्ञात होगा कि, संसारकी प्रत्येक वस्तु एक दूसरीसे भिन्न होती है। इन्द्रियाँ भिन्न भिन्न हैं, उनके विषय भिन्न भिन्न है और उनकी अनुभूति भी भिन्न भिन्न होती है। गोस्वामीजीने इसी बातको बड़े अच्छे ढंगसे समझाया है। वे कहते हैं—

गिरा अनयन नयन बिनु बाणी

अर्थात् जिसने भगवानका स्वरूप अपने नेत्रोंसे देखा है, उसका वर्णन वह कैसे करे? क्योंकि वर्णन करनेवाली वाणीके नेत्र नहीं, उसने उसे देखा नहीं है और नेत्र भी उसका वर्णन कैसे करें? उनके वाणी नहीं है। नेत्र और वाणीका जैसे एकाकार नहीं किया जा सकता, वैसे ही प्राकृतिक अनेक वस्तुओंका एकाकार करना असम्भव है।

सभी वृक्ष यद्यपि एक ही उद्भिज्ज जातिके हैं, तथापि पीपल वट नहीं होगा और न आम ही बबूर होगा। प्रत्येकका भिन्न अस्तित्व रहेगा और

हर एकका गुणधर्म भी भिन्न होगा। यही नहीं, एक ही वृक्षकी लाखों पत्तियाँ एक दूसरीसे भिन्न होंगी। सब पशु जातिके जीव भी भिन्न होते हैं, पक्षी भी भिन्न होते हैं। गाय और बाघ एक नहीं होंगे, न मोर और कौए ही एक हो सकेंगे। यही बात मनुष्य जातिकी है। सब मनुष्य एकसे नहीं हो सकते।

हिन्दु शास्त्रोंका सिद्धान्त है कि, प्रकृति, प्रवृत्ति, शक्ति, संस्कार, जाति, आयु और भोग इन सातों-के बीजको लेकर जीव जन्म ग्रहण करता है। इसीसे जन्मना जाति मानी गयी है। कर्मणा जाति मानने पर भी एकाकार असम्भव है क्योंकि प्रत्येककी प्रकृति, प्रवृत्ति आदि भिन्न होनेसे प्रत्येक-की एक जाति बनकर अनन्त जातियाँ हो जायँगी, उनका वर्गीकरण भी नहीं किया जा सकेगा। एक विद्वान् और टहलुआ एक नहीं होगा, क्योंकि दोनोंकी मनोभूमि भिन्न है। तप, त्याग, स्वाध्याय आदि सात्विक गुणोंके कारण किसी समय ब्राह्म-णोंका जैसा सम्मान होता था, वैसा किसी राजा-का भी नहीं होता था। इसका कारण यह कि, ब्राह्मण स्वाभाविक रूपसे ही आध्यात्मिकतामें समुन्नत होते थे। उनमें आत्माका विकास अधिक होता था। उनकी तमोगुणी डाकुओंसे समानता कैसे हो सकती है? एक कांस्टेबल गवर्नर जनरल नहीं बनाया जा सकता, न एक गवर्नर जनरलसे कांस्टेबलका ही काम लिया जा सकता है। प्रत्येक देशके लोगोंकी मूल प्रकृति भी भिन्न होती है। वे सब कभी एक नहीं हो सकेंगे।

हिन्दूशास्त्र अनेकतामें एकता देखना भी जानते हैं; परन्तु आत्माके सम्बन्धसे। क्योंकि उनके विचारसे आत्मा एक है और प्रकृतिके वैभव अनेक हैं। अन्ततः प्रत्येकका स्वतन्त्र अस्तित्व है और स्वतन्त्र अधिकार है। इस अधिकार भेदको न जान कर जो एकाकारमें प्रवृत्त होते हैं, वे अपने आपको धोखा दे रहे हैं। जिन कुछ अदूरदर्शी उन्मादग्रस्त देशोंने कानून बनाकर स्त्री पुरुषोंका भेद मिटाना चाहा, वे अब अपने किये पर पछता रहे हैं। क्योंकि स्त्री पुरुषभेद ईश्वरीय है, उसके मिटानेमें मनुष्य असमर्थ है। कोई स्त्री बीजदात्री नहीं होगी और कोई पुरुष गर्भधारण नहीं कर सकेगा। इसी तरह सब मनुष्योंका रूप, रंग, आवाज, ऊँचाई, नाटापन एक नहीं किया जा सकता यदि ऐसा हास्यास्पद प्रयत्न किया जायगा, तो ऊँचे आदमियोंके पैर काटने होंगे और नाटे आदमियोंके पैरोंमें लकड़ी जोड़नी होगी। दुर्बल मनुष्योंके शरीरों पर वैसी मट्टी थोपनी होगी, जैसी बाँस पर मट्टी थोप कर मृण्मयी मूर्ति बनायी जाती है और मालदार तुन्दिल तनु लोगोंकी तोंदें छाटनी होंगी। एकही नापका कोट सबको नहीं पहनाया जा सकता। कानून बनाकर एकाकारमें प्रवृत्त होना अस्वाभाविक है। कानूनसे ईश्वरीय नियमोंका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। गीता-शास्त्र—जो वेद और समस्त शास्त्रोंका निचोड़ है—उसमें और सप्तशतीगीता—जो साधनाका अपूर्व ग्रन्थ है—उसमें दैवी और आसुरी सम्पत्ति-का उत्तम विवेचन किया गया है। उससे सिद्ध होता है कि, एकाकार चल नहीं सकता। वह अनैसर्गिक है।

स्वतन्त्र भारतमें अब नयी शासन प्रणाली स्थापित हो रही है। उसको नये ढङ्गसे प्रचलित करते समय अधिकारभेदका ध्यान रखना परम आवश्यक है। यदि इसका ध्यान नहीं रक्खा जायगा, तो वह भारतको ऊँचा उठानेके बदले नीचे गिरा देगा। उदाहरणार्थ यह कहा जाता है कि स्त्री पुरुषोंकी समान शिक्षाका जो आयोजन किया जा रहा है, वह पशुभावको बढ़ानेका कारण बनेगा। समस्त स्त्री जाति एक होने पर भी माता, पत्नी, भगिनी कन्या आदिके अधिकार प्रत्येकके भिन्न हैं। स्त्री पुरुषोंके अधिकारमें तो जमीन आसमानका अन्तर है। नव भारतमें तो दोनोंकी शिक्षाका ऐसा उपक्रम होना चाहिये, जिससे स्त्री

पूर्ण स्त्री हो और पुरुष पूर्ण पुरुष बन सके। अन्यथा पशुभाव की ही वृद्धि होगी।

युरोपके एकाकारमें प्रवृत्त होनेसे वह कितने शीघ्र गिरा और कहाँका कहाँ पहुँच गया। परन्तु अधिकारभेदको माननेवाला भारत अब तक अपने स्वरूपमें विद्यमान है। वर्तमान एका-कारकी उद्दामताका संयम एकमात्र हिन्दूधर्म ही कर सकता है। अन्ततः नयी योजनामें जो कुछ सुधार किये जायँ, उनमें अधिकारभेदका विचार रखना ही होगा; तभी सफलता प्राप्त होगी। अन्यथा गणेशजीकी मूर्ति बनाते हुए बन्दर बना देंगे—

विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास बानरम्।

क्योंकि एककार अप्राकृतिक है॥

—※—

सिद्ध महात्मा बाबा श्री लोचनदास जी महाराज

(लेखक—भक्त रामशरणदास पिलखुवा)

आज हम अनन्त हर्षके साथ लेखनी उठाकर पाठकोंके सन्मुख भारतके सुप्रसिद्ध सिद्ध महात्मा पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय बाबा श्री लोचनदासजी महाराजका संक्षिप्त जीवन परिचय रख रहे हैं। इसमें हमें बहुतसी बातें रियासत ग्वालियरके एक संतसे मालूम हुई हैं एतदर्थ हम उनके श्री चरणोंके अत्यधिक आभारी हैं। आशा है पाठक इसे ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे और इसमें जो गलती रह गई हो उसे क्षमा करेंगे।

बाबाका जन्म, जाति और स्थान

श्री लोचनदासजी महाराज एक प्रसिद्ध महात्मा थे। लोचनदासजी महाराज जातिके शायद क्षत्रिय थे। आपका जन्म ग्वालियर राज्यकी लालजीतकेपुरे नामक ग्राममें हुआ था। बचपनमे तो आप विद्याध्ययन करते रहे और बादमें महाराजजी बाजीराव सिन्धिया (वर्तमान ग्वालियर नरेशके बाबा) के समयमें वे ग्वालियर राज्यकी सेनामें भरती होगये। आपका स्वास्थ्य बहुत ही सुन्दर था, शरीर ऊँचा, ललाट चौड़ा, सीना उभड़ा हुआ, भुजायें लम्बी और बलिष्ठ थीं। आपको श्री प्रभु भक्तिका चस्का बाल्यकालसे ही लगा हुवा था। आप हर समय प्रभुप्रेममें निमग्न रहते थे तो भी फौजीके कर्त्तव्य और ग्रहस्थकी चिन्ता इन्हें पूरा संत बनानेमें विघ्न डालते रहते थे। आप लाख काम होने पर और सैनिक होने पर भी प्रभु भक्तिको समय निकाल ही लेते थे। सिपाही लोचनदासजी श्री महाबीरजी महाराजको अपना इष्टदेव माना करते थे। और श्री महाबीरजीको प्रसन्न करनेके लिये नित्य श्री महावीरजीको आमन्त्रित कर इन्हें बड़े प्रेमसे गद्-गद् होकर श्री तुलसीकृत रामायणका पाठ सुनाया करते थे। श्री रामायणजीका श्री महावीरजीको पाठ सुनाते २ इतने तन्मय हो जाते थे कि अपने शरीरकी भी सुध-बुध भूल जाते थे। यह आनंद ही ऐसा है कि जिसे प्राप्त कर फिर और किसी चीजकी तरफ आँख उठा कर भी देखनेकी इच्छा नहीं रहती।

एक अद्भुत घटना

आप एक सैनिक थे फिर उच्चकोटिके परम-सिद्ध महात्मा बाबा श्री लोचनदासजी कैसे बन गये? यह आपके जीवनकी एक अद्भुत घटना इस

प्रकार है। एक दिनकी बात है कि नित्यकी भाँति आप श्री महावीरजी महाराजको आमन्त्रित कर आप बड़े प्रेमसे श्री रामायणजीका पाठ सुना रहे थे। श्री महावीरजीकी कृपा तो आप पर पहिले ही से थी परन्तु आज आप पाठ सुनाते २ इतने प्रेममें डूब गये कि अपने शरीरतकका भी भान न रहा और समाधिस्थसे होगये। प्रेममें डूबने पर आपको यह पता कहाँ कि मेरी ड्यूटीका समय है और मुझे जाना चाहिये। सब कुछ एक दम भूल गये। आप उस श्री भगवद् प्रेमके अपार समुद्रमें गद्गद् हो आनंदमग्न होरहे थे और उधर पहरेका समय था। इस प्रभुप्रेमकी अद्भुत मस्तीमें आपको पर्याप्त समय बीत चुका था। यद्यपि सैनिक लोचनदासजीको ड्यूटीकी सुध नहीं थी परन्तु परम कृपालु भगवान श्री महावीरजी महाराज तो बेसुध नहीं थे। उन्हें आज अपने परमभक्तको रक्षा की चिन्ता सवार हुई और अनुपस्थितिके कारण मेरे प्राणप्रिय भक्तपर कोई आपत्ति न आजावे ऐसा सोचकर स्वयं श्री महावीरजी महाराज भक्तके वशीभूत हो श्री लोचनदासजीका वेष बना और फौजी वस्त्र धारण करके उनकी ड्यूटी पर आ खड़े हुये। धन्य है श्री मरुति नंदन श्री हनुमानजी महाराजको जो भक्तके कारण सैनिक बन पहरा देने लगे। तभी तो भक्त लोग गाया करते हैं—

भगवान भक्तके बसमें होते आये।
जब जब भीड़ पड़ी भक्तोंपर नंगे पांवो धाये॥भ०॥

श्री हनुमानजी महाराजने खूब अच्छी तरह ड्यूटी दी। उधर ड्यूटीका समय व्यतीत हुआ और इधर श्री लोचनदासजीको सुध आई और अपनी ड्यूटीका ध्यान आया फिर क्या था चिन्ता सवार हुई और एक दम भागे २ गये और पहुँचे ड्यूटी पर। वहाँ पर आकर देखा कि ड्यूटीपर आनेकी ड्यूटी वाला सिपाही खड़ा है। आपके यह देख कर होश उड़गये और सिपाहीसे बात गिड़ गिड़ा कर बोले 'भाई' आज मुझसे बड़ी भूल हुई है मैं न आसका यहाँ किसी बड़े अफसरका गश्त तो नहीं हुवा? उस सिपाहीने समझा कि यह पागल तो नहीं हो गया है। अब तो खड़ा पहरा देही रहा था फिर भी कहता है कि मैं आ नहीं सका मुझे देरी हो गई? उसने कहा कैसी देरी और कैसी भूल? क्या कह रहे हो? लोचनदासजीने कहा यही कि मैं आज ड्यूटी नहीं दे सका। सिपाहीने कहा अरेभाई आज तुम पागल तो नहीं हो गये हो? क्या कह रहे हो? अरे अभी तो तुम यहाँसे गये हो और तुम्हारे सामने ही सेनापति भी आये थे देखो यह उनका इन्सपेक्शननोट। आपने मन ही मन कहा कि यह सिपाही पागल तो नहीं है, या मेरी हँसी तो नहीं उड़ा रहा है? आपको उसका विश्वास नहीं हुआ फिर भी जब आपने इन्सपेक्शननोट देखा तो देख कर दंग रह गये। कुछ मन ही मन सोचा और लगे उछलने कूदने।

सैनिकसे संत

आप इस असली रहस्यको समझगये कि मेरे कारण श्री महावीरजीने सैनिक बन कर पहरा दिया है। आप भागे २ अब घर गये और झटसे जाते ही सैनिकपदसे त्याग पत्र लिख भेजा। और मनमें निश्चय कर लिया कि जिसने मेरे कारण इतना कष्ट उठाया और पहरा दिया क्या मुझे अब उसके लिये कुछ नहीं करना चाहिये? बस यही निश्चय कर धनधाम, घर नार सबको लात मार सर्वस्वत्याग आप गेरुवाँ वस्त्र पहिन, बन गये सैनिक लोचनदाससे संत लोचनदास। अबतो आपका सारा समय ही श्री महावीरजीकी भक्तिमें व्यतीत होने लगा और हर समय उनके प्रेममें ही गद्-गद् रहने लगे। उस समय आपकी भक्ति ही विचित्र अद्भुत दशा थी।

एक भक्त वकील साहब पर प्रसन्न

राज्यमें एक परमभक्त आस्तिक वकीलसाहेब रहते थे। उन्होंने पूज्यपादबाबा श्री लोचनदासजी महाराजका दर्शन किया और आपकी भक्तिको देख कर उनमें बड़ी श्रद्धा होगई। वकीलसाहबने बाबासे बड़े विनीत स्वरमें करबद्ध प्रार्थनाकी कि श्री महाराजजी कृपाकर आप मेरे यहाँ नित्य भोजन कर लिया करो बाबाने उन्हें सुपात्र समझा और उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। बाबाकी प्रसन्नताको जान वकीलसाहब गद् गद् होगये।

मरे लड़केको जीवित करना।

वकीलसाहब बहुत दिनतक नित्य प्रति बड़ी श्रद्धा भक्तिपूर्वक आपको अपने यहाँ भोजन कराते रहे। दैवयोगसे एक बार आपका एक पुत्र बीमार होगया। उसका बहुत इलाज कराया गया परन्तु वह अच्छा नहीं हुवा। और अन्तमें वह स्वर्गधाम पधार गया। वकीलसाहबके घरमें रोना पीटना शुरू हो गया। पुत्रका शोक सबसे बड़ा शोक गिना जाता है। इधर बाबा श्रीलोचनदासजी महाराजकी भिक्षा करनेका समय आगया। वकील साहबने दूरसे ही बाबाको आते हुये देखा और झटसे दौड़े हुए घरमें गये और अपनी धर्मपत्नीसे जाकर बोले कि 'बाबा आरहे हैं अगर आज आप इस समय रोती रहो तो बाबा भोजन नहीं करेंगे और भोजनका जो नित्यका नियम है वह आज भंग हो जायेगा। कोई भी न रोये और आप भी शान्त होकर बैठ जावो। धन्य हैं वकील साहब और उनकी सतीसाध्वी धर्मपत्नी जो पुत्र घरमें मरा पड़ा है परन्तु साधुसेवाके आगे सब शोकको भूल जाते हैं। न स्वयं रोये न औरोंको रोने दिया और मरे लड़केको अन्दर कोठरीमें रख दिया। बाबा नित्य जब आते थे तो आवाज देते कुछ कहते सुनते, बड़ बड़ाते जो जीमें आता कहते सुनते आते थे इसी प्रकार आज भी आये। और बोले क्या रोटी तयार होगई? वकील साहबने बड़े प्रेमसे नित्यकी भाँती कहा कि हाँ महाराज तैयार है। बाबा अन्दर गये और बोले आज तीन आसन यहाँ पर बिछावो और तीन थालीमें भोजन परोस कर लावो।

वकीलसाहब—बाबा आज तीन थाली किस लिये चाहिये?

बाबा—हम कह रहे हैं तीन आसन बिछावो और तीन थालीमें भोजन परोस कर लावो।

वकीलसाहब—क्या और कोई भी भोजन करेंगे?

बाबा—एकमें हम और दूसरीमें तुम और तीसरीमें छोरा भोजन करेगा।

वकीलसाहब—बाबा आप भोजन कर लीजिये छोरा यहाँ पर नहीं है।

बाबा—छोरा कहाँ गया है?

वकीलसाहब—कहीं बाहर खेलने चला गया होगा पीछे भोजन कर लेगा।

बाबा—नहीं बुला कर लावो।

वकीलसाहब—बाबा छोरा अन्दर सोरहा है।

बाबा—जगाकर लावो।

वकीलसाहब—अच्छा महाराज बाबा त्रिकालज्ञ थे और सब जान गये थे कि लड़का मर गया है परन्तु आज तो उन्हें अद्भुत चमत्कार दिखाना था इसीसे ऐसी लीला कर रहे थे। वकीलसाहब अन्दर आये और आकर बोले—

वकीलसाहब—बाबा हमसे नहीं जागता आप जगालो।

बाबा—अच्छा हम ही चलते हैं और हम ही जगाते हैं।

बाबा अन्दर गये और मुर्दे लड़केका हाथ पकड़कर कहा कि उठ बहुत सो लिया चल भोजन कर। पूज्यपाद बाबाका ऐसा कहना था कि लड़का जैसे सो कर जागा हो एक दम खड़ा हो गया और बाबाके साथ साथ चल दिया और भोजन करने लगा यह अद्भुत चमत्कार देख कर सभी प्रसन्न होगये। आश्चर्यका ठिकाना न रहा। चारों

ओर बाबाकी ख्याति फैल गई और हल्ला मच गया।

बाबाका यहाँसे भागना।

अब तो जिसे देखो वही बाबाके पास भागा आरहा है और कोई पुत्र मांगता है तो कोई स्त्री और कोई धन तो कोई मुकदमेमें जीत, कोई रोग दूर होनेका आशीर्वाद। बाबाने सबकी इच्छा जो थी अपने आशीर्वादसे पूरी की। परन्तु करते भी कहाँ तक दिन पर दिन भीड़ बढ़ने लगी और बाबा तंग हो गये। और अन्तमें एक दिन यहाँसे भाग खड़े हुये और फिर पता नहीं एक दम कहाँ चले गये?

बाबा लालजीतके पुरेमें

कुछ समय बाबा लालजीतके पुरेमें आये और एक तेलीके मकानके पास एक छोटी सी झोपड़ी डाल कर रहने लगे। उससमय किसीको पता नहीं था कि यह वही वकीलसाहबके लड़केको जिलानेवाले महात्मा हैं। धीरे धीरे बात फैलने लगी कि यह वही बाबा श्री श्रीलोचनदासजी महाराज हैं कि जो फौजमें थे और श्रीहनुमानजीने जिनके बदले पहरा दिया था और इन्होंने ही वकीलसाहबके लड़केको जिला दिया था। फिर क्या था वही फिर वही भीड़की भीड़ इकट्ठी होने लगी। हजारों मनुष्य भारतके कोने कोनेसे आने लगे। लंगड़े लूले, अंधे, कोढ़िये, मुकदमेबाज, पुत्रकी इच्छावाले आदि २ की हर समय भीड़ रहने लगी। हजारों तो कोढ़ियोंका कोढ़ दूर हो गया, अंधे सभाके होगये, बहुतोंके पुत्र होगये। सबकी इच्छायें बाबाके आशीर्वादसे पूरी होने लगी और जो जिनको कह दिया वही होगया।

अद्भुत दशा

बाबा सब पर कृपा करते थे परन्तु सब दिन-रात इन्हें घेरे रहते थे और तंग करते थे। इसलिये कुछ दिखावटी क्रोध सा करने लगे और किसीके ईंट मारने लगे तो किसीके पत्थर ही मारने लगे और आप एक अपने पास बबूलका डंडा रक्खा करते थे किसीके उसे भी जड़ देते थे। किसीको बकने लगते किसीको बुरी भली कहने लगते यह आपकी पागलोंकी सी दशा बहुत दिनों तक रही।

रहन-सहन खान, पान

आप यूँ ही मस्त पड़े रहा करते थे। गर्मी, सर्दी, सुख, दुःख इसकी आपको तनिक भी तो परवाह नहीं थी। खान-पानका आपका ऐसा नियम था कि जो भी भोजन ले आया सभीको भोजन कर लिया। चाहे जितना भोजन आ जाये सभी कर लेते थे। और भोजन करते ही कहते जाते थे 'भाई तुम क्यों ले आये तुम्हारी माता मना करती थी' किसीसे कहते कि तुम क्यों ले आये तुम्हारी स्त्री मना करती थी। सबकी बातें बैठे बताते जाते थे और भोजन करते जाते थे। शौच कभी जाते ही नहीं थे। पासमें खप्पड़ रक्खे रहा करते थे बस खा कर उन्हींमे मुखसे निकाल दिया करते थे और पासमे ही जो बहुतसे कुत्ते रहा करते थे। वह खाते रहते थे। ऐसा आपका नित्यका ही नियम था आप पैरोंके और हाथोंके नाखून भी इस बे रहमीसे काटते थे कि खून बहने लगते थे और घाव हो जाते थे। नाखून अभी आया भी नहीं फिर भी काट रहे हैं औरों को तो यह देखकर दुःख होता था परन्तु बाबाको तो दुःख सुखका कुछ पता ही नहीं था और शरीर का भाव ही नहीं था। बहुतोंने आपसे प्रार्थना और बहुत आग्रह किया कि आपके लिये पक्की कुटिया बनवादें परन्तु आपने कभी इसे स्वीकार ही नहीं किया। अच्छा बुरा जैसा आ गया और जितना आ गया सबको खा लिया और खप्पड़में उगल दिया और मस्त पड़े रहे और अपने आशीर्वादसे सबका भला करते रहे यही आपका काम था। आपके जीवनकी हजारों आश्चर्यजनक घटनायें हैं जिन्हें यहाँ पर असम्भव है तो भी दो चार घटनायें हम यहाँ पर दे रहे हैं।

मोटर चलना बंद

एकबार आपके पास भीड़ लगी हुई थी। एकाएक आपने जोरसे कहा 'सुसरी वहीं पर रहे सुसरी वहीं पर रहे, सुसरी यहाँ पर मत आ खबरदार जो यहाँ पर आई। यह सब देखकर आश्चर्यमें पड़ गये कि क्या बात है बाबा किसे कह रहे हैं? कुछ मनुष्य बाबाके पाससे उठकर कुछ दूर गये कि देखें कोई आ तो नहीं रहा है और बाबा किसे कह रहे हैं। कुछ दूरी पर जा कर देखा कि एक कार मोटर है जिसमें एक रानी बैठी है और मोटर चलना बंद है। बहुत कोशिशकी गई पर मोटर चल कर ही नहीं दी। सबने रानीसे कहा कि मोटर नहीं चल सकती बाबाकी आज्ञासे बंद हो गई है। अंतमें रानी पैदल चल ही आई और बड़ी श्रद्धासे प्रणाम कर बैठ गई। और बाबासे आपने करबद्धप्रार्थना कर कहा कि बाबा यदि आपकी आज्ञा हो तो आपके लिये एक सुन्दर पक्की कुटिया बनवादूं। बाबाने कहा हमें क्या करनी है तेरी कुटिया अरी बावली तू बनवा देगी कुछ दिन बाद कुटिया ढह जायेगी इसलिये क्यों बनवाये? आपने लाख प्रार्थना करने पर भी स्वीकार नहीं किया। अंतमें रानीने अपने पुत्र हो इसकी प्रार्थना की। आपने पहिले तो कहा जा भाग हमारे यहाँ तेरे लिये पुत्र कहाँसे आवे? अंतमें प्रसन्न होकर पुत्र होनेका आशीर्वाद दिया। रानी प्रसन्न होकर चलदी और जो कार पहिले लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं चली थी अब चलती बार फौरन चलने लगी। बाबाकी यह अद्भुत चमत्कारिक घटनाको देख सब दंग रह गये। बादमें कुछ दिन बाद ही रानीके भी लड़का हुआ जिसे लेकर यह बाबाके पास फिर दुबारा आई थी।

चिड़ियाको मारना और फिर उसे जीवित करना

एक बार जहाँ पर आप रहते थे अपने पास ही एक मिट्टी का घड़ा जो पानी से भरा हुआ था रक्खा हुआ था। न जाने वह घड़ा कैसे उंध गया और उसका पानी सब जगह फैल गया। पास में कुछ गड्ढेसे थे उनमें भी पानी भर गया। पानीको देखकर कितनी ही चिड़िया आकर पानी पीने लगी। कुछ बच्चे भी आपके पास ही खेल रहे थे। बच्चोंने कहा बाबा चिड़िया तुम्हारा पानी पी रही है। बाबाने धड़ामसे चिड़ियोंकी तरफ हाथ मारा। सबकी सब चिड़िया तो उड़ गई परन्तु एक चिड़ियाके ऐसा हाथ लगा कि मर गई। बालकोंने चिड़ियाको मरी देख हँसना शुरू किया और एक बालक बोला 'बाबा तुम चिड़ी मार हो? बाबाने उस मरी चिड़ियाको अपने हाथमें उठाकर अपनी हाथकी हथेली पर रक्खा और तीन बार यह कहकर कि 'सुसरी उड़ नहीं तो मुझे सब चिड़ीमार कहेंगे हाथ मारा और तीसरी बार सबने देखा कि वह मरी हुई चिड़िया फुर्र ऐसी जीवित होकर आकाशमें उड़ गई। यह सब देखकर दंग रह गये। बहुतसे सनातनधर्म विरोधी नास्तिकोंकी बोलती बंद हो गई।

बहुत बड़े विशाल वृक्षको छूते ही गिरा देना।

जहाँ पूज्यपाद बाबाजी महाराज बैठा करते थे वहीं पर पासमें ही एक बहुत बड़ा विशाल वृक्ष था। बाबाके जीमें आया कि इसे उखाड़ डालें। आपने अपने पासके एक साधुसे कहा कि इसे उखाड़ दे। बाबा यह बड़ा मजबूत हरा भरा वृक्ष है इसे पचास आदमी भी मिलकर नहीं उखाड़ सकते। आपने कहा नहीं हाथ लगा गिर पड़ेगा। साधुने कहा बाबा नहीं गिरेगा। आपने कहा अरे तू हाथ तो लगा। उसने बाबाकी आज्ञानुसार हाथ लगाया परन्तु वृक्ष नहीं गिरा। परन्तु जब आपने उस वृक्षके हाथ लगा दिया तो विशाल वृक्ष धड़ामसे जड़सहित उखल कर पृथ्वीपर गिर पड़ा। सभी इस घटनाको देखकर आश्चर्यमें डूब गये।

नास्तिकोंकी बोलती बंद।

जो बड़े बड़े नास्तिक हैं और सनातनधर्म वेद शास्त्र पुराण साधु ब्राह्मण किसीको भी नहीं मानते वह भी बाबाके पास आकर और उनके अद्भुत चमत्कार देख देख कर नास्तिकसे आस्तिक होते देखे गये थे। बाबाके पास आकर बड़े नास्तिकोंका, चोर डाकुओंका भी सुधार हो गया था। हमारे पूज्य पिता (ला० नरायनदास जी) जो साधु संतों में विश्वास नहीं रखते एक बार ग्वालियरराज्यमें भी शनिश्चरादेवी पर गये थे तो बाबाकी किसीसे प्रशंसा सुन बाबाके पास भी गये और बाबाके आशीर्वादसे उन्होंने अपने काममें सफलता पाई और हार कर श्रद्धा करनी पड़ी। एक नहीं हजारों बड़े बड़े साधु विरोधियोंको बाबाके पास जाकर श्रद्धालु बनना पड़ता था।

बाबाका साकेतवास।

जीवित कालमें बहुतसे मनुष्य आपको पागल समझते रहे परन्तु अब बादमें सर धुन धुन कर रोते है। बाबा पूरे सिद्ध थे, त्रिकालज्ञ थे, घट घट की जाननेवाले थे, पूरे सिद्ध थे जो चाहे सो कर सकते थे, प्रभुका साक्षात्कार किये हुये थे और पूर्ण योगी थे। हजारों नास्तिकोंको आस्तिक बनाए हुए सबका दुख दूर करते हुये, आप लगभग १४-१५ वर्ष हुये साकेतवासको प्राप्त हो गये। बाबाके जीवन-की अनेकों अद्भुत घटनायें स्थानाभावके कारण यहीं पर समाप्त किया जाता है। इसमें जो गलती रहगई हो पाठकगण क्षमा करो ऐसी हमें पूर्ण आशा है।

बोलो संत और उनके भगवानकी जय।

परमपूज्या श्री श्री आनंदमयी माँके बचनामृत

(लेखक—भक्त रामशरणदास पिलखुवा)

प्रश्न—मा कृपाकर बतलाइये कि श्री श्रीभगवत्प्राप्तिका सरलसे सरल साधन क्या है?

उत्तर—श्री भगवतप्राप्तिका साधन जो गुप्त बतावे वही साधन है। वह साधन गुरुकी पूर्ण कृपाका फल है।

प्रश्न—मा क्या गुरुके बिना काम नहीं बन सकता? क्या गुरु करना बहुत ही जरूरी है?

उत्तर—देखो बेटा जब भगवान् कल्याण करते है तो वह गुरुरूप बनके कल्याण करते है उनका यह स्वभाव है। ज्ञान है इसे बिना गुरुसे कौन दे सकता है? अगर अपन आप बिना गुरुके ही काम बन जाता तो फिर गुरुकी क्या जरूरत थी?

प्रश्न—गुरुकी पहिचान क्या है?

उत्तर—गुरु ही कृपा करके अपनी पहिचान कराय तभी गुरुकी पहिचान हो सकती है। गुरु कृपा करके अपनी पहिचान देता है। गुरु कृपाके बिना पहिचान नहीं हो सकती। जिस प्रकार बिना प्रोफेसरके विद्यार्थी विद्या नहीं सीख सकता उसी प्रकार गुरु कृपाके बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

प्रश्न—गुरु कृपा कैसे हो?

उत्तर—गुरु कृपाकर स्वयं प्रकाश देता है।

प्रश्न—जो श्रीहरि है उन्हें गाकर भी पुकार सकते है। जो सबका दुःख हरण करते हैं वही श्रीहरि हैं।

उत्तर—मौन तो रहे पर भगवत्स्मरण-कीर्तन नहीं करे तो इससे तो वह भगवद्स्मरण कीर्तन करनेवाला ही अच्छा है। भगवन्नाम कीर्तन करनेवाला भी एक प्रकारसे मौन ही है। भगवन्नामके सिवाय और कुछ न बोलना ही मौन है।

माँबोली—अच्छा बेटा जी और फिर पूँछना।

अभिनन्दनपत्र

यो विश्वं निखिलं बिभर्ति कुरुते सृष्टेर्व्यवस्थाञ्च यस्तं धर्मं परिरक्षितुं प्रयतते यो विश्वसन्धारकम् ।
तं धर्मप्रतिपालकं नरवरं धर्मः स्वयं शाश्वतः शश्वद्रक्षति रक्षितस्त्रिभुवने धर्माय तस्मै नमः ॥

विविध-विरुदावली-विराजमान भारतीय संस्कृति-संरक्षक श्रीमन्महाराजाधिराज द्विराज काशिनरेश श्रीविभूतिनारायणसिंह राजेन्द्रकी सेवामें—

माननीय महाराज !

श्रीकाशीपुरी जो आर्यजातिका प्रधान विद्यापीठ और धर्मकेन्द्र है और साथ ही साथ तीर्थस्थानोंमें एक सर्वमान्य तीर्थस्थान है उसकी महिमा-कीर्तन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। सृष्टिके प्रथम समय जबसे महर्षि भृगु आदि प्रजापतियोंका आविर्भाव हुआ था और जबसे उनके पवित्र गोत्रप्रवर आदिकी शृंखलाकी प्रतिष्ठा हुई थी, तबसे पूज्यपाद महर्षियोंके समयसे भारतके ब्राह्मणगण मनुष्यजातिके आदिगुरु माने गये है और वे समस्त देशके बुधजन द्वारा आध्यात्मिक उन्नतिशील आर्यगणके सर्वमान्य पथप्रदर्शक स्वीकृत किये गये हैं। अवभी इस घोर कलियुगमे परम शोभनीय काशीपुरीमें पुण्यसलिला भागीरथी स्थिररूपसे हैं और जहाँ मोक्षाभिलाषी संन्यासीगण तथा ज्ञान-प्रदाता सब श्रेणीके विद्वज्जन इसकी महिमाको घोषित कर रहे हैं। जिस पवित्र काशीके दर्शनके लिये भारतवर्ष अर्थात् पृथिवीके सब धनी मानी ज्ञानीजन बड़े उत्साहसे आया करते हैं और यहाँसे ज्ञानप्राप्तिकी इच्छा रखते हैं। ऐसे अतिपवित्र महान् प्रभावशाली जनपदके महाराजा होनेसे श्रीमान् भारतखण्ड अर्थात् हिन्दुस्तानके समस्त राजन्यवर्गके माननीय महाराजाधिराज हैं। देश-कालके और सामयिक राजनीतिके प्रभावसे चाहे कितना ही परिवर्तन क्यों न हो; परन्तु आपका सम्मान और पदगौरव सदा एक समान रहेगा।

सनातनधर्म और आर्यसंस्कृति स्वाभाविक और चिरस्थायी है। आर्यजातिको चिरजीवी एवं विजयी बनानेके लिये उसकी वर्णाश्रमशृंखला अभेद्य दुर्ग है। कलियुगके अन्तपर्यन्त इस जातिकी सुरक्षा कैसे होगी, इसका वर्णन देवीभागवत, विष्णुभागवत और अणुभागवत, जैसे शास्त्रोंमें अच्छी तरहसे मिलता है। इस जातिकी सुरक्षाके विषयमें शास्त्रोंमें स्त्रीजातिका प्राधान्य सिद्ध किया गया है। जबतक आर्यजातिमें आर्यमहिलाओंकी पवित्रता बनी रहेगी तबतक संसारकी कोई शक्ति इसको हानि नहीं पहुँचा सकेगी। इन्हीं शास्त्रोक्त सिद्धान्तोंको लक्ष्यमे रखकर अखिल भारतीय श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की स्थापना सन् १९१९ में हुई है। तबसे यह संस्था भारतीय आर्यमहिलाके गौरवमय प्राचीन आदर्शकी रक्षा और प्रचारके लिये "आर्यमहिला" पत्रिका विभाग, असहाय वृद्धा स्त्रियोंकी सहायताके लिये आर्यमहिला-अन्नसत्रविभाग, गृहदेवियोंमें धार्मिक शिक्षाप्रचारके लिये धर्मसेविका विद्यापीठ उपाधि-परीक्षाविभाग, आर्यजाति विशेषतः आर्यमहिलाओंकी प्राचीनसंस्कृति और मर्यादा-रक्षाके लिए रक्षाविभाग, सत्शिक्षा-विस्तारके लिए पुस्तक-प्रणयन तथा प्रकाशनविभाग, और कन्याओंमें

उचित आधुनिक शिक्षाके साथ साथ उनके जीवनके उपयोगी उत्तमशिक्षा-विस्तारके लिये आर्यमहिला-महाविद्यालय इन्टर कालेजविभाग, इन छः कार्यविभागों द्वारा सतत प्रयत्न करती आरही है। सन् १९२५ में श्रीमान्के प्रतापी पुण्यवान् पितृदेवके करकमल द्वारा इसके आर्यमहिला अन्नसत्रका उद्घाटन हुआ था, और पुनः सन् १९३८ में उनके शुभागमनसे यह आपका आर्यमहिला-महाविद्यालय गौरवान्वित हो चुका है, सो श्रीमान् जानते ही हैं। श्रीमान् कृपाकर आज इस संस्थामें पधारे हैं। हम श्रीमान्का इस शुभ अवसरपर हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि स्त्रियोंकी प्राचीन संस्कृतिरक्षाके सदुद्योगमें तत्परा इस एकमात्र संस्थापर श्रीमान्की कृपादृष्टि सदा बनी रहेगी।

करुणावरुणालय भगवान् श्रीविश्वनाथके चरणोंमें हमारी आन्तरिक प्रार्थना है कि श्रीमान् जैसे सनातनधर्म एवं आर्यसंस्कृतिके समुज्वल-प्रतीक, धर्मपरायण, सदाचारी नरपति दीर्घायु हों और श्रीमान्का सुयश भारतमें सर्वत्र व्याप्त हो।

विनीत—

अखिल भारतीय श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्के पदाधिकारी तथा सदस्य एवं सदस्याएँ।

अभिनन्दनपत्र

यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः ।
पृथग्धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः ॥

परम माननीय श्रीमान् हिज एक्सलेन्सी सर होमी मोदी महोदय, गवर्नर संयुक्तप्रान्तकी सेवामें—

महामान्य महोदय,

सैकड़ों वर्षोंकी पराधीनताके कष्टोंको सहकर अब भारत पूर्ण स्वाधीन हो गया है, इसके लिये सबसे पहले उस परम मङ्गलमयी जगदम्बाको श्रद्धा और भक्तिभावसे धन्यवाद देना हम अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं। उन्हींकी कृपासे हिन्दू-जातिके लिये अत्यन्त महत्वके इस संयुक्त प्रान्तके आप जैसे शान्तिप्रिय, बहुदर्शी अर्थशास्त्रके मर्मज्ञ, शिक्षानुरागी, समदर्शी नारीजातिका उत्कर्ष चाहनेवाले महापुरुष सुयोग्य प्रधान शासक हैं, यह हमारे बड़े आनन्दका विषय है। आज आपका हार्दिक स्वागत और अभिनन्दन करते हुए हम प्रसन्नतासे फूले नहीं समा रहे हैं। परम करुणामयी ब्रह्ममयी जगन्माताके चरणोंमें हमारी यही प्रार्थना है कि, आप दोनों दीर्घायु हों, दीर्घकाल-तक इस पदपर प्रतिष्ठित रहें और आर्यमहिलाओंके कल्याणकार्यमें सहयोग देते रहें।

कोई जाति जब पराधीन हो जाती है, तब वह आँखें मूँदकर विजेताओंका अनुकरण करने लगती है। वह यह नहीं देखती कि वह अनुकरण हमारे देशकी परम्परा, जलवायु और प्रकृतिके अनुकूल है या नहीं। शिक्षाक्षेत्रमें हमारी भी यही स्थिति है। हमारे पूर्वज महर्षियोंने शिक्षाके सम्बन्धमें बहुत गम्भीर विचार किया है और उसमें वे सफल भी हुए हैं। उनका सिद्धान्त है कि जिस जाति और जिस व्यक्तिमें जिस विशेषताका बीज विद्यमान हो उसके अनुसार उसकी शिक्षाकी व्यवस्था होनेसे उस जाति तथा व्यक्तिका कल्याण हो सकता है। संसारकी सब जातिकी शिक्षा-प्रणाली किसी एक ही साँचेमें ढाली नहीं जा सकती। प्रकृति (नेचर) की नकल करना आर्ट है और उसपर प्रभुत्व स्थापन करना साइन्स कहाता है। आज इसीका बोलबाला है, क्योंकि इसमें असाधारण चमत्कार देख पड़ते हैं, चाहे वे सत् हों या असत्, जीवरक्षक हों या जीवनाशक। हमारे पूर्वजोंका ध्यान उस शिक्षाकी ओर रहा है, जिससे अन्तर्जगत् अर्थात् प्रकृतिसे परेकी बातें जानी जा सकें और अन्तमें श्रीभगवान्के चरण-कमलोंमें पहुँचा दे। दार्शनिकशिक्षासे ही यह कार्य हो सकता है और इस समय इसीकी आवश्यकता है। अब समय आगया है और इसी शिक्षासे जगत्का मंगल हो सकता है।

काशी हिन्दुधर्मावलम्बियोंका विद्या और धर्मसम्बन्धी सबसे बड़ा केन्द्र रहा है और अब भी है। यहाँ सन् १९१९ में आपकी अखिल भारतीय श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्की स्थापना इस उद्देश्यसे हुई थी कि, इसकेद्वारा भारतीय देवियोंके प्राचीन गौरवमय आदर्शकी रक्षा और प्रचारके साथ-साथ विधवाओंकी रक्षा एवं कन्याओंमें उत्तम गृहिणी तथा आदर्श माता बननेके उपयोगी शिक्षाका प्रचार हो सके। क्योंकि आजकी कन्याएँ ही भविष्यकी गृहिणी तथा

माताएँ बनेगीं। महापरिषद् गत तीस वर्षोंसे अनाथ असहाय महिलाओंकी सहायताके लिये आर्यमहिला-अन्नसत्रविभाग, उपरोक्त सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये "आर्यमहिला" मासिकपत्रिका-विभाग, गृहस्थ-महिलाओंमें धार्मिक शिक्षाप्रचारके लिये धर्मसेविका विद्यापीठ उपाधि-परीक्षाविभाग, आर्यजाति विशेषतः आर्यमहिलाओंकी प्राचीन संस्कृति एवं गौरवरक्षाके लिये रक्षाविभाग, सत्-शिक्षाविस्तारके लिये पुस्तक-प्रणयन तथा प्रकाशन-विभाग और कन्याओंमें आधुनिक उपयोगी शिक्षाके साथ-साथ स्त्री-उपयोगी उत्तम शिक्षा-विस्तारके लिये आर्यमहिला-महाविद्यालय इन्टर-कालेज विभाग, इन छ कार्यविभागों द्वारा स्त्री-समाजकी यथाशक्ति सेवा करती आरही है।

श्रीमान्ने इस संस्थामें पधारकर संस्थाको गौरवान्वित किया और हमारे उत्साहको बढ़ाया है, इसके लिये हम विनम्र होकर कृतज्ञता प्रकट करते हैं, और आशा ही नहीं, विश्वासभी रखते हैं कि, आप दोनों इसकी ओर अपनी कृपादृष्टि बनाये रहेंगे और भारतव्यापी सुयश तथा दैवजगत्की कृपा प्राप्त करते रहेंगे।

विनीत—

अखिल भारतीय श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्के पदाधिकारी सदस्य एवं सदस्यायें

हिन्दूकोड बिलके विरोधमें आर्यमहिलाओंकी ललकार

विगत २६ नवम्बरको आजादपार्कमें अखिल-भारतीय-महिला—संघकी अध्यक्षा राजकुमारी प्रभावती राजेने हिंदूकोडका विरोध करतेहुए अपने ओजस्वी भाषणमें बतलाया कि चरित्रवान्, मनुष्यत्वको बचानेवाला और राष्ट्रका भूषण है। जिस प्रकार हजारों काक और बगुलोंसे तड़ाग शोभा नहीं पाता, उसी प्रकार हजारों दुश्चरित्र व्यक्तियोंसे देशका गौरव नहीं बढ़ता। किन्तु जैसे एक ही राजहंस सरोवरकी अद्भुत शोभा बढ़ानेमे कारण बनता है वैसे एक सच्चरित्र और सदाचारी व्यक्ति राष्ट्रके मस्तकको ऊँचा कर सकता है। भारतीय ललनाएँ सीता और सावित्रीके परमपवित्र चरित्रको अपना आदर्श मानती हैं। परन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि सरकार कोड बिल बनाकर उस आदर्शको, उस पुनीत चरित्रको खतम करने जा रही है। मैं स्पष्ट कह देना चाहती हूँ कि अपने चरित्र एवं आदर्शकी रक्षा करना हमारा अधिकार है, इसलिए हम हर तरहसे उसकी रक्षा करेंगी। जो कानून हमारे विवेक-विज्ञानपर परदा डालनेवाला तथा धर्म और चरित्रको भ्रष्ट करनेवाला है उसे हम मिटाकर छोड़ेंगी। किसीकी ताकत नहीं कि वह काले कानूनों द्वारा हमारी इज्जतको बिगाड़े। ब्रिटिश एवं मुगलोंके शासनकालमें भी जो अत्याचार न हुआ वह आज हमपर नारकीय हिन्दू कोड जैसा काला कानून बलात्कार किया जा रहा है। इस बिलसे दुखी महिलाओंका दुख और दुराचारियोंका दुराचार घटेगा नहीं, प्रत्युत उसमें और भी वृद्धि होगी। सरकार बलपूर्वक हिन्दू कोड पास करके हमारे धर्म, सदाचार और प्रेमकी होली न जलाये।

अबला कही जानेवाली नारियाँ परम सबला हैं। उन्होंने अपने पातिव्रत्य धर्मके प्रभावसे सूर्य और चन्द्रके अद्भुत तेजको भी मात किया है। उनके ही दूधसे पले हुए राणाप्रताप तथा शिवाजी आदिने अद्भुत पराक्रम दिखलाया है। हम सरकारसे नम्रनिवेदन करती हैं कि वह हिंदूकोड बिलको रद्द करदे अन्यथा हमें विवशहोकर सत्याग्रह करना पड़ेगा। राजकुमारीजीने देशवासियोंसे अपील करते हुए यह कहा कि अस्पतालमें पड़े-पड़े मर जानेसे धर्मकी रक्षाके लिए युद्धमें मर जाना कहीं लाखगुना अच्छा है और स्वर्गमें जानेका सरल मार्ग है। इसलिए अगर सरकारने इस काले कानूनको पास किया तो सभी देशवासियोंको प्राणपणसे इसका विरोध करना चाहिये।

श्रीमती कृष्णादेवीने अपने भाषणमें बतलाया कि कोडबिल द्वारा हमारे सनातन धर्मपर प्रहार किया जा रहा है। कुछ अँग्रेजी पढी लिखी स्त्रियां जो वस्तुतः न घरकी हैं न घाटकी, वही इस बिलका समर्थन कर रहीं हैं, बाकी समस्त भारतीय महिलाएँ कोडबिलका जोरदार विरोध कर रहीं है। जहां पाकिस्तानी आक्रमणका भय और काश्मीरकी उलझन देशके सामने है. वहां हिंदूकोड जैसे विवादग्रस्त मामलेको उठाकर सरकार व्यर्थ पचड़ेमें पड़ रही है। विदेशी शिक्षामें पले हुए जो लोग हमपर हिंदू कोड लादना चाहते हैं, उन्हें हम सावधान कर देना चाहती हैं कि आज भी हमें जौहरका व्रत भूला नहीं है, हम अपने पवित्रयशको कभी भी कलंकित न होने देंगी। अगर कोडबिल पास हुआ तो हम एक हाथमें कफन और दूसरे हाथमें धर्म-ध्वज लेकर अपने सतीत्वकी रक्षाके लिए मैदानमें कूदेंगी और एक बार पुनः यह दिखलायेंगी कि नारियोंकी पवित्र शक्तिके सामने सारी शक्तियां किस प्रकार कुण्ठित हो जाती हैं।

कुमारी लीला पुष्करणीने अपने ओजस्वी भाषणमें कहा कि सरकार हिंदूकोड बिल पास करके हमपर विपत्तियोंका पहाड़ न लादे। जो लोग मनमाने कानूनोंको बनाकर हमारे सतीत्वका अपहरण करना चाहते हैं, वे कान खोलकर सुन लें कि भारतकी देवियां किसीको छेड़ती नहीं और जो उन्हें छेड़ता है उन्हें छोड़ती नहीं। हमने दोनों हाथमें नंगी तलवारोंको लेकर मुगलोंके दांत खट्टे किए हैं और अंग्रेजोंके छक्के छुड़ाये हैं। अगर दुष्टता पूर्वक हमपर कोडबिल लादा गया तो एक बार-हम फिर चंडीका रूप धारण करेंगी।

श्रीस्वामी करपात्रीमहाराजका माननीय प्रधान मन्त्री पं० नेहरूजीको पत्र

स्वस्ति श्री प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरूजी, नारायण स्मरण।

केन्द्रीय धारा-सभामें गत २८ नवम्बरका हिन्दूकोड सम्बन्धी आपका वक्तव्य मैंने गम्भीर वेदना और खेदके साथ पढ़ा। इसमें आपने घोषणाकीथी कि यह बिल सरकारके बने रहने अथवा पदच्युत होनेका प्रश्न है', आपने यह भी कहा था कि 'इसे यथासम्भव अधिकतम बहुमतसे स्वीकृत कराये जानेका यत्न किया जायेगा, पर यदि ऐसा न हो सका तो सरकार इसे इसी रूपमें कार्यान्वित करेगी।' क्रमशः प्रत्येक प्रश्न पर निम्नलिखित विचार उपस्थित करता हूं।

वर्त्तमान धारा-सभाने हिन्दूकोड बनानेके लिये मतदाताओंका संकेत कभी नहीं प्राप्त किया। ऐसी स्थितिमें किसी जातिके सामाजिक कानूनको, जिस पर मतदाताओंको अपनी सम्मति प्रकट करनेका अवसर न मिला हो, सरकारके प्रति विश्वास या अविश्वासका आधार मान लेना वैधानिक अत्याचार है।

किसीभी शासनारूढ़ सरकारको अपने संकेत पर नाचनेवाले अनुगामी सदा मिल ही जाते हैं, किन्तु उनकी स्वीकृति कभी सार्वजनिक स्वीकृति नहीं हो सकती और ऐसे सन्दिग्ध उपायोंका आश्रय लेना नीतिमत्ता नहीं। आपकी यह धमकी है कि 'सर्व-सम्मत समझौता न होनेपर सरकार इसे इसी रूपमें पास कर देगी', पर यह दबाव हार्दिक सार्वजनिक स्वीकृतिको असम्भव बना देता है। हिन्दूकोड हिन्दूधर्म, संस्कृति और समाज-रचनाके मूलपर कुठाराघात है। इसने देशमें तीव्र विरोध जागृत कर दिया है। अमीर, गरीब, नर, नारी आदि सभी वर्गोंने इसकी घोर निन्दाकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। सनातनी, आर्यसमाजी, सिख, जैन आदि सभी सम्प्रदायोंके व्यक्तियोंने इसका संघटित विरोध किया है।

सरकारकी हिन्दुओंके प्रति सहानुभूति-शून्य नीतिसे देश भरमें अत्यधिक क्षोभ है। स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्रीय सरकारका सर्वप्रथम कर्त्तव्य गो-वधको रोकना था। गौओंकी हत्या हिन्दूओंके हार्दिक भावोंको गहरी चोट पहुँचाती है। इन भावोंकी अवहेलना कर सरकारने न केवल गो-वध जारी रखा प्रत्युत बम्बईके पास वह एक नया बूचड़खाना खोलनेका आयोजन कर रही है। आप यह जानते ही होंगे कि सरकारके इन और ऐसे ही कर्त्तव्य-शून्य और कर्त्तव्य-विरुद्ध कृत्योंसे जिनमें काश्मीर समस्या, शरणार्थी समस्या, तथा आर्थिक समस्या मुख्य हैं, जनमत अत्यन्त क्षुब्ध है। आपको यह भी स्मरण होगा कि अप्रैल १९४७ में एक शान्तिपूर्ण आन्दोलन धर्म युद्धके

नामसे चला था जिसके उद्देश्य—गोवध बन्दी, भारत-विभाजनका विरोध, और उसकी अखण्डता स्थापनका अनुरोध तथा धार्मिक विषयोंमें सरकारी हस्तक्षेप न करना, मुख्य थे। मथुरा म्युनिसिपैलिटी द्वारा गोवध बन्दीका प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने एवं विशेषतया देश विभाजन-जन्य अपनी नवजात स्वतन्त्रताकी शिशु-सरकारकी कठिनाइयोंका ध्यान रखकर उस समय वह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। तभीसे सरकारके हाथ दृढ़ करने और गोवध बन्दी तथा हिन्दूकोड बिल विरोधकी मांग वैधानिक रूपसे सरकारके आगे रखनेके लिये जनता को मैं प्रेरित करता रहा।

वैधानिक मार्गानुसरण केवल इसी विश्वास पर किया गया था कि सरकार इस प्रकार उपस्थित मांगों पर अवश्य ध्यान देगी और साथ ही मैंने सरकारद्वारा हिन्दूकोड, गोहत्या बन्द किये जाने पर अपने आपको कांग्रेस प्रचारार्थ गांव गांव घूमनेके लिये प्रस्तुत किया। किन्तु सरकारकी वज्र तुल्य नीतिने, जिसे धारा-सभाके वक्तव्यने प्रकट कर दिया, मेरे विश्वासको तीव्र धक्का लगाया है। यदि सरकार वैधानिकताका मूल्य न समझे तो क्या वैधानिक आंदोलनसे कोई लाभ है, विशेषतया जब कि धर्मनिरपेक्ष कही जाने वाली सरकार जनताके सबसे बड़े भागके धार्मिक विषयोंमें कानून बनाना अपना अधिकार मान ले?

अतः मैं व्यक्तिगत रूपसे निवेदन करता हूं कि जनताकी मांगको मानकर हिन्दूकोड बिल लौटा लें और गोवध शीघ्र ही सर्वथा बन्द कर दें। मैं उन लोगों की करुण पुकार आपके कानों तक पहुँचा रहा हूं जिन्होंने आपको इतने ऊंचे पद पर बैठाया है। मैं हृदयसे चाहता हूँ कि आप इस पुकार पर ध्यान दें और शीघ्र उचित कार्यवाही करें। यदि दुर्भाग्यवश आपने कुछ न किया तो मैं हृदयमें गम्भीर निराशा रखकर जनताको शान्ति पूर्ण अहिंसात्मक आन्दोलन करनेका आदेश देनेके लिये बाध्य हो जाऊंगा, जिससे लोकतन्त्र विरुद्ध, धर्म निरपेक्षता-रहित और उत्तरदायित्व-शून्य सरकारके हृदयको जनताके कष्ट और तपस्यासे पिघलाया जा सके।

यह पत्र मैं अपने देश, अपनी सरकार और समस्त विश्व पर मण्डराने वाली विपत्तियोंके निवारण और सबके कल्याणकी भावनासे प्रेरित हो आपको भेज रहा हूँ।

अखिल भारतीय धर्म संघ,
निगमबोध घाट,
दिल्ली।
ता० १५-१२-४९

भवदीय—
करपात्री स्वामी

महापरिषद् संवाद।

आर्यमहिला—महाविद्यालयका १७ वाँ वार्षिकोत्सव

जगत्पावनी ब्रह्ममयी महामाया श्रीसरस्वती देवीकी अपार करुणासे स्थानीय श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद् द्वारा संस्थापित और संचालित श्रीआर्यमहिला महाविद्यालय (इन्टर कालेज) का सत्रहवाँ वार्षिकोत्सव आर्यमहिला महाविद्यालयके विस्तीर्ण और रमणीय भवनमे ता० ५, ६ और ७ नवम्बरको बड़े उत्साह और सफलताके साथ मनाया गया। नगरके अनेक प्रतिष्ठित पुरुष और महिलाएँ उपस्थित थीं। सभा भवन और उद्यान बन्दनवार, तोरण तथा ध्वजाओंसे सजाया गयाथा। दर्शकोंसे भवन भर गया था। दूसरी ओर विद्यालयकी छात्राएँ और

अध्यापिकाएँ बैठी थीं। सब प्रबन्ध प्रशंसनीय था।

ता० ५ को युक्त प्रान्तके गवर्नर महामान्य सरहोमी मोदी अपनी पत्नीसहित ठीक ४ बजे विद्यालयमें पधार गये थे। छात्राओंकी हस्तकला प्रदर्शिनीका अवलोकन करते हुए उन्होंने ४-१५ बजे सभाभवनमे प्रवेश कर सभापतिके आसनको अलंकृतकिया। छात्राओंने प्राथनाके अनन्तर स्वागत-गान गाकर श्रीहोमी तथा लेडी होमीको गोटेकी सुन्दर मालाएँ पहनायीं। अनंतर संस्थाकी संस्थापिका तथा संचालिका श्रीमती विद्यादेवीजीने एक अभिनन्दनपत्र पढ़कर उनको अर्पण किया, जो अन्यत्र प्रकाशित हुआ है। फिर विद्यालयकी प्रधानाध्यापिका (प्रिंसिपाल) श्रीमती सुन्दरीदेवीने संस्थाको गत १७ वर्षको संक्षिप्त कार्य विवरण में बताया कि, इस विद्यालयसे सात सौसे अधिक आर्य बालाएँ लाभ उठा रही हैं। साधारण व्यावहारिक शिक्षाके साथ ही साथ धार्मिक शिक्षाका इस विद्यालयमें विशेष रूपसे प्रबन्ध किया गया है, यही इस विद्यालयकी विशेषता है।

विद्यालयके अनेक उपयुक्त विभाग हैं, जिनमें नार्मल विभाग बहुत ही महत्वका था। शिक्षा विभागके नियमानुसार दो वर्ष अध्यापन कलाकी शिक्षा प्राप्तकर छात्राएँ एच० टी० सी० की परीक्षामें सम्मिलित होतीथीं। अबतक इस विभागके द्वारा डेढ़सौसे अधिक अध्यापिकाएँ तैयार हुई, जो प्रान्तके विभिन्न भागोंमें सफलतापूर्वक अध्यापनका कार्य कर रही हैं। परन्तु खेद का विषय है, सरकारी सहायता बहुत कम मिलनेसे इस वर्षसे इस विभागको बन्द करना पड़ रहा है।

विद्यालयके साथ एक छात्रा-निवासभी है, जिसमें प्रत्येक छात्रा प्रतिशुक्रवारको अन्न-पूर्णा प्रतिमा और तुलसी पूजन किया करती हैं। विद्यालयके अन्नपूर्णा मन्दिरमें आरतीके समय प्रतिदिन छात्राएँ नियमित रूपसे स्तुति तथा प्रार्थनामें सम्मिलित होती हैं। प्रयत्न यह किया जाता है कि, छात्रावास और विद्यालयका वातावरण पूर्ण धार्मिक बना रहे तथा यहांसे उत्तीर्ण छात्राएँ उत्तम गृहिणी और आदर्श माताएँ हों। छात्राओंकी संख्या बढ़जानेसे छात्रा-निवासके बढ़ानेकी नितान्त आवश्यकता है।

छात्राओंका स्वास्थ्य सुधारनेके लिये विद्यालयके क्रीडाङ्गणमें छात्राओंके खेलने-कूदनेकी व्यवस्था भी की गयी है। एक पुस्तकालय भी है, जिसमें कई हिन्दी-अंग्रेजीके समाचार पत्र आया करते हैं। छात्राओंके आने जानेके लिये मोटर बसका प्रबन्ध है। एक छात्रा सहायक कोष स्थापित किया गया है, जिसके द्वारा बुद्धिमती निर्धन ८० छात्राओंको सहायता दी जाती है। एक छात्रा परिषद् छात्राओंने ही बनायी है जो नारीसमाजकी सेवाके लिये सन्नद्ध रहती है और वादविवाद, अन्त्याक्षरी, धार्मिक विषयोंकी आलोचना, अभिनय आदि मनोरंजक कार्यक्रम किया करती है।

विद्यालय और छात्रा—निवासके भवन बढ़ाने तथा अन्य आवश्यक सामग्रीके जुटानेके लिये आर्थिक अड़चन बहुत अखर रही है। आजकी परिस्थितिमें चन्देसे धन एकत्र करना कठिन हो गया है और सरकार आंख कान बन्द किये हैं। नयी सहायता देना दूर रहा, जो सहायता सरकार देती है, उसमेंसे भी बहुत सा रुपया बकाया पड़ा है। इस एकमात्र और उपयुक्त संस्थाकी उपेक्षा करना सरकारी शिक्षा विभागके कर्णधारोंको शोभा नहीं देता। विवरण पढ़ाजानेके उपरान्त संगीत वर्गकी कुछ बालिकाओंने भूपकल्यान रागका ध्रुवपद गाकर सुनाया।

तत्पश्चात् श्रीमोदीजीने छोटासा भाषण किया, जिसमें संस्थाके प्रति उन्होंने पूर्ण सहानुभूति प्रकटकी। आपने कहा:—"मैं जिस प्रान्तमें रहता हूं, वहाँ जिस भाषामें आपने मुझे स्वागत किया है, वह हिन्दी भाषा नहीं बोली जाती। मुझे खेद है कि, मैं हिन्दीमें नहीं बोल सकता।

हिन्दी राष्ट्रभाषा होनेजा रही है, अतः मैं उसको सीख लेनेका प्रयत्न करता हूं। इस प्रान्तमें जहाँभी मैं गया वहांकी निर्धनताकी परिस्थिति देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ; परन्तु जब ऐसी संस्था देखताहूं, जहाँकी सुव्यवस्था प्रशंसनीय है। प्रसन्नताभी होती है। मुझे इन प्रसन्न और साफ़ सुथरी बालिकाओंको देखकर बड़ा आह्लाद हो रहा है। बड़ी कठिनाईसे हमें स्वतन्त्रता मिली है और देशोन्नतिके लिये हमें आगेभी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा बालिकाओंको हस्त कौशल और पदार्थ विज्ञानकी भी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे आगे चलकर वे आदर्श गृहिणी और माताएँ बन सकें तथा अपना और अपने बच्चोंका जीवन सुखमय बना सकें आपने मेरा स्वागत किया, इसके लिये मैं कृतज्ञ हूं। इस संस्थाके साथ मेरी सदा सनानुभूति बनी रहेगी' '।

अन्तमें परिषद्के मन्त्रीने संस्थाका संक्षिप्त इतिहास निवेदन करते हुए श्रीमोदीजीको धन्यवाद दिया और बालिकाओंके 'वन्देमारम्'के साथ पहले दिनका कार्य समाप्त हुआ।

दूसरा दिन

दूसरे दिन ता० ६ को दिनके २ बजेसे निश्चित कार्यक्रम आरंभ हुआ। मनोनीत सभापति हिजहाईनेस श्रीमान् काशीनरेश महाराज विभूतिनारायणसिंहजी बहादुर ठीक २ बजे महाविद्यालयमें पधारे, जिनका विद्यालयके द्वारपर सञ्चालकोंने बड़े प्रेमसे स्वागत किया महाराजने आगे बढ़कर विद्यालयकी छात्राओंके हस्त कौशलकी प्रदर्शनीका निरीक्षण किया और सभाभवनमें पधार कर सभापतिका आसन सुशोभित किया। कलसे भी आज दर्शकोंकी संख्या अधिक होनेसे उत्सवमें बड़ी शोभा आगयी थी। वातावरण प्रशान्त और प्रसन्न था। आरम्भमें मङ्गलाचरण स्वागत गान होने पर संस्थाकी सञ्चालिका श्रीमती विद्यादेवीजीने एक अभिनन्दन-पत्र पढ़ा, जो अन्यत्र प्रकाशित किया गया है। तदनन्तर विद्यालयकी प्रधानाध्यापिका श्रीमती सुन्दरीदेवी एम. ए. ने विद्यालयका कार्य विवरण पढ़ सुनाया और श्रीमान् महाराजबहादुरने अपनेहाथोंसे सुयोग्य छात्राओंको पुरस्कार देकर उनका उत्साहवर्धन किया तदनन्तर बालिकाओंका संस्कृतमें कथोपकथन हुआ। विवाद का विषय था, 'हिन्दूकोडबिल'। आर्य बालाओं और सुधार वाली बालाओंमें वाद-विवाद होनेपर दोनोंपक्ष इस बात पर एक मत हो गये कि, सर्व साधारणसे प्रार्थनाकीजाय कि, हिन्दू कोडबिल रद् कराके आर्यमहिलाओंको इस संकटसे बचाया जाय। श्रोताओंको इस वाद—विवादमें बड़ा आनन्द आया। छोटी छोटी बालिकाओंने 'यदि आज मैं कलेक्टर होता!' इस विषयपर बड़ा ही सरस और व्यंग पूर्ण कविता पाठ किया। ध्रुव पद-गान और भजन गाये जानेके पश्चात् एक अंग्रेजी और एक हिन्दी लघु अभिनय दिखाया गया। अंगरेजी अभिनयका विषय था; मेवाडकी कृष्णकुमारीका विषपान। उसने आर्यमर्यादाकी रक्षामें विष पी लिया, किन्तु यवनोंसे सम्बन्ध कर अपने पवित्र कुलको कलङ्क नहीं लगने दिया। हिन्दीमें पन्नादाईका अभिनय किया गया उस स्वामिभक्त सेविकाने राजकुमारकी रक्षामें अपने पेटके बच्चेका बलिदान करदिया दोनों अभिनय बड़े ही प्रभावोत्पादक थे। बालिकाओंका सम्मिलित वाद्यवादन (आर्केस्ट्रा) और गर्बानृत्यभी अत्यन्त आकर्षक और प्रशंसनीय हुआ। तदुपरान्त श्रीमान् काशी नरेशका सुश्राव्य और मननीय भाषण हुआ।

अन्तमें श्रीमान् काशी नरेशको धन्यवाद दिया गया तथा सम्मिलित बालिकाओंके नृत्य और 'वन्देमातरम्' गीत गाया जानेपर उत्सवके द्वितीयदिनका कार्य सानन्द समाप्त हुआ।

तीसरादिन

तृतीय दिवस केवल महिलाओंके लिये था

उत्सव मनानेवाली विद्यालय की छात्राएँ, अध्यापिकाएँ और कार्य सञ्चालिकाएँ तो थीं ही, दर्शिकाओंमें पर नगरकी एक हज़ारसे भी अधिक महिलाएँ बहुत उत्साहसे सम्मिलित हुई थीं। इन देवियोंकी उपस्थितिसे सभाभवन लक्ष्मीविलास जैसा प्रतीत होता था। अपनी जाति (नारी जाति) की सर्वांगीण उन्नतिके लिये जो संस्था स्थापित हुई और कार्यकर रही हो, उसके उत्सवमें प्रतिष्ठित गृहदेवियोका सोत्साह भागलेना उनके लिये भूषणकी बात थी और यह स्वाभाविक भी था।

सभानेत्रीका आसन सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् गोविन्ददास जौहरीजीकी धर्मपत्नीने ग्रहण किया था। ठीक दो बजे आपका स्वागत किया गया और आपने बड़ीयोग्यताके साथ सभाका कार्य सञ्चालित किया। मङ्गलाचरण और स्वागतगानके पश्चात् सभामें श्रीमती विद्यादेवीजीने यह प्रस्ताव उपस्थित किया:—"काशीकी आर्यमहिलाओंकी यह महासभा विधानपरिषदमें विचाराधीन हिन्दुकोडबिलका तीव्र प्रतिवाद करती है। सभाकी सम्मतिमें यह बिल पास होजाने पर हमारी प्राचीन संस्कृति, हमारा अतुलनीय पातिव्रत्य धर्म, हमारा गौरव और हमारी प्राचीन परम्परा नष्ट होजायगी। अतः यह सभा केन्द्रीय सरकारसे अनुरोध करती है कि, वह इस कालेकानूनको तत्काल रद्द करदे। प्रस्तावका श्रीमती सुन्दरी देवीने समर्थन किया और श्रीमती स्वदेश कुमारी गोकुलदास जौहरी, श्रीमती गोविन्दी बाई और श्रीमती तारा देवीके अनुमोदन करने पर सर्व सम्मतिसे प्रस्ताव पास हो गया।

तदुपरान्त विद्यालयकी बालिकाओंने 'मीराबाई' का सुन्दर अभिनय किया। एक तो मीराबाईका चरित्र ही अलौकिक है, दूसरे उनका अभिनय, बालिकाओंने किया, इससे अभिनयका सौन्दर्य बहुत बढ़ गया। अभिनयकी शिक्षा सुचारु रूपसे होनेके कारण सब अभिनेत्रियोंके काम प्रशंसनीय हुए। कुछ अभिनेत्रियोंको प्रतिष्ठित महिलाओंने पुरस्कारसे पुरस्कृत भी किया। अन्तमें सभानेत्रीको धन्यवाद, गर्वानृत्य और 'वन्देमातरम्' गीत गाया जानेके अनन्तर आजका उत्सव कार्य समाप्त हुआ, इस प्रकार आर्य महिला महाविद्यालयका १७ वाँ वार्षिक-उत्सव बड़े समारोह, उल्लास और सफलताके साथ सम्पन्न हुआ। इसे सफल बनानेमें प्रिन्सिपाल सुन्दरी देवी और उनकी सहकारिणियोंने बहुत परिश्रम किया, जिसके लिये वे प्रशंसाकी पात्र हैं।

—*—

अपनी बात

भावी कर्तव्य

गत २८ नवम्बरको केन्द्रीय धारासभामे श्रीमान् पं० जवाहर लाल नेहरूजीने हिन्दूकोड बिलके सम्बन्धमे जो अपना वक्तव्य दिया था, उसके द्वारा उन्होने उक्त बिलको पास करानेके लिये अपनी सरकारकी बाजी लगादी थी। उन्होंने कहा था कि, यदि यह बिल स्वीकार नहीं किया गया तो उनकी सरकार पद त्याग करेगी। नेहरूजीके इस पदत्यागकी धमकीसे ही यह निःसन्देह सिद्ध होता है कि, उनको धारासभाके सदस्योंमें भी इस बिलके सम्बन्धमें बहुमत पानेमे सन्देह था। फल वही हुआ जो नेहरूजी चाहते थे और धारासभामें बहुमतसे हिन्दूकोड बिलपर विचार करना स्वीकृत हो गया। पद त्यागके पिस्तौलसे नेहरूजीने बाजी जीत ली। बिलके समर्थनमें मत देने वाले सदस्योंने अपने कोटि-कोटि देशवासियोंका मत तो नहीं दिया, किन्तु अपना व्यक्तिगत मत दिया। और करोड़ों देशवासी बन्धुओंके साथ विश्वासघात किया। कौंसिल भवनके सामने शान्ति पूर्णभावसे अपना विरोध-प्रदर्शनके लिये एकत्रित एक बहुत बड़ी भीड़ पर जिसमें अपने छोटे-छोटे शिशुओंको गोद लिये बड़ी संख्यामें महिलाएं भी थीं, पुलिस द्वारा लाठी प्रहार कैसा

निन्दनीय कृत्य भी कराया गया इस तरह जनतन्त्र सरकार द्वारा सशस्त्र पुलिसके सख्त पहरेके भीतर जनतन्त्रताका यह अभिनय समाप्त हुआ। अब हिन्दूसमाजको सोचना है कि, अपने धर्म और संस्कृति रक्षाके लिये आगे उसका क्या कर्तव्य है।

सामयिक सलाह

देशवासियोंकी इच्छाके विरुद्ध नेहरूजीने देशका विभाजन कराया, उसके परिणाम स्वरूप लाखों स्त्रियोंका सतीत्व लूटा गया, लाखोंने अपनी लज्जा तथा सतीत्व बचानेके लिये अग्नि तथा जलमें अपने प्रिय प्राणोंकी बलि दी, हजारों आज भी मुसलमानोंके घरमें सड़ रही है। लाखों-लाखों मनुष्योंको जीवनसे हाथ धोना पड़ा और लाखों अपना सर्वस्व खो कर शरणार्थी बन गये। विभाजनके कारण यह जो जीवन, धन, धर्म, और सन्मानकी क्षति हुई, उसको क्या नेहरू सरकार कभी भी पूरा करनेकी क्षमता रखती है? देशके विभाजनके इस भयङ्कर परिणामकी विभाजनके पहले नेहरूजी तथा उनके समर्थकोंने कभी कल्पना भी नहीं की होगी, परन्तु अपने हितैषियोंकी सलाहको न मान कर यह जो अमाजनीय भूल की गयी और उसका जो परिणाम हुआ, उसे देखनेके पश्चात् नेहरूजीने अपने भाषणमें कहा था कि देशके विभाजनके पहले इस विषयमें जनताका मत लिया गया होता तो अच्छा होता। नेहरूजीकी ऐसी उक्तिसे अनुमान होता है कि, अब वे उस भूलके लिये पछताते हैं। परन्तु अब पछतानेसे क्या होता है। सर्वनाश जो होना था, वह तो हो चुका। हिन्दूकोड बिलके सम्बन्धमें भी नेहरूजी तथा नेहरू सरकार इससे भी भयङ्कर भूल करने जा रही है। नेहरूजी अपनी व्यक्तिगत लोक—प्रियता तथा अपनी सरकारकी सारी शक्ति लगाकर हिन्दूकोडबिल पास करनेपर तुले हुए हैं, जैसा कि उनके ता० २८ नवम्बरके संघधारासभामें दिये हुए वक्तव्यसे स्पष्ट है। इस समय वे अपने हितैषियोंकी सलाह सुननेको भी तैयार नहीं हैं, परन्तु जब हिन्दूकोड बिल कानून बन कर हिन्दू जनतापर लागू हो जायगा और उसका जो भयङ्कर परिणाम होगा, उसका सारा उत्तर दायित्व नेहरूजी और उनकी सरकारपर होगा। सम्भव है, तब नेहरूजीको इसके लिये भी पश्चाताप हो, किन्तु इस बिलके द्वारा हिन्दूसमाजका जो सर्वनाश होगा, नेहरूजीके पछतानेसे उसकी पूर्ति क्या कभी हो सकेगी? आज नेहरू सरकार अपनी सारी शक्ति लगाकर भी विभाजनसे हुई क्षतिकी आंशिक पूर्ति करनेमें भी सक्षम हो सकी है? यदि नहीं, तो हमारा नेहरूजी तथा उनकी सरकारसे सविनय सादर साग्रह अनुरोध है कि ऐसी भूल फिर न दुहरावें और अब भी अपना अनुचित-हठ छोड़कर हिन्दूकोड जैसा धर्मघाती तथा हिन्दू जातिका मूलोच्छेद करनेवाला बिल वापस ले लेवें। इससे नेहरूजीकी मान-हानि नहीं होगी अधिकन्तु उनके देशबन्धुओंके हृदयमें उनका सन्मान और भी बढ़ेगा। नेहरूजी महात्मा गान्धीके उत्तराधिकारी कहे जाते हैं, और प्रायः अपने भाषणोंमें जनताको गान्धीजीके पथ पर चलनेके लिये परामर्श भी दिया करते हैं अतः उन्हें स्वयं गान्धीजीके पथका अनुसरण करना चाहिये। गान्धीजीमें सबसे बड़ी महत्ता और महात्मापनयह था कि वे अपनी भूल स्वीकार करनेमें कभी भी हिचकते नहीं थे। कई बार उन्होंने अपनी भूलें स्वीकार भी की। क्या नेहरूजी इसका अनुसरण करेंगे? आज सब श्रेणीकी जनतामें सरकारके प्रति क्षोभ और असंतोष छाया हुआ है, सरकारके सामने बड़ी बड़ी विकट समस्याएं भी हैं, ऐसे समयमें अनावश्यक अयाचित हिन्दूकोड बिल जिसका देशके कोने-कोनेसे व्यापक तथा प्रबल विरोध हुआ तथा होता रहा है, पास करना न तो नीतिज्ञता, न धर्मनिरपेक्षता, न लोकतन्त्रता और न न्याय ही है।

सतीका तेज

एक ओर हिन्दु संस्कृति और धर्म मिटानेके लिए हिन्दूकोड बिल बनाया जारहा है और समानाधिकारके लिए स्त्री समाजको भरपूर बहकाया जारहा है। दूसरी ओर भारतीय देवियां अपना अद्भुत चमत्कार दिखाकर लोगोंको आश्चर्यमें डालती रहती हैं। अभी तारीख २२ दिसम्बरका समाचार है कि महोली (सीतापुर) में पण्डित सरयूप्रसादके दामादकी मृत्यु होजानेपर उनकी नवविवाहिता पत्नीने सती होनेकी इच्छा प्रगट की। लोगोंके समझाने तथा पुलिस अधिकारियों द्वारा अग्नि देनेसे रोकने पर भी वह देवी अपने मृत पतिका सिर गोदमें लेकर चितामें बैठ गई। कुछ ही क्षणोंमें सभी उपस्थित जनताके देखते-देखते अग्निदेव स्वतः प्रगट हो गए और पति सहित सतीको आत्मसात करलिया। यह घटना सतीके सुसराल चमरखरमें हुई। यह घटना अमृत बाजार पत्रिका तथा सन्मार्गके तारीख २४ दिसम्बरके अंकमें प्रकाशित हुई थी। धन्य है ऐसी देवियोंको जिन्होंने भारतका मस्तक आजतक जगतमें सबसे ऊंचा रखा है।

महापरिषद्का समयोचित सुझाव

श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की प्रबन्ध समितिकी ता० १७।१।५० की बैठकमें निम्नलिखित मन्तव्य स्वीकृत हुआ है—

"सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की असीम अनुकम्पासे हमारा भारतदेश ता० २६।१।५० को स्वतन्त्र जनतन्त्र राष्ट्र होने जा रहा है। भारतके भावी इतिहासमें यह बड़े सौभाग्य, गौरव तथा आनन्दका दिन होगा। इस शुभ अवसरपर श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्‌की यह कार्यकारिणी समिति माननीय पं० जवाहरलाल नेहरू तथा नेहरूसरकारसे साग्रह प्रार्थना करती है कि, इस अद्वितीय आनन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें हिन्दूकोड-बिल जो हिन्दू जाति तथा हिन्दूधर्मका घातक है और नेहरू-सरकारकी धर्म-निरपेक्षतानीतिके सर्वथा विपरीत है, उसे वापस लेकर हिन्दूजनतामें व्याप्त घोर असंतोष तथा क्षोभको दूर करें।"

क्या हम आशा करें कि, जनतन्त्र नेहरूसरकार जनताकी भावनाओंका सम्मान करेगी और इस आनन्दोल्लासके अवसरपर हिन्दूकोड बिल वापस लेकर जनतन्त्रताका परिचय देगी?

॥ श्री जगदम्बायै नमः ॥

श्री धर्मसेविका विद्यापीठ, काशी।

द्विजातिकी बाल-विधवाओंके लिये अभूतपूर्व अवसर

हमारे देशमें अल्पवयस्का विधवाओंका जीवन एक प्रकारसे भार समझा जाता है, पर अब ऐसा समझनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्‌ने जो अखिल भारतीय सनातनधर्मावलम्बिनी महिलाओंकी एकमात्र संस्था है, ऐसी विधवाओंके लिये काशीमें "धर्मसेविका विद्यापीठ" नामक एक विभागकी स्थापना सन् १९४१ में की। यह विद्यापीठ विधवा बालिकाओंको हिन्दी, संस्कृत तथा शास्त्रीय विषयोंमें पूर्ण दक्ष और चतुर बनाकर उन्हें देश-सेविका एवं धर्मसेविकाके रूपमें प्रस्तुत कर रहा है। शिक्षाका समय चार वर्षका है। सुयोग्य छात्राओंके भरण-पोषणका सब व्यय संस्था देती है। भर्ती होनेवाली छात्राओंको हिन्दीका अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। यह संस्था अपने ढङ्गकी बिल्कुल अद्वितीय और अभूतपूर्व है। पढ़ाई तथा रहने आदिकी भी बड़ी ही उत्तम व्यवस्था है। शिक्षा समाप्तिके पश्चात् धर्मसेवा करते समय धर्मसेविकाओंको २०) से ५०) मासिक तक आजीवन पुरस्कार दिया जायगा। विशेष विवरण जाननेके लिए नीचे लिखे पतेपर पत्र व्यवहार कीजिये।

उपाधि-परीक्षा-विभाग

विद्यापीठका यह विभाग देशके महिलाओं एवं कन्याओंमें धर्मशिक्षा प्रचारके लिये स्थापित किया गया है। जो स्त्रियाँ घरके बाहर जाकर धर्मशिक्षा प्राप्त करने अथवा परीक्षा देकर उपाधि प्राप्त करनेमें असमर्थ है, उनके लिये यह विभाग स्वर्ण-सुयोग प्रदान करनेवाला है। वे इस विभाग-द्वारा निर्धारित कुछ धर्म-पुस्तकोंको पढ़कर अपने घर बैठी ही परीक्षा देकर 'धर्मदीपिका', 'धर्म-कोविदा' तथा धर्मशारदा' आदिकी उपाधियाँ प्राप्त कर अपने जीवनको बहुमूल्य बना सकती हैं।

इसके केन्द्र सर्वत्र खोले जा रहे हैं। स्त्री-शिक्षा-संस्थाओंको इस विभागका परीक्षा-केन्द्र अपने यहाँ खोलकर धर्म-शिक्षाके प्रचारद्वारा शिक्षा-सम्बन्धी असम्पूर्णता दूर करना चाहिये।

विशेष जानकारीके लिये नियमावली माँगिये—

संचालिका—

श्रीधर्मसेविका विद्यापीठ,

श्री आर्यमहिला-कार्यालय,

जगतगंज, बनारस कैंट।

मुद्रक व प्रकाशक—श्रीमदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगञ्ज, बनारसने हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, काशीमें छपवाकर प्रकाशित किया।

श्री आर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्‌की सचित्र मासिक मुखपत्रिका
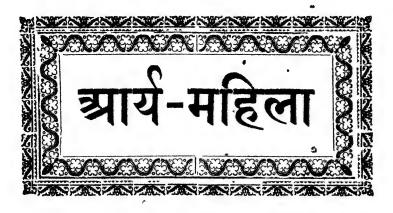
आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष २००६ ❀ वर्ष—३१, संख्या १, २, ३ ❀ सितम्बर-नवम्बर १९४९

,गे,

धा रखी

प्रतिमास

"

जय जय गिरिबरराज किसोरी।
जय महेस मुख चन्द चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता।
जगत जननि दामिनि दुति गाता॥
नहिं तव आदि मध्य अवसाना।
अमित प्रभाउ बेद नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि।
बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी।
बरदायिनी पुरारि पिआरी॥

प्रधान सम्पादिका :—
श्रीमती सुन्दरी देवी, एम. ए., बी. टी.

विषय-सूची

आर्य्यमहिलाके नियम

१—'आर्य्यमहिला', श्री आर्य्यमहिलाहित-कारिणी-महापरिषद्की मुखपत्रिका है। महिलाओं-में धार्मिक शिक्षा, उनकी उचित सुरक्षा, आदर्श सतीत्व एवं आदर्श मातृत्व आदिका प्रचार करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है।

२—महापरिषद्के सभी श्रेणीके सदस्योंको पत्रिका बिना मूल्य भेजी जाती है। साधारण सदस्यताका चन्दा पाँच रुपया वार्षिक है, जो अग्रिम मनीआर्डरद्वारा कार्यालयमें आ जाना चाहिये।

३—पत्रिका प्रतिमासके प्रथम सप्ताहमें प्रकाशित होती है। इसका नववर्ष वैषाखसे प्रारम्भ होता है। सदस्य बननेवालोंको उस वर्षके पूरे अङ्क दिये जाते हैं। यदि कोई संख्या किसीके पास न पहुँचे तो १५ तारीख तक प्रतीक्षा करनेके पश्चात् तत्काल कार्य्यालयको सूचना देनी चाहिये और अपने डाकखानेसे जाँच करके वहाँका मिला हुआ उत्तर भी साथ ही भेजना चाहिये। समुचित समयपर सूचना न मिलनेपर कार्यालय दूसरी प्रति भेजनेमें असमर्थ होगा।

४—सदस्योंको अपना पूर्ण पता और सदस्य-संख्या स्पष्ट लिखनी चाहिये, अन्यथा यदि पत्रो-त्तरमें बिलम्ब होगा तो कार्यालय उसका उत्तरदायी न होगा।

५—किसी सदस्यको यदि एक या दो मासके लिये पता बदलवाना हो तो डाकखानेसे उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिये, यदि सदा अथवा अधिक कालके लिये बदलवाना हो तो उसकी सूचना कार्यालयमें देनी चाहिये।

६—सदस्यताका चन्दा तथा प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र 'व्यवस्थापक आर्यमहिला,' जगतगञ्ज, बनारस (कैण्ट)के पतेसे आना चाहिये।

७—लेखादि कागजपर एक ही ओर स्पष्ट रोशनाईसे लिखा जाना चाहिये। कागजके दोनों ओर संशोधनके लिए पर्याप्त जगह छोड़ देनी चाहिये।

८—किसी लेख अथवा कविताको प्रकाशित करने या न करने, उसे घटाने, बढ़ाने तथा लौटाने या न लौटानेका सारा अधिकार सम्पादकको है।

९—क्रमशः प्रकाशित होनेवाले लेख पूरे आने चाहिये। ऐसे लेख जबतक पूरे प्राप्त नहीं होंगे, प्रकाशित नहीं किये जायँगे।

१०—लेख, कविता, पुस्तक तथा चित्र आदिकी समालोचनाके लिये दो-दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

११—अस्वीकृत लेख वही लौटाये जायँगे, जिनके लिए टिकट भेजा जायगा।

विज्ञापनदाताओंके लिए

विज्ञापनदाताओंके लिए काफी सुविधा रखी गयी है। विवरण निम्न भाँति है।

कवर पेजका दूसरा पृष्ठ	२५)	प्रतिमास
" " तीसरा पृष्ठ	२५)	"
" " चौथा पृष्ठ	३०)	"
साधारण पूरा पृष्ठ	२०)	"
" ½ पृष्ठ	१६)	"
" ¼ पृष्ठ	८)	"

उपरोक्त दर केवल स्थायी विज्ञापन-दाताओंके लिये निर्द्धारित है। विज्ञापनदाताओंको छपाईका मूल्य अग्रिम भेजना होगा।

चौथाई पेज तक विज्ञापन छपानेवालोंको "आर्य्य-महिला" बिना मूल्य मिलती है।

कोड़पत्र

कोड़पत्रकी बँटाई प्रतिमास २५) रुपया है। परन्तु विज्ञापन चार पृष्ठोंसे अधिक नहीं होना चाहिये। अधिकका चार्ज अलग होगा।

स्त्रियोपयोगी विज्ञापनोंमें विशेष सुविधा दी जाती है। अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते।

अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा । भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

भाद्रपद, सं० २००६ | वर्ष ३१, संख्या ६ | सितम्बर, १९४९

कौन जतन विनती करिये ।
निज आचरन विचारि हारि हिय मानि जानि डरिये ।
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिये ॥
जाते बिपति-जाल निसिदिन दुख तेहि पथ अनुसरिये ।
जानत हूँ मन वचन करम परहित कीन्हे तरिये ॥
सो विपरीत देखि परसुख बिनु कारन ही जरिये ।
श्रुति पुरान सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये ॥
निज अभिमान मोह ईर्षा बस तिनहि न आदरिये ।
सन्तत सोइ प्रिय मोहि सदा जाते भवनिधि परिये ॥
कहौ अब नाथ ! कौन बलते संसार-सोक हरिये ।
जब कब निज करुना सुभाव ते द्रवहु तो निस्तरिये ॥
तुलसिदास विस्वास आन नहि कत पचि पचि मरिये ।

गीता और सनातनधर्म

एक महात्माद्वारा

इस समय संसारभरमें क्रान्तिकी लहर उठ रही है। संसारका स्वरूप ही बदल रहा है। उस क्रान्तिकी एक हिलोर भारतद्वीप (हिन्दुस्थान) में भी आगयी है और यहाँ भी राजनीतिक, धार्मिक, समाजिक, साहित्यिकआदि सभी क्षेत्रोंमें क्रान्तिके लक्षण दिखायी देरहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप चारों ओर दुःख ही दुःख छा रहा है। ऐसी अवस्थामें मानवजातिको शान्ति सुखका मार्ग दिखानेवाला यदि कोई ग्रन्थ है, तो वह श्रीमद्भगवद्गीता है। यह एक ही ऐसा सर्वमान्य ग्रन्थ है, जिसमें मनुष्य-जीवनको सफल बनानेवाले सब विषय सन्निविष्ट हैं। इसके सम्बन्धमें किसीका मतभेद नहीं है और सब प्रकारके अधिकारियोंका चित्त यह अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। सनातनधर्म—जो नित्य और जीवमात्रका कल्याणकारी धर्म है, उसके तो सब अङ्गोंका बीज इसमें निहित है। सन्तोषका विषय है कि, भारतके वर्तमान प्रधानमंत्री पं० नेहरूजीने स्वीकार किया है कि, वे गीताके सिद्धान्तोंको मानते और गीताका आदर करते हैं। जब, वे गीताको मानते हैं, तब उन्हें सनातन धर्मके सिद्धान्तोंको मानना ही होगा। क्योंकि सनातनधर्मकी सब बातें गीतामें ग्रथित हैं। यह कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं होगी कि, संसारमें जो कुछ तत्त्वज्ञान है, वह सब गीतामें विद्यमान है और जो गीतामें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। भारतके वर्तमान गवर्नर जनरल श्रीचक्रवर्तीजी भी ब्राह्मण हैं, आस्तिक हैं और गीताके प्रेमी हैं। इस समय क्रान्तिकी लहरसे जो सब क्षेत्रोंमें उलझनें पड़गयी हैं, उनके सुलझानेमें गीता परम सहायक हो सकती है। अतः इसका सर्वत्र जोरोंसे प्रचार होना आवश्यक है। यह कार्य पुस्तकप्रकाशन और व्याख्यानोंद्वारा किया जसकता है, परन्तु यदि स्कूल-कालेजोंमें अनिवार्यरूपसे पाठ्य-पुस्तकोंमें गीताको स्थान दिया जाय, तो उसका प्रभाव स्थायी रहेगा और भावी पीढ़ी अपने लक्ष्यपर डटी रहेगी, लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं होगी। गीतामें सनातनधर्मके सब विषय किस प्रकार आगये हैं, इसका कुछ दिग्दर्शन यहाँ कर देना उचित जान पड़ता है।

गीताका सर्वप्रधान सिद्धान्त है, ईश्वर और परलोकमें विश्वास। जो ईश्वर और परलोकको माने, वही आस्तिक है। जो गीताको मानते हैं, उन्हें ईश्वर और परलोकको मानना ही होगा। जो इन दो बातोंको मानेगा, वह पाप-पुण्य, जन्मान्तर, त्रिगुण, त्रिभाव, वर्णाश्रमआदि सनातनधर्मके मौलिक अङ्गोंको भी मानेगा क्योंकि विश्वव्यापक धर्मका प्रतीक है गीता।

मनुष्यके सबसे पहले जाननेयोग्य यदि कोई तत्त्व है, तो वह ईश्वरतत्त्व है। श्रुतिका भी यही सिद्धान्त है कि, इसके जान लेनेसे सब कुछ जान लिया जासकता है। ईश्वरतत्त्वको गीताने जैसा समझाया है, वैसा अन्य कहीं देखनेमें नहीं आता। गीतोपनिषद्में श्रीभगवान् आज्ञा करते हैं:—

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥

जो परम अक्षर है, अर्थात् जिसका कभी क्षय नहीं होता वही ब्रह्म है और इनका स्वभाव सच्चिदानन्दमय है। यह श्रुति-स्मृति सबकेद्वारा सिद्ध है। सच्चिदानन्दमय स्वभावका भूतोंकी उत्पत्तिकेलिये जो त्याग कराता है, वही कर्म कहाता है।

अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर॥

"जो क्षर (परिवर्तनशील और नाश होनेवाला) भाव है, वह अधिभूत है और पुरुष अधिदैव है। देहधारी जीवोंके देहोंमें मैं ही अधियज्ञरूपसे प्रतिष्ठित हूं।" श्रीभगवान्के इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि, सच्चिदानन्दस्वभाव, निर्गुण निराकार, सदासर्वदा एकरस रहनेवाला भगवान्का जो अक्षर भाव है, वही ब्रह्मभाव कहाता है। उनकी त्रिगुणमयी प्रकृति जब कर्मके द्वारा परिणामिनी होकर पिण्डब्रह्माण्डरूपी सृष्टि प्रकट करती है, तब उस परिणामशील विराट् मूर्तिधारीको अधिभूत कहते हैं और द्रष्टा-दृश्यात्मक जो भगवान्का सगुणभाव है, वह अधिदैवभाव है। इसी अधिदैवभावका नाम सगुण ब्रह्म है। वे ही सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा, स्थितिकर्ता विष्णु और संहारकर्ता शिवकेरूपमें प्रत्येकब्रह्माण्डका सृष्टि-स्थिति-लयकार्य किया करते हैं। श्रीभगवान्के ही अंशरूपसे पुरुषभावापन्न वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, कर्मके नियन्ता यम धर्मराजआदि सब देवपदधारी परमपुरुष सगुण रूपके अङ्गभूत होकर अपने अपने कार्यक्षेत्रमें पुरुष कहाते हैं। इसीसे सांख्य दर्शनने बहु पुरुष माना है। इस पुरुषभावका यहाँतक विस्तार है कि, वह भाव सब पिण्डोंके द्रष्टासे सम्बन्ध रखता है। यदि मनुष्य अपने पिण्डका द्रष्टा है, तो वह पुरुष है और चतुर्विध भूतसंघोंके रक्षक और संचालक जो अलग अलग देवता हैं, वे भी पुरुष कहाते हैं क्योंकि वे जीव असम्पूर्ण हैं। विना रक्षक देवताओंके उनका अस्तित्व ही नहीं रह सकता। यही सब पुरुषोत्तमरूपी भगवानके पुरुषभावका विस्तार है। मनुष्यपिण्डमें जो सच्चिदानन्दरूपी उनकी चेतनसत्ता ओतप्रोतरूपसे विद्यमान है, वही भगवान्का अधियज्ञरूप है। जिस ज्ञानवान् मनुष्यकी कुछ भी दार्शनिक बुद्धि होगी, वह भगवान्के अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत और अधियज्ञ भावको जानकर कृतकृत्य हो जायगा। इस प्रकारका सूक्ष्म विवेचन गीताको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता। धर्मके सब अङ्गोंका विवेचन करनेवाले और भगवान्के स्वरूपका निर्देशक गीता शास्त्रको जो हृदयङ्गम करेगा, उसकेलिये नास्तिकताका अवकाश ही नहीं रह जायगा।

हिन्दू-संस्कृतिमें परलोकवादका रहस्य बहुत ही विस्तारसे पाया जाता है। हमारे वेद पुराण और तन्त्रादिशास्त्र एकवाक्य होकर यह सिद्ध करते हैं कि, हमारा यह स्थूल मृत्युलोक सूक्ष्म दैवीराज्यकी सहायतासे ही स्थायी है। और उसके सब कार्योंकी निष्पति होती है। समष्टि और व्यक्ति अर्थात् ब्रह्माण्ड और पिण्डका सब सृष्टि-स्थिति-लय कार्य दैवी सहायतासे ही हुआ करता है। जैसे एक साम्राज्यके चलानेकेलिये नाना प्रकारके महकमे और उनके अफसर होते हैं, वैसे ही दैवीराज्यके भी अनेक महकमें और पदधारी देवता हैं। ज्ञानराज्यरूपी अध्यात्म राज्यके संचालक ऋषिगण है। कर्मरूपी अधिदैव राज्यके संचालक नाना श्रेणीके देवता हैं, और स्थूल शरीररूपी अधिभूत राज्यके संचालक नित्य पितर होते हैं, जो एक प्रकारके देवता हैं। इस दैवी शृङ्खलाका पूरा प्रमाण गीतामें मिलता है। विभूतियोग अध्यायमें लिखा है कि, "वसूनां पावकश्चास्मि" अर्थात् वसुओंमें मैं पावक हूँ। प्रधान वसु आठ हैं। इनके नाम वेद और शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। उन आठोंमें पावककी प्रधानता मानी जाती हैं। उनके मृत्युलोकमें अवतार भी हुआ करते हैं। जैसा महाभारतमें लिखा है कि, भीष्मपितामह अष्टवसुओंमेंसे ही एकके अवतार थे। इसी अध्यायमें लिखा है कि, एकादश रुद्रोंमें मैं शङ्कर हूँ। द्वादश आदित्योंमें मैं विष्णु हूं। यथा—'रुद्राणां शङ्करश्चास्मि', 'आदित्यानामहं विष्णुः'। इसी प्रकार कर्मके नियन्ताओंमें मैं यम हूँ नित्य पितरोंमें अर्यमा हूं। यथा—'पितॄणामर्यमाचास्मि यमः सयमतामहम्'। सब जलके अधिष्ठातृदेवताओंमें मैं वरुण हूँ। 'वरुणो यादसामहम्' देवर्षियोंमें मैं नारद हूँ और गन्धर्व श्रेणीके देवताओंमें मैं चित्ररथ हूँ। 'देवर्षीणाञ्च नारदः'

'गन्धर्वाणां चित्ररथः'। महर्षियोंमें मैं भृगु हूँ। "महर्षीणां भृगुरहम्"। यक्ष-राक्षसोंकी देव योनियोंमें मैं कुवेर हूँ। 'वित्तेशोयक्षरक्षसाम्'। देवोंके सेनानियोंमें मैं स्कन्द हूँ। 'सेनानीनामहं स्कन्दः'। वेगवान् पदार्थोंमें वायुका अधिष्ठातृ देवताओंके रूपमें मैं वायुदेव हूं। 'पवनः पवतामस्मि' इन वचनोंसे दैवी राज्यके उच्चपदधारी जो देवता हैं, उनकी अच्छीतरहसे सिद्धि होती है और साथ ही साथ दैवीशृङ्खला (आर्गनिजेशन) की भी अच्छीतरहसे सिद्धि होती है।

वर्णाश्रम-शृङ्खला माननेवाली सनातनधर्मी प्रजाका धर्म सोलह अङ्गोंमें विभक्त है। उन सोलह अङ्गोंका बीज श्रीमद्भगवद्गीतामें पाया जाता है। रजोवीर्यकी शुद्धि रखनेवाले वर्णधर्मका मूल स्त्रियोंका सतीत्वधर्म है। उस सतीत्वधर्मके विषयमें, जातिधर्मके विषयमें, कुलधर्मके विषयमें श्राद्ध-पिण्डदान आदिके विषयमें श्रीमद्भगवद्गीतामें अनेक प्रमाण हैं। यथा:—

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।

अ० ३ श्लो० २४,

अधर्माभिभवात्कृष्ण! प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः,
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय! जायते वर्णसंकरः।
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्यच।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः
उत्साद्यते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वता।
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन!
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम।

अ० १ श्लो० ४० ४३

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि, श्री भगवान् आज्ञा करते हैं कि यदि मैं कर्म न करूँ, तो ये सब लोक उच्छिन्न हो जायेंगे, मैं संकरका कर्ता बनूंगा और इस सारी प्रजाका नाश कर डालूंगा अर्थात् स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षाकेलिये श्रीभगवान्‌को भी कर्म करना पड़ता है। सतीत्वके नष्ट होनेसे संकर सृष्टि होती है और संकर सृष्टि होनेसे कैसा अनर्थ होता है, इस विषयमें गीता कहती है— अधर्मके बढ़ जानेसे कुलस्त्रियाँ बिगड़ जाती हैं, दूषित हो जाती हैं। स्त्रियोंके सतीत्वसे भ्रष्ट हो जानेसे वर्णसंकर सृष्टि होती है। यह संकर सृष्टि कुल और कुलघातक दोनोंको नरकमें लेजाती है, पिण्ड और पानीके न मिलनेसे उनके पितरोंका पतन होता है। शाश्वत (सनातन) जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं और मनुष्योंके जब कुलधर्म ही नष्ट हो जाते हैं, तब उन्हें चिरकाल तक नरकमें पचना पड़ता है।

जन्मान्तरवादके विषयमें श्रीगीताके दूसरे अध्यायमें बहुत कुछ स्पष्ट वर्णन है। इस स्थूल शरीरके नाश होनेपर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर लोकान्तरमें चला जाता है। स्थूल शरीर यहीं पड़ा रहता है, जिसको मृत देह कहते हैं। उस समयके सूक्ष्म शरीरकी अवस्थाको लेकर चार प्रकारकी गतिका वर्णन मीमांसा-शास्त्रने किया है। १-देवयान, २-पितृयान ३-ऐशगति, ४-सहजगति। पहले देवयान अर्थात् शुक्लगति उसको कहते हैं, जिसमें मुक्त आत्मा सूर्यमण्डल-भेदन करके आगे बढ़ कर मुक्त हो जाते हैं। दूसरे पितृयान अर्थात् कृष्णगति जिसमें साधारण अधिकारके जीव चन्द्रलोकतक जाते हैं और फिर लौट कर इसी मृत्युलोकमें आ जाते हैं। तीसरी ऐशगति, जिसके द्वारा उन्नत देवता होनेयोग्य उन्नत आत्माएँ देवलोककी देवताएँ बन जाती हैं और देवलोकके नियमानुसार आगे बढ़ती हैं। जैसे नन्दिकेश्वर, बलि, हनुमान्, इत्यादि। चौथी सहजगति, इसमें जीवन्मुक्त महात्मा यहीं शरीर छोड़ते समय ब्रह्मपदमें विलीन हो जाते हैं। इन चार प्रकारकी गतियोंमेंसे दो गतियोंका गीताशास्त्रमें अच्छीतरहसे वर्णन किया है। यथा गीताके

आठवें अध्यायके चौबीसवें श्लोकसे छब्बिसवें श्लोक तकमें वर्णन है कि, कृष्ण-शुक्ल गतियोंमें जीव किस प्रकार आगे बढ़ता है।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥
शुक्लकृष्णे गतीह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥

अ० ८ श्लो० २४-२६

महान् कालके विषयमें, जिसका वर्णन आर्यगण अपने नित्यके पूजा-सन्ध्यादिके सङ्कल्पमें उल्लेख करते हैं, भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें इस प्रकार वर्णन किया है—

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदोजनाः ॥
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥

अध्याय ८ श्लो० १७-१८

अर्थात् एक सहस्र चौकड़ी युगका ब्रह्माका एक दिन होता है और इतनीकी ही रात्रि होती है। दिन होनेपर अव्यक्तसे सब कुछ व्यक्त हो जाता है और रात्रिमें सब व्यक्त फिर अव्यक्तमें लीन हो जाता है। यह कालका जो माप कहा गया है, वह देवताओंके हिसाबसे है। ज्योतिष और पुराणशास्त्रके अनुसार दैवीकाल और मनुष्यकालका अन्तर निकालनेपर इस प्रकार होता है। ४३२००० मनुष्योंके वर्षोंका एक कलियुग होता है, इससे दूने वर्षोंका द्वापर, तिगुने मानव वर्षोंका त्रेता और चौगुने मानव वर्षोंका सत्युग होता है। इन चारों युगोंको एक साथ जोड़नेसे ४३२०००० वर्ष होते हैं। उसको महायुग कहते हैं। ऐसे ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है अर्थात् ३०६७२०००० मानव वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तरके सृष्टिकर्ता भगवान् ब्रह्मा, स्थितिकर्ता भगवान् विष्णु और संहारकर्ता भगवान् शिवके अतिरिक्त देवलोकके संचालक सब देवपदधारी बदल जाते हैं। जैसे मृत्युलोकमें जब राजा या राष्ट्रपतिका परिवर्तन होता है, तब उसीके साथ सब बड़े पदधारी बदल जाते हैं, वैसे ही प्रत्येक मन्वन्तरमें सब देवसङ्घ, ऋषिसङ्घ और पितृसंघ बदल जाते हैं। हमारे पूज्य प्राचीन महर्षि त्रिकालज्ञ थे। सृष्टिके आरंभसे अबतक जितने मन्वन्तर हो गये हैं और भविष्यमें जितने होंगे, उनका उन्होंने मनुस्मृति और मार्कण्डेयआदि पुराणोंमें विस्तारसे उल्लेख कर दिया है। इस कारण पुराणादिमें भूतकालका तो विवरण है ही किन्तु भविष्यका भी विवरण पाया जाता है। ऐसे चौदह मन्वन्तर हो जानेपर अर्थात् १४ मनु बदल जानेपर जो समय होता है, उसे कल्प कहते हैं और ऐसा एक कल्प ब्रह्माका एक दिन माना गया है। हिन्दूजातिके ज्योतिष तथा वेद-शास्त्रोंमें जो गणना पायी जाती है, उसके अनुसार सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्मा अपने वर्षके अनुसार १०० वर्षको आयु बीत जानेपर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं, और उनके स्थानमें दूसरे ब्रह्मा आ जाते हैं। हमारे शास्त्रोंका यह चमत्कार है कि, प्रत्येक आर्य-व्यक्ति अपने नित्यके सङ्कल्पमें जिस विशाल ब्रह्माण्डका स्वरूप और कालको आखोंके सामने रखकर सङ्कल्पमन्त्र पढ़ते है; परन्तु खेद है कि, काल-प्रभावसे इस ओर किसीकी दृष्टि ही नहीं जाती। ऐसे विशाल दैवीजगत् और विशाल कालका वर्णन बीजरूपसे श्रीभगवद्गीतामें पाया जाता है।

वर्ण और आश्रमधर्म, जो हिन्दू धर्मके प्रधान अङ्ग हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन गीतामें कई स्थानोंमें आया है। यथाः—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥

अ० ४ श्लो० १३

अर्थात् गुण-कर्मके विभागानुसार मैंने चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि की है। अकर्ता और अव्यय मुझे ही इसका कर्ता समझो और श्रीमद्भगवद्गीतामें आरम्भसे लेकर अन्ततक गुणशब्दसे त्रिगुण अर्थात् सत्त्व, रज, तमोगुणको माना है। ये ब्रह्म प्रकृतिके तीन गुण हैं। इन तीनों गुणों और पृथक् पृथक् कर्मोंके अनुसार श्रीभगवान् कहते हैं कि, मैंने चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि की है। जब मेरी प्रकृति ही यह कार्य करती है, तो इस विचारसे मैं चातुर्वर्ण्यका कर्ता हूँ और जब मैं प्रकृतिका द्रष्टामात्र हूँ, तब मैं अव्यय अकर्ताभी हूँ। तीनों गुणोंके अनुसार सत्त्वप्रधान, सत्त्वरजः प्रधान, रजस्तमः-प्रधान और तमः प्रधान. इस प्रकार चार वर्णोंकी प्रकृतिके अनुसार गीतामें चारों वर्णोंके लक्षण कहे गये हैं. जो अ० १८, श्लो० ४१ से ४५ में देखने योग्य हैं। इस प्रकार वर्णधर्म और आश्रम धर्मके अनेक मौलिक सिद्धान्त श्रीमद्भगवद्गीतामें स्थान स्थानपर मिलते हैं और संन्यासाश्रमके सम्बन्धमें तो बहुत विस्तारके साथ गीतामें वर्णन आया है। वास्तवमें संन्यास क्या है, कर्मयोग और संन्यासयोगमें क्या अन्तर है, सांख्य और कर्मयोगका कैसा समन्वय किया है। इनका पृथक् पृथक् लक्षण संन्यासके सिद्धान्तको समझनेके लिये ही भगवान्ने बहुत कुछ बताया है।

यज्ञ और महायज्ञरूपी धर्म हिन्दूधर्मके सोलह प्रधान अङ्गोंमेंसे एक है। इसका भी वर्णन गीतामें विस्तारके साथ आया है। मीमांसादर्शनमें वर्णन है कि, जो धर्मकार्य एकसाथ श्रीभगवान्की प्रसन्नता-सम्पादन करके देवपदधारियोंके अभ्युदयका कारण होता है, वही यज्ञ कहाता है। जो व्यष्टि (व्यक्ति विशेष) के मंगलके लिये कर्म किया जाता है, वह यज्ञ है और समष्टि समुदायके मङ्गलके लिये किया जाता है वह महायज्ञ है। जैसा, अग्निष्टोम, राजसूय आदि व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले यज्ञ हैं और ऋषियोंके संवर्धनके लिये किया जानेवाला ब्रह्मयज्ञ, देवताओंके संवर्धनके लिये किया जानेवाला देवयज्ञ, पितरोंके संवर्धनके लिये किया जानेवाला पितृयज्ञ, जीवमात्रके संवर्धनके लिये किया जानेवाला भूतयज्ञ और मनुष्यजातिके संवर्धनके लिये किया जानेवाला नृयज्ञ ये पञ्च महायज्ञ कहाते हैं। समष्टिके लिये मंगल कारक होनेसे ये महायज्ञ हैं। यज्ञका अपूर्व और अलौकिक विज्ञान श्रीभगवान्ने गीता अ० ३ श्लो० १० – १६ तक विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। उससे यज्ञकी व्यापकता और महत्ता विदित हो जाती है। इसी तरह गीता अ० ४ श्लो० २३-३२ तक यज्ञके भेद और व्यापकता बताये हैं। फिर अन्तमें गीता अ० १८ श्लो० ११-१३ तक सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञके लक्षण बताये हैं। इस कारण गीतामें यज्ञ और महायज्ञके मौलिक विज्ञान और विस्तारका अच्छी तरह प्रमाण मिलता है।

अवतार-विज्ञानका महत्त्व और अवतारके आविर्भाव-तिरोभावका जैसा सुन्दर विज्ञान गीता शास्त्रमें पाया जाता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। सर्वशक्तिमान भगवानके पूर्णावतार श्रीकृष्ण भगवान्ने निजमुखसे कहा है—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगेयुगे॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

अ० ४ श्लोक ५-९

अर्थात् हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे अनेक

जन्म हो चुके हैं उन सबको मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते, यद्यपि मैं जन्म-रहित हूँ, अविनाशी हूँ और सब भूतोंका ईश्वर हूं, तथापि अपनी प्रकृतिका आश्रय कर अपनी मायासे जन्म ग्रहण किया करता हूँ। जब जब धर्मकी ग्लानि और अधर्मका अभ्युदय होता है, तब तब मैं आविर्भूत होता हूँ। साधु सज्जनोंकी रक्षा और दुराचारियोंका नाश करने तथा धर्मकी संस्थापनाके लिये मैं युग-युगमें अवतीर्ण हुआ करता हूँ। इस प्रकार मेरे दिव्य जन्म और कर्मको यथार्थरूपसे जो जानते हैं, देहान्तके पश्चात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता है, वे मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं।

मीमांसाशास्त्रमें दार्शनिक युक्तिसे यह सिद्ध किया गया है कि, साधारण व्यक्तियोंको और विभूतियोंको जैसा शरीर धारण करना पड़ता है, वैसा अवतारोंको भी धारण करना पड़ता है, कर्म और जन्मके इस रहस्यको सब नहीं समझ सकते, भगवान्के अवतार ही समझते हैं। विशेषत्वके कारण अवतारोंमें अध्यात्मशक्तिरूपी ज्ञान दैवीशक्तिरूपी कर्मोंके चमत्कार और आधिभौतिक शक्तिरूपी उनके कर्मोंका अलौकिकत्व विशेषरूपसे बना रहता है। गीता जैसे उपनिषद्सारका प्रकाशन भगवदवतार श्रीकृष्णकी आध्यात्मिक अलौकिकता का जाज्वल्यमान प्रबल प्रमाण है। उनकी व्रज-लीला, द्वारकाकी लीला श्रीभगवान्की आधिदैविक शक्तिका और बिना शस्त्रधारण किये महाभारत के महायुद्धमें उनकी लीला उनकी अलौकिक आधिभौतिक शक्तिका परिचायक है। श्री विष्णु भगवान्के श्रीकृष्ण तो पूर्णावतार ही थे, किन्तु उनके अनेक अन्य प्रकारके अवतार हुआ करते हैं। समय विशेष और कार्यविशेषमें भगवानके जो अवतार और कलावतार भी होते हैं, वे उस समय उस कार्य को सम्पन्न कर अन्तर्हित हो जाते हैं। जैसे रामावतारके होनेपर परशुरामजीका अवतारत्व समाप्त हो गया। वे मनुष्यके अतिरिक्त अन्य शरीर भी धारण कर लेते हैं। जैसे—मत्स्यावतार, कच्छपावतार, वाराहावतार, नरसिंह अवतार इत्यादि। अंशावतार या कला अवताररूपसे ऋषिगण और देवगणभी आविर्भूत होते हैं। महाभारतमें कहा है कि युधिष्ठिर और विदुर धर्मके और अर्जुन इन्द्रके अवतार थे। हनुमान और दक्षिणामूर्ति शिवके अवतार थे। देवगण कर्मरूपी अधिदैव राज्यके संचालनके लिये और ऋषिगण ज्ञानराज्यरूप अध्यात्म राज्यके संचालनके लिये अवतार धारण करते हैं।

आर्यशास्त्रमें उपासनाका जैसा विस्तार है, वैसा और कहीं नहीं है। उपासनामें उपास्य उपासक सम्बन्धसे निर्गुण ब्रह्मोपासना, सगुण पञ्च देवोपासना, अवतारोपासना, ऋषि-देवता और पितरोंकी उपासना यहाँतक कि क्षुद्र शक्ति भूतप्रेतोपासनातकका वर्णन पाया जाता है। राजयोगके अनुसार निर्गुण ध्यान लययोगके अनुसार बिन्दु-ध्यान हठयोगके अनुसार कल्पित ज्योतिर्ध्यान और मन्त्रयोगके अनुसार कल्पित देवदेवियोंके ध्यान इस प्रकारसे उपासनाके अनेक भेद पूर्णावयव सनातन धर्ममें पाये जाते हैं और वे इतने विस्तृत हैं कि, पृथ्वीके सब उपासकवृन्द उससे लाभ उठा सकते हैं, इस उपासनायोगका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीतामें बहुत कुछ पाया जाता है। यथाः—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितोहि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

अर्थात् सात्त्विक बुद्धिके लोग देवताओंकी, राजसिक बुद्धिके लोग यक्ष-राक्षसोंकी और तामसिक बुद्धिके लोग भूत-प्रेतोंकी उपासना करते हैं। देवोंके उपासक देवोंको, पितरोंके उपासक पितरोंको, भूतप्रेतोंके उपासक भूतप्रेतोंको और मेरे उपासक मुझको प्राप्त होते हैं। पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ जो कोई भक्तिपूर्वक मुझे अर्पण करता है, उस उपासकका अर्पण किया हुआ वह सब कुछ मैं स्वीकार करता हूँ। जो अनन्य चित्त होकर मेरी उपासना करते हैं, मुझमें संलग्न उन उपासकोंका योग क्षेम मैं चलाता हूं। अन्य देवताओंके जो भक्त श्रद्धा-पूर्वक उनकी उपासना करते हैं, वे अविधिसे मेरी ही उपासना करते हैं। जो जो भक्त श्रद्धा-पूर्वक जिस जिस विग्रहकी उपासना करते हैं, उनकी अचल श्रद्धा उसी विग्रहमें दृढ़ कर देता हूँ। कोई कितना ही दुराचारी क्यों न हो, यदि वह मुझमें अनन्य भक्ति करता है, तो वह साधु ही समझा जायगा। वह उत्तम उपासक ही है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और चिर शान्तिको प्राप्त करता है। हे अर्जुन! मेरा भक्त कभी नाशको नहीं प्राप्त होता है। यह तुम निश्चय ही जानो। देह और इन्द्रियोंके सब धर्मोंको त्याग कर अनन्य होकर मेरी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सब पापोंसे मुक्त कर दूंगा। तुम चिन्ता न करो।"

कर्मविज्ञानसे तो श्रीमद्भगवद्गीता परिपूर्ण है। कर्मका अद्भुत रहस्य जो मीमांसाशास्त्रमें नहीं पाया जाता, उससे कहीं बढ़कर गीताशास्त्रमें पाया जाता है। इसका मूल और अर्थ ऊपर दे चुके हैं कि, ब्रह्मका जो सच्चिदानन्दभाव है, उसका भूतभावकी उत्पत्तिके लिये जो त्याग कराता है, उसको कर्म कहते हैं। कर्ममीमांसा इसी बातको अन्य प्रकारसे कहती है कि, प्रकृतिके स्पन्दनसे ही कर्मकी उत्पत्ति होती है। कर्म क्या है अकर्म क्या है, विकर्म क्या है, कौनसे कर्म बन्धन कारक है और कौनसे कर्म बन्धनकारक नहीं होते इत्यादि सब बातोंका गीतामें विस्तृत वर्णन है। निम्नलिखित भगवद् वचनोंसे इसका दिग्दर्शन किया जाता है। यथा:—

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणञ्च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥
ज्ञानं, ज्ञेयं, परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः॥
नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्॥
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते॥
न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति॥
न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥
यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

हे महाबाहो अर्जुन! सब कर्मोंकी सिद्धिके लिये तत्त्वज्ञान-प्रतिपादक वेदान्त शास्त्रमें पाँच कारण बताये गये हैं, उसे सुनो। १-अधिष्ठान (शरीर), २-कर्ता (अहङ्कार विशिष्ट जीव), ३-नाना प्रकारके करण (चक्षुआदि इन्द्रिय) ४-भिन्न भिन्न प्रकारकी चेष्टाएं और ५-दैव। ज्ञान, ज्ञेय (जाननेकी वस्तु) और परिज्ञाता (जाननेवाला) और तीन प्रकारके कर्मकी प्रवृत्तिके कारण करण, कर्म और कर्ता इस प्रकार त्रिविध कर्म संग्रह होता है। निष्कामभावसे सङ्ग (अभिनिवेश) से रहित और राग-द्वेषको छोड़कर जो कर्म किया जाता है; वह सात्त्विक कहलाता है। फलकी आकाङ्क्षा रखकर अहङ्कारके साथ बहुत आयासयुक्त जो कर्म किया जाता है वह राजसिक है। परिणामका विचार न कर तथा क्षय (नाश) हिंसा और अपनी शक्तिकी उपेक्षा कर मोहसे जो कर्म किया जाता है, वह तामसिक है। कर्मका अनुष्ठान न करनेसे निष्कर्म (ज्ञान) का सिद्धि नहीं होती है और केवल संन्यासका अवलम्बन करनेसे भी सिद्धि लाभ नहीं होता। बिना कर्म किये क्षणभर भी कोई नहीं रह सकता। राग-द्वेषादि प्रकृतिके गुण मनुष्यको विवश करके उससे कर्म करा ही लेते हैं। शास्त्रके द्वारा निर्दिष्ट कर्मोंका अनुष्ठान किया करो। कर्म न करनेसे कर्म करना कहीं अच्छा है। यदि तुम सब प्रकारके कर्मोंको त्याग कर दोगे, तो तुम्हारी शरीर-यात्रा भी नहीं चल सकेगी। यज्ञके लिये जो कर्म किया जाता है, उसके अतिरिक्त अन्य कर्म बन्धनके कारण होने हैं। अतः हे अर्जुन, निष्कामभावसे यज्ञके लिये ही नियत कर्म किया करो। आसक्तिहीन होकर सर्वदा कर्तव्यरूपसे विहित कार्योंका अनुष्ठान किया करो। क्योंकि अनासक्त होकर कर्म करनेसे मनुष्यको मुक्ति प्राप्त होती है। जनकादि महात्माओंने कर्मके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की थी। लोकसंग्रह (लोगोंको स्वधर्ममें प्रवृत्त करने) के लिये भी तुम्हें कर्म करना चाहिये। श्रेष्ठ लोग जो कुछ कर्म करते हैं, साधारण लोग भी उसीका अनुसरण करते हैं श्रेष्ठ लोग जिसको प्रमाण मानते हैं, अन्य लोग भी उसीको प्रमाण मानने लगते हैं। हे पार्थ, मेरे लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं बच जाता है। त्रिभुवनमें ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मुझे प्राप्त न हुई हो, या मेरे पाने योग्य हो, फिर भी मैं नियत कर्म करता ही रहता हूँ।

सनातनधर्मके अनुसार वेद और शास्त्र अपौरुषेय हैं। वेद शब्दरूपसे और शास्त्र भाव रूपसे अपौरुषेय हैं। इसके लिये पूर्णावतार भगवान्ने स्पष्ट रूपसे कहा है:—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्रविधिका त्यागकर स्वेच्छा-प्रवृत्त होकर कर्म करता है, उसको सिद्धि, सुख और परमगति प्राप्त नहीं होती। अतः कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें तुम्हारे लिये शास्त्र ही प्रमाण है। तुम शास्त्र विधानके अनुसार अपने कर्मको जानकर उसीका आचरण किया करो। इससे यह सिद्ध हुआ कि गीता-शास्त्रमें वेद और शास्त्रकी कैसी महिमा वर्णन की गयी है। सनातन धर्मके जो सोलह अङ्ग हैं, उनमेंसे वेद शास्त्रोंपर

विश्वास एक प्रधान अंग है।

शौच और सदाचारके विषयमें संक्षेपरूपसे श्रीमद् भगवद् गीतामें कई जगह वर्णन आया है यथाः—

प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥

इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि, आसुरी प्रकृति-वाले मनुष्य धर्ममें प्रवृत्ति और अधर्ममें निवृत्ति नहीं जानते हैं अर्थात् वे धर्माधर्मविचार-शून्य होते हैं। इसका कारण वे शौच (शुद्धाशुद्ध विवेक) आचार (धर्मानुकूल शारीरिक व्यापार) को नहीं जानते हैं अर्थात् वे शौच और आचारसे भ्रष्ट रहते हैं और सत्यहीन होते हैं अर्थात् सत्यका पालन नहीं करते हैं। दूसरी ओर गीताके सोल-हवें अध्यायमें दैवी सम्पत्तिके लक्षणोंमें श्रीभग-वान्ने शौचको स्पष्ट रूपसे कहा है। अतः शौच-रूपी शुद्धाशुद्ध विवेक और सदाचार-पालनका मूल श्रीमद्भगवद्गीतामें स्पष्टरूपसे पाया जाता है। आजकलके नेतृ-वृन्दोंको गीता-कथित दैवी-प्रकृति और आसुरी प्रकृतिके लक्षणोंको अवश्य ध्यानमें रखकर विचार करके तब कार्य करना चाहिये। श्रीभगवान्के सगुण रूप और निर्गुण-रूपका वर्णन श्रीमद्भगवद्गीताके बहुत स्थानोंमें आया है। भगवान् जब सर्वशक्तिमान् हैं, तो भक्तके कल्याणार्थ उनको सगुण रूप धारण करनेमें बाधा ही क्या हो सकती है, तथापि व्यक्त (सगुणरूप) अव्यक्त (निराकार उनके निर्गुण भाव दोनोंके विषय-में रूपान्तरसे वर्णन गीताशास्त्रमें अनेक स्थानोंमें आया है। श्रीमद्भगवद्गीता जो वेदके शिरोभाग उपनिषद्का साररूप है, उसमें तो मुक्तिका विषय परिपूर्ण है। कर्मके साथ मुक्तिका सम्बन्ध, उपा-सनाके साथ मुक्तिका सम्बन्ध और ज्ञानके साथ मुक्तिका सम्बन्ध—वेदके ये तीनों काण्ड मुक्तिको कैसे प्रतिपादन करते हैं, मुक्तात्माओंके लक्षण क्या है, इत्यादि गंभीर विचारोंसे तो गीता परिपूर्ण है।

—※—

को देशः कानि मित्राणि कः कालः कौ व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥

देश कौन है, मित्र कौन है, समय कौनसा है, कितनी आय और कितना व्यय है, मैं कौन हूँ, और मेरी शक्ति कितनी है, इन बातोंका बार-बार विचार करना चाहिये।

प्रेम

शिशुकी सरल हासरेखा कर देती हर्षित जिसे अपार।
सस्मित-सा उसका भोला मुख जिसके जीवनका आधार॥
सीमारहित अनन्त अयाचित निश्चल मुक्त गभीर उदार।
धन्य अहा बालकके प्रति वह निरुद्देश माताका प्यार॥ १॥

एक अपरचितके हाथोंमें विना किये कुछभी अनुमान।
लज्जासे अञ्चलको दाबे लेकर अपना हृदय महान॥
निश्शङ्कित चितसे करती है जब नव वधू आत्म उत्सर्ग।
आहा धन्य प्रेम नारीका लाता खींच मही पर स्वर्ग॥ २॥

तीव्र यातनाके सन्मुखभी होने देता जो न अधीर।
हँसते हुये निछावर करते जिसके लिये प्राणतक वीर॥
रोमाञ्चित कर देती है हाँ जिसका मतवाली झङ्कार।
धन्य अहो आवेगपूर्ण वह अपनी जन्मभूमिका प्यार॥ ३॥

ऊँच नीचका भेद मिटाकर रखता है सब पर समदृष्टि।
अखिल विश्वको बन्धु मानकर करता सदा स्नेहकी सृष्टि॥
देवतुल्य करता मानव को जिसका वह मधु पावन स्पर्श।
धन्य विराट् प्रेम वसुधाका धन्य उच्च उसका आदर्श॥ ४॥

नित् जिसका नवीन रहता है मधुर मुग्धकर भाव अनूप।
जगतीको श्रृङ्खलित किये हैं जिसका रुचिर मनोहर रूप॥
रुद्ध कठिन कर्तव्यमार्गको करता है जो सरल सुगम्य।
धन्य प्रेम वह कर देता जो मानस मरुस्थलीको रम्य॥ ५॥

परिमित है उच्चता शैलकी और शून्य है व्योमविशाल।
दिखती तमोनिशायें उज्वल बिखरी हुई तारकामाल॥
रत्नाकरके अतुल रत्न वे केवल चमकीले पाषाण।
अहो प्रेम तू निरुपमेय है प्रभुकी जड रचनाका प्राण॥ ६॥

—मोहन बैरागी

तलाक और हिन्दू समाज

(ले०—श्री कुमारी पार्वती अग्रवाल प्रभाकर)

समाचार पत्रोंके सम्पर्कमें आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति 'हिन्दू कोड बिल' से परिचित होगा। इस बिलके अन्तगत कई विषय हैं। जिनमें 'उत्तराधिकार' और 'तलाक' प्रमुख है वाद-विवाद, विरोध-समर्थन भी इन्हीं दो विषयोंको लेकर चल रहा है। 'उत्तराधिकार' पर पिछले दिनों मेरा एक लेख 'अग्रवाल' में प्रकाशित हो चुका है। अब मैं यहाँ कुछ तलाकपर ही लिखना चाहती हूँ। जहाँतक मेरी बुद्धिका प्रसार है मैं समझती हूँ 'तलाक' शब्द मुसलमानोंके आक्रमणके साथ ही भारतवर्ष में प्रविष्ट हुआ। मुसलमान स्त्री-पुरुषोंको तलाकका अधिकार बहुत दिनोंसे प्राप्त है। यद्यपि कुछ निम्न कोटिकी हिन्दू जातियोंमें भी तलाककी प्रथा प्रचलित है किन्तु वह इतनी अल्प है कि सरलतासे उंगलियोंपर भी गिनी जा सकती हैं। लेकिन अब जो तलाकका प्रश्न प्रस्तुत हो रहा है, वह तो समस्त हिन्दूसमाजके विवाह-विच्छेदका प्रश्न है। वर्तमान भारतवर्षमें हिन्दुओंकी संख्या अधिक होनेसे विवाह-विच्छेद-प्रश्न भी केवल हिन्दुओंका ही नहीं रह गया, प्रत्युत समस्त भारतवर्ष एवं राष्ट्रका प्रश्न बन गया है। राष्ट्रकी सुख, शान्ति, उत्कर्ष इसी प्रश्नपर निर्भर है। तलाकका प्रश्न अत्यन्त व्यापक और गम्भीर है।

पाश्चात्य देशोंमें तलाकका साम्राज्यप्रसार विस्तृत है। रूस, इंगलैंड, अमेरिका इत्यादि सभी देशोंमें पुरुष स्त्रीको तलाक दे सकते हैं और स्त्रियाँ पुरुषोंको तलाक दे सकती है। नित्य प्रति ही हजारोंकी संख्यामे जोड़े वहाँकी अदालतोंमें खड़े दिखाई पड़ते हैं। अमेरिकामें श्री जाजेफ सैथ जो तलाकोंके 'चैम्पन जज' के नामसे विख्यात हैं। अभी हालहीमे इनका एक लेख 'दोर्दीमे' प्रकाशित हुआ है जिसमे इन्होने लिखा है:—"मेरे नगर शिकागोमें ही हर रोज ५० बसे घर उजड़ रहे हैं और तलाककी गति विवाहोंकी संख्याकी एक तिहाईके हिसाबसे चल रही है अचरज नहीं कि अंधेर आ जाये" लेकिन क्या इसपर भी वहाँ स्त्री-पुरुष एक दूसरेसे तृप्त और संन्तुष्ट है? उत्तर होगा 'नहीं'।

प्रस्तावित बिलके पास हो जानेपर भारतमें भी स्त्रियाँ पुरुषोंको तलाक दे सकेंगी और पुरुष स्त्रियोंको तलाक दे सकेंगे।

विवाहके पूर्वके जीवनमें और विवाहके बादके जीवनमें जमीन आसमानका अन्तर है। एक ओर सुखद कल्पनायें हैं तो दूसरी ओर दुःखद परिस्थितियोंमे पूर्ण कठोर कर्त्तव्यमय जीवन है। त्यागकी भावनायें और सहन शक्ति लुप्त होती जा रही है। वासना एवं स्वार्थमय प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। प्रत्येक पति-पत्नीका जीवन विषमताओं और सघर्षोंसे युक्त है। प्रत्येक गृहकी सुख, शान्तिका कलह और प्रतिद्वंद्विता छिन्न भिन्न कर रही है। विवाहके बादके आरम्भिक दिनोंमें ही पति-पत्नीके जीवनमे असन्तोष व्याप्त हो जाता है और वे तभीसे एक दूसरेसे पृथक् होनेका स्वप्न देखने लगते हैं। बेचारी निरीह नारी अपनेको प्रत्येक क्षेत्रमे पराधीन और अधिकार शून्य पाकर तथा अपने जीवनको पतितक ही केन्द्रित देखकर असहाय और निराश हो अपनी समस्त कामनाओं सहित पतिके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर देती है। लेकिन पुरुष निरंकुश होनेके कारण समाजमें खुल कर खेलता है। उसके लिये वेश्यालय भी दूर नहीं। व्यभिचार भी पाप नहीं। शराब पीना भी सदाचार और सभ्यताका चिन्ह है। एक पत्नीके जीवित रहते दूसरा विवाह कर लेना भी न्याय

संगत है। पुरुषकी इन्हीं अनीति पूर्ण व्यवहारोंने आजकी शिक्षित नारी-हृदयमें विद्रोहकी चिनगारी सुलगा दी। कहीं कहीं पति पत्नीके मध्य संघर्ष इतना प्रबल हो गया जिसने दोनोंको एक साथ रहना असम्भव कर दिया। तभी एक ऐसे विधान की आवश्यकता अनुभव हुई जो दोनोंको फिर विलग कर सके और वे दोनों अपना नवीन जीवन साथी चुनकर पुनः जीवन निर्माण कर सकें। इसी आवश्यकताका पूरक तलाक बिल है। प्रायः इन्हीं तर्कोंको लेकर इस बिलका समथन भी किया जा रहा है।

तलाकका समर्थन करना तो सरल है, किन्तु इससे उत्पन्न समस्याओंपर विचार करना भी आवश्यक है। इस बिलका समाजपर क्या प्रभाव पड़ेगा और किसके लिये कहाँतक उपयोगी रहेगा? इत्यादि प्रश्न विचारणीय हैं।

इस बिलके मुख्यतः दो पक्ष किये जा सकते हैं- पुरुष-पक्ष और दूसरा नारी-पक्ष। समाजका कर्ता-धर्ता पुरुष है। नारीकी अपेक्षा पुरुष वासना प्रिय और विलासी भी अधिक है। तलाकबिल पुरुषोंकी इसी मनोवृत्तिकी पूर्तिके लिये सहायक सिद्ध होगा। बिल पास होते ही पुरुष इससे लाभ उठाना आरम्भ कर देंगे। मैं ऐसे कितने ही पुरुषों को जानती हूँ जो अपनी पत्नीसे तो घृणा करते हैं और अन्य स्त्रियोंके साथ ....। किन्तु इतना अवश्य है कि, वे उसका तलाक देकर दूसरा विवाह नहीं कर सकते, यद्यपि कुछ लोग दिलेरीमें आकर दूसरी शादी कर लेते हैं। एक श्रीमती क है। ये खत्री परिवारकी वैभव सम्पन्नपिताकी पुत्री हैं। इनके पतिदेव सौन्दर्य-प्रेमी हैं। उन्होंने एक रूपवती स्त्रीके साथ दूसरा विवाह कर लिया है। ये बेचारी अपने मैकेमें ही रहती हैं। दुःख और चिन्ताओंसे शरीर जर्जर हो गया है। तलाक बिलके पास होनेपर तो इस प्रकार परित्यक्ता हुई स्त्रियोंकी संख्या विशालकाय रूप धारण कर लेगी। इन स्त्रियोंका भविष्य क्या रहेगा? भारतकी नारियाँ अभी इतनी शिक्षित और स्वावलम्बी भी नहीं हैं, जो जीविका कमा कर अपना स्वतन्त्र जीवन-निर्वाह कर सकें। नारीका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, उसे तो पग-पगपर पुरुषके सहयोगकी आवश्यकता है। एक दोकी संख्या नहीं, यह तो हजारोंकी समस्या उठ खड़ी होगी। दूसरा शादीके अतिरिक्त इनके पास कोई मार्ग ही न रहेगा। फिर क्या यह निश्चित है कि दूसरा पति इन्हें जीवनभर साथ रखेगा? यदि उस दूसरेने भी तलाक दे दिया तब क्या तीसरी शादी होगी? और तीसरीके बाद क्या चौथी? इस प्रकार बार बार शादी होना वेश्या बननेके समान नहीं तो क्या है?

हमारी कुछ बहनें इस बिलका समर्थन कर रही हैं। उनका कथन है कि, पति यदि दुराचारी है तो उसे छोड़ कर दूसरा विवाह करनेका पत्नीको अधिकार मिलना ही चाहिये। ठीक है, मिलना चाहिये! लेकिन क्या यह निश्चित है कि, दूसरा पति जिससे वह शादी करेगी उसके विचारोंके अनुकूल होगा और उससे एकाकी प्रेम कर जीवनभर उसका साथ दे सकेगा। सम्भव है दूसरा पति पहले पतिसे भी अधिक बुरा और निकम्मा निकले। और फिर पुरुषोंसे सदाचारी और पत्नीव्रती होनेकी आशा करना तो दुराशा मात्र है। जबकि ८०-९० प्रतिशत पुरुष बुरे होते हैं, तब पहलेको छोड़कर दूसरेके साथ यह आशा लेकर विवाह करना कि यह मेरे अनुरूप होगा—अपनेको धोखा देना है। यदि आप अच्छा पति ही चाहती हैं तो आवश्यकता इस बातकी है कि अपने संगठित प्रयत्नोंद्वारा पुरुषसमाजका सुधार करनेकी चेष्टा करें। मनुष्यकी प्रवृत्ति सदैव एक सी नहीं रहती है। जो आज भला है कल बुरा भी हो सकता है। कितने ही उदाहरण ऐसे विद्यमान है। एक मिस्टर 'ख' हैं। इनमें और इनकी पत्नीमें इतना वैमनस्य बढ़ गया था कि

दोनोंको एक दूसरेकी शकलसे घृणा हो गई थी। इन्होंने अपनी पत्नीका मुंह न देखनेकी कसम खाली थी। दो वर्षतक पत्नी मैकेमें रही। पत्नी भी इनको पूरा जल्लाद समझती थी। समयका प्रवाह आया और फिर दोनों एक हो गये। आज इनमें परस्पर ऐसा ही प्रेम है, जैसा किसी नव विवाहित पति-पत्नीमें होता है।

पत्नी बीमार हो जाती है तो पति उसे यथा साध्य अच्छा करनेका प्रयत्न करता है बड़ेसे बड़े डाक्टर वैद्यको दिखानेमें रुपयेका मुंह नहीं देखता। पत्नी भी पतिको अस्वस्थ देख कर उसकी परिचर्या में अपने खाने, पीने, सोनेकी सुध बुध खो बैठती है। क्योंकि वे जानते हैं कि, वे एक दूसरेके ऐसे जीवन-साथी हैं, जिनका कभी सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता। किन्तु इस बिलके पास हो जानेसे कौन किसकी सेवा करेगा? और क्यों करेगा? स्वार्थमय संसार है। इस प्रकार कितने संकटापन्न हो जायेंगे। एक दूसरेके प्रति दया-भाव न रहनेसे मनुष्यमें मनुष्यत्व लोप हो जायेगा।

एक नहीं चाहे हजार कानून पास हो जावें किन्तु समाज कभी नहीं सहन करेगा कि एक स्त्री अपने जीवित पति छोड़के दूसरा विवाह करे। आज भारतमें जब कि नारियाँ न तो शिक्षित हैं और न स्वावलम्बी हो तब उनमें कितनी ऐसी साहसी होंगी जो अपने पतिको तलाक देकर समाजका विरोध करते हुये दूसरी शादी करनेमें सफल हो सकेंगी? विधवा-विवाहका कितना प्रचार हुआ! आर्यसमाजने इसके लिये तन, मन, धनसे सेवायें अर्पितकी किन्तु पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी। कितनी ही विधवायें अपने मृत पतिकी यादमें निर्जीव स्मारक बनी आंसुओंका हार पिरो रही हैं। कुमार तो क्या विधुर जिसकी चार-चार पत्नियाँ स्वर्गको सिधार चुकी हैं किसी कन्यासे ही विवाह करनेकी अभिलाषा रखेगा! कन्याके विवाहमें ही माता-पिताको एड़ी-चोटीका पसीना लगाना पड़ता है तब कहीं विवाह होता है। फिर भला इन स्त्रियोंके साथ जिनके पति अभी जीवित हैं कौन विवाह करना चाहेगा मैं तो समझती हूं कि, जबतक स्त्रीसमाज आत्मनिर्भर नहीं बनता, तबतक यह तलाकबिल स्त्रियोंके लिये हर तरहसे हानिकारक है।

बच्चोंकी समस्या उठ खड़ी होगी। बच्चे पिताके साथ रहेंगे या माताके साथ? यदि पिताके साथ रहेंगे तब क्या मां अपने ममत्वको भुला सकेगी। मां बच्चोंकी मोहब्बतमें अपनी जानपर भी खेल जाती है। यदि बच्चे मांके साथ रहेंगे तब क्या उनका दूसरा बाप उन्हें अपने साथ रखनेको राजी होगा और उनके साथ पिता जैसा स्नेह कर सकेगा? जब एक मां अपनी सौतके बच्चोंके साथ समान व्यवहार नहीं कर सकती तब पितासे ऐसी आशा करना व्यर्थ है। इस मां-बापके परितनमें बच्चे जो कि भावी राष्ट्रके निर्माता हैं अनाथ हो जायेंगे। उनकी शिक्षा स्वास्थ्य, रक्षाकी किसीको चिंता न रहेगी। देश व समाजका कितना बड़ा अहित होगा?

इस बिलके पास हो जानेपर समाज छिन्न भिन्न, विश्रृङ्खल तथा मर्यादाहीन हो जायेगा पुरुष स्वयं तो विलासिताके अंध कूपमें गिरेगा ही साथ नारीको भी ले डूबेगा। अपने सतत प्रयासों द्वारा नारी जो आज उन्नतिके पथपर अग्रसर होती दिखला रही है, पतनके महागर्तमें जा गिरेगी। जहाँसे निकलना असम्भव हो जायेगा।

हमारे देशमें प्रत्येक स्त्री-पुरुषको राम और सीताकी तरह आदर्श पति-पत्नी बननेका प्रयास करना चाहिये। सीता जैसी पतिव्रता जिसके धर्मको रावणके हजार प्रलोभन भी न डिगा सके और राम जैसे पत्नीव्रती जिन्होंने वशिष्ठजीके आग्रहपर भी दूसरा विवाह न किया और यज्ञके लिए सीताको स्वर्ण प्रतिमा बनी। यद्यपि राजाओंको अनेक विवाह करनेका अधिकार सदैवसे

प्राप्त था। यदि सभी पति-पत्नी ऐसे हो जायें तो भारत, भारत न रह कर स्वर्गलोक बन जाये। जैसा कहा गया है कि, किसी समय देवता भी यहाँ जन्म लेनेको लालायित रहते थे—वैसा ही समय फिर आ जाय। यदि तलाकबिलके अतिरिक्त कोई ऐसा विधान बनाया जाये जिससे भारतके स्त्री-पुरुष एक पतिव्रता और एक पत्नी व्रती बन सकें तो मैं उस बिलका हृदयसे स्वागत करूंगी और अपनी अन्य बहिनोंको भी उनके स्वागतके लिए आमंत्रित करूंगी।

—※—

नालन्द-विद्यापीठ

लेo—लीलाधर शर्मा पाण्डेय

ईसासे पूर्व ५०० वर्षसे लेकर इसके पश्चात् ५०० वर्षोंतक—एक सहस्र वर्ष कालका—भारतका स्वर्णयुग कहा जाता है। यह युग सम्राट् चन्द्रगुप्त (प्रथम) से लेकर सम्राट् हर्षवर्द्धनके काल तकका है। इस मध्यकालमें भारत सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा, कला, शासनआदि सभी विषयोंमें पूर्ण उन्नति कर चुका था। इस उन्नतिका प्रारम्भ मौर्य-कालमें हुआ, गुप्तकाल इसकी यौवनावस्थाका कहा जा सकता है। और हर्षवर्द्धन-कालसे इसकी अवनति प्रारम्भ हुई, जिसका अन्तिम परिणाम मुहम्मद गोरीका आक्रमण तथा भारतपर यवन-राज्य-स्थापनाके रूपमें हुआ।

यहाँ हम तत्कालीन इतिहासका लम्बा-चौड़ा विषय न लेकर केवल गुप्तकालीन एक विद्यापीठका और तत्कालीन शिक्षण शैलीका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे जो भारतीय-विद्यापीठ नहीं, प्रत्युत समस्त विश्वका एक अद्वितीय था और जहाँसे समस्त एशियाखण्डमें भारतीय ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता और संस्कृतिका प्रकाश फैला था। इसका नाम नालन्दा विश्वविद्यालय था, जिसका भग्नावशेष आज भी पटनाके समीप राजगृहके आसपास 'नाऊन्दा' नामसे प्राप्त होता है।

यद्यपि गुप्तकालमें काशी, उज्जैन, वलभी काञ्ची आदि अनेक नगर विद्याके केन्द्र थे परन्तु उन सबोंमें नालन्दाका विद्यापीठ सर्वोच्च और सर्व प्रधान था। इसका महत्ता, उदारता, अध्यापक संख्या एवं छात्रोंको देखते हुए देशकी सभी शिक्षण-संस्थाएँ तुच्छ थीं। नालन्दाका ही विश्वविद्यालय वास्तवमें विश्वविद्यालय था, इसके ही स्नातकोंका देश विदेशके प्रत्येक भागमें समादर होता था। 'नालन्दा' नाम ही तत्कालीन सर्वोच्च विद्याकेन्द्र और उसके गुणोंका द्योतक या पर्यायवाची समझा जाता था। नालन्दा विश्वविद्यालयकी स्थापनाकी निश्चित तिथि संशयग्रस्त है. इसका संक्षिप्त विवरण सुप्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यशुग (ह्वेन सांग) के यात्रा-विवरणसे प्राप्त होता है। जिस समय वह इस विद्या-प्रतिष्ठानमें आचार्य शीलभद्रके चरणोंमें रहकर भारतीय बौद्ध दर्शनशास्त्रोंका अध्ययन कर रहा था, उस समय यह विद्यापीठ केवल छः मठोंका समूह था, जिन्हें छः क्रमागत राजाओंने अपने-अपने समयमें बनवाया था। इन छः मठोंमें पहला मठ शक्रादित्यका बनवाया था, जो बौद्ध धर्मके भिक्षुओंमें अनन्त श्रद्धा रखता था। शक्रादित्यके पुत्र बुद्धगुप्तने अपने पिताकी परम्पराका अनुसरण करते हुए दूसरा मठ बनवाया था। इसी बुद्धगुप्तका उल्लेख सारनाथके शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंमें मिलता है। इसने ४७७ ई० से ४९६ ई०

तक शासन किया । तीसरा मठ इसके उत्तराधिकारी तथागत गुप्तने और चौथा मठ उसके उत्तराधिकारी बालादित्यने बनवाया था (यह प्रथम बालादित्य था) ।

हूणोंके राजा मिहिरकुलके भारत आक्रमणके समय यह विद्यापीठ उसके द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था किन्तु उसके विविध भवनोंका पुनर्निर्माण बालादित्य (द्वितीय) ने किया । इसके अतिरिक्त उसने ३०० फीट ऊँचा एक नवीन विहार भी बनवाया, जिसका प्रमाण नालन्दा-लेखक छठा श्लोक इस प्रकार देता है :—

आसत्यातिपराक्रम-प्रणयिना
जित्वा बलाद् विद्विषो-
बालादित्यमहानृपेण सकलं
भुक्त्वा च भू-मण्डलम् ।
प्रासादः सुमहानयं
भगवतः शौद्धोदनेरद्भुतः ।
कैलाशाभिभवेच्छयेव
धवलो मध्ये समुत्थापितः ॥

सम्भवतः हूणोंकी विजय-स्मृतिमें बालादित्यने इसकी स्थापनाकी होगी । यह धार्मिक राजा वृद्धावस्थामें स्वयं बौद्धभिक्षुके रूपमें अपने बनवाये विहारमें रहने लगा था ।

बालादित्यके पुत्र वज्रने इस विहारके पश्चिम ओर एक संघाराम बनवाया । इसके पश्चात् मध्य-भारतके एक राजाने एक बृहत् मठ बनवाया । ये सभी मठ एक दूसरेके समीप-समीपमें ही बने थे और एक ऊँचे प्राचारसे घिरे थे, जिसमें केवल एक ही फाटक था । महाराज हर्षने एक पीतलका विहार बनवाया था जो लगभग १०० फीटसे ऊँचा था । इन मठोंके अतिरिक्त अनेक स्तूप और विहार थे, जिनमें बुद्ध और बोधिसत्व की मूर्तियाँ स्थापित थीं । इन सभी इमारतोंका एक प्राचारवेष्टित समूह था—जिसका नाम था नालन्दा विश्वविद्यालय ?

इसका क्षेत्रफल अवश्य अतिविस्तृत रहा होगा । भारत सरकारके पुरातत्व विभाग द्वारा उसकी जो खोदाई हुयी है उससे यह बात प्रमाणित होती है । ह्वेन सांगके समकालीन भारतके प्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकवि बाणभट्टने कादम्बरीमें चन्द्रापीड़के लिये निर्माण किये गये जिस काल्पनिक विशाल विश्वविद्यालयका वर्णन किया है उसमें उसका क्षेत्रफल अर्ध कोश (एक मील) लिखा है । बाणभट्टकी विद्यामन्दिर कल्पनाका आधार अवश्य ही नालन्दा विश्वविद्यालय था ।

ह्वेन सांगके जीवन चरित्र—लेखक ह्वीलीने सम्पूर्ण नालन्दाकी रमणीयताका विशद वर्णन इस प्रकार किया है—

"सम्पूर्ण नालन्दा ईंटोंकी दीवारसे घिरा हुआ है, जोकि सारे मठोंको बाहरसे घेरती है । एक फाटक विद्यापीठकी ओर है जिससे कि आठ अन्य 'हाल' जो संघारामके बीचमें स्थित हैं अलग किए गए हैं । सुअलङ्कृत मीनार और परी सदृश गुंबज पर्वतकी नोकदार चोटियोंकी भाँति एक साथ हिले-मिलेसे खड़े हैं, मान मान्दिर प्रातःकाल धूम्रमें विलीन हुए से प्रतीत होते हैं और ऊपरी कमरे बादलोंके भी ऊपर विराजमान है । खिड़कियोंसे कोई भी देख सकता है कि हवा और बादल किस प्रकार नया रूप बनाते हैं । ऊँचा-ऊँची ओलतियोंके ऊपर सूर्य और चन्द्रकान्ति देखी जाती है । बाहरकी सभी परिवेष्टित कक्षाएँ जिनमें श्रमणोंके रहनेके कमरे बने हैं -चार-चार भूमियों (मंजिलों) की थीं । उनके मकराकृति बाजें, रंगीन ओलतियाँ, मोतीके समान लाल खम्भे—जो सजावटोंसे परिपूर्ण थे और जिनपर सुन्दर-चित्र खिचे थे—समलङ्कृत छोटे-छोटे स्तम्भ, खाड़ोंसे आच्छादित छतें जो सूर्यके प्रकाशको हजारों रूपोंमें प्रतिबिम्बित करती हैं—ये सभी उसकी शोभा बढ़ाते थे ।"

इस प्रकार ईसाकी चौथी शताब्दीके प्रथम

भागमें स्थापित यह विश्वविद्यालय अत्यन्त विशाल भव्य और रमणीय था। सातवीं शताब्दीमें यह अतिशय सम्मुन्नत अवस्थामें था। इसी विश्वविद्यालयका एक महान् पुस्तकालय भी था जो धर्मगञ्ज नामक प्रदेशमें स्थित था। इस पुस्तकालयकी तीन बड़ी-बड़ी इमारतें थीं एक इमारतका नाम 'रत्नोदधि' था जो ९ मंजिल ऊँचा था जिसकी प्रत्येक मंजिल पुस्तकोंकी अलमारियोंसे भरा हुआ था। दूसरी इमारत 'रत्नसागर' और तीसरी 'रत्नरंजक' थी, जो ६–६ मंजिलोंकी ऊँची थी। इन तीनों इमारतों और उनकी मजिलोंमें कितनी पुस्तकें रही होंगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

नालन्दा विश्वविद्यालयमें सुदूर देश चीन और मंगोलियासे भी छात्र अध्ययन तथा ज्ञानवृद्धिके लिये आते थे। नालन्दा आर्यसंघके पुरोहितों एवं बाहरसे आए हुए विदेशी छात्रोंकी संख्या ह्वेनसांग के समय दस हजारसे कम न थी इस विद्यापीठमें विदेशियोंके साथ अत्यन्त शिष्टतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। ह्वेनसांग, जो यहाँ १९ मासतक ठहरा था—बालादित्य राजाके मठमें राजाकी भाँति रहता था। धर्मात्मा राजाओंने विश्वविद्यालयको प्रचुर सम्पत्ति प्रदान कर रखी थी, जिसका कुछ वर्णन ह्वेनसांगकी जीवनीका लेख करता है:—

"देशके राजा सम्राट् हर्ष पुरोहितोंका आदर करते थे। उन्होंने १०० गाँवोंकी मालगुजारी विहारोंको दान कर रखी थी। इन गाँवोंके २०० गृहस्थ प्रतिदिन कई सौ पिकल (१ पिकल=१३३½ पौंड) साधारण चावल और कई सौ कट्टी (१ कट्टी=१६० पौंड) घी और मक्खन दिया करते थे। अतः यहाँके छात्रोंको ये सब वस्तुएं इतनी प्रचुर मात्रामें मिल जाती थीं कि इन्हें माँगनेकी आवश्यकता न पड़ती थी और न कहीं जाना पड़ता था। उनके विद्याध्ययनकी पूर्णताका यही साधन है।"

इस प्रसिद्ध विश्वविद्यालयमें विविध विषयोंकी उच्च शिक्षा दी जाती थी, पाठ्य विषयोंमें महायानमत तथा बौद्धधर्मोंमें अष्टादश सम्प्रदायोंके ग्रन्थ सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, योगशास्त्र, चिकित्साशास्त्र सांख्यदर्शन तथा तान्त्रिक ग्रन्थोंका अध्ययनाध्यापन होता था। शिक्षा व्याख्यानों द्वारा दी जाती थी, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान् विभिन्न विषयोंपर व्याख्यान देते थे और ऐसे व्याख्यान सैकड़ों प्रतिदिन हुआ करते थे। प्रत्येक विद्यार्थी इन व्याख्यानोंको सुननेके लिये चाहे एक ही मिनटके लिये हो उपस्थित अवश्य होता था।

व्याख्यान-मण्डलों द्वारा दी जानेवाली शिक्षाके अतिरिक्त एक और भी शिक्षा क्रम था, जिसे औपाध्यायिक-शिक्षा कहा गया है। नवागन्तुक व्यक्ति जो संघका सदस्य बनता था, सर्वप्रथम एक अध्यापकको अर्पण किया जाता था। वह अध्यापककी सेवा किया करता और अध्यापक उसे अपने ज्येष्ठ पुत्रके समान मानता था। उसे त्रिपिटक या किसी अन्य ग्रन्थका पाठ देता था। छात्र द्वारा की गयी सेवाके बदले अध्यापक शिष्यको समुचित शिक्षा ही नहीं; प्रत्युत उसके चरित्र निर्माण नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिके लिये भी अपनेको उत्तरदायी समझता था।

नालन्दा विश्वविद्यालयके व्याख्यान मण्डलोंका प्रवेशनियम सचमुच अतिकठिन था। शिक्षाका मान इतना ऊँचा था कि जो विश्वविद्यालयमें प्रविष्ट होकर वाद-विवादमें भाग लेनेकी इच्छा रखते थे, उन्हें पहले द्वारपण्डितके साथ विवाद करना पड़ता था, वह ऐसे कठिन और जटिल प्रश्न पूछता था कि प्रतिशत ६० विद्यार्थी उसमें उत्तीर्ण होकर प्रवेशाधिकारी होते थे। इसी नियमसे इस विश्वविद्यालयने विद्वानोंका एक ऐसा दल उत्पन्न कर दिया था जो संसारमें अपने-अपने विषयोंके अजेय पण्डित समझे जाते थे—और थे। नालन्दा विश्वविद्यालय वास्तवमें एक

अद्‌भुत और अद्वितीय विश्वविद्यालय था और उसमें सैकड़ोंकी संख्यामें प्रौढ़ पाण्डित्य-पूर्ण विद्वान् प्रतिवर्ष निकलते थे। एक हजार व्यक्ति उसमें ऐसे थे, जो सूत्रों और शास्त्रोंके बीच संग्रहोंका अर्थ समझा सकते थे। पाँच सौ विद्वान् ऐसे थे जो ३० संग्रहोंकी व्याख्या कर सकते थे और धर्माचार्यको लेकर दस विद्वान् ऐसे थे जो ५० संग्रहोंकी व्याख्या कर सकते थे। विद्यापीठके प्रधान आचार्य शीलभद्र ही एक ऐसे अद्भुत विद्वान् थे जिन्होंने इन सभी ग्रन्थोंको भली भाँति पढ़ा और समझा था।

इसवी सन् ६३५ में जब ह्वेनसांग इस विद्यापीठमें पहुँचा था तो उस समय शीलभद्र नालन्दा-विश्व-विद्यालयके अध्यक्ष थे। उनके पूर्व पदपर उनके गुरु धर्मपाल प्रतिष्ठित थे। धर्मपाल भर्तृहरिके समकालीन थे। शीलभद्र समतटके राजकीय वंशके एक ब्राह्मण थे, वे बाल्यावस्थासे ही विद्या-प्रेमी और तत्त्व-जिज्ञासु थे। राजमहल, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, आनन्द-विलास आदिके प्रलोभनोंमें न फँसकर वे सच्चे गुरुकी गवेषणामें निकल पड़े थे और दूर-दूर देशोंमें भ्रमणके अनन्तर उन्हें आचर्य धर्मपालको प्राप्तकर सन्तोष हुआ। और उनसे दीक्षा लेकर वे उनके शिष्य हो गये। ३० वर्षकी अवस्थामें वे धर्मपालके शिष्योंमें सर्व प्रधान हो गये।

शीलभद्र एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार थे, बौद्ध-दर्शन विशेषतः योगाचार सम्प्रदायपर उन्होंने व्याख्यात्मक टीकाऐं की हैं। शीलभद्रकी ख्याति विदेशोंमें भी पहुँच चुकी थी। ह्वेनसांग कई महीनोंतक उनके चरणोंमें रहकर योग-दर्शनके गूढ़ तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त करता रहा।

नालन्दा विश्व-विद्यालयके अन्य प्रसिद्ध आचार्योंमें—धर्मपाल और शीलभद्रके अतिरिक्त चन्द्रपाल, गुणमति तथा स्थिरमति थे, जिनकी तत्कालीन विद्वानोंमें अत्यधिक ख्याति थी। इनके अतिरिक्त प्रभामित्र—जिनके तर्क तीक्ष्ण और स्पष्ट होते थे, जिनमित्र–जिनकी सम्भाषण-शैली अत्यन्त सुमधुर और आकर्षक थी, ज्ञानचन्द्र जिनका चरित्र आदर्श और मति प्रत्युत्पन्न थी—इस विश्वविद्यालयके उज्ज्वल रत्न थे।

इतने ही नहीं; अन्यान्य देशप्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान् इस विश्वविद्यालयकी शोभा और कीर्तिका विस्तार करते थे, यही कारण था कि विदेशोंसे भी सहस्रों विद्यार्थी अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करनेके लिये उनके चरणोंमें आश्रय प्राप्त करते थे, नालन्दा-विश्वविद्यालयने भारतको विश्वके समुन्नत देशोंके सम्मुख इतना ऊँचा बना दिया कि जिससे वह आज भी विश्वके तत्त्वान्वेषियोंके लिये एक महान् तीर्थ रूप है।

क्या हम आशा करें कि आजका स्वतन्त्र भारत ऐसे महान् और आदर्श विश्वविद्यालयोंकी स्थापना द्वारा आधुनिक सभ्य-संसारमें भारतीय संस्कृति, सभ्यता और तत्त्वज्ञानका प्रचारकर, पुनः जगद्‌गुरुत्वको प्राप्तकर संसारको मानवताका उद्देश्य बताते हुए उसे शाश्वतशान्तिका साधन कर सकेगा?

एक विचित्र घटना

[यह इक्कीसवीं सदीके कलियुगका ही प्रभाव है कि आजका मानव अपने पुनर्जन्मके सम्बन्धमें सर्वथा नास्तिक होने लगा है, जन्मान्तरको मानना और न मानना ही आस्तिक और नास्तिकता है। आएदिन हमारे यहां इस प्रकारकी अनेक घटनाएं हुआ करती हैं जो आज भी—इस कलिकालमें भी हमारे शास्त्र-वर्णित जन्मान्तरके ज्वलन्त प्रमाण हैं और नास्तिक संसारके सन्मुख एक आदर्श हैं। यहाँ हम एक आश्चर्यजनक सत्य और निकट-भूतकी घटनाका उल्लेख कर रहे हैं —सम्पादक।]

अगस्त १५, १९४९ को बिसौली गाँव, जिला बदायूँसे प्रमोद नामका एक बालक जब मुरादाबाद आकर अपने पूर्वजन्मकी घटनाओंका वर्णन करने लगा—जनतामें एक अपूर्व उत्तेजना फैल गई।

हजारोंकी संख्यामें स्त्री और पुरुष जिनमें नगरके कतिपय प्रतिष्ठितजन भी थे इस बालकसे मिले और अन्तमें यह ध्रुव सत्य सिद्ध होगया कि हमारे शास्त्रवर्णित पुनर्जन्मका सिद्धान्त ऋषियोंकी कल्पनामात्र नहीं है।

साढ़े पाँच वर्षके बालकने यह बतलाया कि वह मोहन ब्रदर्स फर्मके स्वामी श्रीमोहनलालका पूर्वजन्ममें अनुज था और उसका नाम परमानन्द था।

मई ९, १९४३ को पेटमें भयंकर शूलके कारण सहारनपुरमें उसकी मृत्यु हो गई। मृत्युके ठीक नौ महीने छः दिनके बाद मार्च १५, १९४४ को बिसौली गाँवमें इंटर कालेजके प्रोफेसर श्री बाँकेलाल शर्मा शास्त्री M. A. के घरमें उसका पुनर्जन्म हुआ।

कुछही दिनोंमें जैसे ही वह बोलने लगा तो वह कभी मोहन मुरादाबाद, कभी सहारनपुर और कभी मोहन ब्रदर्स कहने लगा।

जब कभी वह बालक अपने स्वजनोंको बिस्कुट और मक्खन खरीदते देखता वह तुरत कह उठता कि मुरादाबादमें उसकी बड़ी बिस्कुट फैक्टरी थी और इस प्रकार कभी कभी वह अपने माता पितासे आग्रह करता कि वे उसे मुरादाबाद ले चलें। और भी विचित्रता देखिये कि बालकका नाम उसकी जन्म-कुंडलीमें पंडितों द्वारा इस जन्ममें भी परमानन्द ही रक्खा गया जिसे वह अपने पूर्वजन्मका नाम बतलाता था। किन्तु उसके बड़े भाईका नाम वरमोद होनेके कारण इसे घरवाले प्रमोद कहने लगे।

किन्तु बालक सदा यही आग्रह करता कि वह परमानन्द है और उसके सम्बन्धी भाई, लड़के लड़की और स्त्री मुरादाबादमें हैं। अन्ततः यह समाचार धीरे-धीरे इस वर्ष बालकके पूर्वजन्म-सम्बन्धित स्वजनोंको मुरादाबादमें मालूम हुआ और उसके पूर्वजन्मके भाई श्री मोहनलाल गाँवमें एक दिन उस विचित्र बालकको देखनेके लिये गत जुलाई मासमें आये। किन्तु घटनावश बालक उस समय अपने किसी स्वजनके यहां बिसौली गाँवसे दूर चला गया था। अतएव उसके प्रोफेसर पितासे बालकको मुरादाबाद लेकर आनेका अनुरोध करके श्रीमोहनलाल वापस चले आये। स्वातन्त्र्य दिवस गत १५ अगस्तको वह बालक अपने पिताके साथ मुरादाबाद आया। गाड़ीसे उतरते ही उसने अपने भाईको पहचान लिया और गलेसे लगा लिया। स्टेशनसे घर आते समय उस बालकने टाउनहालको पहचाना और कहा कि उसकी दूकान अब पास ही है। जब टाँगा उस दूकानके पास होकर निकल रहा था तो मोहन ब्रदर्सके दूकानके सामने उसे रोकनेको कहा। जब वह साढे पाँच वर्षका बालक अपने पूर्वजन्मके एक कमरेमें घुसा जहां परमानन्द अपने पूजनकी सामग्री आदि रखते थे, तो उसने सिर झुकाकर प्रणाम किया तथा अपने पूर्वजन्मकी पत्नी एवं अन्य सम्बन्धियोंको पहचान लिया। उसने और भी अनेक पूर्वजन्मसम्बन्धी घटनाओंका वर्णन किया जिससे सब बड़े प्रभावित हुए और सबने स्वीकार किया वे घटनाएं सत्य हैं। केवल उसने

अपने पूर्वजन्मके बड़े पुत्रको नहीं पहचाना, जो उसकी मृत्युके समय १२ वर्षका था और अब १७ वर्षका है और जब उसने पूर्व जन्मकी याद दिलायी कि सब भाई एक साथ बैठकर लेमन आदि पिया करते थे, तब तो सभी भाई तथा अन्य सम्बन्धी जो वहां वर्त्तमान थे रो पड़े।

इसके पश्चात् उस बालकने अपनी दूकानपर जानेकी इच्छा प्रकट की। वहां दूकानमें जाते ही वह सोडा मशीनके पास गया, और उसके बनानेकी विधियाँ बतलायीं जो उसने अपने इस जीवनमें कभी नहीं देखा था। जब मशीन नहीं चली, तब उसी समय उसने कहा कि इसका वाटर कनेक्शन बन्द किया गया है। जो वस्तुतः उसकी परीक्षाके लिये किया गया था। फिर उसने विक्टरी होटल जानेकी इच्छा प्रकट की जो श्रीकरमचन्द परमानन्दके चचरे भाईका है। उसने उस मकानका मार्ग बतलाया और ऊपरके मंजिलपर जाकर बतलाया कि जो कमरे ऊपर बने हैं, वे पहले नहीं थे। मुरादाबादके प्रमुख नागरिक श्रीसाहु नन्दलालशरण उस बालकको अपनी कारमें मेस्टन पार्क ले गये, वहां उन्होंने बालकको वह स्थान बतलानेको कहा जहां उसकी सिविल लाइन्सकी ब्रांच पहले थी। बालक उनको गुजराती बिल्डिंगमें ले गया, जो श्रीसाहु नन्दलालशरणकी है, वहां उसने वह दूकान बतलायी, जहां पहले एक समय मोहन ब्रदर्सकी दूकान थी। मेस्टन पार्क जाते समय बालकने इलाहाबादबैंक, वाटरवर्क्स जिला जेल आदि सब पहचान लिये।

अगस्त १६ को आर्यसमाजकी एक सर्वसाधारण सभामें उसके प्रोफेसर पिताने उस बालककी मेधाशक्तिके विकासका वर्णन किया और अत्यन्त कठिनाईसे उसको निद्रित अवस्थामें उसे घर वापस लाये। पूरे एक जन्मकी ममता उसे खींच रही थी।

यह अनहोनी घटना जिसकी पुनरावृत्ति जब तब हो जाया करती है अपना एक गहरा प्रभाव मुरादाबादकी जनता पर छोड़ गई है।

आस्तिक और नास्तिक दोनों ही इस सम्बन्धमें मूकसे हैं। एकको कुछ समझानेकी आवश्यकता नहीं है और दूसरेको कुछ समझाया नहीं जा सकता।

(अमृतबाजार पत्रिका, अगस्त २८, १९४९ से)

सुख मिला कहाँ किसने देखा।

जिसको देखा अभिलाष लिए, अन्तस्तल में अभिशाप लिए,
फिरते जगती का भार लिए, झोली में भरे विलाप लिए,
सपनों में सुख सबने देखा, मिला कहाँ सुख किसने देखा?

× × ×

निशि-वासर कोई सोच रहा, सुख है उन ऊँचे महलोंमें,
महलों वालों से जा पूछा, वे बोले—पर्ण-कुटीरोंमें,
धोखा खाते सबको देखा, मिला कहाँ सुख किसने देखा?

× × ×

षड् - रस - व्यंजन - भोगी देखे, कन्था - धारी योगी देखे,
सूखी रोटी खाने वाले, मधुर गान नित गाने वाले,
सबको हमने रोते देखा, मिला कहाँ सुख किसने देखा?

—उत्तम

अपनी बात

सरकार दुराग्रह छोड़े ।

हिन्दूकोडबिल पुनः धारासभामें उपस्थापित किया जारहा है । चार पांच वर्षोंसे इसपर विवाद चल-रहा है । सब श्रेणीके विशिष्ट विद्वान इसपर अपना विरुद्ध मत प्रकट कर चुके हैं । लाखों करोड़ोंकी संख्यामें विरोधपत्र तथा तार सरकारके पास अबतक हिन्दू जनताकी ओरसे भेजे जाचुके हैं; परन्तु ऐसा देखा जारहा है, कि जब-जब यह बिल विचारार्थ धारासभाके सामने आता है, तब-तब जनताकी ओरसे इसका तीव्र प्रतिवाद होनेसे उस समयके लिये किसी व्याजसे इसे स्थगित कर दिया जाता है, जब पुनः जनताका प्रतिवाद शिथिल पड़ता है, तब यह बिल फिर धारासभामें उपस्थापित किया जाता है । यह बड़े ही दुःखका विषय है कि, जनतन्त्र Democracy का डंका पीटने वाली और अपनी कहलानेवाली सरकार भोली-भाली हिन्दूजनताको धोखेमें डालकर उसके पारिवारिक, सामाजिक तथा धार्मिक जीवनमें उथल-पुथल मचानेवाला और उसका सर्वनाश करनेवाला हिन्दूकोड जैसा घातक कानून पास करनेका कुचक्र चला रही है । जिस शासनके सर्वोच्च सूत्रधार पं० जवाहरलाल नेहरु और सरदार बल्लभभाई पटेल जैसे लोकप्रिय, जनताके विश्वास-भाजन तथा Democracy के समर्थक महान् पुरुष हों, उसके द्वारा इस प्रकार लोकमतका अनादर तथा अवहेलना अत्यन्त अशोभनीय है । जबसे इस बिलका सूत्रपात हुआ, इस सम्बन्धमें लोकमत जाननेके लिये राव-कमिटीने प्रायः देशके सभी भागोंमें दौरा किया, तबसे जनताद्वारा इसका प्रबल विरोध होता आरहा है । यहांतक कि, जो गृहदेवियाँ कभी घरसे बाहर नहीं आयी थीं, वे भी अपनी उस मर्यादाको छोड़ इस बिलके विरोधमें गवाहियां देनेके लिये राव-कमिटीके सामने आयी । अवश्य कुछ मनचले विदेशी रङ्गमें रङ्गे स्त्री-पुरुषोंने इसका समर्थनभी किया, परन्तु इनकी संख्या करोड़ों विरोधियोंकी तुलनामें नगण्य ही है । तबभी सरकार हिन्दू समाजपर अपनी सत्ताके बलसे हिन्दूकोड बिलको जबरदस्ती लादना चाह रही है, और उसे पास करानेपर कटिबद्ध है । सरकारको जान लेना चाहिये कि, इस पवित्र भारत-भूमिपर हिन्दूओंका वैदिक सनातनधर्मका नाश करनेवाला शासन टिक नहीं सकता । बौद्धोंका उज्ज्वल उदाहरण सामने है । भगवान् बुद्ध हमारे अवतार माने जाते है, परन्तु जब बौद्धोंने ईश्वर और ईश्वरीय वैदिकधर्मका नाश कराना चाहा, तब एक तपस्वी ब्राह्मण कुमारिल भट्टने इस पवित्र भूमिसे उनको निर्वासित ही कर डाला । और बौद्धोको चीन-जापानमें शरण लेनी पड़ी । यद्यपि राजा-प्रजा सबके सब बौद्ध हो जानेसे भट्टपाद कुमारिलको केवल एक राज्य-कन्याको छोड़ किसीका सहयोग नहीं प्राप्त हुआ था । अनन्तर भगवान् आदि शंकराचार्य आये और उनके द्वारा पुनः वैदिक सनातनधर्मकी प्रतिष्ठा हुई । अतः सरकारसे हमारा साग्रह अनुरोध है कि, वह अपना दुराग्रह छोड़े और लोकमतका आदर कर इस हिन्दूकोडबिलको वापस लेले । इसीमें शासन और शासित दोनोंका हित है ।

हिन्दूसंस्कृति और नेहरुजी।

गत तीन सितम्बरको प्रयाग विश्वविद्यालयके छात्रोंके सामने भाषण करते हुए श्री पं० जवाहर लाल नेहरुजीने कहा था कि, हिन्दू-संस्कृति सड़ गयी है। उसके बाद अपनी अमेरिका यात्राके अवसरपर उन्होंने अपने एक भाषणके प्रसङ्गमें कहा कि, वे जो कुछ हैं, वह उन्हीं देशोंके स्कूलों तथा युनिवरसिटियोंकी देन हैं। उनके इस कथनसे यह स्पष्ट होजाता है, कि नेहरूजी हिन्दू-संस्कृतिके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते हैं। क्योंकि उनकी जो कुछ शिक्षा-दीक्षा हुई है, वह पाश्चात्य देशोंमें ही हुई हैं; अतः स्वभावतः ही उनकी सब विचार-धाराएं भी पश्चिमी सभ्यता-संस्कृतिपर बनी हुई हैं। दुर्भाग्यवश वे हिन्दू संस्कृतिके विषयमें सर्वथा अनभिज्ञ हैं। अतः जबतक वे हिन्दू संस्कृतिको उसके विशेषोंसे अच्छी तरह अध्ययन न करलें, तबतक श्रीनेहरुजी जैसे महान् उत्तरदायित्वपूर्ण पदपर आसीन महान् पुरुषके लिये ऐसा कहना कदापि उचित नहीं है। इस सम्बन्धमें हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि, हिन्दू संस्कृतिका एक छोटासा ग्रन्थ भगवद्गीता जो महाभारत जैसे बृहत् ग्रन्थका एक अल्प अंश है, उसके बने हुए पांच हजार वर्षसे अधिक होगये हैं, तब पुरानी होनेके कारण क्या कभी भी वह किसी विचार-शील व्यक्तिकी सम्मतिमें सड़ी कही जासकती है? अबतक पृथिवीके सैकड़ों भाषाओंमें उसका अनुवाद और प्रकाशन हो चुका है एवं पृथिवीके करोड़ों मनुष्योंको वह सभी शान्ति एवं सब सुखका मार्ग दिखा रही है। हिन्दू संस्कृतिके उदार पवित्र सिद्धान्तोंका यह एक सामान्य उदाहरण है। ऐसी पवित्र हिन्दूसंस्कृतिको सड़ी हुई कहकर नेहरूजीने जो कोटि-कोट हिन्दुओंके हृदयोंपर गहरी चोट पहुँचायी है, उसके लिये उन्हें क्षमा याचना करनी चाहिये।

राष्ट्रभाषा हिन्दी।

संतोषका विषय है कि, अनेक वाद-विवाद-के अनन्तर अन्ततः विधानपरिषद्ने देवनागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया। इसके लिये आर्यावर्तके लौह-पुरुष श्रीपुरुषोत्तमदास टंडनजीको हम हार्दिक बधाई देते है। उन्हींके अनवरत-अथक उद्योग-द्वारा हिन्दीको यह न्यायोचित स्थान प्राप्त हुआ है। साथ ही हमें यह देख कर आश्चर्य और दुःख भी होता है कि, हमारे राष्ट्रके स्वातन्त्र्य-संग्रामके सेनानी, जो अंग्रेजी शासनको यहांसे खदेड़नेके लिये इतने उतावले थे कि, उन्होंने देश-का विभाजन कराकर हमारी मातृभूमिको छिन्न-भिन्नक कर डाला, वे ही अंगरेजी भाषाको अभी अगामी पन्द्रह वर्षोंतक और बनाये रखना चाहते हैं। इसका क्या यह अर्थ नहीं कि, बाहरी गुलामीसे मुक्त होनेपरभी उनकी मानसिक गुलामी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है?

श्रीआर्य महिलाहितकारिणी महापरिषद्की अखिल भारतीय मण्डली तथा पदाधिकारियोंका निर्वाचन आगामी दिसम्बर मासमें होगा। अतः महापरिषद्के सब श्रेणीके सदस्य महानुभावोंसे प्रार्थना है, कि प्रत्येक सदस्य किसी एक सदस्यके लिये अपना मत मन्त्रीके पास शीघ्र भेजनेकी कृपा करें। सदस्योंकी नामावली नीचे प्रकाशित की जाती है।

—मन्त्री

संरक्षक नामावली

१ भारतेन्दु श्रीमान् सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास K.B.E., Kt., J.P., C.I.E., M.B.E., बम्बई।

२ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराजा कृष्णकुमार महोदय भावनगर,—काठियावाड़।

३ श्रीमान् सर चुन्नीलाल वी. मेहता K.C.S.I., बम्बई।

४ विद्यारत्न एतमादुद्दौला श्रीमान् सर एस. एम. बापना रायबहादुर Kt., C.I.E., इन्दौर।

५ श्रीमान् रामकृष्णजी डालमिया, नई दिल्ली।

६ श्रीमान् सेठ कुडीलाल सेकसेरिया, बम्बई।

७ श्रीमान् राजाबहादुर पन्नालाल वंशीलाल, हैदराबाद।

८ श्रीमान् सेठ गदाधरजी सोमानी, बम्बई।

९ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराजा यशवन्तराव होलकर, इन्दौर।

१० श्रीमान् हरिशंकर बागला, कानपुर।

११ श्रीमान् सेठ धरमसी मूलराज खटाऊ, बम्बई

१२ श्रीमान् कैलाशपत सिंहानिया, कानपुर।

१३ श्रीमान् गोविन्दराम बाँगर, कलकत्ता।

१४ श्रीमान् माल्हीराम सौंथलिया, कलकत्ता।

१५ श्रीमान् रामसहायमल मोर, कलकत्ता।

१६ श्रीमान् छोटेलाल कानोडिया, कलकत्ता।

१७ श्रीमान् नन्दलाल भुवालका, कलकत्ता।

१८ श्रीमान् रूपचन्द झुनझुनवाला, कलकत्ता।

१९ श्रीमान् शिवनाथसिंह महोदय, कलकत्ता।

२० श्रीमान् एन. सी. चटर्जी महोदय, कलकत्ता।

२१ श्रीमान् राधाकृष्ण चमड़िया कलकत्ता।

२२ श्रीमान् प्रयागदास गिरधरदास महोदय, कलकत्ता।

२३ श्रीमान् विश्वेश्वरदयाल मित्तल महोदय, बम्बई।

२४ श्रीमान् मेघराज भुवालका महोदय, बनारस।

२५ श्रीमान् सोहनलाल जाजोडिया, कलकत्ता।

२६ श्रीमान् रामदास किलाचन्द, बम्बई।

२७ श्रीमान् रणजीतसिंह एम. ए. ओ. बी ई., लखनऊ।

२८ श्रीमान् लक्ष्मीनिवास बिड़ला, कलकत्ता।

२९ श्रीमान् बाबूलाल ढनढनिया, बनारस।

उप-संरक्षक नामावली

१ हिज हाईनेस हिंदू-सूर्य महाराजाधिराज महाराणा सर भूपालसिंह महोदय, उदयपुर मेवाड़।

२ श्रीमती सुव्रतादेवी रामनारायण रुइया, बम्बई।

३ श्रीमान सेठ नन्दलाल कपूर, बम्बई।

४ रायबहादुर श्रीमान् मँगतूलाल तापड़िया, कलकत्ता।

५ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर, धारस्टेट।

६ श्रीमान् लाला रामचन्द्रजी, कानपुर।

७ श्रीमान् लाला रामरतनजी गुप्त, कानपुर।

८ श्रीमान् जी. एम. पाइन, कलकत्ता।

९ श्रीमान् सम्पतकुमार चाँदरतन, कलकत्ता।

१० श्रीमान् चम्पा लाल जटिया, कलकत्ता।

११ श्रीमान् एस. के. दत्त, कलकत्ता।

१२ श्रीमान् मुन्नालाल भाखोटिया, कलकत्ता।

१३ श्रीमान् सूरजरतन मोहता, कलकत्ता।

१४ श्रीमान् दयाराम पोद्दार, कलकत्ता।

१५ श्रीमान् सेठ रामदेव आनन्दीलाल पोद्दार, बम्बई।

१६ श्रीमान् कन्हैयालाल जटिया, कलकत्ता।

१७ श्रीमान् हीरालाल सोमानी, कलकत्ता।
१८ श्रीमान् रामकुमार सोमानी कलकत्ता।
१९ श्रीमान् गणपत राम कैंया, कलकत्ता।
२० श्रीमान् रामकृष्ण धानुका, कलकत्ता।
२१ श्रीमान् सेठ जगमोहन जयन्तीलाल, कलकत्ता।
२२ श्रीमान् सोहनलाल पचीसिया, कलकत्ता।
२३ श्रीमान् नन्दकिशोर झाफरिया, कलकत्ता।
२४ श्रीमान् करमचन्द थापर, कलकत्ता।
२५ श्रीमान् सेठ रामदयाल सोमानी, बम्बई।
२६ श्रीमान् सेठ धीरजलाल जीवनलाल, बम्बई।
२७ श्रीमान् सेठ मोतीलाल तापड़िया, बम्बई।
२८ श्रीमान् सेठ रामकुमार शिवचन्दराय, बम्बई।
२९ श्रीमान् सेठ वंशीधर गोपाल दास, बम्बई।
३० श्रीमान् सेठ आनन्दराम मँगतुराम, बम्बई।
३१ श्रीमान् सेठ दुर्गादत्त, बम्बई।
३२ श्रीमान् रामरिखदास परशुरामपुरिया, बम्बई।
३३ श्रीमान् सेठ मुल्तानी हसानन्द ठाकुरदास, बम्बई।
३४ श्रीमान् शिवकुमार भुवालका, बम्बई।
३५ श्रीमान् वल्लभदास करशनदास नाथा, बम्बई।
३६ श्रीमान् पूरनमल बुबना, बम्बई।
३७ श्रीमान् सेठ गोवर्धनदास यादवजी, बम्बई।
३८ रायबहादुर लाला गुरुशरणलाल सी. आई. ई. कलकत्ता।
३९ श्रीमान् सेठ भोगीलाल लहरचन्द, बम्बई।
४० श्रीमान् बा० ज्योति भूषण गुप्त, बनारस।
४१ श्रीमान् सेठ भगवानलाल पन्नालाल, बम्बई।

आजीवन सदस्य नामावली

१ लेडी ताराबाई चुन्नीलाल मेहता, बम्बई।
२ श्रीमान् सर मथुरादास विसनजी, बम्बई।
३ श्रीमान् सेठ रमणलाल भोगीलाल चिनाई, बम्बई।
४ श्रीमती शिवदेवी जी, जयपुर।
५ श्रीमान् गिरधरदास भार्गव बी० ए० एल-एल० बी०, कानपुर।
६ श्रीमान् ए.पी.पट्टनी, भावनगर—काठियावाड़।
७ श्रीमती तरलाबाई, अहमदाबाद।
८ हिज हाइनेस श्रीमान् जामसाहब सर दिग्विजय सिंह बहादुर, जामनगर।
९ श्रीमती धर्मपत्नी द्वारका प्रसाद सिंह, कानपुर।
१० श्रीमती लेडी कुसुम एच. कनिया, नयी दिल्ली।
११ श्रीमान् सेक्रेटरी सीड्स ट्रेडर्स एसोशियेशन, बम्बई।
१२ श्रीमती लक्ष्मीबाई महोदय, बम्बई।
१३ श्रीमान् सेठ लक्ष्मीदास देवीदास ठाकरसी, बम्बई।
१४ श्रीमान् सर ईश्वरदास लक्ष्मीदास Kt., बम्बई।
१५ श्रीमान् युगलकिशोर जी बिड़ला, कलकत्ता।
१६ श्रीमान् युगतरामजी वैद्य, बम्बई।
१७ श्रीमान् रतनसी प्रयागजी, बम्बई।
१८ श्रीमान् सेठ खीमजी पून्जा, बम्बई।
१९ श्रीमान् विशनजी मोरारजी, बम्बई।
२० श्रीमान् सेठ सुखदयाल रामविलास, बम्बई।
२१ श्रीमान् एल० हरजीवन एंड कम्पनी बम्बई।
२२ श्रीमान् शान्तीलाल चुन्नीलाल एंड कम्पनी, बम्बई।
२३ श्रीमान् सेठ ओकवलाल गोपालदास बम्बई।
२४ श्रीमान् सेठ धनराजमल चेतनदास, बम्बई।
२५ श्रीमान् सेठ कानजी द्वारकादास, बम्बई।
२६ श्रीमान् सेठ मूलचन्द बुलाकीदास, बम्बई।
२७ श्रीमान् सेठ प्रवीणचन्द गोपालजी जवेरी, बम्बई।
२८ श्रीमान् सेठ यमुनादास रामदास डोसा बम्बई।
२९ श्रीधनराज मिल्स लिमिटेड, बम्बई।
३० श्रीमान् सेठ वीरचन्द मेघजी थोभन बम्बई।
३१ श्रीमान् सेठ रतनलाल बुबना, बम्बई।
३२ श्रीमान् सेठ तेजभानदास उद्धवदास बम्बई।
३३ श्रीमूलचन्द विमलचन्द एंड कम्पनी बम्बई।
३४ श्रीमान् सेठ वाडीलाल दौलतराम, बम्बई।

३५ श्रीमान् सेठ वल्लभदास द्वारकादास, बम्बई।
३६ श्रीमान् सेठ वीरामल परसुराम, बम्बई।
३७ श्रीमान् वी० आर. कम्पनी, बम्बई।
३८ श्रीमान् सेठ घेलादयाल, बम्बई।
३९ श्री मुरारजी वेलजी एण्ड सन्स, बम्बई।
४० श्रीमान् सेठ मथुरादास द्वारकादास, बम्बई।
४१ श्रीमती शान्तीदेवी राजा गोविन्दलाल पित्ती, बम्बई।
४२ श्रीमान् सेठ आशाराम ठाकुरदास, बम्बई।
४३ श्रीमान् सेठ भगवानदास के. ब्रदर्स, बम्बई।
४४ श्रीमान् कान्तीलाल ईश्वरलाल, बम्बई।
४५ श्रीमान् द्वारकादास सेकसरिया, बम्बई।
४६ श्रीमान् सेठ रतनसी मूलजी, बम्बई।
४७ हिज हाइनेस महाराजा साहब बहादुर, जोधपुर।
४८ श्रीमान् सेठ रामेश्वरदास बिडला, बम्बई।
४९ श्रीमान् जगन्नाथ प्रसाद, बनारस।
५० श्रीमती राजकुमारी देवी राजा मुकुन्दलाल पित्ती, बम्बई।
५१ हर हाइनेस श्रीमती राजमाता महारानी, छतरपुर।
५२ श्रीमान् सेठ गोरधनदास पी. सोनावाला, बम्बई।
५३ श्रीमान सेठ जैसिंह भाई उजमसी भाई, अहमदाबाद।
५४ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराजा साहब, ध्रांगध्रा।
५५ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराजा साहब, पालीटाना।
५६ श्रीमान् निर्मल कुमार जैन, आरा।
५७ श्रीमान् सेठ कस्तूरभाई लालभाई, अहमदाबाद।
५८ श्रीमान् लक्ष्मीनारायण गिरधारीलाल, कानपुर।
५९ राय बहादुर श्रीमान् किशनलाल गुप्त कानपुर।
६० श्रीमान् सेक्रेटरी नेटिव मर्चेन्ट्स एसोसियेसन, बम्बई।

६१ श्रीमान् सेक्रेटरी मारवाड़ी चैम्बर्स लि०, बम्बई।
६२ श्रीमान् एच. घोष, एलाहाबाद।
६३ श्रीमान् सेठ माणिकलाल चुन्नीलाल, बम्बई।
६४ श्रीमान् सेठ हरनन्दराय घनश्यामदास, बम्बई।
६५ श्रीमान् रावराजा कल्याण सिंह, जयपुर।
६६ श्रीमान् रावराजा सरदार सिंह, जयपुर।
६७ हर हाइनेस श्रीमती महरानी, सैलाना।
६८ हिज होलीनेस श्रीगोस्वामी वल्लभाचार्य, भरतपुर।
६९ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराजा साहेब, नैपाल।
७० श्रीमान् जयन्तीलाल शर्राफ, बम्बई।
७१ श्रीमान् सर गिरजाप्रसाद जी बेरोनेट, अहमदाबाद।
७२ श्रीमान् सेठ हरकिशनदास लक्ष्मीदास, बम्बई।
७३ श्रीमती इन्दुकुमारी देवी, बम्बई।
७४ श्रीमान् सेठ मुरलीधर निरंजनलाल, बम्बई।
७५ श्रीमान् सेठ पुरुषोत्तमदास लक्ष्मीदास, बम्बई।
७६ श्रीमान् सेठ रामचन्द्र ताराचन्द्र, बम्बई।
७७ श्रीमान् सेठ मँगतूराम जैपुरिया, कानपुर।
७८ श्रीमान् देवशर्माजी, कानपुर।
७९ श्रीमान् सर हरगोविन्द मिश्र Kt. कानपुर।
८० श्रीमान् गोपालदास टंडन, कानपुर।
८१ रायबहादुर श्रीमान् मोहनसिंह, कलकत्ता।
८२ श्रीमान् जयन्तीलाल ओझा, कलकत्ता।
८३ श्रीमान् भागीरथ कानोडिया, कलकत्ता।
८४ श्रीमान् रामकुमार भुवालका, कलकत्ता।
८५ श्रीमान् गोविन्ददास भद्दर, कलकत्ता।
८६ श्रीमान् सीताराम रामरिख महोदय, कलकत्ता।
८७ श्री कोटक कम्पनी, बम्बई।
८८ श्रीमान् सेठ हंसराज जीवनदास, बम्बई।
८९ श्रीमान् सेठ जीवराज मोतीराम एन्ड कम्पनी, बम्बई।

९० श्रीमान् सेठ चिमनलाल मानचन्दजी ज्वेलर। बम्बई।
९१ श्रीमान् सेठ वसनजी खीमजी, बम्बई।
९२ श्रीमान् सेठ नरसी नागसी एन्ड कम्पनी, बम्बई।
९३ श्रीमान् सेठ मोहनलाल कपूर, बम्बई।
९४ श्रीमान् मोहनलाल मगनलाल खाद्, बम्बई।
९५ श्रीमान् सेठ आनन्दीलाल हेमराज बम्बई।
९६ श्रीमान् सेठ बनारसीदास सेकसेरिया, बम्बई।
९७ श्रीमान् सेठ वाड़ीलाल काशीदास, बम्बई।
९८ श्रीमान् सेठ दामोदरदास हरगोबिंददास, बम्बई।
९९ श्रीमान् सेठ भाईदास करशनदास, बम्बई।
१०० श्रीमान् सेठ नानजी कालिदास पोरबन्दर, काठियावाड।
१०१ श्रीमान् सेठ विश्वंभरलाल महेश्वरी, बम्बई।
१०२ श्रीमान् सेठ चिरंजीलाल लोयलका, बम्बई।
१०३ श्रीमान् सेठ शाकरचंद जी शाह, बम्बई।
१०४ श्रीमान् सेठ गोविन्दजी शामजी, बम्बई।
१०५ श्रीमान जोखीराम रामचन्द्र, बम्बई।
१०६ श्रीमान् सेठ रामनाथजी डागा, बम्बई।
२०७ श्रीमान् सेठ घनश्यामदास सीताराम पोद्दार, बम्बई।
१०८ श्रीमान् सेठ भवानजी अर्जुन खीमजी, बम्बई।
१०९ श्रीमान् एम० सी० चिनाई, बम्बई।
११० श्रीमान् झरीराम भदानी, बम्बई।
१११ श्रीमान् गौरीशंकरजी गोयनका, बनारस।
११२ श्रीमान् सेठ चतुर्भुज पीरामल, बम्बई।
११३ श्रीमती सरस्वती देवी, बनारस।
११४ श्रीमान् केदारनाथ अग्रवाल, कलकत्ता।
११५ हर हाइनेस श्रीमती महारानी राजमाता देवेन्द्र कुमारी देवी डूंगरपुर, राजपुताना।
११६ श्रीमती सुशीला बिरला महोदया, कलकत्ता।
११७ प्रोप्राइटर सूरत काटन स्पिनिङ्ग डाइंग मिल्स, बम्बई।
११८ श्रीमती ज्ञानवती बाई, बम्बई।
११९ श्रीमान् बालादीन महोदय, बनारस।
१२० श्रीमान् डा. किशोरी रमण प्रसाद, बनारस।
१२१ श्रीमती धर्मपत्नी सेठ लक्ष्मी निवासजी, हैदराबाद।
१२२ श्रीमती मुक्ताबाई, हैदराबाद।
१२३ सर श्रीराम महोदय, नयी दिल्ली।
१२४ धर्म विनोद रावल संग्राम सिंहजी सामोद, जैपुर।
१२५ हिज हाइनेस महाराजा० साहब पोरबन्दर काठियवाड।
१२६ श्रीमान् सेठ कन्हैयालाल भन्डारी, इन्दौर।
१२७ श्रीमान् सत्येन्द्रजीत सिंह, कलकत्ता।
१२८ श्रीमती सूरजमल नेमानी, बम्बई।

साधारण सदस्य नामावली

१ हिज हाइनेस श्रीमान महरावलजी बाँसवाडा, (राजपुताना)।
२ श्रीमान् महाराजा श्रीदिलीपसिंह सी. आई. ई, सैलाना।
३ श्रीमती धर्मपत्नी हरिश्चन्द्रजी साहब आई. सी. एस. एलाहाबाद।
४ हर हाइनेस श्रीमती महारानी, टेहरी।
५ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराजा बहादुर श्रीरामसिंह, सीतामऊ।
६ श्रीमान् महेन्द्र महाराजा श्रीनरेन्द्रशाह बहादुर के. सी. आई. ई, टेहरी।
७ श्रीमान् यशवन्तसिंह साहब बिदवल, (धार स्टेट)।
८ हिज हाइनेस श्रीमान् महाराज कामेश्वर सिंह के. सी. आई. ई, एल-एल. बी. डी. लिट्, दरभङ्गा।
९ श्रीमान् ठा० लौटूसिंह गौतम, काशी।
१० हर हाइनेस श्रीमती महारानी टेहरी, टेहरी।

११ हर हाइनेस श्रीमती गुलाब कुँअर साहबा जामनगर।
१२ हर हाइनेस श्रीमती महरानी साहबा, दतिया।
१३ श्रीमान् सेठ राधाकृष्णजी मुच्छाल एम एल सी, इन्दौर।
१४ रायबहादुर सेठ हीरालालजी, इन्दौर।
१५ श्रीमती धर्मपत्नी बा० रणजीतसिंह एम. ए. ओ. बी. ई. लखनऊ।
१६ श्रीमती धर्मपत्नी सर बद्रीदास गोयनका, कलकत्ता।
१७ श्रीमान् सेठ चरणदास मेघजी, बम्बई।
१८ मंत्री सत्यनारायण लाइब्रेरी, डिडवन।
१९ श्रीमान् सेठ शिवदानमल गंगाराम, बम्बई।
२० श्रीमान् प्राणलाल देवकरन, बम्बई।
२१ श्रीमान् सेठ किशोरीलाल भगवानदास, बम्बई।
२२ श्रीमान् डा० एच. एस. चतुर्वेदी, इन्दौर।
२३ मेसर्स ढ़धा एन्ड कम्पनी, मद्रास।
२४ श्रीमान् सेठ भगवानलाल पन्नालाल बम्बई।
२५ श्रीमान् सेठ सूरजमल लल्लूभाई मद्रास।
२६ श्रीमान् डब्ल्यू. आर. पौराणिक, कलकत्ता।
२७ श्रीमान् सेठ सूरजमल नागरमल, कलकत्ता।
२८ श्रीमान् रामेश्वरलाल नैपानी, कलकत्ता।
२९ श्रीमान् इन्द्रचन्द्रजी केजरीवाल, कलकत्ता।
३० श्रीमान् सेठ केदारनाथ पोद्दार, कलकत्ता।
३१ श्रीमान् कुँवर रामसरण सिंह, नाहन (पंजाब)
३२ श्रीमती आर. पी. बागला, कानपुर।
३३ श्रीकुमारी विष्णुकान्ता मालपानी, रतलाम।
३४ श्रीमान् नरेन्द्रजीत सिंह बैरिस्टर, कानपुर।
३५ श्रीमान् नटवरलाल मानिकलाल सुर्ती, भावनगर।
३६ श्रीमान् कमांडिंग जनरल मोहन शमशेर जंग बहादुर, नेपाल।
३७ श्रीमान् सेठ देवचन्द धरमसी सेठिया, बम्बई।
३८ श्रीमान् कल्याणजी मावजी, कलकत्ता।
३९ श्रीमती अनुसूयादेवी पशुपतिनाथ करोरिया, बम्बई।
४० श्रीमती अनुसूयादेवी रामप्रसाद गुप्ता, कानपुर।
४१ श्रीमती इन्दिरा रामचन्द्र कपूर, बनारस।
४२ श्रीमती गौरीदेवी मेहरा बनारस।
४३ श्रीमान् बालकृष्णदास गधेलाल, बनारस।
४४ श्रीमान् रघुनाथप्रसाद सत्यनारायणप्रसाद, बनारस।
४५ श्रीमान् मन्नीलाल ज्वाला प्रसाद, बनारस।
४६ श्रीमान् रामेश्वर लाल पोद्दार, बनारस।
४७ श्रीमान् हीरालाल चौधरी, बनारस।
४८ श्रीमान् राधाकृष्ण चमड़िया, बनारस।
४९ श्रीमान् नरसिंहदास कोठारी, कलकत्ता।
५० श्रीमान् बाबू घनश्यामदास, कलकत्ता।
५१ श्रीमान् रामनिवास झुनझुनवाला, कलकत्ता।
५२ श्रीमान् रामेश्वर प्रसाद शर्मा, फैजाबाद।
५३ श्रीमान् धन्वन्तर प्रसाद शुक्ल, खीरी।
५४ श्रीमान् जे. प्रकाशसिंह, सीतापुर।
५५ श्रीमान् के. सी. महेश्वरी, कलकत्ता।
५६ श्रीमती लीलाभान, काश्मीर।
५७ श्रीमती बुद्धादेवी मुन्नीलाल मेहरा, बनारस।
५८ श्रीमान् शिवदत्तराय नाथामल चौधरी, मोतीहारी।
५९ श्रीमान् बा. बनवारीलाल, मोतीहारी।
६० श्रीमान् पं० रामावतार पाण्डेय, बनारस।
६१ श्रीमान् पं० देवनायकजी आचार्य, बनारस।
६२ श्रीमान् पं० ननकु प्रसाद तिवारी, बनारस।
६३ श्रीमान् पं० रामशङ्करजी वैद्य, बनारस।
६४ श्रीमती अनुसुया देवी महोदया, कलकत्ता।
६५ श्रीमती धर्मपत्नी जी० डी० माथुर, बनारस।
६६ श्रीमान् पं० कमलापति द्विवेदी, बनारस।
६७ श्रीमान् बा० देवी नारायणजी, बनारस।
६८ श्रीमान् पं० रघुनन्दनलाल दर, बनारस।

महापरिषद् सम्वाद

श्रीमान् पंडित जवाहरलाल नेहरूजीने २८-११-१९४९ को सघधारा सभामें जो हिन्दू कोड बिलके सम्बन्धमें वक्तव्य दिया है उससे हिन्दूजनताको बहुत ही शोक और असन्तोष हुआ है, क्योंकि हिन्दू कोड बिल हिन्दूजनताके लिए जीवन मरणका प्रश्न है। पंडितजीके वक्तव्यपर अखिल भारतीय श्री आर्य-महिला हितकारिणी परिषद्की कार्यकारिणी समितिके ता: १-१२-४९ की बैठकमें जो प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ है उसको हम ज्यों का त्यों यहां उद्धृत कर रहे हैं:—

सम्पादक

मन्तव्य

"अखिल भारतीय श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्की प्रबन्ध-कारिणी समिति माननीय पण्डित जवाहरलाल नेहरूजीके ता० २८।११।४९ को धारा सभामें दिये हुए हिन्दू कोड बिल सम्बन्धी वक्तव्यपर हार्दिक क्षोभ तथा असंतोष प्रकट करती है। नेहरूजीके इस वक्तव्यसे यह स्पष्ट सिद्ध है कि, वे हिन्दूजनतापर अपने आधिकारके बलसे इस बिलको अवश्य लादना चाहते हैं। नेहरूजीका यह कार्य लोकतन्त्र सिद्धान्तके विरुद्ध है। इसलिये यह समिति, नेहरू सरकारसे सविनय साग्रह अनुरोध करती है कि वह अपने इस बिलको वापस लेकर हिन्दू समाजका विश्वास-भाजन बने और उत्तमोत्तम प्राचीन आर्य संस्कृति और न्यायकी मर्यादाको जीवित रखकर सुयशके भागी बनें।"

(गताङ्कसे आगे)

त्रिभुवन-विभव-हेतवेऽप्यकुण्ठ
स्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दा—
ल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥५३॥
भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा—
नखमणि-चन्द्रिकया निरस्ततापे ।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥
विसृजति हृदयं न यस्य साक्षा—
द्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश-
स्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥

त्रिभुवनकी सम्पदके लिये भी जिसका भगवच्चिन्तन छूट नहीं सकता, भगवान्मे मग्न देवता आदि भी जिन्हें ढूंढते रहते है, भगवच्चरणकमलोंसे जो आधेक्षण और आधे पलके लिये भी अलग नहीं होता वह भगवान्के भक्तोंमें आगे गिनेजाने योग्य है ॥ ५३ ॥ विष्णु भगवान्के पराक्रमी चरणोंकी अंगुलियोंके नाखून रूपी शीतल मणियोंकी कान्तिसे जिसका काम आदि ताप शान्त हो गया फिर शरणागत पुरुषोंके हृदयमें किस प्रकार वह ताप हो सकता है ? जैसे चन्द्रमाके उदय हो जानेपर सूर्यका ताप नहीं रह सकता ॥ ५४ ॥ जो (भगवान्) विवशतावश नामोच्चारण किये जानेपर भी समस्त-पाप-राशिका नाश कर देते हैं, वे ही (भक्त द्वारा) प्रेम-पाशसे चरणकमलोंके बँध जानेके जिसके हृदयको नहीं छोड़ते वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ कहा गया है ॥ ५५ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण एकादशवें स्कन्धका
दूसरा अध्याय समाप्त ।

तृतीयोऽध्यायः ।

राजोवाच

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् ।
मायां वेदितुमिच्छामि भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥१॥
नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् ।
संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥२॥

अन्तरिक्ष उवाच—

एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज ।
ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥३॥
एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः ।
एकधा दशधात्मानं विभजञ्जुषते गुणान् ॥४॥
गुणैर्गुणान्स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः ।
मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥५॥

राजा निमि बोले—हे प्रभो ! मैं बड़े से बड़े मायावियोंको भी मोहित कर देनेवाली श्रीविष्णु भगवान्की मायाको जानना चाहता हूँ ; कृपया आप लोग उसका रहस्य मुझे बतला दीजिये ॥१॥ मैं संसारके तापोंसे संतप्त एक मनुष्य हूँ, अतः आपके मुखपद्मसे निकलती हुई तापोंकी औषधिरूप जो हरिकथामृत है उसे सुनते हुए मुझे तृप्ति ही नहीं होती ॥२॥ अन्तरिक्षने कहा—हे आजानुबाहुवाले आदिदेव ! नारायण ने निज स्वरूप हो जीवोंके भोगादिके लिये निर्मित पञ्चभूतोंसे ही विविध प्रकार उत्कृष्ट और निकृष्ट भूतोंकी सृष्टि की है ॥ ३ ॥ इस प्रकार पञ्चमहाभूतों द्वारा रचित उन प्राणिमात्र में स्वतःही जीवात्मारूपसे प्रविष्ट हो (एकमन और दस कर्मेंद्रियों) एकविध और दसविधसे विभक्त उनके गुण अर्थात् विषयोंका उपयोग करता है ॥ ४ ॥ तत्तत् इन्द्रियोंसे विषयोंका उपभोग करता हुआ तथा इस शरीर आदिको ही आत्मरूप समझता हुआ इसमें तन्मय हो जाता है ॥ ५ ॥ फिर वह

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्स निमित्तानि देहभृत् ।
तत्तत्कर्मफलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥

इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् ।
आभूतसम्प्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् ।
अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥८॥

शतवर्षाह्यनावृष्टि र्भविष्यत्युल्वणा भुवि ।
तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥९॥

पातालतलमारभ्य सङ्कर्षणमुखानलः ।
दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥१०॥

संवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः ।
धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥११॥

शरीरधारी अपने शरीरद्वारा वासनात्मक कर्म करता हुआ तथा इन्द्रियोंके सुख और दुःखोंको भोगता हुआ संसारमें भ्रमण करता रहता है ॥६॥ इस प्रकारके कर्मोंके फलोंसे नाना प्रकारके दुःखों को भोगता हुआ महाप्रलय पर्यन्त लाचार होकर जन्ममरणके चक्रमें घूमता रहता है ॥ ७ ॥ इसके पश्चात् उन पञ्चमहाभूतोंका प्रलयकाल उपस्थित होनेपर अनादि और अनन्तकालरूप इस द्रव्य-गुणात्मक संसारको अव्यक्तकी ओर आकर्षित करता है ॥८॥ इस प्रलयकालमें सौ वर्षोंतक पृथ्वी-में घोर अनावृष्टि होगी और सूर्य भगवान् अति उष्णताके साथ तीनों लोकोंको तपाने लगेंगे ॥९॥ शेषनाग मुखसे आग उगलेगा प्रलयकालीन वायुसे प्रेरित हो पाताललोकसे आरम्भ कर सबको जलाता हुआ ऊँची-ऊँची ज्वालाओं के साथ बढ़ता जाता है ॥ १० ॥ संवर्तक नामकी मेघगण हाथीके सूँड़ोंके समान मोटी-मोटी धाराओंसे सौ वर्षोंतक निरन्तर बरसते रहते हैं, जिनसे समस्त ब्रह्माण्ड डूब जाता है ॥ ११ ॥

ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप ।
अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥१२॥

वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते ।
सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥१३॥

हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते ।
हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥१४॥

कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ।
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिः सह वैकारिकै र्नृप ।
प्रविशन्ति ह्यहङ्कारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥१५॥

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्त-कारिणी ।
त्रिवर्णावर्णितास्माभिःभूयःकिं श्रोतुमिच्छसि॥१६॥

इसके पश्चात् हे राजन् ! विराट् पुरुष अपने ब्रह्माण्डरूपी शरीरको छोड़कर बन्धनरहित अग्निके समान सूक्ष्मरूप 'अव्यक्त'में प्रवेश करता है ॥१२॥ पृथ्वीकी गन्ध वायुद्वारा खींच लिये जाने पर पृथ्वी सलिलरूप हो जाती है और जिस सलिलसे वायुद्वारा हो रस खींच लिया जाता है वह अग्निरूप हो जाती है ॥ १३ ॥ अन्धकार द्वारा रूपहीन अग्नि वायुमें और अवकाश द्वारा स्पर्श-हीन वायु आकाशमें लीन हो जाता है ॥ १४ ॥ जब कालके प्रभावसे अपने गुणशब्दसे रहित होकर आकाश तामस-अहङ्कारमें, इन्द्रियाँ राजस अहङ्कारमें और इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठातृदेवोंके साथ मन और बुद्धि सात्विक अहङ्कारमें लीन होते हैं और अहङ्कार अपने गुणों सहित महत्तत्त्वमें लीन हो जाता है ॥ १५ ॥ हमने यह जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयकारिणी भगवान्की त्रिगुणात्मक मायाका वर्णन किया है, अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १६ ॥

राजोवाच—

यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः ।
तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥१७॥

प्रबुद्ध उवाच -

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च ।
पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम्॥१८॥
नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना ।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१९॥
एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् ।
सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम्॥२०॥
तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥२१॥
तत्र भगवतान्धर्मान्छिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः॥२२॥
सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु ।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥२३॥
शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥२४॥
सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ।
विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित् ॥२५॥
श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि ।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥२६॥
श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः ।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥२७॥
इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ।

राजा निमिने कहा—हे महात्मन् ! चित्तको वशमें न कर सकनेवाले और स्थूलबुद्धिके लोगोंके लिये अतिकठिन इस ईश्वरीय मायाको समझ सकें—ऐसा उपदेश कीजिए ॥ १७ ॥ प्रबुद्धने कहा—स्त्री पुरुष सम्बन्धसे एक होकर दुःखनाश और सुख प्राप्तिके लिये कर्मानुष्ठान करने वाले पुरुषोंको जो विपरीत ही फल मिलता है उसे देखना चाहिये ॥१८॥ नित्य दुःखदायी, अतिदुर्लभ और आत्माके लिये साक्षात् मृत्युरूप इस धनसे अनित्य गृह, सन्तान, कुटुम्ब और पशु आदि प्राप्तिसे क्या सुख मिलता है ॥१९॥ मनुष्योंको इहलोक और परलोक दोनोंको कर्मजन्य और नाशवान समझना चाहिये। इसमें सामन्त नरेशोंकी प्रतिस्पर्द्धा, उत्कृष्टके प्रतिद्वेष एवं स्वयं उत्कृष्ट होनेपर पतनका भय लगा ही रहता है ॥२०॥ अतएव अपना श्रेय चाहनेवाले जिज्ञासुको चाहिये कि शाब्दब्रह्म और परब्रह्ममें नीष्णात शान्तचित्त वाले गुरुकी शरणमें जाय ॥ २१ ॥ अनन्तर उन गुरुदेवको ही आत्मा तथा इष्टदेव समझता हुआ प्रेमपूर्वक भागवत धर्मोंको सीखे, जिनसे शुद्ध आत्मा द्वारा आचरण किये जानेपर स्वयं अपनेको (भक्तके) अर्पण कर देने वाले भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २२ ॥ सर्वप्रथम एकान्तचित्त, पुनः साधु-सत्सङ्ग, तब सभीके प्रति दयाभाव, मैत्रीभाव यथायोग्य करना चाहिये ॥२३॥ शौच, तप, तितिक्षा, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा तथा सुख-दुःख आदि द्वन्द्वमें समानता रखनी चाहिये ॥ २४ ॥ भगवान्को सभी जगह आत्मस्वरूप देखना, एकान्तवास, ममत्वरहित होना, शुद्धवस्त्र परिधान करना, प्रत्येक अवस्थामें सन्तुष्ट रहना चाहिये ॥ २५ ॥ भगवान्का वर्णन करनेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा रखना, शास्त्रान्तरोंकी निन्दा न करना, मन, वचन और कर्ममें संयम रखना, सत्यभाषण तथा शम दम आदिसे युक्त होना चाहिये ॥२६॥ अद्भुत लीला करनेवाले श्रीहरिके जन्म कर्म और गुणोंका क्रमशः श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना, अपनी सभी चेष्टाएँ उन्हींके लिये करना चाहिये ॥ २७ ॥ यज्ञ, दान, तप, जप, आचार, स्त्री, पुत्र, गृह, और

दारान्सुतान्गृहान्प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम्॥२८॥
एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥२९॥
परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः।
मिथोरतिर्मिथस्तुष्टि र्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥३०॥
स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्३१
क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
गायन्ति नृत्यन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥३२॥
इति भागवतान्धर्मान्शिक्षन्भक्त्या तदुत्थया।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम्॥३३॥

राजोवाच—

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
निष्ठामहेथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवादिनः॥३४॥

पिप्पलायन उवाच—

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य
यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन
सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र॥३५॥
नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा
प्राणेन्द्रियाणि च यथानलमर्चिषः स्वाः।
शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयात्ममूल-
मर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः॥३६॥

प्राण—जो भी अपनेको प्रिय हो—सब भगवान्को अर्पण कर देना चाहिये ॥ २८ ॥ इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रमें जिनके आत्मा और वे ही जिनके नाथ ऐसे पुरुषोंसे प्रेम करना। दोनों प्रकार स्थावरों और जंगमों तथा महात्माओं और साधुओंकी सेवा करना, भगवानके पवित्र यशका परस्पर कथोपकथन करना और जिसे परस्परमें प्रेम सन्तोष तथा शान्ति बढ़े ऐसे कार्य करना ॥ २९–३० ॥ इसी प्रकार पापोंके समूहको नाश करनेवाले भगवान् हरिका स्मरण स्वयं करते तथा औरों द्वारा कराते हुए महात्मालोग भक्तिसे ही भक्तिके उत्पन्न हो जानेपर पुलकित या पुलकायमान हो जाते हैं॥३१॥ इसके अनन्तर वे कभी भगवान्का ध्यान करके रोते, कभी हँसते, कभी आनन्द मग्न रहते और कभी अनर्गल शब्दोंको कहते हैं और कभी नाचते कभी प्रभुका गुणगान करते, कभी अजन्मा भगवान्की लीलाओंका ध्यान करते हैं फिर ऊपरसे प्राप्तकर अन्तमें सब्तरहसे शान्त हो मौन हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ इसी प्रकार भागवत धर्मोंका अभ्यास पूर्वक आचरण करते करते उनसे उत्पन्न भक्तिद्वारा नारायणरूप होकर भक्त इस दुस्तर मायाको सरलतापूर्वक पार कर लेता है ॥ ३३ ॥

राजा निमिने कहा—आपलोग ब्रह्म-स्वरूपका निरूपण करते हैं, इसलिये आप नारायण नामके परब्रह्म स्वरूपका उपदेश हमें कीजिये ॥३४॥

पिप्पलायनने कहा—जो इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण होते हुए भी कारण रहित हैं और जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंमें भीतर और बाहर भी है जिनसे संचालित होकर शरीर, इन्द्रिय, प्राण तथा हृदय अपने-अपने व्यापारमें प्रवृत्त हुआ करते हैं उन्हें ही तुम एकमात्र नारायण स्वरूप समझो ॥ ३५ ॥ चिनगारियाँ जिस प्रकार ज्वालाको प्रकाशित नहीं कर सकतीं उसी प्रकार इस आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेमें मन, वाणी, चक्षु, बुद्धि किसीकी गति नहीं है और शब्द केवल निषेधात्मक वृत्तिके द्वारा निषेधविधिरूपसे ही उसे अर्थापत्तिद्वारा लक्षित करता है। क्योंकि निषेधकी अवधिके न होनेसे निषेधकी सिद्धि ही नहीं हो सकती ॥ ३६ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ
सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ।
ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति
ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥३७॥
नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ
न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ।
सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं
प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥३८॥
अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु
प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र ।
सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते
कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥३९॥
यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्त्या
चेतो मलानि विधमेद् गुणकर्मजानि ।
तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं
साक्षाद्यथामल दृशोः सवितुः प्रकाशः ॥४०॥

राजोवाच

कर्म योगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः ।
विधूय स्वानि कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ॥४१॥
एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके ।
नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ॥४२॥

आविर्होत्र उवाच—

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ।
वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥४३॥
परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् ।
कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥४४॥

आदिमें एक ही ब्रह्म था जो सत्त्व, रज और तम के द्वारा 'त्रिवृत्' कहा गया उसे ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और फलरूपात्मक होनेसे महत्तत्त्व, सूत्र और अहंकार कहते हैं। फिर वही ब्रह्म ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और अर्थात्मकरूपसे भासमान होता है, इसी प्रकार सत्, असत् और उसके भी परे सर्वत्र ब्रह्म ही है ॥ ३७ ॥ परमात्माने न कभी जन्म लिया, न कभी मरेगा ब्रह्म बढ़ता है न घटता, कारण—वह सर्वव्यापक, नित्य, अच्युत एवं ज्ञानरूप तथा सभी परिवर्तित होने वाले विकारोंका साक्षी है। एक ही प्राण जैसे इन्द्रियोंके स्थानभेदसे विविध रूपोंको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार प्राण, अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज तथा स्वेदज योनियोंमें यत्र-तत्र जीवानुसरण करता है उसी प्रकार सुषुप्तिअवस्थामें इन्द्रियोंके निश्चेष्ट और अहङ्कारमें लीन हो जानेके उपरान्त कूटस्थ आत्माके अतिरिक्त उस अवस्थाकी स्मृति कोई भी नहीं कर सकता ॥ ३९ ॥ कमल नाभिवाले विष्णु भगवान्के चरणकमलोंकी प्राप्तिके लिये बढ़ी हुई तीव्र भक्तिरूपी अग्निके द्वारा जब जीव अपने चित्तके गुण-कर्मोंके अनुसार उत्पन्न हुए पापोंको दग्ध कर देता है तो शुद्ध हो जानेपर आत्मतत्त्व उसी प्रकार स्पष्ट भासित होने लगता है जिस प्रकार निर्मल नेत्रोंमें सूर्यका तेज ॥४०॥ राजानिमिने कहा—हे मुनिवृन्द ! आप लोग अब मनुष्य अपने कर्मोंका त्याग करके परमनैष्कर्म्यको प्राप्त हो जाता है ॥ ४१ ॥ पहले भी—एक बार मैंने यही प्रश्न पिता (इक्ष्वाकु) के सामने ब्रह्माके पुत्र (सनकादि) ऋषियोंसे पूछा था, लेकिन उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया, इसका क्या कारण था ? यहभी मुझे समझाइये ॥ ४२ ॥

आविर्होत्रजी बोले—कर्म, अकर्म और विकर्म आदि जो विषय वेदोंसे ही जाना जा सकता है वे लौकिक पदार्थों द्वारा ज्ञानका विषय नहीं है। वेद भगवद्रूप है, उसमें बड़े-बड़े बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ जिस प्रकार बालकको बहकाया जाता है उसी प्रकार वेद परोक्ष वाद है, कह कर कर्मस्वरूप रोगको हटानेकेलिये ही

नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः ।
विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥४५॥
वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे ।
नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥४६॥
य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ।
विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥४७॥
लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन सन्दर्शितागमः ।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥४८॥
शुचिः सम्मुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः ।
पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥४९॥
अर्चादौ हृदये चापि
यथालब्धोपचारकैः ।

कर्मरूपी औषधका नियम बनाया गया है ॥ ४४ ॥ इन्द्रियोंको वशमें न कर सकनेवाला और अज्ञानी जो पुरुष वेदोक्त विधानका आचरण नहीं करता वह वेद-विहित-कर्म न करनेके पापसे बारंबार जन्म और मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ वेदोक्त कर्मोंको ही निःसङ्गभाव होकर ईश्वरको अर्पण करता हुआ नैष्कर्म्यरूपी सिद्धिको पा जाता है वेदमें जो फलश्रुति है वह केवल कर्मकी ओर प्रवृत्ति करनेकेलिये ही है ॥ ४६ ॥ पररूप आत्माकी हृदयग्रंथिको जो शीघ्र ही खोलना चाहें, उसे चाहिये कि वह वेदविहित और तन्त्रविहित विधिसे नियमतः भगवान् केशवकी अर्चना करे ॥ ४७ ॥ अपने आचार्य (गुरु) की कृपा द्वारा निर्दिष्ट विधिसे अभीप्सितमूर्तिकेद्वारा महापुरुष नारायण भगवान्का पूजन करे ॥ ४८ ॥ सर्वप्रथम शरीर और अन्तःकरणसे शुद्ध हो प्रतिमाके सन्मुख बैठ प्राण-संयमन (प्राणायाम) आदिके द्वारा नाड़ीको शुद्धकर फिर अङ्गन्यासकेद्वारा देह कीरक्षा करके भगवान्की पूजा करे ॥ ४९ ॥ बाह्य प्रतिमा अथवा हृदयस्थ प्रतिमा जिसका भी पूजन

द्रव्यक्षित्यात्मलिङ्गानि
निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥
पाद्यादीनुपकल्याथ सन्निधाप्य समाहितः ।
हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥५१॥
साङ्गोपाङ्गां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥५२॥
गन्धमाल्याक्षतस्रग्भि-
र्धूपदीपोपहारकैः ।
साङ्गं सम्पूज्य विधिवत्
स्तवैस्तुत्वा नमेद्धरिम् ॥ ५३ ॥
आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं सम्पूजयेद्धरेः ।
शेषामाधाय शिरसा स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥५४॥

करना हो उसकी उपलब्ध पूजा सामग्री, पूजास्थान तथा शरीर आदिको प्रथम शुद्ध करे तदनन्तर आसनपर जल छिड़ककर उसे शुद्ध करे ॥ ५० ॥ तदनन्तर पूजा-पात्र, अर्घ्यपाद्य आदिपात्रोंको यथास्थान रखकर एकाग्रचित्त हो अङ्गन्यास आदि के पश्चात् मूलमन्त्रोंसे मूर्तिका पूजन करे ॥ ५१ अपने-अपने उपास्यदेवकी साङ्गोपाङ्ग और पार्षदोंसे युक्त मूर्तिकी उसके मूलमन्त्र द्वारा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, विविध वस्त्र और आभूषण, गन्ध, माला, अक्षत, पुष्पमाला धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे विधिपूर्वक पूजन करे, तत्पश्चात् स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति करके भगवान् हरिको प्रणाम करे ॥ ५२–५३ ॥ इस प्रकार अपने आत्मामें भगवद्रूपको समझता हुआ भगवान्की प्रतिमा का पूजन करे, फिर निर्माल्यको अपने मस्तक पर रखकर पूजी हुई भगवान्की प्रतिमाको नियत स्थान पर रख दे ॥ ५४ ॥

एवमग्न्यर्कतोयाद्यावतिथौ हृदये च यः ।
यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥५५॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

भगवान्के अवतारोंका वर्णन ।

राजोवाच—

यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ।
चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥१॥

द्रुमिल उवाच—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता-
ननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ।
रजांसि भूमेर्गणयेत्कथञ्चि-
त्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः
पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधान-
मवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो
यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ।
ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा
सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥४॥

आदावभूच्छतधृती रजसास्य सर्गे
विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ।

इसी प्रकार जो अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि और अपने हृदयमें भगवान्का पूजन करता है बहुत शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥

श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धका
तृतीय अध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्याय ।

राजानिमिने कहा इस लोकमें श्रीभगवान्ने स्वेच्छासे धारण किये हुए अपने जिन-जिन अवतारोंसे जो जो लीलाएँ की हैं, कर रहे हैं अथवा करेंगे, उन सबको हमसे कहिये ॥ १ ॥

द्रुमिलने कहा—हे राजन् ! जो पुरुष भगवान्के अनन्त अगणित गुणोंकी गिनती करना चाहता है, वह मन्दबुद्धि है । यह सम्भव है, कि पृथिवीके बालुका-कणोंको किसी प्रकार किसी समय कोई गिन भी ले, परन्तु सर्वशक्तिमान् भगवान्के अगणित गुणोंका कभी कोई पार नहीं पा सकता ॥ २ ॥ अपने बनाए हुए पञ्चभूतोंके द्वारा ब्रह्माण्डरूप पुरकी रचना करके जब भगवान् आदिदेव नारायणने अपने अंश जीवके रूपसे उसमें प्रवेश किया तब उनका 'पुरुष' नाम हुआ ॥ ३ ॥ जिनके विराट शरीरमें इस समस्त त्रिभुवनका समावेश है, जिनकी इन्द्रियोंसे देहधारियोंकी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ, स्वरूपसे स्वतःसिद्ध ज्ञान, श्वास प्रश्वाससे बल ओज और क्रियाशक्ति तथा सत्त्वादि गुणोंसे स्थिति, उद्भव और लय होते है; वे ही आदिकर्ता नारायण हैं ॥ ४ ॥ प्रारम्भमें जगत्की उत्पत्तिके लिये उनके रजोगुणके अंशसे ब्रह्मा हुए, फिर वे आदिपुरुष ही संसारकी स्थितिके लिये धर्म और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेवाले यज्ञपति विष्णु तथा तमोगुणके अंशसे संसार संहारक रुद्र हुए । इस प्रकार निरन्तर उन्हींसे

रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य
इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥५॥

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां
नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः।
नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म
योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः॥६॥

इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति
कामं न्ययुङ्क्त सगणं स वदर्युपाख्यम्।
गत्वाप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः
स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः
प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान्।

मा भैष्ट भो मदनमारुतदेववध्वो
गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥८॥

इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः
सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः।
नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं
स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः
स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते।
नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि॥१०॥

प्रजाकी उत्पत्ति, पालन और संहार होते रहते हैं ॥५॥ धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्तिके गर्भसे भगवान्‌ने शान्तात्मा ऋषिश्रेष्ठ नर और नारायणके रूपमें अवतार लिया, उन्होंने आत्मतत्त्वको लक्षित करानेवाला कर्मत्यागरूप कर्मज्ञाननिष्ठाका उपदेश किया और स्वयं भी उसीका आचरण किया। वे, जिनके चरणोंकी सेवा मुनिश्रेष्ठ करते हैं, आजकलभी विराजमान हैं ॥ ६ ॥ ये अपने घोर तपस्या द्वारा मेरा पद छीनना चाहते हैं'—ऐसी आशङ्का कर इन्द्रने (उन्हें तपसे भ्रष्ट करनेके लिये) कामदेवको उसके दल-बल सहित भेजा और उनकी महिमाको न जाननेके कारण वह बदरिकाश्रममें जाकर अप्सरागण, वसन्त, मन्द सुगन्ध वायु और स्त्रियोंके कटाक्ष बाणोंसे उन्हें बींधनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ७ ॥

इन्द्रकी इस कुचालको जानकर कुछ विस्मय न कर आदिदेव नारायणने भयसे काँपते हुए उन कामादिसे हँस कर कहा—"हे मदन! हे मलय मारुत! हे देवाङ्गनाओं! तुम लोग डरो मत; हमारा आतिथ्य स्वीकार करो; आतिथ्य ग्रहण किये बिना वापस जाकर हमारा आश्रम सूना न करो" ॥ ८ ॥ हे राजन्! अभयदायक दयालु भगवान् नारायणके यह मधुर वचन सुन लज्जासे सिर झुकाये हुए देवगणने करुणस्वरसे इस प्रकार कहा—"हे विभो! आप मायातीत और निर्विकार हैं, आत्माराम, धीर पुरुष निरन्तर आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं; अतः आपके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है जो स्वयं निर्विकार रह कर हमारे समान अपराधियोंपर भी इतनी कृपा कर रहे हैं ॥ ९ ॥

जो आपकी ही सेवा करते हैं, उनके मार्गमें देवगण अनेक विघ्न उपस्थित करते हैं, क्योंकि वे उनके धामको लाँघ कर आपके परमपदको प्राप्त होते हैं। उनके अतिरिक्त जो केवल कर्मकाण्डमें लगे रह कर यज्ञादिके द्वारा देवताओंको उनका भाग देते रहते हैं, उन्हें कोई विघ्न नहीं होता, तथापि यदि आप उनकी रक्षा करने लगते हैं तो वे भक्तगण समस्त विघ्नोंके सिर पर पैर रख देते हैं, अर्थात् अपने लक्ष्य पर पहुँच जाते हैं ॥ १० ॥

❀ श्री [illegible] नमः ❀

श्री धर्मसेविका विद्यापीठ, काशी।

द्विजातिकी बाल-विधवाओंके लिये अभूतपूर्व अवसर

हमारे देशमें अल्पवयस्का विधवाओंका जीवन एक प्रकारसे भार समझा जाता है, पर अब ऐसा समझनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीआर्यमहिला हितकारिणी-महापरिषद्‌ने जो अखिल भारतीय सनातनधर्मावलम्बिनी महिलाओंकी एकमात्र संस्था है, ऐसी विधवाओंके लिये काशीमें "धर्मसेविका विद्यापीठ" नामक एक विभागकी स्थापना सन् १९४१ में की। यह विद्यापीठ विधवा बालिकाओंको हिन्दी, संस्कृत तथा शास्त्रीय विषयोंमें पूर्ण दक्ष और चतुर बनाकर उन्हें देश-सेविका एवं धर्मसेविकाके रूपमें प्रस्तुत कर रहा है। शिक्षाका समय चार वर्षका है। सुयोग्य छात्राओंके भरण-पोषणका सब व्यय संस्था देती है। भर्ती होनेवाली छात्राओंको हिन्दीका अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। यह संस्था अपने ढङ्गकी बिलकुल अद्वितीय और अभूतपूर्व है। पढ़ाई तथा रहने आदिकी भी बड़ी ही उत्तम व्यवस्था है। शिक्षा समाप्तिके पश्चात् धर्मसेवा करते समय धर्मसेविकाओंको २०) से ५०) मासिक तक आजीवन पुरस्कार दिया जायगा। विशेष विवरण जाननेके लिए नीचे लिखे पतेपर पत्र व्यवहार कीजिये।

उपाधि-परीक्षा-विभाग

विद्यापीठका यह विभाग देशके महिलाओं एवं कन्याओंमें धर्मशिक्षा प्रचारके लिये स्थापित किया गया है। जो स्त्रियाँ घरके बाहर जाकर धर्मशिक्षा प्राप्त करने अथवा परीक्षा देकर उपाधि प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये यह विभाग स्वर्ण सुयोग प्रदान-करनेवाला है। वे इस विभाग-द्वारा निर्धारित कुछ धर्म-पुस्तकोंको पढ़कर अपने घर बैठी ही परीक्षा देकर 'धर्मदीपिका', 'धर्म कोविदा' तथा धर्मशारदा' आदिकी उपाधियाँ प्राप्त कर अपने जीवनको बहुमूल्य बना सकती हैं।

इसके केन्द्र सर्वत्र खोले जा रहे हैं। स्त्री-शिक्षा-संस्थाओंको इस विभागका परीक्षा-केन्द्र अपने यहाँ खोलकर धर्म-शिक्षाके प्रचारद्वारा शिक्षा-सम्बन्धी असम्पूर्णता दूर करना चाहिये।

विशेष जानकारीके लिये नियमावली माँगिये—

संचालिका—
श्रीधर्मसेविका विद्यापीठ,
श्री आर्यमहिला-कार्यालय,
जगतगंज, बनारस कैंट।

सम्पादक, मुद्रक व प्रकाशक—श्रीमदनमोहन मेहरोत्रा, आर्यमहिला कार्यालय, जगतगंज, बनारसने [illegible] प्रेस, रामघाट, [illegible] छपवाकर प्रकाशित किया।